मनोविज्ञान का परिचय

भाग 1

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

लेखक

गिरीश्वर मिश्र

कृष्ण दयाल ब्रूटा   लाल बचन त्रिपाठी

अशोक कुमार श्रीवास्तव   अंजुम सिबिया

संपादक

कृष्ण दयाल ब्रूटा   रमा चरण त्रिपाठी

गिरीश्वर मिश्र   अजित कुमार महान्ति

नज़रुल हुसैन   सुनीत वर्मा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अक्टूबर 2002
आश्विन 1924

ISBN : 81-7450-097-9

PD 5T NSY

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस श्री अरविंद मार्ग **नई दिल्ली 110 016**	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज **बैंगलूर 560 085**	नवजीवन ट्रस्ट भवन डाकघर नवजीवन **अहमदाबाद 380 014**	सी.डब्लू.सी. कैम्पस 32, बी.टी. रोड, सुखचर **24 परगना 743 179**

प्रकाशन सहयोग

संपादन : नरेश यादव
उत्पादन : प्रमोद रावत
राजेंद्र चौहान
चित्र : प्रमोद भारती
आवरण : अमित श्रीवास्तव

रु. 95.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम.पेपर पर मुद्रित

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, W-30, ओखला औद्योगिक क्षेत्र-2, नई दिल्ली 110 020 द्वारा लैजर टाइपसैट एवं मुद्रित।

आमुख

हम तेजी से बदलती परस्पर निर्भर दुनिया में रह रहे हैं जिसकी आवश्यकता है कि आज का छात्र विवेकपूर्ण ढंग से सोचे और नई जानकारियों को आत्मसात करे, विविधताओं के प्रति संवेदनशील हो तथा ऐसे विचारों और कौशलों को विकसित करे जो जीवनपर्यंत सीखने को प्रोत्साहित करते रहें। एक विषय के रूप में मनोविज्ञान व्यक्तियों की मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं व्यवहारों का अध्ययन करता है और व्यक्ति तथा सामाजिक जीवन की गुणवत्ता में योगदान करता है। चूँकि आज की दुनिया के सामने उपस्थित समस्याएँ एवं चुनौतियाँ मानव व्यवहार से जुड़ी हैं इसलिए उनके समाधान के लिए मनोविज्ञान विषय की वैज्ञानिक जानकारी तथा उसका उपयोग आवश्यक होता है। मनोविज्ञान का अध्ययन उन संवेदनाओं एवं कौशलों का पोषण करता है जिनसे विद्यार्थियों को उनके दैनिक जीवन के साथ-साथ कार्यक्षेत्र में सहज बनाने में तथा उनके जीवन में व्यक्तिगत उन्नति तथा सक्षम बनने की जरूरतों को भी पूरा करने में मदद मिलेगी। यह व्यक्तियों को प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करने, पूर्वाग्रह एवं भेदभाव मिटाने में, स्वस्थ जीवन शैली को प्रोत्साहित करने में, प्रगाढ़ पारिवारिक संबंधों को निर्मित करने तथा दैनिक जीवन में आने वाली चुनौतियों के प्रभावी समाधान में मददगार सिद्ध होगा।

इस पाठ्यपुस्तक का उद्देश्य आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के स्वरूप एवं निर्धारकों तथा विभिन्न क्षेत्रों में उनकी जानकारी, उपयोगिता से जुड़ी जानकारी एवं समझ प्रदान करना है। इसमें मनोविज्ञान के क्षेत्र में नए विकासों को भी शामिल किया गया है तथा देशज उदाहरणों की सहायता से भारतीय परिवेश की वास्तविकताओं से जोड़ा गया है। इसकी विषयवस्तु का प्रस्तुतीकरण एक अंतःक्रियात्मक शैली में रखा गया है जिससे सहभागी ढंग से सीखने को बढ़ावा मिलेगा। इस पुस्तक में *अध्याय सारांश, समीक्षात्मक प्रश्न, प्रमुख तकनीकी शब्द* तथा *पारिभाषिक शब्दावली* दिए गए हैं जिससे सीखने वाले की विषय के प्रति रुचि एवं उत्साह बना रहे। *अनुभवपरक क्रियाकलाप* तथा *आपने कितना सीखा* अभ्यासों को पूरे अध्याय में इस तरह वितरित किया गया है जिससे अध्यापक विषयवस्तु का प्रभावी संपादन कर सके। समृद्धिकारक पूरक सामग्री को बाक्स में देकर छात्रों में सीखने की प्रवृत्ति को पुष्ट करने का प्रयास किया गया है।

इस पाठ्यपुस्तक को तैयार करने में दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. गिरीश्वर मिश्र द्वारा किए गए गंभीर प्रयासों की, जो उन्होंने इस कार्यक्रम के प्रमुख की भूमिका में किए, मैं सराहना करता हूँ। मैं उन सभी लेखकों को विभिन्न अध्याय लिखने के लिए तथा विषय विशेषज्ञों को लिखित सामग्री का संपादन एवं समीक्षा करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। चूँकि पाठ्यपुस्तक का विकास एक सतत प्रक्रिया है हम पाठकों की प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा करते हैं जिससे पाठ्य सामग्री को ओर बेहतर बनाया जा सके।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
मई 2002

पांडुलिपि के पुनरावलोकन हेतु कार्यशाला के सदस्य

गिरीश्वर मिश्र **(अध्यक्ष)**
प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

कृष्ण दयाल ब्रूटा
प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

प्रमोद कुमार राय
प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग
डॉ. एच.एस. गौड़ विश्वविद्यालय
सागर

अजय कुमार भटनागर
वरिष्ठ अध्यापक
एन.डी.एम.सी. नवयुग स्कूल
सरोजनी नगर, नई दिल्ली

बब्बन मिश्र
रीडर, मनोविज्ञान विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

अमरनाथ त्रिपाठी
रीडर, मनोविज्ञान विभाग
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कुशीनगर

सुषमा पाण्डेय
लैक्चरर, मनोविज्ञान विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी
प्रोग्राम आफिसर
साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन
फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली

बनारसी दास तिवारी
प्रोफेसर
मनोविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

कमल किशोर मिश्र
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

अशोक कुमार श्रीवास्तव
रीडर, डी.ई.आर.पी.पी.
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

अंजुम सिबिया **(समन्वयक)**
रीडर, डी.ई.पी.एफ.ई.
एन.सी.ई.आर.टी.
नई दिल्ली

हिंदी रूपांतर

गिरीश्वर मिश्र
प्रोफेसर
मनोविज्ञान विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

बनारसी दास तिवारी
प्रोफेसर
मनोविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

बब्बन मिश्र
रीडर
मनोविज्ञान विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

अमरनाथ त्रिपाठी
रीडर
मनोविज्ञान विभाग
बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय
कुशीनगर

सुषमा पाण्डेय
लैक्चरर
मनोविज्ञान विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

राकेश पाण्डेय
लैक्चरर
मनोविज्ञान विभाग
दी.द.उ. गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

अध्यापकों के लिए निर्देश

इस पुस्तक को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है जिससे वह छात्रों को अधिक से अधिक रुचिकर लग सके। *क्रियाकलाप* के रूप में दिए अभ्यास का स्वरूप अनुभवपरक रखा गया है। इनकी बनावट इस प्रकार रखी गई है जिससे दिन-प्रतिदिन के व्यावहारिक अनुभवों के द्वारा विभिन्न संप्रत्ययों को जोड़ा जा सके। छात्रों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे इनको व्यक्तिगत स्तर या छोटे समूहों के स्तर पर करने का प्रयास करें। *आपने कितना सीखा* के रूप में जो प्रश्न दिए गए हैं, उनका उद्देश्य स्वयं परीक्षण है और उनको भी सीखने के अभ्यास के रूप में देखा जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि इन प्रश्नों का उपयोग मूल्यांकन के उद्देश्य से किया जाए।

बाक्स के लिए निर्देश

बाक्स में दी गई सामग्री पूरक एवं समृद्धिकारक पाठ्य सामग्री है जिससे पाठ की विषयवस्तु के साथ छात्रों की जानकारी विस्तृत हो सके तथा उनकी रुचि बनी रहे। कुछ बाक्सों में दी गई जानकारी उच्चस्तरीय संप्रत्ययों के बारे में, या क्षेत्र में उपलब्ध नई जानकारी या भारतीय दृष्टिकोण से संबंधित हो सकती है। यह विवरण पाठ्यक्रम की विषयवस्तु से बाहर का भी हो सकता है। छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिए। वे बाक्स की सामग्री को पढ़ें लेकिन इसको हर एक विद्यार्थी पर लागू न किया जाए। ***बाक्स में दी गई सामग्री मूल्यांकन के लिए नहीं है।***

छात्रों के लिए निर्देश

इस पुस्तक का उद्देश्य आधारभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों के स्वरूप एवं उसके निर्धारकों से संबंधित उपलब्ध ज्ञान देकर मनुष्यों की मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं व्यवहारों के बारे में आपकी समझ को बढ़ाना है। इसकी सामग्री को इस तरह प्रस्तुत किया गया है कि पढ़ते समय इसमें आपकी रुचि बनी रहे। प्रत्येक अध्याय का आरंभ पाठ में प्रस्तुत प्रमुख पक्षों का परिचय देकर किया गया है। एक विद्यार्थी के रूप में आपकी क्या उपलब्धि होगी इसको सीखने के परिणाम के रूप में किया गया है। विषयवस्तु की विस्तृत रूपरेखा *अध्याय की सरंचना* के रूप में दी गई है। इसके बाद एक संक्षिप्त परिचय देकर अध्याय में प्रस्तुत वस्तु सामग्री का वर्णन दिया गया है। अध्याय के अंतर्गत प्रत्येक अनुभाग के अंत में *आपने अब तक पढ़ा* में चर्चित प्रमुख विचारों का सार संक्षेप दिया गया है। *अध्याय सारांश, समीक्षात्मक प्रश्न* एवं *प्रमुख तकनीकी शब्द* को प्रत्येक अध्याय के अंत में दिया गया है। पारिभाषिक शब्दावली और प्रोजेक्ट कार्य एवं प्रयोगों के लिए निर्देश बिंदुओं को भी इस पुस्तक में शामिल किया गया है।

इन पाठों में कई तरह के *क्रियाकलाप* तथा *आपने कितना सीखा* दिए गए हैं। क्रियाकलापों को इस तरह तैयार किया गया है कि संप्रत्ययों को वास्तविक जीवन की स्थितियों से जोड़ा जा सके। आप इसको अकेले या छोटे समूहों में कर सकते हैं। आप अधिक से अधिक अभ्यासों को करने की कोशिश करें। इस अनुभाग में *आपने क्या सीखा* इसे स्वयं जानने के लिए है। इनके उपयोग से पता चलता है कि दिए गए भाग में से कितना सीखा है। अगर इनमें से कुछ प्रश्नों का उत्तर आप नहीं दे पाते हैं तो पुनः पाठ से पढ़कर उसको करने का प्रयास करें। इससे पाठ की विषयवस्तु को और अधिक प्रभावी ढंग से समझने में मदद मिलेगी। पूरक तथा समृद्धिकारक पाठ्य सामग्री को बाक्स में दिया गया है, यह समग्री क्षेत्र विशेष में हो रहे नए विकासों तथा महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों से जुड़ी हुई है। इन बाक्सों में दी गई जानकारी पुस्तक की विषय सामग्री से बाहर की हो सकती है। अगर इन सूचनाओं को समझने में कठिनाई होती है तो आप परेशान न हों।

ये सभी पक्ष जो इस पाठ्यपुस्तक में शामिल किए गए हैं, मनोविज्ञान के सीखने को अन्तःक्रियात्मक, ज्यादा सुखद एवं प्रभावी बनाएंगे। हमारा यह विश्वास है कि इस पुस्तक से आपको अपने व्यक्तिगत विकास के लिए ऐसे विकसित करने में मदद मिलेगी जिससे प्रतिदिन की समस्याओं एवं जीवन में भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार हुआ जा सके।

विषयसूची

भारत का संविधान

भाग 4अ

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51अ

मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह -

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधरित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरूद्ध हो,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्रणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

1 मनोविज्ञान क्या है?

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- मनोविज्ञान विषय के अध्ययन का परिचय
- विषय के विकास का सिंहावलोकन
- मनोवैज्ञानिक गोचरों के अध्ययन में प्रयुक्त विभिन्न दृष्टिकोण
- मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्र या विशिष्टताएं
- संबंधित विषयों से मनोविज्ञान का संबंध

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- एक वैज्ञानिक विषय के रूप में मनोविज्ञान के स्वरूप एवं विषयवस्तु को जान सकेंगे,
- एक व्यक्ति के रूप में आपके लिए मनोविज्ञान का क्या महत्त्व है, यह समझ सकेंगे,
- मनोविज्ञान के मूल और उसकी विकास यात्रा से परिचित हो सकेंगे,
- मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपने अध्ययन में प्रयुक्त विविध दृष्टिकोणों को जान सकेंगे, तथा
- समकालीन मनोविज्ञान के विभिन्न विषय-क्षेत्रों को जान सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

मानव स्वभाव के बारे में जानने के लिए हम सभी स्वाभाविक रूप से उत्सुक होते हैं। इसका अनुभव हम दैनिक जीवन में करते रहते हैं। हम अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में जानकारी पाना चाहते हैं। आप भी समय-समय पर अपने बारे में और आप जिनसे मिलते हैं, उनके बारे में जानने के लिए जरूर उत्सुक होते होंगे। हम प्रायः इस तरह के प्रश्न पूछते हैं : लोग एक-दूसरे को कैसे समझते हैं और उन पर भरोसा करते हैं? लोग दूसरों की तरफ क्यों आकर्षित होते हैं और उन्हें चाहते हैं? लोग क्रोध क्यों करते हैं और एक-दूसरे के शत्रु क्यों बन जाते हैं? लोग जैसा करते हैं। देखते महसूस करते हैं वैसा ही क्यों करते हैं? लोग एक-दूसरे से बुद्धि में भिन्न क्यों होतें हैं? इत्यादि। वस्तुतः हम सभी यह जानना चाहते हैं कि हम लोग जिस तरह देखते हैं, सीखते हैं, स्मरण करते हैं, सोचते हैं, अपनी बात दूसरों तक पहुंचाते हैं, भावनाओं का अनुभव करते हैं और सक्रिय होते हैं, उसी तरह से क्यों करते हैं। रोचक तथ्य यह है कि मनुष्य के रूप में दैनिक जीवन के कार्यकलापों को चलाने में हम सभी मनोविज्ञान का उपयोग करते रहते हैं। प्रायः हम सब लोगों की इच्छाओं, लालसाओं, स्मृतियों, मानसिकताओं तथा कुंठाओं के बारे में बातचीत करते रहते हैं; लोगों के क्रियाकलापों इत्यादि की व्याख्या करते हैं। हम सब लोग एक सहज या आम आदमी के मनोविज्ञान के अनुसार बातचीत करते हैं और कार्य करते हैं जो समाज के सदस्यों द्वारा स्वीकृत है। एक आधुनिक विषय के रूप में मनोविज्ञान इनमें से कई तथा इनसे जुड़े अन्य सरोकारों की छानबीन करता है और प्रश्नों का उत्तर देता है, परंतु व्यवस्थित और वैज्ञानिक ढंग से।

*मनोविज्ञान का अध्ययन **मानव मन एवं व्यवहार** को समझने की एक चित्ताकर्षक यात्रा है। इस यात्रा का क्षेत्र बहुत व्यापक है जो मनुष्य के अंदर क्या हो रहा है (जैसे – मस्तिष्क की क्रिया) से लेकर बाह्य व्यवहार अथवा वह सब कुछ जो किसी को भी दिखता है, तक फैला हुआ है। मानव व्यवहार अपनी विविधता, प्रबलता, दिशा, निरंतरता तथा परिवर्तन की दृष्टि से काफी जटिल है। मानव व्यवहार की जटिलता को ध्यान में रखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि किसी भी दूसरे विषय की तुलना में एक मनोवैज्ञानिक कहीं ज्यादा जटिल समस्याओं एवं प्रश्नों का अध्ययन करता है।*

आपने सुना होगा, पढ़ा होगा या पत्र-पत्रिकाओं अथवा दूरदर्शन (टीवी) आदि के द्वारा जरूर जाना होगा कि मनोवैज्ञानिक किन भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों को करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक परामर्श देकर लोगों की व्यक्तिगत समस्याओं (जैसे – वैवाहिक कलह, कैरियर का चयन, अवसाद आदि) का समाधान करने में सहायता करते हैं। कुछ लोग इस बात का पता लगाते हैं कि हम वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कैसे करते हैं तथा उन्हें कैसे याद रखते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक, व्यवहार के स्नायु-दैहिक आधारों के अध्ययन में रुचि लेते हैं। विभिन्न संगठनों के प्रबंधकों को संचार कौशल एवं नेतृत्व का प्रशिक्षण देने में भी कुछ मनोवैज्ञानिकों की रुचि होती है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक उन पूर्वाग्रहों के स्वरूप एवं कारणों का अध्ययन करते हैं, जो हम विभिन्न समूहों को लेकर विकसित कर लेते हैं। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक होते हैं, जो बच्चों के पालन-पोषण के तरीकों और उनके द्वारा व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार होता है, इसमें रुचि रखते हैं। तात्पर्य यह कि मनोवैज्ञानिक सामान्य रूप से मानव व्यवहार के भिन्न-भिन्न पक्षों में रुचि लेते हैं। यह अध्याय मनोविज्ञान के स्वरूप, उसकी विषय-वस्तु और इसके विभिन्न क्षेत्रों के साथ आपका परिचय कराएगा। यह आपको विषय के ऐतिहासिक विकास, मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त विभिन्न दृष्टिकोणों और अन्य विषयों के साथ मनोविज्ञान के संबंध से भी अवगत कराएगा।

मनोविज्ञान की परिभाषा

मनुष्य किस तरह कार्य करते हैं, इस विषय में मनोविज्ञान एक सामान्य समझ प्रदान करने का प्रयास करता है। आजकल मनोविज्ञान विषय क्रमशः ज्यादा-से-ज्यादा सामाजिक रूप से सार्थक एवं जीवनोपयोगी बनता जा रहा है। किसी भी विषय की औपचारिक परिभाषा देना एक जटिल कार्य होता है। मनोविज्ञान के बारे में यह कठिनाई दो कारणों से और बढ़ जाती है : मनोविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र का विविधतापूर्ण होना तथा उसका भिन्न-भिन्न दिशाओं में तीव्र गति से विकास, जिससे उसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। परंतु मनोवैज्ञानिक मुख्य रूप से व्यवहार का विभिन्न स्थितियों में वर्णन करने उसकी व्याख्या करने, उसके बारे में भविष्यवाणी करने, तथा विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार का नियंत्रण करने को ही अपना मुख्य कार्य मानते हैं। वे मानव स्वभाव की जटिलताओं को समझने, तथा मानव-व्यवहार में पाई जाने वाली नियमबद्धता एवं संरूपों को जानने का प्रयास करते हैं और उनके बारे में सिद्धांतों एवं नियमों को विकसित करते हैं। कहना न होगा कि उनकी खास रुचि मनुष्य के कार्यकलाप को अच्छे से अच्छा बनाने में होती है। इस दृष्टि से **मनोविज्ञान को मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं व्यवहारों के वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।** आइए, इस परिभाषा के महत्त्वपूर्ण पक्षों का विश्लेषण करते हुए इसकी कुछ विस्तारपूर्वक समीक्षा करें।

1. *मनोविज्ञान मानसिक प्रक्रियाओं (Mental processes) का अध्ययन करता है* – मानसिक प्रक्रिया उन क्रियाओं को कहते हैं जो अधिकांशतः मस्तिष्क में घटित होती हैं। फिर भी इन्हें पूरी तरह से दैहिक या शारीरिक क्रिया नहीं कहा जा सकता। ये मात्र मानसिक प्रस्तुतियों (Representation) से तथा मस्तिष्क में घटित होने वाली स्नायविक क्रियाओं से ही नहीं जुड़ी होतीं वरन् बाहरी दुनिया में मौजूद वस्तुओं, घटनाओं एवं क्रियाओं से भी महत्त्वपूर्ण ढंग से जुड़ी होती हैं। इस तरह मानसिक प्रक्रियाएं आत्मपरक या व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) भी होती हैं और वस्तुनिष्ठ (Objective) भी। उन्हें भौतिक तत्व नहीं माना जा सकता। सामान्य व्यवहार में **मानसिक प्रक्रिया शब्द का प्रयोग चिंतन, स्मरण, प्रत्यक्षीकरण तथा सीखना आदि को इंगित करने के लिए होता है जिनसे आंतरिक मानसिक क्रियाकलाप जुड़े होते हैं।** आप पाएंगे कि एक व्यक्ति में घटित होने वाली इन आंतरिक मानसिक क्रियाओं को दूसरे लोग नहीं देख सकते, न ही उन तक पहुंच सकते हैं। इन मानसिक क्रियाओं में संलग्न व्यक्ति को ही इन मानसिक क्रियाओं की जानकारी हो सकती है। उदाहरण के लिए, आप यह नहीं देख सकते कि दूसरा व्यक्ति किस तरह सोच रहा है। परंतु आप यह जान सकते हैं कि वह व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, किसी शब्द पहेली को किस तरह बूझ पाता है, जिसके समाधान में उस व्यक्ति की चिंतन प्रक्रिया शामिल रहती है। इसी तरह एक वस्तु को देखने वाले व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं या पहले अनुभव की गई घटना को वर्तमान में वर्णन करना स्मृति की प्रक्रिया होती है। अपने प्रेक्षण के आधार पर आप इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि वह व्यक्ति चिंतन कर रहा है या सीख रहा है या स्मरण कर रहा है। मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में व्यक्ति के वाचिक व्यवहार, पेशीय प्रतिक्रियाओं तथा अशाब्दिक संकेतों की सहायता से अनुमान लगाया जा सकता है।

2. *मनोवैज्ञानिकगण व्यक्तियों के अनुभवों के अध्ययन में रुचि लेते हैं* – मानसिक प्रक्रिया के बारे में अनुमान लगाने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक वैयक्तिक अनुभवों; जैसे – स्वप्न, निद्रा अथवा उन दशाओं में जिनमें चेतना में बदलाव आ जाता है (जैसे – जब कोई साइकेडलिक औषधि का उपयोग करता है अथवा जब कोई ध्यान लगाता है) या दैनिक जीवन में होने वाले अनुभवों का भी अध्ययन करते हैं। अनुभव की जड़ें उस व्यक्ति की चेतना में स्थित होती हैं जो अनुभव कर रहा है। अनुभव किसी भी व्यक्ति के जीवन के क्रियाकलापों तथा उसकी आत्मपरकता (Subjectivity) का केंद्र होता है। इधर के कुछ वर्षों में मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य के अनुभवों के जगत को समझने में क्रमशः अधिकाधिक रुचि लेना शुरू कर दिया है।

3. *मनोविज्ञान व्यवहारों से संबंधित है* – मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययनों में व्यवहार के सभी प्रकारों पर ध्यान देते हैं। वे छोटे से छोटे प्रतिवर्तों (Reflexes) (जैसे पलक झपकाना, घुटनों को झटकना आदि), छोटी-छोटी प्रतिक्रियाओं व अनुक्रिया (Responses) (जैसे – बातचीत, खेलकूद, अन्य व्यक्तियों के साथ अंतःक्रिया), भावनाओं और आंतरिक स्थितियों के बारे में व्यक्ति के वक्तव्य से लेकर जटिल व्यवहार संरूपों (जैसे – निर्णय करना, हवाई जहाज के पायलट का कार्य, मित्रों के साथ बातचीत, दूसरों के सामने अपने को प्रस्तुत करना, समूह में अंतःक्रिया करना) सब पर ध्यान देते हैं। व्यवहार की अवधि अल्पकालिक या दीर्घकालिक हो

सकती है। व्यवहार सरल अथवा जटिल हो सकते हैं, वाचिक अथवा पेशीय हो सकते हैं, प्रकट अथवा गुप्त हो सकते हैं। व्यवहार आंतरिक या बाह्य उद्दीपन द्वारा आरंभ हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए आप अपने मन में सोचते हैं और किसी स्थान पर जाने का निश्चय करते हैं। इस कार्य में आंतरिक उद्दीपन (Stimulation) है पर आपके माता-पिता भी कहीं जाने के लिए आपसे कह सकते हैं और आपको उस स्थान पर जाना होगा। व्यवहार का निरीक्षण आखों या यंत्रों की सहायता से किया जा सकता है। **उद्दीपक** (Stimulus) और **अनुक्रिया** (Response) शब्दों का उपयोग मनोवैज्ञानिक सामान्य अथवा सरल व्यवहारों के वर्णन के लिए करते हैं। एक अनुक्रिया एक जीवित प्राणी पर निरीक्षण की जा सकने वाली वाचिक या अवाचिक क्रिया होती है। उद्दीपक को प्रायः भौतिक ऊर्जा में होने वाले किसी परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार, प्रकाश की एक झलक को उद्दीपक एवं आँख की पलक झपकने को अनुक्रिया कहा जा सकता है।

व्यवहार को समझने के प्रयास में मनोवैज्ञानिक कई स्तरों पर व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। व्यक्ति, समूह, भीड़, संगठन तथा समुदाय – सभी अध्ययन के केंद्र हो सकते हैं। व्यक्ति स्तर, अंतर्वैयक्तिक स्तर, समूह स्तर तथा अंतर्सामूहिक स्तर, यानी सभी स्तरों पर व्यवहार का अध्ययन किया जाता है (मनोविज्ञान का क्षेत्र-विषयक अनुभाग देखें)। आप पाएंगे कि मनोविज्ञान के मानव जीवन में उपयोग के अधिकांश प्रयास व्यक्तियों के स्तर तक सीमित न रह कर समूहों और संगठनों तक फैले होते हैं।

यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मनुष्य के व्यवहार में व्यक्तियों, समूहों एवं संस्कृतियों के बीच अंतर पाया जाता है। जिस वातावरण में हम जीवनयापन करते हैं वह व्यवहार के लिए एक निश्चित संदर्भ प्रदान करता है और उसे सार्थक बनाता है। भिन्न-भिन्न संदर्भ विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को सहज बनाते हैं, उनको प्रोत्साहित करते हैं तथा उन्हें बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए, जब कोई व्यक्ति किसी भीड़ अथवा बड़े समूह का सदस्य बनता है तो परिवार एवं विद्यालय की परिस्थितियों की तुलना में उसका व्यवहार भिन्न होता है। आपने अपने दैनिक जीवन में भी देखा होगा कि ऐसी स्थितियां आती हैं जहां संदर्भों के बदल जाने से एक ही प्रकार के व्यवहार के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। किसी व्यवहार से गलतफहमी पैदा हो सकती है यदि वह अपने सही संदर्भ से बाहर घटित हो। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यवहार के संदर्भ को समझा जाए।

कुछ मनोवैज्ञानिक जानवरों के व्यवहार का अध्ययन करते हैं, और आप इस पुस्तक के विभिन्न भागों में चूहों, बिल्लियों, कुत्तों एवं वनमानुषों से संबंधित प्रयोगों का उल्लेख पाएंगे। फिर भी, इन अध्ययनों से प्राप्त परिणामों का उपयोग अध्ययन किए जाने वाले मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों से संबंधित सामान्य सिद्धांतों के निर्माण में किया जाता है। ये सिद्धांत सामान्य रूप में बनाए जाते हैं और मात्र जानवरों तक ही सीमित नहीं होते हैं। ये सिद्धांत क्रमविकास (Evolution) की इस मान्यता पर आधारित हैं कि जानवरों का व्यवहार मनुष्यों में पाए जाने वाले जटिलतम व्यवहारों का साधारण रूप होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक जानवरों के व्यवहार का अध्ययन करने में ही विशेषज्ञता अर्जित करते हैं। जानवरों का अध्ययन करते समय चिंतन, अभिप्रेरण, संवेग आदि को जानवरों पर भी आरोपित करने की लालसा बनी रहती है। इसके कारण गलत निष्कर्ष भी निकल सकते हैं। मनोवैज्ञानिक अनेक प्रयोगों में जानवरों का उपयोग करते हैं क्योंकि नैतिक कठिनाइयों के कारण वे प्रयोग मनुष्यों पर नहीं किए जा सकते हैं।

4. *मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययनों में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं* – मनोवैज्ञानिक मानसिक प्रक्रमों, अनुभवों, तथा व्यवहारों का अध्ययन करने में वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं। आपको 'मनोविज्ञान' शब्द सुनकर आश्चर्य हो सकता है कि इस विषय का विज्ञान होना कैसे संभव है। विज्ञान को हम प्रायः उसी तरह देखते हैं जैसा वह हमें भौतिक अथवा रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में दिखाई देता है और हम इस आधार पर कुछ विषयों को विज्ञान की श्रेणी में रखते हैं और दूसरों को विज्ञानेतर श्रेणी में रखते हैं। परंतु वास्तव में वैज्ञानिकता किसी घटना या दृग्विषय के अध्ययन करने की विधि में निहित होती है। वैज्ञानिकता व्यवस्थित प्रेक्षण, विश्लेषण एवं व्याख्या पर निर्भर करती है। वैज्ञानिक अध्ययन विधि का उपयोग करते हुए हम ऐसे डेटा/आधार सामग्री प्राप्त करते हैं जो सार्वजनिक होती है तथा उस विधि का उपयोग कर किसी के द्वारा उनकी सच्चाई की जांच की जा सकती है। मनोवैज्ञानिक भी वैज्ञानिकता की कसौटियों का उपयोग कर अपने अध्ययनों के आधार पर मानव व्यवहार एवं अनुभवों की जटिलताओं को समझना चाहते हैं तथा उससे संबंधित सिद्धांतों का विकास करने का प्रयास करते हैं। मानव व्यवहार जटिल

होता है और उसको समझना अनेक प्रकार की चुनौतियों को उपस्थित करता है। इस पुस्तक के अध्याय 2 में आप उन विधियों के बारे में पढ़ेंगे जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययनों में करते हैं।

संचार माध्यमों में मनोविज्ञान के बारे में अक्सर गलत बातें प्रस्तुत की जाती हैं। वस्तुतः अखबारों, फिल्मों, उपन्यासों, टी.वी. धारावाहिकों और लोकप्रिय पत्रिकाओं के द्वारा कई भ्रांतियाँ और गलत धारणाएं प्रचारित हुई हैं। लोग मन को पढ़ने या समझने के बारे में प्रश्न पूछते हैं। कुछ आम भ्रांतियों से बचने और विषय की ठीक पहचान स्थापित करने के लिए आपको मनोविज्ञान को दूसरे व्यवसायों और देशों से भिन्नता समझ लेनी चाहिए। जैसे कई लोग मनोविज्ञान को मनोरोग-विज्ञान (Psychiatry) मान बैठते हैं जो चिकित्साविज्ञान की वह शाखा है जो मानसिक रोगों के उपचार से जुड़ी है। एक मनोरोगचिकित्सक डाक्टर होता है जिसे मनोचिकित्सा में विशेषता करने के पहले चिकित्सा विज्ञान में प्रशिक्षण मिला होता है। परंतु वे थिरैपी चिकित्सा और परामर्श की प्रक्रिया में प्रशिक्षित नहीं होता जो नैदानिक और परामर्श मनोवैज्ञानिकों को प्राप्त होती है। ऐसे ही भविष्य बताने वाले लोग भी हैं जो हस्तरेखा, ललाट रेखा देखकर या तोते से भाग्य पत्र निकलवाते हैं या हस्तलिपि का विश्लेषण करते हैं। वे मनोवैज्ञानिक नहीं हैं।

क्रियाकलाप 1.1

मनोविज्ञान के बारे में आप क्या जानते हैं?

अपने ज्ञान का परीक्षण नीचे दिए गए पांच चुने हुए वक्तव्यों के विषय में कीजिए। जिन वक्तव्यों को आप सही समझते हैं उनके समक्ष 'सही' तथा जिन्हें आप गलत मानते हैं उनके सामने 'गलत' का निशान लगाएं।

1. *मनोवैज्ञानिक दूसरों के मन की बातों को जान सकते हैं।*
2. *स्वप्न मस्तिष्क में विचारों एवं स्मृतियों के संगठन में बाधक होते हैं।*
3. *तीव्र बुद्धि वाले (जीनियस) व्यक्ति उन्माद की सीमा तक पहुंच जाते हैं।*
4. *दुःस्वप्नों के दौरान हम नींद में चलने लगते हैं।*
5. *व्यक्ति के निर्णयों की तुलना में समूह के निर्णय अक्सर कम जोखिम वाले होते हैं।*

उत्तर – (1) गलत, (2) गलत, (3) गलत, (4) गलत, (5) गलत।

क्रियाकलाप 1.2

मनोवैज्ञानिकों के कार्य के बारे में आम जनता की राय जानना।

अपने पड़ोस में विद्यालयों में पढ़े-लिखे और विद्यालय में न पढ़े-लिखे लोगों से यह बात कीजिए कि वे 'मनोविज्ञान' से क्या समझते हैं तथा उनके विचार से मनोवैज्ञानिक क्या कार्य करते हैं।

उत्तरों को लेकर अपने अध्यापक के साथ चर्चा कीजिए।

मनोविज्ञान एक विज्ञान के रूप में

मनोविज्ञान एक विज्ञान है क्योंकि ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह वैज्ञानिक विधि का उपयोग करता है। यहां पर यह स्मरणीय है कि 'विज्ञान' इस बात से नहीं परिभाषित होता है कि उसकी विषयवस्तु क्या है अथवा किस बात का अध्ययन किया जा रहा है। कोई विषय विज्ञान इसलिए है कि वह अपनी विषयवस्तु का अध्ययन एक विशिष्ट विधि की सहायता से करता है। **विज्ञान ज्ञान प्राप्त करने एवं उसको संगठित करने की प्रक्रिया है।** मनोवैज्ञानिक लोग अपनी समस्याओं के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधि का उपयोग करते हैं, इसलिए यह विषय एक विज्ञान है। यहाँ हमारे सामने एक प्रश्न उपस्थित होता है : मनोविज्ञान किस प्रकार का विज्ञान है? क्या मनोविज्ञान रसायन विज्ञान, भौतिकी, प्राणि विज्ञान की तरह प्राकृतिक विज्ञान है, अथवा समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र की तरह का सामाजिक विज्ञान है? जैसा कि आप इसी अध्याय में आगे पढ़ेंगे, मनोविज्ञान का उद्‌भव प्राकृतिक विज्ञानों एवं दर्शन की एक शाखा ज्ञानमीमांसा (Epistemology) अथवा ज्ञान के सिद्धांत के संयुक्त प्रभाव से हुआ। वास्तव में मनोविज्ञान एक संकर या मिश्रित विज्ञान है जो भौतिक, दैहिक एवं मानसिक जगत के अंतर्संबंधों से जुड़ा है। प्रारंभ में भौतिकविज्ञान, शरीरविज्ञान एवं दर्शनशास्त्र को संश्लेषित करने का प्रयास किया गया था। बाद में इस विषय के विकास के क्रम में यह भी अनुभव किया जाने लगा कि मनोविज्ञान को व्यवहार के अंतर्वैयक्तिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों से भी संबंधित होना चाहिए। यही कारण है कि मनोविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान दोनों ही श्रेणियों में रखा जाता है।

मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में

लगभग एक शताब्दी से मनोवैज्ञानिक अपने विषय को विज्ञान सिद्ध करने का प्रयास करते आ रहे हैं। उनका

यह प्रयास इस मान्यता पर आधारित था कि मनुष्य प्राकृतिक जगत का एक अंग है। विज्ञान का दर्जा मिलना समाज में इस विषय को ठोस धरातल पर स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण था। मनोविज्ञान ने भौतिक विज्ञान का प्रबल रूप से अनुकरण करने का प्रयास किया। इसके पीछे यह विश्वास था कि भौतिक विज्ञान सभी विज्ञानों का मूल है और समस्त विज्ञान अंततोगत्वा भौतिक विज्ञान में ही समाविष्ट हो जाते हैं।

मनोविज्ञान को *जीवन विज्ञान* (Life science) भी कहा जाता है। ऐतिहासिक रूप से, वैज्ञानिक मनोविज्ञान का शरीर विज्ञान के साथ निरंतर संबंध बना रहा है। विगत वर्षों में तंत्रिकाविज्ञान में हुई प्रगति के फलस्वरूप मन एवं मस्तिष्क के मध्य संबंधों की जानकारी पाई जाती है। भौतिकविदों तथा कृत्रिम बुद्धि के क्षेत्र के विशेषज्ञों ने चेतना का अध्ययन प्रारंभ किया है। किंतु मनोवैज्ञानिक ऐसा बहुत कुछ कर रहे हैं जो विज्ञान के जैविक मॉडल की परिधि में सम्मिलित नहीं हो पाता है।

सामाजिक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान

मनुष्य केवल प्राकृतिक जगत में ही नहीं रहता बल्कि उस दुनिया में भी रहता है जिसका निर्माण स्वयं मनुष्य ने किया है। विशेष रूप से हमारा सांस्कृतिक जगत मानव-निर्मित है और इससे हम यह आशा नहीं कर सकते कि वह भौतिक विज्ञान के नियमों का पालन करेगा। हमें एक अलग तरह का विज्ञान चाहिए – एक ऐसा मानव विज्ञान जिससे मनुष्यों द्वारा सर्जित जीवन के पक्षों की व्याख्या की जा सके। मनुष्य प्रकृति का एक अंग तो है परंतु केवल प्रकृति का ही हिस्सा नहीं है। सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ तथा व्यक्तियों की भागीदारी मनोविज्ञान को सामाजिक विज्ञान बना देती है। ये विशेषताएँ मानव व्यवहार को एक शुद्ध प्राकृतिक विज्ञान की सीमा से परे ले जाती हैं। मनोविज्ञान प्राकृतिक विज्ञानों की तुलना में मानविकी के अधिक निकट है। इसका लक्ष्य मानव व्यवहार तथा अनुभव के तात्पर्य या आशय को समझना है।

समाज-वैज्ञानिक के रूप में मनोवैज्ञानिक लोग वैज्ञानिक विधि के कठोर मानदंडों के पालन का प्रयास करते हैं परंतु उनमें सर्वस्वीकृत आधारभूत पूर्वधारणाओं (Assumptions) या स्थापनाओं का अभाव है। समाजवैज्ञानिक विषयों में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोणों में काफी भिन्नता है। यद्यपि मनोवैज्ञानिक व्यक्ति विशेष एवं उसके व्यवहारों का निरीक्षण करते हैं परंतु उनकी रुचि सामान्य संरूपों (Patterns) एवं नियमितताओं (Regularities) की खोज में अधिक होती है। वे प्रतिदर्श (Sample) का उपयोग समष्टि (Population) को समझने के लिए करते हैं। अपने वैज्ञानिक प्रयास में वे मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों को संचालित करने वाले सामान्य नियमों एवं सिद्धांतों की इंद्रियानुभविक (Empirical) आधार पर स्थापित करने का प्रयास करते हैं। तकनीकी शब्दावली में इस तरह के प्रयास को **नियमान्वेषी उपागम** (Nomothetie approach) कहा जाता है। इससे अलग अनेक मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्ति विशेष अथवा घटना विशेष को समझने में रुचि रखते हैं। जब अध्ययन किसी व्यक्ति अथवा घटना विशेष पर केंद्रित होता है तो इसे हम **व्यक्त्यंकन उपागम** (Idiographic approach) कहते हैं। मनोवैज्ञानिक ज्ञान के विकास में ये दोनों उपागम दृष्टिकोण एक-दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करते हैं।

मानव व्यवहार की प्रक्रियाओं के बारे में सामान्य नियम विकसित करने के लिए प्रयास कई तरह से किए गए हैं। वे अपने अध्ययन को **उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया** (Stimulus-Organism-Response, S-O-R.) के व्यापक परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास करते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में प्राणी को एक **मध्यवर्ती परिवर्त्य** (Intervening variable) के रूप में ग्रहण किया जाता है जो एक ओर वातावरण से मिलने वाले उद्दीपकों तथा दूसरी ओर प्राणी द्वारा की जाने वाली अनुक्रियाओं के बीच सक्रिय रहता है। इस सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को एक सामान्य दिशा-निर्देशक मान कर मनोवैज्ञानिक लोग मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों और व्यवहारों की जटिलता को समझने का प्रयास करते हैं।

मनोविज्ञान की विषयवस्तु

आपकी रुचि इस बात को जानने में हो सकती है कि मनोवैज्ञानिक किन बातों का अध्ययन करते हैं। अब तक आप यह अनुमान लगा चुके होंगे कि मनोवैज्ञानिक लोग मानसिक एवं व्यवहारपरक प्रक्रियाओं से संबंधित व्यापक क्षेत्र में विद्यमान समस्याओं का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान हमें केवल **आधारभूत समझ** (Understanding) ही नहीं देता बल्कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान में भी हमारी सहायता करता है। इस प्रकार के प्रयास को **अनुप्रयोग** (Application) कहा जाता है। यहाँ पर हम इन क्षेत्रों की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे आप यह जान सकें कि इस पुस्तक में आप क्या पढ़ेंगे तथा उसे समझने

के लिए आप अपने आपको ठीक ढंग से कैसे तैयार कर सकेंगे।

मनुष्य जैविक प्राणी ही नहीं बल्कि एक सामाजिक-सांस्कृतिक प्राणी भी है। *मनोवैज्ञानिक यह अध्ययन करते हैं कि जैविक व्यवस्था किस तरह क्रियाशील होती है तथा सामाजिक-सांस्कृतिक आधार मानव व्यवहार को किस प्रकार गढ़ते हैं। समकालीन मनोवैज्ञानिक इन प्रक्रमों का अध्ययन* संपूर्ण *जीवन विस्तार* (Life span) के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। आधारभूत मानसिक प्रक्रियाएं एक गतिशील संज्ञानात्मक व्यवस्था का अंश होती हैं। अपने वातावरण से प्राप्त होने वाली सूचनाओं पर ध्यान देने एवं उनके प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए प्राणी *अवधान* (Attention) एवं *प्रत्यक्षीकरण* (Perception) जैसी प्रक्रियाओं का उपयोग करता है। ये अध्ययन के महत्त्वपूर्ण विषय हैं। इन सूचनाओं के प्रवाह को भविष्य में उपयोग के लिए *स्मृति* (Memory) प्रणाली या व्यवस्था में सुरक्षित रखना भी आवश्यक होता है। यह स्मृति प्रणाली तभी उपयोगी होगी जब आवश्यकता पड़ने पर आप इसे पुनः वर्तमान में लाकर फिर से उसका स्मरण या प्रत्याह्वान (Recall) कर सकें। ये सभी प्रक्रियाएं परस्पर संबंधित हैं और संयुक्त रूप से प्राणी को अपने वातावरण के साथ अनुकूलित करने और विकसित होने में मदद करती हैं।

कभी-कभी आपको उन जटिल क्रियाकलापों को देखकर आश्चर्य होता होगा जिनका निष्पादन हवाई जहाज के पायलट, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, लेखक, एवं इंजीनियर करते हैं। यह सचमुच कौतूहल पैदा करने वाली बात है कि उपलब्धि के शिखर पर लोग कैसे पहुंच जाते हैं? अनुकूलन (Adaptation) की व्यापक संभावना और कौशलों, भाषाओं एवं संप्रत्ययों (Concepts) को अर्जित करने की क्षमता *सीखने* का परिणाम है। यह तथ्य सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन को अनिवार्य बना देता है। वातावरण की समझ के लिए अनेक मानसिक प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है जिन्हें समग्र रूप से **संज्ञान** (Cognition) कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक इस बात का अध्ययन करते हैं कि चिंतन, तर्क करने, निर्णय लेने, संचार करने अर्थात् अपनी बात को दूसरों तक पहुंचाने तथा समस्या का समाधान करने में सूचनाओं का उपयोग किस तरह किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक लोग व्यवहार के कारणों का भी अध्ययन करते हैं। व्यवहार *क्यों* किया जाता है यह जानना उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना यह जानना कि व्यवहार *कैसे* किया जाता है। ऐसे प्रश्नों का समावेश **अभिप्रेरणा** (Motivation) के अंतर्गत होता है। भावनाएं (Feelings) एवं *संवेग* (Emotions) हमारे जीवन को रंग प्रदान करते हैं। दूसरों के साथ अंतःक्रिया करते समय आपको प्यार, घृणा, आश्चर्य, लज्जा, अपराधबोध आदि का अनुभव अवश्य हुआ होगा। हम दूसरों के साथ सहयोग करते हैं एवं प्रतिस्पर्धा भी रखते हैं। हम कुंठित एवं चिंतित भी होते हैं। मनोवैज्ञानिकों के लिए इन *भावात्मक (Affective) अवस्थाओं के स्वरूप, कारण* एवं परिणाम महत्त्वपूर्ण सरोकार हैं।

हम यह भी पाते हैं कि लोग एक दूसरे से मात्र स्पष्टतः दिखाई देने वाली भौतिक विशेषताओं, जैसे लंबाई, भार, त्वचा

क्रियाकलाप 1.3

दैनिक जीवन में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों की पहचान

हमने अभी कुछ मूलभूत मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों का वर्णन किया है। आइए, देखते हैं कि आपने मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों को कितना समझा है। इसके लिए मानव व्यवहार की कुछ स्थितियों का वर्णन नीचे किया गया है। आपका कार्य उनमें संलग्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों की पहचान करना है। आपको कल्पना करनी है, और यह अनुभव करना है कि आप अपने वातावरण की उन स्थितियों में जीवनयापन कर रहे हैं। नीचे दी गई स्थितियों में प्रत्येक में आप उन तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों को बताइए जो उनमें निहित हो सकते हैं।

1. *आप एक प्रतियोगिता के लिए निबंध लिख रहे हैं।*
2. *आप एक मनोरंजक विषय पर अपने एक मित्र के साथ बातचीत कर रहे हैं।*
3. *आप फुटबाल खेल रहे हैं।*
4. *आप टी.वी. पर एक लंबे धारावाहिक की एक कड़ी देख रहे हैं और खाली समय का आनंद ले रहे हैं।*
5. *आपके बहुत निकट के मित्र ने आपको सदमा पहुँचाया है।*
6. *आप परीक्षा में बैठ रहे हैं और उत्तर लिख रहे हैं।*
7. *आप किसी महत्त्वपूर्ण अतिथि के आने का इंतजार कर रहे हैं।*
8. *आप अपने विद्यालय में बोलने के लिए एक भाषण तैयार कर रहे हैं।*
9. *आप शतरंज खेल रहे हैं।*
10. *आप गणित की एक जटिल समस्या का उत्तर ढूंढ़ने की कोशिश कर रहे हैं।*

अपने उत्तरों के बारे में अपने मित्रों एवं अध्यापक के साथ विचार-विमर्श कीजिए।

का रंग आदि में ही भिन्न नहीं होते बल्कि मनोवैज्ञानिक विशेषताओं; जैसे – बुद्धि, व्यक्तित्व, स्वभाव, (Temperament), रुचियों एवं मूल्यों आदि में भी एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इन भिन्नताओं को समझना अपनेआप में तो महत्त्वपूर्ण होता ही है परंतु निर्देशन, परामर्श एवं विभिन्न नौकरियों के लिए व्यक्तियों के चयन आदि में भी इनकी विशेष भूमिका होती है। अनुसंधानकर्ताओं ने इन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिया है तथा इनके अध्ययन के लिए अनेक सिद्धांतों एवं मापकों का विकास किया है। इसी तरह मनोवैज्ञानिकों ने असामान्य व्यवहार तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्रों; जैसे – विद्यालय, व्यापारिक संगठन तथा अस्पताल आदि में मनोविज्ञान के उपयोग पर भी ध्यान दिया है। आगे के अनुभाग में जहाँ मनोविज्ञान के विशिष्ट क्षेत्रों की चर्चा की गई है आप मनोविज्ञान के प्रमुख उपयोगी क्षेत्रों से परिचित हो सकेंगे।

एक आधुनिक विषय के रूप में मनोविज्ञान का विकास

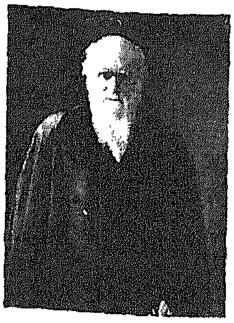
दार्शनिक आधार

मानसिक जगत को समझने के प्रयास का बड़ा लंबा इतिहास है। शायद इसका आरंभ धरती पर मनुष्यों के अवतरण के साथ ही हुआ होगा। ज्ञात साक्ष्यों से यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि इस तरह की जिज्ञासा भारतीय चिंतन का प्रमुख विषय रही है। यह मनन और अनुभव के आधार पर आत्म या स्व (Self) के अध्ययन से जुड़ा था। भारतीय चिंतक जीवन और ब्रह्मांड के प्रति एक समग्र दृष्टि में रुचि रखते थे। चेतना का स्वरूप, ब्रह्मांड में चेतना का विस्तार, चेतना के संचालन की प्रक्रिया तथा चेतना के परिणामों के बारे में उनकी रुचि थी। वे समस्याओं को समझने में प्रेक्षण और अनुभव **(प्रत्यक्ष)**, तर्क **(अनुमान)**, प्रज्ञा एवं **शब्द** प्रमाण का उपयोग करते थे। न्याय, मीमांसा, वेदांत, योग, सांख्य, बौद्ध, जैन, चार्वाक तथा सूफी मतों में स्वास्थ्य, श्रेष्ठ जीवन, मूल्यों और प्रेरणाओं जैसे मनोवैज्ञानिक विषयों पर विस्तृत विचार-विमर्श प्राप्त होता है। जैसा कि गार्डनर मर्फी ने कहा है कि साक्षर जगत के मनोविज्ञान में भारतीय मनोविज्ञान प्रथम असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण कदम था। वह इसे प्रथम बड़ी मनोवैज्ञानिक चिंतन व्यवस्था स्वीकार करते हैं। आत्मन्, संज्ञानात्मक दशाएं, भावात्मक दशाएं, स्वप्न, चेतना, मन तथा शरीर का संबंध, मानसिक प्रक्रियाएं (संज्ञान, प्रत्यक्षीकरण, भ्रम, अवधान, तर्क), मानसिक स्वास्थ्य तथा उपयोगी ज्ञान, इन सभी विषयों पर चर्चा हुई है। किंतु इन सब पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया और कुछ दिनों पहले तक आधुनिक मनोविज्ञान के साथ इसका संबंध समझने का प्रयास नहीं किया गया। विगत वर्षों में कुछ विद्वानों ने इस प्रकार के कार्यों में रुचि लेना आरंभ किया है।

एक विषय के रूप में आधुनिक मनोविज्ञान का पाश्चात्य दर्शन में आरंभ हुआ और बाद में इससे स्वतंत्र हो गया। प्राचीन यूनान देश (ग्रीस) में विकसित दार्शनिक दृष्टिकोणों में दो प्रमुख विचारधाराएं उभरीं : इंद्रियानुभविक (Empirical) तथा तर्कवादी (Rational)। अरस्तू के नेतृत्व में इंद्रियानुभविक दृष्टि ने *अवयववाद* (Elementism) की विचारधारा को आगे बढ़ाया। सरल शब्दों में कहें तो इसका तात्पर्य यह है कि किसी जटिल चीज को उसके अवयवों में बांटकर समझना। मनोविज्ञान विषय में इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए मानस (Mind) को संवेदना (Sensation) तथा साहचर्य (Association) के अवयवों से निर्मित देखा जाने लगा। साहचर्य संवेदना पर आधारित माने गए। प्लेटो ने इंद्रियानुभविक दृष्टि के विपरीत तर्कवादी दृष्टि को ज्ञान के प्रति उपयुक्त दृष्टि माना। उनके अनुसार ज्ञान पाने के लिए तर्क उतना ही वैध है जितना कि ज्ञानेंद्रियों पर आधारित प्रत्यक्षीकरण। संग्राहक (Sensory receptor) ज्ञान के लिए अच्छे स्रोत नहीं माने गए। जागरण काल के दौरान फ्रांस में **रेने देकार्त** एक प्रमुख विचारक के रूप में उभरा जिसने आधुनिक विज्ञान का मार्ग प्रशस्त किया। उसने कहा : "मैं सोचता हूँ, इसलिए हूँ"। उसने यह विचार दिया कि मानस तथा शरीर भिन्न-भिन्न हैं पर वे एक दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं। उसने यह भी कहा कि पशुओं में आत्मा (Soul) नहीं होती और इसीलिए वे यंत्रों की तरह काम करते हैं।

जैविक आधार

आधुनिक औषधि विज्ञान की आधारभूमि 1800 से 1870 के बीच तैयार हुई थी। **जोहांस मूलर** एवं **क्लाउडे बर्नार्ड** के प्रायोगिक शरीरविज्ञान के कार्यों से दैहिक मनोविज्ञान का उदय हुआ। मूलर का विचार था कि मनुष्य अपनी दुनिया के बारे में उद्दीपकों की सहायता से अप्रत्यक्ष ढंग से जानता है। उद्दीपकों से हमारे संग्राहकों और नाड़ियों में तंत्रिकावेग उत्पन्न होते हैं। इसी समय **मार्शल हाल**, **पियरे फ्लोरेन्स** एवं **पाल ब्रोका** ने मस्तिष्क के विभिन्न कार्यों का अध्ययन किया एवं उनकी स्थानगत पहचान की। इन लोगों ने प्रायोगिक मनोविज्ञान के जन्म के लिए आवश्यक आधारभूमि का निर्माण किया।



चार्ल्स डार्विन

डार्विन का योगदान : चार्ल्स डार्विन एक ब्रिटिश वैज्ञानिक थे। उनके कार्यों से जीव विज्ञान एवं जैविकी के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। 1859 में प्रकाशित उनकी पुस्तक **दि ओरीजिन ऑफ स्पिसीज़** बड़ी प्रभावशाली सिद्ध हुई। उन्होंने विकास अथवा परिवर्तन की प्रक्रियाओं के विषय में तथा वातावरण के साथ अनुकूलन की चर्चा की। विकासवाद का मानना है कि मनुष्य प्राणियों के एक व्यापक विस्तार या सातत्य (Continuum) के भीतर एक प्रजाति है तथा अन्य जीवों की ही भांति उस पर भी चयनात्मक दबाव पड़ते हैं। चूँकि हमारी विशेषताएँ अन्य जीवधारियों से मिलती-जुलती हैं, इसलिए हम उन जीवधारियों के विषय में जानकारी प्राप्त करके मानव व्यवहार के विषय में भी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यह भी एक कारण है कि मनोवैज्ञानिक चूहों एवं वनमानुषों के व्यवहारों के अध्ययन में क्यों रुचि लेते रहे हैं।

मनोविज्ञान का उदय

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में अस्तित्व में आया। अनेक मनोवैज्ञानिक आधुनिक मनोविज्ञान के जन्म को 1879 से जोड़ते हैं जब जर्मनी के लिपजिग विश्वविद्यालय में **विलहेम वुंट** ने प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित की। विलहेम वुंट मानस के अध्ययन में प्रयुक्त दार्शनिक दृष्टिकोण से असंतुष्ट थे। उनका मानना था कि मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन वस्तुनिष्ठ तकनीकों से किया जाना चाहिए। उनकी प्रयोगशाला में विश्व के सभी भागों से छात्र आकर्षित होने लगे।

तीन अन्य जर्मन शरीर वैज्ञानिकों ने प्रायोगिक मनोविज्ञान के लिए आधारभूमि तैयार की। ये वैज्ञानिक थे– **अर्नेस्ट वेबर, गुस्ताव फेकनर** एवं **हर्मन वॉन हेल्महोल्टज़**। वेबर स्पर्श एवं गति संबंधी संवेदनाओं के अध्ययन में प्रायोगिक विधियों का उपयोग कर रहे थे। हेल्महोल्ट्ज़ ने तंत्रिका वेग के संचालन की दर एवं रंग दृष्टि एवं श्रवण के विषय में अनुसंधान कर प्रसिद्धि पाई। फेकनर ने इंद्रियानुभविक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन में प्रयोगात्मक विधि का उपयोग प्रदर्शित किया।

विचार-संप्रदायों का युग

मनोविज्ञान में आरंभिक विकास वैचारिक व्यवस्थाओं के रूप में हुआ जिसमें विषयवस्तु, विधि तथा सरोकारों को कुछ आधारभूत स्थापनाओं के अंतर्गत परिभाषित किया गया। इन प्रयासों को विचार-संप्रदाय (School) कहा गया। कुछ महत्त्वपूर्ण संप्रदायों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

संरचनावाद : वुंट एवं उनके सहयोगी मानव चेतना के विश्लेषण एवं उसके मूल तत्वों को पहचानने में लगे थे। इन लोगों ने मानसिक संरचनाओं को समझने पर बल दिया। वुंट ने अपने अध्ययनों में अंतर्दर्शन विधि (Introspection method) का उपयोग किया था। अंतर्दर्शन में एक व्यक्ति (मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में जिसे प्रयोज्य या प्रतिभागी कहा जाता है) द्वारा स्वयं इस बात का प्रेक्षण कि उसके मन के अंदर (विचार एवं भावनाएं) क्या हो रहा है तथा बाद में इन प्रेक्षणों का विश्लेषण सम्मिलित है। इस विचारधारा को आगे बढ़ाते हुए **एडवर्ड टिचनर** ने कहा कि *मनोविज्ञान को चेतना के अध्ययन पर बल देना चाहिए*। उन्होंने मानसिक विषयवस्तु में *क्या* निहित है इस प्रश्न पर बल दिया। उनका विचार था कि मानव चेतना में **संवेदनाएँ, प्रतिमाएँ** एवं **भावात्मक अवस्थाएँ** होती हैं। इस संप्रदाय के अनुसार मनुष्य के सभी मानसिक अनुभवों को छोटे-छोटे तत्वों की संयुक्तियों के रूप में समझा जा सकता है। जटिल अनुभवों को कुछ आधारभूत संवेदनाओं के रूप में रखकर देखने के कारण इस विचारधारा की आलोचना की गई। यह संप्रदाय आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं पर बहुत ज्यादा बल देता है एवं प्रेक्षण न की जा सकने वाली आंतरिक प्रक्रियाओं एवं प्रमाणित न हो सकने वाली शाब्दिक रिपोर्ट या प्रतिवेदनों पर निर्भर था।

प्रकार्यवाद : इस संप्रदाय की मुख्य मान्यता यह थी कि मानव मन वातावरण की मांगों के प्रति सतत रूप से अनुकूलित होता रहता है। इसके संस्थापक **जॉन डेवी** के अनुसार प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य अपने वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करना एवं प्रभावशाली ढंग से कार्य करने में सक्षम होना है। उनकी सन् 1890 में प्रकाशित पुस्तक **प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलॉजी** अत्यंत चर्चित रही। चेतना को मनोविज्ञान की केंद्रीय अवधारणा मानते हुए **जेम्स** ने चेतना को एक सतत प्रवाह माना। यह हमारे मन की एक प्रक्रिया है जो वातावरण के साथ निरंतर अंतःक्रिया करती रहती है। जेम्स के लिए मानसिक प्रक्रियाओं के कार्य महत्त्वपूर्ण थे, न कि उनकी विषयवस्तु।

व्यवहारवाद : संरचनावाद के विरोध में इस संप्रदाय का जन्म हुआ। **जे.बी. वाटसन** के नेतृत्व में इस संप्रदाय ने यह विचार दिया कि चेतना, प्रतिमा एवं मन जैसे मानसिक संप्रत्ययों का वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ विज्ञान में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अंतर्दर्शन विधि को दोषपूर्ण माना गया क्योंकि इसमें प्रयोगकर्ता एवं प्रयोज्य दोनों एक ही व्यक्ति होता है। वास्तव में किसी अन्य व्यक्ति के शाब्दिक प्रतिवेदन को डेटा या प्रदत्त सामग्री तो माना जा सकता है परंतु किसी का स्वयं का अंतर्दर्शन प्रदत्त सामग्री नहीं होता क्योंकि वह वास्तव में अनुदर्शन या पश्चावलोकन (Retrospection) होता है।



जे.बी. वाटसन

दूसरे शब्दों में वह अंतर्दर्शन की आवृत्ति होता है। यहां वस्तुनिष्ठ प्रायोगिक प्रेक्षण को महत्त्वपूर्ण माना गया। व्यवहारवादियों के अनुसार, *मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है* और व्यवहार का उद्दीपक एवं अनुक्रिया (Stimulus and response) के रूप में वस्तुनिष्ठ ढंग से वर्णन किया जा सकता है। वाटसन एक अति पर्यावरणवादी था और उसने व्यवहार की व्याख्या करने में वंशानुक्रम को बहुत कम महत्त्व दिया। वाटसन मनोविज्ञान का विज्ञापन, कानून, उद्योग तथा शिक्षा के क्षेत्रों में उपयोग करने में रुचि रखते थे। **स्किनर** तथा **हल** ने व्यवहारवादी विचारों को विकसित किया तथा सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन में उसका विशेष उपयोग किया।

गेस्टाल्ट संप्रदाय : यह संरचनावाद एवं व्यवहारवाद दोनों के प्रति विद्रोह था। जर्मनी में *मैक्स वर्दाइमर* द्वारा स्थापित एवं **ओल्फगैंग कोहलर** तथा **कुर्ट कोफ्का** के सहयोग से संचालित यह विचारधारा गति के भ्रम के अध्ययन से प्रारंभ हुई। जब हम फिल्म देखते हैं और स्थिर चित्रों की शृंखला हमारी आँखों के सामने तीव्र गति से गुजरती है तो हमें गतिशील चित्र दिखते हैं। इस भ्रमपूर्ण गति (Illusory movement) का प्रत्यक्षीकरण हम वास्तविक गति के रूप में करते हैं। इस समस्या के समाधान हेतु विश्लेषण से कोई व्याख्या नहीं प्राप्त हो सकी। गेस्टाल्ट सिद्धांत के अनुसार समग्र अपने अवयवों के योग से भिन्न होता है। हमारे अनुभव में समग्रता का गुण होता है जिसे हम अवयवों में नहीं देख सकते। गेस्टाल्टवादियों ने व्यवहारवादियों द्वारा व्यवहार को उसके अंशों या अवयवों में बांटकर देखने की प्रवृत्ति एवं संरचनावादियों के ईंट-गारे वाले मनोविज्ञान को नहीं पसंद किया। ये चेतन अनुभव (Conscious experience) के अध्ययन पर केंद्रित थे। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने प्रात्यक्षिक संगठन के नियमों को प्रदर्शित किया तथा अंतर्दृष्टिपूर्ण सीखने (Insightful Learning), एवं सृजनशील चिंतन (Productive Thinking) का विवरण प्रस्तुत किया। **कुर्ट लेविन** ने *क्षेत्र सिद्धांत* प्रतिपादित किया, जो गेस्टाल्ट की विचारधारा को महत्त्वपूर्ण ढंग से आगे बढ़ाता है।

मनोविश्लेषणवाद : सिगमंड फ्रायड (1856-1939) के नेतृत्व में वियना में मनोविश्लेषणवाद (Psychoanalysis) एक बहुत प्रभावशाली संप्रदाय के रूप में उभरा। एक तंत्रिका चिकित्सक के रूप में फ्रायड ने अनुभव किया कि उनके बहुत से रोगी मानसिक द्वंद्वों के शिकार थे जो उनमें शारीरिक रोगों के रूप में प्रकट हो रहे थे। फ्रायड इस उलझन से चकित थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि रोगी को सम्मोहित कर उसे अपनी समस्याओं के बारे में बोलने का मौका देकर उन्हें उनके कष्टप्रद अनुभवों से मुक्त किया जा सकता है। उन्होंने सम्मोहन (Hypnosis) तथा मुक्त साहचर्य (Free assocation) का उपयोग किया जिसमें रोगी अपने मन में जो भी विचार आते थे उन्हें मुक्त भाव से व्यक्त करता था। उनके लिए स्वप्न इसलिए विशेष रूप से सार्थक होते हैं। वे छिपी हुई इच्छाओं को व्यक्त करने और अचेतन प्रक्रियाओं तक पहुँचने का मार्ग उपलब्ध कराते हैं। व्यक्तित्व-विश्लेषण के लिए फ्रायड ने *इदम्* (Id), *अहं* (Ego) एवं *पराहं* (Super ego) संप्रत्ययों का विकास किया। उसने मानव मन को चेतन (Conscious), पूर्वचेतन (Pre-conscious) और अचेतन (Unconscious) प्रक्रमों के रूप में देखा। *कार्ल युंग* एवं *अल्फ्रेड एडलर* शुरू में फ्रायड के साथ जुड़े थे परंतु बाद में उन्होंने अपनी स्वतंत्र विचारधारा का विकास किया। नवफ्रायडवादी जैसे **फ्राम, सलीवॉन, हॉर्नी** तथा **इरिक्सन** ने फ्रायड के विचारों को परिमार्जित और परिवर्धित किया है। इस क्रम में इन लोगों ने अहं की



सिगमंड फ्रायड

प्रक्रियाओं और सामाजिक यथार्थ की मांगों पर विशेष ध्यान दिया है।

संप्रदायों की वर्तमान स्थिति

ऊपर वर्णित मनोविज्ञान के संप्रदाय ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। यदि उन्हें कठोर अर्थों में देखें तो वे संप्रदाय नहीं रहे। मनोवैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न संप्रदायों के विचारों एवं मान्यताओं का उपयोग अलग-अलग क्षेत्रों में किया जाता है। आज मनोविज्ञान को समग्रता की दृष्टि से नहीं वरन् विभिन्न विषयों, उपविषयों एवं दृष्टिकोणों पर केंद्रित विशिष्ट क्षेत्रों के विकास के रूप में देखा जा रहा है।

संज्ञानात्मक क्रांति

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के कुछ वर्षों में अनेक शक्तियाँ एक साथ मिलीं तथा एक प्रमुख परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त किया। यह परिवर्तन एक शैक्षिक क्रांति से कम साबित नहीं हुआ। मनोवैज्ञानिक लोग संचार इंजीनियरिंग से बहुत प्रभावित हुए।

यह विचार कि मनुष्य सीमित मात्रा में सूचना प्रक्रमण (Processing) की क्षमता रखता है बड़ा आकर्षक सिद्ध हुआ। इस विचारधारा से उत्पन्न सूचना प्रक्रमण के दृष्टिकोण की यह मान्यता थी कि मानसिक प्रक्रियाओं को विभिन्न अवस्थाओं की शृंखला में प्रवहमान सूचना के रूप में देखना चाहिए। स्विट्जरलैंड में **जीन पियाजे** ने बच्चों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया। उन्होंने मनुष्य को "स्कीमा" की सहायता से सूचनाओं की सक्रिय व्याख्या करने वाला प्राणी माना। इंग्लैंड में **फ्रेडरिक बार्टलेट** ने स्मृति का अध्ययन करते समय यह पाया कि दीर्घकालिक स्मृति एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है। मनुष्य अनुभव की गई घटनाओं की सक्रिय रूप से व्याख्या करता है और उसकी स्मृति में समय के साथ परिवर्तन भी होता है।

मानवीय भाषाओं की जटिलता ने अनेक प्रचलित मान्यताओं को चुनौती दी। **चॉम्स्की** ने बताया कि मनुष्य की भाषा की क्षमता में नियमों की एक आंतरिक व्यवस्था होती है। इन्हीं नियमों की सहायता से कोई वक्ता किसी भाषा में स्वीकृत वाक्यों की रचना करता है एवं श्रोता उन्हें सुनकर समझ पाता है। भाषा अर्जन के लिए चॉम्स्की ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण को अस्वीकृत कर दिया और भाषा में निपुणता के लिए जन्मजात योग्यता को महत्त्वपूर्ण बताया।

ज्ञान के क्षेत्र में उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के विकास के परिणामस्वरूप **संज्ञानात्मक दृष्टिकोण** के रूप में एक नई विचारधारा ने जन्म लिया। इसके लिए "मेसाचुसेटस प्रौद्योगिकी संस्थान (इंस्टीच्यूट ऑफ टैक्नोलॉजी) में हुई संगोष्ठी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस संगोष्ठी से सन् 1956 में प्राप्त दिशा–निर्देश से संज्ञान के सूचना प्रक्रमण मॉडल का जन्म हुआ। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन संभव है, यह माना जाने लगा। इस प्रक्रिया में, मनोविज्ञान में पुनः मानस को अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण विषयवस्तु के रूप में देखा जाने लगा।

मनोविज्ञान का वर्तमान

समकालीन मनोविज्ञान में विकसित हो रहे सिद्धांत तथा उसके उपयोग दोनों ही अत्यन्त व्यापक हैं। विभिन्न संप्रदाय, जो एक या दूसरे सैद्धांतिक प्रारूपों (Paradigms) का प्रचार कर रहे थे, वे विकल्पों के रूप में अब चलन में नहीं रहे। वे अब इस रूप में सक्रिय नहीं हैं कि एक-दूसरे से पूरी तरह अलग रह सकें। परिपक्वता के साथ मनोविज्ञान के सरोकारों का विस्तार हुआ है और इसके सिद्धांतों की आलोचना एवं पुनर्रचना हो रही है। मानसिक प्रक्रियाओं के सांस्कृतिक संदर्भ को पहचाना जा रहा है। यह अनुभव किया जा रहा है कि यूरोप-अमेरिका के व्यक्तिवाद एवं पूंजीवाद के आदर्शों पर आधारित मनोविज्ञान में कुछ त्रुटियाँ हैं। जब औद्योगिकीकरण मुख्य मुद्दा था तब उक्त मॉडल ठीक थे। आज विकसित देश सूचना युग की दिशा में अग्रसर हो रहे हैं। औद्योगिकीकरण के बाद का समाज अन्योन्याश्रय एवं भागीदारी की मांग कर रहा है। विकासशील देश भी स्थानीय वास्तविकताओं एवं व्यापक भूमंडलीय संबंधों के बीच संतुलन स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। इस तरह की बातें मनोवैज्ञानिकों के सामने उत्तेजक और आकर्षक चुनौतियाँ खड़ी कर रही हैं।

भारत में आधुनिक मनोविज्ञान

आधुनिक पाश्चात्य मनोविज्ञान का भारत में सर्वप्रथम अध्ययन कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शन शास्त्र विभाग में आरंभ हुआ। सर ब्रोजेंद्रनाथ सील ने 1905 से प्रायोगिक मनोविज्ञान का पहला पाठ्यक्रम तैयार किया और सन् 1905 में एक प्रयोगशाला स्थापित की। ग्यारह वर्षों के बाद 1916 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में देश का प्रथम मनोविज्ञान विभाग स्थापित हुआ। नरेंद्रनाथ सेनगुप्त ने जिनको विभाग का अध्यक्ष बनाया गया था, वुंट के शिष्य मुंस्टरवर्ग से

बाक्स 1.1 **मनोविज्ञान के इतिहास में मील के पत्थर**

वर्ष	घटनाएँ
1875	विलियम जेम्स द्वारा मनोविज्ञान के प्रथम पाठ्यक्रम का संचालन।
1878	अमेरिका में मनोविज्ञान में प्रथम डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की गई।
1879	लीपजिग विश्वविद्यालय में विलहेम वुंट ने मनोविज्ञान की प्रयोगशाला स्थापित की।
1883	जान हापकिन्स विश्वविद्यालय में प्रथम अमेरिकी मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला स्थापित हुई।
1885	इबिंगहाउस ने *'आन मेमोरी'* नामक पुस्तक प्रकाशित की।
1886	जॉन डिवे ने अमेरिका में प्रथम मनोवैज्ञानिक पाठ्यक्रम प्रकाशित किया।
1889	एडवर्ड टिचनर ने अंतर्दर्शन पर आश्रित मनोविज्ञान का प्रवर्तन किया।
1890	विलियम जेम्स ने *'प्रिंसिपिल्स ऑफ साइकोलॉजी'* का प्रकाशन किया।
1892	अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन की स्थापना हुई।
1900	फ्रायड ने *'इंटरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स'* का प्रकाशन किया।
1906	कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शन विभाग में प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित हुई।
1906	इवान पवलाव ने प्राचीन अनुबंधन के बारे में अपने अनुसंधान की सूचना दी तथा उन्हें पाचन व्यवस्था पर कार्य के लिए नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।
1912	मैक्स वर्दाइमर तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने गेस्टाल्ट दृष्टिकोण को प्रवर्तित किया।
1913	जॉन वाटसन ने व्यवहारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।
1916	कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रथम मनोविज्ञान विभाग स्थापित हुआ।
1922	इंडियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन में मनोविज्ञान को सम्मिलित किया गया।
1924	इंडियन साइकोलॉजिकल एसोसिएशन स्थापित हुआ।
1925	इंडियन जर्नल ऑफ साइकोलॉजी का प्रकाशन आरंभ हुआ।
1928	एन.एन. सेनगुप्त तथा राधाकमल मुखर्जी ने *'सोशल साइकोलॉजी'* शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की (लंदनः एलेन तथा उनविन)
1940	कलकत्ता में लुंबिनी पार्क मानसिक चिकित्सालय स्थापित हुआ।
1945	भारत में सुरक्षा-शोध में मनोविज्ञान की शाखा की स्थापना की गई।
1946	पटना में इंस्टीच्यूट ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्च एण्ड सर्विसेज की स्थापना हुई।
1947	अखिलानंद द्वारा *'हिंदू साइकोलॉजी'* नामक पुस्तक का प्रकाशन (लंदनः एलेन तथा उनविन) हुआ।
1949	भारत के सुरक्षा विज्ञान संगठन में मनोवैज्ञानिक शोध की शाखा स्थापित हुई।
1953	देश के बंटवारे पर हुए अध्ययन पर आधारित गार्डनर मर्फी की पुस्तक *'इन दि माइंड्स ऑफ मैन'* प्रकाशित हुई।
1955	बंगलोर में नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरोसाइंसेज़ की स्थापना हुई।
1957	हर्वर्ट साइमन को निर्णय-प्रक्रिया पर अनुसंधान के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
1960	जीन पियाजे का अध्ययन अंग्रेजी भाषियों के लिए प्रस्तुत हुआ।
1962	राँची में मनोरोगियों के लिए अस्पताल स्थापित हुआ।
1963	एस.डी. सिंह द्वारा भारत के शहरी वानरों पर 'साइंटिफिक अमेरिकन' में अध्ययन प्रकाशित हुआ।
1969	दुर्गानंद सिन्हा द्वारा *'इंडियन विलेजेज़ इन ट्रांजिशन'* का प्रकाशन हुआ।
1972	भारत में मनोवैज्ञानिक शोधों का प्रथम सर्वेक्षण प्रकाशित हुआ।
1978	सुधीर कक्कड़ द्वारा *'इनर वर्ल्ड : ए साइकोएनेलिटिक स्टडी ऑफ चाइल्डहुड एंड सोसाइटी इन इंडिया'* का प्रकाशन (ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली) हुआ।
1981	डेविड हुबल तथा टार्स्टेन बीज़ेल को मस्तिष्क में चाक्षुष कॉर्टेक्स में स्थित तंत्रिका कोशों (न्यूट्रॉन) पर अध्ययन के लिए नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
1983	आशीष नंदी द्वारा *'इंटिमेट एनिमी : दि लॉस एंड रिकवरी ऑफ सेल्फ'* का प्रकाशन (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) हुआ।
1984	आनंद सी. परांजपे द्वारा थियरेटिकल साइकोलॉजी : दि मीटिंग ऑफ ईस्ट एण्ड वेस्ट का प्रकाशन (प्लेनम प्रेस, न्यूयार्क) हुआ।
1989	नेशनल एकेडमी ऑफ साइकोलॉजी (NAOP), इंडिया की स्थापना हुई।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। सेनगुप्त के बाद गिरींद्र शेखर बोस ने विभाग का उत्तरदायित्व संभाला। वे सिगमंड फ्रायड के निकट संपर्क में आए थे। उन्होंने इंडियन साइकोएनेलिटिक सोसायटी की स्थापना की, जो 1924 में इंटरनेशनल साइकोएनेलिटिकल सोसायटी से संबद्ध हुई। भारतवर्ष में मनोविज्ञान में प्रथम डॉक्टरेट की उपाधि बोस को ही प्राप्त हुई। इस विभाग ने 1938 में अनुप्रयोगात्मक (Applied) मनोविज्ञान की एक शाखा स्थापित की। यह वही समय था जब युंग, मेयर्स एवं स्पीयरमैन भारतवर्ष की साइंस कांग्रेस में निमंत्रित होकर पधारे थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही मैसूर एवं पटना विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान विभाग की स्थापना हो गई थी। लंदन में स्पीयरमैन से प्रशिक्षण प्राप्त एम.बी. गोपालस्वामी मैसूर में प्रथम विभागाध्यक्ष बने थे। उन्होंने एक पशु प्रयोगशाला भी स्थापित की थी। पटना में एच. पी. मैती ने 1945 में इंस्टीच्यूट ऑफ साइकोलॉजिकल रिसर्च एण्ड सर्विसेज़ की स्थापना की। प्रायोगिक मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र बन गए। 1960 के दशक में कई स्थानों पर विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान विभाग की स्थापना हुई। विश्वविद्यालय की व्यवस्था के बाहर प्रबंध संस्थानों, शिक्षा संस्थानों, रक्षा सेवाओं, प्रशिक्षण संस्थानों तथा संचार अध्ययन संस्थानों आदि में मनोविज्ञान विषय महत्त्वपूर्ण हुआ। भारत में मनोविज्ञान को नेतृत्व प्रदान करने वाले अधिकांश विद्वानों ने इंग्लैंड, अमेरिका एवं कनाडा में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। उन्होंने पाश्चात्य परंपरा में पढ़ाना एवं अनुसंधान करना शुरू किया। देश को राजनीतिक स्वतंत्रता मिलने के बाद स्थितियाँ परिवर्तित हुईं। मनोविज्ञान का विस्तार हुआ एवं सामाजिक समस्याओं; जैसे – निर्धनता, सामाजिक तनाव एवं पूर्वाग्रह, समाजीकरण, ग्रामीण विकास, नेतृत्व-शैली, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, व्यक्तित्व, संज्ञानात्मक प्रक्रम एवं मानव विकास पर ध्यान दिया जाने लगा। वर्तमान समय में भारतीय मनोवैज्ञानिक सांस्कृतिक संदर्भों के प्रति अधिक से अधिक संवेदनशील हो रहे हैं एवं मनोविज्ञान को सामाजिक रूप से प्रासंगिक बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

मनोविज्ञान एवं जीवन

आधुनिक मनोविज्ञान सिद्धांत निर्माण तथा मानव जीवन की समस्याओं के समाधान में ज्ञान के उपयोग, इन दो प्रमुख सरोकारों द्वारा संचालित हो रहा है। मानसिक स्तर पर एवं व्यक्त व्यवहार के क्रियाकलापों के बारे में सिद्धांत के निर्माण द्वारा मनोविज्ञान विभिन्न प्रकार की घटनाओं तथा तथ्यों की व्याख्या करता है। अब मात्र ज्ञान के लिए ज्ञान पाने का आदर्श उपयुक्त एवं प्रशंसनीय नहीं माना जाता। इसके स्थान पर व्यावहारिक समस्याओं का समाधान एवं जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि महत्त्वपूर्ण सरोकार होते जा रहे हैं। यह बात शैक्षिक संस्थानों में उपयोगी पाठ्यक्रमों की बढ़ती मांग से परिलक्षित होती है।

संचार माध्यमों ने लोगों के मन में यह गहरा विश्वास पैदा कर दिया है कि मनोवैज्ञानिक तकनीकों के उपयोग से लोगों के जीवन में परिवर्तन आ सकता है। इसके फलस्वरूप आज परामर्शदाताओं एवं मनोरोग चिकित्सकों की मांग काफी बढ़ गई है। इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के परिणामों का उपयोग करके लोगों के जीवन को किस तरह समृद्ध किया जा सकता है। आज व्यक्तियों, उपक्रमों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों एवं सरकारों की विभिन्न प्रकार की समस्याओं को हल करने में मनोवैज्ञानिक लोग अग्रसर हैं। इसीलिए इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आज मनोवैज्ञानिक विभिन्न क्षेत्रों; जैसे – औद्योगिक संस्थानों, विद्यालयों, चिकित्सालयों, जेलों व्यापारिक, सैनिक प्रतिष्ठानों तथा व्यक्तिगत जीवन में सहायता कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिक लोग अब नीति तैयार करने, नीति को लागू करने और उसके प्रभाव के मूल्यांकन में भी अधिकाधिक भाग ले रहे हैं।

अध्ययन के अन्य क्षेत्रों के विपरीत मनोविज्ञान स्वयं आपके लिए व्यक्तिगत रूप से भी उपयोगी हो सकता है। यह कल्पना करना कठिन है कि आप अपने मनोवैज्ञानिक क्रियाकलापों में गहराई से झाँकना नहीं चाहेंगे। आपके मन में बहुत से प्रश्न उठ रहे होंगे। ये प्रश्न मनोविज्ञान संबंधी ज्ञान के भविष्य के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। मनोविज्ञान के सिद्धांतों एवं विधियों को सीख कर आप भी कुछ कौशलों का विकास कर सकेंगे (जैसे प्रयोग करना, प्रेक्षण करना, परामर्श देना, साक्षात्कार करना, दूसरों के साथ संवाद स्थापित करना, अपने को दूसरों के सामने प्रस्तुत करना आदि)। ये आपके सामाजिक एवं व्यावसायिक जीवन में सहायक सिद्ध होंगे। आप मनोविज्ञान की सहायता से अपने अध्ययन की आदतों में सुधार कर सकते हैं, अपनी स्मृति क्षमता बढ़ा सकते हैं, प्रभावशाली ढंग से समस्याओं का समाधान कर सकते हैं एवं निर्णय ले सकते हैं, आत्मगौरव

बढ़ा सकते हैं तथा अवसाद का सामना जैसे बहुत-से कार्य कर सकते हैं।

मनोविज्ञान में समकालीन दृष्टिकोण

मनोविज्ञान में एक नहीं बल्कि कई दृष्टिकोणों या उपागमों का उपयोग किया जाता है। अकादमिक मनोविज्ञान में अनेक प्रश्नों पर मनोवैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। विभिन्न समस्याओं और मुद्दों के बारे में उनके विचारों में भिन्नता पाई जाती है। इसका कारण यह है कि मनोवैज्ञानिक अध्ययन की विषयवस्तु; जैसे – मानसिक प्रक्रियाएँ, अनुभव तथा व्यवहार उस व्यक्ति से स्वतंत्र नहीं होते हैं जो यथार्थ को देख रहा है। मानसिक घटनाओं और तथ्यों की वास्तविकता पहले से ही विद्यमान नहीं रहती है। वह मनुष्य की भागीदारी से उत्पन्न होती है। इसीलिए उसकी समझदारी यथार्थ के प्रति हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। कुछ मनोवैज्ञानिक स्वतंत्र इच्छा में विश्वास करते हैं तो कुछ लोग यह मानते हैं कि सब कुछ पूर्वनिर्धारित है। कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि मानसिक संप्रत्यय वास्तविक हैं और उनका उपयोग होना चाहिए। दूसरी ओर, कुछ मनोवैज्ञानिक इन संप्रत्ययों से दुखी हैं क्योंकि ऐसे संप्रत्ययों का अर्थ स्थिर नहीं होता। इसलिए इनकी वास्तविकता का पता नहीं लग पाता है। कुछ लोगों को आशा है कि तंत्रिकाविज्ञान (Neuroscience) की जानकारी में वृद्धि से मनोविज्ञान तांत्रिकाविज्ञान ही बनकर रह जाएगा। आइए, कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों पर विचार करें।

जैविक दृष्टिकोण : यह दृष्टिकोण व्यवहार को जैवकीय संरचनाओं (जैसे – जीन्स, मस्तिष्क, तंत्रिका मंडल, अंतःस्रावी ग्रंथियों की व्यवस्था) तथा उनकी क्रियाओं के आधार पर समझने का प्रयास करता है। यह व्यवहार को आणविक और भौतिक स्तर पर समझने का प्रयास है। इसके अंतर्गत प्राणी की भौतिक व्यवस्था (शरीर) के अंदर झाँकने और उसकी संरचनाओं को समझने के प्रयास पर बल दिया जाता है। मस्तिष्क के प्रकार्यों का स्थान निर्धारण, मस्तिष्क के दो अर्धगोलकों के कार्य की विशिष्टताओं तथा व्यवहार के आनुवंशिक आधारों का भी अध्ययन किया जाता है। व्यवहार में संलग्न जैवरासायनिक प्रक्रियाएं एवं तंत्रिका कोशीय नेटवर्क इसके प्रमुख सरोकार हैं। ये व्यवहार के साथ कारण के रूप में जुड़े हुए जाने जाते हैं। पर्यावरण के प्रभाव को महत्त्वपूर्ण माना जाता है परंतु मुख्य ध्यान जैविकीय प्रक्रियाओं पर दिया जाता है। मस्तिष्क की किसी बीमारी या चोट की दशा में दिखने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों तथा विभिन्न उपकरणों की सहायता से मस्तिष्क की गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है।

मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण : हम प्रायः देखते हैं कि लोग ऐसी तुच्छ बातों के लिए संघर्ष करते हैं और ऐसे काम कर बैठते हैं कि उन्हें उन बातों के लिए बाद में स्वयं शर्मिंदा होना पड़ता है। ऐसे कार्यों का न कोई तार्किक आधार होता है, न ही कोई सोच-विचार। मनोविश्लेषण के जनक सिगमंड फ्रायड ने एक रोचक विचारधारा का विकास किया जो हमारे व्यवहारों के अतार्किक भाग तथा अचेतन कारणों से संबंधित है। सामान्य एवं असामान्य व्यवहार रूपों के बीच निरंतरता होती है। हमारा व्यवहार जिन कारणों से नियंत्रित होता है उनके बारे में हम नहीं जानते हैं, वे अचेतन स्तर पर रहते हैं। इस दृष्टिकोण को कई मनोवैज्ञानिकों ने आगे बढ़ाया। मनोगतिक उपागम अभिप्रेरणा के व्यवहार को समझने के लिए प्रमुख आधार मानता है। इसके अंतर्गत मन को व्यवहार में संलग्न ऊर्जा का स्रोत माना गया है। इसे मनोनियतिवाद (Psychic determinism) कहा जाता है। इस दृष्टिकोण में वयस्क व्यक्तित्व के लिए आनुवंशिकता एवं प्रारंभिक बाल्यावस्था के अनुभव महत्त्वपूर्ण माने गए हैं।

संज्ञानात्मक दृष्टिकोण : इस दृष्टिकोण ने जैसे चिन्तन, स्मरण एवं निर्णय जैसी आन्तरिक मध्यस्थताकारी (Internal mediating) प्रक्रियाओं की भूमिका को पुनर्स्थापित किया तथा व्यवहार को समझने के लिए उसे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण माना। इसके अनुसार हम वातावरण से प्राप्त सूचनाओं का सक्रिय रूप से प्रक्रमण करते हैं और हमारा व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि हम आने वाली सूचनाओं के प्रवाह का प्रक्रमण कैसे करते हैं। यह दृष्टिकोण इस बात का अध्ययन करता है कि जब हम प्रत्यक्षीकरण करते हैं, अवधान करते हैं, याद करते हैं अथवा वर्गीकरण करते हैं तो हमारे अन्दर अथवा मस्तिष्क में क्या गतिविधि होती है। मनोविज्ञान के सामाजिक, शैक्षिक एवं विकासात्मक क्षेत्रों पर संज्ञानात्मक (Cognitive) दृष्टिकोण का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

मानववादी दृष्टिकोण : इस विचारधारा के अनुसार मनुष्य मूल रूप से अच्छा, क्रियाशील एवं क्षमताओं का भंडार होता है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति के निजी आंतरिक जगत पर ध्यान देता है जो व्यक्ति के अपने निजी अनुभव का जगत होता है। यह मुनष्यों के लिए एक समग्रतावादी दृष्टि

(Holistic vision) को मूल्यवान मानता है। यह व्यवहार को मानवीय जीवन की शर्तों के अनुरूप समझने का यत्न करता है। हमारा व्यवहार भूतकाल या वर्तमान परिस्थिति तक ही नहीं बँधा रहता है। लोगों की अपनी पसंद होती है और उनका व्यवहार पूर्वनिर्धारित नहीं होता है। **अब्राहम मास्लो** ने इस दृष्टिकोण को व्यवहारवाद एवं मनोविश्लेषण की विचारधाराओं से अलग एक तीसरी शक्ति माना है। व्यक्ति दुनिया को किस तरह देख रहा है यही महत्त्वपूर्ण होता है। उद्देश्य अथवा क्रिया से जुड़ा अर्थ या आशय अति महत्त्वपूर्ण होता है। **कार्ल रोजर्स** ने "हम क्या हैं" के विषय में हमारा अपना अनुभव तथा एवं "हमें कैसा होना चाहिए" (आदर्श स्व) के बीच के संबंध को महत्त्वपूर्ण माना था। सम्पन्न एवं अधिक तुष्टिदायी जीवन की खोज ही हमारा प्रमुख लक्ष्य होता है।

सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण : यह उपागम अपेक्षाकृत नया है और इसका जन्म यह अनुभव करने से हुआ कि मनोविज्ञान की मुख्य धारा जो अधिकतर पाश्चात्य देशों में विकसित हुई है, एक संस्कृति पर केंद्रित है, एवं संस्कृति की भूमिका की अनदेखी करता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों एवं सिद्धांतों में सामाजिक कारकों एवं सांस्कृतिक विविधताओं की खोज ही इस दृष्टिकोण का लक्ष्य है। यह इस बात का पता लगाता है कि मनुष्य अपने सामाजिक संदर्भों से किस तरह प्रभावित होता है। संस्कृति के संप्रत्ययों, जीवन की दशाओं तथा मानव व्यवहार के बारे में मान्यताओं का एक सेट या विन्यास है। साझे के अर्थ तथा साझी प्रथाओं के रूप में संस्कृति हमें अपने को संचालित करने वाले मानकों एवं नियमों को द्योतित करती है। यह उपागम सांस्कृतिक विविधता को महत्त्वपूर्ण मानता है और बताता है कि जिस ढंग से संस्कृति हमें संचालित करती है हम उसी प्रकार का आचरण करते हैं। इस तरह के प्रयास कई तरह से हो रहे हैं। अंतःसांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक इस मत के हैं कि परिवेशीय स्थितियां ही संस्कृति का निर्धारण करती हैं, और संस्कृति एक व्यक्तित्वविशेष का स्वरूप तय करती है और यही व्यक्तित्व व्यवहार का निर्धारण करता है। सांस्कृतिक मनोवैज्ञानिक यह जानने का प्रयास करते हैं कि संस्कृति किस तरह मानसिक घटनाओं को रचती है।

विकासवादी दृष्टिकोण : इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि मनुष्य के मानसिक प्रकार्य की तरह शारीरिक योग्यता भी अरबों वर्षों के उद्विकास का परिणाम है। इनके द्वारा हम विभिन्न प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति कर पाते हैं जिनसे अनुकूलन (Adaptation) स्थापित होता है। यहां अनुकूलन का तात्पर्य यह है कि मनुष्य में संचित जीन की पुनरावृत्ति होती है तथा इनका प्रभाव मनुष्य की संतान एवं संबंधियों के द्वारा आगे बढ़ता रहता है। इस प्रकार जीन्स की उत्तरजीविता (Survival) अनुकूलन का लक्ष्य है। यह भी

क्रियाकलाप 1.4

मनोविज्ञान में उपागमों/दृष्टिकोणों की समझ

नीचे कई वक्तव्य दिए गए हैं। बताइए कि ये वक्तव्य किन-किन दृष्टिकोणों से संबंधित हैं:

1. *व्यक्ति स्वतंत्र होता है एवं उसे अपनी पसंद के अनुसार कार्य करने की छूट है।*
2. *जीन्स निर्माण की नींव की ईंट कहे जाते हैं।*
3. *चिंतन, तर्कना तथा स्मृति में मानसिक क्रियाओं की प्रमुख भूमिका होती है।*
4. *मानव व्यवहार के लिए अभिप्रेरणा अचेतन भी हो सकती है।*

सीखने की जाँच

1. *एक वैज्ञानिक के रूप में मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययनों में इंद्रियानुभविक विधियों का उपयोग करते हैं और सांवेदिक अनुभवों पर सर्वाधिक निर्भर रहते हैं।* सही/गलत
2. *मनोविज्ञान इसलिए विज्ञान है क्योंकि इसका विकास प्रयोगशाला में हुआ था।* सही/गलत
3. *आधुनिक मनोविज्ञान का उद्गम विलहेम वुंट के महत्त्वपूर्ण आरंभिक प्रयास में देखा जाता है।* सही/गलत
4. *आधुनिक मनोविज्ञान का जन्म जर्मनी में सन् 1879 में लिपजिग विश्वविद्यालय में विलहेम वुंट द्वारा प्रयोगशाला की स्थापना के रूप में माना जाता है।* सही/गलत
5. *मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण यह मानता है कि व्यवहार अचेतन उत्प्रेरकों का परिणाम है।* सही/गलत
6. *व्यवहारवादी इस बात पर बल देता है कि लोग किस तरह सूचना का प्रक्रमण करते हैं और समस्या के समाधान के लिए तर्क का उपयोग करते हैं।* सही/गलत

उत्तर — 1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही 5. सही 6. गलत।

कहा जाता है कि वे मनोवैज्ञानिक तरीके जिनका हम अनुकूलन या सामंजस्य स्थापना के लिए उपयोग करते हैं हमें अपने उन पूर्वजों से प्राप्त हैं जो बहुत ही कठोर दुनिया में जीवित थे। विकासवादी दृष्टिकोण की मान्यता है कि अभी भी मानव व्यवहार का क्रमिक विकास हो रहा है। इसी विचार की बदौलत आज समाजजैविकी (Sociobiology) जैसे विषय का जन्म हुआ है। इसके प्रतिपादक **विल्सन** का विचार है कि मानव व्यवहार के सभी पहलू एवं संस्कृति दोनों ही हमारे जीन में विद्यमान रहते हैं। प्राकृतिक चयन द्वारा जीन में परिमार्जन होता है। उपर्युक्त सभी दृष्टिकोणों का सारांश तालिका 1.1 में प्रस्तुत किया गया है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र

अधिकांश शैक्षिक संस्थाओं में मनोविज्ञान का एक ही विभाग होता है, फिर भी मनोवैज्ञानिक लोग अपनी गतिविधियों एवं अभिरुचियों में एक जैसे नहीं होते। आज का मनोविज्ञान अनेक विशिष्ट उपक्षेत्रों से बना है जिनकी अपनी-अपनी विषयवस्तु, सिद्धांत और विधियाँ हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का वर्णन नीचे किया जा रहा है। याद रखें कि यह विवरण मनोविज्ञान के सभी क्षेत्रों को सम्मिलित नहीं करता क्योंकि कई नए-नए क्षेत्र भी उभर रहे हैं।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान : संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो इस बात से संबंधित है कि मनुष्य सूचनाओं का ग्रहण, भंडारण, रूपांतरण एवं संचार किस तरह करता है। यह हमारे मानसिक जीवन से संबंधित है। प्रमुख संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं हैं – अवधान, प्रत्यक्षीकरण, संरूप पहचान, स्मृति, तर्क, समस्या-समाधान, ज्ञान की प्रस्तुति, भाषा एवं निर्णय लेना। दैनिक जीवन में हम इन प्रक्रमों में सतत रूप से जुड़े रहते हैं। इनमें से अधिकांश साथ-साथ अथवा बिल्कुल कम समय के अंतराल पर घटित होती हैं। इन्हें समझने के लिए संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त परिवेशीय उपागम भी है जो प्राकृतिक प्रेक्षण का उपयोग करता है। अनुसंधानकर्ता तंत्रिका वैज्ञानिकों एवं कंप्यूटर वैज्ञानिकों के साथ सहयोग करते रहते हैं।

तालिका 1.1 : प्रमुख मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों का सारांश

दृष्टिकोण/ उपागम	मनुष्य का मॉडल	प्रमुख निर्धारक	केंद्रीय तत्व	अध्ययन विधि की वरीयता
जैविक	यांत्रिक	आनुवंशिकता तथा जैव-रासायनिक प्रक्रियाएँ	मस्तिष्क तथा तंत्रिका व्यवस्था की प्रक्रियाएँ	जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं का अध्ययन
मनोगत्यात्मक	मूल प्रवृत्ति द्वारा संचालित	आनुवंशिकता, प्रारंभिक अनुभव	अचेतन प्रक्रियाएँ, द्वंद्व	अचेतन प्रेरकों की अभिव्यक्ति के रूप में व्यवहार
संज्ञानात्मक	सर्जनात्मक रूप से सक्रिय, उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रियाशील	मानसिक प्रक्रम, उद्दीपक दशाएँ	मानसिक प्रक्रिया, भाषा	व्यवहार के संकेतों का अध्ययन
मानववादी	सक्रिय, असीमित क्षमतायुक्त	स्वतःस्फूर्त, संभावना से भरा	अनुभव तथा क्षमताएँ	जीवन-संरूप तथा लक्ष्यों का अध्ययन
सामाजिक-सांस्कृतिक	संस्कृति के साथ परस्पर संबंधित	पारिस्थितिकी, मनुष्य की भागीदारी, सांस्कृतिक विशेषताएँ	अर्थ तथा प्रथाएँ	गुणात्मक विधियाँ
विकासवादी	समस्याओं के समाधान हेतु अनुकूलित	अनुकूलन तथा पर्यावरणीय विशेषताएँ	विकसित मनोवैज्ञानिक अनुकूलन	विकासात्मक अनुकूल प्रक्रियाओं का अध्ययन

तुलनात्मक दैहिक मनोविज्ञान : तुलनात्मक मनोविज्ञान विभिन्न प्रकार के पशुओं में पाई जाने वाली समानताओं एवं अंतरों से जुड़ा है। इस शाखा के मुख्य विषय के अंतर्गत वंशानुक्रम एवं व्यवहार आनुवंशिकी, व्यवहार का विकास, व्यवहार के तंत्रिकागत आधार, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, तंत्रिका मनोविज्ञान, स्वायत्त तंत्रिका तंत्र, चेतना की विभिन्न दशाएँ, अंतःस्रावी ग्रंथियों की क्रिया प्रणाली, नींद एवं स्वप्न तथा औषधियों के मानसिक प्रभाव सम्मिलित हैं। तंत्रिका मनोविज्ञान एवं मनःप्रभावी औषधिविज्ञान जैसे विषय औषधियों के मानसिक प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

असामान्य मनोविज्ञान : समकालीन समाजों में व्यापक स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएँ विद्यमान रहती हैं। असामान्य मनोविज्ञान में ऐसे व्यवहारों का वर्णन, व्याख्या, पूर्वकथन एवं नियंत्रण करने का प्रयास किया जाता है जो असामान्य और अस्वाभाविक होते हैं। मनोविज्ञान की इस शाखा का लक्ष्य मानसिक रोगों के वर्गीकरण, कारण का ज्ञान, मूल्यांकन, उपचार तथा रोकथाम करना है। असामान्य व्यवहार वह है जो स्वीकृत मानक से विचलित होता है तथा प्रभावित व्यक्ति तथा दूसरों को नुकसान पहुंचाता है। इसकी विषयवस्तु में सामान्य दिखने वाले व्यवहार से लेकर आश्चर्यकारी एवं विलक्षण व्यवहार, हिंसक/हत्या से लेकर यौनगत विकृत व्यवहार, तुतलाना, चिंता और अवसाद सभी शामिल होते हैं। मनोवैज्ञानिक निदान व्यक्ति की मानसिक विकृति का वर्णन, मूल्यांकन और उसके बारे में निष्कर्ष निकालता है। यह उपचार के लिए आवश्यक है। असामान्य व्यवहार कई तरह से समझा जा सकता है। कुछ लोग इसे उन व्यवहारों के रूप में लेते हैं जो समाज में बहुत कम मात्रा में घटित होते हैं। वास्तविक जीवन में असामान्यता से प्रभावित व्यक्ति को मिलने वाली मानसिक या शारीरिक पीड़ा, उसके व्यवहार की विसंगति या विभिन्न भूमिकाओं को निभाने में कठिनाई के रूप में ली जाती है। संभवतः असामान्यता का एक मानदंड पर्याप्त नहीं है। हमें समाज, व्यक्ति तथा मानसिक स्वास्थ्यकर्मी सबके दृष्टिकोण को ध्यान में रखना होगा।

नैदानिक एवं परामर्श मनोविज्ञान : नैदानिक (Clinical) मनोवैज्ञानिक व्यावसायिक ढंग से प्रशिक्षित होते हैं। इनका कार्य मानसिक विकृतियों का निदान तथा उपचार करना होता है। ये मनोवैज्ञानिक इन विकृतियों के कारणों का भी अध्ययन करते हैं। बड़ी संख्या में नैदानिक मनोवैज्ञानिक अस्पतालों, क्लीनिकों एवं व्यक्तिगत स्तर पर भी अपना कार्य करते हैं। ये मनश्चिकित्सकों के साथ मिलकर गंभीर मनोवैज्ञानिक विकृतियों का उपचार करते हैं। परामर्श देने वाले मनोवैज्ञानिक प्रायः ऐसे लोगों की सहायता करते हैं जो सामाजिक एवं सांवेगिक समायोजन की समस्याओं से संबंधित सामान्य विकृतियों के शिकार होते हैं। कुछ परामर्शदाता विशिष्ट क्षेत्रों; जैसे – विवाह, परिवार एवं कैरियर संबंधी परामर्श भी देते हैं।

अंतःसांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान : मनोविज्ञान के इस क्षेत्र के अंतर्गत सामाजिक एवं सांस्कृतिक तत्व किस तरह मानव व्यवहार को गढ़ते हैं, इसका अध्ययन किया जाता है। इसकी मान्यता है कि मानव व्यवहार मात्र जैविकीय क्षमताओं की अभिव्यक्ति नहीं है, वह संस्कृति का भी उत्पाद है। यह कहा जाता है कि मानव व्यवहार का अध्ययन उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में किया जाना चाहिए। संस्कृति और व्यवहार एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। जैसा कि आप अध्याय 4 में पढ़ेंगे। संस्कृति मानव व्यवहार पर अनेक तरह से और भिन्न-भिन्न मात्रा में प्रभाव डालती है।

शैक्षिक एवं विद्यालय मनोविज्ञान : यह क्षेत्र सीखने की प्रक्रिया के सभी पक्षों से संबंधित है। कक्षा में निष्पादन को प्रभावित करने वाले कारकों तथा छात्रों के निष्पादन का मूल्यांकन एवं अध्ययन किया जाता है। विद्यालय-मनोवैज्ञानिक मनोविज्ञान के ज्ञान का उपयोग विद्यालय के परिवेश में करते हैं। शिक्षक प्रशिक्षण, छात्र-परामर्श, तथा छात्रों की सीखने से संबंधित समस्याओं का समाधान इनकी प्रमुख गतिविधि होती है। विभिन्न प्रकार के बच्चों को जो विभिन्न प्रकार की सीखने की अक्षमता से ग्रस्त रहते हैं, शिक्षा देना एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है।

पर्यावरण मनोविज्ञान : इसमें भौतिक जगत एवं मानव व्यवहार के बीच होने वाली अंतःक्रिया पर ध्यान दिया जाता है। इसके अंतर्गत शोर, गर्मी, आर्द्रता, तथा प्रदूषण जैसे पर्यावरण से जुड़े तनावों का अध्ययन किया जाता है। कार्य करने वाले स्थान की भौतिक दशा आदि कारकों का भी हमारी कार्य करने की योग्यता, सांवेगिक अवस्था, स्वास्थ्य एवं अंतर्वैयक्तिक व्यवहारों पर प्रभाव का अध्ययन किया

जाता है। विगत वर्षों में कूड़ा-कचरे का निस्तारण, मौसम में परिवर्तन, परमाणु ऊर्जा, जनसंख्या का विस्फोट, ऊर्जा का उपभोग, सामुदायिक स्रोतों का उपयोग एवं गंदगी फैलाना आदि गंभीर समस्या के रूप में उभरे हैं। एक पर्यावरण मनोवैज्ञानिक इन मुद्दों तथा इनसे जुड़े अन्य प्रश्नों का अध्ययन करता है।

स्वास्थ्य मनोविज्ञान : स्वास्थ्य (Health) मनोवैज्ञानिक मन एवं शरीर के बीच के संबंध का अध्ययन करते हैं। मानव मन की कैंसर, अल्सर, तथा हृदय की बीमारियों से लेकर सामान्य ठंड तक विस्तृत शारीरिक व्याधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अध्ययन के एक क्षेत्र के रूप में स्वास्थ्य मनोविज्ञान शारीरिक व्याधियों की उत्पत्ति, उनके उपचार तथा उनसे बचाव में मनोवैज्ञानिक कारकों के प्रभावों का अध्ययन करता है। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक आधुनिक स्वास्थ्य संरक्षण एवं व्याधियों से बचाव के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। वे इस बात का अध्ययन करते हैं कि किस प्रकार मनोवैज्ञानिक कारकों (जैसा– प्रतिबल, आक्रामकता) का मानव शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। अस्वास्थ्यकर व्यवहारों, जैसे धूम्रपान, किसी व्याधि के प्राथमिक लक्षणों पर ध्यान न देना तथा अधिक भोजन करने के कारणों का भी अध्ययन किया जाता है। इस क्षेत्र में इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि व्याधियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने या समझौता करने के क्या उपाय हैं।

औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोविज्ञान : यह मनोविज्ञान का बहुत ही लोकप्रिय क्षेत्र है जो कार्यदशा में मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग करता है। इस प्रकार समाज मनोविज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग नेतृत्व क्षमता बढ़ाने तथा कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने के लिए किया जाता है। इसी तरह अधिगम (सीखना) के उपागमों का उपयोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए किया जाता है। किसी संगठन में कर्मचारियों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है। कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ाकर जीवन की गुणवत्ता एवं उत्पादों की लागत घटाने का प्रयास किया जाता है। कुछ औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक कार्मिक मनोविज्ञान पर ध्यान देते हैं। वे कर्मचारी चयन, कार्य विश्लेषण, निष्पादन मूल्यांकन, आदि में रुचि लेते हैं। जो संगठन मनोविज्ञान में रुचि लेते हैं वे नेतृत्व, कर्मचारियों की अभिप्रेरणा, द्वंद्व का प्रबंधन, समूह प्रक्रमों एवं संगठन में होने वाले परिवर्तनों से संबंधित समस्याओं का अध्ययन करते हैं। इनमें से कुछ लोग प्रशिक्षण एवं विकास के अध्ययन करते हैं। अन्य मनोवैज्ञानिक मानवीय कारकों पर ध्यान देते हैं। ऐसे मनोवैज्ञानिक कार्यदशा, मानव तथा मशीन के बीच अंतःक्रिया, शारीरिक थकान एवं प्रतिबल की समस्याओं का अध्ययन करने का प्रयास करते हैं।

जीवन, आजीवन विस्तार विकासात्मक मनोविज्ञान: मनोविज्ञान की यह शाखा प्रत्यक्षीकरण, संज्ञान, भाषा, कौशल, व्यक्तित्व तथा सामाजिक संबंधों के विकास से संबंधित अध्ययनों पर केंद्रित है। शिशुओं, बच्चों, किशोरों, प्रौढ़ों एवं वृद्धों में प्राप्त सभी तरह के मनोवैज्ञानिक घटनाओं और तथ्यों का अध्ययन किया जाता है। वास्तव में इस शाखा में लोगों के संपूर्ण जीवन विस्तार में विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। मनोवैज्ञानिक जीवन क्रम में होने वाले क्रमबद्ध परिवर्तनों का वर्णन और व्याख्या करते हैं। वे इस बात का अध्ययन करते हैं कि किस तरह जैविक दाय (Hirefage) एवं विशिष्ट अनुभव व्यक्ति की मानसिक विशेषताओं, जैसे बुद्धि, नैतिकता, स्वभाव एवं सामाजिक संबंधों को प्रभावित करते हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान : समाजिक मनोविज्ञान प्रायः सामाजिक स्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार एवं विचार के स्वरूप एवं कारणों का अध्ययन करने का प्रयास करता है। इसका मुख्य उद्देश्य सामाजिक स्थितियों में व्यक्ति की क्रियाओं एवं विचारों को दिशा देने वाले कारकों की समझ प्राप्त करना है। सामाजिक व्यवहार को कई कारक प्रभावित करते हैं। इनमें अन्य लोगों के व्यवहार तथा उनकी निजी विशेषताएँ, संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ, बदलती हुई परिस्थितियां, सांस्कृतिक संदर्भ एवं जैविक कारक सम्मिलित होते हैं। समाज मनोवैज्ञानिक अभिवृत्तियों, श्रेष्ठजनों के प्रति आज्ञाकारिता एवं अनुरूपता, अंतर्वैयक्तिक आकर्षण, गुणारोपण प्रक्रियाएँ, समूह की प्रक्रियाएँ, सामाजिक अभिप्रेरणा, अंतर्सामूहिक संबंध आदि का अध्ययन करते हैं।

मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन : यह मनोविज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण जीवनोपयोगी शाखा है। अभिक्षमता रुझान, बुद्धि, व्यक्तित्व, अभिवृत्ति, मूल्य तथा अन्य मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का मापन तथा उनके बारे में अनुसंधान, लोगों के लिए परामर्श देने में एवं विभिन्न पदों पर चयन एवं प्रशिक्षण में उपयोगी होता है। विभिन्न क्षेत्रों में मानव क्षमताओं का मूल्यांकन

अनुप्रयोगात्मक शोध का महत्त्वपूर्ण विषय होता जा रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नई-नई विधियों का विकास किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, मूल्यांकन केंद्रों तथा गत्यात्मक परीक्षण विधियों से परीक्षण किए जाने वाले व्यक्ति की क्षमता की रूपरेखा (प्रोफाइल) बनाने में सहायता मिल रही है।

अन्य क्षेत्र : ऊपर उल्लिखित विशिष्ट क्षेत्रों के अतिरिक्त मनोविज्ञान के अनेक नए क्षेत्रों का विकास हो रहा है; जैसे– वैमानिकी मनोविज्ञान, सैन्य मनोविज्ञान, न्यायिक मनोविज्ञान, ग्रामीण मनोविज्ञान, अभियांत्रिकी मनोविज्ञान, कार्मिक मनोविज्ञान, प्रबंधकीय मनोविज्ञान, शांति मनोविज्ञान, खेल मनोविज्ञान, सामुदायिक मनोविज्ञान, नारी मनोविज्ञान, राजनीतिक मनोविज्ञान, कार्य संबंधी मनोविज्ञान एवं तंत्रिका तंत्रीय मनोविज्ञान। कुछ ऐसे विभाग हैं जो स्नातकोत्तर एवं डॉक्टरेट स्तर की उपाधियों के पाठ्यक्रम चला रहे हैं। पुस्तकें, वैज्ञानिक पत्रिकाएँ, व्यावसायिक संगठन विशिष्ट क्षेत्रों में मनोविज्ञान के अध्यापन, अनुसंधान तथा अनुप्रयोग में वृद्धि कर रहे हैं।

मनोविज्ञान का अन्य विषयों के साथ संबंध

मनोविज्ञान मानव प्रकार्यों से संबंधित ज्ञान प्राप्त करने से जुड़े कई विषयों के मिलन बिंदु पर स्थित है। मस्तिष्क एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करते समय यह शरीर क्रिया विज्ञान, तंत्रिका विज्ञान, जीवविज्ञान, तथा कंप्यूटर विज्ञान के साथ भागीदारी करता है। एक सामाजिक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, एवं मानवशास्त्र से घनिष्ठ रूप से जुड़ा है।

यहां यह ध्यातव्य है कि विभिन्न विषय समस्याओं को विभिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न रुचियों एवं दृष्टियों से देखते हैं। उनके द्वारा चुनी गई विश्लेषण की इकाइयाँ एवं सांप्रत्ययिक-सैद्धांतिक मॉडल समस्याएं भिन्न तरीकों एवं भिन्न रुचियों से जुड़ी देखी जाती हैं। कई बार विभिन्न विषय, विभिन्न मतों के आग्रहों से जुड़े होते हैं। इस समस्या को मनोविज्ञान के अंदर विद्यमान विभिन्न दृष्टिकोणों को लेकर स्पष्ट किया जा सकता है। व्यवहारवाद क्रियाओं को उद्दीपक एवं प्रतिक्रियाओं के रूप में देखता है, संज्ञानात्मक दृष्टिकोण सूचना प्रक्रमण के रूप में, तथा जैविकीय पक्ष कोशिकीय एवं आणविक प्रकार्यों के रूप में देखता है।

क्रियाकलाप 1.5

मनोविज्ञान के क्षेत्र

कक्षा को 4 से 6 छात्रों के छोटे समूह में विभाजित कर दीजिए। प्रत्येक समूह का एक नाम तथा रोजगार का स्थान तय कर दीजिए और प्रत्येक समूह से, मनोवैज्ञानिक व्यवसाय की विशेषज्ञताओं वाले लोगों के कार्यों का वर्णन करने को कहिए।

सीखने की जाँच

1. *सामाजिक मनोविज्ञान सामाजिक तथा व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान तथा उन्हें सेवा प्रदान करने से संबंधित है। सही/गलत*
2. *विकासात्मक मनोविज्ञान संगठनात्मक विकास पर केंद्रित है। सही/गलत*
3. *औद्योगिक और संगठनात्मक मनोवैज्ञानिकों का मुख्य सरोकार कार्य क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग है। सही/गलत*
4. *असामान्य मनोविज्ञान पशुओं के व्यवहार में समानताओं और भिन्नताओं का अध्ययन करता हैं। सही/गलत*
5. *विशिष्ट शिक्षा अक्षम बच्चों को शिक्षा देने से संबंधित है। सही/गलत*

उत्तर– 1. गलत, 2. गलत, 3. सही, 4. गलत, 5. सही।

बाक्स 1.2 **मनोविज्ञान के नए सीमांत**

मनोविज्ञान विषय कई दिशाओं में बड़ी तीव्र गति से विकसित हो रहा है। इसके सैद्धांतिक और विधिगत सरोकार एवं जीवन की गुणवत्ता में सुधार का क्षेत्र मानव जीवन के अनेक क्षेत्रों को शामिल करने के उद्देश्य से व्यापक बनाया गया है। इस विषय में प्रचुर मात्रा में हो रहे शोध प्रकाशनों का हिसाब रखना लगभग असंभव-सा हो गया है। शोधकर्ता जैविक, सामाजिक, सांस्कृतिक, संज्ञानात्मक, सामुदायिक तथा स्वास्थ्य से जुड़े प्रश्नों में क्रमशः ज्यादा से ज्यादा रुचि ले रहे हैं। प्रत्येक क्षेत्र में नए विचार और निष्कर्ष उभरकर सामने आ रहे हैं और इन सभी विकासों का एक व्यापक नमूना प्रस्तुत करना भी कठिन काम है, फिर भी कुछ मुख्य प्रवृत्तियों और विचारों को रेखांकित किया जा सकता है। मनोविज्ञान में हो रहे नए विकास निम्नांकित

प्रवृत्तियों को व्यक्त करते हैं :

1. मनोवैज्ञानिक प्रश्नों का अध्ययन कई विषयों एवं शास्त्रों से जुड़ा हुआ प्रयास बनता जा रहा है।
2. मनोविज्ञान के उपक्षेत्रों में हो रहे विकास क्रमशः अधिकाधिक विशेषज्ञता दिखा रहे हैं।
3. मानव जीवन की जटिलता के कारण एक विधि के बदले कई विधियों का उपयोग अपेक्षित होता जा रहा है।
4. मनोवैज्ञानिक यथार्थ (Psychological Reality) की रचना तथा उसे समझने में संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका अनुभव की जा रही है।
5. अर्थ, व्यवहार के उन्मज्जी गुण धर्म (Emergent properties), संज्ञानात्मक सुनम्यता (flexibility), विकासात्मक संदर्भ, तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में स्थापित होना मनोविज्ञान के लिए भौतिक विज्ञान के मॉडल की बजाय मानव विज्ञान के मॉडल को अधिक उपयुक्त ठहराता है।

उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करने से मनोविज्ञान विषय में एक बड़ा ही विचारोत्तेजक परिदृश्य उभर कर सामने आता है। मनोविज्ञान विषय में हो रहे परिवर्तनों की एक झाँकी प्रस्तुत करने के लिए कुछ समकालीन कार्यों के नमूने यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं परंतु वे किसी भी तरह मनोविज्ञान विषय में हो रहे सभी प्रकार के कार्यों का समावेश नहीं करते।

तंत्रिका मनोविज्ञान : इस विकासमान क्षेत्र में शोधकर्ताओं की रुचि जीवित मस्तिष्क की क्रिया-प्रणाली का मानसिक प्रक्रियाओं के साथ संबंध समझने में है। कई नई दिशाओं में प्रगति हो रही है। एक नया क्षेत्र तंत्रिका संचार (Neural Communication) का है। शोधकर्ता तंत्रिका-प्रेषी (न्यूरोट्रान्समीटर), जो एक प्रकार का रसायन है और तंत्रिका संचार के लिए उत्तरदायी है, की खोज कर रहे हैं। इस समय लगभग 40 ऐसे ट्रान्समीटरों की जानकारी है। एक तरह के ट्रान्समीटरों को 'मोनोमाइन' कहा जाता है, (जैसे – डोपामाइन, नोरपाइनेफ्राइन, सेरोटोनिन)। वे संवेग, गति, सीखने तथा स्मृति में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। एक दूसरे तरह का ट्रान्समीटर एसीटिल्कोलाइन है जो स्मृति के लिए महत्त्वपूर्ण है। एक और ट्रान्समीटर गामा-अमीनोबुटरिक एसिड यानी 'गाबा' (GABA) एक अवरोध पैदा करने वाला ट्रान्समीटर है। यह संवेग, चिंता तथा उद्वेलन के लिए महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त इंडोर्फिन हैं जो पीड़ा और प्रसन्नता को नियमित करते हैं। ये न्यूरोट्रान्समीटर मस्तिष्क के विभिन्न भागों में पाए जाते हैं, विशेष रूप से उपवल्कुटीय तंत्र (लिंबिक प्रणाली) थैलेमस, जेनस्टेम, तथा अग्र कॉर्टेक्स में। इन ट्रान्समीटरों के बारे में ज्ञान हमारी मानसिक क्रिया प्रणाली के रहस्यों पर से पर्दा उठाने, विभिन्न प्रकार के रोगों से लड़ने और मनुष्यों के जीवन की गुणवत्ता वृद्धि करने में सहायक हो रहा है।

अचेतन मानसिक व्यवस्थाएं/प्रणालियां : अनेक शोधक उन मानसिक प्रक्रियाओं की व्यवहार में भूमिका की खोज क रहे हैं जिनसे हम अवगत नहीं रहते। ऐसा लगता है कि ए आदमी का दैनिक जीवन चेतन मंतव्यों (Conscious intentions तथा जानबूझ कर किए गए चुनावों से नहीं, बल्कि उ मानसिक प्रक्रियाओं से संचालित होता है जो पर्यावरण क विशेषताओं द्वारा सक्रिय होती हैं और जो ज्ञात चेतना क परिधि से बाहर स्थित होती हैं। अपने व्यवहार का निय करना, निर्णय लेना तथा सांवेगिक दशाएं सचेत रूप से औ स्वेच्छया काफी प्रयास की अपेक्षा करते हैं। इसके लिए मानसि ऊर्जा स्रोत की भी जरूरत पड़ती है जो जल्दी ही खर्च ह जाता है। फलतः सचेत ढंग से अपने को नियमित करने वाले कार्य कभी-कभी और थोड़ी अवधि के लिए घटित हो पाते हैं। दूसरी ओर, अचेतन या स्वतःचालित प्रक्रियाएं अनैच्छिक, अनायास और तीव्र गति वाली होती हैं। इनमें से कई किसी भी क्षण सक्रिय हो सकते हैं। स्वतः चालित आत्मनियमन में सामान्य चिंतन की तुलना में एक-तिहाई कम प्रयास लगता है। यह पाया गया है कि कुछ स्वतःचालित निर्देशक व्यवस्थाएं स्वाभाविक (Natural) होती हैं और उनके विकास हेतु अनुभव की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ अन्य निर्देशक व्यवस्थाएं आवृत्तिमूलक और निरंतर अनुभव से विकसित होती हैं। अध्ययनों से यह पता चलता है कि अचेतन प्रक्रियाओं में संलग्न मानसिक प्रस्तुतियाँ (Mental representation) सक्रिय करने वाले स्रोत को ज्यादा महत्त्व नहीं देतीं। व्यवहार में स्वतःचालन की प्रक्रिया शोधकर्ताओं के सामने एक महत्त्वपूर्ण चुनौती प्रस्तुत करती है।

सकारात्मक मनोविज्ञान : आशा, प्रसन्नता, प्रवाह (स्वतः स्फूर्ति/सहजता) जैसे विषयों में शोधकर्ताओं की रुचि बढ़ी है। ये सभी संप्रत्यय हमारे अस्तित्व के सकारात्मक (Positive) पहलू से जुड़े हैं। आशावादी लोग वे हैं जो कठिन परिस्थितियों में भी सकारात्मक परिणामों की आशा करते हैं। इनसे अपेक्षाकृत सकारात्मक भावनाएं पैदा होती हैं। ये मानसिक स्वास्थ्य के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ी होती हैं। इसी तरह, आशा एक चिंतन प्रक्रिया है जिसमें लोगों को कर्ता होने की अनुभूति होती है। यह समस्याओं से जूझने की क्षमता, स्वास्थ्य तथा प्रगति से सकारात्मक रूप से जुड़ी है। प्रसन्नता एक अपेक्षाकृत स्थायी सांवेगिक अवस्था है जिसमें जीवन तथा स्वयं से संतुष्टि तथा सक्रिय रूप से उपलब्धि और खुशियों को पाना शामिल है। यह पाया गया है कि प्रियजनों के साथ समय बिताना, चुनौती भरे

और सार्थक काम करना, दूसरों की सहायता करना, शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना तथा सकारात्मक सोच प्रसन्नता की कुंजी हैं। प्रवाह (Flow) एक बिना सचेत हुए ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति किसी कार्य पर ध्यान केंद्रित करता है पर समय की चिंता से मुक्त रहता है। जब व्यक्ति के कौशलों की जरूरत किसी परिस्थिति की चुनौतियों का सामना करने के लिए पड़ती है तो वह काम में डूब जाता है। फलतः इष्टतम अनुभव (Optimal experience) की विशेषताएँ उभर कर सामने आती हैं : लोग अपने काम में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि वह सहज, अनायास लगभग स्वचालित-सा सम्पन्न हो जाता है। वे अपने आपको काम से अलग देखते ही नहीं। अनुभव स्वयं में अपना लक्ष्य बन जाता है। यह जीवन के क्रम को एक भिन्न स्तर पर ले जाता है। एक नर्तक, एक पर्वतारोही, एक शतरंज का खिलाड़ी, एक कंप्यूटर का उपयोग करने वाला, अपनी छोटी बेटी के साथ समय बिताती माँ, लगभग सभी आभास रहित गति – सहज प्रवाह (Flow) का अनुभव करते हैं। वर्तमान के इस प्रवाह में रहने पर व्यक्ति भौतिक अस्तित्व के भार को उतार फेंकता है क्योंकि विगत काल में जो कुछ हुआ हो और भविष्य में जो कुछ भी होने वाला हो, उसकी परवाह किए बिना आप तो सहज प्रवाह में तत्काल शामिल हो सकते हैं, उसमें अवगाहन कर सकते हैं।

चूंकि विभिन्न विषयों की रुचियाँ एक-दूसरे से मिलती-जुलती होती हैं इसलिए इनमें सहयोग भी दिखाई देता है। परिणामस्वरूप, अंतर्विषयी एवं बहुविषयात्मक अध्ययन प्रारंभ किए जा चुके हैं। विशेष रूप से विज्ञान को ज्ञान प्राप्त करने की एक मानवीय क्रिया की अवधारणा से तथा गुणात्मक विधियों के उपयोग से कई विषय एक-दूसरे के निकट आ रहे हैं।

प्रमुख तकनीकी शब्द

अपचयवाद, व्यवहारवाद, संज्ञान, निर्धारणवाद, इंद्रियानुभवी, विकासात्मक दृष्टिकोण, समाज-जैविकी, संरचनावाद, लोक मनोविज्ञान, प्रकार्यवाद, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, मानववादी उपागम, नियमोन्वेषी, अंतर्दर्शन, प्राकृतिक व्यक्त्यंकन, मनोविश्लेषण, निदर्शन, मनोरोगचिकित्सा, मनश्चिकित्सा, विज्ञान, सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण।

सारांश

- *मनोविज्ञान एक आधुनिक विषय है जिसका लक्ष्य व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश में मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं व्यवहारों की जटिलताओं को समझने का प्रयास करना है। इसे प्राकृतिक विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान दोनों ही माना जाता है।*
- *मानसिक समस्याओं और मुद्दों के बारे में विचार करने की भारतीय चिंतन की विभिन्न प्रणालियों में एक समृद्ध परंपरा रही है, फिर भी अन्य विषयों की भांति आधुनिक मनोविज्ञान की भी उत्पत्ति पाश्चात्य दर्शनशास्त्र से हुई है। मनोविज्ञान के उदय के प्रारंभिक चरण में यूरोप विशेषकर जर्मनी के शरीरक्रिया वैज्ञानिकों का सहयोग महत्त्वपूर्ण रहा, जिन्होंने शारीरिक क्रियाओं एवं शरीरक्रिया विज्ञान का संबंध व्यवहारपरक प्रकार्यों के कुछ पक्षों से स्थापित करने का प्रयास किया था।*
- *मनोवैज्ञानिक चिंतन के प्रमुख संप्रदाय हैं – संरचनावाद, प्रकार्यवाद, व्यवहारवाद, गेस्टाल्ट संप्रदाय मनोविश्लेषणवाद तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान। संप्रदाय युग के बाद मनोविज्ञान का विषय विविधतापूर्ण, मात्रात्मक एवं अनुप्रयोगात्मक हुआ जो सामाजिक यथार्थ के प्रति व्यवसायपरक ढंग से प्रतिक्रिया करता है।*
- *समकालीन मनोविज्ञान अनेक प्रवृत्तियों के साथ क्रियाशील है तथा अनेक दृष्टिकोणों एवं विविध विचारों से जाना जाता है जो व्यवहार को कई स्तरों पर निरूपित करते हैं। ये दृष्टिकोण एक-दूसरे से बिल्कुल अलग नहीं हैं। मानव प्रकार्यों की जटिलता को समझने के लिए प्रत्येक दृष्टिकोण से एक*

अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है। जैविकीय दृष्टिकोण से व्यवहार के कारणों की पहचान जैविकीय प्रक्रियाओं जैसे मस्तिष्क के कार्य एवं आनुवंशिकी द्वारा होती है। गत्यात्मक दृष्टिकोण आंतरिक मानसिक शक्तियों एवं द्वंद्वों की तरफ ध्यान देता है। संज्ञानात्मक दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक क्रियाकलापों के लिए चिंतन प्रक्रमों को महत्त्वपूर्ण मानता है। मानवीय दृष्टिकोण के अनुसार मानव व्यवहार विकसित होने की इच्छा, उत्पादन करने की इच्छा एवं मानव क्षमताओं को पूर्ण करने की इच्छा से संचालित होता है। विकासात्मक दृष्टिकोण के अनुसार उत्तरजीविता एवं विकास के लक्ष्य हेतु अनुकूलन स्थापित करने की दृष्टि से व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। मानवीय चिंतन, अनुभूतियों एवं क्रियाकलापों के निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों की भूमिका सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण का मूल है।

- आज मनोवैज्ञानिक विभिन्न विशेषज्ञताओं वाले क्षेत्रों में अपना कार्य कर रहे हैं एवं उन सबके अपने-अपने सिद्धांत तथा अपनी-अपनी विधियाँ हैं। इन विशिष्टता वाले क्षेत्रों की पहचान उनकी शोध पत्रिकाओं, संगठनों एवं व्यावसायिक समितियों से बनी हुई है। इनके अंतर्गत विशिष्ट क्षेत्रों में सिद्धांतों के निर्माण एवं समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जाता है। विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं – संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, तुलनात्मक-कायिक मनोविज्ञान, असामान्य मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, शैक्षिक एवं विद्यालय मनोविज्ञान, नैदानिक एवं परामर्श मनोविज्ञान, व्यक्तित्व मनोविज्ञान एवं पर्यावरणीय मनोविज्ञान तथा औद्योगिक/संगठनात्मक मनोविज्ञान।

- एक विषय के रूप में मनोविज्ञान मानव व्यवहार के विषय में मात्र सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं प्रदान करता, बल्कि यह विभिन्न स्तरों पर समस्याओं के समाधान में भी सहयोग करता है। मनोवैज्ञानिक विभिन्न क्रियाकलापों के लिए विभिन्न स्तरों; जैसे – विद्यालयों, चिकित्सालयों, औद्योगिक इकाइयों, प्रशिक्षण संस्थानों, सेना तथा अन्य सरकारी संस्थानों में नियुक्त होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक निजी व्यवसाय करते हैं और परामर्श देते हैं। मनोविज्ञान का अध्ययन स्वयं को समझने एवं व्यक्तिगत उन्नति के लिए भी उपयोगी है। मनोविज्ञान में ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्तियों की उचित समझ से ऐसा प्रशिक्षण एवं दक्षता प्राप्त होती है जिनकी सहायता से कोई भी एक सक्षम व्यक्ति बन सकता है।

- विज्ञान एवं मानविकी के विभिन्न विषय क्षेत्रों में श्रम का विभाजन स्वाभाविक वर्गीकरण नहीं है अपितु मानव-निर्मित है। आधुनिक समय में विभिन्न विषयों को मिला कर पहल की जा रही है जिससे वास्तविकता की अच्छी समझ मिल सके। इससे विभिन्न विषयों में पारस्परिक सहयोग बढ़ा है। मनोविज्ञान की रुचियां समाजिक विज्ञानों (उदाहरणार्थ, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र) तथा जैव विज्ञानों से मिलती-जुलती हैं। ऐसे प्रयासों से अनुसंधान एवं अनुप्रयोग में सार्थक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं।

समीक्षात्मक प्रश्न

1. आम आदमी के दैनंदिन मनोविज्ञान एवं वैज्ञानिक मनोविज्ञान में आप किस तरह अंतर करेंगे?
2. मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए प्रयुक्त विभिन्न दृष्टिकोण किन आधारों पर एक दूसरे से भिन्न हैं?
3. आपके अनुसार मनोविज्ञान में अध्ययन के लिए कौन-सा दृष्टिकोण मानसिक प्रक्रमों एवं व्यवहार को समझने में अधिक उपयोगी रहा है?
4. ऐसी कौन-सी समस्याएँ हैं जिनके समाधान के लिए मनोवैज्ञानिकों को अन्य विषयों के साथ सहयोग करना उपयोगी हो सकता है?
5. मनोविज्ञान के सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?
6. मनोविज्ञान के आरंभिक विकास पर कौन-से प्रमुख प्रभाव थे?
7. व्यवहारवाद किस तरह मनोविश्लेषण से भिन्न है?
8. चेतना के प्रति गेस्टाल्ट और संरचनावादी दृष्टिकोणों में क्या अन्तर है?
9. संज्ञानात्मक क्रांति के प्रमुख पक्ष क्या हैं?
10. मनोविज्ञान के अनुप्रयोग के रूप में पर्यावरण मनोविज्ञान तथा असामान्य मनोविज्ञान के प्रमुख सरोकार क्या हैं?

2 मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लक्ष्य
- प्रेक्षणात्मक, सहसंबंधात्मक एवं प्रयोगात्मक विधियों का परिचय
- समय पर आधारित अध्ययन के अभिकल्प
- मनोवैज्ञानिक उपकरण
- मनोवैज्ञानिक अध्ययन में नैतिक मुद्दे

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

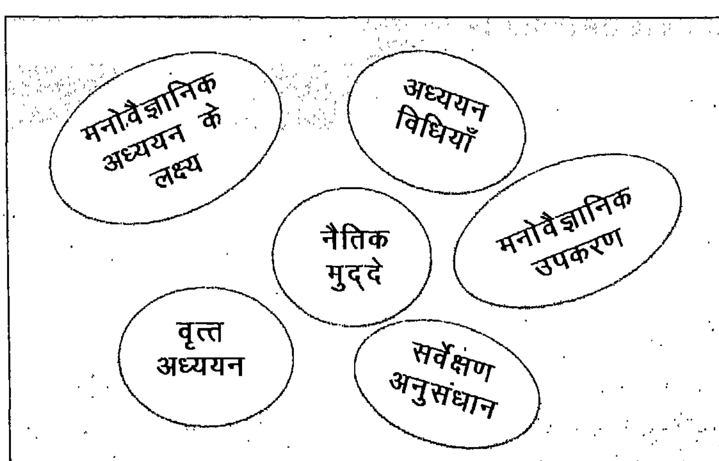
- मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के उद्देश्य समझ सकेंगे,
- मनोविज्ञान के प्रति इंद्रियानुभविक दृष्टिकोण का महत्त्व बता सकेंगे,
- प्रेक्षणात्मक, सहसंबंधात्मक एवं प्रयोगात्मक अध्ययन विधियों से परिचित हो सकेंगे,
- सरल, मनोवैज्ञानिक अध्ययन के संचालन के कौशल जान सकेंगे,
- मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित विभिन्न उपकरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, तथा
- मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में निहित नैतिक मुद्दों को समझ सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

पिछले अध्याय में आपने पढ़ा कि मनोविज्ञान विषय मानसिक जगत तथा व्यवहार के विभिन्न पक्षों के अन्वेषण के लिए समर्पित है। मानव व्यवहार की विविधताओं तथा विस्तार क्षेत्र को देखने से स्पष्ट होता है कि इस प्रकार का अन्वेषण कठिन कार्य है। एक मनोविज्ञान के छात्र के रूप में व्यक्ति के नानाविध व्यवहारों के कारण जानने के लिए आपकी उत्सुकता जरूर बढ़ गई होगी। कुछ प्रश्न हर किसी के सामने उपस्थित हो जाते हैं; जैसे – मैं क्यों भूल जाता हूँ? कौन-सी चीजें व्यक्ति को क्रोधित करती हैं? क्या धूम्रपान की आदत को नियंत्रित किया जा सकता है? कोई अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों का अभिप्रेरणा स्तर कैसे बढ़ा सकता है? सच्चाई यह है कि चाहे हम मनोविज्ञान के छात्र हों या नहीं, हम सभी इस तरह के प्रश्नों का अपने-अपने ढंग से उत्तर देने की कोशिश करते हैं। मनोवैज्ञानिक लोग वैज्ञानिक के रूप में इन प्रश्नों का व्यवस्थित रूप से उत्तर देने का प्रयास करते हैं, उनकी व्याख्या करने के लिए सिद्धांत का निर्माण करते हैं और संबंधित समस्याओं के समाधान में उन सिद्धांतों का उपयोग करते हैं। मनोवैज्ञानिक अध्ययन या शोध की सीमा बड़ी विस्तृत है। उदाहरणार्थ, एक संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक भूलने के कारणों को जानना चाहेगा। एक शिक्षा-मनोवैज्ञानिक उन दशाओं को समझने का प्रयास करेगा जो कक्षा में सीखने को गति दे सके, सीखने में वृद्धि करा सके। एक संगठनात्मक-मनोवैज्ञानिक, कंपनी के कर्मचारियों को दी गई नई तकनीक के लिए उनके प्रतिरोध के स्वरूप को समझने का प्रयास कर करता है। एक विकासात्मक मनोवैज्ञानिक पारिवारिक संरचना में आ रहे बदलाव का बच्चों के पालन-पोषण पर प्रभाव जानने में रुचि ले सकता है।

इस अध्याय में आपको मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में ज्ञान पाने के लिए उपयोग में लाई जाने वाली विधियों से परिचित कराने का प्रयास किया जाएगा। इसके अंतर्गत मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के उद्देश्यों का वर्णन किया गया है तथा वैज्ञानिक शोध की विशेषताओं का उल्लेख भी किया गया है। तदनंतर मनोवैज्ञानिकों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली प्रमुख अध्ययन विधियों; जैसे – प्रेक्षण, प्रायोगिक अध्ययन, अप्रायोगिक अध्ययन, अनुदैर्ध्य तथा दीर्घकालिक अध्ययन तथा सर्वेक्षण का परिचय दिया गया है। मनोवैज्ञानिक उपकरणों; जैसे – परीक्षण, साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों का वर्णन भी किया गया है। अंत में मनोवैज्ञानिक शोध में उठने वाले नैतिक मुद्दों का उल्लेख किया गया है।



मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के लक्ष्य

यदि आप मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोध कार्यों को देखें तो पाएंगे कि इन्हें दो प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है। **मूलभूत अनुसंधान** (Basic research) एवं **अनुप्रयुक्त अनुसंधान** (Applied research)। *मूलभूत अनुसंधान व्यवहार के सामान्य सिद्धांतों के निर्माण के लिए सिद्धांतों की परीक्षा करता है।* इससे प्राप्त ज्ञान अध्ययनकर्ता की उत्सुकता की संतुष्टि के लिए होता है। *दूसरी ओर, अनुप्रयुक्त अनुसंधान किसी विशिष्ट समस्या का समाधान या हल ढूंढ़ने के लिए किया जाता है।* इस प्रकार के शोध परिणामों का उपयोग समस्याओं के समाधान के लिए किया जाता है।

आजकल मनोवैज्ञानिक धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार की हस्तक्षेप के कार्यों में रुचि ले रहे हैं ताकि इनकी सहायता से लोगों के व्यवहार को वांछित दिशा में परिवर्तित किया जा सके। सरकार भी बड़ी-बड़ी योजनाओं को लागू कर रही है। इसके लिए **कार्यक्रम मूल्यांकन** (Programme evaluation) अनुसंधान के एक महत्त्वपूर्ण प्रकार के रूप में स्थापित हो रहा है। कुछ शोधकर्ता सिद्धांत के अनुप्रयोग एवं मूल्यांकन के व्यवस्थित एकीकरण में जुटे हैं जिसे **कार्योन्मुख अनुसंधान** (Action research) कहा जाता है। इस प्रकार का अनुसंधान तब शुरू किया जाता है जब वास्तविक जीवन के परिवेश में किसी समस्या पर ध्यान जाता है। अध्ययनकर्ता समस्या के कारणों का पता लगाने के लिए शोध करता है। इसके परिणामों के आधार पर हस्तक्षेप की योजना बनती है एवं क्रियान्वित की जाती है। हस्तक्षेप के प्रभाव को वैज्ञानिक ढंग से आंका जाता है। मूल्यांकन से यह निर्णय लेने में सहायता मिलती है कि हस्तक्षेप को जारी रखा जाए अथवा परिवर्तित किया जाए या फिर उसके स्थान पर कुछ और किया जाए।

मनोवैज्ञानिक शोध या अध्ययन कई तरह के होते हैं, फिर भी यदि निकट से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें कुछ सामान्य लक्ष्य भी होते हैं जो सभी प्रकार के अध्ययन में पाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, ये लक्ष्य सभी प्रकार के अध्ययनों में निहित होते हैं। यहाँ पर इन लक्ष्यों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

वर्णन : शोधकर्ता का सबसे पहला काम व्यवहार या घटना का वर्णन करना होता है। परिशुद्ध या ठीक-ठीक वर्णन से अध्ययन की जाने वाली घटना को परिभाषित करने एवं अन्य घटनाओं से अलग करने में सहायता मिलती है। घटनाओं का अंकन या अभिलेखन वर्णन का अभिन्न अंग है। जब तक हम किसी गोचर या घटना का सही तरह से अंकन नहीं कर लेते तब तक उसके बारे में विस्तृत जाँच नहीं की जा सकती ।

समझ या बोध : समझने का अर्थ यह जानना है कि कोई व्यवहार या गोचर क्यों घटित होता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि हम घटनाओं को तभी समझ पाते हैं जब हम इनके घटित होने के कारणों की व्याख्या कर सकें। इससे कारणों को पहचानने में सहायता मिलती है। वैज्ञानिक शब्दावली में *कारण सतत रूप से अपने परिणाम से संबंधित होता है और वह प्रभाव के उत्पन्न होने के पहले विद्यमान रहता है।*

पूर्वकथन या भविष्यकथन : पूर्वकथन का उद्देश्य है किसी गोचर के कारणों की समझ के आधार पर किसी निश्चित घटना को पहले से ही बता देना। पूर्वकथन का अर्थ है, घटना के बारे में भविष्यवाणी करना। यह ध्यान देने योग्य बात है कि पूर्वकथन में त्रुटि भी रह सकती है, यानी सभी पूर्वकथन पूर्णतः सच नहीं होते। मनोविज्ञान में अनेक व्यक्तियों से प्राप्त प्रदत्तों (Data) या आंकड़ों के औसत के आधार पर पूर्वकथन किया जाता है क्योंकि एक व्यक्ति से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इसकी परिशुद्धता घट जाती है। किसी निश्चित व्यवहार के घटित होने या कार्य-कारण के संबंध के पाए जाने की भविष्य में घटित होने की संभावना के बारे में कथन करना ही पूर्वकथन है। किसी भी व्याख्या की उपयुक्तता का निर्णय इस आधार पर किया जाता है कि अध्ययन में घटनाओं का पूर्वकथन कितना सही या अच्छी तरह से किया जा सकता है।

नियंत्रण: नियंत्रण का तात्पर्य है किसी व्यवहार अथवा गोचर में वास्तव में परिवर्तन लाना। किसी व्यवहार को घटित कराना, उसमें कमी या वृद्धि लाना, नियंत्रण को स्पष्ट करता है। जैसे – मनोवैज्ञानिक उपचार द्वारा व्यक्ति में परिवर्तन लाना नियंत्रण का अच्छा उदाहरण है। इसलिए नियंत्रण करने में उस ज्ञान का उपयोग गोचर या घटना को प्रभावित करने के लिए किया जाता है।

अनुप्रयोग : समाज में व्यक्ति, संगठन या समुदाय के स्तर पर घटित होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान किए जाते हैं। विभिन्न परिवेशों; जैसे – विद्यालय में कक्षा संबंधी या कल-कारखानों, अस्पतालों एवं शैक्षिक इकाइयों में घटित

होने वाली समस्याओं के समाधान करने में मनोवैज्ञानिक के व्यावसायिक सहायता की जरूरत पड़ती है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनुप्रयोग बहुत अधिक किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों के ये प्रयास जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पिछले अध्याय में आपने अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बारे में अध्ययन किया है, जो मनोविज्ञान के अनुप्रयोगों का स्पष्ट महत्त्व बताते हैं।

क्रियाकलाप 2.1

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए विभिन्न मुद्दों की पहचान

आप ऐसी किन्हीं तीन समस्याओं का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए जिनका सामना विद्यार्थी, विद्यालय के परिवेश में करते हैं और जिनमें आप मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप की आवश्यकता समझते हैं।

अपने मनोविज्ञान के अध्यापक से इन समस्याओं पर परिचर्चा कीजिए।

आपने कितना सीखा

1. *व्यवहार के बारे में सामान्य सिद्धांतों का लक्ष्य ______ का ______ निर्माण है।*
2. *कार्योन्मुख अनुसंधान में ______ ______ तथा ______ का एकीकरण किया जाता है।*
3. *______ शोधकर्ता का पहला काम होता है।*
4. *किसी गोचर या घटना के घटित होने के कारणों की व्याख्या ______ बताता है।*
5. *कुछ व्यवहार घटित होंगे, इसकी संभावना के बारे में कथन को ______ कहा जाता है।*

***उत्तर** — 1. आधारभूत अनुसंधान, 2. सिद्धांत, अनुप्रयोग, मूल्यांकन, 3. वर्णन, 4. समझ, 5. पूर्वकथन।*

अध्ययन की विधियाँ

वैज्ञानिक विधि

पहले बताए गए अध्ययन के लक्ष्यों को कई ढंग से पूरा किया जा सकता है। इसके लिए हम प्रश्न पूछ सकते हैं, गोचर या घटना के बारे में विभिन्न स्रोतों से जानकारी पाने के लिए प्रयास करते हैं, द्वितीयक स्रोतों से उसका अध्ययन करते हैं, जानकार लोगों से बातचीत करते हैं, पुस्तकों से जानकारी लेते हैं, ज्योतिषी के पास जाते हैं, राशिफल देखते हैं और **ओझा-सोखा** (तांत्रिक) के पास भी जाते हैं। बहुत-सी सूचनाएं हम संचार माध्यमों (जैसे – समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, दूरदर्शन) के माध्यम से तथा इंटरनेट पर खोज कर एकत्र करते हैं। इसके अतिरिक्त हम अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर भी निर्भर रहते हैं, जो हमारी कामनाओं, इच्छाओं एवं अधिमान्यताओं से प्रभावित होते हैं। ये सभी हमारे सामान्य ज्ञान या सामान्य सोच में योगदान देते हैं। ज्ञान के ये स्रोत कभी प्रभावकारी होते हैं और कभी नहीं। परंतु ये विधियाँ इसलिए प्रभावकारी होती हैं कि इन पर हमारा प्रबल विश्वास होता है। फिर भी ये पूरी तरह विश्वसनीय नहीं मानी जातीं।

विज्ञान किसी गोचर या घटना के अध्ययन में प्रयुक्त विधि में निहित होता है। वैज्ञानिक विधि **इंद्रियानुभविक** (Empirical) होती है जो हमारी ज्ञानेंद्रियों के सांवेदिक अनुभव पर ही आधारित होती है। वैज्ञानिक विधि में पूर्वाग्रह के बिना प्रेक्षण (Obesrvation) किया जाता है। इसमें **वस्तुनिष्ठ** (Objectivity) एवं कठोर मानकों का पालन किया जाता है। वैज्ञानिक अध्ययन **सार्वजनिक** (Public) होता है इसलिए नियत विधियों का उपयोग करके कोई भी व्यक्ति अध्ययन के परिणाम की जाँच कर सकता है। वैज्ञानिक कथनों में संशोधन करने की सदा स्वतंत्रता रहती है क्योंकि त्रुटि निवारण इस विधि का एक अंतर्निहित गुण है। वैज्ञानिक कथन इस प्रकार प्रस्तुत किए जाते हैं कि उनको गलत **सिद्ध कर पाना** संभव हो। दूसरे शब्दों में यदि वे गलत हैं तो उन्हें गलत भी साबित किया जा सके। यदि आँकड़े या **डेटा** यह बताते हैं कि प्राप्त ज्ञान गलत है तो उसका परिमार्जन होना चाहिए। वैज्ञानिक शोध के प्रयासों के अंतर्गत किसी अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को तब तक स्वीकृत नहीं किया जाता जब तक कि उसकी **पुष्टि** (Replication) नहीं हो जाती। यदि विभिन्न अध्ययनों एवं बड़े प्रतिदर्शों पर प्राप्त परिणामों की पुष्टि होती है तो इनका सामान्यीकरण नियम या सिद्धांत के रूप में कर दिया जाता है।

मनोविज्ञान का भी उद्देश्य व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के बारे में ज्ञान अर्जित करना होता है। यह ज्ञान मुख्य रूप से सिद्धांत निर्माण एवं समस्याओं के समाधान हेतु उपयोग में लाया जाता है। इसीलिए विज्ञान को किसी समस्या समाधान के अभ्यास के रूप में माना जाता है। इंद्रियानुभविक अध्ययनों से प्राप्त परिणाम से सिद्धांत की जाँच होती है एवं इनमें परिमार्जन भी किया जाता है। सिद्धांत, अनुसंधान एवं अनुप्रयोग एक-दूसरे पर निर्भर होते

हैं। सिद्धांत से ज्ञान संगठित होता है। इंद्रियानुभविक अनुसंधान द्वारा सिद्धांतों की वैधता एवं ज्ञान का अनुप्रयोग करने वाले कार्यक्रमों की जाँच होती है। अनुप्रयोग से भी सिद्धांत एवं शोध के लिए विचार सृजित होते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामों का उपयोग व्यक्तिगत, व्यावसायिक एवं सामाजिक संदर्भों में किया जाता है।

वैज्ञानिक विधि के चरण

वैज्ञानिक अनुसंधान एक सुपरिभाषित प्रक्रिया है, जिसमें निश्चित चरणों की एक श्रृंखला होती है। इस प्रक्रिया का आरंभ शोधकर्ता द्वारा शोध-विषय के चुनाव से होता है। तत्पश्चात् वह अपने क्षेत्र को क्रमशः सीमित बनाते हुए **शोध प्रश्न** (Research question) या समस्या का निर्माण करता है। यह कार्य पहले किए गए अनुसंधान, प्रेक्षण या व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर किया जाता है। ये सभी मिलकर **खोज के संदर्भ** (The context of discovery) को परिभाषित करते हैं। तदनंतर शोधकर्ता समस्या का कामचलाऊ उत्तर बनाता है, जो जाँची जा सकने योग्य या परीक्षणीय *परिकल्पना* के रूप में होता है। **परिवर्त्यों** का निर्धारण (पहचान) किया जाता है एवं अध्ययन का तरीका तय किया जाता है और अध्ययन की योजना बनाई जाती है। इसके बाद **आंकड़ों को एकत्र कर** उनका विश्लेषण किया जाता है। तत्पश्चात् शोधकर्ता द्वारा परिणामों की व्याख्या की जाती है। अंत में शोधकर्ता अपने शोधकार्य का **प्रतिवेदन** (रिपोर्ट) लिखकर सार्वजनिक उपयोग के लिए उसका **प्रकाशन** करता है।

शोध प्रश्न अथवा समस्या

किसी भी अध्ययन का आरंभ किसी घटना अथवा गोचर के संबंध में जिज्ञासा से होता है, जिसे किसी प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। सरल शब्दों में मनोवैज्ञानिक अध्ययन का केंद्रबिंदु निम्नलिखित प्रकार के एक या एक से अधिक प्रश्न होते हैं।

1. वे कौन-सी घटनाएं हैं जो किसी अनुक्रिया या व्यवहार को उत्पन्न करती हैं अथवा निर्धारित करती हैं?
2. किसी व्यवहार या क्रिया का स्वरूप क्या है और यह अन्य व्यवहारों से कैसे जुड़ा है?
3. आंतरिक मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहारपरक गोचरों या घटनाओं के बीच कौन-से संबंध हैं?

शोध-प्रश्न ही शोधकर्ता के अध्ययन की दिशा को निर्धारित करता है और शोधकर्ता को शोध-प्रश्न को पहचान एवं स्पष्ट वर्णन के लिए परिश्रम करना पड़ता है। एक बार जब प्रश्न स्पष्ट हो जाता है तो अगला चरण सोच विचार कर प्रश्न के संभावित उत्तर की खोज करना होता है। वास्तव में ज्यादातर वैज्ञानिकों के विचार में वास्तविक इंद्रियानुभविक वैज्ञानिक क्रियाकलाप की शुरुआत यहीं से होती है। सुझाए गए या प्रस्तावित कामचलाऊ उत्तर या **परिकल्पना** (Hypothesis) की जाँच की प्रक्रिया को **औचित्य प्रतिपादन का संदर्भ** (Context of justification) कहा जाता है। समस्या तथा परिकल्पना के कथन में परिवर्त्य पाए जाते हैं। अतः हम यहाँ पर सबसे पहले परिवर्त्यों को समझने का प्रयास करेंगे।

परिवर्त्य

ऊपर परिकल्पना की चर्चा करते समय 'परिवर्त्य' या 'चर' का उल्लेख किया गया था। मनोविज्ञान के वैज्ञानिक लेखन को पढ़ते समय परिवर्त्य शब्द को आप बार-बार पढ़ेंगे। इसलिए इसे स्पष्ट रूप से जान लेना आवश्यक है। *कोई घटना, दशा या प्रक्रिया जो परिवर्तित होती रहती है, परिवर्त्य कहलाती है। परिवर्त्य किसी वस्तु या प्राणी के किसी भी मापनीय गुण को व्यक्त करता है।* **परिवर्त्य मात्रात्मक** (Quantitaive) भी हो सकता है अथवा **गुणात्मक** (Qualitative) भी। दोनों ही प्रकार के परिवर्त्य मनोवैज्ञानिक अध्ययन में पाए जाते हैं। मात्रात्मक परिवर्त्य वे गुण हैं जिनमें 'मात्रा' प्रमुख विशेषता के रूप में पाई जाती है। इसके विपरीत, गुणात्मक परिवर्त्य श्रेणी के रूप में होते हैं एवं उन्हें मात्रा की किसी विमा पर व्यवस्थित नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, धर्म (हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई), लिंग (पुरुष, स्त्री), जाति या प्रजाति गुणात्मक परिवर्त्य के उदाहरण हैं। दूसरी ओर आयु, उद्दीपक की तीव्रता, कार्य की कठिनाई आदि मात्रात्मक परिवर्त्यों के उदाहरण हैं।

परिवर्त्य के स्वरूप को अधिक स्पष्ट, परिशुद्ध एवं सहज ढंग से समझने योग्य बनाने के लिए इन्हें संक्रियात्मक रूप से परिभाषित करना आवश्यक है। इस तरह वह वास्तविक **संक्रिया** (Operation) जो परिवर्त्य को परिभाषित करती है उसे स्पष्ट किया जाता है। परिवर्त्य के मापन के उद्देश्य से भी **संक्रियात्मक परिभाषा** (Operational definition) दी जाती है। चूँकि मनोवैज्ञानिक परिवर्त्य जटिल होते हैं इसलिए इनके मापन

में विशेष समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। इसीलिए मनोवैज्ञानिक लोग परिवर्त्य की संक्रियात्मक परिभाषा के उपयोग के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं। इसके लिए वे प्रायः आत्म-प्रतिवेदन यानी वाचिक मापक, व्यवहारपरक एवं दैहिक मापक का उपयोग करते हैं जिनसे संक्रियाओं को स्पष्ट करने एवं अध्ययन को सुकर बनाने में सहायता मिलती है।

परिकल्पना

अध्ययन की जाने वाली *दो या दो से अधिक घटनाओं एवं परिवर्त्यों के बीच संभावित संबंधों का कामचलाऊ तथा परीक्षणीय कथन परिकल्पना कहलाता है।* दूसरे शब्दों में, परिकल्पना शोध समस्या का सुझाया गया प्रस्तावित उत्तर होती है। किसी अध्ययन की उपयोगिता के लिए परिकल्पना का कथन इस ढंग से किया जाता है जिससे कि उसकी जाँच या परीक्षण को इंद्रियानुभविक स्तर पर किया जा सके। शोधकर्ता का यह दायित्व होता है कि वह कुछ ऐसी विधियों का पता लगाए या सुझाए जिनकी सहायता से इंद्रियानुभविक प्रदत्त सामग्री (Data) के आधार पर परिकल्पना की जाँच हो सके। परिकल्पना सरल एवं उपलब्ध ज्ञान के अनुकूल होनी चाहिए।

उदाहरणार्थ, मान लीजिए आप सीखने की प्रक्रिया पर पुरस्कार का प्रभाव देखना चाहते हैं। आपने सर्वप्रथम किए गए अनुसंधानों का विश्लेषण किया एवं पाया कि ये दोनों परिवर्त्य एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। अब आपको इस विचार को परीक्षणीय कथन में ढालने की आवश्यकता होगी। यहाँ आप परिकल्पना कर सकते हैं। आप इस परिकल्पना को निम्नलिखित ढंग से व्यक्त कर सकते हैं।

> *वे व्यक्ति जिन्हें पुरस्कार दिया जाएगा उन्हें अध्याय को सीखने में उन व्यक्तियों की तुलना में जिन्हें पुरस्कृत नहीं किया जाएगा, कम प्रयास लगेगा।*

किसी भी अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने और दिशा-निर्देश देने में परिकल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परिकल्पनाएं अक्सर पहले किए गए शोधों के परिणामों, व्यक्तिगत प्रेक्षणों एवं निजी अनुभवों से निर्मित की जाती हैं।

आंकड़ा संकलन

एक शोधकर्ता, शोध-समस्या के अनुरूप विशिष्ट अध्ययन विधियों (जैसे – प्रयोग, प्रेक्षणवृत्त अध्ययन, सहसंबंधात्मक अध्ययन एवं सर्वेक्षण) में से किसी एक विधि को चुनता है।

क्रियाकलाप 2.2

परिकल्पना के स्वरूप की पहचान

निम्नलिखित शोध प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़िए और संभावित परिकल्पनाओं का कथन कीजिए।

1. *क्या बच्चों को आपस में सहयोग करने पर भाई-बहनों की संख्या का प्रभाव पड़ता है?*
2. *क्या शाब्दिक सामग्री की सार्थकता सीखने की गति को प्रभावित करती है?*
3. *क्या शारीरिक व्यायाम का स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है?*
4. *क्या शारीरिक आकर्षण एवं मित्रता एक दूसरे पर निर्भर करते हैं?*

अपने मनोविज्ञान अध्यापक के साथ अपनी परिकल्पनाओं पर विचार-विमर्श कीजिए।

इसके बाद कार्य शुरू करने के पहले संपूर्ण शोध प्रक्रिया की एक रूपरेखा या खाका तैयार करता है। शोधकर्ता आवश्यक डेटा (प्रदत्त) संग्रह करने के उपकरणों के बारे में भी निर्णय लेता है। यदि बना-बनाया उपकरण उपलब्ध नहीं है तो वह एक उपयुक्त उपकरण को शोधकार्य आरंभ करने के पूर्व विकसित कर सकता है। शोधकर्ता अध्ययन के लिए अध्ययन में प्रतिभागियों (भाग लेने वालों) के बारे में भी निर्णय लेता है। प्रायः एक ऐसे छोटे प्रतिदर्श (Sample) का चयन किया जाता है जो समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। कुछ प्रयोगकर्ता वास्तविक अध्ययन शुरू करने के पहले छोटे पैमाने पर एक आरंभिक अध्ययन (Pilot study) भी करते हैं। प्रदत्त संग्रह की विस्तृत व्याख्या यहाँ पर नहीं दी जा रही है, क्योंकि इनका व्यापक विश्लेषण इस वर्तमान विवेचन की सीमा से परे है।

आंकड़ा विश्लेषण एवं व्याख्या

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों या प्रदत्तों का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय प्रविधियों एवं गुणात्मक तकनीकों द्वारा किया जाता है। इसका उद्देश्य होता है प्रदत्त के अर्थ को स्पष्ट करना एवं यह देखना कि इससे समस्या एवं परिकल्पना पर क्या प्रकाश पड़ता है।

रिपोर्ट की तैयारी एवं प्रकाशन

अधिकांश शोध अध्ययनों का यह अंतिम चरण होता है। अपनी रिपोर्ट में शोधकर्ता अध्ययन के सभी चरणों को स्पष्ट ढंग से लिखता है। इससे पाठक अध्ययन को समझ सकता

है तथा विभिन्न उद्देश्यों के लिए उसका उपयोग कर सकता है। इसकी सहायता से अध्ययन को दोहराया भी जा सकता है। वैज्ञानिक शोध-पत्रिकाओं या पुस्तकों में शोध संबंधी रिपोर्ट का प्रकाशन शोधकार्य व्यापक पाठक समुदाय तक पहुँचा सकता है।

अब तक आपने पढ़ा

वैज्ञानिक अध्ययन के लिए किसी गोचर/घटना की समझ के लिए प्राथमिक सूचना की आवश्यकता होती है। ऐसे दृष्टिकोण को इंद्रियानुभविक कहते हैं क्योंकि यह हमारे अपने सांवेदिक अनुभव एवं तथ्य पर आधारित होता है। एक इंद्रियानुभविक **विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान** मानव व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन, समझ, व्याख्या, पूर्वकथन एवं नियंत्रण करने का प्रयास करता है। जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए भी मनोविज्ञान के द्वारा प्रयास किया जाता है। इस प्रकार, मनोविज्ञान सामान्य ज्ञान या संचार माध्यमों (मीडिया) पर आधारित आदर्श या विश्वास की अपेक्षा वस्तुनिष्ठ साक्ष्यों पर आधारित होता है। इसकी यह भी मांग होती है कि ज्ञान वस्तुनिष्ठ हो। इसलिए साक्ष्यों की जाँच करना आवश्यक होता है। वैज्ञानिक ज्ञान सार्वजनिक होता है। ज्ञान जिसे प्राप्त किया जाता है एवं ज्ञान प्राप्ति में निहित प्रक्रियाएँ, ये दोनों ही सार्वजनिक जाँच पड़ताल के लिए उपलब्ध होती हैं। अध्ययन में प्रयुक्त विधियों एवं प्राप्त परिणामों को वैज्ञानिक शोध-पत्रिका में प्रकाशित किया जाता है एवं कोई भी व्यक्ति उसी विधि का उपयोग करके परिणामों की जाँच कर सकता है। वास्तव में अन्य शोधकर्ताओं द्वारा परिणामों की पुनरावृत्ति या पुष्टि को प्रोत्साहित किया जाता है।

प्रेक्षण : व्यवहारपरक घटना या गोचर का वर्णन

प्रेक्षण, मनोविज्ञान समेत सभी विषयों में वैज्ञानिक शोध का आधार बनाता है। कुछ निश्चित तरह के व्यवहारों को व्यवस्थित रूप से देखना प्रेक्षण कहलाता है। प्रेक्षण या तो पूर्वनिर्धारित श्रेणियों पर आधारित होता है या फिर प्रेक्षित व्यवहारों के आधार पर श्रेणियों का निर्माण किया जाता है। वस्तुतः *प्रेक्षण घटनाओं को नोट करना है जो अध्ययन किए जाने वाले गोचर या घटना से संबंधित परिवर्त्यों के औपचारिक बदलाव बिना किया जाता है।* प्रेक्षण जब प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक परिवेश में किया जाता है तो इसे **नैसर्गिक या प्रकृतिवादी प्रेक्षण** (Naturalistic observation) कहते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *वैज्ञानिक विधि की सर्वमुख विशेषता उसका वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण है।* सही/गलत
2. *एक वैज्ञानिक अध्ययन सामान्य ज्ञान के उपयोग पर आधारित है।* सही/गलत
3. *'थके होने' की एक अच्छी संक्रियात्मक परिभाषा होगी "वे प्रतिभागी जिन्हें शारीरिक व्यायाम के पश्चात् प्रयोग के लिए उपस्थित होने को कहा गया है"।* सही/गलत
4. *मानसिक प्रक्रियाओं के मनोवैज्ञानिक मापक परिवर्त्य कहलाते हैं।* सही/गलत

उत्तर – 1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. गलत।

तथापि प्राकृतिक दशा में पाए जाने वाले गोचर या घटना को कई ऐसे बाह्य परिवर्त्य प्रभावित करते हैं जिन पर प्रेक्षणकर्ता का कोई नियंत्रण नहीं रहता है। इसीलिए कुछ शोधकर्ता **प्रयोगशाला प्रेक्षण** (Laboratory observation) का उपयोग करते हैं, ताकि प्रासंगिक घटना को प्रयोगशाला की दशा में प्रेक्षित किया जा सके।

जब तक प्रेक्षणकर्ता प्रशिक्षित एवं कुशल न हो वह यह नहीं समझ पाएगा कि उसे क्या प्रेक्षण करना है या जो प्रेक्षित किया गया उसे वह याद नहीं रख पाएगा या प्रेक्षित व्यवहार को सही-सही या प्रभावी ढंग से संप्रेषित नहीं कर पाएगा। अच्छे किस्म के प्रेक्षण व्यवस्थित होते हैं। एक अच्छा प्रेक्षणकर्ता यह जानता है कि

मै किस लिए प्रेक्षण कर रहा हूँ?
मैं किसका प्रेक्षण कर रहा हूँ?
कब एवं कहाँ प्रेक्षण किया जाना चाहिए?
प्रेक्षण कैसे किए जाएंगे?
प्रेक्षण किस रूप में अंकित किए जाएंगे?

प्रेक्षणात्मक अध्ययन में शोधकर्ता **प्रतिभागी** (Participant) प्रेक्षक हो सकता है और अप्रतिभागी प्रेक्षक भी। अप्रतिभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक घटना से कुछ दूरी पर उपस्थित होकर प्रेक्षण का कार्य करता है एवं प्रयास करता है कि किए जाने वाले व्यवहार पर उसका न्यूनतम प्रभाव पड़े। इसके विपरीत प्रतिभागी प्रेक्षण के अंतर्गत प्रेक्षक जिनके व्यवहार का प्रेक्षण या अवलोकन किया जा रहा है

उनके उस समूह का हिस्सा बन जाता है। उसकी प्रतिभागिता अध्ययन की आवश्यकतानुसार परिवर्तित होती रहती है।

शोधकर्ता अपने अध्ययन की आवश्यकता के अनुरूप विशिष्ट प्रेक्षण तकनीकों को भी विकसित करता है। प्रेक्षण की संरचना तथा उसके मुख्य बिंदु अर्थात् (लक्ष्यगत व्यक्ति या व्यक्ति समूह) जिनके व्यवहार का प्रेक्षण किया जाना है, क्या प्रेक्षण होना है? उसका समय उपयोग की जाने वाली विधियां एवं प्रेक्षण किए जाने वाले व्यक्ति/समूह के फीडबैक इत्यादि को भी प्रेक्षक तय करता है। प्रेक्षित व्यवहार को अंकित करने का सामान्य ढंग यह है कि उन्हें आशुलिपि (Shorthand) या प्रतीकों में लिख लिया जाए। इसके अलावा टेपरिकार्डर, वीडियो कैमरा एवं एकतरफा दर्पण आदि प्रेक्षण को वस्तुनिष्ठ एवं प्रभावी बनाने के लिए अधिकाधिक उपयोग में लाए जा रहे हैं। नैसर्गिक प्रेक्षण के अंतर्गत व्यवहार का प्रेक्षण वास्तविक जीवन से संबंधित परिवेश में किया जाता है। परिस्थिति को नियंत्रित या परिवर्तित करने का कोई प्रयास नहीं किया जाता। अस्पतालों, विद्यालयों, घरों, बच्चों के दिवस-देखभाल केंद्रों इत्यादि परिवेशों में नैसर्गिक प्रेक्षण किया जाता है।

किसी भी प्रेक्षण अध्ययन में सभी व्यवहारों को अंकित कर पाना कठिन होता है। इसलिए शोधकर्ता सभी संभावित व्यवहारों में से कुछ व्यवहारों को चुनता है। इस चयन को व्यवस्थित एवं उपयोगी बनाने के लिए सभी व्यवहारों में से प्रतिनिधि **प्रतिदर्श या नमूने** (Representative sample) के चयन की जरूरत होती है। इसलिए शोधकर्ता समय अंतराल, घटना एवं परिस्थिति के बारे में जिनका नमूना लिया जाना है, निर्णय लेता है तथा श्रेणी एवं कोड बनाने की योजना बनाता है। शोधकर्ता एक **समग्रतावादी** (Holistic) दृष्टिकोण को अपना सकता है जिसके अंतर्गत व्यवहार के पूरे संरूप को अपने संदर्भ में अभिलिखित एवं विवेचित करता है।

नैसर्गिक प्रेक्षण का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि इससे उन व्यवहारों का अध्ययन करना संभव हो पाता है, जिनका प्रयोगशाला में प्रेक्षण नहीं किया जा सकता। परंतु इसमें अत्यधिक परिश्रम तथा समय लगता है एवं प्रेक्षणकर्ता के **पूर्वाग्रह** से परिणामों के प्रभावित होने की संभावना बनी रहती है। शोधकर्ता के मूल्य एवं विश्वास भी प्रेक्षण को प्रभावित कर सकते हैं।

अब तक आपने पढ़ा

प्रेक्षणात्मक अध्ययन स्वाभाविक जीवन दशा में घटित होने वाले कुछ गोचरों या घटनाओं का लेखा तैयार करने में सहायक होता है। शोधकर्ता घटना का क्रमबद्ध अभिलेख तैयार करता है। वह परिस्थितियों में या तो बाहरी व्यक्ति जैसा कार्य करता है या फिर स्वयं को परिस्थिति का हिस्सा बनाकर अध्ययन करता है। इसलिए पहली परिस्थिति अप्रतिभागी एवं दूसरी प्रतिभागी प्रेक्षण की होती है। शोधकर्ता पहले से प्रेक्षण की सावधानी से योजना बनाता है एवं प्रेक्षण की इकाई, कोड की श्रेणी, प्रतिदर्श नमूने के अंतराल एवं मापक आदि के बारे में निर्णय लेता है।

प्रायोगिक अनुसंधान : कारण तथा प्रभाव का निर्धारण

प्रयोग विधि वह विधि है जिसके अंतर्गत शोधकर्ता परिवर्त्यों का अत्यंत नियंत्रित दशा में प्रहस्तित करता है। **प्रहस्तन** (Manipulation) किसी परिवर्त्य का प्रयोगकर्ता द्वारा आवश्यकतानुसार बदलाव लाने को कहते हैं। प्रयोगकर्ता यह देखता है कि इस बदलाव के कारण चुने गए परिवर्त्य में कोई परिवर्तन आया या नहीं। सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि वैज्ञानिक ज्ञान पाने के लिए प्रयोग विशेष रूप से एक विश्वसनीय एवं वैध विधि है। *एक वास्तविक प्रयोग में शोधकर्ता अपनी रुचि के प्रमुख परिवर्त्यों का प्रत्यक्ष नियंत्रण करता है तथा महत्त्वपूर्ण परिवर्त्यों का यथोचित परिवर्तन के साथ उपयोग करता है।* इस प्रकार के अध्ययन से व्यवहार के कारणों की जानकारी पाने में सहायता मिलती है। प्रयोग सावधानीपूर्वक संचालित परिवेश में संपादित किया जाता है। व्यवहार को प्रभावित कर सकने वाले एक या अधिक परिवर्त्यों को बदला जाता है और शेष परिवर्त्यों को स्थिर रखा जाता है।

प्रहस्तन किसी परिवर्त्य में प्रयोगकर्ता द्वारा बदलाव लाने को कहते हैं। प्रयोगकर्ता परिवर्त्यों के सावधानीपूर्वक प्रहस्तन से यह प्रदर्शित करता है कि एक परिवर्त्य में परिवर्तन करने से दूसरे परिवर्त्य में परिवर्तन उत्पन्न हुआ है। *प्रहस्तन का तात्पर्य है प्रयोगकर्ता द्वारा किसी घटना में जानबूझ कर, सक्रिय परिवर्तन ले आना, ताकि इसका प्रभाव पड़े। प्रहस्तन द्वारा परिवर्त्य की विभिन्न मात्राएं या उसके विभिन्न मूल्यों को उत्पन्न करने की व्यवस्था की जाती है।*

अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्य

एक प्रयोग का उद्देश्य यह जानकारी प्राप्त करना होता है कि क्या एक परिवर्त्य, मान लें X में परिवर्तन के कारण दूसरे परिवर्त्य, मान लें, Y में परिवर्तन होता है। दूसरे शब्दों में, प्रयोग यह पता लगाने का प्रयास करता है कि X किस तरह Y को प्रभावित करता है। यहाँ X अनाश्रित एवं Y आश्रित परिवर्त्य को सूचित करते हैं।

वह परिवर्त्य जो प्रयोगकर्ता द्वारा प्रहस्तित एवं परिवर्तित किया जाता है, **अनाश्रित परिवर्त्य** (Independent varibale) कहलाता है। यह व्यवहार का संभावित कारण होता है जिसे शोधकर्ता जानना चाहता है। वह व्यवहार जिसके अध्ययन में प्रयोगकर्ता की रुचि होती है और जिस पर अनाश्रित परिवर्त्य में किए जाने वाले प्रहस्तन का प्रभाव देखना चाहता है उसे **आश्रित परिवर्त्य** (Dependent varibale) कहते हैं। इसे आश्रित परिवर्त्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें जो भी परिवर्तन होता है वह प्रयोगकर्ता द्वारा किए जाने वाले प्रहस्तन के फलस्वरूप होता है। दूसरे शब्दों में, यह **प्रतिभागी** पर दिए गए प्रायोगिक उपचार (Experimental treatment) पर निर्भर करता है। आश्रित परिवर्त्य वह कारक है जिसका प्रयोगकर्ता द्वारा प्रहस्तन के पश्चात् मापन किया जाता है।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्य एक-दूसरे पर आश्रित होते हैं एवं इनको एक-दूसरे से अलग करके परिभाषित नहीं किया जा सकता। आश्रित परिवर्त्य को प्रयोगकर्ता द्वारा चुना गया एक मात्र अनाश्रित परिवर्त्य ही प्रभावित नहीं करता अपितु बहुत-से **प्रासंगिक परिवर्त्य** भी प्रभावित कर सकते हैं, जिनके बारे में प्रयोगकर्ता की कोई रुचि नहीं होती है। इसलिए इन परिवर्त्यों को नियंत्रित किया जाना चाहिए। इसीलिए इन्हें **नियंत्रित परिवर्त्य** भी कहा जाता है। **क्रियाकलाप 2.3** में विभिन्न प्रकार के परिवर्त्यों के उपयोग का वर्णन किया गया है। इन्हें पहचानने का प्रयास करें।

प्रयोग में प्रतिभागियों के एक समूह को व्यवहार के संभावित कारण अथवा अनाश्रित परिवर्त्य की उपस्थिति में व्यवहार कराया जाता है एवं दूसरे समूह को अनाश्रित परिवर्त्य से वंचित रखा जाता है। पहला समूह **प्रायोगिक समूह** (Experimental group) एवं दूसरा समूह **नियंत्रित समूह** (Control group) कहलाता है। प्रयोगकर्ता द्वारा निर्मित दोनों समूहों में से किसी एक में रखे जाने का अवसर प्रत्येक प्रयोज्य को समान रूप से मिलना चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रयोज्यों का प्रायोगिक एवं नियंत्रित दशाओं में **यादृच्छिक आबंटन या वितरण** (Random assignment) किया जाना चाहिए। इसका लक्ष्य सभी संभावित बाह्य परिवर्त्यों को हटा देना होता है ताकि यह निश्चित हो सके कि दोनों समूहों के बीच पाई जाने वाली एकमात्र भिन्नता प्रहस्तित परिवर्त्य या अनाश्रित परिवर्तन के कारण ही है। यादृच्छिक आबंटन द्वारा यह संभावना कम हो जाती है कि प्रहस्तन की पहले से निर्धारित भिन्नताओं के कारण अध्ययन के परिणाम प्राप्त हुए हैं। इसलिए यादृच्छिक रीति से प्रतिभागियों को प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह में वितरित करने की तकनीक पूर्वाग्रहमुक्त होती है।

इसको समझने के लिए एक उदाहरण लिया जा सकता है। *मान लीजिए किसी शोधकर्ता के अध्ययन की समस्या है – क्या योगाभ्यास द्वारा हृदय रोग में सुधार लाया जा सकता है? इस अध्ययन में योगाभ्यास एक अनाश्रित परिवर्त्य है। प्रयोगकर्ता को योगाभ्यास की मात्रा का यथोचित उपयोग, प्रशिक्षित विशेषज्ञ की देखरेख में सप्ताह में 5 बार योगाभ्यास करने वाले हृदय रागियों को लेकर करना है।*

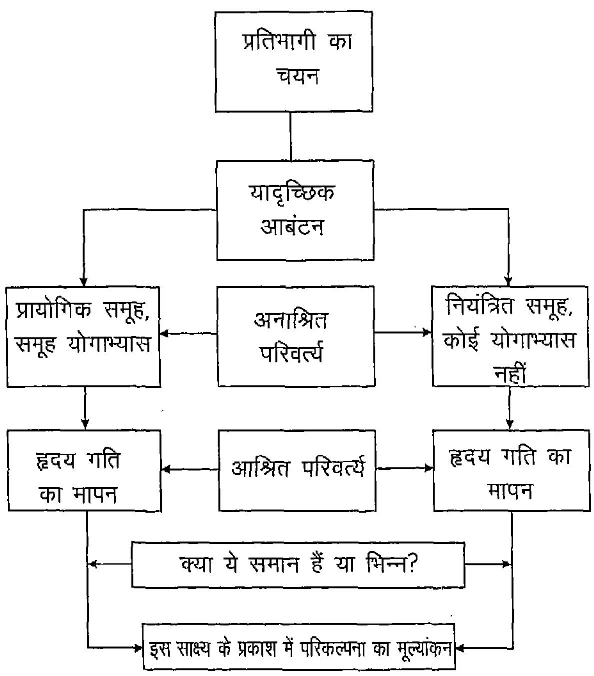
क्रियाकलाप 2.3

परिवर्त्यों की पहचान

चूँकि परिवर्त्यों को समझना अत्यंत आवश्यक है इसलिए हमने यहाँ आपके लिए कुछ उदाहरणों को शामिल किया है ताकि आप अपनी समझ की परख कर सकें। प्रत्येक परिस्थिति में परिवर्त्यों के तीन प्रकारों को अंकित कीजिए।

1. *एक प्राथमिक विद्यालय का अध्यापक अपने एक छात्र के उच्चारण को सुधारने का प्रयास करता है। जब भी छात्र सही उच्चारण करता है, अध्यापक सिर हिला कर या मुस्कराकर उसे प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत करता है। परिवर्त्यों को बताइए।*
2. *एक समाज-मनोवैज्ञानिक दूसरे लोगों की उपस्थिति का गाने के निष्पादन (performance) पर प्रभाव जानने के लिए एक प्रयोग करना चाहता हैं। परिवर्त्यों को बताइए।*

प्रयोग में रोगियों के दो समूहों की आवश्यकता होगी। इनमें से एक प्रायोगिक समूह होगा जो योगाभ्यास करेगा और दूसरा नियंत्रित समूह जो योगाभ्यास नहीं करेगा। हृदय रोगियों को यादृच्छिक रूप से इन दो समूहों में बाँट दिया जाएगा। इसके पश्चात् दोनों समूहों का प्रेक्षण योगाभ्यास की उपस्थिति और अनुपस्थिति की परिस्थितियों में किया जाएगा। इसके बाद हृदय की गतिविधि का मापन किया जाएगा। ये चरण चित्र 2.1 में दिखाए गए हैं।



***चित्र 2.1** प्रयोग की योजना।*

बाह्य परिवर्त्यों का नियंत्रण

अध्ययनकर्ता जब कोई प्रयोग करना चाहता है तो उसके सामने बाह्य परिवर्त्य प्रमुख चुनौती के रूप में उपस्थित होते हैं। उसे उन प्रासंगिक परिवर्त्यों को, जो आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित कर सकते हैं तथा जो प्रयोग से असंबद्ध होते हैं, नियंत्रित करने की जरूरत पड़ती है। प्रायोगिक अध्ययनों में तीन प्रकार के ऐसे प्रासंगिक परिवर्त्य पाए जाते हैं : **प्रतिभागी** से जुड़े **परिवर्त्य** (Participant related), **परिस्थिति** (Situation variable) से जुड़े **परिवर्त्य**, एवं **अनुक्रम** (Sequential) से जुड़े परिवर्त्य। प्रतिभागी संबंधी परिवर्त्यों के अंतर्गत आयु, लिंग धर्म, बुद्धि, तथा व्यक्तित्व इत्यादि आते हैं। परिस्थितिजन्य परिवर्त्यों के अंतर्गत पर्यावरणीय परिवर्त्य, जो प्रायोगिक परिस्थिति में विद्यमान रहते हैं, जैसे कोलाहल, तापमान, व आर्द्रता एवं प्रायोगिक संकार्यों से जुड़े परिवर्त्य शामिल हैं। अनुक्रम संबंधी परिवर्त्य **क्रम** (Serial order) प्रभाव को दर्शाते हैं। ये तब घटित होते हैं जब प्रतिभागियों से कई प्रायोगिक दशाओं में कार्य कराया जाता है। विभिन्न दशाओं में भाग लेने से प्रतिभागियों पर अनुकूलन, थकान या अभ्यास का प्रभाव पड़ता है। यदि इन परिवर्त्यों को नियंत्रित न किया जाए तो प्राप्त परिणामों की व्याख्या कर पाना कठिन हो जाता है।

प्रासंगिक परिवर्त्यों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोगकर्ता, कई तकनीकों का उपयोग करता है। इनमें से कुछ तकनीकों का उल्लेख यहाँ पर प्रस्तुत है।

1. चूँकि प्रयोगकर्ता का लक्ष्य बाह्य परिवर्त्यों को घटा कर कम से कम करना होता है इसलिए इन्हें नियंत्रित करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि उन्हें प्रायोगिक परिस्थिति से बाहर कर दिया जाए। इस उपाय को **निरसन** (Elimination) कहा जाता है।
2. यदि निरसन संभव नहीं होता है तो परिवर्त्यों को प्रयोग की स्थिति में स्थिर कर दिया जाता है ताकि उनका प्रभाव सभी प्रायोगिक दशाओं में एकसमान बना रहे। इस तकनीक को परिस्थितियों का **स्थिरीकरण** (Constancy of conditions) कहा जाता है।
3. प्राणिगत एवं पृष्ठभूमि के परिवर्त्यों के नियंत्रण के लिए **सुमेलन** या मिलान (Matching) की तकनीक का उपयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत बाह्य परिवर्त्यों को प्रयोग की सभी दशाओं में एक ही प्रकार का रखा जाता है। उदाहरणार्थ, प्रतिभागियों की आयु एकसमान रखी जाएगी।
4. **प्रतिसंतुलन** (Counter balancing) अनुक्रम प्रभाव को कम करने की अच्छी विधि है। कल्पना करें कि प्रतिभागियों को दो तरह के प्रायोगिक कार्य यानी 'अ' तथा 'ब' करने हैं। प्रयोगकर्ता कार्य के क्रम को परस्पर बदल सकता है इसलिए आधे प्रतिभागियों को 'अ' तथा 'ब' क्रम में ये कार्य दिए जाएंगे तथा आधे प्रतिभागियों को ये कार्य 'ब' तथा 'अ' क्रम में दिए जाएंगे। इस तरह दोनों ही कार्य पहले और बाद, दोनों ही स्थितियों में प्रस्तुत किए जाएंगे।
5. **यादृच्छिक आबंटन** (Random assignment): विभिन्न समूहों में प्रतिभागियों का यादृच्छिक आबंटन करके समूहों में संभावित व्यवस्थित अंतर को कम किया जाता है।

क्रियाकलाप 2.4

अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्यों की पहचान

अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्य कौन-से हैं?

1. *अध्यापक का कक्षा में व्यवहार छात्र के निष्पादन को प्रभावित करता है।*
2. *माता-पिता एवं बच्चे के बीच स्वस्थ संबंध से बच्चे का हर किस्म का समायोजन सहज होता है।*
3. *साथियों का दबाव बढ़ने से चिंता के स्तर में वृद्धि होती है।*
4. *छात्र का कक्षा में व्यवहार कक्षा के परिवेश की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।*

प्रयोग का अभिकल्प बनाना

परिवर्त्यों को परिभाषित करने के बाद प्रयोगकर्ता अनाश्रित परिवर्त्य के स्तरों को तय करता है, आश्रित परिवर्त्य को सुस्पष्ट करता है, प्रायोगिक सामग्री को एकत्र करता है तथा **प्रविधि** (Procedure) के अनुसार प्रयोग को संचालित करता है। इस तरह एक प्रयोग कैसे संचालित किया जाएगा इसकी पूरी रूपरेखा तय की जाती है। प्रायोगिक दशा जिसे **उपचार** (Treatment) कहा जाता है, को तय किया जाता है। प्रयोग की संपूर्ण रूपरेखा को **प्रायोगिक अभिकल्प** (Experiment design) कहते हैं। योजना एवं पूरे प्रयोग की संरचना के साथ ही प्रयोगकर्ता द्वारा लिए गए निर्णय भी शामिल रहते हैं। परिशुद्धता के लिए परिवर्त्य एवं उनके मापकों को परिभाषित किया जाता है एवं प्रायोगिक कार्य के लिए विशिष्ट निर्देश लिखे जाते हैं जिससे यह पता चलता है कि प्रतिभागी को प्रायोगिक दशा में कार्य करना है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में कई तरह के प्रायोगिक अभिकल्पों यानी डिजाइनों का उपयोग किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में परिवर्त्यों को विशेष रूप से स्पष्ट किया जाता है एवं उनका मापन विभिन्न प्रकार के व्यवहारों, आत्मकथनों तथा दैहिक मापकों द्वारा किया जाता है। **व्यवहारपरक मापकों** (Behavioural measures) के अंतर्गत बाह्य प्रेक्षणीय क्रियाकलापों का अभिलेखन सम्मिलित है। **आत्मकथन** (Self-report) मापक में प्रयोज्यों की वाचिक (लिखित या उच्चरित) अनुक्रियाएँ शामिल होती हैं। सर्वेक्षण, प्रश्नावली या साक्षात्कार से प्राप्त प्रदत्त एवं उद्दीपकों के प्रति अनुक्रियाएँ, वाचिक रूप में ली जाती हैं। अधिकांश अध्ययनों में आत्मकथन अनुक्रिया के लिए आधार प्रदान करते हैं। दैहिक मापक (Physiological measures), विभिन्न प्रकार की दैहिक अनुक्रियाओं को व्यक्त करते हैं। शोधकर्ता अध्ययन की मांग के अनुसार उपयुक्त मापक का चयन करता है।

प्रयोगकर्ता उन प्रयोज्यों या प्रतिभागियों के बारे में भी निर्णय लेता है जिन्हें अध्ययन में भाग लेना होता है। प्रतिभागियों का चुनाव तथा प्रायोगिक दशाओं में उनका आबंटन सावधानीपूर्वक किया जाता है ताकि उन बाह्य परिवर्त्यों की भूमिका को जो परिणाम को दूषित कर सकती है, कम से कम किया जा सके। ऐसा करने से प्रयोगशाला में किए जाने वाले प्रयोग में जो प्रेक्षण किए जाते हैं वे अध्ययन की दशा में किए जाते हैं। दशाएँ कृत्रिम हो जाती हैं। वास्तव में प्रयोगकर्ता को नियंत्रण के वांछित स्तर एवं प्रयोगशाला के बाहर की दशाओं में उपस्थित यथार्थ के बीच एक समझौता करना पड़ता है। प्रयोग के परिणाम एवं निष्कर्ष निकालने के लिए प्रयोग से प्राप्त प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है। इसकी चर्चा इस अध्याय की सीमा से बाहर है, अतः यहाँ प्रस्तुत नहीं की जा रही है।

संपूर्ण प्रयोग का विस्तृत विवरण व्यवस्थित ढंग से लिया जाता है ताकि कोई दूसरा प्रयोगकर्ता यदि चाहे तो उसे पढ़कर प्रयोग को स्वयं कर सके। यहाँ पर प्रयोग का यह संक्षिप्त परिचय, प्रयोग के विस्तृत स्वरूप को तो स्पष्ट नहीं कर सकता, लेकिन प्रायोगिक प्रतिवेदन का विवरण कैसे तैयार करते हैं, यह अवश्य इस पुस्तक के परिशिष्ट में दिया गया है।

प्रयोग का अभिकल्प : आपने देखा कि अनाश्रित परिवर्त्य के प्रभाव की जाँच एवं अध्ययन के लिए प्रायोगिक समूह की तुलना नियंत्रित समूह (जिस पर परिवर्त्य का उपचार नहीं किया गया है) से करनी आवश्यक होती है। एक अच्छा प्रायोगिक अभिकल्प बाह्य परिवर्त्य या अनियंत्रित परिवर्तनों के प्रभाव को कम करता है एवं प्रयोगकर्ता द्वारा वैध एवं नियंत्रित परिणाम पाने की संभावना को बढ़ाता है। यह अनुसंधान विधियों के अध्ययन का एक प्रमुख पहलू है। इस पर अनेक पुस्तकें भी लिखी गई हैं। यहाँ प्रायोगिक अभिकल्प के कुछ प्रमुख गुणों एवं प्रकारों का संक्षेप में उल्लेख किया जा रहा है।

1. **प्रयोज्यों का आबंटन** : प्रयोग में अनाश्रित परिवर्त्य के विभिन्न स्तरों पर प्रयोज्यों का एक ही समूह या भिन्न-भिन्न

प्रयोज्य आबंटित किए जाते हैं। यदि एक ही समूह प्रयोग की भिन्न-भिन्न दशाओं में लिया जाए तो यह **समूहान्तर्गत अभिकल्प** (Within group design) तथा भिन्न-भिन्न दशाओं में भिन्न-भिन्न समूह लिए जाएँ तो इसे **अंतर्समूह अभिकल्प** (Between group design) कहते हैं। यहाँ हम एक उदाहरण ले रहे हैं। मान लीजिए कि आप कार्य की कठिनाई (अनाश्रित परिवर्त्य) का प्रभाव एक नई भाषा के सीखने पर करना चाहते हैं। कार्य की कठिनाई को सीखे जाने वाले शब्दों की सूची के आकार के रूप में परिभाषित किया गया (अनाश्रित परिवर्त्य) है। इसका प्रभाव प्रतिभागियों द्वारा याद कर बताए गए शब्दों की संख्या (अनाश्रित परिवर्त्य) पर देखा गया। आपने 10 व 20 शब्दों के आकार वाली दो भिन्न-भिन्न शब्द सूचियाँ लीं। अब अनाश्रित परिवर्त्य के दो स्तर बन गए। यदि आपको 30 प्रयोज्यों पर प्रयोग करना है तो आप समूहान्तर्गत अभिकल्प का चयन कर सकते हैं एवं सभी प्रयोज्यों की दोनों सूचियाँ बारी-बारी से याद करने को कह सकते है। यहाँ एक सूची का सीखना, दूसरी सूची के सीखने को प्रभावित करेगा। आप क्रम प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए प्रतिसंतुलन की विधि का उपयोग कर सकते हैं। इसके लिए आधे प्रयोज्यों को एक क्रम में (अ, ब) तथा आधे को दूसरे क्रम में (ब, अ) सूचियों को सीखना होगा। इसका विकल्प यह भी हो सकता है कि आप अंतर्समूह अभिकल्प का उपयोग करें जिसमें यादृच्छिक रूप से 15 प्रयोज्यों को एक सूची और शेष 15 प्रयोज्यों को दूसरी सूची सीखने के लिए दे सकते हैं।

2. **अनाश्रित परिवर्त्यों की संख्या** : प्रायः शोधकर्ता एक से अधिक अनाश्रित परिवर्त्यों के साथ प्रयोग की योजना बनाता है। कई अनाश्रित परिवर्त्यों के साथ-साथ उपयोग करने से कई लाभ होते हैं। तीन अनाश्रित परिवर्त्यों को लेकर एक प्रयोग करना एक-एक परिवर्त्य लेकर तीन अलग-अलग प्रयोग करने की अपेक्षा अधिक प्रभावी होता है। इससे प्रायोगिक नियंत्रण बेहतर होता है और परिणामों को अच्छी तरह से सामान्यीकृत करना संभव होता है। इसके द्वारा अनाश्रित परिवर्त्यों के बीच अंतःक्रिया के प्रभाव की भी जानकारी हो जाती है। ऐसे अभिकल्प कारकीय अभिकल्प कहलाते हैं।

3. **अनाश्रित परिवर्त्यों की संख्या** : आश्रित परिवर्त्य में प्रतिभागियों द्वारा प्रदर्शित व्यवहार में प्रेक्षित परिवर्तन होता है जिससे यह पता चलता है कि प्रयोज्य कैसा निष्पादन कर रहा है। प्रयोगकर्ता एक से अधिक आश्रित परिवर्त्यों के मापन के बारे में निर्णय ले सकता है तथा अधिक सूचना एकत्र कर सकता है। इससे परिणाम व्यापक महत्त्व के हो सकते हैं। परंतु ऐसे प्रदत्तों या आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण अधिक जटिल हो जाता है। इसमें बहुकारकीय विश्लेषण की जरूरत पड़ती है।

क्षेत्र-प्रयोग एवं अर्ध-प्रयोग : क्षेत्र-प्रयोग जीवन के परिवेश में किए जाते हैं, परंतु जहाँ तक संभव होता है प्रयोगशाला प्रयोग की भाँति ही दशाएँ उत्पन्न की जाती हैं। अनाश्रित परिवर्त्यों का उपयोग किया जाता है तथा विभिन्न समूहों में प्रतिभागियों का आबंटन किया जाता है। इसका लक्ष्य स्वाभाविक परिवेश में किए गए शोध द्वारा कार्य-कारण वाले निष्कर्ष प्राप्त करना होता है। ऐसे प्रयोगों में **परिस्थितिकीय वैधता** (Ecological validity) में तो वृद्धि होती है परंतु बाह्य परिवर्त्यों का नियंत्रण प्रयोगशालीय प्रयोग की तुलना में कम होता है। इस विधि में समय अधिक लगता है तथा खर्च भी अधिक होता है। बहुत-से ऐसे परिवर्त्य होते हैं जिनको प्रत्यक्ष रूप से नहीं घटाया-बढ़ाया जा सकता। प्रयोग की दशाओं के प्रहस्तन द्वारा संपादित प्रयोगों से संबंधित कुछ नैतिक समस्याएं भी होती हैं। जुएबाजी, नशाखोरी, विघटित परिवार, युद्ध एवं आपदा आदि का पूर्णतः प्रायोगिक ढांचे में अध्ययन करने से अनेक प्रत्यक्ष नैतिक कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। तथापि इन समस्याओं से संबंधित विषयों का अध्ययन जीवन को बेहतर बनाने के लिए उपयोगी होता है। इस तरह की समस्याओं के अध्ययन के लिए अर्ध-प्रयोग अपनाया जा सकता है। इनमें प्रेक्षण की विशेषता एवं सहसंबंध को उपयोग में लाया जाता है तथा इन्हें प्रयोग के साथ जोड़ा जाता है। प्रायः ऐसे अध्ययनों में प्रयोज्य संबंधी परिवर्त्य अनाश्रित परिवर्त्य होते हैं। इन्हें प्रत्यक्ष रूप से परिवर्तित करने की बजाए चुना जाता है। अतः अर्ध-प्रयोगों में अनाश्रित परिवर्त्य का प्रहस्तन स्वाभाविक परिवेश में स्वतः घटित होने वाली प्रायोगिक तथा नियंत्रित दशाओं का उपयोग करके किया जाता है। जैसे, आपदाग्रस्त समूह या विशेष उपचार प्राप्त समूह को प्रायोगिक समूह की तुलना अन्य किसी नियंत्रित समूह के साथ की जा सकती है, जिसे समान उपचार नहीं प्राप्त है। इसलिए ऐसे अध्ययन में प्रायः बाह्य परिवर्त्यों का नियंत्रण उच्च मात्रा में नहीं होता।

अब तक आपने पढ़ा

प्रयोग वह विधि है जिसमें शोधकर्ता एक परिवर्त्य (अनाश्रित) को सक्रिय ढंग से प्रहस्तित करता है एवं दूसरे परिवर्त्य (आश्रित) पर उसके प्रभाव का प्रेक्षण करता है। यह कार्य ऐसी परिस्थितियों में किया जाता है जिससे परिवर्त्यों को नियंत्रित रखा जा सके। प्रासंगिक परिवर्त्य प्रयोज्य, परिस्थिति एवं क्रम संबंधी होते हैं। ये परिवर्त्य अध्ययन में किए गए प्रेक्षण को प्रभावित करते हैं तथा परिणामों को दोषपूर्ण बना देते हैं। इसलिए इनका नियंत्रण विभिन्न तरीकों जैसे यादृच्छीकरण, सुमेलन, दशाओं का स्थैर्य, एवं प्रतिसंतुलन तकनीकों द्वारा किया जाता है। प्रयोग के प्रतिभागियों का यादृच्छिक आबंटन दो समूहों – प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह – में किया जाता है। वह समूह जिसे अनाश्रित परिवर्त्य का उपचार दिया जाता है, प्रायोगिक समूह कहलाता है तथा वह समूह जो उपचार नहीं प्राप्त करता, वह नियंत्रित समूह कहलाता है। आश्रित परिवर्त्यों का मापन व्यवहारपरक, दैहिक एवं आत्मकथन वाले मापकों द्वारा किया जाता है। प्रयोग शुरू करने के पहले शोधकर्ता संपूर्ण प्रायोगिक प्रक्रिया के सभी अवयवों की रूपरेखा तैयार करता है, इससे प्रायोगिक अभिकल्प की संरचना होती है। शोधकर्ता अभिकल्प का चयन प्रायोगिक दशाओं के विश्लेषण, परिवर्त्यों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखते हुए करता है।

आपने कितना सीखा

1. *अनाश्रित परिवर्त्य का प्रहस्तन प्रायोगिक दशा में जानबूझ कर किया जाता है। सही/गलत*
2. *आदर्श प्रायोगिक अध्ययन में प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूहों में अनाश्रित परिवर्त्य का स्वरूप समान होगा। सही/गलत*
3. *नियंत्रित समूह का उपयोग व्यवहार के कारण को सुनिश्चित करने के लिए किया जाता है। सही/गलत*
4. *प्रयोग की प्रमुख सीमा (कमी) अनाश्रित परिवर्त्य होती है। सही/गलत*
5. *क्रम से जुड़े परिवर्त्यों का नियंत्रण संतुलन द्वारा किया जाता है। सही/गलत*
6. *समूहों के बीच व्यवस्थित अंतरों को यादृच्छिक आबंटन द्वारा घटाया जा सकता है। सही/गलत*
7. *सुमेलन का उपयोग सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए किया जाता है सही/गलत*
8. *प्रयोग में परिवर्त्यों को स्थिर बनाने से नियंत्रण में सहायता मिलती है। सही/गलत*
9. *जिस परिवर्त्य में परिवर्तन चाहिए होता है उसे अनाश्रित परिवर्त्य कहा जाता है। सही/गलत*
10. *प्रयोगकर्ता द्वारा प्रहस्तित परिवर्त्य को आश्रित परिवर्त्य कहते हैं। सही/गलत*

उत्तर – 1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. सही, 5. गलत, 6. सही, 7. गलत, 8. सही, 9. गलत, 10. गलत।

बाक्स 2.1 सहसंबंधात्मक विधि

बहुत-से परिवर्त्य महत्त्वपूर्ण तो होते हैं परंतु उन्हें शोधकर्ता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता। इस तरह के परिवर्त्यों के स्तर में अंतर, ***चयन विधि*** *के द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आप बुद्धि एवं समायोजन के बीच संबंध जानना चाहते हैं तो चूँकि किसी व्यक्ति को उच्च या निम्न बुद्धि स्तर का नहीं बनाया जा सकता इसलिए यही कर सकते हैं कि आप बुद्धि परीक्षण की सहायता से ऐसे व्यक्तियों का चयन करें जिनके बौद्धिक स्तर भिन्न-भिन्न हैं। बुद्धि परीक्षण पर निष्पादन के आधार पर उच्च एवं निम्न बौद्धिक स्तर के व्यक्तियों को चुन सकते हैं एवं उनके समायोजन का मापन कर सकते हैं। इस तरह की चयन प्रक्रिया विभिन्न अध्ययनों में प्रायः उपयोग में लाई जाती है।*

ऐसे अध्ययनों में सहसंबंधात्मक विधि का उपयोग किया जाता है। इन अध्ययनों में शोधकर्ता का लक्ष्य दो घटनाओं या परिवर्त्यों के बीच संबंधों के स्तर की व्याख्या करना होता है। यदि कोई घटना अधिक प्रबल रूप से सहसंबंधित है तो अधिक प्रभावी ढंग से एक के आधार पर दूसरी के बारे में पूर्वकथन किया जा सकता है। लोग प्रायः भ्रमवश सहसंबंध को कार्य-कारण संबंध समझ लेते हैं। उदाहरण के लिए, उच्च रक्त-चाप तनाव प्रबंध की अक्षमता से संबंधित होता है। ऐसी परिस्थिति में लोग कार्य-कारण संबंध का अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। तथापि यह भी हो सकता है कि सहसंबंध सही न हो या यह संबंध किसी तीसरे परिवर्त्यों के कारण हो। शोधकर्ता विभिन्न परिवर्त्यों का मापन यह देखने के लिए करता है कि एक परिवर्त्य में परिवर्तन दूसरे परिवर्त्य में परिवर्तन से संबंधित है या नहीं। ऐसे अध्ययन विशेष रूप से जहाँ परिवर्त्यों का प्रत्यक्ष प्रहस्तन अवांछनीय, अनैतिक या असंभव हो, उपयोगी माने जाते हैं। यह विधि साधारण प्रेक्षण से अच्छी होती है क्योंकि इसमें शोधकर्ता को अध्ययन के अंतर्गत समस्या के विशिष्ट

पक्षों पर ध्यान केंद्रित करने का अवसर मिलता है।

सामान्यतः जब व्यक्ति के अंतर्निहित गुणों (जैसे–आयु, यौन, अभिरुचि, योग्यता इत्यादि) या पृष्ठभूमिगत परिवर्त्य जो दीर्घकालिक अनुभव (जैसे–ग्रामीण, शहरी, जनजातीय पृष्ठभूमि, सामाजिक-आर्थिक स्तर, परिवार का प्रकार, पालन-पोषण का तरीका) के प्रभाव का अध्ययन कर रहे होते हैं तो हमें अप्रायोगिक अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है।

कुछ निश्चित दशाओं में सहसंबंधात्मक अध्ययन को अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक वरीयता दी जाती है। यह निम्न दशाओं में प्रमुख रूप से किया जाता है।

1. *अन्वेषण का विषय नया हो एवं प्रासंगिक परिवर्त्यों के बारे में सीमित ज्ञान हो।*
2. *जब परिवर्त्यों का प्रहस्तन असंम्भव हो।*
3. *परिवर्त्यों का प्रहस्तन नैतिक न हो।*

सहसंबंधात्मक अध्ययनों के आधार पर हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि कोई एक कारक दूसरे कारक का कारण है क्योंकि बहुत-से ऐसे कारक होते हैं जो साथ-साथ परिवर्तित होते हैं। सहसंबंध की उत्पत्ति साथ-साथ घटित हो रहे संबंध से होती है। शाब्दिक रूप से यह दो परिवर्त्यों के बीच संबंध को स्पष्ट करता है।

सहसंबंध को चित्रात्मक रूप में जिसे स्कैटरग्राम यानी विकीर्ण आरेख कहा जाता है या सहसंबंध गुणांक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। सहसंबंध के मूल्य (जो उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षण द्वारा निर्धारित किया जाता है) की सीमा +1 (पूर्ण धनात्मक सहसंबंध) से –1 (पूर्ण ऋणात्मक सहसंबंध) के बीच पाई जाती है। +1 या –1 के निकट के मूल्य प्रबल सहसंबंध को दर्शाते हैं। सहसंबंध की सहायता से शोधकर्ता दो परिवर्त्यों के बीच संबंधों की दिशा एवं प्रबलता की पहचान करता है। एक परिवर्त्य के आधार पर दूसरे परिवर्त्य के बारे में पूर्वकथन करने में भी सहायता मिलती है तथापि जैसा कि कहा जा चुका है, सहसंबंध से कारणों का पता नहीं चलता है।

मनोवैज्ञानिक प्रयोग के संचालन में कुछ मानवीय समस्याएं

जैसा कि आपने देखा, प्रयोग प्रयोगशाला के नियंत्रित परिवेश में किए जाते हैं जहाँ प्रयोगकर्ता एवं प्रतिभागियों के बीच अंतःक्रिया होती है। चूंकि दोनों ही मनुष्य हैं अतः उनके व्यवहार प्रायोगिक परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं। शोध के इस संदर्भ में कुछ ऐसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जिन पर अन्वेषणकर्ता का ध्यान अपेक्षित है। इनके विषय में जानकारी से प्रयोग की योजना बनाने में सहायता मिलती है। इन कारकों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

1. परिकल्पनाओं के उपयोग से एक तरह की प्रत्याशा विकसित हो जाती है जो प्रेक्षण को इस प्रकार दिशा देती है कि वह प्रेक्षण परिकल्पना के अनुरूप हो। प्रयोगकर्ता भी इस ढंग से व्यवहार कर सकता है कि उसके व्यवहार से प्रतिभागी को यह संकेत मिले कि प्रयोगकर्ता उससे कैसे व्यवहार या अनुक्रिया की अपेक्षा करता है। इसे आत्मपरिपूरक भविष्यवाणी कहा जाता है।

2. मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में भाग लेने वाले प्रतिभागी यह जानने के लिए उत्सुक रहते हैं कि क्या घटित हो रहा है और वे अपने अनुभवों तथा अर्थ को भी जानना चाहते हैं। इस प्रक्रिया में वे शोध के स्वरूप के बारे में सूचना पाने का प्रयास करते हैं एवं अध्ययन के लक्ष्य का भी अनुमान लगाते हैं। वे अपनी समझ परिकल्पना या अनुमान के अनुरूप कार्य करते हैं या जानबूझकर ऐसा व्यवहार करते हैं जिससे अध्ययन के परिणाम प्रभावित होते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि परिकल्पना को इंगित करने वाले संकेतों का उपयोग शोध-प्रक्रिया में कम से कम किया जाए।

3. अध्ययन करते समय यदि सावधानी न बरती जाए तो दो परिवर्त्य परस्पर जुड़ सकते हैं जिससे परिणाम की व्याख्या करते समय एक परिवर्त्य के प्रभाव को दूसरे परिवर्त्य के प्रभाव से अलग नहीं किया जा सकता। इसे **अस्त-व्यस्त** या **त्रुटिपूर्ण (Confounding) मिश्रण** कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि आप दूरदर्शन देखने का, हिंसा के प्रत्यक्षीकरण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना चाहते हैं और आपने प्रायोगिक दशा में केवल किशोरवय के प्रतिभागियों को लिया और नियंत्रित समूह में वयस्कों को तो प्रतिभागियों की आयु, अनाश्रित परिवर्त्य के साथ मिल जाएगी। इससे अध्ययन का परिणाम संदेहपूर्ण हो जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि परिवर्त्यों का प्रभाव एक-दूसरे के प्रभाव से अलग बनाए रखा जाए।

4. प्रयोगों या सर्वेक्षणों में प्रतिभागी इस तथ्य से परिचित रहते हैं कि उनका अध्ययन किया जा रहा है। यह जानकारी उनमें **प्रतिक्रियात्मकता** (Reactivity) पैदा करती है। इससे प्रतिभागी सजग हो जाते हैं और स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया नहीं करते। इससे परिणामों की वैधता को खतरा पहुंचता है। प्रायः शोध परिस्थिति का कोई भी पक्ष जिससे प्रतिभागी अनभिज्ञ होता है, प्रतिक्रियात्मकता को घटाने में सहायक होता है। प्रतिभागी को आराम के साथ सौहार्दपूर्ण मैत्रीभाव से प्रयोग के बारे में समझाया जाए तो प्रयोग से जुड़ी चिंता की भावना को घटाया जा सकता है। प्रयोग की नई परिस्थिति में समायोजित होने के लिए प्रतिभागी को समय दिया जाना चाहिए ताकि नवीनता का प्रभाव न पड़े।
5. शोध में प्रतिभागियों के द्वारा **वांछित व्यवहार** के बारे में प्रयोगकर्ता की प्रत्याशा प्रयोगकर्ता के व्यवहार को प्रभावित करती है और फिर प्रयोगकर्ता का व्यवहार प्रतिभागी की अनुक्रिया को प्रभावित करता है एवं प्रदत्तों को पूर्वाग्रहयुक्त बनाता है। चूँकि प्रायोगिक एवं नियंत्रित दशाओं में प्रयोगकर्ता के व्यवहारों में भिन्नता प्रतिभागियों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करती है इसलिए इन भिन्नताओं को कम से कम किया जाना चाहिए। प्रयोगकर्ता को यदि यह जानकारी न दी जाए कि वह किस समूह के प्रतिभागियों से अंतःक्रिया कर रहा है।

अब तक आपने पढ़ा

मानव प्रतिभागियों पर प्रयोग करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है जिसके अंतर्गत दो व्यक्तियों (प्रयोगकर्ता एवं प्रतिभागी) के बीच अंतःक्रिया होती है। यदि शोधकर्ता उचित ध्यान नहीं देता है तो परिणाम दोषपूर्ण होगा एवं निष्कर्ष सही नहीं मिलेगा। शोध परिस्थितियों में कई ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो परिणामों की वैधता को दोषपूर्ण बना देती हैं। ये कारक मुख्य रूप से शोधकर्ता, प्रतिभागी तथा परिस्थिति के आग्रह से जुड़े होते हैं। इसका स्पष्ट ज्ञान ऐसे अध्ययनों की योजना बनाने में सहायक होता है जिनमें इन कारकों का दुष्प्रभाव न पड़े।

आपने कितना सीखा

1. *परिकल्पना के रूप में प्रयोगकर्ताओं की प्रत्याशाएं परिणामों को दूषित कर सकती हैं।* सही/गलत
2. *मांग की विशेषताओं को प्रतिभागियों द्वारा अटकलें लगाने को कहा जाता है।* सही/गलत
3. *दो परिवर्त्यों को अलग करने को मिश्रण कहते हैं।* सही/गलत
4. *प्रतिभागियों के व्यवहारों के बारे में प्रयोगकर्ता की प्रत्याशाएं परिणामों को नहीं प्रभावित करती हैं।* सही/गलत

उत्तर – 1. सही, 2. सही, 3. गलत, 4. सही, 5. गलत।

बाक्स 2.2 **अनुरूपण**

अनुरूपण (Simulation) का तात्पर्य है यथार्थ परिस्थितियों के अभाव में यथार्थ जैसा ही अनुभव करना। इसमें अनुकरण एवं दिखावा शामिल होता है। मनोवैज्ञानिक शोध में अनुरूपण एक विधि के रूप में उपयोग में लाया जाता है जिससे स्वांग द्वारा समस्या को इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है ताकि वांछित परिवर्त्य के प्रभाव को उत्पन्न किया जा सके।

छल-छद्म की सहायता से प्रतिभागी को गलत सूचना देकर या गलत निर्देश देकर परिवर्त्य का प्रहस्तन किया जाता है एवं व्यवहार पर उसके प्रभाव का प्रेक्षण किया जाता है। इस प्रकार की विधियाँ नैतिक रूप से अनुपयुक्त होती हैं। छल-छद्म का एक विकल्प यह है कि अध्ययन स्वाभाविक परिवेश में किए जाएं और दूसरा विकल्प अनुरूपण है। अनुरूपण अध्ययन में शोधकर्ता प्रयोगशाला जैसी स्थिति में घटित होने वाले मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों को उत्पन्न करता है। अनुरूपण में प्रतिभागियों द्वारा भूमिका-निर्वाह आता है। प्रतिभागी गण विभिन्न प्रकार की भूमिकाएँ लेकर विभिन्न क्रियाकलाप संपादित करता है। चुने हुए परिवर्त्यों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने के लिए और घटनाओं को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए अनुरूपण में परिस्थितियों के कुछ पक्षों में परिवर्तन किया जा सकता है।

प्रतिनिध्यात्मक एवं अनुदैर्घ्य अध्ययन

मानव विकास का अध्ययन करने वाले ऐसे छात्रों को जो समय के साथ होने वाले परिवर्तनों को जानने में रुचि रखते हैं उन्हें समय संबंधी कारक से उत्पन्न समस्या का सामना करना पड़ता है। आप इस पुस्तक के चौथे अध्याय में देखेंगे कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है उसमें गत्यात्मक, सामाजिक, एवं बौद्धिक इत्यादि क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर परिवर्तन होते जाते हैं। विकासात्मक अध्ययनों की विशेषताएँ समझने के लिए ऐसे अध्ययनों में प्रयुक्त होने वाली विधियों की चर्चा नीचे की गई है।

प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन : इस तरह के अध्ययन में विभिन्न आयु-वर्गों के लोगों का, किसी एक समय में परीक्षण किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि आप स्मृति में विकासात्मक परिवर्तन का अध्ययन करना चाहते हैं तो आप पाँच प्रतिनिधिक समूह, जैसे 10, 15, 20, 25 तथा 30 वर्ष की आयु के लोगों के समूहों को ले सकते हैं। इन लोगों से कोई स्मृति का कार्य करने को कहा जाता है एवं उनके निष्पादन की तुलना करके विकास की दिशा को समझा जा सकता है। इस प्रकार कम समय में ही इस अध्ययन को आप पूरा कर सकते हैं। ऐसे अध्ययनों से समय की बचत होती है परंतु इसके कुछ दोष भी हैं। इस विधि से यह सूचना नहीं मिल पाती कि व्यक्ति में परिवर्तन किस प्रकार होते हैं तथा वे कितने स्थिर होते हैं।

अनुदैर्घ्य अध्ययन : इस ढंग से अध्ययन करने पर एक ही समूह के लोगों का भिन्न-भिन्न समयांतरालों पर अध्ययन किया जाता है। ऐसे अध्ययन कई वर्षों तक चलते रहते हैं। यह पाया जाता है कि ऐसे अध्ययनों में समय बहुत लगता है एवं वे खर्चीले भी बहुत होते हैं। यदि अध्ययन लंबे समय तक चलता रहे तो कुछ लोगों द्वारा स्थान छोड़कर चले जाने से अथवा अध्ययन में कुछ लोगों की रुचि समाप्त हो जाने से प्रतिभागियों की संख्या घट जाती है।

आनुक्रमिक अध्ययन : इस विधि में प्रतिनिध्यात्मक एवं अनुदैर्घ्य दोनों ही विधियाँ शामिल होती हैं। अध्ययन का आरंभ प्रतिनिध्यात्मक विधि से किया जाता है, जिसमें विभिन्न आयु वर्ग के कई समूह शामिल होते हैं। कुछ माह या वर्ष बीतने के बाद उन्हीं लोगों पर पुनः अध्ययन किया जाता है एवं हर आयु स्तर पर नए लोगों को भी शामिल कर लिया जाता है। इस विधि में प्रतिनिध्यात्मक एवं अनुदैर्ध्यात्मक दोनों ही विधियों के लाभ मिल जाते हैं। विकास के अध्ययन की यह विधि जटिल, खर्चीली एवं अधिक समय लगाने वाली होती है।

अब तक आपने पढ़ा

मानसिक प्रक्रियाओं में विकासात्मक परिवर्तन के अध्ययन के लिए विशिष्ट विधियों की आवश्यकता होती है जो समयगत परिवर्तनों के प्रति संवेदनशील होती है। इसके लिए दो मुख्य विधियों का उपयोग किया जाता है जो क्रमशः प्रतिनिध्यात्मक एवं अनुदैर्घ्य विधियाँ कहलाती हैं। प्रतिनिध्यात्मक युक्ति में क्रमशः विभिन्न आयु स्तर के समूहों का एक साथ अध्ययन किया जाता है। अनुदैर्घ्य विधि के अंतर्गत एक ही समूह का विभिन्न समय अंतरालों पर कई बार अध्ययन किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य विधि यानी अनुक्रमिक अध्ययन विधि होती है, जिसमें उक्त दोनों विधियाँ सम्मिलित होती हैं। कुछ समय तक कुछ निश्चित समूहों का अध्ययन किया जाता है एवं प्रत्येक आयु स्तर पर कुछ नए लोगों को जोड़ा जाता है।

आपने कितना सीखा

1. *प्रतिनिध्यात्मक अध्ययन यह बता सकते हैं कि एक बच्चे में एक अवधि के दौरान किस तरह का परिवर्तन होता है। सही/गलत*
2. *अनुदैर्घ्य अध्ययन में लोगों के एक समूह का एक लंबी अवधि तक लगातार अध्ययन किया जाता है। सही/गलत*
3. *अनुक्रमिक विधि में विभिन्न आयु वर्गों के लोगों को लेकर एक निश्चित समयावधि तक उनका अध्ययन करते हैं। सही/गलत*
4. *अनुदैर्घ्य अध्ययन कम खर्चीले और कम समय लगाने वाले होते हैं। सही/गलत*

<u>उत्तर</u> — 1. गलत 2. सही 3. सही 4. गलत।

बाक्स 2.3 **गुणात्मक विधियाँ**

गुणात्मक विधि किसी विषय-वस्तु या समस्या का व्याख्यात्मक अध्ययन है जिसमें शोधकर्ता ही शोध प्रक्रिया का केंद्र बिंदु होता है। यह एक स्वाभाविक गवेषणा होती है जो प्रहस्तन के बिना की जाती है। इसमें परिणामों को प्रभावित करने वाली पूर्व निर्धारित सीमाएँ नहीं होतीं। इस विधि से डेटा यानी प्रदत्त शब्दों के रूप में मिलते हैं न कि संख्या के रूप में, एवं इसका उपयोग अनेक सामाजिक विज्ञानों में किया जाता है। अब मनोवैज्ञानिकों ने भी इस विधि में विशेष रुचि लेना शुरू किया है। गुणात्मक प्रदत्तों से (विशिष्ट) स्थानीय संदर्भों में प्रक्रियाओं की व्याख्या, समृद्ध रूप से हो सकती है। इस युक्ति से उस प्रक्रिया का अनुभव किया जा सकता है जिनसे बढ़ते क्रम या समयबद्ध घटनाओं का क्रम जिससे निश्चित परिणाम मिल सकते हैं। संपूर्ण गोचर या घटना का अध्ययन विस्तृत विवरण द्वारा किया जाता है। गुणात्मक अध्ययन की पूर्ण संचालन प्रक्रिया में शोधकर्ता द्वारा विवेचन एवं मनन अनिवार्य होता है।

गुणात्मक प्रदत्त (डेटा) विभिन्न स्रोतों से विभिन्न रूपों में प्राप्त हो सकते हैं। ये प्रदत्त, संख्यात्मक प्रदत्तों के सहायक के रूप में या स्वतंत्र रूप में उपयोग में लाए जा सकते हैं। गुणात्मक प्रदत्त विभिन्न विधियों से प्राप्त किए जा सकते हैं। इन विधियों में वृत्त अध्ययन, साक्षात्कार, संवाद, संभाषण, विश्लेषण, एवं सहभागी प्रेक्षण इत्यादि प्रमुख हैं। यहाँ गुणात्मक विधि के एक उदाहरण के रूप में सहभागी प्रेक्षण का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

सहभागी प्रेक्षण

सहभागी प्रेक्षक किसी संस्कृति में विद्यमान प्रक्रियाओं का उस संस्कृति में जीने वाले व्यक्ति के दृष्टिकोण से अध्ययन करता है। यह वह माध्यम है जिसकी सहायता से वे विचार अथवा अनुक्रियाएँ प्राप्त की जाती हैं जिनके द्वारा वह अपने वास्तविक जगत की रचना एवं गठन करता है। इस विधि द्वारा लंबे समय तक वास्तविक परिवेश में लोगों के संपर्क में रहकर अध्ययन किया जाता है। शोधकर्ता द्वारा प्रथमतः प्रदत्त संग्रह प्रविधि के रूप में यह प्रत्यक्ष प्रेक्षण की गवेषणा है। किसी गोचर के अर्थ में योगदान देने वाले कारकों, जैसे विभिन्न घटनाओं में पारस्परिक संबंध तथा घटनाओं के क्रम आदि की पहचान की जा सकती है। इस विधि में समय अधिक लगता है।

शोधकर्ता एक बार जब अपनी रुचि के अनुरूप प्रदत्त संग्रह के लिए स्थल का चयन कर लेता है तो समूह के सदस्यों से अध्ययन संचालन के लिए अनुमति लेता है। एक बार जब उसे प्रवेश मिल जाता है तो सहभागियों से आरंभिक संपर्क किया जाता है एवं सौहार्दपूर्ण संबंध बनाया जाता है। जिन व्यक्तियों से सूचना लेनी है उन्हें चुना जाता है। शोधकर्ता क्षेत्र का अभिलेख बनाकर उसे अनुरक्षित करता है और स्थल, कर्ता, कार्य, वस्तु, क्रिया घटना, समय इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया करता है। शोधकर्ता को निरंतर अध्ययन के विश्लेषण, विधि एवं नैतिक आयामों पर मनन करते रहना पड़ता है। इसमें कामचलाऊ टिप्पणियां एवं क्षेत्र अंकन सहायक सिद्ध होते हैं। प्रेक्षण के बाद जल्दी से जल्दी अभिलेखन कर लिया जाना चाहिए। जब तक अभिलेखन कर न लिया जाए तब तक प्रेक्षण का खुलासा नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही कागज एवं पेंसिल, रिकार्डर, फोटोग्राफी एवं वीडियो टेप का भी उपयोग किया जाता है। शोधकर्ता को उपलब्ध सामग्री को प्रेक्षित करने का कौशल विकसित करना चाहिए। अच्छे प्रदत्त (जिन दृश्यों को लेना है) तभी संभव है जब इस कौशल में प्रेक्षणकर्ता प्रशिक्षित हो एवं स्वयं को तथा घटनाओं को देखने की इच्छा रखता हो।

वृत्त अध्ययन

ऐसे अनुसंधानों में व्यक्ति को विश्लेषण की इकाई के रूप में लिया जाता है। इसमें किसी गोचर या घटना के संदर्भ के मूल्यांकन की आवश्यकता को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत वृत्त का अध्ययन किया जाता है। प्रायः वृत्त अध्ययन वास्तविक जीवन में घटित होने वाले कुछ गोचरों, जिनमें कई स्रोतों; जैसे – व्यक्ति के इतिहास, सामाजिक इतिहास एवं पारिवारिक इतिहास को लिया जाता है एवं उनका अध्ययन किया जाता है। बहुत-से वृत्त अध्ययन ऐसी समस्या से उत्पन्न होते हैं जिन्हें शोधकर्ता को शीघ्रता से समझ लेना होता है, अन्यथा वे समाप्त हो जाते हैं। वृत्त अध्ययन में साक्षात्कार, प्रेक्षण या परीक्षण का उपयोग किया जाता है। यह शोध विधि नैदानिक मनोविज्ञान एवं मानव विकास के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण शोध विधि है।

वृत्त अध्ययन का उपयोग करके शोधकर्ता किसी व्यक्ति के बारे में गहन जानकारी प्राप्त करता है। व्यक्ति के जीवन के वे विशिष्ट प्रश्न जिनका प्रायोगिक या नैतिक कारणों से दूसरा रूप नहीं बन सकता, वृत्त अध्ययन द्वारा पकड़ में आ सकते हैं। वृत्त अध्ययन द्वारा व्यक्ति की कल्पनाओं, आशाओं, भयों, आघातों तथा पालन-पोषण के इतिहास इत्यादि

की जानकारी प्राप्त करके व्यक्ति के मन तथा व्यवहार को समझ सकते हैं। वृत्त अध्ययन से व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाली घटनाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

फ्रायड की अंतर्दृष्टियाँ वैयक्तिक वृत्तों के प्रेक्षण एवं मनन से उत्पन्न हुईं तथा उनसे मनोविश्लेषण के सिद्धांत का विकास हुआ। यह स्मरण रहे कि वह व्यक्ति जिसका अध्ययन किया जा रहा है, एक वृत्त के रूप में विशिष्ट होता है एवं हमारे मूल्यांकन की विश्वसनीयता अज्ञात होती है। वृत्त अध्ययन से व्यक्ति के जीवन का गहन चित्रण मिलता है, परंतु इसके आधार पर हमें परिणामों के सामान्यीकरण करते समय सतर्क रहना चाहिए। वृत्त अध्ययन स्वाभाविक प्रेक्षण की ही भाँति होता है। घटना-क्रमों के वर्णन हेतु इसका उपयोग कोई भी शोधकर्ता कर सकता है।

एकल वृत्त अध्ययन की वैधता की समस्या गंभीर होती है। इसलिए यह सुझाव दिया जाता है कि शोधकर्ता को वस्तुनिष्ठ मापन प्रविधियों, सूचना के अनेक स्रोतों एवं प्रासंगिक चरों का बारंबार मूल्यांकन करना चाहिए। वृत्त अध्ययन की उपयोगिता एक शोध तकनीक के रूप में तभी है जब वृत्त ऐसा लिया जाए जो प्रासंगिक परिवर्त्य का प्रतिनिधित्व करता हो एवं शोधकर्ता उसकी पहचान कर सके। शोधकर्ता सक्षम हो। प्रदत्त संग्रह की सावधानीपूर्वक योजना बनाना भी आवश्यक है। शोधकर्ता को प्रदत्त संग्रह की संपूर्ण प्रक्रिया में, साक्ष्यों की शृंखला बनाए रखने के लिए, प्रदत्त स्रोतों एवं शोध प्रश्नों के बीच संबंध बनाए रखना आवश्यक होता है।

क्रियाकलाप 2.5

वृत्त अध्ययन के माध्यम से बच्चे की विद्यालय में प्रगति की जानकारी

- *कल्पना कीजिए कि आपको विद्यालय में परामर्शदाता की नौकरी मिली है। विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने आपसे उन छात्रों की प्रगति का अवलोकन करने को कहा है जिन्होंने इसी वर्ष आना आरंभ किया है।*
- *आप अपने कार्य में किस विधि का उपयोग करेंगे एवं क्यों?*

अपने मित्रों के साथ विचार-विमर्श करें एवं अपने प्रस्ताव की एक रूपरेखा तैयार करें।

सर्वेक्षण अनुसंधान

सर्वेक्षण अनुसंधान में लोगों से प्रश्न पूछकर एवं उनके उत्तर को अंकित करके आंकड़ा संग्रह किया जाता है। इसका उपयोग कई उद्देश्यों से किया जाता है। ज्यादातर इस तरह का शोधकार्य समष्टि की विशेषताओं के आकलन के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, सर्वेक्षण का लक्ष्य ऐसे लोगों के प्रतिशत का निर्धारण करना हो सकता है जो किसी सामाजिक मुद्दे; जैसे – नौकरी में महिलाओं के आरक्षण का प्रस्ताव के पक्ष एवं विपक्ष में मत रखते हैं। जनगणना या विभिन्न व्यापारिक संस्थानों द्वारा विचारों का मतदान कराना सर्वेक्षण का अच्छा उदाहरण है।

विभिन्न परिवर्त्यों के आपसी संबंधों के बारे में परिकल्पना के परीक्षण के लिए भी सर्वेक्षण कराया जाता है। घटनाओं का व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन इसके द्वारा किया जाता है। उदाहरणार्थ, गुजरात के भुज शहर में आए भूकंप का अध्ययन यानी लोगों के जीवन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव के अध्ययन हेतु सर्वेक्षण किया गया।

सर्वेक्षण करते समय, शोधकर्ता अध्ययन की जाने वाली **समष्टि** (Population) को परिभाषित करके उसमें से प्रतिदर्श (नमूने) का चयन करता है। वह प्रतिदर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। शोधकर्ता प्रतिदर्श के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का उपयोग करता है। इसके अंतर्गत समष्टि का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदर्श में चुने जाने का समान एवं स्वतंत्र अवसर रखता है। प्रायः शोधकर्ता, **स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन या प्रतिदर्श ग्रहण** (Stratified random sampling) अनुपात के अनुसार दो या अधिक उपसमूह प्रायः उसी अनुपात में लिए जाते हैं जिस ढंग से वे समष्टि में विद्यमान रहते हैं। कभी-कभी समूहों का बड़े जनसमूह से गुच्छन या समूहीकरण के अनुसार चयन होता है। इन्हें **गुच्छन प्रतिचयन या समूह प्रतिदर्श ग्रहण** (Cluster sampling) कहा जाता है। प्रतिदर्श का आकार भी निर्धारित किया जाता है क्योंकि सामान्यीकरण की क्षमता सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रतिदर्श के आकार पर निर्भर करती है। साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों का उपयोग करके सर्वेक्षण किया जाता है। समूह-प्रशासन (Group administration) या डाक द्वारा भी सर्वेक्षण किया जाता है। ये स्व-प्रशासित होते हैं। कभी-कभी सर्वेक्षण के लिए टेलीफोन से भी साक्षात्कार किए जाते हैं।

तालिका 2.1 : मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त शोध-विधियों का एक सारांश

विधि	वर्णन
प्रेक्षण	घटित होने वाले व्यवहार का प्रेक्षण एवं अभिलेखन।
अप्रायोगिक (सहसंबंध) शोध	दो चयनित परिवर्त्यों की घटनाओं पर प्राप्त प्रदत्त का विश्लेषण यह निर्धारित करने के लिए किया जाता है कि ये परिवर्त्य एक साथ किस स्तर पर घटित होते हैं।
प्रयोग	नियंत्रित दशा में किया गया वह अध्ययन जिससे परिवर्त्य का प्रहस्तन कर उसका प्रभाव अन्य परिवर्त्य पर देखने का प्रयास किया जाता है।
वृत्त अध्ययन	विभिन्न स्रोतों से किसी व्यक्ति के बारे में सूचना एकत्र करना ताकि किसी समस्या या विषयवस्तु पर प्रकाश डाला जा सके।
सर्वेक्षण	समष्टि के प्रतिनिधि प्रतिदर्श से सूचनाएं आमने-सामने बात करके टेलीफोन पर साक्षात्कार द्वारा या लिखित प्रश्नावली का उपयोग करके प्राप्त की जाती हैं।

अब तक आपने पढ़ा

वृत्त अध्ययन वह विधि है जिसमें कई मापकों का उपयोग करके एक व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है। इसका लक्ष्य कुछ गोचरों या घटनाओं का गहन वर्णन करना होता है। प्रायः इसका उपयोग नैदानिक मनोविज्ञान एवं मानव विकास के क्षेत्र में किया जाता है। इसके विपरीत सर्वेक्षण बड़े प्रतिदर्श पर किया जाता है जिसमें प्रश्नावली या साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया जाता है। सर्वेक्षण के लिए चयनित प्रतिदर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाला होना चाहिए। प्रायः सर्वेक्षण किसी सार्थक विषय के संबंध में लोगों के विचार एवं प्राथमिकताएं जानने के लिए किया जाता है।

आपने कितना सीखा

1. *एक वृत्त अध्ययन में ________ तथा ________ का उपयोग संभव है।*
2. *लोगों के जीवन का विस्तृत और गहन विवरण ________ से प्राप्त किया जा सकता है।*
3. *जनगणना ________ का एक उदाहरण है।*
4. *सर्वेक्षण ________ को समझने में सहायक होते हैं।*
5. *एक सर्वेक्षण अध्ययन के परिणामों का सामान्यीकरण ________ है।*
6. *समष्टि से ________ प्रतिदर्श अच्छे सर्वेक्षण प्रदत्त (डेटा) पाने के लिए आवश्यक है।*

उत्तर – 1. साक्षात्कार, प्रेक्षण, परीक्षण, 2. वृत्त अध्ययन, 3. सर्वेक्षण, 4. समाज की प्रवृत्तियों, 5. नहीं हो सकता, 6. यादृच्छिक।

मनोवैज्ञानिक उपकरण

मनोवैज्ञानिक कोई शोध या अन्वेषण करते समय कई तरह के परिवर्त्यों एवं संप्रत्ययों में रुचि रखता है। उसके सामने उनकी उपयुक्त परिभाषा करना, मापन एवं विश्लेषण करना एक जटिल चुनौती होती है। इस वजह से समस्या और जटिल हो जाती है क्योंकि अनेक मनोवैज्ञानिक परिवर्त्यों एवं संप्रत्ययों (जैसे–बुद्धि, अभिप्रेरणा, व्यक्तित्व) का प्रत्यक्ष रूप से मापन नहीं किया जा सकता। साथ ही ये संप्रत्यय प्रतिदिन के जीवन में सामान्य लोगों की भाँति उपयोग में लाए जाते हैं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए मनोवैज्ञानिक लोग सूचना एवं प्रदत्त संग्रह के विभिन्न प्रकार के मापकों का उपयोग करते हैं। इन मापकों को वाचिक, व्यवहारपरक एवं दैहिक श्रेणियों के अंतर्गत रखा जाता है। इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में कई तरह के मापकों की चर्चा आएगी। आपको इन मापकों से परिचित कराने एवं उनकी विशेषता समझने के लिए इस खंड में तीन प्रकार के मापकों; जैसे – मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रश्नावली एवं साक्षात्कार का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को मनोवैज्ञानिकों के द्वारा किए गए एक प्रमुख योगदान के रूप में माना जाता है। ये प्रायः सभी प्रकार के मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों के सभी पक्षों, जैसे व्यक्तित्व, बुद्धि, अभिक्षमता, मूल्य, अभिवृत्ति, रुचि एवं सृजनात्मकता इत्यादि से जुड़े होते हैं। तकनीकी भाषा में *परीक्षण एक प्रमाणीकृत एवं वस्तुनिष्ठ मापक है। जो व्यक्ति की मानसिक एवं व्यवहारपरक स्थिति (सापेक्षिक रूप से अन्य लोगों की तुलना में) को दर्शाता है।*

मनोवैज्ञानिक परीक्षण कई प्रकार के होते हैं। उदाहरणार्थ, ये **वाचिक** एवं **अवाचिक** (निष्पादन) हो सकते हैं। प्रदत्त **वस्तुनिष्ठ** या **आत्मनिष्ठ** (प्रक्षेपी) हो सकते हैं। ये कुछ सिद्धांतों के आधार पर या इंद्रियानुभविक शोध के आधार पर विकसित किए जा सकते हैं। शाब्दिक परीक्षण में पदों की रचना वाक्यों के रूप में होती है एवं परीक्षार्थियों को उन पदों के कथन के साथ सहमति या असहमति व्यक्त करनी होती है। अवाचिक या निष्पादन परीक्षण में प्रतिभागियों का अध्ययन परिस्थिति में कुछ व्यवहारों के निष्पादन के द्वारा किया जाता है। अध्ययन के अंतर्गत व्यक्ति द्वारा दर्शाए गए व्यवहार उसकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के सूचक होते हैं।

यहाँ पर वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ मापकों के बीच अंतर समझ लेना उपयोगी होगा। वस्तुनिष्ठ परीक्षण में मनोवैज्ञानिक गुणों के आँकने के लिए अनुक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। प्रक्षेपी परीक्षण में अस्पष्ट उद्दीपक; जैसे – तस्वीर, अपूर्ण वाक्य, *रोरशाख परीक्षण* (Ink blots), कहानी लेखन इत्यादि लिए जाते हैं, जिनमें परीक्षार्थी जिस रूप में चाहे अनुक्रिया कर सकता है।

शोधकर्ता द्वारा अपनाए गए सिद्धांत के अनुसार अनुक्रियाओं की व्याख्या की जाती है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इन दोनों प्रकार के परीक्षणों की संरचना एवं उपयोग के नियम एवं तरीके भिन्न-भिन्न होते हैं। साथ ही इन परीक्षणों के निष्पादन की व्याख्या भी अलग-अलग ढंग से की जाती है। इस अनुभाग में मनोवैज्ञानिक परीक्षण के संदर्भ में जो सामान्य विचार हैं, उनके बारे में आप जान सकेंगे।

परीक्षण का विकास या रचना एक क्रमबद्ध या व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसमें कई चरण होते हैं। इन चरणों की विस्तृत जानकारी **मनोवैज्ञानिक परीक्षण** (Psychological testing) या **मनोमिति** (Psychometry) की पुस्तकों के अध्ययन से मिल सकती है। यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि एक परीक्षण को उपयोगी बनाने के लिए उसका कुछ कसौटियों पर संतोषजनक पाया जाना आवश्यक है। इन्हें **विश्वसनीय**, **वैध** एवं **मानकीकृत** होना चाहिए। यदि यह गुण नहीं है तो मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय जिसका मापन हो रहा है, उसके बारे में विश्वसनीय निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। आप बुद्धि एवं व्यक्तित्व वाले अध्यायों से विशिष्ट परीक्षणों के संदर्भ में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। आइए, मनोवैज्ञानिक परीक्षण की कुछ प्रमुख विशेषताओं को समझने का प्रयास करें।

विश्वसनीयता : विश्वसनीयता (Reliability) का तात्पर्य परीक्षण की सुसंगतता (Consistency) है, जो इसे विश्वसनीय बनाती है। सरल शब्दों में यदि किसी परीक्षण से कई अवसरों पर परीक्षण प्रशासन से एकसमान परिणाम प्राप्त होते हैं तो वह परीक्षण विश्वसनीय कहा जाएगा। उदाहरण के लिए, मान लीजिए आप किसी बच्चे की बुद्धि परीक्षा कर रहे हैं और उसे कुशाग्र बुद्धि का पाते हैं फिर दो माह के बाद उस पर वही परीक्षण दोहराते हैं। अब भी यदि बच्चे का प्राप्तांक उसी पहले वाली श्रेणी के अंतर्गत आता है तब इस परीक्षण को विश्वसनीय माना जाएगा। इस तरह की स्थिरता **पुनः परीक्षण विश्वसनीयता** (Retest reliabilty) कहलाती है।

(जैसे–मनोदशा, अवधान, प्रयास) भी परीक्षण के निष्पादन को प्रभावित करते हैं।

वैधता : वैधता यह बताती है कि परीक्षण जिस खास विशेषता का मापन करने के अभिप्राय से बनाया गया है क्या उसी का मापन कर रहा है। व्यक्तित्व का एक वैध परीक्षण व्यक्तित्व का मापन करेगा एवं उन परिस्थितियों में जहाँ व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण भूमिका रखता है, व्यक्ति के निष्पादन का सही पूर्वकथन करेगा। वैधता कई प्रकार की होती है। यहाँ हम वैधता के दो प्रकारों की चर्चा करेंगे। पहली **प्रतिमान संबंधी वैधता** (Criterion related validity) है। इसके अंतर्गत परीक्षण पर प्राप्त व्यक्ति के प्राप्तांक की अन्य मानकों या कसौटियों के साथ तुलना करते हैं जो सैद्धांतिक रूप से पहले वाले परीक्षण में जो मापन किया गया है, उससे जुड़ी हो।

दूसरे प्रकार की वैधता **निर्मिति वैधता** (Construct validity) कहलाती है। यह वह गुण है जो परिभाषित परिवर्त्य (निर्मिति/संप्रत्यय) के परीक्षण के प्राप्तांकों एवं दूसरे व्यवहारपरक मापकों या प्रायोगिक परिणामों, जो मापित विशेषताओं के सूचक हैं, के प्राप्तांकों के बीच धनात्मक सहसंबंधों को दर्शाता है। उदाहरणार्थ, बहिर्मुखता परीक्षण पर प्राप्तांकों को व्यक्तियों द्वारा कितनी बार पार्टियों में भाग लिया गया, इसकी संख्या के साथ सहसंबंधित किया जाता है।

मानकीकरण : इसका तात्पर्य है परीक्षण प्रशासन के विस्तृत विवरण का स्पष्ट रूप से निर्धारण करना। परीक्षण में किसी **मानक** या **प्रतिमान** (Norm) का उपयोग होना चाहिए ताकि व्यक्ति के प्राप्तांक की तुलना दूसरे (परिभाषित) समूह से की जा सके। किसी परीक्षण पर पाया गया प्राप्तांक निरपेक्ष प्राप्तांक नहीं होता। यह मानक वाले समूह के संदर्भ में ही होता है। इसलिए किसी प्राप्तांक की तुलना मानक समूह के सदस्यों के प्राप्तांकों से करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, मानक को इंगित करने के लिए मध्यमान प्राप्तांकों का उपयोग किया जाता है। समूह के औसत के संदर्भ में परीक्षार्थी के प्राप्तांकों का विवेचन किया जाता है। विभिन्न समूहों के लिए आयु, वर्ग, लिंग इत्यादि से संबंधित मानक निर्मित किए जाते हैं। यदि उपयुक्त मानक उपलब्ध न हों तो प्राप्तांकों का सार्थक ढंग से विवेचन नहीं किया जा सकता।

साक्षात्कार

लोगों से सूचना प्राप्त करने का सबसे अच्छा ढंग यह है कि उनसे पूछा जाए। मनोवैज्ञानिक प्रायः लोगों के व्यक्तिगत अनुभवों एवं अभिवृत्तियों के बारे में जानने के लिए साक्षात्कार एवं प्रश्नावलियों का उपयोग करते हैं। साक्षात्कार प्रायः आमने-सामने बैठकर संपादित किए जाते हैं। टेलीफोन पर भी प्रश्न पूछकर साक्षात्कार किया जाता है। साक्षात्कार पूर्णतः **असंरचित** (Unstructured) से अत्यंत **संरचित** (Structured) के बीच में हो सकते हैं। असंरचित साक्षात्कार में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर व्यक्ति स्वतंत्र रूप से अपने शब्दों में दे सकता है। साक्षात्कार प्रक्रिया के अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता, प्रश्नों का एवं उसके क्रम का निर्धारण करता है। दूसरी ओर, संरचित साक्षात्कार में प्रश्नों का क्रम पहले से तय होता है तथा अनुक्रिया देने के लिए भी पूर्व निर्धारित विकल्प दिए जाते हैं। प्रतिभागी को उनमें से कोई एक चुनकर अनुक्रिया देनी होती है। असंरचित साक्षात्कार का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। "आप स्वयं को कितना प्रसन्न समझते हैं? " असंरचित साक्षात्कार में इस प्रश्न का उत्तर व्यक्ति जिस ढंग से ठीक समझता है, दे सकता है, परंतु संरचित प्रश्न पर अनुक्रिया इन विकल्पों में से किसी एक को चुनकर देनी होगी – 'अत्यंत प्रसन्न', 'प्रसन्न', 'कुछ-कुछ प्रसन्न', 'कुछ-कुछ अप्रसन्न' एवं 'पूर्णतः अप्रसन्न'।

साक्षात्कार लेना एक कौशल है, जिसके लिए उचित प्रशिक्षण आवश्यक होता है। एक अच्छा साक्षात्कारकर्ता यह जानता है कि उत्तरदाता से किस तरह सहज साक्षात्कार शुरू किया जाए। वह उत्तरदाता की स्पष्ट अनुक्रिया प्राप्त करने के लिए सही तरीके से पूछताछ करता है। यदि अनुक्रिया अस्पष्ट होती है, तो साक्षात्कारकर्ता अधिक विशिष्ट एवं मूर्त उत्तर पाने की कोशिश करता है। यह ध्यान रखने की जरूरत है कि कम संरचित परिस्थितियों में साक्षात्कारकर्ता का कौशल एवं साक्षात्कार परिस्थिति की विशेषताएँ, ये दोनों ही पाई जाने वाली जानकारी की गुणवत्ता को निर्धारित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। साक्षात्कार का उपयोग विभिन्न परिस्थितियों, जैसे कर्मचारियों का चयन, परामर्श, शोध तथा बाजार-सर्वेक्षण इत्यादि में किया जाता है। इन परिस्थितियों में सर्वेक्षण की प्रक्रिया परिवर्तित होती रहती है। फिर भी साक्षात्कार से अच्छे परिणाम पाने के लिए कुछ सामान्य सुझाव निम्न हैं –

- *साक्षात्कारकर्ता को अधिक बातचीत से बचना चाहिए।*

- *साक्षात्कार के माध्यम से उत्तरदाता को बातचीत का अधिक अवसर मिलना चाहिए।*
- *प्रश्न विशिष्ट तथा सरल शब्दों में होने चाहिए।*
- *प्रश्नों को बिना धमकी के प्रस्तुत करना चाहिए।*
- *प्रश्न करते समय किसी एक ढंग से अनुक्रिया करने का संकेत नहीं देना चाहिए।*
- *आरंभ में ऐसे प्रश्नों से बचना चाहिए जिनमें वांछित अनुक्रिया संकेत निहित होता है।*
- *साक्षात्कारकर्ता को ऐसा संकेत या संदेश नहीं देना चाहिए कि वह ऊब रहा है।*

प्रश्नावली

प्रश्नावली (Questionnaire) में पहले से ही तय किए गए प्रश्नों का संकलन होता है और उत्तरदाता प्रश्नों को पढ़कर उनका उत्तर (साक्षात्कारकर्ता को वाचिक रूप में देने के स्थान पर) कागज पर देता है। यह संरचित साक्षात्कार जैसा होता है। प्रश्नावली आसानी से ज्यादा संख्या में लोगों को दी जा सकती है। विशिष्ट एवं स्पष्ट प्रश्नों से मिलने वाले प्रदत्तों (उत्तर) का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है। प्रश्न सावधानीपूर्वक लिखे होने चाहिए एवं शीर्षक के अनुरूप श्रेणीबद्ध होने चाहिए तथा उन्हें एक सामान्य विषय से विशिष्ट विषय की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। यदि प्रश्नों का क्रम पहले प्रश्न पर दिए गए उत्तर पर आधारित हो तो निर्देश में यह स्पष्ट उल्लेख रहना चाहिए कि उत्तरदाता को आगे किस तरह उत्तर देना है। प्रश्नावली इस प्रकार बनी होनी चाहिए कि उसका उपयोग करना सरल हो। निर्देश स्पष्ट रूप से लिखे होने चाहिए ताकि उत्तरदाता को उत्तर देने में कोई कठिनाई न हो।

अब तक आपने पढ़ा

शोध के प्रश्नों एवं समस्याओं के समाधान के लिए मनोवैज्ञानिक विभिन्न मापकों की सहायता से प्रासंगिक आँकड़ों एवं सूचनाओं को एकत्र करता है। ये मापक कई तरह के होते हैं : व्यवहारात्मक, वाचिक तथा दैहिक। इनके द्वारा विभिन्न प्रक्रियाओं तथा संप्रत्ययों को समझने में सहायता मिलती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षण एक प्रमुख मापक है जो किसी व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का मापन करता है। एक अच्छा मनोवैज्ञानिक परीक्षण विश्वसनीय एवं वैध होता है। इसे मानकीकृत होना चाहिए। इनके मानक निर्धारित होने चाहिए जिनके आधार पर व्यक्ति के प्राप्तांकों की व्याख्या की जा सके। इसके अतिरिक्त, साक्षात्कार का भी उपयोग आँकड़ों के संग्रह के लिए किया जाता है जिसमें उत्तरदाता से आमने-सामने बातचीत की जाती है। यह संरचित या असंरचित हो सकता है। प्रश्नावलियों का भी उपयोग किया जाता है। इनका संचालन आसान होता है क्योंकि प्रश्न प्रायः संरचित ढंग के होते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *जब छात्र से अध्यापक यह शिकायत करते हैं कि उन्होंने जो टेस्ट लिया है उसमें कक्षा में पढ़ाई गई बातें प्रश्नपत्र में पूरी तरह नहीं शामिल हैं तो अध्यापकों का कहना होता है कि इस परीक्षण में वैधता का अभाव है।* *सही / गलत*
2. *वीना की गणना, एक निश्चित ढंग से व्यवहार के लिए की जा सकती है। अतएव उसके बारे में पूरी तरह से पूर्वकथन किया जा सकता है। यह दर्शाता है कि उसका व्यवहार विश्वसनीय है।* *सही / गलत*
3. *साक्षात्कार संरचित तथा असंरचित दोनों तरह के हो सकते हैं।* *सही / गलत*
4. *प्रश्नावलियाँ मानकीकृत परीक्षण हैं।* *सही / गलत*
5. *मानक व्यक्तियों की तुलना का मानदंड है।* *सही / गलत*

उत्तर — 1. सही, 2. सही, 3. सही, 4. गलत, 5. सही।

मनोवैज्ञानिक शोध में निहित नैतिक मुद्दे

शोध के नैतिक पक्ष की जिम्मेदारी उस व्यक्ति पर होती है जो शोध कर रहा है। मनोवैज्ञानिकों ने शोधकर्ताओं के लिए नैतिक निर्देश विकसित किए हैं। इनका लक्ष्य तीन नैतिक सरोकार हैं : शोध में भाग लेन वाले व्यक्तियों के प्रति सम्मान, उनका हित एवं उनके प्रति न्याय, सम्मान के अंतर्गत व्यक्ति की निजता तथा चयन की स्वतंत्रता अर्थात् अध्ययन में भाग लेने के बारे में निर्णय लेने की छूट शामिल है। हित का तात्पर्य है शोध प्रतिभागी को शोध से होने वाले नुकसान से बचाना। न्याय का तात्पर्य यह सुनिश्चित करना

है कि शोध प्रतिभागिता के दायित्व एवं शोध के लाभ में समाज के सभी सदस्यों का हिस्सा हो। प्रतिभागी के प्रति नैतिक दृष्टि से उपयुक्त व्यवहार एवं उसके प्रति आचरण की अंतिम जिम्मेदारी शोधकर्ता की होती है। इन नैतिक निर्देशकों के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों की चर्चा आगे की जा रही है।

ऐच्छिक प्रतिभागिता : अध्ययन के प्रतिभागियों की स्वायत्तता की रक्षा की जानी चाहिए और वे भाग लें या न लें इसकी उन्हें स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। प्रतिभागियों को बिना किसी दबाव या अति-उत्प्रेरण के प्रतिभागिता के लिए निर्णय लेने की स्वतंत्रता रहनी चाहिए एवं अध्ययन आरंभ होने के बाद भी, उन्हें बिना किसी दंड के, अपने आप को अलग करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक अध्ययन में मानव प्रतिभागियों को लिया जाता है। उन्हें निर्णय लेने का अधिकार होना चाहिए कि वे प्रयोग में भाग लें या न लें।

सूचित सहमति : यह महत्त्वपूर्ण है कि अध्ययन में भाग लेने वाले सहभागी को यह जानकारी रहनी चाहिए कि अध्ययन के अंतर्गत क्या-क्या घटित होगा। सूचित सहमति के नियम के अनुसार आँकड़े एकत्र करने के पहले प्रतिभागी को यह बतला दिया जाना चाहिए कि वह अपनी प्रतिभागिता के बारे में निर्णय ले सकता है। अध्ययन शुरू करने के पहले ही प्रतिभागियों से भाग लेने के लिए अनुरोध किया जाना चाहिए। विशेष रूप से तैयार किया गया प्रोफार्मा सम्मानित प्रतिभागियों के पास उनसे अनुमति प्राप्त करने के लिए भेजा जाना चाहिए। ऐसे शोध जो मानव प्रतिदर्श पर किए जाने वाले होते हैं, उनके लिए पूर्व अनुमति लेना अत्यंत आवश्यक है।

छल-छद्म : इसका इस्तेमाल प्रायः मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रायोगिक दशाओं को कृत्रिम रूप से पैदा करने के लिए किया जाता है। छल-छद्म (Deception) सक्रिय या निष्क्रिय दोनों प्रकार का हो सकता है। सक्रिय छल-छद्म में शोधकर्ता शोध के उद्देश्य या कार्य-प्रणाली के बारे में गलत सूचना देता है। उदाहरण के लिए, कुछ अध्ययनों में प्रतिभागियों को यह निर्देश दिया जाता है कि अमुक ढंग से सोचें या कल्पना करें एवं उनके निष्पादन के बारे में गलत सूचना दी जाती है; जैसे – आप बहुत बुद्धिमान हैं, आप असहाय हैं या आप अक्षम हैं। ये सभी बातें इस ढंग से की जाती हैं कि प्रतिभागी विश्वास कर लेते हैं। ऐसा करना प्रयोगशाला में मनोवैज्ञानिक परिस्थिति या दशा के सृजन के लिए आवश्यक होता है। कभी-कभी मध्यस्थ का भी उपयोग किया जाता है जो शोध के अन्य प्रतिभागियों जैसा, या शोध परिवेश में उपस्थित अन्य सदस्यों जैसा व्यवहार प्रकट करता है। प्रतिभागियों को न केवल सही सूचना से वंचित रखा जाता है, बल्कि शोधकर्ता द्वारा सृजित कहानी पर भरोसा भी कराया जाता है। निष्क्रिय छल-छद्म में प्रतिभागी को या तो सूचना से दूर रखा जाता है या उसकी जानकारी के बिना ही उसके व्यवहार का प्रेक्षण एवं आकलन किया जाता है।

स्पष्टीकरण : जब प्रतिभागी प्रयोग में भाग ले लेता है तो अंत में उसे शोध के बारे में आवश्यक जानकारी दी जाती है। इसके दो लाभ हैं। पहला लाभ है प्रतिभागी को शोध के बारे में शिक्षित किया जाना एवं उस छल को, जो उपयोग में लाया गया था, उसे नकारना। दूसरा, यह सुनिश्चित किया जाता है कि प्रतिभागी जिस स्थिति में अध्ययन में भाग लेने आया था, अध्ययन के बाद वापस उसी स्थिति में जा रहा है। इससे प्राप्त सूचनाएँ कुछ शैक्षणिक मूल्यों के अनुभव के लिए महत्त्वपूर्ण होती हैं। उन अध्ययनों में जिनमें छल-छद्म का उपयोग किया जाता है, स्पष्टीकरण आवश्यक होता है। इसके द्वारा प्रतिभागियों को आश्वस्त कराया जाना आवश्यक है। एक शोधकर्ता जिसे अध्ययन के लिए उपयुक्त विधि नहीं मिल पा रही है, यदि वह छल-छद्म का उपयोग करने का निर्णय लेता है तो उसे यह सुनिश्चित करना होगा कि कोई और उपयुक्त विधि उपलब्ध नहीं है एवं प्रतिभागी का इस छल-छद्म से कम नुकसान होगा। शोधकर्ता प्रभावी ढंग से प्रतिभागियों को बता सकते हैं तथा उन्हें असंवेदनशील कर सकते हैं। छल-छद्म के स्वरूप की व्याख्या की जानी चाहिए एवं छल-छद्म क्यों आवश्यक है, यानी उसके कारण का उल्लेख भी किया जाना चाहिए। शोधकर्ता को यह भी प्रयास करना चाहिए कि छले जाने से प्रतिभागियों में चिंता उत्पन्न हुई है या जो अन्य दुष्प्रभाव पड़े हैं, उन्हें दूर किया जाए।

आंकड़ों की गोपनीयता: किसी अध्ययन के प्रतिभागी को अपनी निजता या गुह्यता (Privacy) बनाए रखने का अधिकार होता है। इसकी सुरक्षा, प्रतिभागी द्वारा दी गई सूचनाओं की गोपनीयता को बरकरार रखते हुए की जा सकती है, विशेष रूप से जब सूचना व्यक्तिगत एवं उलझनभरी या लज्जित करने वाली हो। प्रतिभागी की गोपनीयता की

रक्षा करने का सर्वोत्तम तरीका यह है कि प्रदत्त को प्रतिभागी परिचय से अलग कर, प्रदत्त के पन्ने पर कोड संख्या दी जानी चाहिए एवं उसके नाम तथा कोड दोनों को अलग से गुप्त रखा जाना चाहिए। जैसे ही शोध की आवश्यकता पूरी हो जाए, परिचय सूची को यथाशीघ्र नष्ट कर दिया जाना चाहिए।

अब तक आपने पढ़ा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रायः मनुष्यों पर किए जाते हैं। यहाँ शोधकर्ता तथा प्रतिभागी के बीच अंतःक्रिया होती है। इसलिए शोध प्रतिभगियों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता होती है। उनके अधिकार का सम्मान होना चाहिए। अध्ययन के अंतर्गत किसी भी तरह प्रतिभागी को नुकसान नहीं पहुंचने देना चाहिए। साथ ही अध्ययन की उपयोगिता सबके लिए सुलभ होनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों के व्यावसायिक वर्ग द्वारा नैतिक निर्देश विकसित किए गए हैं जिसका सभी शोधकर्ताओं को पालन करना चाहिए। ये मुख्य रूप से प्रतिभागियों की ऐच्छिक प्रतिभागिता, सूचित सहमति, छल-छद्म, खुलासा करना एवं आंकड़ों की गोपनीयता से संबंधित हैं।

आपने कितना सीखा

1. *नैतिक निर्देश ________, ________, तथा ________ को सुनिश्चित करते हैं।*
2. *शोध के प्रतिभागियों के अधिकारों की रक्षा ________ को व्यक्त करती है।*
3. *प्रतिभागियों की ________ अध्ययन में भाग लेने के बारे में निर्णय लेना चाहिए।*
4. *प्रदत्त संग्रह करने के पहले प्रतिभागियों की अध्ययन की प्रविधि के बारे में बताने को ________ कहते हैं।*
5. *प्रतिभागियों से सूचना छिपाना ________ का उदाहरण है।*
6. *शोधकर्ता का यह दायित्व है कि वह प्रदत्तों की ________ रक्षा करे।*
7. *खुलासा करने में अध्ययन की सामग्री के बाद प्रतिभागियों को ________ बताया जाता है।*

उत्तर –1. व्यक्तियों के लिए आदर, लाभ, न्याय, 2. लाभ, 3. स्वतंत्रता, 4. सूचित सहमति, 5. छल-छद्म, 6. गोपनीयता, 7. अध्ययन।

प्रमुख तकनीकी शब्द

वृत्त अध्ययन, सहसंबंध, अंतर्वस्तु विश्लेषण, प्रदत्त, स्पष्टीकरण या खुलासा करना, आश्रित परिवर्त्य, मांग विशेषताएं, इंद्रियानुभविक प्रयोग, व्याख्या, प्रयोगकर्ता प्रत्याशा, क्षेत्र प्रयोग, परिकल्पना, अनाश्रित परिवर्त्य, सूचित सहमति, साक्षात्कार, मानक, प्रेक्षण, पूर्वकथन, विश्वसनीयता, यादृच्छिकीकरण, मानकीकरण, सर्वेक्षण, प्रकट मापक, परिवर्त्य, वैधता।

सारांश

- व्यवहार के स्वरूप एवं कारणों के बारे में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मनोवैज्ञानिक लोग वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं। वैज्ञानिक विधि इंद्रियानुभविक, वस्तुनिष्ठ एवं स्वतः परिमार्जन की क्षमता वाली होती है। इससे वे तथ्य प्राप्त होते हैं जिनकी जाँच की जा सके एवं सामान्यीकरण किया जा सके। वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना तथा समस्या का समाधान करना होता है। इसलिए वैज्ञानिक शोध सैद्धांतिक तथा अनुप्रयुक्त दोनों प्रकार की होती है।
- मनोवैज्ञानिक अध्ययन का लक्ष्य किसी घटना या गोचर का वर्णन, उसकी समझदारी, पूर्वकथन, नियंत्रण एवं अनुप्रयोग होता है।
- वैज्ञानिक विधि सार्वजनिक, पुनरावृत्तियोग्य, वस्तुनिष्ठ एवं वैध जानकारी प्रदान करती है।
- वैज्ञानिक विधि में निहित प्रमुख चरणों के अंतर्गत समस्या, परिवर्त्यों की पहचान, परिकल्पना निर्माण, प्रदत्त संग्रह, प्रदत्त विश्लेषण एवं विवेचन तथा रिपोर्ट की तैयारी एवं उसका प्रकाशन आता है।
- प्रेक्षण किसी गोचर के वर्णन पर केंद्रित होता है जो अध्ययन में घटनाओं के अंकन तथा अभिलेख द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है।
- वृत्त अध्ययन एक व्यक्ति पर किया जाता है। गहन दृष्टिकोण अपनाते हुए इसमें विभिन्न स्रोतों से आँकड़ों को एकत्र किया जाता है।
- सर्वेक्षण में साक्षात्कार एवं प्रश्नावली की सहायता से वांछित प्रतिदर्श के बारे में उपयोगी प्रदत्त प्राप्त होते हैं।
- प्रयोगात्मक अध्ययन किसी गोचर या घटना को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधि है। इसमें परिवर्त्यों का नियंत्रण एवं परिवर्त्यों का सक्रिय हेरफेर संभव है। प्रयोगकर्ता द्वारा जिस घटना में हेरफेर किया जाता है, वह अनाश्रित परिवर्त्य कहलाती है, एवं वह व्यवहार जिसमें परिवर्तन देखा जाता है, आश्रित परिवर्त्य कहलाता है। प्रयोगकर्ता विभिन्न बाह्य परिवर्त्यों; जैसे – प्रयोज्य संबंधी, परिस्थिति संबंधी एवं क्रम संबंधी परिवर्त्योक्षित को नियंत्रित करता है। इसके लिए विभिन्न तकनीकों; जैसे – निरसन, परिस्थितियों का स्थिरीकरण, सुमेलन, प्रतिसंतुलन एवं यादृच्छिक आबंटन का उपयोग किया जाता है। प्रायोगिक परिस्थितियों में मानव (प्रयोगकर्ता, प्रयोज्य) के बीच होने वाली अंतःक्रियाओं से विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है इसलिए उनके बारे में शोधकर्ता को जानकारी होनी चाहिए। आत्मप्रतिपूर्ति, मांग विशेषताएं, अस्त-व्यस्तता, प्रतिक्रियात्मकता एवं प्रयोगकर्ता की प्रत्याशा इत्यादि प्रमुख रूप से घटित हो सकते हैं।
- विकासात्मक अध्ययन में शोधकर्ता प्रतिनिध्यात्मक, अनुदैर्ध्य एवं अनुक्रमिक अभिकल्पों का उपयोग करता है।
- गुणात्मक विधियों से गोचरों का विवेचनात्मक विवरण प्राप्त होता है जिसमें शोधकर्ता एक प्रमुख तत्व होता है। वह आंतरिक परिप्रेक्ष्य में सहभागी होकर अनुभव प्राप्त करता है।
- मनोवैज्ञानिक अध्ययन में शोधकर्ता विभिन्न प्रकार के परीक्षणों, साक्षात्कार अनुसूचियों एवं प्रश्नावलियों का प्रमुख मापकों के रूप में उपयोग करता है। परीक्षण विश्वसनीय, वैध एवं मानकीकृत होने चाहिए। इनके प्रश्न सहभागी को अपने शब्दों में उत्तर देने का अवसर दे सकते हैं या पहले से ही तय होते हैं।
- मनोवैज्ञानिक शोध करते समय कुछ नैतिक मुद्दे उपस्थित होते हैं जिनमें व्यक्ति (संभावित सहभागी) के प्रति सम्मान, हित एवं न्याय प्रमुख हैं। इस तरह के नैतिक मार्ग-निर्देशकों में प्रमुख हैं ऐच्छिक सहभागिता, सूचित सहमति, छल-छद्म, स्पष्टीकरण एवं प्रदत्तों की गोपनीयता।

समीक्षात्मक प्रश्न

1. मनोवैज्ञानिक अध्ययन के क्या लक्ष्य हैं?
2. किसी गोचर या घटना के अध्ययन हेतु वैज्ञानिक उपागम की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. परिकल्पना को परिभाषित कीजिए एवं समस्या या शोध प्रश्न के साथ भेद कीजिए।
4. परिवर्त्यों के मुख्य-मुख्य प्रकार क्या हैं? प्रत्येक प्रकार के परिवर्त्यों का उदाहरण दीजिए।
5. प्रयोग की क्या विशेषताएं हैं जो इसे एक महत्त्वपूर्ण विधि के रूप में स्थापित करती हैं?
6. वृत्त अध्ययन उपागम के क्या लाभ एवं हानियाँ हैं?
7. साक्षात्कार एवं प्रश्नावली के बीच क्या अंतर है?
8. प्रतिनिध्यात्मक एवं अनुदैर्ध्य उपागमों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
9. मनोवैज्ञानिक परीक्षण की कौन-कौन सी विशेषताएं होती हैं?
10. मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के करने के लिए कौन-कौन से नैतिक दिशा-निर्देश हैं?

3 व्यवहार के जैविक आधार

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- व्यवहार के जैविक आधार का परिचय
- मस्तिष्क एवं व्यवहार का मूल्यांकन
- जीन तथा व्यवहार से उनका संबंध
- तंत्रिका तंत्र एवं उसके विभिन्न विभागों का विवरण
- तंत्रिक या स्नायुकोश की संरचना, प्रकार्य एवं स्नायु आवेग का संवहन
- अंतःस्रावी तंत्र एवं व्यक्तित्व

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

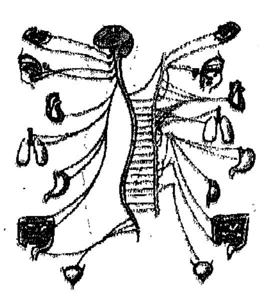
- मानव के जैविक एवं व्यवहारगत विकास के उद्भव को समझ सकेंगे,
- मनुष्य एवं अन्य प्रजातियों के व्यवहार में अंतर कर सकेंगे,
- जीन कैसे कार्य करता है एवं व्यवहार को कैसे निर्धारित करता है यह समझ सकेंगे,
- केंद्रीय एवं परिधीय तंत्रिका तंत्र एवं इसके उपविभाजन की संरचना व स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार के प्रमुख स्नायुकोशों की संरचना व प्रकार्य की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- मनुष्य के व्यवहार एवं व्यक्तित्व निर्धारण में अंतःस्रावी ग्रंथियों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

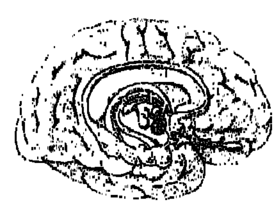
विषयवस्तु

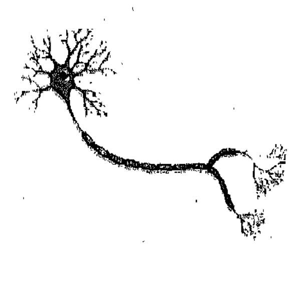
परिचय

*शारीरिक संरचना, मस्तिष्क के विकास एवं मानसिक क्षमताओं के आधार पर पशु एवं अन्य **होमोसैपियन्स** प्रजातियों में मनुष्य सबसे अधिक विकसित है। मनुष्य एवं अन्य प्रजातियों में सबसे प्रमुख अंतर है: मनुष्यों का सीधे खड़े होकर चलना, शारीरिक भार के अनुपात में मस्तिष्क के आकार का बड़ा होना, तथा विशिष्ट मस्तिष्कीय ऊतकों का अनुपात अधिक होना एवं भाषा का विकसित होना। लाखों वर्षों के विकास के परिणामस्वरूप अपने अति-विकसित मस्तिष्क एवं जटिल तंत्रिका तंत्र के साथ मनुष्य उच्च बौद्धिक क्रियाओं, जैसे - अमूर्त चिंतन एवं तर्कना की क्षमता रखता है। मनुष्य के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र की संरचना, शरीर-क्रिया एवं मस्तिष्क की गतिविधि को समझना आवश्यक है। इस अध्याय को हम लोग **जैविक मनोविज्ञान** के सामान्य प्रस्तुतीकरण से आरंभ करेंगे एवं बाद में प्रत्यक्षीकरण, मानव व्यवहार के स्नायविक जैविक आधार का अध्ययन करेंगे।*

***जैविक मनोवैज्ञानिक, स्नायु मनोवैज्ञानिक** एवं **दैहिक मनोवैज्ञानिक** जटिल व्यवहार एवं तंत्रिका तंत्र (विशेष रूप से मस्तिष्क) की प्रक्रियाओं के बीच संबंधों का अध्ययन करते हैं। ये लोग विचार, भाव एवं क्रिया के स्नायविक आधार की खोज का प्रयास करते हैं। मनुष्य के जैविक स्वरूप को समझ कर आप अच्छी तरह जान सकेंगे कि मस्तिष्क, व्यवहार एवं वातावरण की अंतःक्रिया मनुष्य को किस तरह अद्वितीय बनाती है। इस अध्याय में आप अधिकांशतः तंत्रिका तंत्र (जिसमें मस्तिष्क भी सम्मिलित है) एवं व्यवहार के स्तर पर दिखने वाले परिणामों के बारे में पढ़ेंगे। आप अंतःस्रावी तंत्र एवं वह व्यक्तित्व को कैसे प्रभावित करता है, तथा जीन एवं व्यवहार के बारे में भी पढ़ेंगे।*







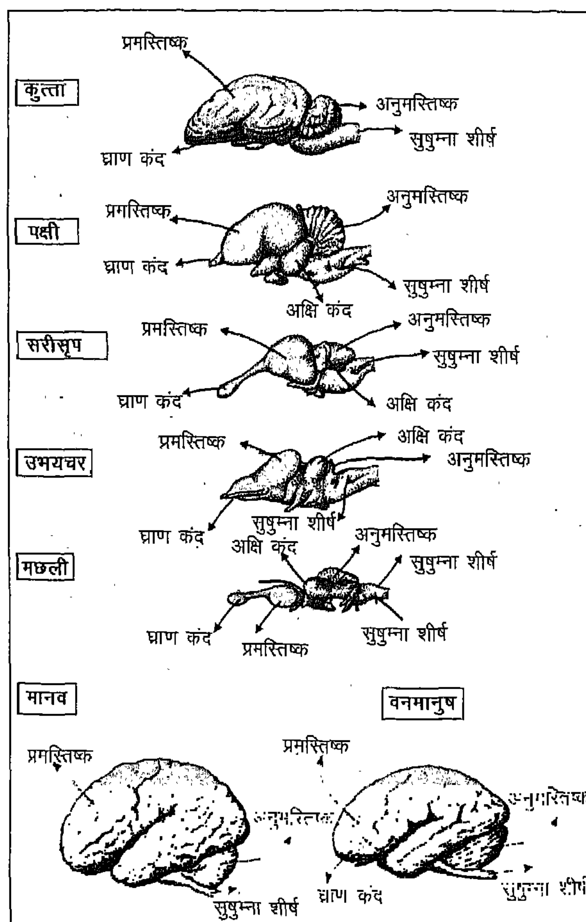
उद्विकासात्मक परिप्रेक्ष्य

इस संसार में आप भिन्न-भिन्न प्रकार के लाखों जीवों को पाएंगे जो रूप, आकार एवं व्यवहार में अत्यधिक भिन्न हैं। इन जीवों में कीट-पतंग, मानवाकार जीव, मछली, सरीसृप, पक्षी एवं स्तनधारी सम्मिलित हैं। फिर प्रत्येक जीव की श्रेणी में असंख्य रूप हैं जो एक-दूसरे से भिन्न हैं। जीव-वैज्ञानिकों की मान्यता है कि आज जो इतनी बड़ी संख्या में प्रजातियाँ अस्तित्व में हैं वे उद्विकास क्रम में अपने वर्तमान रूप तक आई हैं एवं मनुष्य इस पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी प्राणियों में सर्वाधिक विकसित है। लाखों वर्षों के उद्विकास के बाद भी हम अभी भी विकसित हो रहे हैं एवं यह प्रक्रिया सतत चल रही है।

चार्ल्स डार्विन ने 1859 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "The Origin of Species" में यह प्रस्तावित किया कि प्राणियों में लंबे समय से मंद गति से परिवर्तन हो रहा है। डार्विन ने इस बात पर बल दिया कि व्यवहार एवं भौतिक स्वरूप दोनों एक साथ विकसित होते रहे हैं। आज जैव वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि पशुओं का व्यवहार एवं दैहिक स्वरूप उद्विकास यानी क्रमविकास के द्वारा परिवर्तित हुआ है। यहां यह उल्लेखनीय है कि व्यवहारगत एवं दैहिक दोनों प्रकार के परिवर्तन एक साथ घटित होते हैं। उद्विकास के सिद्धांत के अनुसार समय के साथ प्राणी अपने अद्वितीय वातावरण के अंदर उत्पन्न होता है एवं उसके साथ स्वयं को अनुकूलित करता है।

ऐसे रोगियों के निरीक्षण द्वारा, जिनकी मस्तिष्क कोशिकाएँ रोग, औषधि या दुर्घटना के कारण नष्ट हो चुकी हैं, हमें व्यवहार के जैविक आधार का पता चलता है। हम देखते हैं कि ऐसे रोगियों में सामान्य मानसिक प्रक्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं एवं उनमें विभिन्न प्रकार की कमियाँ विकसित हो जाती हैं। इसके आधार पर हम उन दैहिक पदार्थों (उदाहरणार्थ – कोशिका (Cell) के महत्त्व को पहचान लेते हैं, जिनसे संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अधिगम, भाषा, मानव तर्कना एवं विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। आपने यह अवश्य देखा होगा कि कैसे लोग बुद्धि, सीखने की क्षमता, स्मृति एवं अन्य अनेक मानसिक तथा दैहिक विशेषताओं के आधार पर भिन्न होते हैं। प्रत्येक मनुष्य की यह अद्वितीयता मस्तिष्क, व्यवहार एवं सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण के मध्य अंतःक्रिया का परिणाम है।

मनुष्य आज उद्विकास के परिणामस्वरूप जिस जैविक एवं व्यवहारगत स्वरूप में है उसका कारण उस पर पड़ने वाली पर्यावरणीय माँगों एवं अपेक्षाओं का प्रभाव है (चित्र 3.1 देखिए)। प्रारंभिक मानव समुदाय में कार्य इस प्रकार बँटे थे कि शिकार करना तथा दूरदराज से भोजन इकट्ठा करने का काम अधिकांशतः पुरुष करते थे तथा महिलाएँ घर के कामकाज तथा बच्चों की देखभाल करती थीं। पुरुषों तथा स्त्रियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की माँगों तथा सांस्कृतिक रूप से परिभाषित अलग-अलग भूमिकाओं के कारण, स्त्रियाँ सूक्ष्म गत्यात्मक कार्यों (fine motorskills) तथा पुरुष श्रमशील एवं कठिन कार्यों में निपुण होते गए। आधुनिक औद्योगिक संस्कृतियों में विभिन्न प्रकार के विशिष्ट कार्यों को करने के लिए लोगों में व्यापक क्षमताओं की आवश्यकता होती है एवं इस कारण पुरुषों एवं स्त्रियों की भूमिकाओं का यह संकीर्ण विभाजन तेजी से लुप्त होता जा रहा है। उदाहरणार्थ, आज की महिलाएँ जहाँ फौज तथा पुलिस की नौकरियों में हैं,



चित्र 3-1 : मस्तिष्क का उद्विकास।

वहीं पुरुष होटलों एवं अन्य खाद्य उद्योगों में रसोइये का कार्य कर रहे हैं। पुरुषों एवं स्त्रियों में विशिष्ट क्षमताओं के आधार पर अंतर तेजी से समाप्त हो रहा है तथा किसी भी लिंग का व्यक्ति अधिकांश कार्यों को कर सकता है। इससे प्रदर्शित होता है कि पर्यावरणीय माँग के कारण कालांतर में मनुष्य में जैविक तथा व्यवहारगत परिवर्तन होते हैं। पर्यावरणीय परिवर्तन प्रजाति के सदस्यों में संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करते हैं। जिन लोगों में परिवर्तन के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सहायक विशेषताएँ होंगी, वे ही अस्तित्व में रहेंगे एवं अपनी संतति जारी रखेंगे।

मानवीय उद्‌विकास की प्रमुख घटनाएँ

मनुष्य को अन्य प्रजातियों से भिन्न करने वाले उद्‌विकासात्मक प्रक्रम के तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं – (i) द्‌विपादता, (Bipadelism) (ii) प्रमस्तिष्कीकरण (Encephalization) तथा (iii) भाषा विकास।

(i) **द्‌विपादता** – इसका तात्पर्य है मनुष्य में सीधा खड़े होकर चलने की क्षमता। इससे मनुष्य के हाथ उपकरणों को पकड़ने एवं उनके उपयोग हेतु स्वतंत्र हो गए। फलतः मनुष्य खोजबीन करने में अधिक सक्षम हो गए।

(ii) **प्रमस्तिष्कीकरण** – यह मस्तिष्क के आकार तथा विशिष्ट मस्तिष्कीय ऊतकों के अनुपात में वृद्‌धि को द्‌योतित करता है। शरीर के भार के अनुपात में मस्तिष्क का भार मनुष्यों में बंदरों से तीन से चार गुना अधिक होता है। मस्तिष्क के भार के अतिरिक्त विशिष्ट मस्तिष्कीय ऊतकों के अनुपात में भी वृद्‌धि हुई। इसके परिणामस्वरूप जटिल चिंतन, तर्कना, स्मृति तथा समस्या समाधान की क्षमता बढ़ गई। इससे मनुष्यों को उच्च संज्ञानात्मक प्रक्रमों की क्षमता प्राप्त हुई। (चित्र 3.1 देखिए)।

(iii) **भाषा विकास** – तीसरी प्रमुख विकासात्मक घटना थी, भाषा का आगमन। इसके द्‌वारा एक मनुष्य की दूसरे मनुष्यों के साथ प्रभावशाली अंतःक्रिया संभव हुई तथा यह सांस्कृतिक विकास का आधार बनी। भाषा विचार का साधन है तथा इसके द्‌वारा मनुष्य दूसरों के साथ प्रभावशाली ढंग से संचार-संपर्क स्थापित कर सकता है। भाषा की विस्तारपूर्ण विवेचना अध्याय 10 में की गई है।

जीन एवं व्यवहार

जन्म के समय बच्चे में माता-पिता से प्राप्त जीन का अद्‌वितीय संयोजन होता है। यह विरासत या वंशदाय (Inheritance) व्यक्ति के विकास के लिए एक विशिष्ट जैविकीय आधार तथा रूपरेखा प्रदान करती है। जीवों में भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को पूर्वजों से आगामी पीढ़ी तक पहुंचने की प्रक्रिया के अध्ययन को *आनुवंशिकी* (Genetics) कहा जाता है। आइए, इसके बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें।

बच्चा अपने जीवन का आरंभ एकल कोशिका के रूप में करता है। यह अंडकोशिका (Egg cell) जो माता के जननांग में उत्पन्न होती है, एक छोटा गोलाकार द्रव्य होता है, जिसके केंद्र में एक गाढ़े रंग का केंद्रक (nucleus) होता है। केंद्रक में गुणसूत्र (chromosome) पाए जाते हैं। गुणसूत्र डी.एन.ए. अणुओं की शृंखला होते हैं जो शरीर के प्रत्येक कोश में पाए जाते हैं तथा माता-पिता द्‌वारा युग्मों के रूप में संतानों को प्राप्त होते हैं। गुणसूत्र ही जीन का वहन करते हैं।

गुणसूत्र

हमारे शरीर के अधिकांश कोशों में 23 जोड़े गुणसूत्र पाए जाते हैं। यदि आप सूक्ष्मदर्शी द्‌वारा देखें तो पाएंगे कि ये 46 गुणसूत्र (23-जोड़े) रंगीन मोतियों की लंबी शृंखला जैसे दिखते हैं। ये 46 गुणसूत्र मुख्यतः डी.एन.ए. (डी-आक्सीरिबोन्यूक्लिक एसिड) के बने होते हैं। अपने संघटन के आधार पर गुणसूत्र अम्ल (acid) होता है। इसे न्युक्लिक अम्ल कहते हैं, क्योंकि यह मुख्यतः कोशों के केंद्रक (न्यूक्लियस) में पाया जाता है। हमारे जीन मुख्य रूप से डी.एन.ए. अणुओं से बने होते हैं। डी.एन.ए. में प्रोटीन के उत्पादन हेतु निर्देश निहित होते हैं। यह प्रोटीन शरीर के जैविक प्रक्रमों को संचालित करता है तथा *शीलगुणों* (शरीर रचना, शारीरिक बल, बुद्‌धि तथा अन्य व्यवहारगत शीलगुण) की अभिव्यक्ति का नियमन करता है।

जैसा कि बताया जा चुका है, हमारे शरीर के अधिकांश कोशों में 23 जोड़े गुणसूत्र प्राप्त होते है; 23 माता से तथा 23 पिता से। प्रत्येक गुणसूत्र में हजारों जीन होते हैं किन्तु शुक्राणु (sperm cell) (पिता का कोश) अंडाणु (Egg cell) (माता का कोश) से एक महत्त्वपूर्ण विमा पर भिन्न होता है।

शुक्राणु का 23वां गुणसूत्र लंबा X प्रकार का या छोटा Y प्रकार का हो सकता है जबकि अंडाणु का 23वां गुणसूत्र सर्वदा लंबा X प्रकार का होता है। यदि X प्रकार का शुक्राणु अंडाणु का निषेचन करता है तब निषेचित अंडे में 23वां गुणसूत्र जोड़ा XX होगा तथा संतान स्त्री होगी। वहीं दूसरी ओर, यदि Y प्रकार के शुक्राणु द्वारा अंडाणु का निषेचन हो तब 23वाँ गुणसूत्र का जोड़ा XY होगा तथा संतान पुरुष होगी। इस प्रकार, *संतान का लिंग पूर्णरूप से शुक्राणु के गुणसूत्रों अर्थात् पिता पर निर्भर करता है।*

जीन

प्रत्येक गुणसूत्र में हजारों *आनुवंशिक निर्देश* विद्यमान होते हैं, प्रत्येक निर्देश जो एक जीन में आनुवंशिक संप्रेषण की मूलभूल इकाई है, अंकित होता है। प्राणी के विकास का क्रम अधिकांशतः जीन द्वारा ही निर्देशित होता है। प्राणी के जीन के पूरे समूह (जो माता-पिता से प्राप्त होता है) को उसका *जेनोटाइप* (Genotype) यानी जीन प्ररूप कहा जाता है। प्राणी जिन विशेषताओं को विकसित करता है, जिनके द्वारा उसे पहचाना जाता है, उसके प्रेक्षणीय लक्षण, जैसे

बाक्स 3.1 **प्राकृतिक चयन तथा समाज-जैविकी**

प्राकृतिक वातावरण में जीवन को बनाए रखने तथा प्रजनन के लिए प्रायः संघर्ष करना पड़ता है। कुछ पशुओं में ऐसी विशेषताएं (शीलगुण) पाई जाती हैं जो उन्हें दूसरे पशुओं की अपेक्षा अधिक लंबे समय तक जीवित रहने में सक्षम बनाती हैं, अतः उनमें प्रजनन की अधिक संभावना होती है, "योग्यतम की उत्तरजीविता"। पेपर्ड पतंगों पर 1965 में कैटवेल द्वारा किए गए शोध से यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रदूषित व कालिखयुक्त वातावरण में हल्के रंग के पेपर्ड पतंगों की तुलना में गाढ़े रंग के पेपर्ड पतंगों का अनुपात बढ़ गया क्योंकि ऐसे गाढ़े रंग के पतंगों के लिए यह वातावरण अनुकूल था। यह उदाहरण प्रदर्शित करता है कि वातावरण की विशेषताएं यह तय करती हैं कि पशु की कौन-सी विशेषताएं उसके जीवित रहने में सहायक होंगी। एक अन्य उदाहरण लीजिए : जिराफों की गर्दन की अतिरिक्त लंबाई वृक्षों के शीर्ष तक इनकी पहुँच बनाती है, जिससे वे वहां पनपने वाले पत्तों को खा सकते हैं। ऐसे पर्यावरण में छोटी गर्दन वाले जिराफों की तुलना में लंबी गर्दन वाले जिराफों के जीवित रहने एवं प्रजनन करने की संभावना अधिक होती है। इनकी लंबी गर्दन भावी पीढ़ियों तक अंतरित होती जाएगी। समय के साथ प्राकृतिक चयन के क्रमिक प्रभाव के द्वारा लाभदायक विशेषताओं वाली प्रजातियों के सदस्यों की संख्या बढ़ती जाएगी।

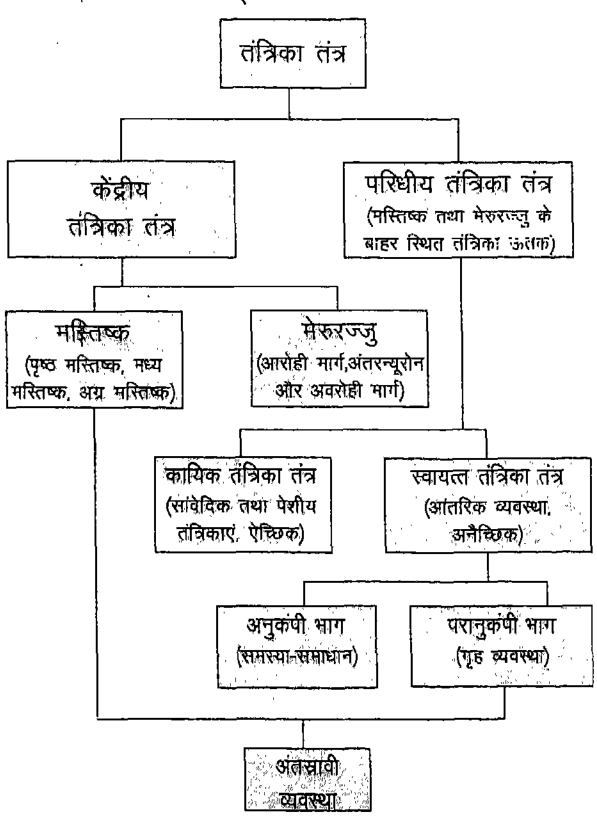
पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह प्रक्रिया चलती रहती है तथा पशुओं के स्वरूप एवं व्यवहार में परिवर्तन लाती है। इसका अंतिम परिणाम होता है – नई प्रजातियों का विकास। डार्विन ने इसे ***प्राकृतिक चयन*** (Natural selection) *कहा है। कैटवेल का अध्ययन प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया को प्रकट करता है।*

समाज-जैविकी *(Socio-biology) सभी सामाजिक व्यवहारों के जैविक आधार का क्रमबद्ध अध्ययन है। इसका केंद्रीय संप्रत्यय यह है कि मनुष्य के जीवन का उद्देश्य है अगली पीढ़ी तक जीन को पहुंचाना। जैसा कि ऊपर वर्णित है, व्यक्ति को अपने वातावरण से बेहतर समायोजन स्थापित करने के लिए उद्विकासात्मक शक्तियाँ कार्य कर रही हैं ताकि वे अपने जीन को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए जीवित रहें। पशुओं एवं मनुष्यों में विभिन्न प्रकार के समायोजन स्थापित करने वाले सामाजिक व्यवहारों के जैविक विकास का अध्ययन समाज-जैविकी का मुख्य विषय है। पशुओं पर किए गए अध्ययन सामाजिक संगठनों के उद्विकासात्मक आधार का समर्थन करते हैं। अर्थात् मनुष्यों के उद्विकासात्मक इतिहास से* ***'जैव-चित्र'*** *(Biogram) प्राप्त हैं जो उनके सामाजिक व्यवहार एवं संगठन के मूलस्वरूप को निर्देशित करता हैं।*

समाज-जैववैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों के बीच का विवाद वर्षों पुराने प्रकृति-प्रशिक्षण (आनुवंशिकता-पर्यावरण) विवाद के समान है। समाज-जैववैज्ञानिकों की मान्यता है कि मनुष्यों के द्वारा प्रदर्शित अधिकांश सामाजिक व्यवहारों का गहन उद्विकासात्मक आधार है।

शरीर संरचना, आँखों का रंग तथा अन्य व्यवहारगत शीलगुण, आदि को उसका *फेनोटाइप* (phenotype) यानी व्यक्त प्ररूप कहा जाता है। अध्ययन का वह क्षेत्र जो व्यवहारगत शीलगुणों जैसे बुद्धि, मानसिक रोग आदि के आनुवंशिक आधार की खोज पर बल देता है, को *व्यवहारगत आनुवंशिकी* (Behaviour genetics) कहते हैं।

यह देखा गया है कि एक ही प्रकार के वंशागतदाय होने पर भी बच्चों का व्यवहार उनके माता-पिता से भिन्न होता है। इस तरह की भिन्नता के दो कारण हो सकते हैं। पहला, बच्चे में माता-पिता से भिन्न जीन का एक अद्वितीय संयोजन होता है। माता-पिता को उनके अपने पूर्वजों से जो प्राप्त होता है वे उसका कुछ भाग ही बच्चों को देते हैं। दूसरा कारण है, बच्चे माता-पिता के वातावरण से भिन्न प्रकार के वातावरण में पलते-बढ़ते हैं। हमारे वर्तमान स्वरूप को बनाने में वातावरण तथा आनुवंशिक संरचना दोनों ही समान रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीन तथा पर्यावरण या आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के बीच यह अंतःक्रिया प्राणी की अद्वितीयता को निर्धारित करती है।



चित्र 3.2 : तंत्रिका तंत्र का योजनाबद्ध निरूपण।

हमारा आनुवंशिक दाय जीवन के महत्त्वपूर्ण अनुभवों के लिए कार्यक्षेत्र भी तैयार करता है। उदाहरणार्थ, यदि आपने स्त्री के रूप में जन्म लिया है तो आपके साथ पुरुषों की अपेक्षा भिन्न प्रकार का व्यवहार किया जाएगा तथा प्राणी का व्यवहारगत स्वरूप भी उसके लिंग (Gender) के सामाजिक रूप के आधार पर भिन्न प्रकार का होगा।

तंत्रिका तंत्र

संसार के किसी भी प्राणी की तुलना में मनुष्य का तंत्रिका तंत्र सबसे अधिक जटिल एवं विकसित होता है। आइए, अब तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं कार्यप्रणाली को समझें। यद्यपि तंत्रिका तंत्र एक समग्र इकाई के रूप में कार्य करता है, अध्ययन की सुविधा के लिए इसे प्रकार्यों की विशिष्टता के आधार पर हम सैद्धांतिक रूप से बाँट सकते हैं। चित्र 3.2 में तंत्रिका तंत्र के संगठन की रूपरेखा को प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 3.2 में यह देखा जा सकता है कि तंत्रिका को दो मुख्य भागों–**केंद्रीय तंत्रिका तंत्र** एवं **परिधीय तंत्रिका तंत्र** (Peripheral Nervous System) में बाँट सकते हैं।



चित्र 3.3 : केंद्रीय एवं परिधीय तंत्रिका तंत्र।

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र सभी स्नायविक गतिविधियों का केंद्र है। यह पर्यावरण से आने वाली सभी सूचनाओं, विचार प्रक्रियाओं व निर्णय को संयोजित करता है एवं शरीर के लिए आदेश जारी करता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में समाविष्ट हैं: (क) मस्तिष्क एवं (ख) मेरुरज्जु।

मस्तिष्क

ऐसी धारणा है कि मानव मस्तिष्क लाखों वर्षों में निम्न पशुओं के मस्तिष्क से विकसित हुआ है एवं यह विकासात्मक प्रक्रिया अभी भी जारी है (मनुष्य एवं अन्य किसी भी प्रजाति की तुलना के लिए चित्र 3.1 देखिए)। अन्य किसी भी प्रजाति की तुलना में मनुष्य का मस्तिष्क भार के सापेक्ष

बाक्स 3.2 **मस्तिष्क के अध्ययन की विधियाँ**

मस्तिष्क के अध्ययन में आधुनिक प्रगति तकनीकी नवाचारों के परिणामस्वरूप संभव हुई है। अब मस्तिष्क की क्रियाप्रणाली का अध्ययन मस्तिष्कीय क्रमवीक्षण (स्कैनिंग) के द्वारा मस्तिष्क के ऊतकों को बिना क्षति पहुँचाए संभव हो गया है। मस्तिष्कीय क्रमवीक्षण विशिष्ट मस्तिष्कीय क्षेत्रों में विद्युतीय एवं जैव-रासायनिक क्रियाओं का यांत्रिक मापन है। ये यंत्र मस्तिष्कीय ऊतकों को बिना क्षति पहुँचाए जीवित मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों के चित्र तैयार करते हैं। अधिकांश नई क्रमवीक्षण विधियाँ मस्तिष्क चित्रण (Brain Imaging) तकनीक का उपयोग करती हैं। चिकित्सकों एवं शोधकर्ताओं द्वारा वर्तमान में उपयोग किए जाने वाले छः मस्तिष्कीय क्रमवीक्षण उपकरण है: सी. टी. स्कैनिंग, पी.ई.टी. (पेट) स्कैनिंग, स्पेक्ट, एस.यू. आई.डी. एवं ई.ई.जी.। इनमें से प्रत्येक क्रमवीक्षण उपकरणों के अपने गुण एवं दोष हैं। आइए, इन क्रमवीक्षण उपकरणों पर संक्षेप में विचार करें।

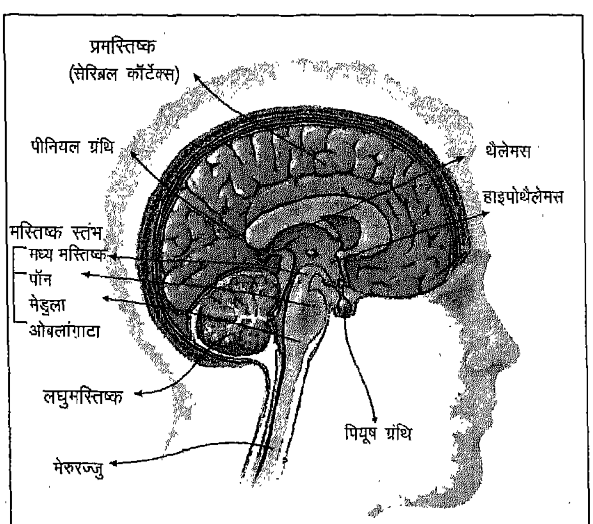
1. ***सी.टी. स्कैनिंग या कंप्यूटराइज्ड़ टोमोग्राफी :*** *इस विधि से एक्स-किरणों की सहायता से (जिन्हें विभिन्न कोणों से मस्तिष्क से पार कराया जाता है) उन कोमल ऊतकों की संरचना का पता लगाया जाता है जिसे सामान्य एक्स-रे प्रकट करने में अक्षम होते हैं। टोमोग्राफी की सहायता से मस्तिष्क की विभिन्न अनुप्रस्थ काटों (Cross sections) का दृश्य पाना संभव है।*
2. ***पी.ई.टी. (पेट) स्कैनिंग या पाजीट्रान एमिसन टोमोग्राफी :*** *यह मस्तिष्क के क्रियाशील क्षेत्रों में रेडियोधर्मी पदार्थ की गति के अंकन के द्वारा स्नायविक यानी तंत्रिकाओं के प्रकार्य का मापन करता है। यह तकनीक रेडियोधर्मी रंग से उत्पन्न प्राजीट्रॉन कणों की पहचान पर निर्भर करती है। मस्तिष्क के प्रकार्य के अंकन के लिए यह एक अच्छी तकनीक है।*
3. ***एम.आर.आई. या मैग्नेटिक रेजोनेंस इमेजिंग :*** *यह कंप्यूटर द्वारा समझे जा सकने वाले संकेतों को उत्पन्न करने के लिए रेडियोतरंगों एवं प्रबल चुंबकीय क्षेत्रों का उपयोग करती है। रोगी के सिर को एक प्रबल चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाता है जिसके कारण मस्तिष्कीय कोशों के हाइड्रोजन परमाणु एक सीध में हो जाते हैं अर्थात् एक ही दिशा में घूमने लगते हैं। मस्तिष्क की ओर भेजी गई रेडियो तरंगों के कारण घूमते हुए हाइड्रोजन परमाणु संकेत उत्सर्जित करते हैं। मस्तिष्कीय ऊतकों के चित्रों के निर्माण के लिए एक कंप्यूटर हाइड्रोजन परमाणुओं से उत्सर्जित संकेतों को परिवर्धित एवं विश्लेषित करता है। सी.टी. स्कैन की तुलना में एम.आर.आई. का विवरण श्रेष्ठ होता है। यह तकनीक पास-पास स्थित मस्तिष्कीय संरचनाओं में अंतर करती है।*
4. ***एस.पी.ई.सी.टी. (स्पैक्ट) या सिंगल फोटॉन एमिशन कंप्यूटराइज्ड टोमोग्राफी :*** *मस्तिष्कीय रक्त प्रवाह के अंकन के लिए यह एक दूसरी कंप्यूटर समर्पित तकनीक है। यह ऊर्जा तरंगों के विपरीत प्रकाश के एकल कण, फोटॉन का उपयोग करती है।*
5. ***एस.क्यू.यू.आई.डी. (स्क्विड) या सुपर कंडक्टिंग क्वांटम इंटरफेरेंस डिवाइस :*** *यह मस्तिष्क के चुंबकीय क्षेत्रों में होने वाले सूक्ष्म परिवर्तनों की पहचान करता है एवं स्नायु क्रिया का त्रि-आयामी रूप प्रस्तुत करता है।*
6. ***ई.ई.जी. या इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राम :*** *यह मस्तिष्क की विद्युतीय गतिविधि को अंकित करने वाला उपकरण है। जब मस्तिष्क वातावरणीय उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया कर रहा होता है तब शोधकर्ता उसकी विद्युतीय क्रिया के अंकन के लिए इलेक्ट्रोड का उपयोग करते हैं। इलेक्ट्रोड को सिर की सतह के ऊपर रखा जाता है एवं यह संकेत संप्रेषित करता है जिसे परिवर्धित एवं अंकित किया जाता है। निद्रा एवं स्वप्न में निहित प्रक्रमों के अध्ययन में यह तकनीक उपयोगी पाई गई है। मस्तिष्कीय क्रिया की असामान्यताओं के निदान के लिए चिकित्सक भी ई.ई.जी. का उपयोग करते हैं।*

आकार एवं विशिष्ट मस्तिष्कीय ऊतकों के अनुपात में प्राय: उच्चतर होता है। एक वयस्क मस्तिष्क का भार लगभग 1.36 कि.ग्रा. होता है एवं इसमें लगभग एक अरब स्नायुकोश पाए जाते हैं। हृदय द्वारा प्रेषित कुल रक्त का पाँचवाँ हिस्सा मस्तिष्क प्राप्त करता है। यदि मस्तिष्क कोशों को तीन या चार मिनट तक ऑक्सीजन से वंचित रखें तो उनकी अपूरणीय क्षति हो जाती है। स्कैनिंग द्वारा मस्तिष्क के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि जहाँ कुछ मानसिक प्रक्रमों का संचालन व्यापक रूप से फैले विभिन्न मस्तिष्कीय क्षेत्रों के द्वारा होता है वहीं बहुत-सी ऐसी क्रियाएँ हैं जो मस्तिष्क के अतिविशिष्ट हिस्सों तक ही सीमित हैं। मस्तिष्क में ऐसी संरचनाएँ क्षेत्रों में गठित हैं जो विशिष्ट क्रियाओं को करते हैं। उदाहरणार्थ, *पश्चकपाल खंड* (occipital lobe) दृष्टि (vision) के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र है।

मस्तिष्क की संरचना

मस्तिष्क दो आधे-आधे भागों में विभक्त है जिन्हें प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (Hemispheres) कहते हैं। ऊपरी आवरण को वल्कुट (कॉर्टेक्स) कहा जाता है (कभी-कभी नववल्कुट या नियोकॉर्टेक्स भी कहा जाता है क्योंकि सापेक्षिक रूप से यह बाद में विकसित हुआ)। मस्तिष्क में *स्नायुकोश* धूसर रंग के दिखते हैं। इसी कारण मस्तिष्कीय पदार्थ को प्राय: *धूसर द्रव्य* (gray matter) कहा जाता है।

विकास क्रम में आरंभ से लेकर अब तक के विकास के आधार पर संरचनाओं के तीन स्तरों में हम अंतर कर सकते हैं : *मस्तिष्क स्तंभ* (Brain stem) एवं *लघु मस्तिष्क* (Cerebellum); इसके बाद *लिंबिक तंत्र* (Limbic system); एवं अंत में *प्रमस्तिष्क वल्कुट* (Cerebral Cortex) (चित्र 3.4 देखिए)।



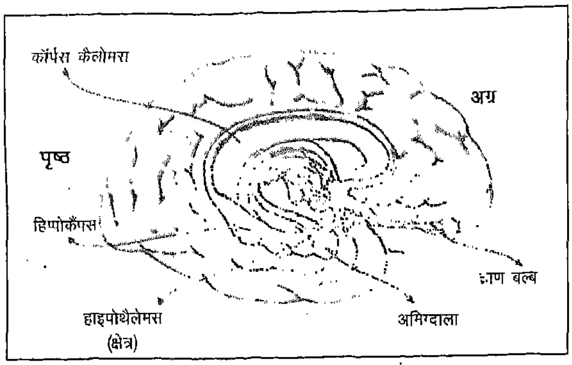
चित्र 3.4 : मानव मस्तिष्क की संरचना।

आइए, कुछ अधिक विस्तार से इन तीन संरचनाओं पर विचार करें।

1. मस्तिष्क स्तंभ एवं लघु मस्तिष्क : मस्तिष्क स्तंभ मेरुरज्जु का विस्तार है, जो जीवन के आधारभूत अवलंबन, जैसे श्वास, हृदय गति, जगना एवं सोना आदि क्रियाओं का केंद्र है। मस्तिष्क स्तंभ में *सेतु (पॉन्स), मेडुला ऑबलांगाटा एवं रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग तंत्र (आर.ए.एस.)* जैसी संरचनाएँ होती हैं।

सेतु का क्षेत्र लघु मस्तिष्क से जुड़ता है एवं यह स्वप्न तथा जागने की क्रिया में भाग लेता है। *थैलेमस (चेतक)* मस्तिष्क स्तंभ के ठीक ऊपर स्नायुकोशों के अंडाकार गुच्छे के रूप में होता है एवं एक प्रसारण केंद्र है जो आने वाले संवेदी संकेतों को कॉर्टेक्स के उपयुक्त क्षेत्रों में कार्रवाई के लिए प्रेषित करता है। प्रत्येक गोलार्द्ध में एक थैलेमस होता है एवं दोनों गोलार्द्ध मिलजुल कर कार्य करते हैं। *लघु मस्तिष्क* मस्तिष्क के पीछे स्थित होता है एवं यह गति संयोजन, शारीरिक मुद्रा नियंत्रण एवं संतुलन स्थापित करने से जुड़ा है। यह गति प्रारूपों की स्मृति का भी संचय करता है जिससे हमें चलने, नाचने या साइकिल चलाने आदि की क्रिया के लिए बहुत ध्यान नहीं देना पड़ता है।

2. लिंबिक तंत्र : लिंबिक तंत्र सभी स्तनधारियों में पाई जाने वाली ऐसी संरचनाओं के समूह से मिलकर बना होता है जो पुरातन स्तनधारीय मस्तिष्क का निर्माण करती हैं तथा जिसे कभी-कभी *पुरातन मस्तिष्क* (Old brain) भी कहते हैं। मस्तिष्क स्तंभ तथा लघु मस्तिष्क सभी कशेरुकाधारी या पृष्ठवंशी प्राणियों (Vertebraters) में पाए जाते हैं, किंतु लिंबिक तंत्र केवल स्तनधारियों एवं सरीसृपों में होता है। यह शरीर ताप, रक्तचाप तथा रक्त शर्करा स्तर का नियमन कर आंतरिक समस्थिति (होमियोस्टैसिस) को बनाए रखने में मदद करता है। लिंबिक तंत्र कॉर्टेक्स द्वारा आदान-प्रदान किए जाने वाले संदेशों को भी संयोजित करता है। *लिंबिक तंत्र* हाइपोथैलेमस से निकटवर्ती रूप से जुड़ा होता है तथा *हाइपोथैलमस* द्वारा मध्यस्थता किए जाने वाली कुछ मूलप्रवृत्यात्मक एवं सांवेगिक अनुक्रियाओं को अवरोधित कर उन पर अतिरिक्त नियंत्रण स्थापित करता है। लिंबिक तंत्र के अंतर्गत *हिपोकैंपस, एमिगडाला* एवं *हाइपोथैलेमस* सम्मिलित होते हैं।



चित्र 3.5 : लिंबिक तंत्र की संरचना।

हिपोकैंपस लिंबिक तंत्र का सबसे बड़ा भाग होता है तथा यह स्मृति (विशेषकर सूचनाओं के दीर्घकालिक संचय) में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एमिगडाला की आक्रामकता में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह स्मृति, संवेग तथा कुछ निश्चित मूलभूत अभिप्रेरणाओं में सहायक होता है।

हाइपोथैलेमस मस्तिष्क की सबसे छोटी संरचना है, किंतु हमारे व्यवहारों में इसकी अत्यावश्यक भूमिका है। यह सांवेगिक तथा अभिप्रेरित व्यवहार, भोजन करने, जल पीने, ताप नियंत्रण तथा लैंगिक उद्वेलन (Sexual arousal) में निहित दैहिक प्रक्रियाओं का नियमन करता है। हाइपोथैलेमस अंतःस्रावी तंत्र की क्रियाओं का भी नियमन करता है। मूल रूप से यह शरीर की समस्थिति को बनाए रखता है।

3. बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) : बृहत् मस्तिष्क या *प्रमस्तिष्क वल्कुट उच्च स्तरीय संज्ञानात्मक तथा सांवेगिक* प्रकार्यों का नियमन करता है। वल्कुट के बिना योजना निर्माण, जटिल गति संचालन (जैसे, बैले नर्तकी द्वारा की जाने वाली गतियाँ), प्रत्यक्षीकरण तथा भाषण संभव नहीं हो सकता। इसका मात्र 4 मिलीमीटर मोटा द्रव्य पूरे मस्तिष्क की सतह को ढकता है तथा इसमें तंत्रिका कोशिकाएँ, ग्लियाँ, तंत्रिका जाल एवं अक्षतंतुओं का समूह होता है। यह सब मिलकर हम लोगों के लिए संगठित क्रियाओं, बिंबों का निर्माण, संकेत, साहचर्यों, स्मृतियों, इच्छाओं एवं कल्पनाओं को संभव बनाते हैं।

सभी उच्चकोटि के स्तनधारियों (प्राइमेंटा) में बृहत् मस्तिष्क लगभग दो बराबर के अर्द्ध भागों (प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध) में बँटा होता है। यह दोनों प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध विभिन्न संज्ञानात्मक एवं संवेगात्मक प्रकार्यों की मध्यस्थता करते हैं। यद्यपि दोनों गोलार्द्ध देखने में एक जैसे लगते हैं परंतु मनुष्यों में एक गोलार्द्ध प्रायः अधिक प्रभावशाली होता है। अधिकांशतः लोगों में बायाँ गोलार्द्ध प्रभावी होता है जो शरीर के दाहिने हिस्से को नियंत्रित करता है। इसके अतिरिक्त कुछ प्रकार्य किसी एक गोलार्द्ध के लिए विशिष्ट होते हैं, उदाहरणार्थ, वाणी का नियंत्रण बाएँ गोलार्द्ध द्वारा होता है। हालांकि बाएँ हाथ की प्रमुखता वाले कुछ लोगों के वाणी का नियंत्रण दक्षिण गोलार्द्ध में निहित होता है। यह दोनों गोलार्द्ध सफेद दिखने वाले *माइलिन आच्छादित एक्सॉन* समूह, जिसे *कार्पस कैलोसम* कहा जाता है, से जुड़े होते हैं। यह दोनों गोलार्द्धों के बीच सूचनाओं का आदान-प्रदान करता है। यदि यह संबंध किसी प्रकार भंग हो जाए तब इसका परिणाम होगा "एक ही सिर में दो मन (Minds) की उपस्थिति।

बृहत् मस्तिष्क का बाहरी आवरण अर्थात् वल्कुट धूसर होता है क्योंकि यह अरबों स्नायुकोशों के कोश शरीर एवं माइलिनरहित तंतुओं से बना होता है। बृहत् मस्तिष्क का आंतरिक भाग सफेद होता है जो कि ढेर सारे माइलिन आच्छादित तंतुओं से बना होता है।

वल्कुट खोपड़ी के अंदर झुर्रीदार या कुंडलित स्थान होता है। यदि वल्कुट को फैला दिया जाए तो यह अपने आकार से कई गुना बड़ा हो जाएगा। प्रकृति ने बहुत-से जटिल प्रकार्यों को करने वाले बहुत बड़े क्षेत्र का छोटा-सा बंडल बना दिया है।

कॉर्टेक्स पालियाँ (Cortical Lobes) प्रत्येक गोलार्द्ध को अनुदैर्ध्य और अनुप्रस्थ ढंग से विभाजित किया गया है। *अनुदैर्ध्य गुहा पर किए गए विभाजन को पार्श्व परिखा सल्कस* (Lateral Sulcus) तथा अनुप्रस्थ को *केंद्रीय परिखा सल्कस* (Central Sulcus) कहा जाता है। यह विभाजन स्थूल रूप से चार क्षेत्र बनाता है जिन्हें खंड या *पालि* (Lobes) कहा जाता है। प्रत्येक खंड में ऐसी संरचनाएँ होती हैं जो भिन्न-भिन्न कार्यों को पूरा करती हैं। इन चारों खंडों को *ललाट पालि* (Frontal Lobe), *पार्श्विक पालि* (Parietal Lobe), *अनुकपाल पालि* (Occipital Lobe) तथा *कपालास्थि पालि* (Temporal Lobe) कहा जाता है (चित्र 3.4 देखिए)। इन पालियों का नामकरण उनको आच्छादित करने वाली खोपड़ी की अस्थियों के आधार पर किया गया है।

ललाट पालि गति नियंत्रण तथा बौद्धिक क्रियाओं में योगदान देती है। यह चेतन प्रक्रियाओं जैसे चिंतन, योजना निर्माण, निर्णय लेने तथा लक्ष्य प्राप्ति में भी शामिल रहती हैं। ललाट पालि की आकस्मिक क्षति का मनुष्य के व्यवहार एवं व्यक्तित्व पर विध्वंसक प्रभाव पड़ता है।

पार्श्विक पालि जो सिर के ऊपरी भाग में स्थित होती है, आने वाली सांवेदिक सूचनाओं को नियंत्रित करती है। स्नायु वैज्ञानिकों ने संदर्भ और संचालन की सुविधा के लिए हर गोलार्द्ध को विभाजित किया है तथा उसका चित्रांकन किया है। *अनुकपाल पालि* जो सिर के पिछले भाग में स्थित होती है, दृष्टि सूचनाओं का प्रमुख गंतव्य होती है। *कपालास्थि पालि* (जो कि प्रत्येक प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध के किनारे पर स्थित होती है) के द्वारा श्रवण सूचनाओं का प्रक्रमण किया जाता है।

यहाँ पर यह याद रखना चाहिए कि कोई भी पालि अकेले किसी भी विशिष्ट व्यवहार का नियंत्रण नहीं करती। उदाहरणार्थ, जब आप फोन की घंटी सुनते हैं, तब आप उसे कपालास्थि पालि में सुनते हैं, टेलीफोन रिसीवर को पार्श्विक पालि की सहायता से पकड़ते हैं तथा ललाट पालि की प्रक्रियाओं द्वारा बातचीत करते हैं। ऐसे जटिल कार्यों को जिनमें मस्तिष्क के बहुत-से भाग सम्मिलित होते हैं, मस्तिष्क समवेत ढंग से संभालने का कार्य करता है।

दशकों से देह वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक कॉर्टेक्स के दोनों क्षेत्रों का चित्रण कर रहे हैं जिससे उसके विशिष्ट कार्यों को पहचाना जा सके। विशिष्ट कार्यों के लिए मस्तिष्क के क्षेत्रों का चित्रांकन लैश्ली के समग्र क्रिया (Mass action) के नियम के विपरीत है। वह यह बताता है कि कॉर्टेक्स समग्र रूप में कार्य करता है, न कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के रूप में।

मेरुरज्जु

मेरुरज्जु या सुषुम्ना एक खोखली नली में स्थित होती है जिसे मेरुदंड कहा जाता है। यह एक्सॉन/अक्षतंतु के जोड़ों द्वारा बनी होती है जो मस्तिष्क से शरीर के अन्य हिस्सों में परिधीय तंत्रिका तंत्र के मार्गों से होकर जाते हैं। मेरु तंत्रिकाएँ मेरुदंड में कशेरुक के प्रत्येक जोड़ों के बीच की मेरुरज्जु से निकलती हैं। ये आगे चलकर शरीर द्वारा संवेदी संग्राहकों से तथा पेशियों एवं ग्रंथियों से भी जुड़ती हैं। मेरुरज्जु कुछ ऐसे सरल प्रतिवर्तों के लिए भी उत्तरदायी होता है, जिसमें मस्तिष्क शामिल नहीं होता (आगे प्रतिवर्त चाप के अंतर्गत देखिए)।

परिधीय तंत्रिका तंत्र

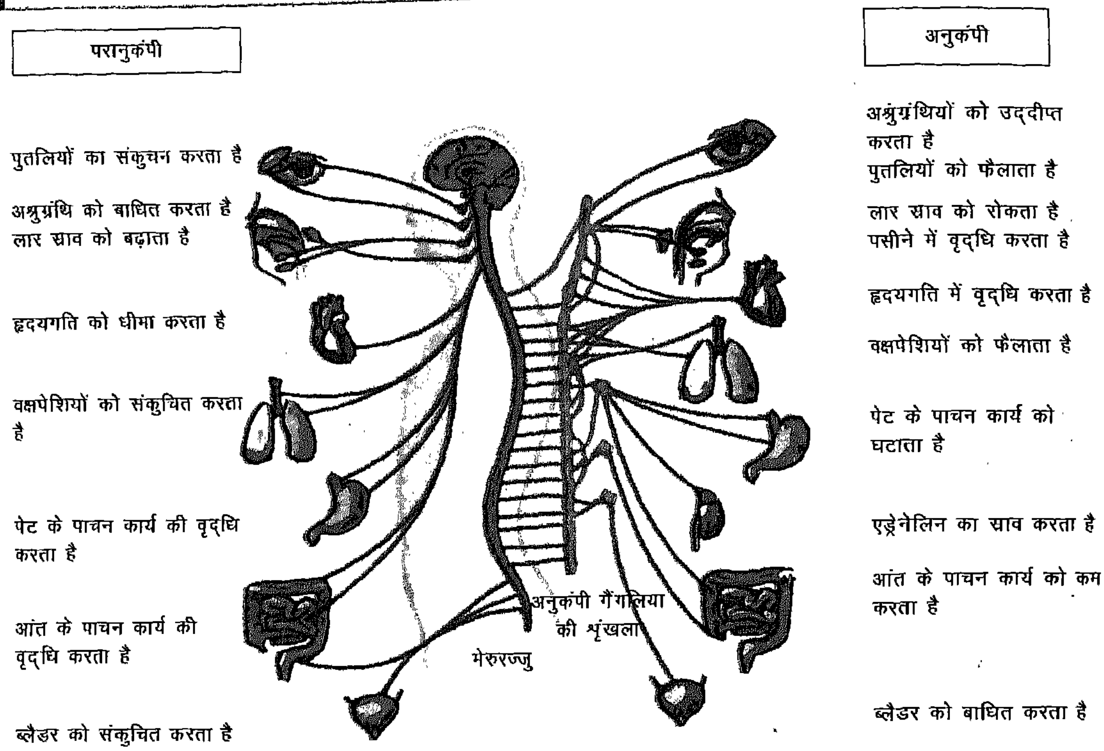
हमने ऊपर केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (जो कि मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु के सभी स्नायुकोशों द्वारा बना होता है) की संरचना और प्रकार्यों की चर्चा की है। अब हम परिधीय तंत्रिका तंत्र की बात करेंगे जो उन सभी स्नायुकोशों जिनके द्वारा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को शेष शरीर से जोड़ने वाले स्नायुतंतुओं का निर्माण होता है, से बना होता है।

परिधीय तंत्रिका तंत्र को *स्वायत्त तंत्रिका तंत्र* (Autonomic Nervous System) *तथा कायिक तंत्रिका तंत्र* (Somatic Nervous System) में विभाजित किया गया है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र को पुनः *अनुकंपी* (Sympathetic) तथा *परानुकंपी* (Para Sympathetic) भागों में बांटा गया है। परिधीय तंत्रिका तंत्र संवेदी संग्राहकों (आँख, कान, त्वचा आदि) द्वारा प्राप्त सूचनाओं को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तक पहुँचाता है तथा मस्तिष्क द्वारा दिए गए निर्देशों को वापस शरीर के अंगों तथा पेशियों तक पहुँचाता है।

कायिक (दैहिक) तंत्रिका तंत्र : परिधीय तंत्रिका तंत्र का पहला भाग, जिसे कायिक तंत्रिका तंत्र कहते हैं, ऐच्छिक नियंत्रण में होता है तथा शरीर की कंकाल पेशियों (Skeletal muscles) की क्रियाओं का नियमन करता है। उदाहरणार्थ, जब आप एक बस पकड़ना चाहते हैं तब मस्तिष्क पैरों को बस अड्डे की तरफ़ जाने का संदेश भेजता है। बस अड्डे की तरफ जाते समय आप देखते हैं कि बस आ चुकी है। आप बस छोड़ना नहीं चाहते हैं। अतः आप बस पकड़ने के लिए दौड़ने का निर्णय लेते हैं। मस्तिष्क पैरों की पेशियों को दौड़ने के लिए संशोधित संदेश भेजता है। कायिक तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क को पेशीय गति की पुनः सूचना देता है तथा उसके आधार पर संशोधित अनुक्रिया की जाती है। पैरों की पेशियों को संकेत भेजने की क्रिया तब तक जारी रहती है जब तक क्रिया समाप्त नहीं हो जाती है।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (जिसका अर्थ है आत्म-नियमित या स्वतंत्र तंत्रिका तंत्र) परिधीय तंत्रिका तंत्र का दूसरा भाग है। यह अनैच्छिक होता है तथा ऐसी क्रियाओं का संचालन करता है जिन पर सामान्यतः हमारा प्रत्यक्ष नियंत्रण नहीं होता है। यह तंत्र मनुष्य के सो जाने पर भी कार्यरत रहता है। यह व्यक्ति के बेहोश होने या लंबी मूर्च्छा (कोमा) की अवस्था में जीवन प्रक्रिया को कायम रखता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि कायिक तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क की भिन्न-भिन्न संरचनाओं द्वारा नियमित होते हैं।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र प्राणरक्षक मामलों को संभालता है : जो प्राणी तथा उसकी शारीरिक क्रियाओं को खतरा उत्पन्न



चित्र 3.6 : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का प्रकार्य ।

करते हैं। हम श्वसन, पाचन तथा उद्वेलन को सामान्यतः चेतन रूप से नियंत्रित नहीं करते। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के दो भाग हैं : *अनुकंपी भाग* तथा *परानुकंपी भाग*। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के ये दोनों भाग प्राणी के जीवन को बनाए रखने के लिए "एक साथ मिलकर परस्पर विरोध में कार्य करते हैं।" अनुकंपी तंत्र आपातकालीन परिस्थितियों को संभालने का काम करता है, जबकि परानुकंपी तंत्र आंतरिक देखभाल या संचालन तथा विभिन्न प्रकार्यों के नियमन का कार्य करता है। अनुकंपी तंत्र आपातकाल में जब प्रबल तथा त्वरित निर्णय आवश्यक होता है तब प्रतिबल अनुक्रिया को संभालता है (जैसे – खतरनाक परिस्थितियों में संघर्ष या पलायन)। यह भाग "संघर्ष या पलायन" का अनुक्रिया तंत्र होता है। यह मस्तिष्क को उद्वेलन के लिए तथा शरीर को क्रिया के लिए सक्रिय करता है। आपातकाल में पाचन क्रिया बंद हो जाती है, पेशियों में ऑक्सीजन की पूर्ति बढ़ जाती है, हृदयगति बढ़ जाती है, तथा गत्यात्मक अनुक्रियाओं के सरल संपादन हेतु *अंतःस्रावी तंत्र* को उद्दीप्त किया जाता है।

इसके विपरीत *परानुकंपी भाग* शरीर के आंतरिक तंत्र के नियमित प्रकार्यों का संचालन करता है। अनुकंपी उद्वेलन के बाद सामान्य प्रकार्य तक पहुँचने में यह तंत्र शरीर की सहायता करता है। आपातकाल के समाप्त हो जाने पर परानुकंपी तंत्र इन प्रक्रियाओं को अपने वश में कर उन्हें मंद कर देता है जिससे व्यक्ति शांत होकर सामान्य अवस्था में आ जाता है। हृदय गति, श्वसन, रक्तचाप आदि सभी शारीरिक क्रियाएँ सामान्य स्तर पर वापस आ जाती हैं। परानुकंपी तंत्र "गृह व्यवस्थापक" होता है जो शरीर को ऊर्जा संरक्षण में सहायता देता है तथा उसे सामान्य कार्यरत दशा में बनाए रखता है।

आपने अब तक पढ़ा

तंत्रिका तंत्र परिधीय (कायिक और स्वायत्त) तथा केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (मेरुरज्जु तथा मस्तिष्क) से बना है। मस्तिष्क के प्रमुख भाग हैं : पृष्ठ मस्तिष्क (मेडुला तथा लघुमस्तिष्क), मध्य मस्तिष्क, तथा अग्रमस्तिष्क (थैलेमस, हाइपोथैलेमस, मस्तिष्कीय गोलार्द्ध तथा सेरिब्रल कॉर्टेक्स समेत)।

आपने कितना सीखा

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. *मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु ________ तंत्रिका तंत्र का निर्माण करते हैं।*
2. *वे नाड़ियाँ जो मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु को शरीर के शेष भाग से जोड़ती हैं ________ तंत्रिका तंत्र बनाती हैं।*
3. *________ गति के संयोजन तथा संतुलन के नियंत्रण से जुड़ा है।*
4. *________ के उद्दीपन से भय या क्रोध पैदा होगा।*
5. *________ पालि, पेशीय नियंत्रण तथा संज्ञानात्मक क्रियाकलापों में संलग्न है।*
6. *________ पालि श्रव्य सूचना का प्रक्रमण करती है।*
7. *________ पालि ग्रहण की जा रही सांवेदिक सूचना को नियंत्रित करती है।*
8. *स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का ________ मात्र जो उत्तेजना के बाद शरीर को शांत करता है।*

उत्तर – 1. केंद्रीय, 2. परिधीय, 3. लघुमस्तिष्क, 4. एमिगडाला, 5. अग्र, 6. कपालास्थि, 7. पार्श्विक, 8. परानुकंपी तंत्रिका तंत्र।

आधारभूत इकाई के रूप में स्नायुकोश (न्यूरोन)

हमने तंत्रिका तंत्र की संरचना, उसके प्रकार्य तथा विभाजन एवं उपविभाजनों की विस्तारपूर्वक विवेचना की। हमारे तंत्रिका तंत्र की सभी क्रियाएँ तंत्रिका कोशिका यानी न्यूरोन जिन्हें स्नायुकोश भी कहा जाता है, की क्रियाओं द्वारा आरंभ होती हैं। न्यूरोन विशिष्ट कोश होते हैं जो विशिष्ट संवेदी

बाक्स 3.3 **तंत्रिका वैज्ञानिक विकास**

तंत्रिका विज्ञान एक तेजी से उभरता हुआ क्षेत्र है जिसमें तंत्रिका तंत्र की क्रिया-प्रणाली को समझने के लिए बहुत-से विषय एक साथ मिलकर कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में, तंत्रिका वैज्ञानिक तंत्रिका तंत्र की दैहिकी (Physiology) को व्यवहार से जोड़ने का प्रयास करते हैं। उदाहरणार्थ, वे प्रत्यक्षीकरण, चिंतन तथा व्यवहार का अंतर्निहित स्नायविक क्रिया के संदर्भ में अध्ययन करते हैं।

ऐसी विभिन्न प्रकार की मस्तिष्क वीक्षण तकनीकें उपलब्ध हैं (बाक्स 3.2 देखिए) जो तंत्रिका वैज्ञानिकों को जीवित मस्तिष्क के अंदर झाँकने के लिए खिड़की का काम करती हैं और व्यवहार के साथ अक्षुण्ण मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र के बीच संबंध के अध्ययन हेतु मार्ग प्रशस्त करती हैं। ऐसे अन्वेषणों में उपयोग की जाने वाली एक अन्य तकनीक है – विभक्त मस्तिष्क अध्ययन।

विभक्त मस्तिष्क अध्ययन

सामान्य मस्तिष्क के दोनों गोलादर्धों (दाएँ तथा बाएँ) एक-दूसरे के साथ महासंयोजन पिंड (कॉर्पस कैलोसम) (दोनों गोलादर्धों को जोड़ने वाला स्नायविक सेतु) के माध्यम से संचार स्थापित करते हैं। अपस्मार या मिरगी के कुछ रोगियों की शल्यचिकित्सा द्वारा उनके गोलादर्धों के बीच के संबंध को बाधित कर दिया गया, ताकि दौरों को एक गोलादर्ध से दूसरे गोलादर्ध में फैलने से रोका जा सके। ऐसी शल्यचिकित्सा द्वारा पीड़ा से मुक्ति तो मिलती है किंतु इसका एक दुष्परिणाम भी होता है। विभक्त मस्तिष्क के दोनों गोलादर्ध कार्यात्मक रूप से एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं तथा कुछ हद तक दो अलग-अलग मस्तिष्कों के रूप में कार्य करते हैं। बहुत-से ऐसे रोगियों की शल्यचिकित्सा के बाद और पहले के व्यवहार में बहुत भिन्नता नहीं भी होती है। रोजर स्पैरी (नोबल पुरस्कार विजेता) तथा उनके सहयोगियों एवं अन्य वैज्ञानिकों ने इस विरोधाभास की जांच की।

स्पैरी एवं उनके सहयोगियों ने केवल एक ही गोलादर्ध तक सूचना पहुँचाने के लिए परीक्षणों की एक श्रृंखला का विकास किया। वे अक्षि-व्यत्यासिका (Optic Chiasma) को बाधित किए बिना केवल एक गोलादर्ध तक चाक्षुष उद्दीपक को पहुँचा सकते थे।

इन लोगों ने पाया कि मनुष्यों में विभक्त मस्तिष्क के रोगी में ऐसा प्रतीत होता है मानो दो स्वतंत्र मस्तिष्क कार्य कर रहे हों। फिर भी ये लोग कुछ कार्यों को करने में सक्षम नहीं होते हैं। एक प्रयोग में एक वस्तु की दृष्टि प्रतिमा (जैसे–चम्मच) दाएँ गोलादर्ध (ये गोलादर्ध न ही वाचिक अनुक्रिया प्रदान कर सकता है न ही सूचना को बाएँ गोलादर्ध में पहुँचा सकता है जिसके पास भाषा योग्यता होती है) को प्रस्तुत की गई। रोगियों ने कहा कि उन्होंने कुछ नहीं देखा किंतु तत्काल बाद ऐसी अनुक्रिया दी जैसे कुछ देखा है किंतु उसे भाषा में प्रस्तुत न कर सके। परंतु जब बाएँ गोलादर्ध की प्रतिमा प्रस्तुत की गई तब रोगी ने देखी गई वस्तु का सही विवरण दिया।

अंग से सूचना ग्रहण करते हैं, सूचनाओं के प्रक्रमण तथा समाकलन में तथा संदेश को वापस पेशियों तक पहुँचाने में सहायता करते हैं। अतः न्यूरोन मस्तिष्क में सूचनाओं के ग्रहण करने में तथा अनुक्रिया देने में सम्मिलित होते हैं। न्यूरोन हमारे तंत्रिका तंत्र का मूलभूत आधार बनाते हैं। अतः तंत्रिका तंत्र की संरचना एवं क्रियाप्रणाली को समझने के लिए इस तंत्र को बनाने वाले मूलभूत तत्व की संरचना एवं प्रकार्य को जानना आवश्यक है।

स्नायुकोश

इस संसार से हमारी अंतःक्रिया तंत्रिका तंत्र के माध्यम से होती है एवं न्यूरोन (तंत्रिका कोशिका) इस तंत्रिका तंत्र की आधारभूत इकाई होते हैं। न्यूरोन विशिष्ट प्रकार के कोश होते हैं जो सूचनाओं को ग्रहण करते हैं, उनका प्रक्रमण करते हैं एवं शरीर के अन्य कोशों तक उन सूचनाओं को पहुंचाते हैं। विभिन्न स्नायुकोश रूप, आकार, रासायनिक बनावट एवं कार्य की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हैं।

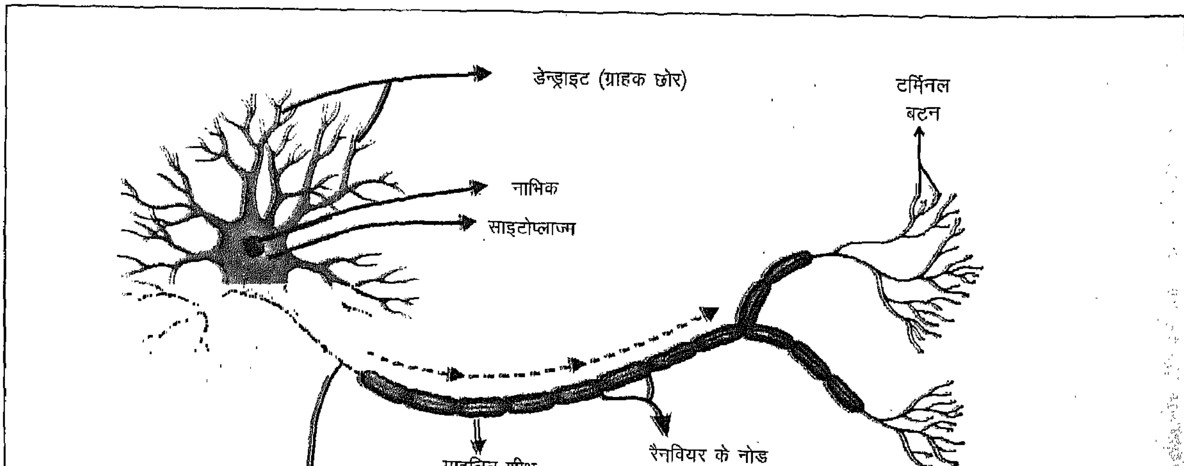
स्नायुकोश एक सिरे से सूचनाओं को ग्रहण करते हैं एवं दूसरे से उनका संप्रेषण करते हैं। कोश का वह भाग जो आने वाले संकेतों को ग्रहण करता है, उसे *पार्श्वतंतु* या डेंड्राइट (Dendrite) कहते हैं जो कोश शरीर से शाखा की तरह निकले हुए हैं। निकटवर्ती स्नायुकोश सीधे संवेदी संग्राहकों से स्नायु आवेग को ग्रहण करते हैं एवं कोश शरीर (Cell body) तक उनका संवहन करते हैं। *एक्सॉन* (Axon) यानी अक्षतंतु शरीरकोश से आवेगों को दूसरे स्नायुकोशों या मांसपेशीय ऊतकों तक भेजता है। एक्सॉन जो अपने विस्तार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सूचनाओं का संवहन करते हैं, मेरुरज्जु में कई फुट तक तथा मस्तिष्क में एक मिलीमीटर से कुछ कम लंबाई के होते हैं। एक्सॉन के सिरे पर फूले हुए बल्ब के समान संरचनाएँ (टरमिनल बटनें) होती हैं जिनके द्वारा स्नायुप्रवाह निकटस्थ स्नायुकोश ग्रंथियों एवं मांसपेशियों तक पहुँचता है।

कोश शरीर या सोमा में कोश का केंद्रक होता है। उसके अंदर *साइटोप्लाज्म* भरा होता है जो उसके जीवन को बनाए रखता है। सामान्यतः स्नायुकोश सूचनाओं का संप्रेषण एक ही दिशा में करते हैं अर्थात् डेंड्राइट में कोश शरीर से होते हुए एक्सॉन एवं टरमिनल बटन की ओर आवेग का प्रवाह (चित्र 3.7 देखिए)।

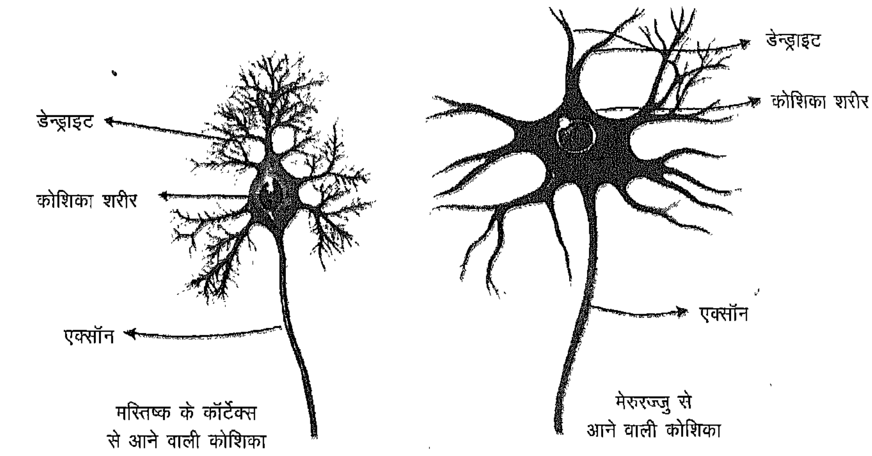
स्नायुकोश के प्रकार

स्नायुकोश के तीन प्रमुख प्रकार हैं: *संवेदी स्नायुकोश* (Sensory neuron), *अंतर स्नायुकोश* (Interneuron) तथा *चालक स्नायुकोश* (Motor neuron)।

(i) संवेदी स्नायुकोश : संवेदी स्नायुकोश या अभिवृद्धि (प्रवेशी) स्नायुकोश सूचनाओं को संवेदी संग्राहकों द्वारा ग्रहण करते हैं तथा उन्हें व्याख्या हेतु मस्तिष्क में भेज देते हैं। अभिवाही तंत्रिका के कोशशरीर, तंत्रिका मूल (जो कि मेरुरज्जु के बाहर होता है) में स्थित होते हैं। अंतर-तंत्रिका या संयोजक स्नायुकोश केवल संवाहक की भूमिका संपादित करते हैं।



चित्र 3.7 : स्नायुकोश की संरचना।



चित्र 3.8 : तंत्रिका तंत्र में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के स्नायुकोश।

(ii) अंतर स्नायुकोश : ये मुख्यतः केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में स्थित होते हैं। 85 प्रतिशत अंतर-स्नायुकोश मस्तिष्क में पाए जाते हैं। ये स्नायुकोश ज्ञानेंद्रियों या शरीर के आंतरिक वातावरण से आने वाली सूचनाओं को ग्रहण करते हैं तथा गत्यात्मक स्नायुकोश तक पहुँचाने से पहले ये एक दूसरे के साथ कई बार संपर्क स्थापित करते हैं।

(iii) गत्यात्मक या चालक स्नायुकोश : चालक या अधिवाही (निर्गामी) स्नायुकोश सूचनाओं को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से पेशियों तथा शरीर के उन भागों तक पहुँचाते हैं जो शारीरिक गतिविधि में सम्मिलित होते हैं (जैसे – ग्रंथियाँ)। हमारे द्वारा की जाने वाली सभी गतियों तथा अनुक्रियाओं के लिए चालक स्नायुकोश सीधे-सीधे उत्तरदायी होते हैं। इन स्नायुकोशों के कोश-शरीर (Cellbody) मेरुरज्जु में स्थित होते हैं तथा इनके एक्सॉन इतने लंबे होते हैं कि निकटवर्ती स्नायुकोश या पेशियों और ग्रंथियों (जिनको ये निदेश पहुँचाते हैं) तक भी पहुँच जाते हैं।

बाक्स 3.4 **तंत्रिका तंत्र में संप्रेषण**

स्नायुकोश का कार्य तंत्रिका तंत्र में स्नायु आवेगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना होता है। आइए, अब हम यह जानने का प्रयास करें कि स्नायु आवेग कैसे उत्पन्न होते हैं। स्नायु आवेग (Nerve Impulse) अत्यंत अल्पकालिक विद्युतीय घटना है जो डेंड्राइट (शाखिका) से एक्सॉन टर्मिनल तक भ्रमण करती है। स्नायु आवेग अल्पकालिक तथा तीव्र होता है। इन्हें स्पाइक (Spike) कहा जाता है। यह स्नायुकोश के अंदर तथा बाहर विद्युत् आवेगों में होने वाले तीव्र प्रतिवर्ती परिवर्तन के फलस्वरूप घटित होता है।

*जब स्नायुकोश विश्रामावस्था में होते हैं (अर्थात् स्नायु आवेगों का संवहन नहीं कर रहे होते हैं) तब कोशों के बाहर धनात्मक आवेशित आयन (Positively Charged Ions) तथा अन्दर ऋणात्मक आवेशित आयन (Negatively Charged Ions) होते हैं। कोई कोश उद्दीपक कोश को उत्तेजित करता है, तब यह अंदर के आवेशों को थोड़ा कम ऋणात्मक कर देता है, एक क्रांतिक बिंदु **(देहली)** पर स्नायुकोशों के चारों ओर की झिल्ली अपनी विशेषताओं को बदल लेती है। मार्ग (चैनल) कुछ देर के लिए खुल जाते हैं, जिससे धनात्मक आवेशित सोडियम आयन कोशों के अंदर प्रवाहित हो जाते हैं। इस प्रकार थोड़े समय के लिए (लगभग एक मिली सेकंड) कोशों के बाहर की अपेक्षा स्नायुकोश के अंदर का भाग अधिक धनात्मक हो जाता है। अंदर की धनात्मकता में होने वाला अल्प परिवर्तन स्नायु विभव (Action Potential) कहलाता है।*

दूसरे शब्दों में, जब स्नायुकोश विश्रामावस्था में होते हैं, तब स्नायुकोश के अंदर तथा बाहर के वैद्युत आवेशों में भिन्नता होती है (अंदर का भाग अधिक ऋणात्मक होता है)। जब स्नायुकोश उद्दीप्त होते हैं तब यह आवेश में अंतर अचानक उलट जाता है जिससे अंदर का भाग थोड़ा धनात्मक हो जाता है। अंदर की धनात्मकता में होने वाला यह संक्षिप्त परिवर्तन ही स्नायु आवेग है।

स्नायु आवेग के उत्पन्न हो जाने के बाद स्नायुकोश पोटैशियम आयन के बहिर्गामी प्रवाह द्वारा अपनी मूल विश्रामावस्था में वापस आ जाते हैं तथा दूसरे स्नायु आवेग को उत्पन्न करने के लिए पुनः तत्पर हो जाते हैं। वैद्युत स्नायु आवेग, एक्सॉन के एक हिस्से से दूसरे हिस्से को उद्दीप्त करते हुए नीचे की ओर प्रवाहित होता है।

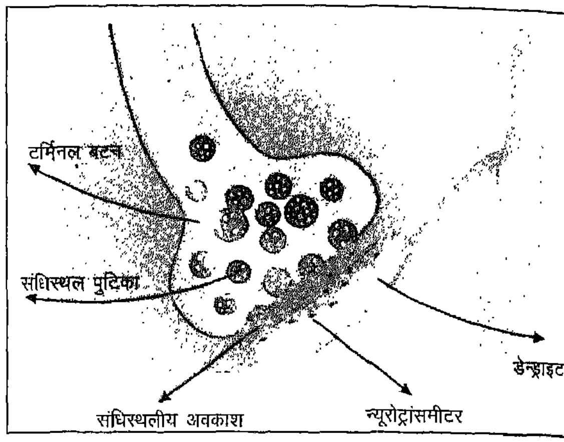
उद्दीपक का स्वरूप तथा स्नायु आवेग

स्नायु आवेग की शक्ति उसको उत्पन्न करने वाले उद्दीपक की शक्ति पर नहीं निर्भर करती। **'संपूर्ण या बिलकुल नहीं'** (All or none) के नियम के अनुसार स्नायु तंतु या तो पूर्णतया प्रतिक्रिया करते हैं या बिलकुल ही प्रतिक्रिया नहीं करते। स्नायु आवेगों की शक्ति स्नायु तंतु की पूरी लंबाई में स्थिर रहती है। स्नायु की प्रतिक्रिया हेतु उद्दीपक की एक न्यूनतम शक्ति (देहली, जिसे आप अध्याय 6 में क्लॉसिकल मनोभौतिकी में पढ़ेंगे) का होना अनिवार्य है। एक कमजोर उद्दीपक बहुत कम स्नायु तंतुओं को उत्तेजित करेगा जिससे आपको सांवेदिक अनुभूति बिलकुल नहीं हो पाएगी। दूसरी तरफ, एक प्रबल उद्दीपक बड़ी संख्या में स्नायु तंतुओं को उत्तेजित करेगा जिसके फलस्वरूप अधिक प्रबल सांवेदिक अनुभूति होगी।

एक स्नायु तंतु के किसी उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया देने के तत्काल बाद एक ऐसा समय आता है जिसमें स्नायु प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। इसे ***निरपेक्ष प्रत्यावर्ती काल*** (Absolute Refractory Period) कहते हैं। इस अवधि में झिल्ली चाहे जितनी भी शक्तिशाली हो जाए उद्दीपक के लिए अनुक्रियाशील नहीं होती है। इसके पश्चात् ***सापेक्ष प्रत्यावर्ती काल*** (Relative Refractory Period) आता है जिसमें अत्यधिक शक्तिशाली उद्दीपन स्नायु तंतुओं को उद्दीप्त करने में सफल होता है।

संधिस्थल

स्नायु छोरों के एक दूसरे को छुए बिना ही स्नायु आवेग एक स्नायुकोश के एक्सॉन से दूसरे के डेनड्राइट तक पहुँच जाते हैं। स्नायु आवेग स्नायुकोशों के बीच में स्थित खाली जगह द्वारा रासायनिक रूप से संप्रेषित होते हैं, स्नायुकोश एक दूसरे को कभी स्पर्श नहीं करते। इस रिक्त स्थान को **संधिस्थल** (Synapse) कहा जाता है। यह संधिस्थल एक



चित्र 3.9 : संधिस्थल द्वारा स्नायु आवेग का संप्रेषण।

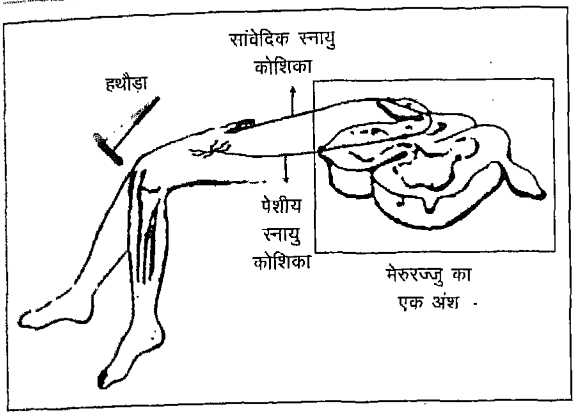
स्नायुकोश के एक्सॉन सिरे तथा दूसरे के डेंड्राइट के बीच पाया जाता है। जब एक आवेग एक्सॉन के अंतिम छोर तक पहुँचता है तब एक्सॉन का विद्युत चालन रासायनिक संप्रेषण में बदल जाता है। एक्सॉन के टर्मिनल बटनों में स्थित थैलियों से **संधिस्थल पुटिका** (Synaptic vesicles) न्यूरोट्रांसमीटर नामक सूचना प्रसारण करने वाले पदार्थ निकलते हैं, जो कि सूचनाओं को अगले स्नायुकोश तक पहुँचाते हैं तथा यह क्रम चलता रहता है। मस्तिष्क में एक ही स्नायुकोश दूसरे स्नायुकोश के साथ बहुत बड़ी संख्या में संधिस्थल सहभागिता कर सकता है। यह अनुमान लगाया जाता है कि मस्तिष्क में करोड़ों न्यूरोन (स्नायुकोश) के अरबों संधिस्थल होते हैं। सूचना प्रक्रमण में उच्चस्तरीय जटिलता के लिए परिपथों (Circuit) की आवश्यकता होती है। कार्य निष्पादन के लिए एक साथ मिलकर कार्य करने वाले स्नायुकोश का तंत्र होता है। ऐसे कार्यों को एक अकेला कोश पूरा नहीं कर सकता है।

बहुत-सी औषधियाँ संधिस्थल के संप्रेषण को प्रभावित कर हमारे व्यवहार, मनोदशा तथा चिन्तन को प्रभावित करती हैं।

बाक्स 3.5 **उच्चस्तरीय प्रतिवर्त**

उन प्रतिवर्त क्रियाओं, जिसमें मेरुरज्जु के ऊपर का तंत्रिका तंत्र शामिल होता है, उच्च स्तरीय प्रतिवर्त (Higher level reflexes) कहा जाता है एवं इसमें निहित परिपथ को कपालीय संवेदी चालक चाप (परिपथ) कहते हैं। श्वाँस एक उच्चस्तरीय प्रतिवर्त है। एक व्यक्ति अपने श्वाँस को ऐच्छिक रूप से रोक सकता है, परंतु जब रक्त में कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर बहुत उच्च हो जाता है तब मेड्यूला (स्वत:स्फूर्त रूप से) प्रतिवर्ती रूप से प्रतिक्रिया करता है एवं श्वाँस पुनः प्रारम्भ हो जाती है।

कुछ प्रतिवर्तों में कई साहचर्य स्नायुकोश सम्मिलित हो सकते हैं। उदाहरणार्थ पुतली संकुचन प्रतिवर्त में कई साहचर्य स्नायुकोश सम्मिलित होते हैं, जो मस्तिष्क को प्रकाश की तीव्रता की सूचना देते हैं। पीड़ा प्रत्याहार (Pain withdrawal) प्रतिवर्त में एक ऐसा साहचर्य स्नायुकोश होता है जो मस्तिष्क को पीड़ा की सूचना देता है।



चित्र 3.10 : प्रतिवर्त चाप।

प्रतिवर्त चाप

प्रतिवर्त चाप (Reflex Arc) हमारे तंत्रिका तंत्र का सरलतम परिपथ होता है, जिसमें मेरुरज्जु केवल संवेदी स्नायुकोश तथा चालक स्नायुकोश शामिल हो सकते हैं। हालाँकि कुछ परिस्थितियों में मेरुरज्जु में इन दोनों के साथ इनके बीच में एक अंतर न्यूरॉन भी सम्मिलित हो सकता है, जो मस्तिष्क के साथ संबंध स्थापित करता है। प्रतिवर्ती चाप कुछ विशिष्ट प्रकार के उद्दीपनों के लिए स्वायत्त तथा अतिशीघ्र अनुक्रिया देता है। प्रतिवर्ती तंत्र अधिकांशतः स्वतंत्र रूप से मस्तिष्क के शामिल हुए बिना ही कार्य करता है।

एक प्रतिवर्ती चाप अनैच्छिक होता है तथा उद्दीपन के बाद अतिशीघ्रता से उत्पन्न होता है। यह प्राणी के जीवन में संरक्षण एवं बचाव का काम करता है। प्रायः देखी जाने वाली कुछ प्रतिवर्त क्रियाओं में घुटने के झटके (Knee jerk), पुतलियों का संकुचन, अति उष्ण या शीत वस्तुओं से शरीर को दूर करना, श्वास लेना एवं शारीरिक खिंचाव आते हैं। जब मस्तिष्क प्रतिवर्त क्रिया में संलग्न नहीं होता है तो उसे **मेरु प्रतिवर्त** (Spinal Reflex) कहते हैं एवं इसमें निहित परिपथ को संवेदी गत्यात्मक चाप (Sensory Motor Arc) कहते हैं। यद्यपि प्रतिवर्त क्रियाओं में मस्तिष्क संलग्न नहीं होता, परंतु कुछ परिस्थितियों में इसका योगदान हो सकता है। मान लीजिए, आपका हाथ कार के दरवाजे में दब जाता है एवं आप इसे आसानी से नहीं खींच सकते हैं। प्रतिवर्त क्रिया आपके हाथ खींचने के लिए पर्याप्त नहीं होती। ऐसी परिस्थिति में समाधान के लिए सूचना मस्तिष्क तक पहुँचती है।

अब तक आपने पढ़ा

न्यूरोन तथा स्नायुकोश हमारे तंत्रिका तंत्र की आधारभूत संरचनाएं हैं। न्यूरोन एक खास तरह का कोश है जो सूचना ग्रहण करता है, उसका प्रक्रमण करता है और शरीर में स्थित दूसरे कोशों को प्रेषित करता है। स्वरूप, आकार, रासायनिक संरचना तथा कार्य की दृष्टि से न्यूरोन भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। डेंड्राइट सूचना ग्रहण करते हैं तथा एक्सॉन दूसरी पेशियों और न्यूरोन तक सूचना भेजते हैं। हम लोगों के शरीर में सांवेदिक न्यूरोन, अंतर न्यूरोन तथा पेशीय न्यूरोन विद्यमान हैं। स्नायु प्रवाह एक एक्सॉन से दूसरे न्यूरोन के डेंड्राइट तक संधिस्थल से होकर जाते हैं। प्रतिवर्त मस्तिष्क की भागीदारी से अलग या स्वतंत्र रूप से काम करते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में शरीर से आने वाली सूचनाएं अंतरन्यूरोनों से होकर आती हैं। सही/गलत*
2. *पेशीय न्यूरोन केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से आनेवाली सूचनाओं को शरीर की पेशियों तक पहुँचाते हैं। सही/गलत*
3. *दो न्यूरोन के बीच के अंतर को संधिस्थल कहते हैं। सही/गलत*
4. *न्यूरोट्रांसमीटर एक न्यूरोन को एक दूसरे न्यूरोन तक संदेश भेजते हैं। सही/गलत*
5. *प्रतिवर्त एक उद्दीपक के प्रति ऐच्छिक अनुक्रिया है। सही/गलत*

उत्तर– 1. गलत, 2. सही, 3. सही, 4. सही, 5. गलत।

अंतःस्रावी तंत्र

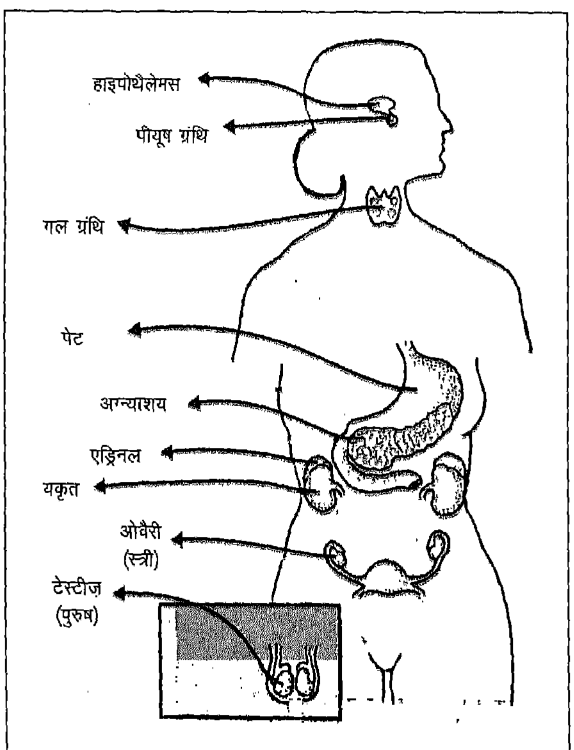
हमारे व्यवहार एवं विकास में तंत्रिका तंत्र एवं मांसपेशियों के समान ही **अंतःस्रावी ग्रंथियां** मुख्य भूमिका निभाती हैं। मानव शरीर केवल तंत्रिका तंत्र के नियंत्रण के ही अधीन नहीं है परंतु यह हारमोन्स के एक अनुपूरक तंत्र के नियंत्रण में भी होता है। अंतःस्रावी तंत्र (Endocrine System) हाइपोथैलमस के साथ कार्य करता है। यह संबंध प्रायः एच.पी.ए. एक्सिस (Hypothalamus Pituitary Adrenal Axis) कहा जाता है।

अंतःस्रावी तंत्र में नलिकाविहीन ग्रंथियाँ होती हैं, जो सीधे रक्तधारा में जटिल रासायनिक पदार्थों का स्राव करती हैं, जिन्हें **'हारमोन'** कहा जाता है। रक्त संचार तंत्र हारमोन्स को अंतःस्रावी ग्रंथियों से लेकर शरीर के विभिन्न अंगों एवं तंत्रों तक पहुँचाने का एक मार्ग होता है।

यह तंत्र स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomous Nervous System या ANS) की क्रियाओं से नियंत्रित होता है एवं

उसी के समान ही यह चेतन नियंत्रण में न होकर स्वयं शरीर के द्वारा संचालित होता है। यह शारीरिक समस्थिति (Homeostasis) को बनाए रखने में मदद करता है। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र द्वारा उत्पन्न प्रभाव की तुलना में हारमोन्स अपना प्रभाव दिखाने में लंबा समय लेते हैं एवं प्रभाव की दृष्टि से ये (केवल एक निश्चित अंग पर प्रभाव डालने के कारण) अतिविशिष्ट हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, पीयूष ग्रंथि के स्राव केवल यौन अंगों को ही उद्दीप्त करते हैं। दूसरी ओर कुछ हारमोन्स का प्रभाव शरीर के अंगों पर व्यापक भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, पैनक्रीज इंसुलिन का स्राव करते हैं जो शरीर के कोशों द्वारा ग्लूकोज को ग्रहण करने की प्रक्रिया को बढ़ावा देते हैं। हारमोन्स की अधिकता या कमी प्रायः व्यवहार में प्रभावशाली परिवर्तन लाती है। आइए, कुछ महत्त्वपूर्ण नलिकाविहीन ग्रंथियों के स्वरूप एवं व्यवहार का परिचय प्राप्त किया जाए।

पीयूष ग्रंथि : पीयूष ग्रंथि यद्यपि कपाल (Cranium) में स्थित होती है फिर भी यह अंतःस्रावी तंत्र का अंग है न कि तंत्रिका तंत्र का। यह तंत्रिका तंत्र से घनिष्ठ रूप से संबद्ध है। पीयूष ग्रंथि को मास्टर ग्रंथि भी कहा जाता है, क्योंकि यह हमारे शरीर के अंदर पाई जाने वाली अधिकांश ग्रंथियों की क्रिया को निर्देशित करती है। अग्र एवं पश्च (Anterior and Posterior) पीयूष ग्रंथि हारमोन्स को उत्पन्न करती है एवं जीवन में उपयुक्त समय आने पर यह उसका स्राव करती है। उदाहरणार्थ, विकास हारमोन (अग्र पीयूष हारमोन) बचपन से ही अनवरत स्रावित होता है एवं किशोरावस्था में इसके स्राव में अतिरिक्त वृद्धि हो जाती है। लड़कियों में रजोधर्म के प्रारंभ के साथ यह समाप्त हो जाता है परंतु लड़कों में यह पुरुष हारमोन (Testosteron) के उत्पादन में वृद्धि करता है। इसी प्रकार प्रोलैक्टोन (अग्र पीयूष हारमोन) गर्भिणी एवं स्तनपान कराने वाली माताओं में दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देता है एवं आक्सीटोन (पश्च पीयूष हारमोन) प्रसव के समय दुग्ध-स्राव को नियंत्रित करता है। गोनैडोट्रापिक हारमोन (अग्र पीयूष हारमोन) पुरुषों में अंडकोशों एवं महिलाओं में गर्भाशय के उत्प्रेरण के माध्यम से पुरुषों एवं महिलाओं में यौन हारमोन्स के उत्पादन को नियंत्रित करता है।



चित्र 3.11 : अन्तःस्रावी ग्रंथियाँ।

गलग्रंथि : गलग्रंथि गले में अवस्थित होती है एवं थायरॉक्सिन का स्राव करती है, जो शरीर के उपापचय (Metabolism) को नियंत्रित करता है। हारमोन्स का अधिक उत्पादन व्यवहार को प्रभावित करता है। इसकी अधिकता उपापचय दर को तीव्र करती है, एवं व्यक्ति को अतिक्रियाशील बना देती है, जिसके कारण शरीर के भार में कमी आ जाती है। दूसरी तरफ थायरॉक्सिन का अल्प उत्पादन वजन में वृद्धि करता है एवं सुस्ती पैदा करता है। बच्चे के विकास में थायरॉक्सिन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। निम्न थायरॉक्सिन स्तर से बौनापन पैदा होता है। पशुओं में यह पाया गया है कि यदि उनकी थायराइड ग्रंथि को निकाल दिया जाए तो उनका विकास रुक जाता है तथा लैंगिक विकास नहीं हो पाता है।

एड्रिनल ग्रंथि : यह ग्रंथि प्रत्येक गुर्दे के ऊपर ऐसे स्थित होती है, जैसे गुर्दे के शीर्ष पर तीन कोने वाली टोपी रखी हो। ए.सी.टी.एच. (एड्रिनो-कॉर्टिकोट्रापिक हारमोन, अग्र पीयूष ग्रंथि द्वारा स्रावित) इसके स्राव को उत्प्रेरित करता है। प्रत्येक के दो अलग-अलग हिस्से होते हैं – एड्रिनल मेडुला एवं एड्रिनल कॉर्टेक्स। एड्रिनल मेडुला इस ग्रंथि का केंद्रीय भाग होता है, जो एड्रिनलीन तथा नारएड्रिनलीन का स्राव करता है। ये दोनों हारमोन्स **"संघर्ष या पलायन"** (जिसकी मध्यस्थता स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के द्वारा होती है) में शामिल होते हैं। ये दोनों हारमोन्स हमें आपातस्थिति के लिए तैयार करते हैं। एड्रिनलीन तथा नारएड्रिनलीन

हाइपोथैलेमस को उद्दीप्त करता है जो प्रतिबलकों के हट जाने के बाद भी व्यक्ति में संवेग को जारी रखता है।

एड्रिनल कॉर्टेक्स एक हारमोन समूह का स्राव करता है जिसे कॉर्टिकोस्टिरायड कहा जाता है। शरीर के द्वारा इनका उपयोग अनेक दैहिक उद्देश्यों (उदाहरणार्थ, रक्त चाप का नियंत्रण) के लिए किया जाता है, हालाँकि कॉर्टिकोस्टिरायड का अत्यधिक उत्पादन शरीर के लिए हानिप्रद होता है। उदाहरणार्थ, यदि एक व्यक्ति अनवरत तनाव में रहता है तो कॉर्टिकोस्टिरायड का अत्यधिक स्राव नुकसानदायक होता है।

***पैनक्रीज*:** अग्न्याशय की कोशिकाएं इन्सुलिन (जो शरीर के उपयोग या यकृत में ग्लाइकोजन के रूप में भंडारण के लिए ग्लूकोज के विखंडन में यकृत की सहायता करता है) का उत्पादन करती हैं। मधुमेह के रोगियों में इन्सुलिन का पर्याप्त उत्पादन नहीं होता है अतः उन्हें आपूर्ति बढ़ाने हेतु इन्सुलिन का इंजेक्शन लेना पड़ता है। अग्न्याशय द्वारा इन्सुलिन का स्राव अंतःग्रहण की गई शर्करा की मात्रा तथा क्रियाशीलता एवं व्यायाम में खर्च हुई शर्करा की मात्रा के आधार पर होता है। मधुमेह के रोगी जो भोजन नहीं ले पाते हैं या शारीरिक या मानसिक प्रतिबल की स्थिति में होते हैं, इन्सुलिन न लेने की स्थिति में मूर्च्छा में जा सकते हैं। हालाँकि शर्करा की कमी की यह स्थिति कुछ चेतावनी संकेत (जैसे–अकारण क्रोध, खीझ या आक्रामकता) देती है।

***गोनैड्स (वृषण तथा अंडाशय)*:** गोनैड्स पुरुष तथा महिला दोनों के जननांगों को निर्मित करते हैं – पुरुषों में वृषण तथा महिलाओं में अंडाशय। महिलाओं एवं पुरुषों में यह हारमोन महिलाओं और पुरुषों के प्रजनन व्यवहारों को संचालित एवं विभेदित करता है। यौन – हारमोन्स का स्राव महिला एवं पुरुष दोनों में किशोरावस्था के दौरान बढ़ जाता है। पुरुषों में *टेस्टोस्टेरोन* का उत्पादन होता है जो कि शारीरिक बदलावों जैसे शरीर रोम में वृद्धि, वाणी में भारीपन तथा लैंगिक उन्मुख व्यवहार में वृद्धि करता है। आक्रामकता में वृद्धि भी *टेस्टोस्टेरोन* के उत्पादन से संबंधित है। महिलाओं के अंडाशय एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्टेरोन उत्पन्न करते हैं, जो रजोधर्म के आरंभ तथा यदि निषेचन प्रारंभ हो गया हो, तो भ्रूण के विकास को नियंत्रित करता है। महिलाओं तथा पुरुषों दोनों में एस्ट्रोजन तथा प्रोजेस्ट्रान का उत्पादन होता है। इन दोनों के बीच संतुलन ही लिंगगत व्यवहार को निर्धारित करता है।

आपने अब तक पढ़ा

अंतःस्रावी ग्रंथियाँ हमारे व्यवहार तथा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। यह तंत्रिका तंत्र की एक पूरक व्यवस्था है। अंतःस्रावी व्यवस्था नलिकाविहीन ग्रंथियों से बनी होती है, जिससे जटिल रासायनिक पदार्थ-हार्मोन, रक्त प्रवाह में सीधे प्रविष्ट हो जाते हैं और स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के नियंत्रण में हैं। प्रमुख ग्रंथियाँ हैं : पीयूष ग्रंथि, गल ग्रंथि, एड्रीनल, पैनक्रीज तथा पौरुष ग्रंथि (गोनैड)।

आपने कितना सीखा

1. अंतःस्रावी ग्रंथियों को ______________ ग्रंथि भी कहा जाता है।

2. अंतःस्रावी व्यवस्था ______________ की क्रिया से नियंत्रित होती है।

1. पीयूष ग्रंथि को ______________ ग्रंथि भी कहा जाता है।

4. हमारे शरीर में विद्यमान महत्त्वपूर्ण अंतःस्रावी ग्रंथियाँ हैं ________, ________, ________, ________, ________।

उत्तर– 1. नलिकाविहीन, 2. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र, 3. मास्टर, 4. एड्रीनल, पैनक्रीज, गोनैड, पिट्यूटरी, थायरायड।

प्रमुख तकनीकी शब्द

होमोसैपियन, प्रजाति, संज्ञान, जैव मनोविज्ञान, स्नायु मनोविज्ञान, दैहिक विज्ञान, व्यवहार, उद्विकास, जीन, ग्रंथि, पर्यावरण, द्विपादता, प्रमस्तिष्कीकरण, केंद्रक, गुणसूत्र, डी.एन.ए., व्यवहार आनुवंशिकी, आनुवंशिकता, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, स्थानीकरण, स्नायुकोश, वल्कुट (धूसर द्रव्य), मस्तिष्क स्तंभ, लघु मस्तिष्क, प्रमस्तिष्कीय वल्कुट, मेडुला, समस्थिति, हाइपोथैलेमस, ग्लियां कोश, अर्द्धगोलार्द्ध (मस्तिष्कीय), माइलिन, कायिक या दैहिक तंत्रिका तंत्र, कंकाली पेशी, प्रतिबल, उद्वेलन, एक्सॉन, सोमा (कोश शरीर), संवेदी स्नायुकोश, गत्यात्मक या चालक स्नायुकोश, अभिवाही स्नायुकोश, अधोवाही स्नायुकोश, संपूर्ण या बिल्कुल नहीं विशेषता या नियम, स्नायु आवेग, संधिस्थल पुटिका।

सारांश

- *मनुष्य का तंत्रिका तंत्र कई विलियन परस्पर संबंधित अति विशिष्ट कार्य करने वाले कोशों से बना हुआ है। न्यूरोन या स्नायु कोश सभी मानव व्यवहारों को नियंत्रित तथा संयोजित करते हैं।*
- *केंद्रीय तंत्रिका तंत्र मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु से निर्मित है। परिधीय तंत्रिका तंत्र केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से निकलकर शरीर के सभी भागों में फैल जाता है। इसके दो भाग हैं : कायिक तंत्रिका तंत्र (ये कंकाली पेशियों के नियंत्रण से जुड़ा है) तथा स्वायत्त तंत्र (ये आंतरिक अंगों के नियंत्रण से जुड़ा है)। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र दो भागों अनुकंपी तथा परानुकंपी तंत्रिका तंत्र में बँटा हुआ है।*
- *न्यूरोन में डेंड्राइट होता है, जो प्रवाह को ग्रहण करता है, एक्सॉन होता है, जो प्रवाहों को कोश शरीर से लेकर दूसरे न्यूरोन तथा पेशियों के ऊतकों तक ले जाता है। सबसे सरल स्नायविक संबंध प्रतिवर्त चाप है।*
- *प्रत्येक एक्सॉन एक दूरी से अलग होता है, जिसे संधिस्थल कहा जाता है। एक रसायन, जिसे न्यूरोट्रांसमीटर कहा जाता है। एक्सोन के अंतिम सिरे से निकलता है, जो दूसरे न्यूरोन तक संदेश पहुंचाता है।*
- *मनुष्य के मस्तिष्क का केंद्रीय बिंदु में पृष्ठ मस्तिष्क (जिसमें मेडुला, पान, जलीय रचना तथा लघु मस्तिष्क होते हैं), मध्य मस्तिष्क, थैलेमस तथा हाइपोथैलेमस होते हैं। मस्तिष्क के केंद्र के ऊपर अग्रमस्तिष्क या मस्तिष्क के गोलार्ध स्थित होते हैं।*
- *लिंबिक व्यवस्था लड़ने या पलायन जैसे व्यवहारों को नियमित करने में संलग्न होती है। इसमें हिप्पोकैंपस, एमिग्डाला तथा हाइपोथैलेमस सम्मिलित हैं।*
- *अंतःस्रावी व्यवस्था में नलिकाविहीन ग्रंथियाँ, पिट्यूटरी, थाइरायड, एड्रिनल, पैंक्रीज तथा गोनैड्स शामिल हैं। उनसे निकलने वाले हार्मोन व्यवहार तथा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. तंत्रिका तंत्र के प्रमुख भाग कौन-से हैं?
2. मस्तिष्क स्तंभ तथा लिंबिक व्यवस्था की विभिन्न संरचनाओं के क्या कार्य हैं?
3. न्यूरोन के विभिन्न प्रकार कौन-से हैं और वे कौन सा कार्य करते हैं?
4. सेरिब्रल कॉर्टेक्स में पाए जाने वाले प्रमुख क्षेत्र कौन-से हैं, वे कौन से कार्य करते हैं?
5. अंतःस्रावी व्यवस्था का क्या कार्य है?
6. प्रतिवर्त चाप क्या है?
7. संधिस्थल का क्या महत्त्व है?
8. उद्विकास के कौन से प्रमुख चिह्न हैं, जिन्होंने मनुष्य को एक विशिष्ट प्रजाति बना दिया है?
9. न्यूरोन क्या है? इसके कार्य क्या हैं?

4 व्यवहार के सामाजिक-सांस्कृतिक आधार

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- संस्कृति की अवधारणा
- संस्कृति तथा व्यवहार के बीच संबंध
- समाजीकरण एवं संस्कृति संक्रमण की प्रक्रियाएं
- सामाजिक जीवन को संगठित करने में संस्कृति की भूमिका

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव व्यवहार को समझने में संस्कृति का महत्त्व बता सकेंगे,
- मानव व्यवहार एवं संस्कृति के बीच संबंधों की व्याख्या कर सकेंगे,
- समाजीकरण में संस्कृति की भूमिका बता सकेंगे, तथा
- संस्कृति द्वारा सामाजिक व्यवहार के निर्धारण पर प्रकाश डाल सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

पिछले अध्याय में आपने व्यवहार के जैविक आधारों के बारे में पढ़ा। इस पुस्तक के अन्य अध्यायों को पढ़ते समय आप यह अनुभव करेंगे कि जैविक कारक मानव व्यवहार के कई पक्षों के संगठन एवं संचालन में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। आपने देखा होगा कि वे पशु, जो विकास की सीढ़ी के निचले स्तरों पर स्थित हैं, ऐसे व्यवहारों का प्रदर्शन करते हैं जो जैविक एवं आनुवंशिक रूप से नियंत्रित होते हैं। ऐसे पशुओं के व्यवहार रूढ़िगत तथा एक प्रजाति के सभी सदस्यों में एक-जैसे होते हैं। उनके व्यवहार पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपरिवर्तित रह जाते हैं क्योंकि उनके पास सीखने के परिणामों को संचित करने का कोई तरीका या उपाय नहीं होता। इसलिए उनकी हर पीढ़ी को पूरी तरह नए सिरे से सीखना पड़ता है किंतु मनुष्यों की बात इससे भिन्न है। मनुष्यों द्वारा प्रदर्शित विभिन्न प्रकार के व्यवहार धरती पर उपस्थित किसी भी अन्य जैविक प्राणी के व्यवहार से अधिक व्यापक एवं जटिल होते हैं। जैविक ज्ञान मानव व्यवहार की विविधता एवं जटिलता की व्याख्या करने में सक्षम नहीं है क्योंकि मनुष्य केवल जैविक प्राणी ही नहीं है अपितु सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्राणी भी है। शरीर के जैविक उपकरणों की सहायता से हम अपने पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करते हैं और बहुत-सी वस्तुओं का सृजन करते हैं। ये वस्तुएँ मिलकर संस्कृति का निर्माण करती हैं। हम जिस तरह के घर में रहते हैं, जैसे फर्नीचर का उपयोग करते हैं, जैसे वस्त्र पहनते हैं, जैसी भाषा बोलते हैं, हमारी विद्यालय प्रणाली जैसी है, जिस तरह विवाह के शैली को हम अपनाते हैं तथा जिस तरह की कानून प्रणाली एवं नियमों का हम सम्मान करते हैं, उन सब पर हमारी संस्कृति की अमिट छाप रहती है। संस्कृति ही पारिस्थितिकीय एवं सामाजिक पर्यावरण के साथ हमारे समायोजन को संभव बनाती है। मनुष्य संस्कृति की रचना करता है तथा संस्कृति द्वारा स्वयं भी रचा जाता है। सांस्कृतिक क्रियाएं एवं घटनाएं मनोवैज्ञानिक गोचरों के विशिष्ट स्वरूप को गढ़ती हैं तथा व्यवहारों को अनुबंधित करती हैं। यह अध्याय आपको संस्कृति की अवधारणा से परिचित कराएगा तथा मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों तथा घटनाओं को समझने में संस्कृति की सार्थकता को दर्शाएगा। हम आरंभ में संस्कृति के तात्पर्य को समझने का प्रयास करेंगे। उसके बाद संस्कृति एवं व्यवहार के बीच के संबंध का विश्लेषण किया जाएगा। तत्पश्चात् समाजीकरण एवं संस्कृति संक्रमण के सांस्कृतिक प्रक्रमों का विश्लेषण प्रस्तुत होगा। अंत में सामाजिक जीवन को निर्धारित करने में संस्कृति की भूमिका का विवेचन किया जाएगा।



संस्कृति क्या है?

बहुत से विषयों के विद्यार्थियों के लिए 'संस्कृति' जिज्ञासा का एक केंद्रीय बिंदु रही है (जैसे – नृविज्ञान, समाजशास्त्र, एवं सांस्कृतिक अध्ययन)। आश्चर्य है कि इस मुख्य धारा के मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार एवं अनुभव पर पड़ने वाले प्रभाव के स्रोत एवं प्रसंग के रूप में संस्कृति पर आवश्यक मात्रा में ध्यान नहीं दिया। पिछले कुछ वर्षों में मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार में संस्कृति की भूमिका को समझने में मनोवैज्ञानिकों की रुचि हुई है। इस क्रम में संस्कृति तथा व्यवहार के पारस्परिक संबंधों पर बल देने वाले अनेक प्रयास हुए हैं (विस्तृत विवरण के लिए बाक्स 4.1 देखिए)।

यह हमारा सामान्य अनुभव है कि विभिन्न संस्कृतियों की

बाक्स 4.1 संस्कृति एवं मनोविज्ञान : विचारणीय प्रश्न तथा विकास

आधुनिक मनोविज्ञान अधिकांशतः प्राकृतिक अथवा भौतिक विज्ञान के मॉडल का अनुकरण करके विकसित हुआ है। यह मूल रूप में मान लिया गया था कि संपूर्ण मानव जाति धरती पर हर जगह एक जैसी ही होती है। विकासवादी दृष्टिकोण के प्रभाव में मानक व्यवहार का जीव वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्थापित किया गया। इसका परिणाम एक संदर्भहीन मनोविज्ञान विषय के विकास के रूप में हुआ, जिसमें मानव को एक आयुरहित एवं अमूर्त प्राणी समझा गया। मुख्य धारा के मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार के विश्लेषण के लिए उद्दीपक-प्राणी-अनुक्रिया दृष्टिकोण को स्वीकार किया। इन लोगों ने मनुष्य नामक प्राणी को सांस्कृतिक रूप से एक जटिल क्रिया तंत्र के रूप में देखा जो पर्यावरण से मिलने वाले तरह-तरह के उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करने में सक्षम था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि व्यवहार के सभी पक्षों को भौतिक एवं दैहिक क्रियाओं तक सीमित किया जा सकता है। इस तरह के प्रयास में सांस्कृतिक प्रसंग बहुत संगत नहीं था। इसके कारण गैर-पश्चिमी संस्कृतियों से प्राप्त संप्रत्ययों एवं प्रदत्तों (Data) पर अत्यंत कम या न के बराबर ध्यान दिया गया।

मुख्य धारा से जुड़े मनोविज्ञान के संप्रत्यय एवं इंद्रियानुभविक आधार देने वाले प्रदत्त अधिकतर शहरी एवं मध्यवर्गीय प्रतिदर्शों तथा यूरो-अमेरिकन सांस्कृतिक समूहों के श्वेतवर्गीय पुरुष विद्यार्थियों तक ही सीमित होते हैं। वहीं पाश्चात्य वैज्ञानिक मनोविज्ञान शेष विश्व को निर्यात कर दिया गया। ज्ञान के इस संग्रह (पैकेज) को बिना जाँचे-समझे स्वीकार कर लेने के कारण एक ऐसे मनोविज्ञान का जन्म हुआ जो सांस्कृतिक विविधता से जुड़े वास्तविक जीवन संदर्भों में उपस्थित सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रमों संबंधी आंतरिक दृष्टिकोण तक पहुँचने में बहुत कम सहायक है। वस्तुतः वे एक ऐसे मनोविज्ञान का अभ्यास कर रहे थे जो सांस्कृतिक रूप से असंवेदनशील एवं एक सांस्कृतिक दृष्टि से बँधा था। इस संदर्भ में पाश्चात्य सांस्कृतिक समूहों से किसी तरह की भिन्नता को कमी समझा जाता है। अपने एवं अन्य समूहों के बीच इस तरह का भेदभाव बहुतायत से पाया जाता है। इसे 'स्वजातिकेंद्रिकता' (Ethnocentrism) कहा जाता है, जो ज्ञान की वैज्ञानिक दौड़ के विपरीत होती है। धीरे-धीरे यह अनुभव किया गया कि 'संस्कृति' को गंभीरता से ग्रहण करना चाहिए। मनोविज्ञान का एक सांस्कृतिक या असांस्कृतिक दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं की हमारी समझ को और आगे नहीं बढ़ा सकता है। अंतःसांस्कृतिक (Cross-cultural) मनोविज्ञान, सांस्कृतिक (Cultural) मनोविज्ञान एवं देशज (Indigenous) मनोविज्ञान इस तरह की रुझान को व्यक्त करते हैं।

अंतःसांस्कृतिक मनोविज्ञान मानव विविधता के स्वरूप एवं क्षेत्र को वैयक्तिक स्तर पर समझने का प्रयत्न करता है। यह वर्तमान मनोवैज्ञानिक ज्ञान का विस्तार एवं जाँच करता है, अन्य संस्कृतियों में मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं और घटनाओं की खोज एवं अन्वेषण तथा ऐसे परिणामों को पाने तथा उन्हें व्यवस्थित करने का प्रयास करता है जो समग्र विश्व के लिए एक ही प्रकार के मनोविज्ञान के पाने में सहायता कर सकते हैं।

सांस्कृतिक मनोविज्ञान की यह मान्यता है कि मानव व्यवहार संस्कृति द्वारा संरचित एवं निर्धारित होता है। इस तरह संस्कृति तथा व्यक्ति के व्यवहार को अलग-अलग नहीं समझा जा सकता। इनका एक-दूसरे में समावेश भी नहीं किया जा सकता। संपूर्ण मानव जाति के मानसिक जगत की एकता को यह नहीं स्वीकार करता है।

देशज मनोविज्ञान मनुष्य को समुदाय विशेष के अपने दृष्टिकोण से समझने का प्रयास करता है। इस तरह के प्रयास में मनुष्य की क्रियाओं की व्याख्या उन सांस्कृतिक संदर्भों में खोजी जाती है जिनमें लोग पलते-बढ़ते हैं। यह ऐसे मनोवैज्ञानिक ज्ञान को उपलब्ध कराता है जो स्वदेशी या देशज होता है और जो किसी दूसरी जगह से लाकर थोपा हुआ नहीं होता। यह व्यक्ति के अपने समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं से मेल खाता है।

पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों के व्यवहार में विभिन्नताएं होती हैं। ऐसी भिन्नताएं हमारे लिए तभी अर्थपूर्ण होती हैं जब विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के आलोक में उनका प्रेक्षण एवं विवेचन किया जाता है जिसमें वे घटित होती हैं। जैसे: किसी का स्वागत करना हमारे दैनिक अनुभव का सुपरिचित अनुभव है, किंतु व्यवहार में इसकी अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न रूपों में होती है। हाथ मिलाना, पैर छूना, हैलो या नमस्कार कहना, आलिंगन करना, चूमना, दोनों हाथ जोड़ना, हाथ हिलाना, और किसी सम्मानित व्यक्ति अथवा ईश्वर के चरणों के निकट धरती पर पड़ जाना, यानी (साष्टांग प्रणाम या दंडवत् करना) ये सभी स्वागत की अभिव्यक्ति को संस्कृतिविशेष के अनुसार समान रूप से अच्छे ढंग से पूरा करते हैं। जो लोग स्वागत की इन सभी विधाओं से परिचित नहीं हैं, उन्हें इनमें से किसी एक व्यवहार का बिना सोचे उपयोग असंगत, लज्जाजनक या भयोत्पादक भी लग सकता है। इस प्रकार, हम मूर्त व्यवहारों का एक प्रकार का सांस्कृतिक करके संकेतन या कोडिंग करते हैं, जैसे – अपनी आँखों से दिख सकने वाली शरीर की क्रियाएँ। इनमें साझे का अर्थ एवं आचरण झलकता है। इनमें सबकी भागीदारी होती है क्योंकि ये समुदाय में लोगों के बीच आपस में होने वाली अंतःक्रिया के क्रम में उत्पन्न होते हैं और संप्रेषण के माध्यम से सुरक्षित रहते हैं। यही कारण है कि हम लोगों के व्यवहार को शुद्ध जैविक शब्दावली में नहीं समझ पाते या उसकी अर्थपूर्ण व्याख्या नहीं कर पाते। जैसे – हाथों को इकट्ठा कर उनकी सहायता से एक विशिष्ट कोण बनाना भारतीय संस्कृति से अपरिचित व्यक्ति के लिए 'स्वागत' का आशय या भाव नहीं व्यक्त कर सकता। अधिकांश मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रक्रियाएं सांस्कृतिक रूप से जुड़ी होती हैं फिर भी हम लोग संस्कृति में इतने डूबे रहते हैं कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में संस्कृति की भूमिका को देखने में प्रायः असफल रहते हैं।

अलग-अलग संस्कृतियों के भागीदार के रूप में हम एक ही उद्दीपक के प्रति भिन्न-भिन्न अनुक्रियाएं करते हैं। पशु प्रमुख रूप से जैविक कारकों से अनुशासित होते हैं तथा स्थिर व्यवहारों को अभिव्यक्त करते हैं, लेकिन उनसे भिन्न मानव व्यवहार एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में अलग-अलग पाए जाते हैं। उनके अर्थ को समझने के लिए संस्कृति में स्थापित विवेचन की आवश्यकता पड़ती है। शायद यही कारण है कि संस्कृति की तुलना एक संगणक या कंप्यूटर के प्रोग्राम से की जाती है, जो एक कंप्यूटर की क्रियाओं को संचालित करता है।

हम संस्कृति को *'सामाजिक रूप से आपस में अंतःक्रिया करने वाले लोगों के समूह की साझे की जीवन शैली जो समाजीकरण एवं संबंधित अन्य प्रक्रमों द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाती हैं'* के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। यह व्यक्तियों एवं उनके परिवेशों के बीच की अंतःक्रियाओं द्वारा सृजित होती है। यही कारण है कि संस्कृति को व्यक्तियों के बीच की एक वास्तविकता के रूप में देखा जाता है, जो बहुत-से व्यक्तियों द्वारा अनुभूत होती है। यह लोगों की, उनके अपने एवं नैसर्गिक मानवनिर्मित पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करने में उत्पन्न होने वाली विशेषता है। यह एक प्रकार का संरूप या पैटर्न में बँधा परिवर्त्य है। एक पेंटिंग या चित्र की तरह, इसकी गुणवत्ता इसके विशिष्ट घटकों तक सीमित नहीं की जा सकती। पेंटिंग में प्रयुक्त विभिन्न रंगों की तरह, लोग वांछित परिणाम पाने के लिए उपलब्ध नैसर्गिक एवं मानव संसाधनों का उपयोग करते हैं। इस तरह संस्कृति समाज या समुदाय द्वारा इच्छित फलों को प्राप्त करने के लिए 'नैसर्गिक एवं मानव संसाधनों के सामूहिक उपभोग' की एक प्रक्रिया हो जाती है।

क्रियाकलाप 4.1

सामान्यताओं एवं भिन्नताओं का निरीक्षण

- *एक सप्ताह तक अपनी कक्षा के पाँच विद्यार्थियों के व्यवहार का निरीक्षण कीजिए।*
- *उनके व्यवहार में दिखने वाली समानताओं एवं भिन्नताओं को अंकित कीजिए। उनके व्यवहार में प्राप्त सामानताओं का विश्लेषण कीजिए एवं अपने अध्यापक से इस पर चर्चा कीजिए।*

संस्कृति एक अमूर्त संप्रत्यय है। इसका उपयोग प्रायः लोगों के व्यवहार में भिन्नताओं की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। इस तरह मानव व्यवहार में संस्कृति जिन रूपों में प्रकट होती है, वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। एक संस्कृति अपने सदस्यों के व्यवहार में पूर्ण रूप से कहीं भी व्यक्त हो सकती है। यह भी संभव है कि एक विशिष्ट संस्कृति के सदस्य लोग एक समूह द्वारा स्वीकृत अभिवृत्तियों, मूल्यों, विश्वासों एवं व्यवहारों का समर्थन भिन्न-भिन्न मात्राओं में कर सकते हैं। सहभागिता के रूप में संस्कृति मानसिक स्तर पर सांस्कृतिक गुणों के अनुभव को प्रतिबिंबित करती है। इस प्रकार से यह हमारे मानसिक जगत की विषयवस्तु बन जाती है तथा एक सामाजिक चेतना के रूप में व्यक्ति एवं उनके ऊपर अवस्थित है।

हर्स्कोविट्स द्वारा संस्कृति की एक सरल एवं व्यापक-परिभाषा दी गई कि *'संस्कृति हमारे पर्यावरण का मानव निर्मित अंश है'*। इसमें वस्तुनिष्ठ (जैसे – उपकरण, वास्तुकलाएं, शिल्प) तथा आत्मनिष्ठ (जैसे – वर्गीकरण, मानक, भूमिकाएं, मूल्य) दोनों तत्व सम्मिलित हैं। 'धर्म', 'विद्यालय', 'संगठन' एवं 'परिवार' प्राकृतिक नहीं अपितु संस्कृति द्वारा सर्जित श्रेणियाँ हैं। सांस्कृतिक गोचरों में क्रियाएं (जैसे – वस्तुओं का उत्पादन, बच्चों का पालन एवं शिक्षण, नीतियों एवं नियमों का निर्माण एवं अनुपालन, स्वास्थ्य संबंधी देख-रेख) मूल्य एवं अर्थवत्ता, भौतिक उत्पाद (जैसे – उपकरण, पुस्तकें, कागज, पात्र, वस्त्र) तथा मानसिक गोचर (जैसे – संवेग, अभिप्रेरणा, बीमारी, व्यक्तित्व इत्यादि) भी शामिल हैं।

संस्कृति की एक विशेषता यह है कि एक समुदाय के अंतर्गत सीखे हुए व्यवहारों का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषण होता है। यह प्रक्रिया संस्कृति के संरक्षण को सुनिश्चित करती है। इस संदर्भ में भाषा ने प्रमुख भूमिका निभाई है। यह उल्लेखनीय है कि संस्कृति अतीत में व्यवहारों का परिणाम रही है तथा भविष्य में मानव व्यवहार का स्वरूप तय करती है। सांस्कृतिक प्राणी के रूप में हम सामाजिक पर्यावरण उत्पन्न करते हैं जो समय के साथ जीवन शैलियों की निरंतरता एवं परिवर्तन लाने में तथा अलग-अलग जगहों पर जीवन शैलियों में भिन्नता लाने में सहायक होता है।

संस्कृति को समझने का प्रयास दो तरह के दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। एक दृष्टिकोण आंतरिक है (जैसे– घर का सदस्य घर के बारे में जानता है) तथा दूसरा दृष्टिकोण एक बाहरी व्यक्ति का है। आंतरिक दृष्टि से संस्कृति के बारे में हमारी समझ संस्कृति में शामिल होकर उसके भीतर से प्राप्त होती है। यह किसी विशेष संस्कृति की ऐतिहासिक एवं विकासात्मक प्रक्रियाओं में अर्थवत्ता एवं प्रक्रियाओं को स्पष्ट करती है। इसके विपरीत, एक तुलनात्मक अंतःसांस्कृतिक 'विश्लेषण संस्कृति' मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले परिवर्त्यों एवं आयामों के आपस में मिलने से निर्मित होती है। उदाहरण के लिए, **वैयक्तिकता** एवं **सामूहिकता** को एक सांस्कृतिक आयाम समझा जाता है। शोधकर्ताओं ने विभिन्न संस्कृतियों की जाँच यह जानने के लिए की है कि वे वैयक्तिकता एवं सामूहिकता के आयाम पर उच्च स्तर के हैं अथवा निम्न स्तर के; जैसे – चीनी, जापानी, भारतीय, अमेरिकी। इन संस्कृतियों में लोगों के व्यवहार की तुलना वैयक्तिकता एवं सामूहिकता के आयाम पर, उस संस्कृति विशेष के स्थान को दृष्टिगत रखते हुए की जा सकती है।

क्रियाकलाप 4.2

सांस्कृतिक भिन्नताएँ तथा समानताएँ देखना

- *भारत के विभिन्न प्रदेशों से आए हुए छात्रों से संपर्क कीजिए। विशेष रूप से ऐसे छात्रों से जो हाल ही में आपके विद्यालय में भर्ती हुए हैं।*
- *उनसे इस बात की जानकारी प्राप्त कीजिए कि उन्हें अपने प्रदेश तथा नई जगह पर क्या-क्या समानताएँ और भिन्नताएँ दिख रही हैं।*
- *उनसे प्राप्त जानकारी के आधार पर समानताओं और भिन्नताओं की एक सूची तैयार कीजिए तथा अपने अध्यापक से उस पर चर्चा कीजिए।*

संस्कृति एवं व्यवहार के बीच संबंध

अत्यंत प्राचीन काल से ही मनुष्य सांस्कृतिक भिन्नताओं में रुचि लेता रहा है। विदेशी यात्रियों, विद्वानों, तथा विचारकों ने सांस्कृतिक विभिन्नता के बारे में अपने अनुभवों को व्यक्त किया है। ऐसे विवरण प्रायः अनुमान पर आधारित एवं एक हद तक पक्षपातपूर्ण होते हैं। ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि संस्कृति को समझना एक कठिन कार्य है। एक बाहरी व्यक्ति के दृष्टिकोण से एक संस्कृति के लोगों के सोचने, महसूस करने एवं क्रिया करने के ढंग को प्रभावित करती हुई प्रतीत होती है, किंतु एक भीतरी व्यक्ति जो संस्कृति में जी रहा है, संस्कृति को बिल्कुल प्राकृतिक या नैसर्गिक अनुभव करता है। प्रत्येक बच्चा जन्म से ही भाषा को सीखने के लिए आवश्यक क्षमता रखता है परंतु जिस संस्कृति में बच्चे पलते-बढ़ते हैं, वहाँ की भाषा उनके लिए प्राकृतिक एवं सहज हो जाती है और अन्य भाषाएं विदेशी एवं भिन्न हो जाती हैं। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि हम जो हैं या हमारी जो पहचान है, वह संस्कृति द्वारा ही निर्मित होती है। संस्कृति ही यह बताती है कि क्या सार्थक है और क्या निरर्थक है। संस्कृति के अभाव में मनुष्य पशुओं के जीवन तक ही सीमित रह जाते हैं। हम दूसरों के साथ वास्तविक अथवा काल्पनिक सांस्कृतिक संदर्भ में ही हमेशा सोचते हैं, कल्पना करते हैं, कार्य करते हैं, बातचीत करते हैं और खेलते हैं। हम संस्कृति के माध्यम से ही सोचते हैं, अनुभव करते हैं एवं व्यवहार करते हैं। इसलिए स्वयं अपनी संस्कृति को समझना कठिन हो जाता है।

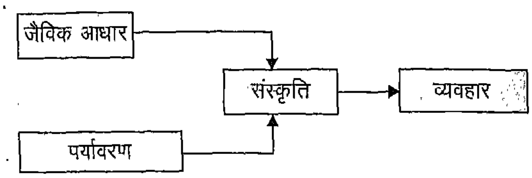
क्रियाकलाप 4.3

संस्कृति तथा स्वास्थ्य

- *आपने यह अवश्य अनुभव किया होगा कि हृदय से जुड़े रोग इन दिनों काफी बढ़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त शहरों में लोग गाँवों की अपेक्षा अधिक बीमार पड़ रहे हैं।*
- *इस वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारणों पर विचार कीजिए।*
- *क्या यह शहरी जीवन में विद्यमान सांस्कृतिक कारकों से जुड़ी है?*
- *इन कारकों के बारे में अपने अध्यापक और अन्य छात्रों के साथ विचार-विमर्श कीजिए।*

सांस्कृतिक संदर्भ चयनात्मक ढंग से कुछ क्रियाओं को प्रोत्साहित करता है, उनमें वरीयता निर्धारित करता है, और उसमें रहने वालों में विभिन्न क्षमताओं, क्रियाओं और कौशलों को सीखने अथवा उनकी उपेक्षा करने की आवश्यकता उत्पन्न करता है। कुछ क्रियाएं तथा कौशल जो एक सांस्कृतिक संदर्भ में अत्यंत उपयुक्त होते हैं, दूसरे सांस्कृतिक संदर्भों में असंगत हो सकते हैं। जैसे गोभी के फूलों की क्यारी में उगा हुआ गुलाब का पौधा अनावश्यक खर-पतवार ही कहलाएगा। किंतु गुलाब के बगीचे में वह फूल का पौधा कहा जाएगा। ठीक इसका विपरीत भी हो सकता है। एक प्रकार के पर्यावरण में रहने वाले व्यक्ति को जलवायु की विशेषताओं द्वारा एवं उसके पर्यावरण द्वारा उपलब्ध कराए गए व्यावसायिक प्रतिष्ठानों द्वारा उस पर डाली गई विशिष्ट माँगों के प्रति समायोजन करने की जरूरत पड़ती है। उदाहरण के लिए, एक बच्चा एक गाँव के परिवेश में वृक्षों पर चढ़ना, पशुओं को पकड़ना, चावल एवं गेहूँ के पौधों में अंतर स्पष्ट करना, विभिन्न प्रकार के बादलों एवं हवाओं के फर्क को समझना, तथा कृषि योग्य खेतों में फसलों की वृद्धि के साथ उनके संबंधों को जोड़ना सीखता है। इसके विपरीत, शहरों में छोटे बच्चे भी विविध घरेलू यंत्रों, जैसे – टेप रिकार्डर, टेलीफोन, कंप्यूटर, वी.सी.पी. का संचालन सीखते हैं तथा कम उम्र से ही अखबार, टेलीविजन जैसे शब्दों को समझने लगते हैं। वे गाँव के बच्चों के कौशलों से भिन्न परिवेश में अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

इस तरह वह सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ जिसमें हम रहते हैं, हम पर कुछ बंधन लगाता है वहीं कुछ विशेष तरह की दक्षताओं एवं कौशलों के विकास एवं उपयोग के अवसर भी उपलब्ध कराता है। यह हमें कुछ कार्य करने की अनुमति देता है और कुछ अन्य कार्य करने से रोकता है। बहुत-से मनोवैज्ञानिकों ने पर्यावरण को एक सशक्त कारक माना है और व्यवहार के निर्धारक के रूप में इसे विशेष महत्त्व दिया है। उनके अनुसार मनुष्य का व्यवहार व्यक्ति एवं पर्यावरण की विशेषताओं की अंतःक्रिया पर निर्भर करता है। ऐसा करते समय यह प्रायः भुला दिया जाता है कि यह अंतःक्रिया संस्कृति के संदर्भ में ही घटित होती है। जैसा कि **कोल** नामक मनोवैज्ञानिक ने सुझाया है, जैविक कारक तथा सार्वभौमिक पर्यावरण के विशेष लक्षण संस्कृति विशेष के ऐतिहासिक सांस्कृतिक संदर्भ में अंतःक्रिया करते हैं (चित्र 4.1 देखिए)। माता, पिता, परिवार तथा घर सार्वभौमिक हैं किंतु जिस ढंग से ये विभिन्न संस्कृतियों में अंतःक्रिया करते हैं, उनमें हमें पर्याप्त भिन्नता मिलती है।



चित्र 4.1 : जैविक विशेषता एवं पर्यावरण की संस्कृति में अंतःक्रिया के परिणाम के रूप में व्यवहार।

क्रियाकलाप 4.4

लड़के-लड़कियों के प्रति माता-पिता के व्यवहार में भेदभाव

- *भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक तथा सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के पाँच परिवारों का प्रातः और संध्या के समय आधा-आधा घंटे तक निरीक्षण कीजिए जब वे अपने बच्चों के साथ व्यवहार या अंतःक्रिया कर रहे हों। यह कार्य पाँच दिनों तक कीजिए।*
- *क्या आपको लड़के तथा लड़कियों के साथ किए जाने वाले व्यवहार में भिन्नता दिखती है?*
- *इन विशिष्ट अंतरों का विवरण तैयार कीजिए तथा अध्यापक के साथ उस पर चर्चा कीजिए।*

यहाँ यह स्पष्ट रूप से समझ लेना आवश्यक है कि व्यवहार के निर्धारण में जैविक कारकों की भूमिका को नकारा नहीं जा रहा है। अधिकतर गोचरों जैसे भाषा, संज्ञान एवं संवेग में जैविक कारक निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किंतु विशिष्ट विषय-वस्तुओं का निर्धारण विशिष्ट सांस्कृतिक क्रियाओं पर छोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए, हम बच्चों के लालन-पालन की घटना ले सकते हैं जो एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है। यह प्रत्येक समाज में पाई जाती है पर इसका स्वरूप और इसका संपादन भिन्न-भिन्न

संस्कृतियों में अलग-अलग होता है। उदाहरणार्थ, भारत की संयुक्त परिवार प्रणाली में बच्चे का विकास अनेक पालकों की देखरेख में होता था। उस परिवेश में चाचा-चाची, चचेरे भाई-बहन, तथा दादा-दादी सदैव बच्चे की देखरेख करने के लिए उपलब्ध रहते थे। इसके विपरीत, अब शहरी आवासीय स्थलों में एकल परिवार प्रणाली है जिसमें माता तथा पिता दोनों काम पर जाते हैं तथा छोटे बच्चे को दिन में देखभाल के लिए शिशु-गृह (क्रेश) में रख दिया जाता है। इस स्थिति के कारण लालन-पालन के तरीके में महत्त्वपूर्ण अंतर आया है। हम एक और उदाहरण लेते हैं। पुराने जमाने के विद्यार्थी और विशेषत: गाँवों में रहने वाले छात्र एक लकड़ी की तख्ती पर लिखा करते थे जिसे पटरी या पट्टी कहा जाता था। वे लकड़ी की लेखनी (कलम) तथा सफेद घोल की सहायता से लिखा करते थे। आज के शहरी विद्यालयों में छोटे बच्चे रंगीन मोम की डंडी (क्रेयन) एवं पेंसिल की सहायता से कागज पर लिखना शुरू करते हैं। पुरानी पीढ़ी के लोग कई तरह के गणित के पहाड़ों को याद किया करते थे। वे बहुत-सी जटिल गणनाएँ आसानी से मौखिक तौर पर कर लिया करते थे। आज के विद्यार्थी उन पहाड़ों को समझने और याद करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। ये उदाहरण विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश में स्थित मानव क्षमता की पर्यावरण के साथ के ढंग को स्पष्ट करते हैं। यह समाजीकरण एवं संस्कृतीकरण की सहायता से घटित होता है। आइए, हम कुछ विस्तार से इन प्रक्रियाओं की जाँच करें।

आपने अब तक पढ़ा

अब तक आपने संस्कृति के स्वरूप के बारे में पढ़ा। इसे पर्यावरण के मानव-निर्मित अंश के रूप में परिभाषित किया जाता है। संस्कृति के दो पहलू हैं – वस्तुगत (उपकरण, सड़कें, भवन आदि) एवं आत्मगत (सामाजिक मानक, भूमिकाएं एवं मूल्य)। एक संस्कृति में व्यक्ति भूमिकाओं एवं संबंधों में सहभागी होते हैं तथा मानकों एवं विवाह, परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं में भी सहभागी होते हैं। भाषा ही वह प्राथमिक साधन है जिसके माध्यम से ये अर्थ, प्रथाएँ एवं संबंध बनाना संभव हो पाता है। आपने यह भी पढ़ा होगा कि संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषित होती है। यह विगत मानव व्यवहारों का परिणाम है तथा भविष्य के मानव व्यवहारों को गढ़ती है। आपने यह भी पढ़ा कि व्यवहार को संस्कृति के संदर्भ में घटित होने वाले जैविक एवं पर्यावरणीय कारकों की अंतःक्रिया को प्रकार्य के रूप में देखा जाता है। इस तरह संस्कृति व्यवहार के एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक के रूप में उभरती है। भिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में मानव व्यवहारों में भिन्नता हमारा एक सामान्य अनुभव है।

आपने कितना सीखा

1. *संस्कृति समुदाय की अंतःक्रिया के संदर्भ में उपजती है।* *सही / गलत*
2. *संस्कृतियाँ यात्रा, वाणिज्य, प्रचार माध्यम, मिशनरी, एवं अन्य परिवर्तन के स्रोतों से अप्रभावित रहती हैं।* *सही / गलत*
3. *मानक संस्कृति के अंग नहीं हैं।* *सही / गलत*
4. *संस्कृति में नए सांस्कृतिक संदर्भों के साथ अनुकूलन सम्मिलित नहीं है।* *सही / गलत*

उत्तर– 1. सही, 2. गलत, 3. गलत, 4. सही।

समाजीकरण एवं सांस्कृतिक संक्रमण

हमारी संस्कृति में जो विद्यमान है और उससे जो हम सीखते हैं उसे संस्कृतीकरण (Enculturation) एवं समाजीकरण (socialisation) कहते हैं। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया में माँ-बाप, हमजोली, प्रभावों की जाल संरचना में या अन्य प्रौढ़ व्यक्तियों से जानबूझ कर कोई शिक्षा नहीं मिलती जो प्रभावों को सीमित, रूपायित और निर्देशित करती है। यह एक प्रकार का प्रशिक्षण का प्रयास एवं दैनिक जीवन के अनुभवों के प्रति अनुक्रिया है। यह उल्लेखनीय है कि मनुष्यों में सीखने का एक बड़ा भाग प्रत्यक्ष अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा जानबूझकर निर्देशित नहीं होता। विभिन्न स्थानों पर जो सीखा जाता है उसमें अलग-अलग मात्रा में उपलब्धि के कारण भी हम भिन्न-भिन्न संप्रत्यय, विचार और मूल्य सीखते हैं। संगीत क्या है? और कोलाहल क्या है? क्या संघर्ष करने योग्य है? इन सभी प्रश्नों में सीखना अंतर्निहित है *कि सीखने के लिए क्या उपलब्ध है।* समाजीकरण की प्रक्रिया में स्वयं अपने समूह तथा सामाजिक पर्यावरण से प्राप्त आयोजित *रूपांकन* सम्मिलित होते हैं। संस्कृतीकरण के माध्यम से समूह बच्चों को अपनी संस्कृति में ढालता है और बच्चा उपयुक्त व्यवहारों को अपनाता है। *परसंस्कृतिग्रहण (Acculturation) का तात्पर्य है भिन्न*

संस्कृतियों से संबंधित एवं भिन्न प्रकार के व्यवहारों का प्रदर्शन करने वाले अन्य व्यक्तियों से संपर्क के कारण पैदा होने वाले सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन। इस परिवर्तन में पुनः सीखने की आवश्यकता पड़ती है। आइए, हम कुछ विस्तार से समाजीकरण एवं परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रियाओं पर विचार करें।

क्रियाकलाप 4.5

- *कुछ ऐसे लोगों का पता लगाइए जो काफी समय तक दूसरी संस्कृतियों के संपर्क में रहे हैं। इन लोगों का साक्षात्कार कीजिए तथा अभिवृत्तियों, मानकों और मूल्यों के बारे में पाई जाने वाली सांस्कृतिक भिन्नताओं और समानताओं के कुछ उदाहरण देने को कहिए।*

सामाजिक व्यवहार का सांस्कृतिक आधार

सांस्कृतिक संप्रेषण विषम-स्तरीय (Vertical) या सम-स्तरीय (Horizontal) हो सकता है। विषमस्तरीय या ऊर्ध्वाधर सांस्कृतिक संप्रेषण में एक सांस्कृतिक समूह व्यवहार के स्तर पर व्यक्त अपने लक्षणों को सीखने एवं शिक्षण के तरीकों या उपायों की सहायता से पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर सकता है। उदाहरणार्थ, माता-पिता अपने बच्चों में मूल्य, कौशल, विश्वास और प्रेरकों को संप्रेषित करते हैं। समस्तरीय सांस्कृतिक संप्रेषण वह है जिसमें एक बच्चा अपने समवयस्कों या हमजोलियों से सीखता है। इन दोनों प्रक्रियाओं में समाजीकरण विद्यमान रहता है। समाजीकरण से तात्पर्य समाज के मूल्यों एवं अपेक्षाओं के ग्रहण एवं अनुकूलन के लिए चेतन एवं सक्रिय प्रशिक्षण द्वारा आयोजित रूपांकन की प्रक्रिया से है। हम दूसरों के व्यवहार के साथ अपने व्यवहार में लोच एवं अनुरूपता ले आना सीखते हैं। माता-पिता शिक्षक, बड़े उम्र के लोग तथा मित्रगण ये सभी समाजीकरण के स्रोत या माध्यम का कार्य करते हैं तथा व्यवहार में घटित होने की संभावना को कुछ निश्चित ढंग में प्रभावित करते हैं। वे सामाजिक दृष्टि से स्वीकृत व्यवहारों को चुनने में हमारी सहायता करते हैं तथा सामाजिक नियंत्रण को स्थापित करते हैं।

भारतीय (हिंदू) विचारधारा में यह मान्यता प्रचलित है कि शिशु कुछ मौलिक स्वभावगत विशेषताओं (आनुवंशिक संरचना तथा अपने पूर्व जन्मों से प्राप्त प्रभावों पर भी आधारित) के साथ जन्म लेता है तथा परिवार को उसका पालन इस तरह से करना चाहिए कि उसमें कोई संभावना अपने वास्तविक रूप में व्यक्त हो सके तथा निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ नियंत्रित हो जाएं। बच्चों का जीवन घर के बाहर की दुनिया में होने वाली घटनाओं से भी प्रभावित होता है। वे अपने आस-पास के पर्यावरण के साथ अंतःक्रिया करते हैं। इस तरह माता-पिता का व्यवहार, समाज के अंग, उनके अपने समुदाय, तथा कार्य स्थल से प्राप्त अनुभवों से प्रभावित होता है। दोनों एक दूसरे को रचते या गढ़ते हैं तथा इसके सदस्यों द्वारा रचे या गढ़े जाते हैं। आइए, हम समाजीकरण में योगदान करने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण अभिकर्ताओं एवं कारकों की जांच करें।

माता-पिता : ये बच्चों के विकास पर सीधा प्रभाव डालते हैं। माता-पिता जिस ढंग से बच्चों के व्यवहार पर अनुक्रिया करते हैं, उससे बच्चों का व्यक्तित्व आकार ग्रहण करता है। वे खास तरह के व्यवहारों को प्रोत्साहित करते हैं तथा बच्चों के सामने व्यवहार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। इसके अलावा, माता-पिता विशिष्ट संदर्भों को चुनकर बच्चों के विकास को प्रभावित करते हैं। इस तरह घर से बाहर विभिन्न स्थानों के दर्शन की व्यवस्था द्वारा, बच्चों को विशिष्ट दूरदर्शन कार्यक्रमों को देखने की अनुमति तथा अन्य बच्चों के साथ खेलने की अनुमति द्वारा माता-पिता बच्चों के विकास का कार्यक्रम तय करते हैं और उन्हें आगे बढ़ने में सहायता देते हैं।

बच्चों से अंतःक्रिया करते समय प्रौढ़ लोग कई तरह की शैलियों का उपयोग करते हैं, जिसे माता-पिता की पालन-पोषण शैली (Parenting Style) कहा जाता है। बच्चों के पालन-पोषण शैली पर किए गए अध्ययन यह संकेत देते हैं कि माता-पिता द्वारा बच्चों के साथ किया गया बर्ताव दो प्रमुख आयामों पर भिन्न हो सकता है : (1) माता-पिता द्वारा प्रदर्शित व्यवहार का स्तर, **नियंत्रण की मात्रा** तथा (2) **स्नेह की मात्रा**। माता-पिता द्वारा लालन-पालन की शैलियों का विस्तृत वर्णन अध्याय 12 में किया गया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि बच्चों के स्वस्थ विकास के लिए न तो प्रभुत्ववादी और न ही उदारवादी शैली ही अच्छी होती है। उक्त दोनों का संतुलित मिश्रण ही प्रभावी होता है। माता-पिता द्वारा अपनाई गई पालन-पोषण की शैली पर प्रायः उनके व्यक्तित्व, आर्थिक स्थिति या बीमारी के कारण अनुभव किए जाने वाले तनाव, नौकरी में संघर्ष, तथा परिवार की संरचना का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। बच्चे अपने दादा-दादी द्वारा भी प्रभावित होते हैं। पास-पड़ोस का,

समुदाय के लोगों एवं परिवार में अतिथि रूप में आने वाले भी निर्णायक होते हैं।

प्रचार माध्यम : शहरी आधुनिक घर में व्यक्ति बाहरी जगत का अनुभव दूरदर्शन (टेलीविजन), समाचार पत्र, पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियो और चलचित्रों के माध्यम से करता है। पिछले कुछ वर्षों में प्रचार माध्यमों के साथ संपर्क आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ गया है तथा समाज पर विशेष प्रभाव डाल रहा है। प्रचार माध्यमों की विषयवस्तु (जैसे–विज्ञापन, रोमांचक कहानियाँ, समाचार कार्यक्रम, प्रायोजित धारावाहिक) और संदेशों के प्रस्तुतीकरण का आदर्श बच्चों के बौद्धिक, तथा सामाजिक कौशलों को प्रभावित करता है और उनकी रुचियों का निर्धारण करता है। दूरदर्शन अब एक प्रमुख प्रभाव बनता जा रहा है क्योंकि यह तथ्यों एवं वस्तुओं को यथार्थपरक एवं जीवंत ढंग से पेश करता है। अत्यंत छोटे बच्चे यह अंतर नहीं कर पाते कि यह वास्तविक है या कल्पनात्मक छद्म है। आंखों के सामने उपस्थित सच्ची लगती आकृतियाँ हमारा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। निकटवर्ती शॉट एवं पुरानी याद (फ्लैश बैक) जैसी विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके वे दर्शकों के विचारों का निर्माण करते हैं। कभी-कभी दूरदर्शन पर वास्तविकता का चित्रण सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं करता है। टी.वी. देखने से पैदा होने वाली हिंसा चिंताजनक होती जा रही है। अध्ययन यह संकेत देते हैं कि टी.वी. को ज्यादा देखना बच्चों के व्यवहार में आक्रामकता की वृद्धि से जुड़ा है। सिनेमा भी लोगों को जीवन सदृश अनुभवों को दिखा कर एवं प्रतीकात्मक संतुष्टि प्रदान कर उनके दुनिया पर सशक्त प्रभाव डालता है।

पालन केंद्र : आज जब माता-पिता दोनों नौकरी करने चले जाते हैं और घर पर छोटे शिशुओं की देखभाल के लिए कोई घर का सदस्य मौजूद नहीं रहता, तब दिन में देखभाल करने वाले पालन केंद्र (Day Care) आज बहुत महत्त्वपूर्ण होते जा रहे हैं। जब माता-पिता उपलब्ध नहीं होते तो ये केंद्र बच्चों की देख-रेख करते हैं। ये केंद्र कई तरह के होते हैं। कुछ पारिवारिक होते हैं, जिनमें बच्चे पड़ोस के किसी व्यक्ति के घर में चले जाते हैं। ये केंद्र बच्चों को सीखने के तरह-तरह के अनुभव भी प्रदान करते हैं। यदि केंद्र अच्छी विशेषताओं वाला है तो दिनभर की देखभाल बच्चों के सामाजिक एवं बौद्धिक विकास में सार्थक योगदान करता है। नर्सरी विद्यालय (Pre-school) एवं पूर्व-विद्यालय की संस्थाएं भी सामने आ रही हैं। ये 2 से 6 वर्ष तक की आयु के बच्चों के विकास में सहायता पहुंचाने के लिए आयोजित की गई हैं। भारतवर्ष में 'समेकित बाल विकास कार्यक्रम' (आई.सी.डी.एस.) के तहत 'आंगनबाड़ी' संचालित होती है, जिनमें गरीब एवं वंचित पृष्ठभूमि के बच्चों की दिनभर देखभाल की जाती है।

मित्रमंडली : बाल्यावस्था में दूसरे बच्चों के साथ मित्रता भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। साझे के काम, पारस्परिक सहयोग, भरोसा और आपसी समझदारी अपनी ही आयु के दूसरे बच्चों के साथ मेल-जोल में बड़े महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। ऐसी सामाजिक अंतःक्रियाओं में बच्चे दूसरे के दृष्टिकोण को अपनाना सीखते हैं। लड़के और लड़कियों का अलग-अलग समूह बनने लगता है। अपनी उम्र के बच्चों के साथ अंतःक्रिया करते समय सहयोग एवं प्रतिस्पर्धा से जुड़े मूल्यों में भी महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक भिन्नताएं दिखती हैं। सामाजिक कार्यों में सम्मिलित होना, दूसरों के दृष्टिकोण को समझने तथा उसे संप्रेषित करने की योग्यता को बढ़ाता है। मित्र समूह में सम्मिलित होने से बच्चों को अपने माता-पिता के साथ संबंध में भी बदलाव आता है। 'स्व' या "हम कौन हैं" इसकी समझ आकार ग्रहण करती है तथा बच्चे 'आत्म' एवं 'आत्म प्रतिष्ठा' को एक मूल्य के रूप में समझना शुरू कर देते हैं। उनके लिए आत्म-प्रतिष्ठा विशेष महत्त्व की हो जाती है। यह देखा गया है कि लगभग 15 वर्ष की उम्र में समवयस्कों के दबाव के प्रति संवेदनशीलता सर्वाधिक होती है।

विद्यालय : विद्यालय की संस्था बच्चों के समग्र विकास में योगदान करने वाली तथा सामाजिक एवं बौद्धिक कौशलों के सीखने के लिए एक औपचारिक रूप से संगठित परिवेश प्रदान करती है। विद्यालय के शिक्षक एवं सहपाठी बच्चों के सामाजिक, दैहिक एवं बौद्धिक कौशलों के सीखने एवं जांचने के सभी अवसर प्रदान करते हैं। विद्यालय वस्तुतः समाज की विभिन्न प्रकार की माँगों को पूरा करने के लिए बच्चों को तैयार करते हैं। कक्षाएँ सामाजिक नियमों, भूमिकाओं एवं प्रथाओं को सीखने के लिए एक व्यवस्थित संरचना प्रदान करती हैं। कक्षाओं में लागू होने वाला अनुशासन औपचारिक परिवेशों में सफलतापूर्वक काम करने की शिक्षा प्रदान करता है। बच्चे यह सीखते हैं कि विभिन्न मानदंड एवं नियम महत्त्वपूर्ण हैं। विद्यालय का अनुभव विभिन्न मात्राओं में आत्म-नियंत्रण, मित्रता-पहल, एवं सर्जनात्मकता की प्रवृत्तियों को पुष्ट करता है। बच्चों के लिए शिक्षक

अधिकार एवं ज्ञान के एक आदर्श का काम करते हैं। बच्चे प्रायः अपने शिक्षकों को देवतुल्य सम्मान देते हैं और यह प्रभाव भविष्य में भी जारी रह सकता है। विद्यालय ईमानदारी, न्याय, व्यवस्था, प्रजातंत्र, एवं स्वच्छता जैसे मूल्यों के अभ्यास एवं सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। अपने उत्तरदायित्व को सीखना एवं विभिन्न भूमिकाएँ ग्रहण करने का अवसर भी विद्यालय में मिलता है। शिक्षकों के साथ बच्चों की बातचीत और व्यवहार उनकी सामाजिक अंतःक्रिया को एवं अपने बारे में समझ के ढंग को भी निर्धारित करती हैं। स्कूली जीवन में कार्य का महत्त्व, श्रेष्ठता एवं गुणों की पहचान, एवं दूसरों का योगदान भी प्रमुखता प्राप्त करते हैं।

धर्म : अनेक धर्मों, समुदायों और जातियों के कारण भारत एक सामासिक (Composite) समाज का चित्र उपस्थित करता है। पंथ निरपेक्षता (Secularism) के साथ जुड़े रहने के कारण लोगों को किसी भी तरह की आस्था के अनुकरण की छूट रहती है। भिन्न-भिन्न तरह के संस्कारों, त्यौहारों एवं रीति-रिवाजों के माध्यम से विभिन्न धार्मिक परंपराएं अपने अनुगामियों की आस्था को आकार देने का अवसर देती हैं। उदाहरणार्थ, ईश्वर, पुनर्जन्म, कर्म, पुरुषार्थ, तथा आत्मा के विचारों में आस्था एवं आध्यात्मिक जीवन की अवधारणाएँ लोगों के सामाजिक जीवन को एक स्वरूप देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये लोगों को समायोजन करने एवं तनावों का सामना करने के लिए सहायता देने में क्रियाशील होते हैं। क्रिसमस, दीवाली, ईद, होली, लोहड़ी, ओणम, महावीर जयंती आदि त्योहारों की लोगों के जीवन के अनुभवों को संगठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इन त्योहारों में सम्मिलित होना विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाजों को अपनाने का अवसर प्रदान करता है तथा व्यक्ति को समूह का एक सक्षम सदस्य होने की अनुमति देता है।

समाजीकरण की तकनीकें

समाजीकरण के स्रोत जैसे माता-पिता, शिक्षक एवं बुजुर्ग लोग बच्चों की आस्था, मूल्य एवं व्यवहार-शैलियों को ढालने के लिए कई तरीकों का उपयोग करते हैं। यहाँ पर कुछ प्रमुख तकनीकों का उल्लेख किया जा रहा है :

पुरस्कार एवं दंड : समाजीकरण के स्रोतों जैसे माता-पिता, अभिभावक अदि द्वारा बच्चों की बौद्धिक क्षमता को बढ़ाने, प्रोत्साहित करने तथा अवांछित विशेषताओं को परिमार्जित या समाप्त करने के लिए पुरस्कार तथा दंड का उपयोग बहुतायत से किया जाता है। इन तकनीकों का असर इनके उपयोग के समय, मात्रा एवं संदर्भ पर निर्भर करता है। सीखने से संबंधित अध्याय 7 में इन प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा की गई है। संक्षेप में, पुरस्कार एवं दंड का उपयोग उस समय सबसे ज्यादा प्रभावशाली पाया गया है जब यह सामाजिक दृष्टि से निर्दिष्ट व्यवहार के होने के अत्यंत निकट दिया जाता है। यह भी ध्यातव्य है कि दंड का प्रभाव स्थाई नहीं होता। यह केवल एक अनुक्रिया को थोड़े समय के लिए दबा सकता है।

अनुकरण एवं प्रतिरूपण : बच्चे घटनाओं का बड़ी बारीकी से निरीक्षण करते हैं। वे बहुत सी-बातें दूसरों के व्यवहार का अनुकरण करके सीखते हैं। वे बार-बार उन लोगों के व्यवहार का अनुकरण करते हैं, जो उनकी जिंदगी में खास महत्त्व रखते होते हैं। समाज में एक व्यक्ति के रूप में विभिन्न भूमिकाओं (जैसे – माता, पिता, भाई, बहन) को अपनाने के लिए इस तरह का सीखना महत्त्वपूर्ण होता है जिसमें किसी एक व्यक्ति को मॉडल समझ लिया जाता है। इस प्रकार के सीखने में किसी तरह का प्रत्यक्ष पुनर्बलन या पुरस्कार अंतर्निहित नहीं होता। यह केवल किसी आदर्श के व्यवहार को देखने से होता है, जो बच्चे के व्यवहार में परिवर्तन को सहज बनाता है।

तादात्मीकरण तथा आभ्यंतरीकरण : एक प्रशिक्षु के रूप में बच्चे परिवार के वरिष्ठ सदस्यों, सामाजिक समूहों, एवं कार्य समूहों के साथ तादात्मीकरण द्वारा कई तरह के कौशलों, मनोवृत्तियों एवं ज्ञान को सीखते हैं। दूसरों के सहयोग से पहचान करते हुए बच्चे कौशलों आदि को आभ्यंतरीकृत कर लेते हैं। अर्थात् अपने मन में बैठा लेते हैं। इस तरह वे बच्चों की व्यवहार शैली के अंग का रूप ले लेते हैं।

संस्कृति संक्रमण : इसका तात्पर्य उन सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से, है जो भिन्न संस्कृतियों के साथ संबंध एवं भिन्न व्यवहार प्रदर्शित करने वाले लोगों के साथ संपर्क के द्वारा पैदा होते हैं। सांस्कृतिक संपर्क भी किसी सामाजिक-राजनैतिक संदर्भ में घटित होता है। ऐतिहासिक एवं समकालीन अनुभव, किसी विदेशी राज्य के उपनिवेशक होने का अनुभव, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, आक्रमण, एवं प्रव्रजन भिन्न संस्कृतियों के बीच सांस्कृतिक संपर्क को आगे बढ़ाते हैं और इसलिए, मूल संस्कृति में भी परिवर्तन की प्रक्रिया

को तीव्र करते हैं, जैसे भारत में बहुत से समूह ब्रिटिश शासन की अवधि में ब्रिटिश जीवन शैली के विभिन्न पहलुओं के प्रति संस्कृति-संक्रमित हो गए। यह संस्कृति-संक्रमण सामाजिक संरचना, शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था में बहुत से परिवर्तनों को आगे बढ़ाता है। ऐसे परिवर्तन भाषा, वेशभूषा एवं धर्म के क्षेत्रों में प्रकट रूप से दिखते हैं। संस्कृति-संक्रमण किसी व्यक्ति के जीवन में किसी भी समय हो सकता है। इसमें पुनः सीखने या पुनः समाजीकरण की जरूरत पड़ती है। यह प्रक्रिया नई समस्याएं पेश करती है और लोगों को नए अवसर देती है। इस तरह एक नई संस्कृति के साथ संपर्क मूल संस्कृति के व्यवहार करने के तौर-तरीकों में परिवर्तन उत्पन्न करता है।

एक बदलते हुए सांस्कृतिक समूह की सदस्यता के फलस्वरूप लोग तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों का

बाक्स 4.2

आधुनिकीकरण एवं संस्कृतीकरण

आधुनिकीकरण

संसार के कई विकासशील देशों में औद्योगीकरण, शहरीकरण, प्रभावी संप्रेषण एवं यातायात, तथा शिक्षा एवं जनसंचार जैसी विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा तीव्र सामाजिक परिवर्तन हो रहा है। आधुनिकीकरण विभिन्न प्रक्रमों का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त एक सामान्य तकनीकी शब्द है। ये प्रक्रियाएं अच्छाई अथवा बुराई के लिए गैर-उद्योगी, ग्रामीण तथा नियम प्रतिरोधी अर्थव्यवस्था को स्थापित करती हैं। शायद आधुनिकता से तात्पर्य परिवर्तन की कालगत विशेषता से है। यह स्वभाव से या अनिवार्य रूप से सकारात्मक नहीं है। वैयक्तिक स्तर पर आधुनिकता में अभिवृत्ति एवं व्यवहारगत परिवर्तन शामिल हैं। मनोवैज्ञानिकों के लिए विचारणीय प्रश्न यह है कि लोग कैसे पारंपरिक से आधुनिक व्यवहार की ओर आगे बढ़ते हैं। आधुनिक मूल्यों में ***क्रियावाद, व्यवसायगत प्राथमिकता, वैयक्तिकता,*** *और* ***जन संचार*** *में सहभागिता सम्मिलित है। सक्रियता का तात्पर्य इस दृष्टिकोण से है कि मनुष्य विज्ञान एवं तकनीकी के सहारे संसार को नियंत्रित एवं परिवर्तित कर सकता है। व्यवसायगत प्राथमिकता का अर्थ है कैरियर की सफलता को ही उच्चतम लक्ष्य मानना। वैयक्तिकता, अलग-थलग पड़े अनोखे व्यक्तित्व में आस्था का संकेत देती है। यदि व्यक्ति आधुनिक है तो वह इन मूल्यों का प्रदर्शन करेगा। इसके अतिरिक्त कुछ समाज वैज्ञानिकों ने यह प्रस्तावित किया है कि नए अनुभवों का प्रारंभ करने वाले, स्वतंत्रता का पुरजोर समर्थन करने वाले, महत्त्वाकांक्षी, विज्ञान एवं तकनीकी की प्रभाव क्षमता में विश्वास रखने वाले, योजना को वरीयता देने वाले, सच्चे समाचारों से अवगत रहने की चेष्टा करने वाले, नागरिक क्रियाकलापों में रुचि रखने वाले एवं पारिवारिक भूमिकाओं के प्रति समानतावादी अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों की गणना आधुनिक व्यक्ति के रूप में होनी चाहिए। अध्ययनों से यह पता चलता है कि लोग कुछ खास अर्थों में ही आधुनिक हो रहे हैं। आधुनिकता के बारे में औपचारिक शिक्षा एवं दूसरी भाषा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कारक पाए गए हैं।*

संस्कृतीकरण : *संस्कृतीकरण एवं पश्चिमीकरण के संप्रत्यय प्रोफेसर एम. एन. श्रीनिवास द्वारा भारत में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया की व्याख्या के लिए प्रस्तावित किए गए थे। संस्कृतीकरण भारतीय इतिहास में सदैव घटित होता हुआ-सा प्रतीत होता है और अभी भी जारी है। इसके विपरीत, पश्चिमीकरण उन परिवर्तनों का द्योतक है, जो ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीय समाज में घटित हुए थे और जो स्वतंत्र भारत में कुछ स्थितियों में तीव्र वेग से जारी हैं। संस्कृतीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जाति की संस्कृति में निम्न स्तर की हिंदू जाति, या आदिवासी अथवा अन्य कोई समूह अपने से ऊपर स्थित एक उच्च जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाजों, संस्कारों, विचारधाराओं एवं जीवन के ढंग में बदलाव लाती है। प्रारंभ में एक जाति एक सम्मानित स्थान का दावा करती है, जिसे उसके पड़ोसी मान्यता देना स्वीकार नहीं करते।*

संस्कृतीकरण के बाद होने वाला या उसका प्रतिफल संबंधित जाति का ऊर्ध्वमुखी दिशा में आगे बढ़ना है। सामाजिक व्यवस्था में स्थानगत परिवर्तन होता है। यह एक स्थिर पदानुक्रम में घटित होता है। पारंपरिक प्रणाली में हिंदू होने का एकमात्र तरीका एक जाति से जुड़ना था और गतिशीलता की इकाई एक व्यक्ति या परिवार न होकर एक समूह था। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बहुसंख्य लोगों के लिए प्रमुख जातियां, जिनमें प्रायः ब्राह्मण आते हैं, एक आदर्श जैसी होती हैं।

तीर्थस्थान एवं धार्मिक स्थल भी संस्कृति के स्रोत थे। जब प्रभावी जाति का एक हिस्सा पूजा के एक केंद्र के प्रभाव में आया तब संस्कृतीकरण क्षेत्र के अप्रभावी जातियों में भी नीचे से ऊपर की ओर फैल गया और दूसरी जगह रहने वाले उनके सदस्यों में क्षितिजवत् फैल गया। आधुनिक समय में इस तरह का प्रसार तरह-तरह की शक्तियों द्वारा काफी सुविधाजनक हो गया है। ये शक्तियाँ हैं–तकनीकी, संस्थागत, और विचारात्मक। भारतीय इतिहास में संस्कृतीकरण सांस्कृतिक परिवर्तन की एक प्रमुख प्रक्रिया रही है तथा यह भारतीय उपमहाद्वीप के हर भाग में घटित हुई है।

अनुभव करते हैं। एक नए देश में आव्रजन (Migration) का अनुभव संस्कृति-संक्रमण का एक रोचक उदाहरण है। भाषा, जलवायु, काम करने की आदतें, धर्म एवं पहनावा आदि में भिन्नताएं अपना देश छोड़कर दूसरे देश में जाने वालों के सामने महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ पेश करती हैं। इसी तरह उपनिवेश बने देशों की स्थिति में भी परिवर्तन आवश्यक है। आदिवासी लोगों का गैर आदिवासी संस्कृतियों के संपर्क में आने की घटना संस्कृति-संक्रमण का एक दूसरा उदाहरण है। एक भिन्न संस्कृति के साथ संपर्क कई तरह की प्रतिक्रियाओं को जन्म दे सकता है। जहां कुछ लोग बड़ी प्रसन्नता के साथ नई संस्कृति को अंगीकार कर सकते हैं वहीं दूसरे लोग इस बात को नापंसद कर सकते हैं। कुछ लोग चुन-चुन कर दूसरी संस्कृति के अवयवों को ग्रहण कर सकते हैं और कुछ लोग अपनी मूल संस्कृति में नई संस्कृति को डुबो देते हैं।

संस्कृति-संक्रमण के साथ प्रायः बहुत-सी और बातें भी घटित होती हैं। यह जनसंख्या विस्तार, सांस्कृतिक भिन्नता, अभिवृत्ति तथा नीतिगत परिवर्तन को जन्म दे सकता है। इस तरह किसी भी संस्कृति में लोग संस्कृति-संक्रमण की प्रक्रिया में भिन्न-भिन्न स्तर पर स्थित हो सकते हैं। संपर्क एवं सहभागिता की मात्रा का आकलन पढ़ाई के स्तर, शहरीकरण, जनसंचार, राजनीतिक सहभागिता, भाषा, जीवन के रीतिरिवाजों में परिवर्तन, और सामाजिक संबंध आदि जैसे सूचकों की सहायता से किया जाता है।

संस्कृति-संक्रमण करने वाला व्यक्ति (या समूह) शक्तिशाली समाज के साथ अपने को कई तरह से जोड़ना चाहता है। उन्हें संस्कृति-संक्रमण के तरीकों के रूप में जाना जाता है। इनमें कुछ प्रमुख तरीके इस प्रकार हैं :

(अ) समावेश करना : जब लोग अपनी संस्कृति एवं पहचान को कायम नहीं रखना चाहते।

(ब) अलगाव : जब लोग अपनी मूल संस्कृति को संरक्षित रखते हैं।

(स) समाकलन : जब लोग नई संस्कृति से अंतःक्रिया करते हैं और पुरानी संस्कृति के साथ समाकलन करते हैं।

(द) सीमांत पर रहना : जब अपनी संस्कृति के संरक्षण या बनाए रखने में अत्यंत कम रुचि रखते हैं।

संस्कृति-संक्रमण प्रायः एक प्रतिबलपूर्ण अनुभव के रूप में पाया जाता है। व्यक्ति संक्रमण के अनुभव का किस तरह मूल्यांकन करता है और तनाव से निपटने के लिए उपलब्ध कौशल, सांस्कृतिक संक्रमणजन्य तनाव की मात्रा को प्रभावित कर सकते हैं।

आपने अब तक पढ़ा

आपने तीन महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओं – संस्कृतीकरण, समाजीकरण, एवं संस्कृति-संक्रमण के बारे में पढ़ा। अब संस्कृतीकरण से तात्पर्य बिना किसी प्रत्यक्ष प्रभाव के खुद अपने से सीखने से है। इसके विपरीत समाजीकरण बच्चों को परिवार/समाज के नियम एवं मानक सिखाने की एक नियोजित प्रक्रिया है। माता-पिता, संचार माध्यम, विद्यालय, मित्र मंडली और धर्म इस प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बच्चे माता-पिता द्वारा दिए गए पुरस्कार एवं दंड के माध्यम से सांस्कृतिक मानक सीखते हैं। जब लोग किसी दूसरी संस्कृति के संपर्क में आते हैं तो बहुत-सी भूमिकाएं एवं संबंध भी सीखते हैं। इसी प्रक्रिया को संस्कृति-संक्रमण कहते हैं। संस्कृति-संक्रमण का मूल संस्कृति पर कई तरह का प्रभाव पड़ता है और इससे तनाव भी उत्पन्न होता है।

आपने कितना सीखा

1. *संस्कृतीकरण से तात्पर्य माता-पिता, मित्रगण, एवं अध्यापकों द्वारा दी गई नियोजित शिक्षण प्रक्रिया है।* *सही/गलत*
2. *जब माता-पिता बच्चों को सिखाने का प्रयास करते हैं तो यह लंबवत् सांस्कृतिक संप्रेषण की स्थिति होती है।* *सही/गलत*
3. *किसी दूसरी संस्कृति के संपर्क में आने पर बच्चे जो सीखते हैं उसे संस्कृति-संक्रमण कहते हैं।* *सही/गलत*
4. *समाजीकरण की प्रक्रिया में सामान्यतः पुरस्कार एवं दंड का उपयोग किया जाता है।* *सही/गलत*
5. *जनसंचार का प्रभाव समाजीकरण में शामिल नहीं है।* *सही/गलत*

उत्तर : 1. गलत, 2. सही, 3. सही, 4. सही, 5. गलत।

सामाजिक व्यवहार का सांस्कृतिक संगठन

मनुष्यों को 'सामाजिक प्राणी' मात्र इस तथ्य के कारण ही नहीं कहा जाता कि वे समाज में जन्म लेते हैं और पलते हैं बल्कि इसलिए भी कहा जाता है कि सामाजिक समूह

सक्रिय रूप से उनके सामाजिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं का स्वरूप गढ़ते हैं। हम सदैव अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के साथ सतत अंतःक्रिया करते रहते हैं। इन अंतःक्रियाओं के परिणाम शिल्प, रीति रिवाज, संस्कारों और विभिन्न विशिष्ट अवसरों पर दैनिक जीवन में व्यवहृत तौर तरीकों के रूप में उपस्थित रहते हैं। संस्कृतियाँ इस आधार पर भिन्न होती हैं कि भिन्न-भिन्न सामाजिक स्थितियों में उपयुक्त व्यवहार क्या है? जैसे एक दुकानदार से कैसे सलटा जाए, तथा माता-पिता, शिक्षक एवं संबंधियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए। इस तरह के निर्णय सांस्कृतिक ढंग से निर्धारित होते हैं (जैसे–संगति, शांति, स्वतंत्रता और न्याय)। यह भी विभिन्न संस्कृतियों में महत्त्व एवं प्रमुखता में अलग-अलग होते हैं। आत्मनिष्ठ संस्कृति के ये पहलू वैयक्तिक व्यवहार के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में मानव व्यवहार की भिन्नता आमतौर पर अनुभव की जाती है। लोग एक-दूसरे से भिन्न भी होते हैं और समानताएं भी दिखाते हैं। यह कहा जाता है कि जिस तरह स्मृति एक व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित है उसी तरह संस्कृति भी समाज से जुड़ी हुई है। संस्कृति एवं व्यवहार के आपसी रिश्तों के अनेक अध्ययन किए गए हैं। तथा बहुत से भूमिका मॉडलों को प्रस्तुत करते हैं। इनमें पाए गए कुछ प्रमुख परिणामों का विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

सामाजिक प्राणी के रूप में सामाजिक जगत में हम अपनी एक निश्चित स्थिति रखते हैं जैसे – माता, पिता, बहन आदि)। विभिन्न स्थिति वाले लोगों से हम विशेष तरह के व्यवहारों की आशा करते हैं। भूमिका (Role) एक ऐसा व्यवहार है जो निर्धारित या अपेक्षित है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का एक विशेष स्थान होता है। मानक व्यापक रूप से सर्व साधारण द्वारा अपनाए गए प्रतिमान होते हैं, जो समूह के सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। एक सामाजिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए परंपरागत व्यवहार आवश्यक समझे जाते हैं। सामाजिक नियंत्रण के विभिन्न तरीके विकसित हुए हैं। इनमें नियमों एवं लोक रीतियों का नियमन सम्मिलित है। विभिन्न सामाजिक संरचना या संगठन, सामाजिक स्तरीकरण के प्रकार (जैसे – जाति, वर्ग) पारिवारिक संरचना, और विवाह के प्रकार की दृष्टि से भी भिन्न होते हैं। रक्त संबंधों की शब्दावली में भिन्नताएं एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में पर्याप्त भिन्नताएं प्रदर्शित करती हैं। उदाहरण के लिए, अधिकारों एवं कर्तव्यों की दृष्टि से मातृ प्रधान एवं पितृ प्रधान समाजों में बहुत अंतर होता है। समाज का आर्थिक विभाजन भी महत्त्वपूर्ण भिन्नताएं प्रदर्शित करता है। वे इसे भी प्रभावित करते हैं कि हम कौन हैं? और लोगों के साथ हम किस तरह से संबंधित हैं?

क्रियाकलाप 4.6

पुरुषों और स्त्रियों के व्यवहारों में अंतर

निम्नांकित दशाओं में भारतीय पुरुष और स्त्रियाँ किस तरह व्यवहार करेंगे इस पर विचार कीजिए तथा उसे लिखिए।

– एक आक्रोश की स्थिति
– एक द्वंद्व की स्थिति
– अनजाने व्यक्ति को सहायता देने का व्यवहार
– दूसरों पर रोब जमाना
– समूह की बातों में हाँ में हाँ मिलाना
– आज्ञाकारिता

अपने निरीक्षणों के बारे में अध्यापक के साथ विचार-विमर्श कीजिए।

सामाजिक जीवन अंतर्वैयक्तिक, सामूहिक एवं समाज के स्तरों पर लोगों के साथ जुड़ने के तरीकों से बनता है। एक व्यक्ति के रूप में मनुष्य को परिवार, पड़ोस एवं संगठन जैसे विभिन्न परिवेशों में अन्य व्यक्तियों के साथ परस्पर अंतःक्रिया करनी पड़ती है। व्यक्तिगत एवं समूहगत लक्ष्यों को पाने के लिए सामाजिक जीवन में सहभागिता जरूरी है। वस्तुतः हमारी बहुत-सी क्रियाएं संयुक्त क्रियाएं हैं और इनमें निकट की अंतःक्रिया एवं सहयोग, एक दूसरे की देखभाल और दूसरों के साथ समझदारी बढ़ाने की आवश्यकता होती है। जिंदगी भर हमारे व्यक्तिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने में दूसरे व्यक्तियों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। फिर भी जिस तरह से लोग दूसरों से संबंध बनाते हैं और उन्हें विविध कार्यक्रमों में संलग्न करते हैं, वह विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग होता है। ऐसे अध्ययन हैं जो यह बताते हैं कि अपने-पराए की सीमा रेखाएं अभिन्न ढंग से खिंचती हैं तथा अंतःक्रियाओं की गुणवत्ता एवं आचरण, परिवार में और अन्य औपचारिक परिवेशों जैसे कार्यालय, संघ आदि में भी विभिन्न संस्कृतियों में भिन्नता होती है। निर्णय लेने एवं निर्णय को क्रियान्वित करने में समूहों को दिए जाने वाले महत्त्व में भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में भेद होता है। समूह मानकों एवं प्रतिमानों का महत्त्व भी एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न-भिन्न होता है। साझे की प्रथाओं एवं साझे के अर्थ के द्वारा संस्कृतियाँ समूह के सदस्यों को समूह

द्वारा की गई अपेक्षाएं स्पष्ट करती हैं। समूह के सदस्य इन अपेक्षाओं का नियमों की तरह अनुकरण करते हैं।

क्रियाकलाप 4.7

समूह के प्रति अपनी मनोवृत्ति की जांच कीजिए

कृपया एक मापनी का उपयोग करें जिसमें 1 = असहमत (गलत) से 9 = सहमत (सत्य) है। इस परिप्रेक्ष्य में अधोलिखित कथनों पर उनके कालम में दिए गए स्थान पर अपनी सहमति/ असहमति उचित अंक लिख कर व्यक्त करें।

1. *यदि कोई संबंधी मुझसे कहता है कि वह आर्थिक कठिनाई में है, तो मैं अपने साधनों की सीमा में उसकी सहायता करूँगा।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
2. *किसी कठिन व्यक्तिगत समस्या का सामना होने पर, दूसरों की सलाह मानने के बदले स्वयं अपने से 'क्या करना है' यह फैसला करना श्रेष्ठतर होता है।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
3. *मैं अपने अच्छे मित्रों के निकट रहना पसंद करता हूं।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
4. *दूसरे देशों की दृष्टि में मेरा देश कैसा देखा जाता है इसकी मुझे परवाह नहीं रहती।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
5. *जिंदगी के सुखों में से एक दूसरों के साथ परस्पर आश्रित होने का संबंध है।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
6. *मेरे साथ क्या बीतता है यह मेरे अपने कार्य पर निर्भर करता है।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
7. *मैं किसी नौकरी में अपने सहकर्मियों का मित्रतापूर्ण समूह खोजता हूँ।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
8. *अपने मित्रों से विचार विमर्श करने के बदले अपनी किसी व्यक्तिगत समस्या से मैं स्वयं संघर्ष करता रहूँगा।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
9. *वृद्ध माता-पिता को अपने बच्चों के साथ घर पर रहना चाहिए।*
   गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
10. *मेरे जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात अपने को प्रसन्न बनाना है।*
    गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
11. *किसी कठिन व्यक्तिगत समस्या का सामना होने पर व्यक्ति को अपने मित्रों एवं संबंधियों से व्यापक विचार विमर्श करना चाहिए।*
    गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
12. *जितना अधिक संभव हो व्यक्ति को अपनी जिंदगी दूसरों से स्वतंत्र ढंग से जीना चाहिए।*
    गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
13. *जीवन का एक आनंद लोगों के एक बड़े समूह का अंग होने की अनुभूति है।*
    गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही
14. *मैं अपना कार्य स्वयं करता हूँ और मेरे परिवार के अधिकांश लोग यही करते हैं।*
    गलत 1 2 3 4 5 6 7 8 9 सही

ऊपर दिए गए वक्तव्यों में 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 संख्या वाले वक्तव्य 'समूह' से अधिक संबंधित हैं और 2, 4, 6, 8, 10, 12, 14 वाले वक्तव्य वैयक्तिक प्रयासों पर प्रकाश डालते हैं। आप समूह की कितनी चिंता करते हैं यह जानने के लिए विषम क्रम संख्या वाले प्रश्नों के अपने उत्तर को जोड़ लीजिए और औसत निकाल लीजिए। अपनी वैयक्तिक उन्मुखता जानने के लिए सम संख्या वाले प्रश्नों के उत्तरों का योग कर औसत निकाल लीजिए। दोनों प्राप्तांकों की तुलना कीजिए।

संस्कृति, परंपराओं के माध्यम से लोगों को इस बारे में अवगत कराती है कि पहले क्या प्रभावपूर्ण कार्य चल रहा था। इसी तरह एक विशेष संस्कृति के रीति रिवाज सामाजिक जीवन की संरचना करने वाली क्रियाओं को पूर्वकथनीय बनाते हैं। मूल्य वातावरण के उन पहलुओं की पहचान करने में सहायक होते हैं, जिन पर हमें अनिवार्य रूप से ध्यान देना चाहिए। वे ऐसे प्रतिमानों का वर्णन करते हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति लोगों के व्यवहार का मूल्यांकन कर पाते हैं। संस्कृति और व्यवहार के बीच संबंधों को और स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ अध्ययनों के परिणाम वर्णित हैं। यह पाया गया है कि पाश्चात्य संस्कृतियाँ अन्य व्यक्तियों से अलग एक अनूठे व्यक्ति के रूप में 'स्व' के एक स्वतंत्र दृष्टिकोण (Independent view) का पोषण करती हैं। इसके विपरीत, एशिया में स्थित अधिकांश संस्कृतियाँ 'स्व' के परस्पर आश्रित दृष्टिकोण (Interdependent view) को प्रोत्साहित करती हैं। यह 'स्व' एक परस्पर जुड़ी सामाजिक संरचना का एक अंग होता है। परस्पर आश्रित होने का दृष्टिकोण लोगों को उनके सामाजिक संबंधों एवं भूमिकाओं

क्रियाकलाप 4.8

संस्कृति तथा मूल्य

नीचे मूल्यों की एक सूची दी जा रही है। आप उन मूल्यों को बताइए जो आप पर लागू होते हैं। आप अपने मित्रों से भी उनके मूल्य बताने के लिए कह सकते हैं। प्राप्त प्रतिक्रियाओं में समानताओं और भिन्नताओं का पता कीजिए। क्या पाए गए अंतर सांस्कृतिक भिन्नताओं के कारण हैं? अपने अध्यापक के साथ विचार कीजिए।

- *आत्म निर्दिष्ट रहना : (उदाहरण : सर्जनात्मकता, स्वाधीनता, अपने लक्ष्यों को चुनना, उत्सुक रहना, निरपेक्ष रहना।)*
- *उत्तेजना : (उदाहरण : एक विविधतापूर्ण जीवन, एक उत्तेजना से भरपूर जीवन, साहसी।)*
- *सुखवादिता : (उदाहरण : प्रसन्न, जीवन का आनंद)*
- *उपलब्धि : (उदाहरण : महत्त्वाकांक्षाएं, सफल, सक्षम, प्रभावशाली)।*
- *सामर्थ्य (उदाहरण : प्रभुत्व, धन, सामाजिक सामार्थ्य, अपनी सामाजिक छवि को सुरक्षित रखना)*
- *सुरक्षा (उदाहरण : सामाजिक आदेश, पारिवारिक सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा, दूसरे से मिले लाभ का प्रतिदान, स्वच्छ, समूह में शामिल होने का भाव, स्वस्थ्य)*
- *परंपरा (उदाहरण : परंपरा के लिए आदर, विनम्र, समर्पित, जीवन में अपने स्थान को स्वीकार करने वाला)*
- *परोपकार (उदाहरण : सहायक, आज्ञाकारी, क्षमाशील, ईमानदार, उत्तरदाई, सच्चा मित्र, परिपक्व प्यार)*
- *विश्वजनीनता (उदाहरण : उदारदृष्टि, सामाजिक न्याय, समानता, शांति से भरी दुनिया, सौंदर्य से भरी दुनिया, प्रकृति के साथ एकता, ज्ञान, पर्यावरण की सुरक्षा)*

के रूप में परिभाषित करने के लिए प्रेरित करता है। 'स्व' के उक्त दोनों ही दृष्टिकोण संज्ञान, अभिप्रेरणा, एवं संवेग को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करते हैं।

सांवेगिक अभिव्यक्ति : सांवेगिक अनुभवों में विभिन्न संस्कृतियों के बीच प्राप्त समानताएं प्रभावित करने वाली हैं, किंतु शोधकर्ताओं ने, लोग कैसे सोचते हैं और कैसे अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करते हैं, इनके बारे में बहुत-सी सांस्कृतिक विसंगतियां पाई हैं। इन विसंगतियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संवेग प्रदर्शन के नियमों में भिन्नताएं हैं (विस्तृत विवरण के लिए अध्याय 11 देखिए)। उदाहरण के लिए जापानी संस्कृति सार्वजनिक रूप से नकारात्मक संवेगों का दमन करने पर बल देती है। अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा जापानी लोग क्रोध, उदासी एवं निराशा जैसे संवेगों को छिपाने में समाजीकृत होते हैं। ऐसी स्थिति में वे निर्लिप्त मुखाकृति या विनम्र मुस्कान का प्रदर्शन करते हैं।

अनुरूपता : किसी संस्कृति में वैयक्तिकता एवं सामूहिकता की उपस्थिति समुदाय के प्रति अनुरूपता या समाज / समुदाय की इच्छा के अनुसार व्यवहार की मात्रा के साथ जुड़ी पाई जाती है। ये सामूहिकतावादी संस्कृतियाँ समूह, मानकों, सहयोग, और संगति के सम्मान पर वैयक्तिकतावादी संस्कृति के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक महत्त्व पर बल देती हैं।

संबंध : संस्कृतियों में प्रेम के महत्त्व और विशेषतः विवाह से जुड़े आवेगपूर्ण प्रेम के संबंध में भिन्नता देखी जाती है। प्रेम के लिए विवाह वैयक्तिकता के प्रदर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। इसके विपरीत, परिवार एवं अन्य व्यक्तियों द्वारा आयोजित विवाह भारत, जापान, और चीन जैसे सामूहिकतावादी संस्कृतियों में अधिक प्रचलित है। इस व्यवस्था में यद्यपि बदलाव आ रहा है किंतु सामूहिकतावादी समाजों में लोग अभी भी विवाह का निर्णय लेते समय परिवार की विचारधारा के बारे में सोचते हैं।

प्रमुख तकनीकी शब्द

संस्कृति, समाजीकरण, सामाजिक व्यवहार, स्व या आत्म, आत्मगौरव, पुरस्कार, दंड, मॉडलिंग, तादात्मीकरण, अंतरीकरण।

सारांश

- *जैविक कारकों के अतिरिक्त संस्कृति भी व्यवहार का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। यह पर्यावरण के मानव-निर्मित अंश को द्योतित करती है तथा इसके दो पक्ष हैं – वस्तुनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ। इससे व्यक्तियों के एक समूह का बोध होता है और उन सबके द्वारा साझे में अपनाई गई जीवन शैली व्यक्त होती है, जिससे लोग अपने व्यवहारों का अर्थ ग्रहण करते हैं और अपने रीति-रिवाज आदि का आधार पाते हैं। साझे के ये अर्थ और क्रियाकलाप पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रमित होते हैं।*
- *सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ हममें विभिन्न क्षमताओं के विकास और कौशलों के उपयोग का अवसर प्रदान करता है और उस पर कुछ बंधन भी लगाता है। उदाहरणार्थ, शहरी तथा ग्रामीण बच्चों को विकास के लिए भिन्न-भिन्न अवसर मिलते हैं। हालाँकि जैविक कारक सामान्यतः क्षमता बढ़ाने की भूमिका निभाते हैं। विशिष्ट कौशलों और क्षमताओं का विकास सांस्कृतिक कारकों और प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है।*
- *बच्चे अपनी समाजीकरण तथा अवसंस्कृतीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा अपनी-अपनी संस्कृति को ग्रहण करते हैं। अवसंस्कृतीकरण का तात्पर्य है कि बच्चे बिना किसी बाहरी प्रभाव के स्वयं सीखते हैं। दूसरी ओर, बच्चों को कई भूमिकाओं, संबंधों, मानकों आदि सीखने के लिए माता-पिता, विद्यालय, मित्रमंडली, जनसंचार माध्यम तथा धर्म आदि द्वारा व्यवस्थित ढंग से प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया को समाजीकरण कहा जाता है। संस्कृति संक्रमण का तात्पर्य उन तत्वों को सीखने से है जब लोग दूसरी संस्कृति के संपर्क में आते हैं। इस तरह का अनुभव तनावों से भरा होता है।*
- *लोगों के सामाजिक व्यवहार में सांस्कृतिक भिन्नता पाई जाती है : जैसे प्रथाएं, विभिन्न कृत्य तथा दैनिक जीवन में दिखने वाले रीति-रिवाज। ये भेद अपने स्वभाव में अनुकूलनपरक होते हैं। संस्कृतियाँ मनुष्य के व्यवहार को प्रथाओं, कानूनों तथा लोक प्रथाओं द्वारा नियंत्रित करती हैं। कुछ संस्कृतियों में समूह के लक्ष्यों को पाने पर अधिक बल दिया जाता है, जबकि अन्य में (जैसे – पाश्चात्य संस्कृतियों में) व्यक्तिगत उपलब्धि पर बल दिया जाता है। आज की दुनिया में बहुसांस्कृतिकता महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। अतः विभिन्न संस्कृतियों के बीच विद्यमान समानताओं और भिन्नताओं को जानाना समझना एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बन गया है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. संस्कृति की कौन-सी प्रमुख विशेषताएं हैं?
2. क्या आप सोचते हैं कि वैज्ञानिक लोग जिस संस्कृति का अध्ययन करते हैं उसे बदल सकते हैं, कैसे?
3. संस्कृति मानव व्यवहार को किन तरीकों से प्रभावित करती है?
4. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि "जैविक कारक समान रूप से क्षमता-संपन्न बनाने की भूमिका निभाते हैं, जबकि व्यवहार के विशिष्ट पक्ष सांस्कृतिक कारकों द्वारा निर्धारित होते हैं," क्यों?
5. समाजीकरण के प्रमुख स्रोत कौन-से हैं?
6. क्षैतिज तथा लंबवत् सांस्कृतिक संप्रेषण का क्या तात्पर्य है?
7. जनसंचार माध्यम किस तरह समाजीकरण को प्रभावित करता है?
8. समाजीकरण की क्या युक्तियां या तरीके हैं?

5 मानव विकास : जीवन-विस्तार का परिदृश्य

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- विकास का अर्थ
- विकास के नियम
- विकास को प्रभावित करने वाले कारक
- विकास की अवस्थाएँ
- पूर्व-प्रसवकाल, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

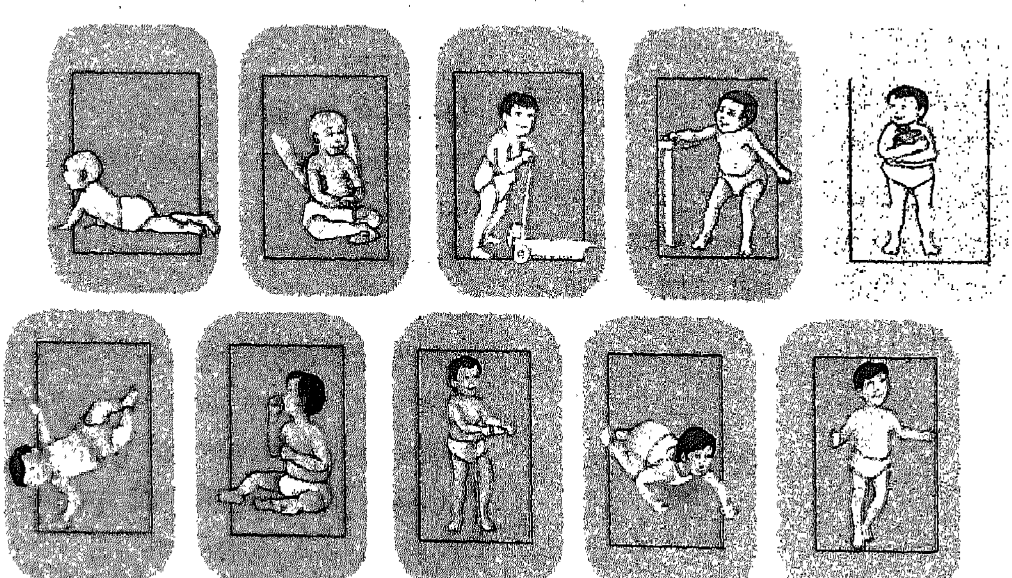
इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- विकास की प्रक्रिया का अर्थ, सिद्धांत एवं इससे जुड़े मुद्दे जान सकेंगे,
- आनुवंशिकता एवं परिवेश की विकास में भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे,
- विकास की अवस्थाओं की पहचान और उनकी विशेषताओं की जानकारी कर सकेंगे, तथा
- किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान कर सकेंगे एवं प्रौढ़ावस्था में घटित होने वाली विशेष घटनाओं से अवगत हो सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

आपने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया होगा कि व्यक्ति के जीवन काल में जन्म से मृत्यु तक हमेशा कुछ न कुछ घटित होता रहता है और व्यक्ति में परिवर्तन आते रहते हैं। शैशवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक विविध प्रकार के परिवर्तन जीवनपर्यंत होते रहते हैं। कुछ माह या कुछ वर्षों के अंतराल में मानव शिशु में वृद्धि एवं विकास स्पष्ट दिखाई देता है। वह संप्रेषण करना सीखता है, चलना, गिरना, पढ़ना और लिखना सीखता है और उचित-अनुचित में भेद करना सीखता है। वह मित्र बनाता है, किशोरावस्था की समस्याओं से जूझता है। विवाह संबंध बनाता है और उसका निर्वाह करता है। बच्चों का पालन-पोषण करता है, बूढ़ा हो जाता है एवं मृत्यु को प्राप्त करता है। मानवजीवन में परिवर्तन का यह क्रम पूर्व-प्रसवकाल से प्रारंभ होकर जीवनपर्यंत चलता रहता है। मानवजीवन में होने वाले परिवर्तनों के ये क्रम मानव विकास के परिवर्तनशील स्वभाव की अनुभूति कराते हैं। इस अध्याय का उद्देश्य यह है कि आपको पूर्व प्रसवकाल से प्रारंभ होकर जीवनपर्यंत चलते रहने वाली प्रक्रिया में आने वाले विशेष पड़ावों – शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था, की विशेषताओं से आपको परिचित कराया जा सके, जिससे आप इन अवस्थाओं की विशेषताओं को भलीभांति समझ सकें। इस अध्याय को पढ़ने से आप समझ सकेंगे कि आप अपने वर्तमान में जैसे हैं, उस पर आपकी पूर्व-बाल्यावस्था का क्या प्रभाव है। आप यह भी सीख सकेंगे कि प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तनों की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं। आपको यह जानकर सुखद अनुभव होगा कि आपके आज के अनुभवों का आपके भविष्य में होने वाले व्यक्तित्व के विकास पर क्या प्रभाव होगा, यह अध्याय पढ़कर आप अपनी जीवन यात्रा में होने वाले स्वानुभव एवं आत्म-अन्वेषण पर विचार कर सकेंगे।



विकास क्या है?

'विकास' शब्द से हम क्या अर्थ समझते हैं? विकास परिवर्तन एवं गति का ऐसा प्रतिरूप है, जो गर्भाधान से प्रारंभ होकर जीवनपर्यंत गतिशील रहता है। इसमें स्मरण रहे कि जीवन में परिवर्तन किसी विशेष क्षेत्र में एवं अकेले नहीं होते। ये सभी क्षेत्रों में होते हैं; जैसे – सामाजिक, शारीरिक, गत्यात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक। ये सभी परिवर्तन संपूर्ण व्यक्ति में समेकित रूप में होते हैं। दूसरे शब्दों में, ये एक-दूसरे से परस्पर जुड़े हुए होते हैं।

जीवन-विस्तार के परिप्रेक्ष्य में विकास

जीवन-विस्तार के परिप्रेक्ष्य में विकास के अध्ययन का दृष्टिकोण निम्नलिखित विचारों पर आधारित है।

1. गर्भाधान से लेकर वृद्धावस्था तक सभी अवस्थाओं में विकास होता है। विकास में वृद्धि होती है और क्षति भी। वृद्धि एवं क्षति संपूर्ण जीवन-विस्तार को विविध प्रकार से प्रभावित करते हैं।
2. मानव विकास के अनेक पक्ष जैसे – जैविक, बौद्धिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक, मानव जीवन के संपूर्ण जीवन-विस्तार में एक-दूसरे के साथ घनिष्ट रूप से जुड़े हुए हैं।
3. जीवन के विविध आयामों में से किसी आयाम की संपूर्ण विकास क्रम में वृद्धि होती है और उसी आयाम में उसका ह्रास भी हो सकता है।
4. विकास के पथ अनेक हैं, जो व्यक्ति के जीवन की दशाओं पर आधारित हैं। उदाहरण हेतु प्रौढ़ जनों की तर्क शक्ति में प्रशिक्षण द्वारा सुधार लाया जा सकता है।
5. विकास समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से भी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के समय जो लोग 30 वर्ष की आयु के थे, उनके अनुभव आज के 30 वर्ष की आयु के लोगों के अनुभवों से बहुत भिन्न होंगे। व्यवसाय जगत के विषय में जो जागरूकता आज के विद्यार्थी में है वह 50 वर्ष पहले के विद्यार्थी से बहुत भिन्न है।
6. कोई व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है? यह अनेक कारकों पर निर्भर है; जैसे – उसे वंशानुक्रम में क्या मिला? उसका भौतिक परिवेश कैसा है? उसका सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक परंपराओं का आधार क्या है? परिप्रेक्ष्य बदलने के साथ व्यक्ति का व्यवहार भी बदलता है।

क्रियाकलाप 5.1

विकास की प्रक्रिया को समझना

- *उन व्यक्तियों एवं घटनाओं इत्यादि की सूची बनाइए, जिन्होंने आपके आज तक के जीवन को प्रभावित किया है।*
- *अपना जीवन परिचय लगभग एक पृष्ठ में लिखिए और उसे अपने कुछ मित्रों के वृतांतों के साथ मिलाकर तुलना कीजिए। यह देखिए कि आप दूसरों की तुलना में कितने समान और कितने भिन्न हैं?*

बाक्स 5.1 **वृद्धि, परिपक्वता, विकास एवं उदविकास**

वृद्धि शारीरिक अवयवों के आकार में बढ़ोत्तरी को कहते हैं। इसे मापा जा सकता है एवं इसे मात्रा में व्यक्त किया जा सकता है; जैसे – ऊँचाई में वृद्धि, भार में वृद्धि आदि।

***विकास** (Development) से तात्पर्य है गुणात्मक परिवर्तन, जो गर्भाधान से प्रारंभ होकर जीवन भर चलता रहता है। सरल शब्दों में कहें तो विकास एक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत व्यक्ति में वृद्धि होती है और जीवनपर्यंत उसमें अनेक परिवर्तन आते रहते हैं। 'विकास' शब्द का उपयोग उन सभी परिवर्तनों के लिए होता है, जो एक दिशा में होते हैं और जो पहले घटित हो चुका है। निश्चित तरीके से जुड़े होते हैं। अस्थाई रूप में होने वाले परिवर्तन; जैसे – एक छोटे समय के लिए [illegible] परिवर्तन, [illegible] फलस्वरूप होने वाले सभी परिवर्तन एक जैसे नहीं होते। आकार में परिवर्तन (शारीरिक वृद्धि), अनुपात में वृद्धि (शिशु से वयस्क), आकृति में परिवर्तन (दूध के या अस्थाई दाँतों का निकल जाना) और नई आकृति पाना। ये परिवर्तन अपने वेग और व्यापकता में काफी भिन्न होते हैं। वृद्धि विकास की प्रक्रिया के एक हिस्से के रूप में है।*

***परिपक्वता** (Maturity) की प्रक्रिया उन सभी परिवर्तनों की ओर इंगित करती है जो एक निर्धारित क्रम का अनुसरण करते हैं और जो आनुवंशिक ढाँचे या नक्शे के आधार पर*

सुनिश्चित होते हैं। परिवेश की व्यापक विविधता के बावजूद, व्यक्ति का जैविक आधार वृद्धि एवं विकास की प्रक्रिया में समानता होने का एक बड़ा कारण है। उदाहरण के लिए, सात माह की आयु के अधिकांश बच्चे बिना सहारे के बैठने लगते हैं, आठ महीने में सहारे के साथ खड़े हो जाते हैं। एक वर्ष की आयु होते-होते स्वयं खड़ा होने लगते हैं। एक बार जब बच्चे की मूल शारीरिक संरचना संतोषजनक स्थिति तक विकसित हो जाती है तब इन व्यवहारों में कुशलता प्राप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण एवं थोड़े अभ्यास की आवश्यकता होती है। यदि शिशु में परिपक्वता नहीं आई तो इन व्यवहारों के विकास हेतु तरह-तरह के विशेष प्रशिक्षण तथा प्रयास का कोई लाभ नहीं मिलता। परिपक्वता की प्रक्रिया अंदर से प्रस्फुटित होती है। आनुवंशिक रूप से निर्धारित क्रम में परिवर्तन भी होते हैं, जो प्रजाति विशेष के सभी सदस्यों में एक से होते हैं।

उद्विकास *(Evolution) : प्रजाति (species) में होने वाला परिवर्तन है। यह एक जैव विकासीय प्रक्रिया है, जो उस प्रजाति विशेष को लाभ पहुंचाती है, ताकि वह अपनी जीवन रक्षा कर सके एवं पुनरुत्पत्ति (Reproduction) कर सके। जैव विकास से उत्पन्न परिवर्तन एक पीढ़ी से उसी प्रजाति की दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते हैं। जैव विकास अत्यंत धीमी गति से आगे बढ़ता है। आदि वानर प्रजाति की वर्तमान मनुष्य के रूप में आविर्भाव की यात्रा में 14 मिलियन वर्ष लगे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि आज के मनुष्य* ***'होमो सैपियन'*** *"Homo Sapien", का यह स्वरूप 50,000 वर्ष पहले अस्तित्व में आया था। तब से लेकर आज तक किसी भी प्रकार का क्रांतिकारी परिवर्तन मनुष्य की विकास यात्रा में नहीं दिखाई देता। उद्विकास के अर्थ में अनुकूलन वह व्यवहार है जो जीव को अपनी प्राकृतिक वासस्थली में जीवन रक्षा में सहायक होता है। अनुकूलन व्यवहार द्वारा प्राणी अपने व्यवहार को संबर्धित करता है, ताकि जीवन रक्षा की संभावना बनी रहे।*

विकास कैसे घटित होता है?

हमने देखा कि विकास जीवनपर्यंत चलने वाली प्रक्रिया है, जो जैविक, संज्ञानात्मक एवं सामाजिक-संवेगात्मक प्रक्रियाओं के परस्पर संबंध से आकार ग्रहण करती है। वह क्या है, जो व्यक्तित्व एवं व्यवहार को निर्धारित करता है? विकास से संबंधित विचार अधिकांशतः तीन मुद्दों के इर्द-गिर्द केंद्रित हैं। ये मुद्दे हैं : **आनुवंशिकता एवं परिवेश, निरंतरता एवं अनिरंतरता तथा स्थायित्व एवं परिवर्तन।** आइए, हम इन तीनों मुद्दों को थोड़ा विस्तार से समझें।

आनुवंशिकता एवं परिवेश : इस विषय की चर्चा इस बात से जुड़ी है कि विकास की प्रक्रिया आनुवंशिक कारकों से प्रभावित होती है या परिवेश से? आनुवंशिकता व्यक्ति के जैविक कारकों की ओर इंगित करती है (जैसे – जन्मजात क्षमताएँ एवं सीमाएँ) एवं परिवेश विकसित हो रहे व्यक्ति पर वातावरण द्वारा पड़ने वाले प्रभावों की ओर संकेत करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार जैविक आनुवंशिकता का विकास पर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। जबकि अन्य का मत यह है कि परिवेश का विकास पर सर्वाधिक प्रभाव होता है। आज के मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार आनुवंशिकता एवं परिवेश के बीच अंतःक्रिया होती है। ये दोनों ही कारक जीवन के आरंभ से ही विद्यमान रहते हैं और विकास को जीवनपर्यंत प्रभावित करते रहते हैं।

निरंतरता तथा अनिरंतरता : उन मनोवैज्ञानिकों का जो अनुभव को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, कहना है कि विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिससे जीवन भर धीरे-धीरे और संचयी परिवर्तन आते रहते हैं। उदाहरण के लिए, बालक जब पहला शब्द बोलता है तब लगता है कि यह अचानक बोला गया शब्द है, जिसका पूर्वानुभवों से कोई संबंध नहीं है। परंतु तथ्य यह नहीं है। बोला गया पहला शब्द वास्तव में बालक द्वारा किए गए महीनों के प्रयास तथा वृद्धि का परिणाम होता है। जो लोग परिपक्वता को महत्त्व देते हैं, वे विकास को व्यक्ति के जीवन-विस्तार में विद्यमान अलग-अलग अवस्थाओं की श्रृंखला के रूप में देखते हैं। इस विचारधारा के अनुसार हर व्यक्ति पूर्व निर्धारित अवस्थाओं के क्रम को पार करता है जिसमें परिवर्तन मात्रात्मक न होकर गुणात्मक होते हैं। अतः एक चौदह वर्षीय बालक या बालिका पाँच वर्ष की आयु के बच्चे से अधिक शब्द स्मरण रख पाती है, वह शब्दों को समूह में रख पाती है, उन्हें वर्गीकृत कर सकती है तथा स्मरण करने की अन्य तकनीकों का उपयोग कर पाती है। यह विकास में गुणात्मक परिवर्तन के महत्त्व को दिखाता है। ऐसा लगता है कि मनुष्य के जीवन-विस्तार के अन्तर्गत विकास में कुछ खास तरह की अनिरंतरताएँ हैं तो कुछ प्रकट निरंतरताएँ हैं।

स्थायित्व एवं परिवर्तन : स्थायित्व, जीवन का एक ढंग है, जिसमें अधिकांश सामाजिक और परिवेशप्रदत्त परिवर्त्य कमोबेश समान या स्थिर (Stable) रहते हैं, जबकि परिवर्तन की विशेषता संक्रमण (Transition) है। उदाहरणार्थ, यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या एक शर्मीला बच्चा कालेज में भी शर्मीला बना रहेगा या वह एक होशियार, मिलनसार एवं वाक्पटु व्यक्ति बन जाएगा? एक बच्चा जो बचपन में प्यार एवं अपनेपन से वंचित था; वह बड़ा होने पर संवेगात्मक दृष्टि से असुरक्षित रहेगा या यदि उसे विशेष रूप से अधिक प्यार तथा अपनापन मिले तो क्या वह संवेगात्मक दृष्टि से एक सामान्य व्यक्ति बन सकेगा? किस सीमा तक बचपन (विशेषकर शैशवावस्था) के अनुभव या बाद के अनुभव व्यक्ति के विकास को निर्धारित करते हैं? ऐसे प्रश्न स्थायित्व एवं परिवर्तन के मुद्दे का प्रमुख सरोकार होते हैं।

विकास के नियम

यद्यपि सभी लोगों में अपने निजी रूप में तथा अपने परिप्रेक्ष्य में वृद्धि और विकास होता है, परंतु विकास के कुछ मूल नियम हैं जो विकास की मौलिक प्रक्रिया को रेखांकित करते हैं। इन सिद्धांतों का उपयोग सभी मनुष्यों में देखा जा सकता है। इन्हें अधिकांशतः विकास के नियम के नाम से जाना जाता है। आइए, इन नियमों पर कुछ विस्तार से विचार करें :

विकास एक व्यवस्थित पूर्वकथनीय पद्धति के अनुसार होता है : मानव जाति का विकास एक पूर्वकथनीय एवं व्यवस्थित ढंग से होता है। सभी जीव एक पूर्व-निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विकसित होते हैं। उदाहरणार्थ, सभी शिशु पहले करवट बदलना सीखते हैं, उसके बाद बैठना, रेंगना, खड़े होना और फिर चलना सीखते हैं। इस प्रक्रिया में बीच में कोई विशेष अवस्था छूट भी सकती है, परंतु उनका क्रम एक जैसा ही बना रहता है। प्रारंभिक विकास उत्तरार्द्ध के विकास को प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए, एक बच्चा पहले खड़ा होना सीखता है फिर चलना। उसके दूध के दाँत स्थाई दाँतों से पहले निकलते हैं। इसी प्रकार शारीरिक, सामाजिक एवं बोलने से संबंधित विकास भी अपनी पूर्वनिर्धारित व्यवस्था के अनुसार ही होता है। यह पाया गया है कि विकास मस्तिष्क से पुच्छीय दिशा की ओर (Cephalocaudally) अग्रसर होता है। इसका नियम है कि वृद्धि सदा शरीर के मध्य से परिधि या बाहर की ओर अग्रसर होती है। संपूर्ण विकास इसी क्रम में चलता है।

विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है : बालक की हर प्रकार की क्रिया चाहे वह गत्यात्मक हो या मानसिक, पहले सामान्य होती है और फिर विशिष्ट की ओर अग्रसर होती है। यथा– शैशवावस्था में बालक को यदि किसी वस्तु को पकड़ना है तो उसका पूरा शरीर चलायमान हो जाता है। बाद में जाकर बच्चे में यह योग्यता विकसित होती है कि उस वस्तु को पकड़ने के लिए जितने भाग की आवश्यकता है उतना ही भाग सक्रिय करता है। यदि एक खिलौना शिशु के निकट रखा जाए तो शिशु उस खिलौने को लेने के लिए अपने पूरे शरीर को सक्रिय करता है जबकि एक अधिक उम्र का बालक केवल अपने हाथों को फैलाकर उस खिलौने को ले लेता है। यहां तक कि भाषा के विकास की प्रक्रिया में भी बच्चा पहले तुतलाता है और फिर बाद में स्पष्ट बोल पाता है।

विकास सदा समन्वय की ओर अग्रसर होता है : एक बार जब बालक विशिष्ट एवं विभेदित प्रतिक्रियाएँ करना सीख जाता है तब वह उन प्रतिक्रियाओं को समन्वित करना सीखता है, जिससे संपूर्ण क्रिया अपनेआप में पूर्णता प्राप्त करती है। उदाहरणार्थ, बालक प्रारंभ में एकाकी ढंग से पृथक् शब्दों को बोलना पहले सीखता है बाद में वह इन शब्दों का संयोजन करने लगता है और अंततः इन संयोजित शब्दों से छोटे वाक्य बनाना और इन छोटे-छोटे वाक्यों को जोड़कर जटिल वाक्यों की रचना करना सीखता है।

विकास सदैव चलता रहता है : कोई भी विकास चाहे शारीरिक हो या मानसिक अचानक नहीं होता। हर क्षेत्र में विकास धीमी एवं निरंतर गति से होता है। विकास की प्रक्रिया गर्भाधान के समय से आरंभ हो जाती है और जीवनपर्यंत चलती रहती है। शारीरिक एवं मानसिक लक्षण (Traits) निरंतर उस समय तक विकसित होते रहते हैं, जब तक कि अपनी पूर्णता की सीमा को प्राप्त नहीं कर लेते। यह विकास की निरंतरता है, जिसमें एक विशेष अवस्था में होने वाली वृद्धि एवं विकास बाद में होने वाली वृद्धि एवं विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं।

विकास की प्रक्रिया में व्यक्तिगत भिन्नताएँ होती हैं : यद्यपि संपूर्ण विकास क्रमानुसार होता है, फिर भी यह किस दर से होगा यह विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरण हेतु एक तीन वर्ष का बालक अंग्रेजी के अक्षरों को पहचान लेता है, जबकि पाँच वर्ष का बालक उसे पहले वाले बालक के साथ एक ही विद्यालय में पढ़ता है परंतु

वह अंग्रेजी के अक्षर नहीं पहचान पाता। यद्यपि इसका अर्थ यह नहीं है कि पाँच वर्ष वाला छात्र पिछड़ा छात्र है। इससे केवल यह पता चलता है कि किसी कौशल या दक्षता को प्राप्त करने में एक बच्चा दूसरे बच्चे से भिन्न दर से विकसित हो रहा है। विकास की दर अनेक क्षेत्रों में देखी जा सकती है जैसे दाँत निकलने की दर, बच्चे ने किस उम्र में बैठना सीखा, खड़ा होना तथा चलना सीखा इत्यादि।

विकास की दर विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न होती है : शरीर के विभिन्न अवयवों की बात हो या मानसिक वृद्धि, उनकी दर समान नहीं होती। वृद्धि के विभिन्न रूप चाहे वे शारीरिक हों या मानसिक, सब में विकास-दर में व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है और इसमें परिपक्वता भी शरीर के अलग-अलग अंगों में अलग-अलग समय पर होती है। फलत: कुछ विशेष अंगों में शारीरिक वृद्धि की दर तीव्र होती है, जबकि दूसरे अंगों में धीमी। उदाहरण के लिए, शरीर के विभिन्न अवयवों के आकार (जैसे – हाथ, पैर, मस्तिष्क, पैरों के पंजे) में वृद्धि की दर भिन्न होती है। प्रौढ़ावस्था में प्राप्त शरीर का अनुपात शरीर के विभिन्न अवयवों की भिन्न-भिन्न विकास दर के कारण ही हमें प्राप्त हो पाता है।

विकास के विभिन्न क्षेत्र अंतःसंबंधित हैं : विकास के सभी क्षेत्र मूलतः अंतःसंबंधित हैं। उदाहरणार्थ, एक शर्मीला विद्यार्थी विद्यालय के क्रियाकलापों में सक्रिय नहीं हो पाता। इसी तरह एक शारीरिक दृष्टि से विकलांग बालक मित्र बनाने में कठिनाई का अनुभव करता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विकास का एक पक्ष विकास के दूसरे पक्ष को प्रभावित करता है। किशोरावस्था के उपरांत यद्यपि विकास का एक पक्ष विकास के दूसरे पक्ष से अधिक विकसित हो जाता है। जैसे एक वैज्ञानिक का संज्ञानात्मक विकास उसके अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक हो जाता है। इसके विपरीत एक खिलाड़ी का शारीरिक विकास दूसरे क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकसित हो जाता है।

विकास वैयक्तिकता से सामाजिकता की ओर अग्रसर होता है : मूलतः एक बालक अति आत्मकेंद्रित होता है और दूसरों के विषय में तथा दूसरों के दृष्टिकोण से नहीं सोचता। उदाहरण के लिए, दो वर्ष का एक बच्चा आधी रात में भी खाने की इच्छा होने पर मिठाई के लिए मचलता है, रोता है। वह यह नहीं समझ पाता कि आधी रात को उसकी यह इच्छा संभवतः पूरी नहीं की जा सकती। जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसकी यह वैयक्तिकता सामाजिकता में बदलने लगती है और वह दूसरों के दृष्टिकोण से दुनिया को देखने वालों के रूप में अपने को बदलने लगता है। एक दस वर्ष का बालक आधी रात में मिठाई या चाकलेट की इच्छा होने पर अपने माता-पिता को दो वर्ष के बच्चे की तरह तंग नहीं करता और ऐसी बेतुकी इच्छाएं करता ही नहीं।

विकास परावलंबन से स्वावलंबन की ओर अग्रसर होता है : परावलंबन से तात्पर्य है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भरता और स्वावलंबन का तात्पर्य है आत्म-निर्भरता। छोटे बच्चे अपनी देखभाल के लिए तथा अपनी भलाई के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं, जबकि बड़े बच्चे अपनी देखभाल स्वयं कर लेते हैं। इस तरह विकास परावलंबन से स्वावलंबन की ओर अग्रसर होने वाली प्रक्रिया है। इसी तरह उदाहरण के लिए, एक छोटा बच्चा भूख लगने पर भोजन के लिए माँ की प्रतीक्षा करता है। दूसरा बड़ा बच्चा अपनी भूख मिटाने का प्रबंध स्वयं कर लेता है।

विकास की क्रांतिक अवस्थाएँ : 'क्रांतिक अवस्थाओं' (Critical Periods) का विचार इस निरीक्षण पर आधारित है कि कुछ उत्तेजकों का प्रभाव विकास की कुछ अवस्थाओं में अत्यधिक पड़ता है। क्रांतिक अवस्था में विकास विशिष्ट प्रकार के उद्दीपकों के अनुभव पर निर्भर है। उदाहरण के लिए, कुछ पशु-पक्षी प्रजातियों में ऐसे विशिष्ट व्यवहार दिखते हैं, जो विकास की एक विशेष अवस्था में ही सीखे जा सकते हैं। बतख के बच्चे की इंप्रिंटिंग (Imprinting) इसका एक उदाहरण है। इसके अंतर्गत पक्षी जन्म लेते ही सामने पड़ने वाली किसी भी गतिशील वस्तु से अपने को जोड़ लेते हैं। मनुष्य के पास जन्म के बाद एक अवधि होती है, जो अलग-अलग बच्चों में अलग-अलग होती है, जिसमें बच्चा अनेक व्यवहार; जैसे – भावनात्मक लगाव, भाषा को लिखना और पढ़ना सीख लेता है। यह अवधि बच्चों के सीखने की अति संवेदनशील उम्र होती है। ऐसी अवस्थाओं को संवेदनशील अवस्था (Sensitive period) के नाम से जाना जाता है। संवेदनशील अवस्था का तात्पर्य यह है कि एक विशेष प्रभाव, जो बड़ी सहजता से एक अवस्था में उत्पन्न किया जा सकता है वही प्रभाव पाने के लिए दूसरी अवस्था में अधिक कठिनाई एवं प्रयास की आवश्यकता होती है।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

यदि आप अपनी कक्षा के आस-पास देखें तो आप पाएंगे कि आप में से कुछ बच्चों की आँखों का रंग भिन्न है। कुछ लंबे हैं और कुछ छोटे तथा कुछ आवेगी हैं, तो कुछ बातूनी कुछ प्रसन्नचित्त हैं तो कुछ चिंतित। इतनी भिन्नताओं के बावजूद कोई भी किसी दूसरी प्रजाति के जीव के समान नहीं दिखाई देता। हम सभी होमोसेपियन्स हैं। वह क्या कारण है, जिससे हम दूसरी प्रजाति से भिन्न दिखाई देते हैं और अपनी प्रजाति में एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, उसी तरह जैसे दूसरी प्रजाति के जीव एक दूसरे से मिलते-जुलते या समान दिखाई देते हैं। इसका उत्तर आनुवंशिकता एवं परिवेश की अंतःक्रिया में छिपा है।

आनुवंशिकता

आनुवंशिकता के सिद्धांत एक प्रजाति में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विशेषताओं के पहुँचने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं। हम आनुवंशिकता-कोड अपने माता-पिता से पाते हैं, जो शरीर की हर कोशिका में विद्यमान रहते हैं। यह मनुष्य का आनुवंशिकता-कोड ही है कि निषेचित मानव के अंडे से हाथी या चिड़िया या चूहा नहीं पैदा होता।

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशानुगत विशेषताओं के प्रसारण की क्रिया अत्यंत जटिल होती है। मनुष्य में दिखाई पड़ने वाली अधिकांश संरचनात्मक एवं व्यवहारपरक विशेषताएँ एक या दो नहीं बल्कि 50,000 से भी अधिक जीनों की संयुक्तियों से निर्धारित होती हैं। यह भी सही है कि हम उन सभी विशेषताओं को प्रकट करते हैं, जो हमें जीन संरचना से प्राप्त हुई हैं। किसी भी प्राणी की समस्त विशेषताओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है: *जीनोटाइप* (Genotype) वर्ग, जिसमें वंशानुगत लक्षण सम्मिलित हैं, परंतु प्रत्येक मनुष्य समान वंशानुगत आधार होने के बावजूद भिन्न-भिन्न रूप-रंग एवं व्यवहार का होता है। इन लक्षणों को *फीनोटाइप* (Phenotype) वर्ग में रखा जाता है। सभी व्यक्तियों में पाए जाने वाले सामान्य लक्षण जीनोटाइप हैं और सभी मनुष्यों में पाई जाने वाली व्यक्तिगत भिन्नताएँ फीनोटाइप हैं। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि आनुवंशिक आधार, जिस रूप में प्रकट होता है वह फीनोटाइप लक्षण है। इसमें ऊँचाई, शारीरिक भार, आँख का रंग, त्वचा का रंग, चेहरे की आकृति जैसे लक्षणों के साथ-साथ बुद्धि, सृजनात्मकता तथा व्यक्तित्व आदि सम्मिलित हैं। जीनोटाइप आधार मात्र यह निर्धारित करते हैं कि प्राणी का विकास मनुष्य के रूप में ही होगा।

विकास की जैविक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक संवेगात्मक प्रक्रियाएं

व्यक्ति के विकास में आनुवंशिकता की भूमिका के संबंध में आप पढ़ चुके हैं। आपके लिए यह जानना भी आवश्यक है कि व्यक्ति का जीवनपर्यंत विकास जैविक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक-सांवेगिक कारकों की पारस्परिक अंतःक्रिया का परिणाम होता है। विकास में अनुभव तथा परिपक्वता की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है। अब हम इन प्रक्रियाओं के प्रभाव का वर्णन करेंगे।

जैविक प्रक्रिया : विकास को प्रभावित करने वाले जैविक कारक मुख्यतः आनुवंशिकता के स्तर पर कार्य करते हैं। इन कारकों से शरीर के प्रमुख जैविक अंगों जैसे हृदय तथा फेफड़ों की संरचना और ऊँचाई, शारीरिक भार तथा गति उत्पन्न करने वाली पेशियों का विकास प्रभावित होता है।

संज्ञानात्मक प्रक्रिया : चिंतन, ज्ञानार्जन, प्रत्यक्षीकरण, ध्यान, समस्या-समाधान, भाषा आदि से संबंधित मानसिक क्रियाओं का विकास संज्ञानात्मक कारकों से प्रभावित होता है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में हम कैसा व्यवहार करेंगे – यह संज्ञानात्मक प्रक्रमों के विकास द्वारा प्रभावित होता है। सभी प्रकार के कार्यों के निष्पादन में तथा शब्दों और वाक्यों द्वारा भाषा का उपयोग करते हुए संचार द्वारा विभिन्न समस्याओं का समाधान करने में संज्ञानात्मक कारकों की भूमिका स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

सामाजिक-भावनात्मक प्रक्रिया : दूसरे व्यक्तियों के साथ सामाजिक अंतःक्रिया, संवेगों की अभिव्यक्ति तथा व्यक्तित्व में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन समाजिक-सांवेगिक कारकों से प्रभावित होते हैं। व्यक्ति के विकास में सामाजिक-सांवेगिक कारकों के प्रभाव अनेक व्यवहारों; जैसे – बच्चे का माँ से लिपटना, किसी नवयुवती का अपने मित्र से प्रेम की बातें करना, मैच हारने पर खिलाड़ी द्वारा दुःख प्रकट करना, अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को सांत्वना देना, बूढ़े व्यक्तियों द्वारा अपने दुःख-सुख को एक दूसरे को बताना आदि व्यवहारों में दिखाई पड़ते हैं।

यहां महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जैविक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक-संवेगात्मक कारक अलग-अलग स्वतंत्र

रूप से नहीं बल्कि पारस्परिक अंतःक्रिया द्वारा अपनी संपूर्णता में विकास को प्रभावित करते हैं।

यह याद रखना आवश्यक है कि समस्त जैविक, संज्ञानात्मक एवं सामाजिक-संवेगात्मक प्रक्रियाएं एक दूसरे पर निर्भर हैं एवं संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास को सरल बना देती हैं।

पारिस्थितिक कारक

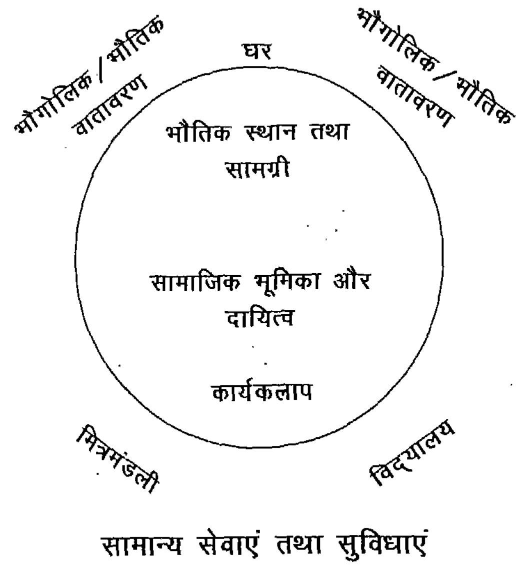
हम जहाँ रहते हैं और जहाँ हमें पाल-पोस कर बड़ा किया जाता है, उस स्थान को हमारी पारिस्थितिकी कहा जाता है। पारिस्थितिकी या हमारा परिवेश बच्चे के विकास के लिए आवश्यक सूचनाएं, उद्दीपक एवं अनुभवों का आधार प्रदान करता है। परिवेश का समृद्ध होना या अभावग्रस्त होना बच्चे के विकास में भिन्नता पैदा करते हैं। दुर्गानंद सिन्हा (1977) के अनुसार बच्चे का परिवेश कई पर्तों वाले वृत्त की आकृति (Concentric layers) के रूप में समझा जा सकता है। (चित्र 5.2 देखिए) ऊपरी तथा अधिक स्पष्ट दिखाई देने वाली पर्त में घर, विद्यालय, मित्र मंडली आदि आते हैं। ये सभी, तीन प्रकार से अनुभव प्रदान करते हैं – भौतिक स्थान सामग्री प्रदान कर, सामाजिक भूमिका एवं दूसरे लोगों और उनके कार्यों के साथ तथा बच्चे को क्रियाकलाप का अवसर देकर।



दुर्गानंद सिन्हा

1. घर, उसमें भीड़-भाड़ की स्थिति, घर के सदस्यों के लिए उपलब्ध जगह, खिलौने तथा घर में तकनीकी उपकरण इत्यादि,
2. किस तरह का और कितनी गुणवत्ता वाले विद्यालय में बच्चा पढ़ता है, बच्चे को उपलब्ध सुविधाएं, तथा
3. बाल्यावस्था तथा उसके बाद बच्चे द्वारा की जाने वाली अंतःक्रियाएं और हाथ में लिए जाने वाले कार्य।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि ये कारक स्वतंत्र रूप से या अलग-अलग कार्य नहीं करते। चूँकि ये एक बड़ी और व्यापक पृष्ठभूमि के अंतर्गत स्थित होते हैं, बच्चे की पारिस्थितिकी की **'परिवेशी पर्त'** (Surrounding layer), 'ऊपरी पर्त' के कारकों के ऊपर निरंतर अपना प्रभाव डालती रहती है। इनके प्रभाव हमेशा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ते। पारिस्थितिकी की परिवेशी पर्त के अवयव निम्नांकित हैं :



चित्र 5.1 : भारतीय संदर्भ में बच्चों के विकास को समझने के लिए दुर्गानंद सिन्हा (1977) द्वारा प्रस्तुत पारिस्थितिकी मॉडल।

1. ***सामान्य भौगोलिक पर्यावरण :*** इसके अंतर्गत घर के बाहर खेलकूद तथा और तरह-तरह के क्रियाकलापों के लिए उपलब्ध स्थान तथा सुविधाएं। उसमें उस इलाके में भीड़-भाड़ तथा जनसंख्या का घनत्व भी शामिल है।
2. ***संस्थागत परिवेश :*** यह जाति, वर्ग तथा दूसरे कारकों द्वारा निर्मित होने वाले संदर्भ को व्यक्त करता है। इसमें से प्रत्येक की कुछ भूमिका प्रत्याशाएं होती हैं और विशेष प्रकार के कार्यों को करने के लिए संस्तुत कर व्यक्तियों पर बंदिश लगाते हैं।
3. ***सामान्य सुविधाएं :*** इसके अंतर्गत बच्चों को उपलब्ध सुविधाएं जैसे पीने का पानी, बिजली, मनोरंजन के साधन आदि आते हैं।

पारिस्थितिकी की परिवेशी पर्त, जैसा कि ऊपर वर्णित है, सामान्य पर्यावरण का निर्माण करती है। अत्यंत व्यापक तथा सामान्य होने के कारण इसका प्रभाव आसानी से दिखाई नहीं पड़ता।

ऊपरी पर्त पर दिखाई देने वाले कारक परस्पर अंतःक्रिया करते हैं और अलग-अलग लोगों पर अलग-अलग तरह से प्रभाव डालते हैं। पारिस्थितिकीय वातावरण व्यक्ति के जीवन-विस्तार के अंतर्गत कभी भी बदल सकता है। जैसा कि आप आगे इसी अध्याय में पढ़ेंगे, जीवन में सभी परिवर्तन जैसे विद्यालय में प्रवेश लेना, किशोर बनना, विवाह करना, नई नौकरी लेना, बच्चे होना, तलाक हो जाना, नौकरी से अवकाश प्राप्त करना इत्यादि सभी हमारे जैविक परिवर्तन एवं परिवेशगत परिवर्तनों की अंतःक्रिया से प्रभावित होते हैं। सारांश यह है कि बच्चे का परिवेश उसे एक ऐसा ढाँचा प्रदान करता है, जिस पर विभिन्न विकासात्मक घटनाएँ निर्भर करती हैं। विकास कभी भी शून्य में नहीं होता। वह हमेशा सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में स्थित होता है।

अब तक आपने पढ़ा

आपने सीखा कि संपूर्ण जीवन विस्तार में परिवर्तन एक सुनिश्चित पद्धति के अनुसार होता है। विकास से संबंधित विचार तीन मुख्य बातों पर केंद्रित है। आनुवंशिकता एवं परिवेश, निरंतरता एवं अनिरंतरता तथा स्थायित्व एवं परिवर्तन। विकास की प्रक्रिया में संलग्न सभी मूल सिद्धांत सभी मनुष्यों में समान रूप से देखे जा सकते हैं। विकास की क्रांतिक अवस्थाएँ भी हैं, जिनमें से कुछ का प्रभाव अत्यधिक होता है। जैविक कारक परिवेशजनित कारकों के साथ विकास को प्रभावित करते हैं। आनुवंशिकता एवं वातावरण की अंतःक्रिया मानव विकास को दिषा देती है। विकास हमारे जैविक, संज्ञानात्मक एवं सामाजिक-संवेगात्मक प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है।

क्रियाकलाप 5.2

विकास एवं पारिस्थितिकी

- *अपने पर्यावरणीय परिवेश को चित्र द्वारा प्रस्तुत करें, जिसमें पर्यावरण के विभिन्न पक्षों की भूमिका दर्शाएं।*
- *पर्यावरण के विभिन्न पक्षों की संभव भूमिका पर विचार करें, जो आपके विकास को प्रभावित करती है। उनके बारे में लिखें, जिन्होंने आपके विचार से आपके विकास को अत्यधिक प्रभावित किया है।*

आपने कितना सीखा

1. *"विकासात्मक परिवर्तन जीवन की हर अवस्था में होता है" इस विचार पर ______ ने सर्वाधिक बल दिया।*
2. *विकास को प्रभावित करने वाले कारक जैविक हैं या पर्यावरणीय? इस वाद-विवाद को ______ विचार के नाम से जाना जाता है।*
3. *किसी विशेष व्यवहार के आविर्भाव के उचित समय को ______ कहा जाता है।*
4. *जीन द्वारा प्राप्त वास्तविक संयोजन का नाम ______ है।*
5. *______ वह मध्यम है जिसके द्वारा व्यक्ति का जीनोटाइप प्रेक्षणीय तथा मापनीय विशेषताओं के रूप में प्रकट होता है।*
6. *संपूर्ण जीवन-विस्तार में विकास की प्रक्रियाएं ______ और ______ क्षेत्रों में विकास का परिणाम हैं।*

उत्तर – (1) जीवन-विस्तार दृष्टिकोण, (2) प्रकृति-पोषण विवाद, (3) क्रांतिक अवधि, (4) जीनोटाइप, (5) फीनोटाइप, (6) जैविक, संज्ञानात्मक, सामाजिक-संवेगात्मक।

विकास की अवस्थाएं

विकास कोसामान्यतः अवस्थाओं के रूप में जाना जाता है। यदि अपने छोटे भाई-बहन या माता-पिता को देखें या अपने आपको देखें तो आपको ज्ञात होगा कि सभी अलग-अलग ढंग से व्यवहार करते हैं। इस भिन्नता का एक कारण यह भी है कि वे सभी अलग-अलग अवस्थाओं में हैं। मानव जीवन विभिन अवस्थाओं से होकर गुजरता है। उदाहरण के लिए, अभी आप किशोरावस्था में विद्यमान हैं और कुछ वर्षों बाद आप वयस्क हो जाएँगे। विकासात्मक अवस्थाएँ अस्थाई मानी जाती हैं और इन्हें अपनी विशेषताओं तथा विशेष अवस्थगत गुणों के कारण जाना जाता है, जिस कारण प्रत्येक अवस्था अपनेआप में विशेष हो जाती है। प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति एक विशेष लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है – एक ऐसी अवस्था या क्षमता, जिसमें एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचने के क्रम में व्यक्ति को पहली अवस्था में आवश्यक गुणों में परिपक्व होना आवश्यक होता है। यह भी सच है कि व्यक्ति एक अवस्था से दूसरी अवस्था

में पहुँचने में विकास के समय एवं दर की दृष्टि से भिन्न होता है। यह देखा जा सकता है कि व्यवहार के कुछ रूप तथा कुछ विशेष कौशल एक निश्चित अवस्था में अधिक सुगमता एवं सफलता से सीखे जा सकते हैं। व्यक्ति की ये उपलब्धियाँ एक विशेष अवस्था के लिए सामाजिक प्रत्याशा (Expectation) बन जाती हैं, जिन्हें विकासात्मक कार्य (Developmental task) कहा जाता है। विकासात्मक अवस्थाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण सर्वाधिक उपयोग में लाया जाता है, जिसमें दिया गया अनुमानित वय-विस्तार हमें एक सामान्य अनुमान देता है कि एक अवस्था विशेष कब प्रारंभ होती है और कब उसका अंत होता है।

तालिका 5.1 : जीवन विस्तार में विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन

विकासात्मक अवस्था	वय-विस्तार	मुख्य विशेषताएँ
पूर्व-प्रसवावस्था	गर्भाधान से जन्म तक	तीव्र वृद्धि, एक कोशिका अनुमानतः नौ महीनों में मस्तिष्क एवं व्यावहारिक क्षमताओं से परिपूर्ण होकर एक संपूर्ण जीव में बदल जाती है।
शैशवावस्था	जन्म से 18/24 माह	अनेक मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का आविर्भाव; जैसे – भाषा, प्रतीकात्मक विचार, सांवेदिक-गत्यात्मक संयोजन, समन्वय और सामाजिकता।
पूर्व-बाल्यावस्था	2 वर्ष से 5/6 वर्ष	इस अवस्था को कभी-कभी "पूर्व-विद्यालयीय वर्ष" भी कहा जाता है। बच्चे आत्मनिर्भर होना सीख जाते हैं, विद्यालय में जिस कौशल की आवश्यकता होती है, उसके लिए तत्पर हो जाते हैं (निर्देशों का पालन करना प्रारंभ कर देते हैं, अक्षर-बोध होने लगता है) और मित्रमंडली के साथ खेल में समय बिताना इत्यादि प्रारंभ हो जाता है।
मध्य अथवा उत्तर बाल्यावस्था	6 से 11 वर्ष तक	इसे कभी-कभी "आरंभिक विद्यालयीय वर्ष" भी कहा जता है। बालक इस अवस्था में पढ़ने, लिखने और गणित के मूल बुनियादी कौशल पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। बालक में आत्म-नियंत्रण बढ़ जाता है और उपलब्धियाँ बालक के जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग बन जाती हैं।
किशोरावस्था	12 वर्ष से 20/22 वर्ष तक	किशोरावस्था का प्रारंभ तीव्र शारीरिक परिवर्तन से होता है। इस अवस्था में बच्चे लंबे हो जाते हैं और शरीर का भार बढ़ जाता है। शारीरिक परिरेखाओं में परिवर्तन आता है और लैंगिक विशेषताएं विकसित हो जाती हैं। इस अवस्था में स्वावलंबन एवं अपने अस्तित्व की पहचान बनाने की आकांक्षा विकास के मुख्य गुण होते हैं। वैचारिक प्रक्रियाएं अधिक तार्किक, अमूर्त एवं आदर्शवादी हो जाती हैं।

विकासात्मक अवस्था	वय-विस्तार	मुख्य विशेषताएँ
पूर्व-प्रौढ़ावस्था	20-30 वर्ष तक	यह वह समय होता है जब वयस्क वैयक्तिक एवं आर्थिक स्वावलंबन, व्यावसायिक विकास, जीवन साथी का चुनाव, अपने परिवार का गठन और अपने बच्चों का पालन-पोषण करना सीखता है।
मध्य प्रौढ़ावस्था	35-55 वर्ष तक	यह वह उम्र है जब वयस्क अपने वैयक्तिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह में लग जाता है, अपनी आने वाली पीढ़ी को सक्षम एवं परिपक्व बनाने और अपने व्यवसाय में संतोष प्राप्त करने में लग जाता है।
उत्तर प्रौढ़ावस्था	60-70 वर्ष से मृत्यु तक	यह वह उम्र है जब क्षमताओं में ह्रास और गिरते स्वास्थ्य के साथ अवकाश प्राप्ति एवं नई सामाजिक भूमिकाओं के साथ समायोजन करता है।

आपने इस अध्याय में पहले पढ़ा कि जीन्स एक संरचनात्मक ढाँचा बना देते हैं, जो हमारे शारीरिक विकास को एक नियमबद्ध पूर्वकथनीय क्रम में ढाल देता है। यह माना जाता है कि हमारा मनोवैज्ञानिक विकास हमारे संपूर्ण जीवनकाल के जैविक विकास के समानांतर विकसित होता है। आइए, हम देखें कि व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक विकास पूर्व-प्रसवावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक की विभिन्न अवस्थाओं में किन प्रक्रियाओं से होकर गुजरता है।

बाक्स 5.2 **विकासात्मक अवस्थाओं की भारतीय अवधारणा**

भारतीय (हिंदू) विचारधारा की आश्रम व्यवस्था (विकासात्मक अवस्थाएँ) मानव विकास में विकासात्मक क्रम की ही द्योतक हैं। हिंदू मत के अनुसार विकास की दर समरस, सहज एवं सतत नहीं होती, बल्कि यह असतत होती है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था में महत्त्वपूर्ण अंतर दृष्टिगत होते हैं। उचित विकास की ओर अग्रसर होने के लिए क्रांतिक अवस्थाओं का प्रत्येक अवस्था में उचित समय पर सामना करना और उन पर सफलतापूर्वक विजय प्राप्त करना आवश्यक है। जीवन चक्र एवं आश्रम धर्म के हिंदू सिद्धांत में धर्म का प्रत्यय ही मूल में है। आश्रम धर्म आदर्श जीवन चक्र को दर्शाता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति अनेक संस्कारों से गुजरता है। गर्भाधान से मृत्युपर्यंत 16 संस्कारों का विधान किया गया। अन्नप्राशन, मुंडन, उपनयन, विवाह आदि संस्कार अभी भी प्रचलित हैं।

हिंदू विचारधारा के अनुसार जीवन की अवस्थाओं और प्रत्येक अवस्था के विशेष कार्यों का मॉडल संक्षेप में नीचे दिया गया है :

1. ***ब्रह्मचर्य (शिक्षार्थी)** : हिंदू सिद्धांत के अनुसार यह जीवन का प्रथम आश्रम है। इस आश्रम में विद्यालय में जाने वाली उम्र का बालक गुरु के साथ आश्रम में किशोरावस्था तक रहकर भविष्य में प्रौढ़ होने तक समाज में अपनी भूमिका का निर्वाह करने के लिए आवश्यक कौशल सीखता था।*
2. ***गृहस्थ (पालक)** : आश्रम सिद्धांत की दूसरी अवस्था है। हिंदू मतानुसार इस अवस्था का उद्देश्य अपने जीवन के अर्थ को समझना अर्थात् पुरुषार्थ, जिसका तात्पर्य है धर्म, अर्थ (सांसारिक आनंद का भोग) एवं काम (इच्छाओं की पूर्ति)।*
3. ***वानप्रस्थ (प्रत्याहार)** इस अवस्था में व्यक्ति पारिवारिक उत्तरदायित्वों एवं बंधनों से अपने आपको अलग कर अपनी रुचि को पारिवारिक बंधनों से मोड़कर आध्यात्मिकता की ओर लगाता है।*
4. ***संन्यास (परित्याग)** : जीवन चक्र की अंतिम अवस्था है। यह व्यक्ति का निजी और सांसारिक बंधनों से मुक्ति की अपेक्षा करती है।*

क्रियाकलाप 5.3

विकास की अवस्थाएँ

अपने परिवार के सदस्यों और पड़ोसियों के नाम लिखें। उनकी विकासात्मक अवस्था पहचानें। कुछ दिनों तक उनका निरीक्षण करें और उनकी विशेषताओं को लिखें। भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के लोग एक जैसा ही व्यवहार करते हैं या अलग तरह का इसका वर्णन करें।

पूर्व प्रसवकाल

गर्भाधान से लेकर जन्म के समय की अवधि को प्रसवकाल कहते हैं। सामान्यतः यह लगभग 40 सप्ताहों का होता है। इस काल को तीन मुख्य भागों में बाँटा जाता है : 1. अंकुरण (Germinal), 2. भ्रूण (Embryonic), 3. फीटल (Fetal)। इस अवधि में होने वाले परिवर्तनों को तालिका 5.2 में सारांश रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अब तक, आप यह जान गए होंगे कि आनुवंशिक रूपरेखा प्रसवपूर्व और जन्म के बाद की अवधि में आपके विकास को दिशा निर्देश देती है। आनुवंशिक रूप से हमें जो कुछ प्राप्त रहता है उसके अतिरिक्त माता की विशेषताए; जैसे – माता की आयु, पोषाहार तथा सांवेगिक स्थिति प्रसवपूर्व विकास को प्रभावित करते हैं। माता के द्वारा रोग या संक्रमण पूर्वप्रसव विकास को आघात पहुंचा सकते हैं। उदाहरणार्थ, रूबेला (जर्मन मिज़ल्स), सिफलिस (एक यौन संक्रामक रोग), जननांगों में होने वाला रोग तथा मानव प्रतिरोधी अभाव का वायरस (H.I.V.), नवजात शिशु की आनुवंशिक समस्याओं के कारण माने जाते हैं। पूर्वप्रसव काल में होने वाले विकास को प्रभावित करने वाला एक और स्रोत है जिन्हें मारक तत्व (Teratogens) कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे परिवेशीय तत्व आते हैं जो सामान्य

तालिका 5.2 : गर्भाधान से जन्म तक वृद्धि एवं विकास में आने वाले प्रमुख परिवर्तन

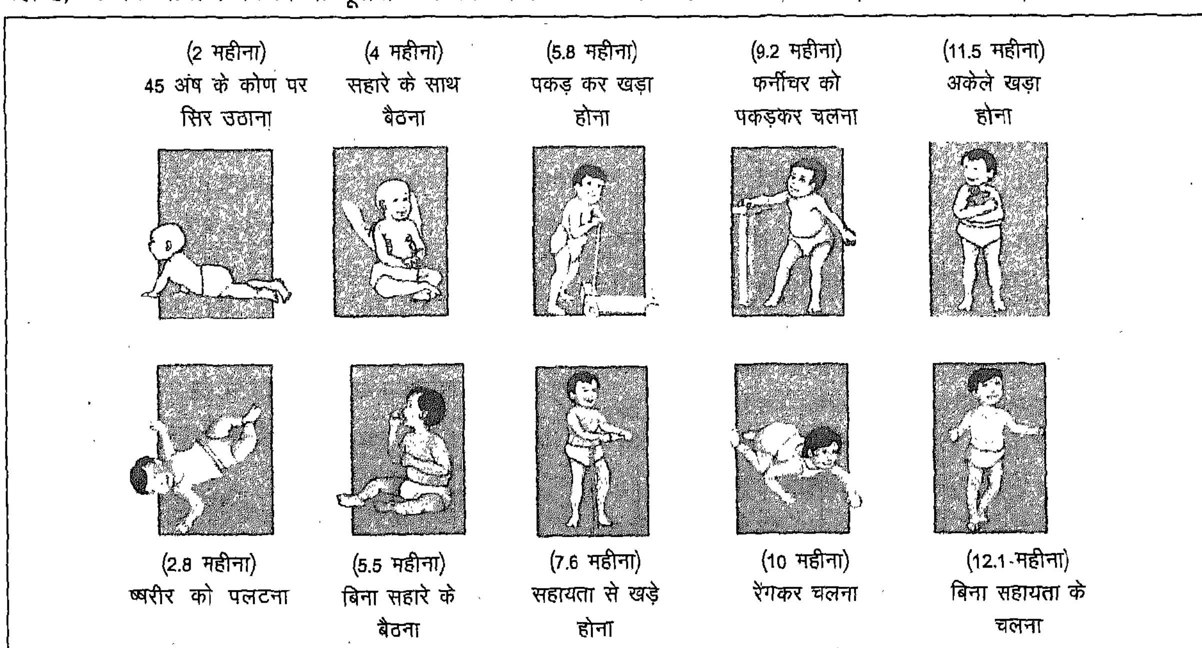
काल	वय-विस्तार	परिवर्तन
अंकुरण काल	0-2 सप्ताह	कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि एवं विभिन्नीकरण। निषेचित डिंब का गर्भाशय की दीवार में जुड़ना। आंतरिक एवं बाह्य पिंड का आकार बनना।
भ्रूण काल	2-8 सप्ताह तक	मानवीय आकार ग्रहण करना, आंतरिक अवयवों का विकास, एमिनओन एवं गर्भनाल (Placenta) द्वारा नाभिनाल (Umbilical cord) की रचना।
फीटल तीसरा माह	(8-37वाँ सप्ताह) 12 सप्ताह	वृद्धि एवं परिवर्तन, जिससे जीवन का स्वतंत्र विकास हो सके। क्रिया, गतिशीलता। सिर के आकार में वृद्धि। मुखाकृति का विकास।
चौथा माह	16 सप्ताह	प्रतिवर्त तेज होते हैं। शरीर के निचले भाग की तीव्र वृद्धि। मां को फीटस के गतिशील होने की अनुभूति।
पाँचवाँ माह	21 सप्ताह	त्वचा आकार लेती है। फीटस में जीवन के लक्षण दृष्टिगत होने लगते हैं।
छठा माह	26 सप्ताह	आँखें, पलकों की रचना, सिर पर बालों की महीन परत, पकड़ का प्रतिवर्त अटक-अटक कर साँस लेने की प्रक्रिया।
सातवाँ माह	30 सप्ताह	जीवन क्षमता प्राप्त करने की उम्र।
आठवाँ एवं नौवाँ माह	30 सप्ताह	भार में तेजी से वृद्धि, वसा के ऊतकों का विकास। शरीर तंत्र से जुड़ी क्रियाएं (उदाहरण हेतु : हृदय, गुर्दा)।

विकास के क्रम से विचलन पैदा करते हैं जिसके कारण गंभीर असामान्यताएं हो सकती हैं या मृत्यु भी हो सकती है। सामान्य मारक तत्वों में औषधियां, संक्रमण, विकिरण तथा प्रदूषण आते हैं। औषधियों (जैसे– मारिज्युआना, हिरोइन, कोकीन), शराब, तम्बाकू आदि का स्त्री के द्वारा प्रसवकाल में उपयोग करने से विकसित हो रहे शिशु पर बुरा असर पड़ता है, और जन्मजात असामान्यताओं की मात्रा बढ़ जाती है। कुछ परिवेशीय कारक; जैसे – विकिरण रासायनिक पदार्थ, परिवेशीय प्रदूषण तथा कूड़ा-करकट भी अजन्मे बच्चे के लिए संभाव्य खतरों के स्रोत हो सकते हैं।

शैशवावस्था

जन्म के 18 माह से लेकर 2 वर्ष की अवधि को शैशव काल कहते हैं। इस अवधि में शिशु के शारीरिक विकास की गति अत्यंत व्यापक होती है। पैदा हुए शिशु (जन्म से 1 माह की अवधि) को नवजात शिशु कहते हैं। वे क्रियाएँ, जो जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, उन सबका आविर्भाव जन्मजात शिशु में हो जाता है। वह साँस ले सकता है, चूस सकता है, निगल सकता है एवं मल विसर्जन कर सकता है। नवजात शिशु जीवन के प्रथम सप्ताह में यह क्षमता प्राप्त कर लेता है कि कोई ध्वनि किस दिशा से आ रही है, माँ की आवाज को किसी दूसरी स्त्री की आवाज से अलग अनुभव कर लेता है। सरल भाव-भंगिमाएँ अभिव्यक्त करने लगता है; जैसे – जीभ को बाहर निकालना और मुख खोलना। बालक के शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास का मुख्य कारण उसका परिपक्व होना है। विकासशील बालक के शरीर की लंबाई और आकार में तथा बालक की विभिन्न क्षमताओं में परिवर्तन आता है। कुछ क्षेत्रों में यह परिवर्तन इतना नियमित होता है कि कुछ घटनाएँ मील के पत्थर जैसी होती हैं और परिपक्वता के क्रम को पूर्वकथनीय बना देती हैं। उदाहरण के लिए, शरीर के संचालन (Locomotion) के क्रम में बच्चे का पैरों के बल खड़े होकर चलने का व्यवहार (चित्र 5.2 देखिए) एक सुनिश्चित, समयबद्ध क्रम में होता है जो शारीरिक रूप से स्वस्थ सभी बच्चों में एक जैसा होता है। शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में शारीरिक वृद्धि शिरोपुच्छीय (Cephalocaudal) अर्थात् सिर से पैर की दिशा में तथा निकट-दूर (Proximodistal) अर्थात् पहले केंद्र में और फिर शरीर की परिधि के क्षेत्रों में होने वाले क्रम में होता है।

नवजात शिशु की गतियाँ परिवर्तों से चलायमान होती हैं जो स्वचालित हैं और उनमें उद्दीपकों की प्रतिक्रिया का ढंग हमारे तंत्र में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। ये नवजात शिशु के संपूर्ण तंत्र में समायोजन के उपाय की तरह कार्य करती हैं। कुछ प्रतिवर्त नवजात शिशु में जन्मजात होते हैं – यथा खाँसना, पलकें झपकाना, उबासी लेना और



चित्र 5.2 : गति के लिए परिपक्वता की समय सारणी।

तालिका 5.3 : नवजात शिशु के प्रतिवर्त

प्रतिवर्त	विस्तार	विकास की अवधि
रूटिंग	गालों को स्पर्श करने पर सिर का घुमाना और मुँह खोलना।	3 से 6 माह में लुप्त हो जाती है।
स्टेपिंग	जब बालक को समतल सतह पर सीधा खड़ा किया जाए तो पैरों में लयात्मक गति होना।	2 माह में लुप्त हो जाती है।
मोरो	यदि तीव्र ध्वनि हो तो बच्चा बाहों को बाहर की ओर फेंकता है, धड़ को अर्ध-गोलाकार दिशा में उठाना चाहता है और फिर अपनी बाहों को परस्पर जोड़ना चाहता है जैसे कुछ पकड़ना चाहता हो।	6 से 7 माह में यह क्रिया विलुप्त हो जाती है (यद्यपि तेज आवाज से चौंकना स्थाई प्रवृत्ति है)।
बाबिन्सकी	जब तलवों को हल्के से गुदगुदाया जाए तो पंजों को आगे की ओर ले जाना और मुड़ जाना।	8 से 12 माह में विलुप्त हो जाती है।
रेंगना	जब बच्चे को पेट के बल लिटा दिया जाए, उसके तलवों पर दबाव डाला जाए, तब बाहों में लयात्मक गति देखी जाती है।	3-4 माह में विलुप्त हो जाती है, 6-7 माह बाद रेंगने में यह फिर दिखती है।
साँस लेना	बारंबार लयात्मक क्रम में साँस का भीतर लेना और फिर बाहर छोड़ना।	स्थायी।
चूसना	बालक द्वारा वस्तु को उठाकर मुख में रखना।	स्थायी।
पलकें झपकाना	बार-बार आँखें मूँदना और खोलना।	स्थायी।

ये सब जीवनपर्यंत बनी रहती हैं। कुछ दूसरे प्रतिवर्त मस्तिष्क के परिपक्व होने के साथ विलुप्त हो जाते हैं और बालक अपने व्यवहार पर स्वैच्छिक नियंत्रण विकसित करने लगता है (तालिका 5.3 में विस्तृत विवरण देखिए)।

स्थूल एवं सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल : स्थूल गत्यात्मक कौशल में बड़ी मांसपेशियों से संबंधित क्रियाएं, जैसे चलना और चलने के साथ हाथों की गतिशीलता सम्मिलित हैं। सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों में अँगुलियों पर नियंत्रण शामिल है। स्थूल गत्यात्मक कौशलों से संबंधित क्रियाओं की मुख्य उपलब्धि सिर ऊपर की ओर उठाना, करवट बदलना, बैठना, सहायता लेकर खड़ा होना, खिसक-खिसककर आगे बढ़ना, रेंगना (Crawling) अपने आप खड़े हो जाना और चलना सम्मिलित है। तालिका 5.4 में स्थूल गत्यात्मक कौशलों की वृद्धि और विकास क्रम को वर्गीकृत किया गया है :

सांवेदिक एवं प्रात्यक्षिक विकास : एक शिशु कितनी अच्छी तरह देख सकता है? नवजात शिशु की अपेक्षा दूसरे उद्दीपकों के बदले दूसरों के चेहरों की ओर देखना पसंद करते हैं। नवजात शिशु को देख पाने की क्षमता बड़ों की दृष्टि क्षमता की (20/20) तुलना में कम होती है। क्या नवजात शिशु रंगों को देख सकता है? वर्तमान मत यह है कि नवजात शिशु संभवतः लाल एवं सफेद के बीच भेद कर सकते हैं लेकिन सामान्यतः वे रंगों को देख पाने में अक्षम होते हैं और इस क्षमता का आविर्भाव उनमें 3 माह में हो पाता है।

तालिका 5.4 : स्थूल गत्यात्मक कौशलों का विकास

गत्यात्मक कौशल	आयु (महीनों में)
सहायता लेकर बैठना	1 से 5 माह तक
बिना सहायता के बैठना	5 से 9 माह तक
सहायता लेकर खड़ा होना	6 से 12 माह तक
बिना सहायता के चलना	9 से 17 माह तक

नवजात शिशु के सुनने की क्षमता का विकास कैसे होता है? शिशु जन्म के तुरंत बाद सुनने लगता है। जैसे-जैसे शिशु विकसित होता है, उसकी ध्वनियों के स्थान को पहचानने की क्षमता में वृद्धि होती है। शिशु स्पर्श करने पर प्रतिक्रिया करता है और वह पीड़ा का भी अनुभव करने लगता है। सूँघ पाने और स्वाद का अनुभव कर पाने की क्षमता भी शिशु में जन्म से विद्यमान होती है। बालक में बोलने की प्रक्रिया बलबलाने से आरंभ होती है जो 3 माह से 6 माह की उम्र के बीच शुरू होती है। भाषा के द्वारा संप्रेषण की क्षमता संभवतः शिशु में जन्म से विद्यमान होती है और जब माँ शिशु के साथ बात करती है तब शिशु ध्वनियों को दुहराता है जिसे कुकिंग (Cooking) तथा गर्गलिंग (Gurgling) के द्वारा संप्रेषण का प्रयास करने लगता है। यह संप्रेषण तब कम होता है जब माँ शिशु के साथ प्रायः चुप रहती है। धीरे-धीरे बच्चा वस्तुओं के मानसिक प्रतिरूप या खाका (Representation) बनाने की क्षमता अर्जित करने लगता है। *वस्तु के* **स्थायित्व का बोध** (Object Permanence) से तात्पर्य है बालक में इस बात की समझ पैदा होना कि वस्तुएँ और घटनाएँ तब भी अस्तित्व में होती हैं, जब उन्हें हम प्रत्यक्ष रूप से देख नहीं रहे होते या सुन नहीं रहे होते या छू नहीं रहे होते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चा संभवतः एक गुड़िया को प्रत्यक्ष देख न पा रहा हो, लेकिन उसे पता है कि एक गुड़िया कहीं रखी है और वह उसे ढूँढ़ने का प्रयास करता है। जीवन के प्रथम वर्ष में बालक सामाजिक भी होने लगता है और सांवेगिक भी। सामाजिक विकास का प्रारंभ शिशु की अपने माता-पिता के साथ घनिष्ठ आत्मीयता के साथ शुरू होता है, जिसे **आसक्ति या लगाव** (Attachment) कहते हैं (इसके बारे में अध्याय 12 में विस्तृत उल्लेख किया गया है)।

बाक्स 5.3 **भारत में बाल्यावस्था**

भारत में बाल्यावस्था के क्षेत्र में अनुसंधान एक जटिल कार्य है, विशेषकर भारतीय समाज की विविधता के कारण। भारतीय परिवारों में बाल्यावस्था का संदर्भ कई वैयक्तिक तथा परिवेशीय कारकों की पारस्परिक क्रिया से निर्मित होता है। इस बात को जानने का प्रयास किया जाता है कि नियंत्रण से बाहर के प्रभावों को किस तरह संतुलित किया जाए। कई अभिभावकों का मानना है कि बच्चे के जन्म के समय ग्रहों की स्थिति बच्चे के भाग्य को निश्चित करती है। बच्चों की जन्मकुंडली भी बनाई जाती है और उसका उपयोग भी किया जाता है। बच्चा बिल्कुल पवित्र, मासूम, नैतिकता से निरपेक्ष और समाजनिरपेक्ष प्राणी माना जाता है परंतु परिवार से संबंध के बाद वह सामाजिक जीवन भी जीता है और कर्म की अवधारणा के अनुसार एकाकी जीवन भी।

व्यक्ति के जीवन में विभिन्न आयु स्तरों पर विभिन्न संस्कार संपन्न किए जाते हैं। ये संस्कार ही बच्चे को विकास के एक चरण से दूसरे चरण में संक्रमण को बताते हैं। माना जाता है कि संस्कार बच्चे में समुदाय के अंग होंगे और स्वतंत्र व्यक्तित्व को तीव्र करते हैं अर्थात् बच्चे की विकसित हो रही अस्मिता को दृढ़ करते हैं (कक्कड़ 1979, पृष्ठ 25)। ये बच्चों के पालन-पोषण की परिपाटी, परस्पर निर्भरता, पारस्परिक प्रत्याशाओं, एक-दूसरे की भावनाओं की समझ तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति दायित्व पर बल देते हैं। बच्चों को माता-पिता का विस्तार माना जाता है और उन्हें वृद्धावस्था में माता-पिता की देखभाल करने वाला समझा जाता है। भारतीय समाज ज्यादातर कृषि पर निर्भर है तथा बच्चों और प्रौढ़ों के बीच निरंतरता होती है, जिसमें दोनों के जीवन विस्तार में बहुत कुछ साझे का होता है। परंपरागत दृष्टिकोण में बच्चों के पालन-पोषण में माता तथा पिता दोनों को महत्त्व दिया जाता है। माता-पिता के लिए बच्चों को जन्म देना, उनके आवश्यक कर्तव्य तथा अधिकार के रूप में माना जाता है, ताकि बच्चे उनका वंश आगे चला सकें। बच्चों को ईश्वर की देन माना जाता है तथा लड़की को लक्ष्मी और अन्नपूर्णा के रूप में देखा जाता है। हर लड़के को परिवार की कड़ी को आगे बढ़ाने वाला समझा जाता है। बच्चों के पालन-पोषण में उपसांस्कृतिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं तथा यौन भेद, बालश्रम, बालविवाह तथा अन्य समस्याएँ, जैसे – निरक्षरता, गरीबी तथा पूर्वाग्रह यह बताते हैं कि ऐसी अनेक समस्याएं हैं जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।

भारतीय परिवारों में बच्चों का पालन-पोषण प्रायः कई देखभाल करने वालों द्वारा किया जाता है तथा अनेक परिवारों में बुजुर्गों के सामने अपने बच्चों के साथ अंतःक्रिया पर प्रतिबंध रहता है। इस अर्थ में केवल माता-पिता ही नहीं बल्कि समस्त परिवार बच्चे पर प्रभाव डालता है। बाल्यावस्था की परिस्थितियों के प्रसंग में किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि भारतीय समाज में बच्चे पर अनेक प्रकार की परिस्थितियों के प्रभाव पड़ते हैं, जैसे – सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां, सांस्कृतिक इतिहास, माता-पिता के मूल्य, आदर्श तथा विश्वास। शहरीकरण, आधुनिकीकरण और पाश्चात्यीकरण आदि कारक भी बाल्यावस्था के अनुभवों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रभावित करते हैं।

अब तक आपने पढ़ा

आपने यह जाना कि शारीरिक वृद्धि एवं क्षमताओं का विकास एक जैविक कार्यक्रम के अनुसार होता है। पूर्व प्रसवावस्था को तीन मुख्य कालों में विभाजित किया गया है– (1) अंकुरण काल (2) भ्रूण काल तथा (3) फीटल काल। जन्म के बाद आरंभिक शारीरिक वृद्धि व्यापक तथा तीव्रगति से होती है। शरीर की गति (समस्त शरीर की) परिपक्वता पर निर्भर करती है। इसका क्रम पूरी मनुष्य प्रजाति में एक-सा होता है। सांवेगिक क्रियाएं जन्म से ही सक्रिय रहती हैं, सुनने, सूँघने तथा स्वाद के साथ उनका तीव्र विकास होता है। आँख से देखने (चाक्षुष संवेदना) का विकास धीमी गति से होता है। नवजात शिशु के प्रतिवर्त उसकी गतिविधि को नियंत्रित करते हैं। आरंभिक जीवन में होने वाला लगाव बच्चों के सामान्य विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होता है।

बाल्यावस्था

शैशवास्था की अपेक्षा बाल्यावस्था में बच्चों की वृद्धि कुछ धीमी गति से होती है। बच्चे का शारीरिक विकास होता है, उसकी लंबाई व वजन बढ़ता है, वह चलना सीखता है, फिर दौड़ना, उछलना और गेंद आदि के साथ खेलना सीखता है। सामाजिक रूप से बच्चों की सामाजिक दुनिया माता-पिता के अलावा परिवार के अन्य सदस्यों तथा घर और स्कूल के आस-पास वाले प्रौढ़ों तक विस्तृत हो जाती है। अब बच्चा अच्छे और बुरे का विचार करना शुरू करता है अर्थात् नैतिकता विकसित होने लगती है। उसकी शारीरिक क्षमताओं में वृद्धि होती है। वह अपना कार्य स्वतंत्र रूप से कर सकता है, अपना लक्ष्य निर्धारित कर सकता है तथा बड़ों की अपेक्षाओं के अनुरूप कार्य कर सकता है।

शारीरिक विकास : प्रत्येक बच्चे की लंबाई तथा वजन में व्यक्तिगत तौर पर वृद्धि होती है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं, उनके धड़ वाले भाग पतले होते जाते हैं और मोटापा घटता जाता है। अन्य अंगों की अपेक्षा सिर और मस्तिष्क की अधिक तेजी से वृद्धि होती है। मस्तिष्क की वृद्धि और विकास बहुत महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि इसी से बच्चे की क्षमताओं में परिपक्वता आती है। वह आँख तथा हाथ के बीच समन्वय स्थापित करने लगता है; जैसे – पेंसिल पकड़ना और लिखना। मध्य बाल्यावस्था में वजन तथा बल में वृद्धि मुख्य रूप से बच्चे के संपूर्ण शरीर के ढांचे, उसकी मांसपेशियों और शरीर के परिधीय अंगों की पुष्टि तथा शरीर के कुछ अवयवों के आकार पर निर्भर करती है।

गत्यात्मक विकास : बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षों में स्थूल पेशीय कौशलों में हाथ और पांव के उपयोग सम्मिलित हैं। अब बच्चा आत्मविश्वास और सोद्देश्य ढंग से घूमने-फिरने में सक्षम हो जाता है। इन्हीं आरंभिक वर्षों में बालक धीरे-धीरे अपनी अँगुलियों की गति की कुशलता तथा हाथ और आँख के समन्वय से सूक्ष्म गति के कौशल में पर्याप्त सुधार लाता है। इन्हीं वर्षों के दौरान बच्चा अपने दाएं और बाएं हाथ की प्राथमिकता भी विकसित करता है। बाल्यावस्था के इन आरंभिक वर्षों में बालकों के सूक्ष्म गत्यात्मक कौशल में जो प्रमुख उपलब्धियां सामने आती हैं वे तालिका 5.5 में दी गई हैं।

मध्य तथा उत्तर बाल्यावस्था की अवधि में होने वाली मस्तिष्क में वृद्धि, सूक्ष्म पेशीय कौशलों में वृद्धि के रूप में परिलक्षित होती है। बच्चे अपने हाथों को अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग में लाने में सक्षम हो जाते हैं। वे हथौड़ी का उपयोग कर सकते हैं, दाँत में ब्रुश कर सकते हैं, जूते के फीते बाँध सकते हैं और कपड़े ठीक से पहनने में सक्षम हो जाते हैं।

संज्ञानात्मक विकास : संज्ञानात्मक कार्यकलाप में जटिल किस्म की अमूर्त क्रियाएं; जैसे–संप्रत्यय निर्माण, तर्क की सहायता से सोचना तथा साहचर्य स्थापित करना शामिल होती हैं। आरंभिक बाल्यावस्था के वर्षों में जो वस्तु उपस्थित

तालिका 5.5 : सूक्ष्म पेशीय कौशलों में प्रमुख उपलब्धियाँ

आयु	गत्यात्मक विकास	सूक्ष्म गत्यात्मक विकास
3 वर्ष	उछलना, कूदना, दौड़ना।	ब्लॉक बनाना (खंड बनाना), अँगुलियों के सहयोग से चीजों को पकड़ना।
4 वर्ष	एक कदम (एक पांव) से सीढ़ियाँ चढ़ना व उतरना।	चित्रात्मक पहेलियों को भलीभाँति जोड़ना।
5 वर्ष	तेज दौड़ना व दौड़ का आनंद लेना।	हाथ, बाजुओं तथा शरीर सभी आँख की गति के साथ संयोजित हो जाते हैं।

नहीं है, उसे मानसिक स्तर पर प्रस्तुत करने की क्षमता अर्थात् प्रतीकात्मक चिंतन (Symbolic thought) की क्षमता नहीं रहती है। आदमी, घर और बादल आदि के आकार बच्चे कागज पर पेंसिल से बनाते हैं। आत्मकेंद्रित होने के कारण बच्चे, दुनिया को केवल अपनी नजर से ही देखते हैं और दूसरों के दृष्टिकोण को नहीं समझ पाते। वे *जीववादी सोच* (Animistic thinking) के अनुसार निर्जीव पदार्थों में जीवन की कल्पना करते हैं जैसे यदि कोई बच्चा सड़क पर गिर जाए तो वह कहेगा "सड़क ने मुझे मार दिया"। इन बच्चों में **आत्मकेंद्रिकता** (Egocentrism) की प्रवृत्ति होती है और वे किसी घटना के अकेले गुण या दिखने वाली विशेषता पर ही ध्यान दे पाते हैं। उदाहरणार्थ, एक प्यासा बच्चा रस के 'बड़े गिलास' को पीने की जिद कर सकता है और एक पतले लंबे गिलास को एक छोटे बड़े गिलास की अपेक्षा अधिक पसंद कर सकता है, जबकि दोनों ही गिलासों में समान मात्रा में रस मौजूद रहता है। बचपन में संज्ञानात्मक योग्यताओं तथा स्मरण की क्षमता की निरंतर प्रगति होती है। मध्य तथा उत्तर बाल्यावस्था की कुछ प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार हैं :

स्मृति में सुधार : बच्चों की स्मृति का निष्पादन कई कारणों से बढ़ता है। इनमें प्रमुख हैं (1) स्मृति की क्षमता में वृद्धि, (2) याद करने की तकनीकों का विकास; जैसे– दुहराना तथा पहचानना, (3) विषय की जानकारी में वृद्धि, (4) अपनी स्मृति प्रक्रिया के बारे में ज्ञान का विकास (अधिसंज्ञान, Metacognition) तथा (5) स्नायविक सूचना प्रक्रमित करने की दर में वृद्धि।

चिंतन में सुधार : इस अवधि में बच्चे मूर्त संक्रियाओं के आधार पर सोचने के नए रूपों को विकसित करते हैं। पियाजे के अनुसार **मूर्त संक्रियात्मक चिंतन** (Concrete operational thought) मानसिक कार्यों से बना होता है, जो बच्चों के लिए उन कार्यों को मानसिक रूप से करना संभव बना देता है, जो पहले भौतिक रूप से होते थे (अधिक जानकारी हेतु अध्याय 12 पढ़ें)। बच्चे ब्लाक, मिट्टी या पानी से भरे गिलास के बारे में (जब वे भौतिक रूप से उपस्थित हैं) बदलाव कर सकते हैं और उनमें घटने-बढ़ने की बात समझ सकते हैं परंतु वस्तुओं की अनुपस्थिति में विचारों के स्तर पर परिवर्तन करना संभव नहीं होता। चिंतन धीरे-धीरे अधिक लचीला होता जाता है और बच्चे समस्या-समाधान करते समय विकल्पों के बारे में सोच सकते हैं या मानसिक रूप से अपने चरणों को जरूरत पड़ने पर फिर से मन ही मन दुहरा सकते हैं।

भाषा-विकास : बच्चों की बढ़ती हुई संज्ञानात्मक क्षमता भाषा के अर्जन को सरल बनाती है। बच्चे शब्दावली और व्याकरण को तीन चरणों में विकसित करते हैं : **एक शब्द का चरण, दो शब्दों का चरण** तथा **टेलीग्राफिक वाणी।** एक शब्द वाले चरण में बच्चा एक समय में एक शब्द को सीखता है और उसकी शब्दावली सीमित रहती है इसलिए एक शब्द का उपयोग कई चीजों के लिए किया जाता है। उदाहरणार्थ, बच्चा '**कुत्ता**' शब्द का उपयोग सभी पशुओं को इंगित करने के लिए कर सकता है।

लगभग अठारह महीने की आयु में बच्चे कमरे में मौजूद वस्तुओं को 'यह क्या है?' प्रश्न द्वारा इंगित कर नए शब्दों को सीखते हैं। इस चरण को **नामकरण का विस्फोट** (Naming explosion) कहा गया है, क्योंकि बच्चे इस चरण में बड़ी तीव्र गति से नए शब्दों को सीखते हैं। बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं उनका शब्द भंडार बढ़ता है; बच्चे दो या और शब्दों के उच्चारण करते समय नए शब्दों को जोड़ देते हैं। दो शब्द तथा टेलीग्राफिक वाणी के चरणों में वे पहला व्याकरण- एक भाषा में समझने लायक वाक्यों के निर्माण हेतु शब्दों को जोड़ने और क्रम में व्यवस्थित करने के नियम को सीखता है। विभिन्न भावों में शब्दों को जोड़ने के अलग-अलग नियम होते हैं। आप भाषा की उन विशेषताओं के बारे में कि यह किस तरह संचार में सहायक होती है, अध्याय 10 में पढ़ेंगे।

सामाजिक-सांवेदिक विकास : बच्चे के सामाजिक-सांवेगिक विकास के प्रमुख आयाम स्व (Self, यौन (Gender), और नैतिक विकास (Moral development) होते हैं। समाजीकरण के लिए **तादात्मीकरण** आवश्यक है। तादात्मीकरण एक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति को उसकी पहचान यानी कि वह कौन है और क्या होना चाहता है, यह निश्चित करने में योगदान करती है। तादात्मीकरण की प्रक्रिया प्रेक्षण और अनुकरण का परिणाम होती है। माता-पिता तथा अन्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का अनुकरण तथा सामाजिक घटनाओं के प्रेक्षण तथा भागीदारी द्वारा बच्चे सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त व्यवहार करना सीखते हैं। पाँच-छह साल की आयु होते-होते बच्चे यह जान जाते हैं कि वह लड़का है या लड़की है। वे अन्य भूमिकाएं जैसे बड़ी बहन, घर में माँ के सहायक आदि की भूमिका भी सीख लेती हैं। भविष्य में जिन भूमिकाओं को निभाने की संभावना रहती है; जैसे – पिता, दाँत का डॉक्टर, अध्यापक या पुलिस का आदमी, उन्हें भी वे क्रमशः सीखते हैं। एक बार जब बच्चे स्कूल में प्रवेश ले लेते हैं तो उनकी सामाजिक दुनिया उनके परिवार के बाहर फैल जाती है। वे अपनी उम्र

के बच्चों के साथ ज्यादा समय बिताते हैं। इससे बच्चों के सामाजिक मेल-मिलाप का संदर्भ बदलता है। प्रौढ़ लोगों के देख-रेख वाले संदर्भ के बदले मित्रों का प्रभाव बढ़ जाता है। जब प्रौढ़ लोग बच्चों के क्रियाकलाप का पर्यवेक्षण करते हैं तब किसी न किसी तरह की शिक्षा देने की कोशिश उसमें शामिल रहती है। जब कई बच्चे इकट्ठे होते हैं (वहाँ कोई प्रौढ़ मौजूद नहीं रहता है) तब वे अपने बीच अधिकार को बाँटते हैं और सबके लिए स्वीकृत नियम बनाते हैं, जो बातचीत, समझौता और बहस के बाद बनते हैं। यह सब बच्चों के नए संज्ञानात्मक और सामाजिक कौशलों के अनुभव और अवसर प्रदान करता है। इस तरह बच्चे अपनी मित्रमंडली के साथ जो समय बिताते हैं, वह उनके विकास को दिशा देता है।

बच्चों की अपने बारे में जो समझ होती है वह बाह्य विशेषताओं (जैसे – लंबा, काला बाल, लड़की) से आंतरिक विशेषताओं जैसे "मैं चतुर हूँ तथा मैं लोकप्रिय हूँ" या "जब मैं स्कूल में अच्छा काम करता हूँ" की ओर अग्रसर होता है। अपने बारे में दिए जाने वाले विवरणों में स्व के सामाजिक पक्षों; जैसे – सामाजिक समूहों, स्कूल, क्लब और धार्मिक समूहों का भी उल्लेख होता है। इसमें सामाजिक तुलना भी शामिल होती है। बच्चे इस बारे में सोचते हैं कि दूसरों की तुलना में वे क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते हैं। जैसे – वे कहते हैं "मैंने विवेक से ज्यादा नंबर लाए" या "मैं कक्षा में दूसरों से ज्यादा तेजी से दौड़ सकता हूँ।"

बच्चों के विकास का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है, मनुष्य के कार्यों के सही और गलत होने के बारे में अंतर करना, सीखना। जिस तरह बच्चे सही और गलत के बीच अंतर करते हैं, ग्लानि महसूस करते हैं, दूसरों की जगह अपने को रख कर देखते हैं और जब वे कठिनाई में होते हैं तब दूसरों को सहायता देते हैं। यह सब नैतिक विकास का हिस्सा है। जिस तरह बच्चे संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न चरणों से गुजरते हैं उसी तरह कोहलबर्ग के अनुसार वे नैतिक विकास के विभिन्न चरणों से भी गुजरते हैं। आप नैतिक विकास के बारे में विस्तार से अध्याय 12 में पढ़ेंगे।

आपने अब तक पढ़ा

आपने यह पढ़ा कि विद्यालयपूर्व वर्षों में बच्चे शारीरिक रूप से विकसित होते हैं और पेशीय कौशलों में पर्याप्त सुधार प्रदर्शित करते हैं। प्रतीकात्मक चिंतन, आत्मकेंद्रिकता तथा जीववादी सोच उनकी चिंतन प्रक्रियाओं की प्रमुख विशेषताएं हैं। बाल्यावस्था के मध्य तथा उत्तरार्ध में संज्ञानात्मक क्षमताओं में और स्मृति में निरंतर वृद्धि होती है। भाषा-विकास, माता-पिता और दूसरे बच्चों के साथ संपर्क और अंतःक्रिया द्वारा सहज होता है। बच्चे के समाजीकरण में परिवार की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। संगी-साथियों के साथ संबंध, अपने बारे में विचार (स्व संप्रत्यय) तथा यौन भेद बच्चों के विकास को प्रभावित करते हैं।

आपने कितना सीखा

उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

1. *गर्भाधान से जन्म तक की अवधि का नाम ________ है।*
2. *पूर्व-प्रसव विकास की तीन प्रमुख अवस्थाएं हैं ________, ________, तथा ________।*
3. *जन्म से एक माह तक की आयु के शिशुओं को ________ कहते हैं।*
4. *नवजात शिशु द्वारा उद्दीपकों के प्रति होने वाली स्वचालित अनुक्रियाओं को ________ कहा जाता है।*
5. *नवजात में विद्यमान स्थायी प्रतिवर्त हैं ________, ________, ________।*
6. *जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का नाम है ________ ________।*
7. *प्रत्येक चरण में विशेषता को ________ कहते हैं।*
8. *एक विशिष्ट आयु में पाई जाने वाली सामाजिक प्रत्याशाओं का नाम है ________।*

उत्तर – 1. पूर्वप्रसव काल, 2. अंकुरण, भ्रूण तथा फीटस, 3. नवजात, 4. प्रतिवर्त, 5. सांस लेना, चूसना, पलक झपकाना, 6. चरण, 7. प्रमुख विशेषता, 8. विकासात्मक कार्य।

किशोरावस्था

'किशोरावस्था' को अंग्रेजी में adolescence कहते हैं। यह शब्द लैटिन भाषा के शब्द adolescere से बना है, जिसका अर्थ है "परिपक्व होना"। यह बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच विस्तृत जीवन विस्तार का संक्रमण काल है। किशोरावस्था को सामान्यतः **जीवन का वह चरण माना जाता है जो तारुण्य या वयःसंधि (Puberty) के शुरू होने के समय आरंभ होता है जब यौन परिपक्वता या प्रजनन की क्षमता प्राप्त हो जाती है।** दैहिक और मानसिक दोनों

दृष्टियों से यह तीव्र परिवर्तन की अवधि है। हालांकि इस चरण में होने वाले शारीरिक परिवर्तन सार्वभौमिक होते हैं, तथापि किशोर के अनुभवों के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयाम सांस्कृतिक संदर्भ पर भी निर्भर करते हैं। जैसे – उन संस्कृतियों में जहां किशोरावस्था को समस्या या संशयग्रस्त माना जाता है, किशोर को उस संस्कृति से भिन्न अनुभव प्राप्त होते हैं जिनमें किशोरावस्था को प्रौढ़ व्यवहार का आरंभ माना जाता है और उन्हें दायित्वपूर्ण कार्य करने का अवसर मिलता है। किशोरों को अनिश्चय, अकेलापन, अपने बारे में संदेह और अपने और अपने भविष्य के बारे में चिंता का अनुभव होता हैं, परंतु विकास की चुनौतियों को सफलतापूर्वक सामना करने के बाद वे आनंद और सक्षमता की भावना का भी अनुभव करते हैं। एक किशोर द्वारा अनुभव की जाने वाली प्रमुख चुनौतियाँ हैं : किशोरावस्था की कामुकता (Sexuality) तथा अस्मिता का निर्माण (Identity formation)।

शारीरिक विकास : 'प्यूबर्टी' या यौनगत परिपक्वता बाल्यावस्था के अंत और किशोरावस्था के आरंभ को बताती है। इसमें वृद्धि की दर और यौनगत विशेषताओं दोनों दृष्टियों से व्यापक स्तर पर परिवर्तन होते हैं। प्यूबर्टी की अवधि में जिन हार्मोनों का स्राव होता है, उनसे प्राथमिक तथा द्वितीयक यौन विशेषताओं का विकास होता है। प्राथमिक विशेषताओं में प्रजनन (Reproduction) से जुड़ी विशेषताएँ आती हैं तथा द्वितीय विशेषताएँ वे हैं, जो किशोरावस्था में प्रकट होती हैं।

किशोरावस्था में पाई जाने वाली वृद्धि की तीव्रता तथा द्वितीयक यौन विशेषताओं का विकास शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था के बाद तीव्र गति से विकास के आरंभ को व्यक्त करता है। लड़कों में होने वाले परिवर्तनों में वृद्धि में तीव्रता, मुख के ऊपर बालों का उगना और आवाज में परिवर्तन सम्मिलित हैं। लड़कियों में ऊँचाई में तीव्र वृद्धि, प्रायः मासिक धर्म शुरू होने के दो वर्ष पहले शुरू होती है। शारीरिक विकास की तीव्रता लड़कों में 12 या 13 वर्ष की आयु में और लड़कियों में 10 या 11 वर्ष की आयु में घटित होती है। इस संदर्भ में यह याद रखना चाहिए कि लड़कों और लड़कियों में प्यूबर्टी कुछ वर्ष विलंब से भी हो सकती है, क्योंकि व्यक्तियों और संस्कृतियों में इस बारे में भिन्नता पाई जाती है।

किशोरावस्था का एक महत्त्वूपर्ण विकासात्मक कार्य अपने शारीरिक स्व/परिपक्वता को स्वीकार करना है। किशोरों को अपने शरीर या देहयष्टि की वास्तविक प्रतिमा विकसित करनी होती है, जो उन्हें स्वीकार्य हो।

किशोरों की आत्मकेंद्रिकता : किशोरों का सोचना आत्मकेंद्रित होता है। डेविड एलकाइंड के अनुसार **कल्पित श्रोता समूह** तथा **व्यक्तिगत रूप से बनाई गई कहानियाँ** (गल्प) किशोरों की आत्मकेंद्रिकता के प्रमुख अवयव हैं। किशोरों में अपनी ओर दूसरों का ध्यान आकर्षित करने की प्रवृत्ति सामान्य रूप में पाई जाती है। यह आत्मकेंद्रिकता को ही व्यक्त करती है। उनके मन में लोग हमारे ऊपर ध्यान दें, यह सोचना कि सभी लोग उन्हें ही देख रहे हैं या हर कोई व्यक्ति उनके कपड़ों पर धब्बे देखेगा, इस तरह के विचार उठते रहते हैं। यह उनके कल्पित श्रोता समूह का ही हिस्सा है। इसका तात्पर्य किशोरों का यह विश्वास है कि सभी लोग उन्हीं को लेकर सोच-विचार कर रहे हैं। व्यक्तिगत गल्प किशोरों की आत्मकेंद्रिकता का अंग है जो उनके अनोखेपन को व्यक्त करती है। इससे उन्हें यह महसूस होता है कि उन्हें कोई भी ठीक से नहीं समझता और उन्हें अपनी पहचान बनाए रखने के लिए वास्तविकता की दुनिया से परे अपने इर्द-गिर्द कहानी गढ़नी पड़ती है।

यौनगत विकास : वयःसंधि (प्यूबर्टी) में होने वाले जैविक परिवर्तन कई कारणों से होते हैं। सेक्स हार्मोन के श्राव को निर्धारित करने वाली अंतःश्रावी ग्रंथि पिट्यूटरी है। **एंड्रोजेन** (पुरुष हार्मोन) तथा **एस्ट्रोजेन** (स्त्री हार्मोन) विकसित हो रहे बच्चे की सेक्स ग्रंथि से निःसृत होते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों में सेक्स ग्रंथि से *प्रोजेस्टोरोन* नामक हार्मोन निःसृत होता है। यह लड़कियों में प्रजनन क्षमता (Reproductive capacity) से जुड़ा होता है। आरंभ में एस्ट्रोजेन तथा एंड्रोजेन लड़कों और लड़कियों दोनों में पाए जाते हैं परंतु लड़कों की सेक्स ग्रंथि से एंड्रोजेन और लड़कियों में एस्ट्रोजेन की प्रमुखता रहती है। इनकी प्रबलता से पुरुष और स्त्री के बीच शारीरिक बनावट में अंतर पैदा होता है, परंतु पुरुष या स्त्री किसी भी सेक्स का सामान्य विकास होने में दोनों की जरूरत होती है।

यह भी जानना आवश्यक है कि हार्मोन तथा सांस्कृतिक वातावरण दोनों मिलकर व्यक्ति की **स्त्री या पुरुष के रूप में अस्मिता** (Identity) या पहचान को निर्धारित करते हैं। लड़के और लड़कियाँ हार्मोनों में अंतर के कारण अलग-अलग ढंग से व्यवहार करते हैं। साथ ही जन्म के बाद पहले दिन

से ही वेश-भूषा, खिलौने तथा क्रियाकलाप की दृष्टि से लड़के और लड़कियाँ अलग-अलग ढंग से रखे जाते हैं। ये सभी मिलकर उन्हें भिन्न-भिन्न तरह से व्यवहार करने के लिए बाध्य करते हैं।

किशोरावस्था में सेक्स से जुड़ी प्रवृत्ति : वयःसंधि की अवस्था में सेक्स से जुड़े विषयों में रुचि बढ़ जाती है तथा सेक्स की भावनाओं की चेतना विकसित होती है। सेक्स के प्रति यह रुझान शरीर में होने वाले जैविक परिवर्तनों की चेतना तथा संगी-साथियों, माता-पिता और समाज द्वारा सेक्स पर बल देने का परिणाम होता है। अनेक किशोरों में सेक्स के बारे में या तो सही जानकारी नहीं रहती है या फिर गलत जानकारी रहती है। इसलिए किशोरों के मन में सेक्स को लेकर उथल-पुथल मची रहती है। चूँकि सेक्स ऐसा विषय है, जिसके बारे में माता-पिता बच्चों के साथ बातचीत करने में संकोच करते हैं, इसलिए किशोर सेक्स से जुड़े सरोकारों के बारे में काफी गोपनीयता बरतते हैं, जो सूचना के आदान-प्रदान और पारस्परिक संचार को कठिन बना देता है। किशोरों का सेक्स संबंधी रुझान एड्स तथा सेक्स से जुड़े अन्य रोगों के खतरों को ध्यान में रख कर चिंता का विषय बनता जा रहा है। सेक्स के साथ जुड़ी पहचान व्यक्ति के सेक्स के प्रति दृष्टिकोण को परिभाषित करती है और संबंधित व्यवहार को निर्देशित करती है। इस प्रकार वह किशोरों के लिए एक महत्त्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है।

पहचान

आपने ऐसे प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने का प्रयास किया होगा कि मैं कौन हूँ? मुझे किन विषयों का अध्ययन करना चाहिए? क्या मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ? क्यों कुछ लोगों को

बाक्स 5.4 सेक्स भूमिका, यौन तथा मित्रों के साथ संबंध

बच्चों के समाजीकरण के अनुभव उनमें पुरुष और स्त्री से की जाने वाली विभिन्न अपेक्षाओं का विकास करते हैं। जन्म से ही माता-पिता शिशुओं में लिंग के आधार पर भेदभाव करते हैं। बच्चों के विकास के दौरान लड़के व लड़कियों के कपड़ों, खिलौनों व रंगों की पसंद तथा केश-विन्यास में अंतर बना रहता है। माता-पिता के अलावा, अन्य स्रोतों; जैसे – विद्यालय, संचार माध्यम, साथी, संस्कृति एवं परिवार के अन्य संदस्यों से भी बच्चे लिंग के आधार पर भूमिकाएँ सीखते हैं। विकास के प्रारंभिक वर्षों में इन भूमिकाओं पर माता-पिता का विशेष प्रभाव पड़ता है। वे पुरस्कार और दंड के द्वारा बच्चों में अपने लिंग के अनुरूप उचित व अनुचित व्यवहारों को विकसित और प्रोत्साहित करते हैं। वे लड़कियों को महिला की तरह ("गीता, तुम फ्राक में अच्छी लगती हो") तथा लड़कों को पुरुषों की तरह ("आनंद तुम लड़के हो, तुम मेज उठा सकते हो") व्यवहार करने की प्रवृत्ति को पुरस्कृत करते हैं। मित्रों, विद्यालय, अध्यापक, संचार-माध्यमों का लिंग के अनुरूप विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

एक बार जब बच्चों को स्त्री या पुरुष की भूमिका का ज्ञान हो जाए तो वे अपनी दुनिया को उसी के अनुरूप व्यवस्थित कर लेते हैं। बच्चे सामाजिक-सांस्कृतिक मानकों और रुचियों के अनुसार लिंग के लिए उपयुक्त व्यवहार करने के लिए आंतरिक रूप से अभिप्रेरित रहते हैं। लिंग विशेष अर्थात् स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं में दृढ़ता तब आती है जब व्यक्ति समाज में स्त्री/पुरुष के लिए उपयुक्त ढंग से सूचनाओं को ग्रहण करने और संगठित करने के लिए तत्पर रहता है।

मैत्री संबंध : *किशोरावस्था के दौरान मित्र समूह की सदस्यता की प्रधानता होती है। माता-पिता के साथ मतभेद या हठ के कारण उत्पन्न समस्या पर वे साथी किशोरों को समर्थन देते हैं। साथियों के समूह द्वारा स्पष्ट पहचान देने के कारण 'मैं कौन हूँ?' जैसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देने में सहायक होता है। हर व्यक्ति की पहचान में साथियों के समूह में उसकी अपनी भूमिका का विशेष महत्त्व होता है। किशोरावस्था में लोग सामाजिक समूह के प्रति सजग रहते हैं, समूह में अपने व्यवहार तथा साथी उनके बारे में क्या सोचते हैं इत्यादि प्रश्नों पर वे विशेष ध्यान देते हैं। किशोर में अपनी अस्मिता या पहचान ढूँढ़ने तथा अपने माता-पिता से अलग एक व्यक्ति के रूप में अपने को स्थापित करने की इच्छा इसका प्रमुख कारण होती है। उनके साथी संकट के समय समाधान प्रस्तुत करते हैं। समान प्रकार के वस्त्र पहनते हुए, समान केश-विन्यास तथा समान प्रकार का संगीत सुनना आदि ऐसे तरीके हैं जिससे किशोर अपनी अलग-पहचान के प्रयास के रास्ते में उठने वाले विरोध को नकारने की कोशिश करता है।*

बेसहारा व्यक्तियों की सेवा करने में संतोष मिलता है, जबकि दूसरों को पैसा कमाने में? इन सब प्रश्नों के उत्तर में *पहचान या अस्मिता का विचार संलग्न है।* पहचान का अभिप्राय मैं क्या हूँ? मेरी मर्यादा क्या है? मेरी निष्ठा व विश्वास क्या हैं ? जैसे प्रश्नों के उत्तर से है। पहचान प्राप्त करने की कोशिश में हम अपने में क्या स्थिर है, क्या बदल रहा है, और अपने कौशलों की तथा व्यक्तिगत विशेषताओं की स्पष्ट समझ प्राप्त करते हैं तथा समाज में अपनी जगह तलाशते हैं। किशोरों को यह समझना पड़ता है कि जीवन में क्या हो रहा है और किन महत्त्वपूर्ण लोगों पर भरोसा किया जा सकता है। अस्मिता से जीवन में निरंतरता आती है।

किशोरों का प्रथम कार्य होता है अपने माता-पिता और अभिभावकों से अलग अपनी एक स्वतंत्र पहचान बनाना। बाल्यावस्था में बच्चे का आत्म-सम्मान माता-पिता के आदर्शों और विश्वासों को आत्मसात् करने की प्रक्रिया द्वारा परिचालित होता है। किशोरावस्था में माता-पिता अथवा अभिभावकों से पृथक्करण की प्रक्रिया किशोरों को व्यक्तिगत रूप से सोचने-विचारने तथा अपने आदर्श तथा विश्वासों को स्थापित करने के लिए समर्थ बनाती है। पहचान की प्राप्ति की प्रक्रिया में किशोर/किशोरी को अपने माता-पिता के साथ और स्वयं अपने मन में विरोध का अनुभव हो सकता है। एक ओर किशोर आजादी की इच्छा करते हैं पर वह इससे डरते भी हैं और इसी कारण अपने माता-पिता पर बहुत अधिक निर्भर भी रहते हैं। आत्मविश्वास और असुरक्षा दोनों तरह के अनुभवों के बीच झूलना, इस अवस्था में विशेष रूप में पाया जाता है। एक ओर तो किशोर/किशोरी यह शिकायत कर सकते हैं कि उनके साथ बच्चों जैसा व्यवहार किया जा रहा है और वे ज्यादा जिम्मेदारी चाहते हैं तो दूसरी ओर अपने माता-पिता पर निर्भर रहकर सुविधाएं भी पाना चाहते हैं।

किशोरावस्था में पहचान का निर्माण कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है। पारिवारिक रिश्ते महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाते, क्योंकि किशोर/किशोरी अपना अधिक समय घर के बाहर बिताते हैं और मित्रों द्वारा स्वीकृति तथा समर्थन की विशेष आवश्यकता महसूस करते हैं। मित्रों के साथ अधिक मेलजोल उन्हें अपने सामाजिक गुणों को बढ़ाने और अलग-अलग सामाजिक व्यवहारों का उपयोग करने का अवसर देता है। इससे उन्हें यह जानने में सहायता मिलती है कि वे कैसा व्यक्ति बनना चाहेंगे और किस तरह के रिश्ते कायम करना चाहेंगे। इससे उन्हें सामाजिक पहचान बनाने में भी मदद मिलती है।

किशोरावस्था के दौरान मित्रों या दोस्तों के साथ नजदीकी रिश्ते बनाने की जरूरत ज्यादा महसूस होती है और उनके द्वारा स्वीकृति तथा अस्वीकृति के प्रति चिंता बढ़ जाती है। इस तरह के खास रिश्तों को टूटने से बचाने के लिए ऐसा अक्सर पाया गया है कि किशोर अपने दोस्तों की पसंद, नापसंद आदि के अनुसार चलने की कोशिश करते हैं। हमउम्र मित्र और माता-पिता दो मुख्य स्रोत हैं जिनका किशोरों पर सबसे ज्यादा असर पड़ता है। कभी-कभी माता-पिता के साथ मतभेद की स्थिति उनको अपने हमउम्रों के साथ अधिक प्रगाढ़ संबंध और पहचान को जन्म देती है। परंतु आमतौर पर माता-पिता और हमउम्र पूरक दायित्वों का निर्वाह करते हैं और किशोरों की विभिन्न जरूरतों को पूरा करते हैं। किशोरावस्था के दौरान पहचान के विकास में माता-पिता और हमउम्र दोनों के प्रति अलग-अलग निष्ठा या प्रतिबद्धता स्थापित करना अपेक्षित होता है। दूसरी ओर यदि एक किशोर द्वारा, माता-पिता और दूसरे लोगों की दृष्टि में जो वांछित है, उसके विपरीत आचरण करने की कोशिश उसे एक नकारात्मक पहचान के निर्माण की ओर ले जाती है। व्यावसायिक लगाव भी किशोरों के पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाला कारक है। यह प्रश्न कि "बड़े होकर तुम क्या बनोगे?" भविष्य के विषय में सोचने की योग्यता और यथार्थपरक पा सकने लायक लक्ष्य स्थापित करने की क्षमता की अपेक्षा करता है। अतः स्वयं के बारे में एक स्थिर सोच के विकास के लिए एक यौनगत पहचान, एक व्यावसायिक पहचान और एक सामाजिक पहचान स्थापित करने की जरूरत होती है।

क्रियाकलाप 5.4

स्वयं और अपनी पहचान के बीच संबंधों को समझना

1. मैं कौन हूँ?

एक आदमी, बेटा/बेटी , मित्र, छात्र, भाई/बहन के रूप में अपने बारे में लिखिए।

क्रियाकलाप 5.5

निजी अनुभव और व्यवहार को संबंधित करना

पिछले 2-3 वर्षों के दौरान हुए अपने अनुभवों के बारे में सोचिए और निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :

1. *क्या आपका अपने माता-पिता के साथ विरोध था? मुख्य समस्याएं क्या थीं? आपने उन समस्याओं का समाधान कैसे किया और किसकी सहायता ली?*
2. *क्या आप उन समस्याओं को बेहतर ढंग से सुलझाने के बारे में सोच सकते हैं?*
3. *क्या आप किसी दल, क्लब, टीम या संस्था के सदस्य हैं? उस संगठन के सदस्य के रूप में क्या अपेक्षाएँ हैं (वस्त्र, भाषा, भूमिका आदि)?*
4. *क्या उस दल की गतिविधियाँ किसी भी रूप में आपको लाभ या हानि पहुंचा रही हैं?*
5. *यदि आप उस दल से अपने को अलग कर लें तो आपको किस तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ सकता है और आप उनका समाधान कैसे करेंगे?*

किशोरावस्था की कुछ समस्याएँ

एक प्रौढ़ के रूप में जब हम अपनी किशोरावस्था के दिनों पर गौर करते हैं और विरोधों, अनिश्चितताओं और कभी-कभी अकेलापन, दलीय दबाव आदि को याद करते हैं तो महसूस करते हैं कि वह निश्चित ही जिंदगी का एक बहुत नाजुक दौर था। इसी अवधि के दौरान हमउम्रों का प्रभाव नई आजादी और अनसुलझी समस्याएँ व्यक्ति के लिए मुसीबतें पैदा कर सकती हैं। किशोरों को धूम्रपान, मादक पदार्थों, शराब, माता-पिता के बताए नियमों को तोड़ने आदि को लेकर फैसले लेने पड़ते हैं। ऐसे फैसले अक्सर उनके परिणामों के बारे में सोचे बिना ही लिए जाते हैं। हमउम्रों से संबंध और रोमांटिक लगाव से भावनात्मक तनाव पैदा होता है, जिनसे भावनात्मक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। किशोरों को अक्सर इन समस्याओं का सामना माता-पिता के मार्गदर्शन के बिना ही करना पड़ता है। किशोरों द्वारा सामना की जाने वाली मुख्य समस्याओं में आपराधिक प्रवृत्ति और मादक द्रव्यों की आदत प्रमुख हैं।

आपराधिक प्रवृत्ति : इसके अंतर्गत सामाजिक रूप से अस्वीकार्य बर्ताव, कानूनी दुर्व्यवहार से लेकर अपराध तक शामिल हैं। विद्यालय से भागना, घर से भागना, चोरी या धोखाधड़ी या तोड़फोड़ करना आदि इसके उदाहरण हैं। अपराध और बर्ताव संबंधी समस्याओं से ग्रस्त किशोरों में नकारात्मक पहचान, लोगों पर कम भरोसा और उपलब्धि का निम्न स्तर पाया जाता है। आपराधिक स्वभाव माता-पिता द्वारा समर्थन न देने, असंगत अनुशासन और पारिवारिक कलह से पैदा होता है। फिर भी, ज्यादातर बाल-अपराधी हमेशा के लिए अपराधी नहीं रहते। अपनी मित्रमंडली में बदलाव, अपने सामाजिक दायित्वों को अधिक समझने और स्वयं के महत्त्व को समझने; अपने आदर्श लोगों के सकारात्मक पहलुओं को अपनाने, नकारात्मक सोच को छोड़ने और अपने बारे में ऋणात्मक धारणाओं से ऊपर उठने, आपराधिक प्रकृति को कम करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

मादक द्रव्यों का उपयोग : किशोरावस्था धूम्रपान, शराब तथा मादक पदार्थों के सेवन आदि की दृष्टि से संवेदनशील होती है। कुछ किशोर तनाव से निपटने के लिए धूम्रपान और मादक पदार्थों का सहारा लेते हैं। ऐसा करना परिस्थितियों से निपटने और दायित्वों के साथ निर्णय लेने की क्षमता के विकास में बाधा डाल सकता है। धूम्रपान और मादक पदार्थों का सेवन सामूहिक दबाव और किशोर की समूह में शामिल होने की इच्छा या प्रौढ़ों की तरह व्यवहार करने की इच्छा या स्कूल कार्य या सामाजिक गतिविधियों के दबाव से बचने की जरूरत आदि के कारण हो सकता है। यह पाया गया है कि जो किशोर मादक पदार्थ, शराब और निकोटिन के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं वे आवेगी, आक्रामक, चिंतित, उदास और ढुलमुल होते हैं, इनमें स्वाभिमान और सफलता की निम्न स्तर की अपेक्षा होती है। हमउम्रों का दबाव भी मादक पदार्थों के सेवन की शुरुआत करने में योगदान देते हैं और अगर यह सब लंबे समय तक जारी रहा तो मादक पदार्थों पर निर्भरता की ओर अग्रसर कर देता है। अगर किशोर मादक पदार्थों के सेवन से छुटकारा पाने में सफल नहीं होते हैं तो यह उनके बाकी जीवन को बुरी तरह से खतरे में डाल सकता है। माता-पिता, हमउम्र बच्चे और वयस्कों के साथ सकारात्मक संबंध किशोरों को मादक पदार्थों के सेवन से बचाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। भारत में एक सफल मादक पदार्थ विरोधी कार्यक्रम दिल्ली में सोसायटी फॉर थिएटर एजुकेशन प्रोग्राम है। यह 13-25 वर्ष तक की आयु के लोगों का नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से मनोरंजन करते हैं और साथ ही मादक पदार्थों से दूर रहने की शिक्षा भी देते हैं। यूनाइटेड नेशंस इंटरनेशनल

ड्रग कंट्रोल प्रोग्राम (UNDCP) ने इस कार्यक्रम को इस क्षेत्र में कार्य कर रही गैर सरकारी संस्थाओं को अपनाने हेतु उदाहरण के रूप में चुना है।

आपने अब तक पढ़ा

अब तक आप जान गए होंगे कि किशोरावस्था बचपन और यौवन के बीच की एक अवधि है, जो यौवन के आगमन का सूचक है। किशोरावस्था में होने वाले बदलाव में तीव्र शारीरिक परिपक्वता, लैंगिक पहचान का विकास, सामाजिक पहचान का निर्माण और व्यावसायिक निर्णय प्रमुख होते हैं। किशोरावस्था किसी तरह की बगावत, संकट, अपराध या विचलन का समय नहीं है। इसे निर्णय लेने तथा समाज में अपनी जगह बनाने के समय के रूप में लेना चाहिए, जो एक व्यक्ति की कमजोरियों और शक्तियों को व्यक्त करता है। इसी कारण किशोरों को उन अवसरों की तलाश करनी चाहिए और उन लोगों का समर्थन पाने का यत्न करना चाहिए, जो उनकी परवाह करते हैं।

क्रियाकलाप 5.6

एक बाल अपराधी की मदद

कक्षा या घर में एक बाल अपराधी या शराब अथवा मादक पदार्थों का सेवन करने वाले मित्र को मदद पहुंचाने के संभव तरीकों की चर्चा कीजिए। उन संस्थाओं और लोगों के बारे में जानकारी एकत्र कीजिए जो ऐसी समस्याओं के लिए मदद प्रदान करते हैं।

आपने कितना सीखा

(1) किशोरावस्था वह अवस्था है जो ________ की शुरुआत की सूचना है।

(2) लैंगिक परिपक्वता का समय ________ के रूप में जाना जाता है।

(3) पूर्व-प्रसवकाल के दौरान (माँ के पेट में) नर अंगों के विकास के लिए जिम्मेदार हार्मोन का नाम ________ है।

(4) वह प्रक्रिया, जिससे बच्चा अपने उपयुक्त लिंग की पहचान करना सीखता है को ________ कहा जाता है।

(5) वह प्रक्रिया, जिससे स्त्रियों और पुरुषों के बीच शारीरिक भिन्नता का विकास होता है, को कहा जाता है ________ ।

(6) ________ किशोरों के चिंतन की विशेषता है।

उत्तर – 1. वयःसंधि (प्यूबर्टी), 2. प्यूबर्टी, 3. एंड्रोजन, 4. लैंगिक पहचान, 5. लैंगिक विभेदन, 6. आत्मकेंद्रिकता।

बाक्स 5.5 परिवार और मानव विकास

आजकल बच्चे कई तरह के परिवारों में पल बढ़ रहे हैं। इनमें कामकाजी माताएँ, एकल परिवार (केवल माँ या पिता), तलाकशुदा माता-पिता और सौतेले माता-पिता, पारिवारिक जीवन के कुछ ऐसे पक्ष हैं, जो बच्चों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। बच्चों के विकास और वृद्धि के लिए परिवार सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है, क्योंकि यह बच्चों को उनके जीवन में पहली बार सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश उपलब्ध कराता है। अगर बच्चा गोद लिया गया है या किसी संस्था में रह रहा है तो भी अभिभावक बच्चों के आनुवंशिक गुणों के उद्भव और विकास के लिए वातावरण प्रदान करते हैं। शारीरिक देखभाल से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उन लोगों का बर्ताव और सोच है जिनके साथ बच्चा घुलमिल रहा है। इस दौरान उसमें स्थापित सुरक्षा या असुरक्षा की भावना उसकी शारीरिक और मानसिक वृद्धि को जीवनपर्यंत प्रभावित करती है।

सामान्य परिवार माता-पिता और बच्चों से बना होता है। परिवार के इस मूल रूप के विभिन्न परिवर्तित रूप भी मौजूद हैं, जो एक बच्चे के विकास और वृद्धि को प्रभावित करते हैं। कई परिवारों में केवल माता या पिता उपस्थित रहते हैं। अविवाहित माताएं और बच्चे भी एकल परिवार में आते हैं। तलाक का बच्चों पर प्रभाव कई बातों पर निर्भर करता है। उनमें रिश्तेदारों, दोस्तों, नौकर-चाकर आदि का सहयोग,

परिरक्षक और भूतपूर्व पति/पत्नी के बीच संबंध, वित्तीय संसाधनों और बच्चों की उम्र की भी प्रमुख भूमिका होती है। शोधों से ज्ञात है कि उदासीन या अवसादग्रस्त माता-पिता और बच्चों के सामंजस्य और मानसिक विकार मुख्य रूप से अवसाद के बीच घनिष्ठ संबंध है।

समकालीन सोच में एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में परिवार एक प्रकार की उप-व्यवस्थाओं से बना हुआ माना जाता है जिसे पीढ़ी, लिंग और निभाए गए कर्तव्य के रूप में परिभाषित किया गया है। परिवार का हर सदस्य कई उप-व्यवस्थाओं में भाग लेता है। परिवार के सदस्य और पारिवारिक उप-व्यवस्थाएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक दूसरे से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए, माता-पिता के बीच मतभेद परोक्ष रूप से बच्चों के साथ माता-पिता के व्यवहार को प्रभावित करता है।

प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापे की चुनौती

एक **प्रौढ़** सामान्य रूप से वह व्यक्ति होता है, जो उत्तरदायी, परिपक्व, आत्मनिर्भर और समाज से अच्छी तरह जुड़ा होता है। ये सारे गुण और विशेषताएं लोगों में एक ही समय में विकसित नहीं होतीं। कब कोई व्यक्ति प्रौढ़ावस्था में पदार्पण करता है? महाविद्यालय की पढ़ाई समाप्त करने के बाद अथवा नौकरी प्राप्त कर लेने के बाद अथवा आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त कर लेने के बाद? अथवा विवाहित होने के बाद? अथवा जब वह स्वतंत्र रूप से रहने लगता है? आपने देखा होगा कि कई लोग महाविद्यालय की पढ़ाई के साथ ही नौकरी प्राप्त करने के बाद अथवा विवाहित होने पर अध्ययन नहीं करते। कुछ लोग विवाहित होने के बाद और आर्थिक आत्मनिर्भरता पाने के बाद भी अपने माता-पिता के साथ ही रहते हैं। इन भिन्नताओं से यह पता चलता है कि जब एक व्यक्ति प्रौढ़ावस्था को प्राप्त करता है अथवा एक प्रौढ़ के कार्य को निभाता है तो उसमें समय की दृष्टि से काफी भेद होता है।

जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं के लिए सबसे उपयुक्त समय क्या है, यह व्यक्ति की संस्कृति से प्रभावित होता है और वह एक संस्कृति के अंदर व्यक्तियों के विकास में समानता पैदा करता है। उदाहरण के लिए, विवाह, नौकरी और बच्चे कब हों, इसके लिए उचित समय विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग होते हैं। जीवन की घटनाओं में इन विभिन्नताओं के बावजूद भी प्रौढ़ लोग किस तरह कार्य करते हैं उनकी कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्न हैं :

प्रौढ़ावस्था

व्यक्ति प्रारंभिक वर्षों में विकास संबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यों को करता है, जैसे कैरियर या व्यवसाय का चयन, विवाह, माता-पिता बनना और परिवार में परिवर्तन।

कैरियर : सभ्यता के आरंभ से ही कैरियर के चयन के लिए तैयारी और उसमें प्रवेश, चुनौती के रूप में रहा है। आप स्वयं भी कैरियर के चयन में दुविधा महसूस करते रहे होंगे। वास्तव में यह एक बड़ा कठिन कार्य है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के कैरियर विकल्प उपलब्ध हैं और पुनः रोजगार के अवसरों में भिन्नता भी व्यापक स्तर पर घटित हो रही है। माता-पिता का प्रभाव भी अक्सर कैरियर चुनने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किसी अवधि में नौकरी के उपलब्ध अवसर भी कैरियर के चुनाव को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक समय में सूचना-तकनीकी में विकास ने नौकरियों के लिए अधिक अवसर प्रदान किए हैं। लोग नाना प्रकार के पाठ्यक्रमों तथा व्यवसायों में जा रहे हैं।

लोग कैरियर का चयन कैसे करते हैं? व्यक्तिगत योग्यता, नौकरी के बाजार को समझने की क्षमता, स्व संप्रत्यय और माता-पिता की अपेक्षाएं कैरियर के चयन में निर्णायक होती हैं। व्यक्ति का व्यक्तितत्त्व भी कैरियर को चुनने और उसके साथ समायोजन को प्रभावित करता है। नौकरी संबंधी सूचनाएं, माता-पिता, मित्र, संबंधी, तथा जन-संचार माध्यम तथा परामर्श संबंधी सुविधाओं से प्राप्त होती हैं। प्रारंभिक कैरियर का चयन महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि व्यक्ति हर समय एक कैरियर को चुनता है तो दूसरे को बंद करता है। जैसे ही हम लोग एक कैरियर को चुनते हैं तो उसी समय हम दूसरे विकल्पों को छोड़ देते हैं। किसी व्यवसाय में प्रवेश नई भूमिका के रूप में नए उत्तरदायित्व को निभाने की शुरुआत होती है। इसमें परिवर्तन आवश्यक है, क्योंकि व्यक्ति नए कार्य को निभाने के लिए अपने आपको व्यवस्थित करता है। जीविका प्राप्त करना, व्यवसाय का चयन और कैरियर का विकास प्रौढ़ावस्था के महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं।

क्रियाकलाप 5.6

कैरियर का चयन

दस पसंदीदा व्यवसायों या पेशों की सूची नीचे दी गई है। आपको अपनी व्यक्तिगत रुचि इन पेशों के प्रति देनी है, जो जोड़ों में दिए गए हैं। प्रत्येक के साथ तुलना करते समय यह याद रखिए कि दोनों व्यवसायों में आमदनी और प्रतिष्ठा में कोई अंतर नहीं है।

प्रत्येक सेल में दो व्यवसाय दिए गए हैं (A से B तक)। दोनों की तुलना कीजिए और अपनी रुचि के अनुसार प्रत्येक दो व्यवसायों के लिए 0 से 4 तक अंक दीजिए। उदाहरण के लिए (A) को (B) से अधिक चाहते हैं तो A को 3 अंक और B को 1 अंक दीजिए। अगर आप दोनों को समान रूप से चाहते हैं तो दोनों को समान अंक दीजिए। अगर आप एक को बहुत अधिक और दूसरे को बिल्कुल पसंद नहीं करते हैं तो आप क्रमशः 4 और 0 दीजिए। अगर आप दोनों को बिल्कुल नापसंद करते हैं तो दोनों को 0 दीजिए। इस प्रकार प्रत्येक सेल में आपको कम से कम 0 और अधिक से अधिक 4 अंक देने हैं। आप प्रत्येक को 2 अंक भी दे सकते हैं। प्रत्येक व्यवसाय के जोड़े को निम्नलिखित प्रकार से दिखाया जा सकता है।

उदाहरण :

इंजीनियरिंग	*A*	*3*
फाइनेंस (वित्त)	*B*	*1*

अगर आप इंजीनियरिंग (A) को फाइनेंशियल मैनेजमेंट (B) की अपेक्षा अधिक चाहते हैं तो B को 1 अंक दीजिए।

दस सबसे अधिक इच्छित व्यवसाय इस प्रकार हैं :

- A. *इजीनियरिंग (कैमिकल, मकैनिकल, इलेक्ट्रॉनिक, कंप्यूटर आदि)*
- B. *वित्तीय प्रबंध (एकाउंटेंट, टैक्स विशेषज्ञ, बैंकर आदि)*
- C. *प्रशासनिक सेवाएं (प्रशासनिक अधिकारी, आई. ए. एस., आई. एफ. एस., आई. पी. एस. आदि)।*
- D. *चिकित्सा (चिकित्सक, साइकियाट्रिस्ट, शल्य चिकित्सक, क्लिनिकल साइकोलॉजिस्ट)।*
- E. *प्रबंध (संगठनों में प्रबंधक, विक्रय, होटल)*
- F. *कलात्मक (पेंटिंग, संगीत, मूर्ति कला, पुरातत्व)*
- G. *साहित्यिक (उपन्यासकार, इतिहासकार, अध्यापक/प्रोफेसर, पत्रकार आदि)*
- H. *सैन्य सेवा (स्थल सेना, जल सेना, वायु सेना)*
- I. *वैज्ञानिक (भौतिकशास्त्री, रसायनशास्त्री, जीव वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक)*
- J. *व्यापार (उद्योग, दुग्धोत्पादन, खेती)।*

ध्यान दें– *ये सब नमूने के पद हैं और उपचार या चिकित्सकीय मूल्यांकन के लिए इनका उपयोग वर्जित है।*

गणना

45 सेलों को पूरा करने के बाद हर एक को A, B, C इत्यादि में अलग-अलग सभी के अंकों को जोड़ें। उच्चतम अंकों को ग्रहण करें। ये तीन प्रमुख व्यवसाय हैं अगर आप इनमें उच्च क्षमता रखते हैं तो अधिक सफल हो सकते हैं। यदि व्यवसाय में रुचि सकारात्मक और अभिक्षमता के अनुकूल है तो कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय में उच्च सफलता प्राप्त कर सकता है।

कैरियर का चयन

इंजीनियरिंग A ☐ ☐ वित्त B	सैन्य सेवा H ☐ ☐ व्यापार J	वित्त B ☐ ☐ प्रबंध E	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ साहित्यिक G	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ वैज्ञानिक I
वित्त B ☐ ☐ प्रशासनिक सेवाएं C	साहित्यिक G ☐ ☐ वैज्ञानिक I	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ कलात्मक F	वित्त B ☐ ☐ कलात्मक F	वित्त B ☐ ☐ सैन्य सेवा H
प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ चिकित्सा D	कलात्मक F ☐ ☐ सैन्य सेवा H	चिकित्सा D ☐ ☐ साहित्यिक G	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ प्रबंध E	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ साहित्यिक G
चिकित्सा D ☐ ☐ प्रबंध E	प्रबंध E ☐ ☐ साहित्यिक G	प्रबंध E ☐ ☐ सैन्य सेवा H	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ कलात्मक F	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ सैन्य सेवा H
प्रबंध E ☐ ☐ कलात्मक F	चिकित्सा D ☐ ☐ कलात्मक F	कलात्मक F ☐ ☐ वैज्ञानिक I	वित्त B ☐ ☐ साहित्यिक G	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ वैज्ञानिक I
कलात्मक F ☐ ☐ साहित्यिक G	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ प्रबंध E	साहित्यिक G ☐ ☐ व्यापार J	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ सैन्य सेवा H	वित्त B ☐ ☐ वैज्ञानिक I
साहित्यिक G ☐ ☐ सैन्य सेवा H	वित्त B ☐ ☐ चिकित्सा D	कलात्मक F ☐ ☐ व्यापार J	चिकित्सा D ☐ ☐ वैज्ञानिक I	प्रशासनिक सेवाएं C ☐ ☐ व्यापार J
सैन्य सेवा H ☐ ☐ वैज्ञानिक I	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ प्रशासनिक सेवाएं C	प्रबंध D ☐ ☐ वैज्ञानिक I	प्रबंध E ☐ ☐ व्यापार J	वित्त B ☐ ☐ व्यापार J
वैज्ञानिक I ☐ ☐ व्यापार J	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ चिकित्सा D	चिकित्सा D ☐ ☐ सैन्य सेवा H	चिकित्सा D ☐ ☐ व्यापार J	इंजीनियरिंग A ☐ ☐ व्यापार J

विवाह, पितृत्व की अवस्था और परिवार : एक युवा जब अपने वैवाहिक जीवन में प्रवेश करता है, उस नए व्यक्ति को जानने का प्रयास करता है, जिसे वह पहले नहीं जानता था। ऐसी स्थिति में उसे व्यवस्थित होने के लिए कुछ प्रयास करने पड़ते हैं। जैसे एक-दूसरे की पसंद, नापसंद, रुचि, अभिरुचि को जानना-समझना आदि। उदाहरण के लिए, कोई घर पर समय बिताना पसंद करता है, कोई पढ़ाई और दूरदर्शन देखने में, तो कोई अपने मित्रों के साथ। कुछ लोग विवाह को बोझ भी समझते हैं और उसके साथ अनुकूल बनने में भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। वे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता में कमी भी महसूस करते हैं। अगर माता-पिता दोनों नौकरी करते हैं तो घर में उत्तरदायित्व और कार्य के विभाजन में उचित समायोजन आवश्यक हो जाता है।

विवाहित होने के अलावा एक प्रौढ़ के जीवन में माता-पिता बनना अधिक कठिन और जिम्मेदारीपूर्ण घटना है। यद्यपि बच्चे के प्रति हमेशा ही इसमें प्यार होता है, एक प्रौढ़ व्यक्ति का अभिभावक के रूप में जीवन विभिन्न प्रकार की स्थितियों से प्रभावित होता है; जैसे – परिवार में बच्चों की संख्या, सामाजिक समर्थन और वैवाहिक जोड़े की प्रसन्नता अप्रसन्नता आदि। वर्तमान समय में महिलाएँ घर के बाहर रोजगार तलाश कर रही हैं। वे एक ऐसे परिवार को जन्म दे रही हैं, जिसमें दोनों माता-पिता कार्यरत रहते हैं और कुछ परिवारों में एक ही अभिभावक कार्यरत हैं दोनों ही जगह बच्चों की देखभाल, उनके विद्यालय का कार्य, उनकी बीमारी और कार्यालय अथवा घर में कार्य का भार से जुड़े तनाव सक्रिय रहते हैं। दबाव के बावजूद भी अभिभावक की भूमिका विकास और संतुष्टि के लिए अनोखा अवसर प्रदान करती है। यह नई पीढ़ी से जुड़ने और उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए अच्छा अवसर प्रदान करती है। पति अथवा पत्नी की मृत्यु, तलाक, अविवाहित मातृत्व, ऐसे पारिवारिक ढांचे को उत्पन्न करते हैं जिसमें पिता या माता बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व निभाते हैं। इन परिस्थितियों में यदि प्रौढ़ (अकेले माता या पिता) को अपने परिवार और समाज के द्वारा समर्थन नहीं मिलता है तो बच्चों में कुछ निश्चित हानियां और गलत आचरण का विकास होता है।

मध्य प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था में शारीरिक और संज्ञानात्मक परिवर्तन शरीर में परिपक्वताजन्य परिवर्तनों के कारण होता है। यद्यपि इन परिवर्तनों की दर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग हो सकती है, लगभग सभी प्रौढ़ लोग अपने शारीरिक क्रियाकलाप में कुछ कमी महसूस करते हैं जैसे आँख से देखने की क्षमता घट जाती है, चमकदार रोशनी के प्रति संवेदनशीलता बढ़ जाती है, सुनने की क्षमता में कमी और शारीरिक रचना में परिवर्तन (जैसे – झुर्रियाँ पड़ना, सफेद बाल, बालों का झड़ना, वजन बढ़ना आदि)। क्या संज्ञानात्मक योग्यताएँ प्रौढ़ावस्था में परिवर्तित होती हैं? यह विश्वास किया जाता है कि कुछ संज्ञानात्मक योग्यताएँ उम्र के साथ घट जाती हैं और कुछ नहीं। स्मरण शक्ति, विशेषतः दीर्घकालिक स्मृति, अल्पकालिक स्मृति की तुलना में दुर्बल रहती है। उदाहरण के लिए, एक प्रौढ़ उम्र का व्यक्ति सुनने के बाद कोई टेलीफोन नंबर शीघ्र याद कर लेता है, लेकिन कुछ दिनों के बाद इसे अच्छी तरह सही रूप में याद नहीं रख पाता है। प्रत्यभिज्ञा (Recognition) की अपेक्षा प्रत्यावहन (Recall) करने की स्मृति बहुत ज्यादा घट जाती है। उदाहरण के लिए, वह व्यक्ति को तो पहचान सकता है, लेकिन उसका नाम नहीं याद कर पाता है। एक योग्यता, जो कि उम्र के साथ-साथ सुधरती है, वह है ज्ञान (Wisdom) की। यह जीवन के व्यावहारिक तथ्यों के बारे में निपुणता है, जो महत्त्वपूर्ण विषयों में सही निर्णय लेने में मदद करती है। यह व्यावहारिक ज्ञान मनुष्य के विकास में और जीवन संबंधी विषयों में अद्वितीय अंतर्दृष्टि उत्पन्न करता है; जैसे – उचित निर्णय लेने और समस्याओं के साथ मुकाबला करने की समझदारी। स्मरण रहना चाहिए कि व्यक्तिगत भिन्नताएं प्रत्येक अवस्था में बुद्धि को प्रभावित करती हैं। यही कारण है कि सभी बच्चे उत्कृष्ट रूप में बुद्धिमान नहीं होते हैं और न ही सभी प्रौढ़ों में ज्ञान प्रदर्शित करते हैं।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था कब प्रारंभ होती है यह आसानी से नहीं कहा जा सकता। पारंपरिक रूप से सेवानिवृत्ति की अवस्था वृद्धावस्था से जुड़ी हुई है। अब व्यक्ति दीर्घजीवी होकर अधिक आयु तक जी रहे हैं। नौकरी से निवृत्ति की आयु भी बदल रही है। इसलिए वृद्धावस्था का अंतिम बिंदु भी ऊपर जा रहा है। कुछ चुनौतियाँ जिनका सामना वृद्धों को करना पड़ता है, वे हैं – सेवानिवृत्ति, वैधव्य, बीमारी और मृत्यु। कुछ अर्थों में वृद्धावस्था का स्वरूप ही बदल रहा है। ऐसे

व्यक्ति भी हैं जो 70 वर्ष की अवस्था को पार कर चुके हैं, फिर भी बिल्कुल सक्रिय, ओजस्वी और सृजनशील हैं। अत्यंत योग्य होने के कारण जीवन के कई क्षेत्रों में समाज उन्हें मूल्यवान मानता है। विशेष रूप में राजनीति, साहित्य, व्यापार, कला और विज्ञान में अधिक उम्र के व्यक्ति काफी सक्रिय रूप में दिखते हैं। वृद्धावस्था का अनुभव व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक दशा, स्वास्थ्य की देख-रेख, सुविधा, व्यक्ति के दृष्टिकोण, समाज की आशाएं और उपलब्ध समर्थन की व्यवस्था पर निर्भर करता है।

सेवानिवृत्ति : सक्रिय व्यावसायिक जीवन से सेवानिवृत्ति काफी महत्त्वपूर्ण है। इसका अनुभव सांस्कृतिक रूप से तय होता है। कुछ लोग सेवानिवृत्ति को एक बिलकुल नकारात्मक बदलाव समझते हैं। वे उसे संतुष्टि और आत्म-गौरव के महत्त्वपूर्ण स्रोत से पृथक् होना मानते हैं जबकि दूसरे लोग इसे जीवन का एक परिवर्तन समझते हैं जिसमें अपनी रुचियों को पूरा करने के लिए पूरा समय उपलब्ध रहता है। यह देखा गया है कि अधिक उम्र के प्रौढ़, जो शिक्षित और स्वस्थ हैं, जिनकी पर्याप्त आमदनी है, जो अपना सामाजिक दायरा अपने परिवार और मित्रों के साथ बढ़ाए हुए हैं, सेवानिवृत्ति को ऋणात्मक रूप में नहीं लेते। वस्तुतः रचनात्मकता और उत्पादकता प्रौढ़ावस्था में समायोजन के लिए महत्त्वपूर्ण है। यह देखा गया है कि अधिक उम्र के प्रौढ़, जो नए अनुभवों के साथ अत्यधिक परिश्रम, उपलब्धि और आचरण के साथ जो खुलापन दिखाते हैं, वे अपने नियमित कार्यक्रमों में व्यस्त रहते हैं और अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित हैं।

प्रौढ़ लोगों को परिवार तथा नई भूमिकाओं के साथ व्यवस्थित होने की आवश्यकता होती है और संबंधित कार्यों (जैसे – दादा, दादी की भूमिका) को सीखना पड़ता है। बच्चे प्रायः अपने कैरियर और परिवार में व्यस्त रहते हैं या अपना स्वतंत्र घर बना लेते हैं। प्रौढ़ों को वित्तीय सहायता और अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने बच्चे पर भी निर्भर रहना पड़ सकता है। अक्सर यह स्थिति कभी-कभी प्रौढ़ों में निराशा और अवसाद की भावना भी पैदा कर देती है। पति अथवा पत्नी की मृत्यु अत्यधिक दुःख, बीमारी और एकांतता को जन्म देती है। ऐसी स्थिति में बच्चे, उसके पोते और मित्र स्थिति का सामना करने में सहायता करते हैं।

मृत्यु

यद्यपि मृत्यु प्रायः उत्तर प्रौढ़ावस्था से अधिक उम्र में होती है परंतु मृत्यु जीवन के किसी भी चरण में आ सकती है। मृत्यु एक ऐसी सच्चाई है जिससे प्रत्येक व्यक्ति दूर रहना चाहता है। बच्चे की मृत्यु अथवा कम उम्र वाले प्रौढ़ की मृत्यु, अत्यधिक उम्र वाले व्यक्ति की मृत्यु, जो एक लंबा जीवन जी चुके हैं, से अधिक पीड़ादायी होती है। बचपन में अथवा कम उम्र के वयस्कों में मृत्यु प्रायः दुर्घटना के कारण होती है, जबकि अधिक उम्र वाले प्रौढ़ों की मृत्यु लंबी बीमारी के कारण होती है। प्रौढ़ लोग मृत्यु को जीवन की समाप्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। मृत्यु का अर्थ विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग होता है। इसके फलस्वरूप मृत्यु का अनुभव भी भिन्न-भिन्न होता है। बुढ़ापे की अवस्था में शक्ति का ह्रास तथा आर्थिक संसाधनों की कमी, असुरक्षा और परनिर्भरता को जन्म देती है। वे हमेशा दूसरों की ओर प्रवृत्त होते हैं और उनके बारे में सोचते हैं। भारतीय सभ्यता के अनुसार अत्यधिक उम्र वाले अपने बच्चे पर आश्रित रहते हैं, क्योंकि वृद्धावस्था में देखभाल की आवश्यकता होती है। वास्तव में माता-पिता की यह आशा रहती है कि वृद्धावस्था में बच्चे उनकी देखभाल करेंगे। यह महत्त्वपूर्ण है कि वृद्धों को सुरक्षा की भावना, अपनापन और यह भरोसा रहता है कि लोग उनके बारे में सोचते हैं। हमें भी याद रखना चाहिए कि हम सब भी एक दिन बूढ़े होंगे।

आपने अब तक पढ़ा

आप जान चुके हैं कि युवावस्था की समाप्ति से लेकर 60 वर्ष तक की आयु आरंभिक और मध्य प्रौढ़ावस्था है। हालाँकि इस अवधि को बिल्कुल निश्चित तौर से विभाजित नहीं किया जा सकता है। आरंभिक प्रौढ़ावस्था के विकासात्मक कार्य हैं – कैरियर का चयन, विवाह, अभिभावकत्व, और परिवार का भरण-पोषण। मध्य प्रौढ़ावस्था जीवन के मध्य का संक्रमण है। इस अवस्था में व्यक्ति अपने संबंधों को बढ़ाता है, अपने कार्यों और अपने संबंधों को दूसरे से स्थापित करता है। व्यक्ति शारीरिक परिवर्तनों और अनुभव संबंधी योग्यताओं को प्राप्त करता है। वृद्धावस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक है शारीरिक और अनुभव संबंधी परिवर्तन, सेवानिवृत्ति और पति अथवा पत्नी की मृत्यु। रचनात्मकता और उत्पादकता उत्तर प्रौढ़ावस्था की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं हैं। मृत्यु जीवन की समाप्ति के रूप में देखी जाती है।

क्रियाकलाप 5.7

आयु के चरणों की समझ

अधिक उम्र वाले व्यक्ति के प्रत्येक दिन के कार्यों का निरीक्षण कीजिए। युवा व्यक्ति के ऐसे कार्यों का भी निरीक्षण कीजिए। उसके बाद अध्ययन कीजिए कि विभिन्न उम्र वाले व्यक्तियों के बीच में क्या समानताएं और भिन्नताएं हैं।

तीन विभिन्न उम्र वाले व्यक्तियों का साक्षात्कार लीजिए। उदाहरण के लिए, 20-35, 36-60 और 60 से अधिक उम्र वाले व्यक्तियों से निम्नलिखित के बारे में पूछिए।

(a) ऐसे बड़े परिवर्तन, जो उनके जीवन में घटित हुए हैं।

(b) इस प्रकार के परिवर्तन घटित होने पर वे कैसा अनुभव करते हैं?

(c) विभिन्न समूहों की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

आपने कितना सीखा

1. *एक प्रौढ़, वह व्यक्ति है, जो कार्य कर रहा है अथवा नौकरी में है। सही/गलत*
2. *कैरियर सलाहकार सेवाएं नौकरी से संबंधित जानकारियां उपलब्ध कराती हैं। सही/गलत*
3. *वह परिवार जिसमें माता तथा पिता दोनों कार्यरत हैं एक सुखी परिवार है। सही/गलत*
4. *लगभग सभी मध्य उम्र वाले प्रौढ़ अपने शारीरिक क्रियाकलाप में परिवर्तन महसूस करते हैं।सही/गलत*
5. *ज्ञान का अर्थ है जीवन के व्यावहारिक क्रियाकलापों का विशेषज्ञतापूर्वक ज्ञान । सही/गलत*
6. *सेवानिवृत्ति एक वास्तविकता है जो एक निश्चित समय पर सभी के सामने उपस्थित होती है। सही/गलत*

उत्तर – 1. गलत, 2. सही, 3. गलत, 4. सही, 5. सही, 6. गलत।

प्रमुख तकनीकी शब्द

किशोरावस्था, केंद्रीकरण, छाप छोड़ना, लैंगिक अस्मिता, अंकुरण काल, फीनोटाइप, परिपक्वता, आत्म संप्रत्यय, पूर्व-प्रसवकाल, जीव बोध, मस्तकाधोमुखी क्रम, पारिस्थितिकी सिद्धांत, शैशवावस्था, सूक्ष्म पेशीय कौशल, यौन भूमिका, स्थूल पेशीय कौशल, जीवन विस्तार आत्म गौरव, निकट-दूरस्थ क्रम, आसक्ति, क्रोमोज़ोम आत्मकेंद्रिकता, क्रांतिक अवधि, विकास, बाल अपराध यौन, जीन, मित्र, सामाजिक आयु।

सारांश

- *जीवन विस्तार का दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि परिवर्तन जीवन की सभी अवस्थाओं में घटित होती है। विकास जीवनपर्यंत होता है। बहुपक्षीय, बहुनिर्देशित, लचीला, ऐतिहासिक, बहु-अनुशासनिक, जैविक, सामाजिक और अनुभव संबंधी क्रियाकलाप विकास को प्रभावित करते हैं।*
- *विकास का विचार तीन मुख्य प्रश्नों के इर्द-गिर्द घूमता है। आनुवंशिकता तथा परिवेश, निरंतरता तथा अनिरंतरता, स्थिरता और परिवर्तन। कुछ महत्त्वपूर्ण नियम विकास की प्रक्रिया को व्यक्त करते हैं और जो सभी मनुष्यों में देखे जा सकते हैं।*
- *विकास के कई चरण हैं, जो विशिष्ट विकासात्मक कार्यों को व्यक्त करते हैं।*
- *शैशवावस्था 18 से 24 महीने की अवस्था है। यह भाषा, विचार, अनुभव, सहयोग और सामाजिक शिक्षण की शुरुआत को व्यक्त करती है।*
- *आरंभिक बाल्यावस्था 5 से 6 वर्ष की अवस्था तक विस्तृत है और इसे विद्यालय के पूर्व की अवस्था भी कहा जाता है। मध्य बाल्यावस्था 6 से 11 वर्ष के बीच होती है। बच्चा अपनी मौलिक योग्यताओं; जैसे– अध्ययन, लिखना और गणित के ज्ञान में निपुणता को प्राप्त करने योग्य हो जाता है। बच्चा भौतिक, सामाजिक तथा नैतिक रूप से विकसित होता है।*
- *किशोरावस्था वयःसंधि पर शुरू होती है और यह बचपन से युवावस्था में होने वाला एक संक्रमण है। युवावस्था में शारीरिक परिवर्तन के अंतर्गत सेक्स संबंधी विशेषताएं, हार्मोन परिवर्तन और वृद्धि शामिल हैं। एक किशोर के लिए सबसे बड़ा कार्य है अपनी पहचान को बनाना और जैविक परिवर्तन को स्वीकार करना।*
- *प्रौढ़ावस्था निजी और आर्थिक आत्मनिर्भरता को स्थापित करने का समय है। कैरियर का आरंभ, विवाह और एक परिवार की शुरुआत महत्त्वपूर्ण होते है। प्रौढ़ावस्था में व्यावसायिक परिवर्तन, परिवार का विस्तार तथा नई भूमिकाओं (दादा-दादी) को शुरू करने का समय है। वृद्धावस्था शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं में बदलाव, सेवानिवृत्ति और पति अथवा पत्नी की मृत्यु जैसी घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया की अपेक्षा करती है।*
- *उत्तर प्रौढ़ावस्था जीवन की उस अवधि को व्यक्त करती है, जिसमें शारीरिक और बौद्धिक परिवर्तन होते हैं।*
- *यह अध्याय संपूर्ण जीवन विस्तार तक विस्तृत है। जीवन की कोई अवधि संपूर्ण रूप से स्थिर और अपरिवर्तित नहीं रहती है। यदि उसका एक पक्ष स्थिर हो जाता है तो दूसरा विकसित होता रहता है। वास्तव में मनुष्य जीवन भर बदलती दुनिया के साथ जीवन भर अनुकूलन करता रहता है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं?
2. विकास से जुड़े मुख्य प्रश्न कौन-से हैं?
3. विकास के कौन-से प्रमुख नियम हैं?
4. शैशवावस्था से किशोरावस्था तक विकास में प्रमुख पड़ाव कौन-से हैं?
5. बाल्यावस्था के विभिन्न चरणों में बच्चों की प्रमुख विशेषताएं कौन-सी हैं?
6. उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए कि पारिस्थितिकीय कारक मानव विकास को किस तरह प्रभावित करते हैं?

7. आनुवंशिकता और पर्यावरण व्यक्ति के विकास में किस तरह योगदान करते हैं?
8. किशोरावस्था में शारीरिक वृद्धि और विकास की क्या प्रमुख विशेषताएं हैं?
9. उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए कि किस तरह किशोरावस्था चुनौतीपूर्ण है?
10. जब लोग नौकरी से अवकाश प्राप्त करते हैं तो किस प्रकार के समायोजन करने पड़ते हैं?
11. प्रौढ़ावस्था में होने वाले परिवर्तन पहले के चरणों में होने वाले परिवर्तनों से किस तरह भिन्न होते हैं? वे किन अर्थों में समान होते हैं।

6 सांवेदिक तथा प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- सांवेदिक प्रक्रियाओं का परिचय विशेष रूप से दृष्टि तथा श्रवण संवेदना का
- प्रात्यक्षिक क्रियाओं का परिचय
- स्थान, आकृति एवं गति का प्रत्यक्षीकरण
- अवधान की प्रक्रियाओं का परिचय

इस अध्याय को पढ़कर आप

- सांवेदिक तथा प्रात्यक्षिक प्रक्रियाओं का स्वरूप स्पष्ट कर सकेंगे,
- दूरी प्रत्यक्षीकरण की समस्या तथा आकार और दूरी के प्रत्यक्षीकरण में संकेतों की भूमिका को समझ सकेंगे,
- आकृति प्रत्यक्षीकरण की समस्याएँ, परिरेखाओं का बनना तथा भ्रम को परिभाषित कर सकेंगे,
- वास्तविक तथा आभासी गति में अंतर बता सकेंगे, तथा
- प्रत्यक्षीकरण में अवधान की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।

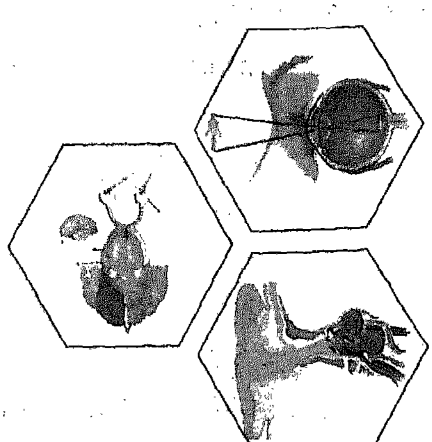
विषयवस्तु

परिचय

हम सभी एक ऐसे संसार में रहते हैं और उससे अंतःक्रिया करते हैं जिसमें विभिन्न रूपों, आकृतियों, आकारों तथा रंगों वाली विभिन्न वास्तविक वस्तुएँ विद्यमान रहती हैं। अपने परिवेश का हमारा अनुभव सामान्यतः परिशुद्ध तथा त्रुटिरहित होता है। इस दुनिया में जीवन को बनाए रखने तथा परिवेश के साथ समायोजित रहने के लिए आवश्यक है कि अपने परिवेश से हमें सही सूचनाएँ प्राप्त होती रहें। ये सूचनाएँ हम अपनी सूचना-संकलन-प्रणाली से एकत्र करते हैं। इस प्रणाली में कुल दस सांवेदिक अंग या संग्राहक होते हैं। इनमें से आठ संग्राहक बाह्य परिवेश से सूचनाएँ एकत्र करते हैं। दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श, गर्म, ठंडा तथा पीड़ा की सूचना बाह्य परिवेश से प्राप्त होती है। शेष दो सांवेदिक अंग गहराई में स्थित हैं, ये शारीरिक संतुलन को बनाए रखते हैं और शरीर की स्थिति तथा शरीर की गति के बारे में सूचना देते हैं।

संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण को अलग करने वाली सीमा रेखा बहुत स्पष्ट नहीं है। यह भेद सैद्धांतिक विश्लेषण एवं वैज्ञानिक शोध में सुविधा के लिए बना लिया गया है। अन्यथा यह स्पष्ट नहीं होता कि कहाँ संवेदना की प्रक्रिया समाप्त होती है और कहाँ से प्रात्यक्षिक प्रक्रिया का आरंभ होता है। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षीकरण को सांवेदिक सूचनाओं की व्याख्या करने वाली प्रक्रिया माना है। वैज्ञानिक अध्ययन के उद्देश्य से सांवेदिक व्यवस्था में संग्राहकों द्वारा उद्दीपक को ग्रहण करना, ऊर्जा के स्वरूप में परिवर्तन करना, सांवेदिक तंत्रिकाओं द्वारा स्नायविक आवेगों का प्रसारण करना, इन आवेगों का सेरीब्रल कॉर्टेक्स के उपयुक्त स्थान पर पहुँचना सम्मिलित है, उदाहरणार्थ, दृष्टि आवेगों का कॉर्टेक्स के ऑक्सीपिटल खंड में पहुँचना।

इस अध्याय में हम यह अध्ययन करेंगे कि हमारी सांवेदिक व्यवस्था किस प्रकार पूर्व अनुभवों, ज्ञान, स्मृति, अभिप्रेरणा, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, तथा विश्वासों को ध्यान में रखते हुए बाह्य तथा आंतरिक परिवेश से सूचनाएँ एकत्र करती है और किस प्रकार मस्तिष्क विभिन्न सांवेदिक व्यवस्थाओं से प्राप्त सूचनाओं का अर्थ ग्रहण करता है। प्रत्यक्षीकरण के अंतर्गत हम यह अध्ययन करते हैं कि हम किस प्रकार बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्र करते हैं और किस तरह आंतरिक स्रोतों का उपयोग करते हुए एक यथार्थ जगत का निर्माण करते हैं। चूँकि परिवेश से मिलने वाले उद्दीपक जटिल एवं बहुलतापरक होते हैं, हम समस्त उपलब्ध सूचनाओं में से कुछ को चुन कर उनको ग्रहण करते हैं और शेष को छोड़ देते हैं। इस संदर्भ में हम प्रत्यक्षीकरण में अवधान की भूमिका की भी जाँच करेंगे।



सांवेदिक प्रक्रियाएँ

संवेदनाएँ ही वे खिड़कियाँ हैं, जिनके द्वारा हम उस बाह्य जगत की सूचनाएँ ग्रहण करते हैं जिसमें हम रहते हैं। भौतिक जगत से हमारा पहला संपर्क संग्राहकों द्वारा होता है। प्रत्येक सांवेदिक अंग एक विशेष प्रकार की ही भौतिक ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए बना होता है; जैसे – आँखें प्रकाश के लिए। किसी संग्राहक को जिसे एक मात्र विशिष्ट भौतिक उद्दीपक उद्दीप्त कर सकता है, वह उस संग्राहक के लिए उपयुक्त उद्दीपक कहा जाता है। जैसे आँखों के लिए प्रकाश उपयुक्त उद्दीपक है और ध्वनि की तरंगें कानों के लिए। संग्राहक भौतिक ऊर्जा को ग्रहण करता है और उस ऊर्जा को विद्युत्-रासायनिक रूप अथवा *स्नायविक-आवेग में परिवर्तित कर देता है। संग्राहक* द्वारा ऊर्जा के एक स्वरूप को दूसरे स्वरूप में बदल देने की रूपांतरकारी प्रक्रिया **ट्रांसडक्शन** (Transduction) कहलाती है। इस प्रक्रिया को **इनकोडिंग** भी कहते हैं। कोडिंग का अर्थ है बाह्य जगत से मिलने वाली सूचना संग्राहकों द्वारा कॉर्टेक्स के विशिष्ट क्षेत्रों में भेजने के लिए अपेक्षित कोड में बदलना। सेरीब्रल कॉर्टेक्स में पहुँचने पर इन कोडित सूचनाओं की **डीकोडिंग** होती है और तब उनकी व्याख्या की जाती है।

मनुष्य की आठ प्रकार की संवेदनाओं में से दृष्टि संवेदना सर्वाधिक विकसित, जटिल तथा महत्त्वपूर्ण है। बाह्य जगत से अंतःक्रिया करने में व्यय कुल समय का 80 प्रतिशत दृष्टि संवेदना ग्रहण करने में व्यय होता है। दूसरा स्थान श्रवण संवेदना का है। बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्र करने में दृष्टि तथा श्रवण के अतिरिक्त और भी कई तरह की सूचनाएँ अपना योगदान देती हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम दृष्टि तथा श्रवण संवेदना का विस्तृत वर्णन करेंगे। अन्य सांवेदिक अनुभवों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ तालिका 6.1 से समझी जा सकती है।

चाक्षुष संवेदना

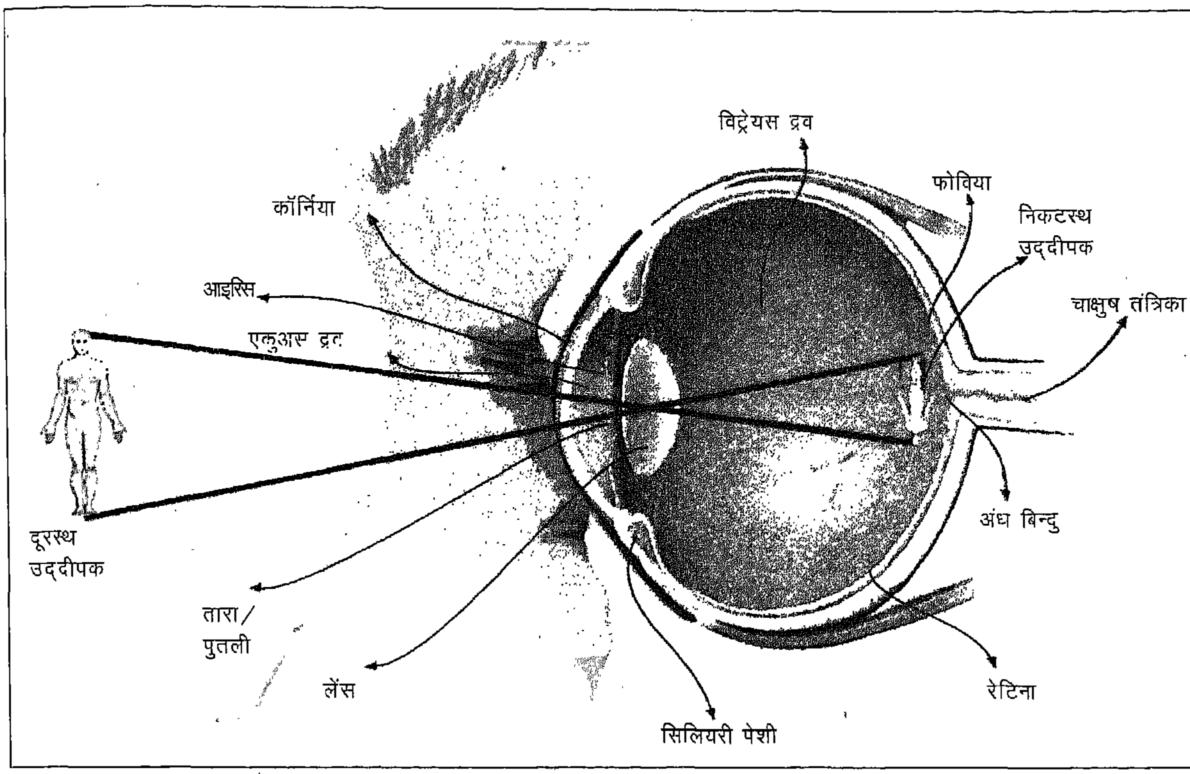
संवेदनाओं में दृष्टि संवेदना का सर्वाधिक अध्ययन किया गया है। इस सांवेदिक प्रक्रिया का प्रारंभ उस समय होता है जब प्रकाश का संरूप आँखों में प्रवेश करके दृष्टि संग्राहकों को उद्दीप्त करता है। आँखों द्वारा प्राप्त सूचनाओं का प्रक्रमण होता है तथा दृष्टि स्नायु-पथों द्वारा कोड किए हुए संदेश सेरीब्रल कॉर्टेक्स के ऑक्सीपीटल खंड में भेज दिए जाते हैं। आइए, प्रकाश के प्रति होने वाली मूलभूत अनुक्रियाओं के स्वरूप को समझने का प्रयास करें।

नेत्र

चित्र 6.1 में मनुष्य की आँख का चित्र प्रदर्शित किया गया है। प्रत्येक नेत्र गोलक लगभग 25 मिमी. व्यास वाला तथा भार में *लगभग 7 ग्राम का* होता है। इसकी सबसे बाहरी पर्त, जिसे *स्क्लेरा* कहते हैं, कड़ी होने के कारण इसकी रक्षा करने के साथ-साथ इसे आकृति प्रदान करती है। इसका सामने वाला भाग पारदर्शी होता है जिसे *कॉर्निया* कहते हैं। बीच की परत *कोरायड* कहलाती है और इसमें रक्त वाहिनियों का जाल होता है। सबसे अंदर की पर्त *रेटिना* होती है। रेटिना में प्रकाश-संग्राहक कोशिकाएँ पाई जाती हैं तथा इसमें एक-दूसरे को जोड़ने वाली स्नायुओं का संजाल होता है।

तालिका 6.1 : मानव संवेदना की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ

संवेदना	उपयुक्त उद्दीपक	संग्राहक	संवेदना
दृष्टि	प्रकाश तरंगें	आँख	रंग, आकार, आकृति आदि
श्रवण	ध्वनि तरंगें	कान	ध्वनि की तीव्रता तथा तारता
त्वचीय	उद्दीपक से संपर्क	त्वचा	स्पर्श, पीड़ा, गर्म, ठंडा
गंध	रासायनिक अणु	नाक	गंध
स्वाद	विलेय पदार्थ	जीभ	स्वाद
संतुलन	यांत्रिक तथा गुरुत्व शक्ति	आंतरिक कान	शारीरिक स्थिति तथा दशा
गति	शारीरिक गति	हड्डियों के जोड़, पेशियाँ तथा बंधनियाँ	शारीरिक स्थिति, अंगों की गतियों की दिशा एवं मात्रा।



चित्र 6.1 : मनुष्य की आँख की संरचना।

मनुष्य की आँखों की तुलना प्रायः कैमरे से की जाती है और यह तुलना काफी हद तक ठीक भी है। बाह्य दृष्टि क्षेत्र से आने वाली प्रकाश की किरणें आँखों के रेटिना पर फोकस की जाती हैं। कैमरे में फोकस करने का यह कार्य लेंस को आगे-पीछे खिसका कर (या कैमरे में लगी विद्युत् मोटर द्वारा) किया जाता है परंतु मनुष्य की आँख में यह कार्य लेंस की मोटाई के परिवर्तन से होता है। लेंस से जुड़ी **सिलियरी पेशियाँ** (Ciliary muscles) दूर की वस्तुओं के लिए लेंस की मोटाई को घटा देती हैं और पास की वस्तुओं के लिए बढ़ा देती हैं। इस प्रक्रिया को **समंजन** (Accomodation) कहा जाता है। फोकस करने के लिए प्रकाश किरणों का उपयुक्त रूप से मुड़ना या **अपवर्तन** (Refraction) लेंस तथा कॉर्निया (बाहरी पारदर्शी परत) द्वारा किया जाता है। आँख तथा कैमरा, दोनों में ही अंदर प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा को नियंत्रित करने की व्यवस्था होती है। कैमरे में यह कार्य डायफ्राम द्वारा तथा आँख में **आइरिस** (Iris) द्वारा होता है। आँख के तारे (Pupil) का छिद्र प्रतिवर्ती क्रियाओं द्वारा परिवर्तित होता रहता है। जब प्रकाश तीव्र होता है तो तारे का आकार घट जाता है तथा प्रकाश कम होने पर यह छिद्र बढ़ जाता है, ताकि उसकी अधिक मात्रा आँख में प्रवेश कर सके। इन सब व्यवस्थाओं से रेटिना पर किसी बाह्य वस्तु की परिशुद्ध प्रतिमा या बिंब बनता है। बिंब निर्माण सामान्य प्रकाश-ज्यामिति के नियमों द्वारा होता है। रेटिना पर बनने वाला यह बिंब उलटा होता है तथा इसका आकार आँख से वस्तु की दूरी के विपरीत अनुपात में होता है। बिंब की आकृति बाह्य वस्तु की स्थिति पर निर्भर करती है (इस बिंदु को हम दूरी तथा आकृति प्रत्यक्षीकरण की विवेचना के समय स्पष्ट करेंगे)।

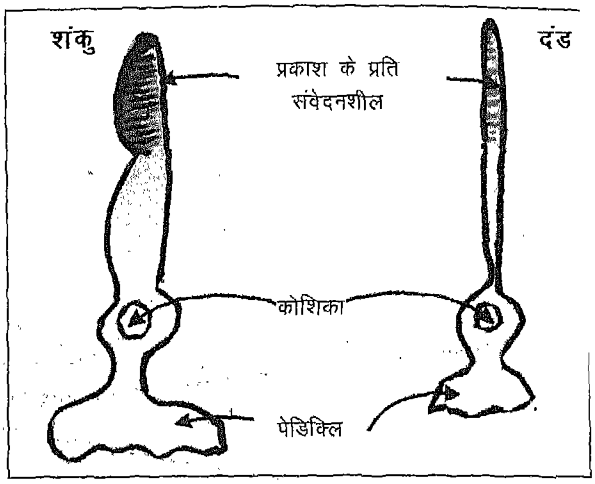
रेटिना

यह आँख की सबसे महत्त्वपूर्ण संरचना है। प्रकाश की किरणें **विट्रेयस द्रव** (Vitreous humor) से होकर रेटिना की परतों से गुजरते हुए आगे बढ़ती हैं। रेटिना में कोशिकाओं की तीन परतें होती हैं – **दंड** (Rod) एवं **शंकु** (Cone) की परत, **द्विध्रुवीय कोशिकाएँ** (Bipolar cells) तथा **गुच्छीय कोशिकाएँ** (Ganglion cells)। गुच्छीय कोशिकाओं के सभी स्नायुसूत्र मिलकर दृष्टि तंत्रिका का निर्माण करते हैं।

इनके अतिरिक्त रेटिना में दो अन्य प्रकार की कोशिकाएँ – क्षैतिज तथा एमाक्राइन कोशिकाएँ भी पाई जाती हैं। प्रकाश के प्रति संवेदनशील दो प्रकार की कोशिकाएँ दंड तथा शंकु रेटिना में ही पाई जाती हैं। रेटिना के मध्य भाग से थोड़ा-सा हटकर (व्यास में लगभग 2 डिग्री हटकर) फोविया नामक स्थान होता है, जिसके चारों ओर शंकु बहुतायत से मौजूद होते हैं। इस केंद्रीय भाग में दंड नहीं होते। इस भाग में दृष्टि की तीक्ष्णता (Activity) सबसे अधिक होती है और हम बड़ी स्पष्टता से देख पाते हैं। जब हम किसी वस्तु को आँखों को सीधा करके देखते हैं तो उसका बिंब फोविया पर ही बनता है। जब आप पंक्ति पढ़ते हैं तो इसकी प्रतिमा फोविया पर पड़ रही है। जब आँख एक जगह केंद्रित रहती है, तो आप 5 या 6 अक्षरों के शब्द को स्पष्ट रूप से पढ़ सकते हैं, परंतु उसके बाएँ या दाएँ स्थित शब्दों के बिंब फोविया पर न होने के कारण धुँधले होते हैं। इसीलिए पढ़ते समय हमें आँखों को घुमाते रहना पड़ता है ताकि बारी-बारी से सभी आगे आने वाले अक्षरों के स्पष्ट बिंब फोविया पर बन सकें तभी हमें वे स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेंगे। फोविया के इस छोटे से क्षेत्र में कुछ अधिक ही लंबे, पतले तथा घने शंकु होते हैं ताकि तीव्रतम दृष्टि तीक्ष्णता प्राप्त हो सके। फोविया के क्षेत्र में स्नायविक संरचनाएँ (द्विध्रुवीय तथा गुच्छीय कोशिकाएँ) एक ओर किनारे स्थित होती हैं ताकि प्रकाश की किरणें सीधे तथा ठीक से शंकुओं पर पड़ सकें। रेटिना के केंद्र में स्थित फोविया से हम जैसे-जैसे परिधि की ओर जाते हैं दंड कोशिकाओं की संख्या और घनत्व बढ़ता जाता है। परिधि पर तो दंडों का घनत्व बहुत अधिक हो जाता है और शंकु कम हो जाते हैं।

उद्विकास ने जैविक रूप से कार्य-विभाजन करते हुए दो प्रकार की संग्राहक व्यवस्थाएँ (शंकु तथा दंड) प्रदान की हैं। यह विभाजन मनुष्य द्वारा देख सकने वाली प्रकाश की तीव्रता के संपूर्ण प्रसार के ऊपरी तथा नीचे की तीव्रताओं के लिए संग्राहकों का निर्धारण करता है। दृष्टि को **द्विप्रक्रम सिद्धांत** (Duplicity Theory) के अनुसार दो प्रकार के दृष्टि संग्राहक पाए जाते हैं और उन दोनों की संरचना तथा कार्य में भिन्नता होती है (चित्र 6.2 देखिए)।

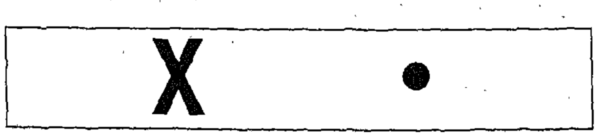
दंड : दंड रात में या कम प्रकाश की दशा में कार्य करते हैं या इनसे काले, भूरे या सफेद की ही संवेदना होती है। ये बड़ी तथा हिलती-डुलती वस्तुओं की पहचान भी करते हैं।



चित्र 6.2 : शंकु तथा दंड की संरचना।

शंकु *:* ये दिन में अथवा पर्याप्त प्रकाश की दशा में सक्रिय होते हैं। इनसे विभिन्न रंगों की भी संवेदना होती है।

रेटिना में पाई जाने वाली द्विध्रुवीय कोशिकाएँ (Bipolar cells) अपने निकट के संग्राहकों की सांवेदिक अनुक्रियाओं को ग्रहण करके उन्हें गुच्छीय कोशिकाओं के माध्यम से सेरिब्रल कॉर्टेक्स तक भेज देती हैं। प्रत्येक गुच्छीय कोशिका कई द्विध्रुवीय कोशिकाओं से संवेदनाओं को ग्रहण करके उन्हें एकत्र करके दृष्टि स्नायुपथ द्वारा मस्तिष्क को भेजती है। दृष्टि तंत्रिका (Optic nerve) आँख की रेटिना के उस क्षेत्र से निकलती है, जिसमें प्रकाश के कोई संग्राहक उपस्थित नहीं रहते हैं और उसे **अंध बिंदु** (Blind spot) कहा जाता है। रेटिना के इस भाग में हम आम तौर पर दृष्टिहीनता नहीं अनुभव करते, क्योंकि जो कुछ एक आँख छोड़ देती है वह दूसरी आँख ग्रहण कर लेती है और शेष सूचना मस्तिष्क से मिल जाती है, जो पृष्ठभूमि के अनुरूप रहती है। आप अपना अंध बिंदु चित्र 6.3 की सहायता से देख सकते हैं।



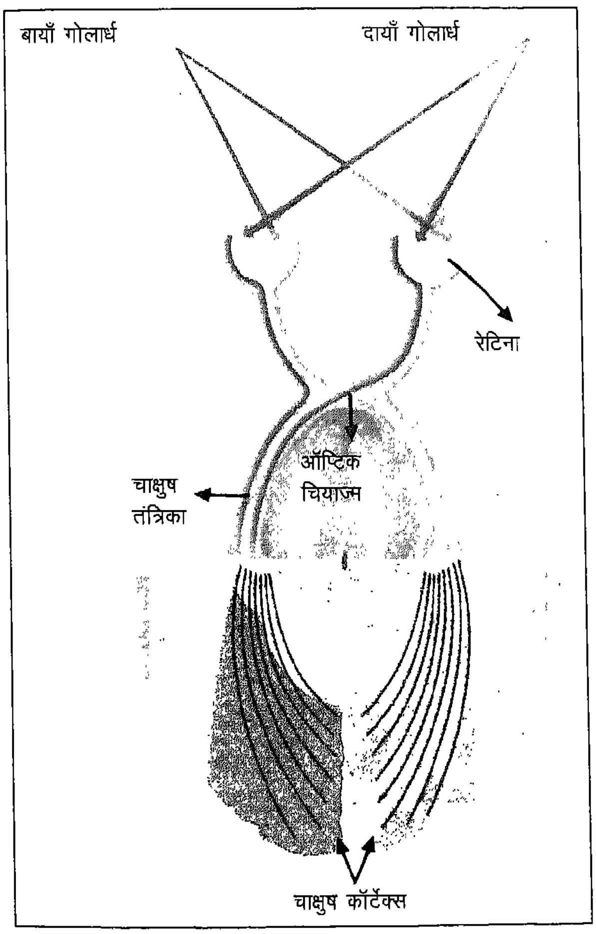
चित्र 6.3 *: अंध बिंदु को खोजना। अपने अंध बिंदु को खोजने के लिए ऐसा कीजिए : अपनी बाईं आँख को ढक कर X के ऊपर अपनी दृष्टि केंद्रित कीजिए और इस पुस्तक को अपने निकट लाइए। पुस्तक को धीरे-धीरे खिसकाइए; जब यह आपकी आँख से कुछ इंच की दूरी पर पहुँचेगी तो बिंदु गायब हो जाएगा।*

मस्तिष्क की ओर ले जाने वाला मार्ग

दृष्टि तंत्रिका मस्तिष्क के पिछले हिस्से में एक विशिष्ट क्षेत्र

में पहुँचती है, जिसे **ऑक्सीपीटल कॉर्टेक्स** या **प्राथमिक चाक्षुष कॉर्टेक्स** (Primary Visual Cortex) कहा जाता है। यहाँ पर संग्राहकों द्वारा कोड किया गया संदेश स्मृति की सहायता से डिकोड किया जाता है और हम सामने क्या है उसे पहचान (प्रत्यक्ष) पाते हैं।

दोनों आँखों से गुच्छिका कोशों के एक्सॉन एकत्र होकर (चाक्षुष तंत्रिका) गुच्छीय कोशिकाओं से निकलने वाले स्नायुतंतु आपस में मिलकर दृष्टि तंत्रिकाएँ (Optic nurve) बनाते हैं। ये मस्तिष्क को चाक्षुष सूचना भेजती हैं। ये तंत्रिकाएँ मस्तिष्क के आधार भाग में पहुँच कर ऑप्टिक चियाज्म (X की आकृति में दिशा परिवर्तन) बनाते हैं, जिससे बाईं आँख से प्राप्त सूचना मस्तिष्क के दाहिनी ओर के ऑक्सीपीटल खंड में तथा दाहिनी आँख से प्राप्त सूचनाएँ मस्तिष्क के बाएँ ऑक्सीपीटल खंड में आगे के प्रक्रमण हेतु जाती हैं (चित्र 6.4 देखिए)।



चित्र 6.4 : मानवीय चाक्षुष व्यवस्था में मस्तिष्क को जाने वाला मार्ग।

प्रकाश तथा अंधकार अनुकूलन

मनुष्य की आँखें प्रकाश की बहुत कम तीव्रता से लेकर बहुत अधिक तीव्रता तक के विस्तार में काम करने में सक्षम हैं। कभी-कभी हमें प्रकाश के स्तर में अत्यंत तीव्र परिवर्तनों से गुजरना पड़ता है। उदाहरण के लिए, आप सिनेमा देखने यदि दोपहर के शो में जाएँ तो हॉल में घुसने पर आपको कुछ भी देखने में कठिनाई होगी। हॉल में 15 से 20 मिनट रहने के बाद आप स्पष्ट रूप से देखने लगेंगे। फिर सिनेमा देखने के बाद जब हॉल से बाहर आएँगे तो आपको बाहर का प्रकाश इतना अधिक तीव्र मालूम होगा कि आँख खोले रखना कठिन हो जाएगा। हो सकता है कुछ सेकंडों तक आपको कुछ न दिखाई दे और आपको आँखें बंद करनी पड़ें। एक-आध मिनट में फिर से आपको सामान्य रूप से दिखाई पड़ने लगेगा। अँधेरे से प्रकाश में आने पर आँखें कम समय में समायोजित हो जाती हैं जबकि प्रकाश से अँधेरे में जाने पर समायोजन में अधिक समय लगता है। वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा प्रकाश की भिन्न तीव्रता के प्रति आँखें समायोजित होती हैं, **अंधकार एवं प्रकाश अनुकूलन** (Dark and Light Adaptation) कही जाती है।

प्रकाश अनुकूलन अंधकार से प्रकाश में जाने पर होता है। यह एक या दो मिनट में पूरा हो जाता है। इसके विपरीत अंधकार अनुकूल की क्रिया प्रकाश से अंधकार में जाने पर होती है। इसमें लगभग आधे घंटे या उससे भी अधिक का समय लगता है। यह इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितनी तीव्रता के प्रकाश में कितने समय तक रह चुका है।

प्राचीन दृष्टिकोण के अनुसार प्रकाश तथा अंधकार अनुकूलन रासायनिक क्रियाओं पर आधारित होता है। रेटिना की दंड कोशिकाओं में प्रकाश के प्रति संवेदनशील **रोडाप्सिन** या **विजुअल पर्पिल** नामक रासायनिक पदार्थ भरा होता है। प्रकाश के कारण रोडाप्सिन का रंग जाता है और इसी से प्रकाश अनुकूलन स्थापित हो जाता है। अंधकार अनुकूलन कराने हेतु प्रकाश को हटाने के पश्चात् दंड कोशिकाओं में फिर से विटामिन A की सहायता से रंगीन पदार्थ के बनने का समय दिया जाता है। रोडाप्सिन के पुनः संश्लेषण में समय लगता है और इसीलिए अंधकार अनुकूलन स्थापित होने में अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। अनुकूलन की एक और व्याख्या प्राचीन दृष्टिकोण तथा स्नायविक क्रियाओं को सम्मिलित करके प्रस्तुत की गई है।

यह पाया गया है कि जिन व्यक्तियों में विटामिन A की कमी होती है उनमें अंधकार अनुकूलन नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप उन्हें अंधेरे में चलना-फिरना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि गाजर आदि (विटामिन A से भरपूर) खाने से अंधकार अनुकूलन में सुधार होता है। दंड कोशिकाओं में जिस प्रकार रोडाप्सिन भरा रहता है उसी प्रकार शंकुओं में **आयोडाप्सिन** (Iodopsin) नामक पदार्थ पाया जाता है।

रंग दृष्टि

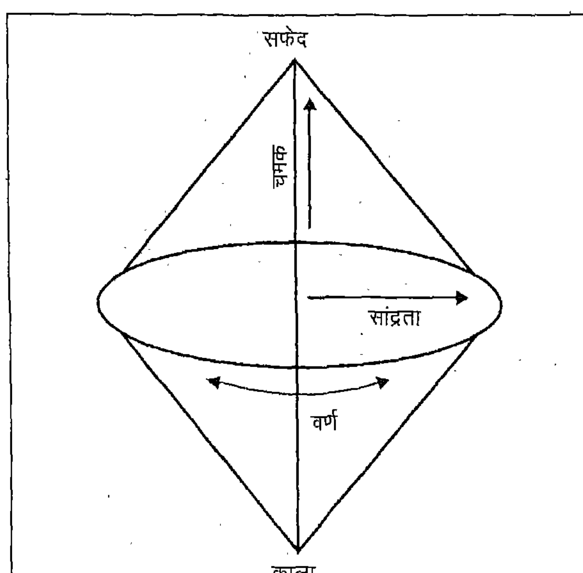
हमारी दृष्टि प्रणाली की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि आँखों द्वारा मस्तिष्क को भेजी गई उन्हीं सूचनाओं के प्रक्रमण से वस्तु के रंग, आकार, दूरी आदि अनेक गुणों का अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। इन विभिन्न गुणों का प्रक्रमण अवश्य अलग-अलग होता है। रंग हमारे सांवेदिक अनुभवों की मनोवैज्ञानिक विशेषता है। रंगों का अनुभव मस्तिष्क द्वारा बाह्य जगत से प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या से उत्पन्न होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि प्रकाश का मूल गुण तरंगों का दैर्ध्य है, न कि उनका रंग। रंगों का हम मात्र अनुभव करते हैं।

विद्युत् चुंबकीय तरंगों के संपूर्ण प्रसार में से हमारी आँखें मात्र 400 से 700 नैनोमीटर की तरंगों की संवेदना ग्रहण कर सकती हैं। इसी सीमा के अंदर की तरंगें, जिन्हें प्रकाश कहते हैं, आँखों के लिए उपयुक्त उद्दीपक होती हैं। वर्णक्रम का वह भाग जो हमें दिखाई देता है (प्रकाश), ऐसी ऊर्जा से युक्त होता है जिसे हमारे प्रकाश संग्राहक संज्ञापित (detect) कर सकते हैं। वर्णक्रम की वे तरंगें जो प्रकाश की सीमाओं से कम अथवा अधिक ऊर्जा वाली हैं, आँखों के लिए हानिकारक होती हैं। सूर्य के प्रकाश में सभी प्रकार की तरंगदैर्ध्यों का मिश्रण होता है। 17वीं शताब्दी में न्यूटन ने यह आविष्कार किया कि जब सूर्य के प्रकाश को किसी प्रिज्म से गुजारा जाए तो यह दृश्य वर्णक्रम (400 नैनोमीटर से 700 नैनोमीटर) में टूट जाता है और भिन्न-भिन्न तरंगदैर्ध्यों के रंग दिखाई पड़ने लगते हैं।

रंगों के आयाम

सामान्य रंग संवेदना रखने वाला एक व्यक्ति लगभग 70 लाख विभिन्न रंगों की छटाओं (Shades) में अंतर कर सकता है। हमारा रंगों का प्रत्यक्षीकरण उनके तीन मौलिक आयामों में हो सकता है – **वर्ण** (Hue), **सांद्रता** (Saturation) तथा **चमक** (Brightness)।

1. *वर्ण :* वर्ण का अर्थ हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में उपयोग में आनेवाले शब्द 'रंग' से है। वर्ण रंगों का ही एक गुण है। प्रकाश किरणों के तरंगदैर्ध्य में परिवर्तन के साथ-साथ वर्ण भी परिवर्तित होता है। प्रत्येक वर्ण एक विशेष तरंगदैर्ध्य के साथ पहचाना जाता है। उदाहरण के लिए, 465 नैनोमीटर की तरंग नीले वर्ण तथा 500 नैनोमीटर की तरंग हरे वर्ण के रूप में जानी जाती है। काला, सफेद या भूरा को वर्ण नहीं माना जाता। ये वर्णहीन रंग हैं।
2. *सांद्रता :* सांद्रता का अर्थ रंग संवेदना की स्पष्टता तथा शुद्धता से है। स्वाभाविक रंग की सबसे ज्यादा सांद्रता होती है। उदाहरण के लिए, भूरे रंग की सांद्रता शून्य होती है तथा शुद्ध लाल की सांद्रता सबसे अधिक होती है। वर्ण तकुआ (Spindle) में केंद्र से जैसे-जैसे दूर जाएँगे (चित्र 6.5 देखिए), सांद्रता बढ़ती जाएगी। वर्ण, जो परिधि पर स्थित होते हैं अधिकतम रूप से सांद्र होते हैं तथा जो केंद्र में स्थित होते हैं, उनकी सांद्रता शून्य होती है। विभिन्न मात्रा की सांद्रताओं वाले वर्ण मध्य में स्थित हैं।
3. *चमक :* चमक में परिवर्तन वर्ण तथा अवर्ण दोनों में हो सकता है। चमक के आयाम के एक छोर पर काला तथा दूसरे पर सफेद रंग स्थित होता है। प्रकाश की तीव्रता के अनुसार सफेद की चमक सबसे अधिक तथा काले की सबसे कम होती है। चित्र 6.5 में दिए गए वर्ण तकुए में अधिक चमकीले रंग ऊपर की ओर हैं। चमक का अर्थ प्रकाश की प्रात्यक्षित तीव्रता से है, ठीक उसी प्रकार जैसे ध्वनि की तीव्रता बढ़ने से वह तेज सुनाई पड़ती है।



चित्र 6.5 : रंग तकुआ।

पूरक रंग तथा पश्चात् प्रतिमा

वर्ण तकुए में जो रंग एक दूसरे की विपरीत दिशा में प्रदर्शित किए गए हैं वे एक-दूसरे के पूरक भी हैं (चित्र 6.5 देखिए)। प्रत्येक वर्ण का पश्चात् प्रतिमा के रूप में एक पूरक वर्ण भी होता है। यदि आप एक चमकीली रंगीन वस्तु को कुछ देर तक देखने के पश्चात् अपनी दृष्टि किसी सफेद या भूरी सतह पर ले जाएँ तो आपको उस रंग के पूरक रंग की एक पश्चात् प्रतिमा दिखाई पड़ेगी।

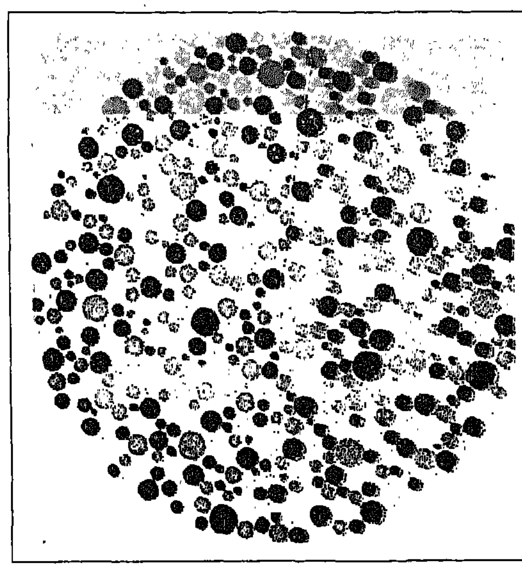
पश्चात् प्रतिमाओं का निर्माण रेटिना पर होता है और दृष्टि घूमती है तो साथ-साथ पश्चात् प्रतिमा भी घूम जाती है। पश्चात् प्रतिमा धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकती है। **ऋणात्मक पश्चात् प्रतिमाएँ** मूल संवेदना के विपरीत प्रकार की अधिकांशतः निर्मित होने वाली, तथा देर तक बनी रहने वाली होती हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, यदि आप हरे रंग की वस्तु को कुछ देर देखें और उसके बाद अपनी दृष्टि किसी सफेद सतह पर ले जाएँ तो आपको लाल रंग की पश्चात् प्रतिमा दिखाई देगी।

धनात्मक पश्चात् प्रतिमा बिरले ही कभी बनती है और बहुत अल्पकाल तक रहती है। इसका निर्माण उस समय होता है, जब संग्राहक अनवरत उद्दीप्त होता रहे और उद्दीपन के बाद भी रेटिना में स्नायविक प्रक्रिया होती रहे। फ्लैश बल्ब का बुझ जाने के बाद भी कुछ क्षण तक जलता दिखाई देते रहना धनात्मक पश्चात् प्रतिमा का एक उदाहरण है। सिनेमा में पात्रों में होने वाली गतियों का प्रत्यक्षीकरण धनात्मक पश्चात् प्रतिमा के कारण ही होता है। रेटिना में किसी एक फ्रेम से होने वाली संवेदना कुछ देर तक बनी रहती है तब दूसरे फ्रेम की संवेदना उसे स्वयं में समाहित कर लेती है। यह प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और इसके फलस्वरूप हमें पर्दे पर गति का प्रत्यक्षीकरण होता है।

वर्णांधता

पूरी जनसंख्या का एक छोटा-सा भाग ऐसे व्यक्तियों का होता है, जिन्हें अन्य व्यक्तियों की तरह वर्णों या रंगों की संवेदना नहीं होती। वर्णांधता (Colour blindness) एक आनुवंशिक तथा लिंगबद्ध (sexlinked) गुण है, जो अधिकांशतः पुरुषों में पाया जाता है (लगभग 8 प्रतिशत) जबकि महिलाओं में कम (0.3 प्रतिशत)।

रंगों की संवेदना की अक्षमता की जानकारी कई तरह से की जा सकती है। सामान्यतः परीक्षणों में कम सांद्रता वाले लाल तथा हरे वर्णों में अंतर कराया जाता है। ऐसे व्यक्ति कम होते हैं, जो पीले तथा नीले में भेद न कर सकें। इससे भी कम संख्या में वे लोग होते हैं, जिन्हें कोई रंग दिखाई नहीं देता और वे केवल काले तथा सफेद के मिश्रणों को देखते हैं। संभव है कि वर्णांध व्यक्ति यह कभी न जान सके कि वह वर्णांध है। इसका ज्ञान उसे तब होता है जब इसकी जाँच के लिए उसका वर्णांधता परीक्षण किया जाता है (चित्र 6.6 में ऐसे परीक्षण का एक उदाहरण दिया



चित्र 6.6 : वर्णांधता परीक्षण का एक उदाहरण।

गया है)। जिस वस्तु में एक सामान्य व्यक्ति एक रंग का प्रत्यक्षीकरण करता है, उसमें एक वर्णांध व्यक्ति भूरे (काला-सफेद विमा पर) रंग का एक विशिष्ट संरूप देखता है और उसके प्रति एक विशेष रंग के नाम की अनुक्रिया करना सीख लेता है।

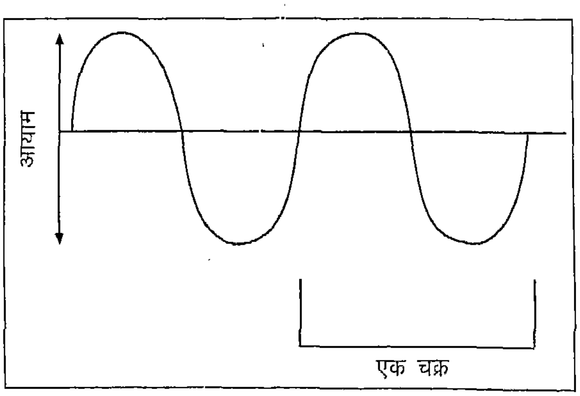
श्रवण संवेदना

दृष्टि संवेदना के बाद द्वितीय स्थान पर महत्त्वपूर्ण है— श्रवण संवेदना (Audition) या सुनना। व्यक्ति के लिए इसकी अत्यंत मनोवैज्ञानिक महत्ता है। दृष्टि की तरह ही श्रवण भी विश्वसनीय स्थानगत सूचना प्रदान करता है। स्रोत की ओर उन्मुख करने के अतिरिक्त, श्रवण का महत्त्व बोलकर संचार करने में भी है। स्पर्श की ही तरह श्रवण भी दूरी पर दबाव में परिवर्तन के प्रति की जाने वाली अनुक्रिया है। श्रवण संवेदना के महत्त्व को आप अच्छी तरह समझ सकते हैं यदि कभी आपका संपर्क किसी बहरे व्यक्ति से हुआ हो।

ध्वनि

जिस प्रकार देखने के लिए प्रकाश उपयुक्त उद्दीपक है, उसी प्रकार श्रवण के लिए ध्वनि (Sound) उपयुक्त उद्दीपक है। बाह्य परिवेश में होने वाली कोई गति आस-पास के माध्यम (सामान्यतः वायु) को विक्षुब्ध कर देती है अर्थात् हवा के अणु आगे-पीछे गति करने लगते हैं। इसके परिणामस्वरूप, अणुओं से एक दबाव बनता है, जो ध्वनि तरंगों के रूप में लगभग 1100 फीट प्रति सेकंड की गति से चारों ओर फैल जाता है। जिस प्रकार तालाब में एक पत्थर फेंकने से चारों ओर तरगें चलती हैं उसी तरह ध्वनि तरंगें भी चारों ओर चलने लगती हैं। ये ही तरंगें जब हमारे कानों से टकराती हैं तो एक यांत्रिक दबाव उत्पन्न होता है, जो अंततः श्रवण संग्राहकों को उद्दीप्त कर देता है।

ध्वनि तरगें साइन तरंगों (Sine waves) के रूप में चलती हैं। तरंगों का आयाम तथा तरंगदैर्ध्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। आयाम का अर्थ है तरंग की शीर्ष तक की ऊँचाई कितनी है। यह ध्वनि तरंग की शक्ति का माप है। किन्हीं दो शीर्षों के बीच की दूरी को **तरंगदैर्ध्य** कहते हैं। ध्वनि तरंगों का वर्णन प्रायः उनकी चक्र प्रति सेकंड आवृत्ति द्वारा किया जाता है। इसका आधुनिक रूप हर्ट्ज़ (Hz) है।



चित्र 6.7 : *ध्वनि तरंगें।*

आयाम (Amplitude) तथा आवृत्ति (Frequency) ध्वनि तरंगों की भौतिक विशेषताएँ हैं तथा इनकी समतुल्य मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ क्रमशः तीव्रता तथा तारत्व हैं। जब तरंगों का आयाम बढ़ता है तो ध्वनि अधिक तीव्र सुनाई पड़ती है और जब उनकी आवृत्ति बढ़ती है तो उनका तारत्व अधिक हो जाता है। ध्वनि की तीन विशेषताएँ होती हैं – **तीव्रता** (Loudness), **तारत्व** (Pitch), *तथा* **स्वर विशेषता** (Timbre)। हम यहाँ पर इन विशेषताओं का बारी-बारी से वर्णन करेंगे।

तीव्रता

किसी ध्वनि की तीव्रता उसकी तरंगों के आयाम से निर्धारित होती है। जिन तरंगों का आयाम अधिक होता है वे अधिक तीव्र तथा जिनका आयाम कम होता है वे कम तीव्र या धीमी सुनाई पड़ती हैं। अधिक शक्तिशाली कंपनों से हवा के अणुओं का विस्थापन अधिक होता है, जिससे अधिक दबाव बनता है और इस कारण तीव्र ध्वनि सुनाई पड़ती है। अत्यंत तीव्र ध्वनि से पीड़ा का अनुभव होता है और यदि यह ध्वनि बहुत दिनों तक निरंतर बनी रहे तो कान के संग्राहकों को क्षति पहुँच सकती है। ध्वनि की तीव्रता का मापन डेसीबेल (*db*) की लॉग-मापनी में किया जाता है। तालिका 6.2 में कुछ परिचित ध्वनियों की तीव्रता डेसीबेल इकाइयों में प्रदर्शित की गई है।

तालिका 6.2 : परिचित ध्वनियों का तीव्रता स्तर

ध्वनि	**तीव्रता स्तर (डेसीबेल)**
पीड़ा की देहली	140
चिल्लाना	100
मोटर की घड़घड़ाहट	80
सामान्य बातचीत	60
शांत कार्यालय	40
फुसफुसाहट	20
सुनने की देहली	0

तारत्व

तारत्व का अर्थ उच्च अथवा निम्न आवृत्तियों से उत्पन्न ध्वनि की पिच या टोन का ऊँचा या नीचा होने से है। तारत्व का संबंध ध्वनि तरंगों के कंपन की आवृत्ति से है जिसका मापन चक्र प्रति सेकंड या हर्ट्ज़ में किया जाता है। नवयुवकों में 20 हर्ट्ज़ से 20,000 हर्ट्ज़ तक की आवृत्ति वाली ध्वनियों की संवेदना होती है तथा आयु बढ़ने के साथ-साथ ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता, विशेषतः उच्च आवृत्ति की ध्वनियों के लिए घटती जाती है।

स्वर विशेषता

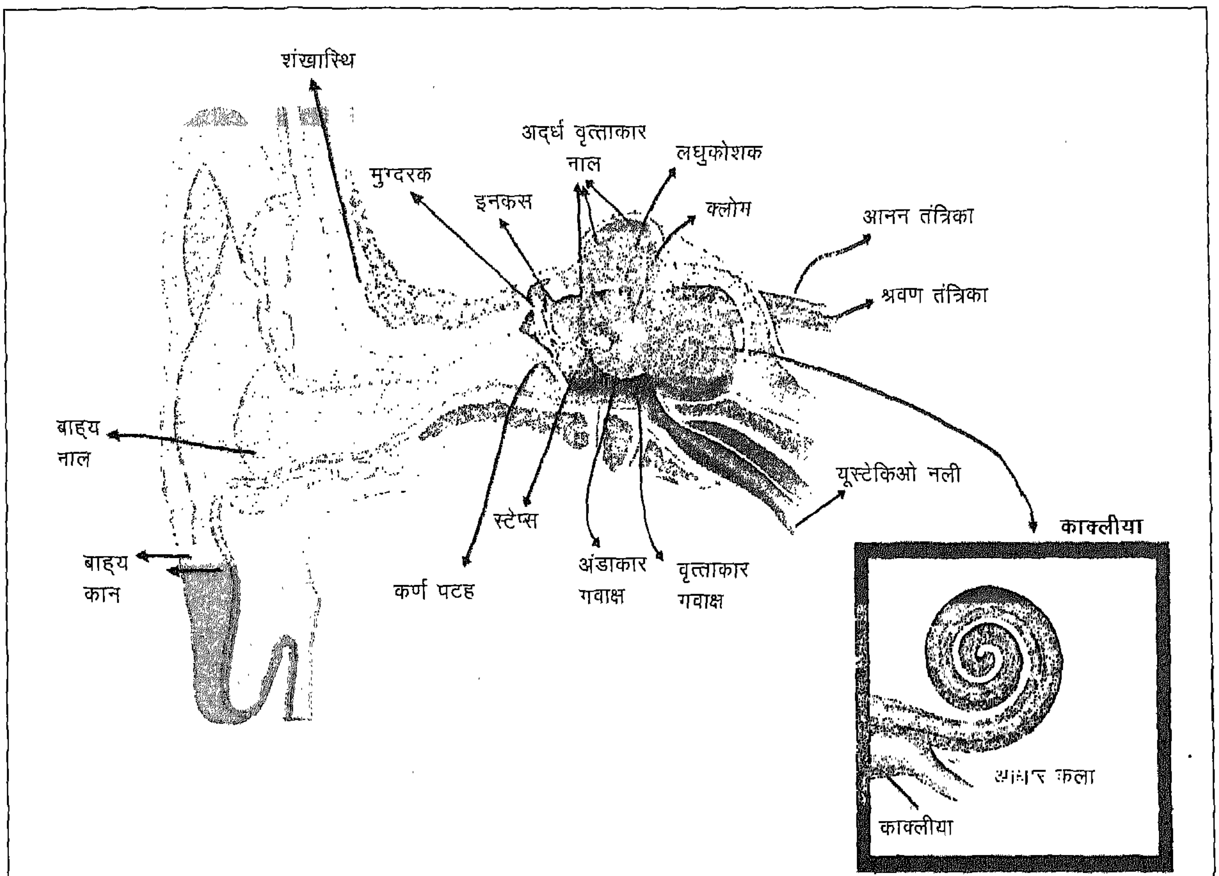
स्वर विशेषता किसी ध्वनि की प्रकृति से संबंधित होती है। उदाहरण के लिए, किसी कार के इंजन से उत्पन्न ध्वनि

तथा दो व्यक्तियों की बातचीत से निकलने वाली ध्वनि के गुणों का स्वर अपनी विशेषताओं में भिन्न होता है। ध्वनि की स्वर विशेषता उसकी जटिलता को प्रकट करती है। प्राकृतिक रूप से उत्पन्न ध्वनियाँ जटिल होती हैं अर्थात् वह अनेक आवृत्तियों वाली ध्वनियों का मिश्रण होती हैं। किसी जटिल ध्वनि का विश्लेषण करके जाना जा सकता है कि वह भिन्न-भिन्न आयामों तथा तरंगदैर्घ्यों वाली अनेक शुद्ध ध्वनियों के मिश्रण से बनी है।

कान की संरचना

चित्र संख्या 6.8 में बाह्य, मध्य तथा आंतरिक कान की संरचना को प्रदर्शित किया गया है। ध्वनि की तरंगें बाह्य **कान** (Pinna) से बाह्य श्रवण नलिका से प्रवेश करती हैं तथा **कर्णपटह** (Tympanic membrane) को उद्दीप्त करती हैं। इससे कर्णपटह भी ध्वनि तरंगों के साथ-साथ कंपित होने लगता है। यह कंपन इसके पीछे स्थित तीन छोटी-छोटी अस्थियों को सक्रिय कर देता है। कर्णपटह से सटी हुई अस्थि, **मुग्दरक** (Malleus), सर्वप्रथम सक्रिय होती है, जो दूसरी अस्थि, **इनकस** (Incus or anvil) को तथा पुनः इनकस अपने से लगी तीसरी अस्थि **स्टेप्स** (Stapes) को उद्दीप्त कर देती है। स्टेप्स का चिपटा भाग आंतरिक कान के **अंडाकार गवाक्ष** (Oval window) से सटा रहता है। इन अस्थियों में ध्वनि के कारण होने वाले कंपनों की ऊर्जा सुनने के प्राथमिक अंग, **काक्लीया** (Cochlea) में पहुँच जाती है। काक्लीया आंतरिक कान में स्थित होता है।

काक्लीया एक जटिल संरचना है। यह देखने में घोंघे की आकृति की होती है और इसमें द्रव भरा होता है। पूरे काक्लीया की लंबाई में एक पतला आवरण फैला होता है, जिसे **आधार-कला** (Basilar Membrane) कहते हैं। जब स्टेप्स का चिपटा भाग अंडाकार गवाक्ष पर कंपन करता है तो काक्लीया में भरे द्रव में तरंगित गतियाँ होने लगती हैं। इससे आधार-कला भी हिलने लगती है, जिससे आधार-कला



चित्र 6.8 : मनुष्य के कान की संरचना।

पर स्थित छोटी-छोटी **केश-कोशिकाओं** (Hair cells) में झुकाव पैदा होता है। केश-कोशिकाएँ ही ध्वनि संवेदना की संग्राहक हैं। केश-कोशिकाओं के झुकने से सांवेदिक स्नायु छोर उद्दीप्त हो जाते हैं। आधार कला का यांत्रिक कंपन स्नायविक क्रियाओं में रूपांतरित हो जाता है। अंत में स्नायविक आवेग स्नायु तंत्रिकाओं के समूह, **श्रवण तंत्रिका** (Optic nerve) के रूप में काक्लीया से बाहर आ जाते हैं।

श्रवण उद्दीपक से संबंधित सूचनाएँ श्रवण तंत्रिका द्वारा सबसे पहले मेडुला में स्थित काक्लीयर केंद्रक में पहुंचती हैं। इसके पश्चात् ये सूचनाएँ मध्य-मस्तिष्क में और फिर वहाँ से थैलेमस में स्थित मध्यवर्ती जेनिकुलेट नाभिक तथा वहाँ टेंपोरल खंड में स्थित श्रवण कॉर्टेक्स (Temporal Lobe) पहुँचती है। स्नायविक संकेतों के रूप में ये दोनों पार्श्वों में पहुँचती हैं। इससे हमें ध्वनि स्रोत का स्थान व दिशा ज्ञात करने में सहायता मिलती है। इससे ध्वनि स्रोत की दूरी पता करने में भी मदद मिलती है।

बाक्स 6.1 **अन्य मानवीय संवेदनाएँ**

हमने दृष्टि तथा श्रवण संवेदनाओं का कुछ विस्तार से वर्णन किया है। इन दोनों संवेदनाओं का उपयोग दूसरी संवेदनाओं की तुलना में अधिक किया जाता है। हमारा प्रत्यक्षीकरण सभी संवेदनाओं के योगदान से समृद्ध होता है। उदाहरण के लिए, किसी सेब के प्रति हमारा आकर्षण इसके रूप गंध तथा स्वाद आदि सभी के कारण होता है। इस भाग में हम कुछ अन्य संवेदनाओं का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

1. ***गंध : घ्राण व्यवस्था*** *– विभिन्न रायायनिक यौगिकों के अणु ही गंध के लिए उद्दीपक का कार्य करते हैं। ये अणु हवा में मिले रहते हैं और उसी के माध्यम से गंध संग्राहकों तथा गंध रोमों तक पहुँचते हैं। ये गंधरोम नाक में वास नली के ऊपरी भाग में होते हैं। गंध संग्राहकों से निकले स्नायतंतु मस्तिष्क के आधार पर स्थित आलफैक्टरी बल्ब से मिलते हैं। अन्य संवेदनाओं की भाँति ही गंध संवेदना में भी अनुकूलन की क्रिया होती है। मनुष्य लगभग 10,000 प्रकार की गंधों में फर्क कर सकता है। गंध को पहचानने में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक संवेदनशील तथा परिशुद्ध होती हैं।*

2. ***स्वाद व्यवस्था*** *– मौलिक स्वाद चार प्रकार के होते हैं : मीठा, खट्टा, कड़वा तथा नमकीन। अधिकांश खाद्य पदार्थों का अपना विशेष स्वाद इन्हीं चार मूल स्वादों की विशिष्ट मात्रा में योग से बनता है। जीभ में प्रत्येक प्रकार के स्वाद को ग्रहण करने की क्षमता समान रूप से वितरित नहीं होती। कुछ स्वादों के प्रति जन्मजात आकर्षण होता है तथापि स्वाद के प्रति वरीयता सीखी हुई होती है और यह सामाजिक-सांस्कृतिक अनुबंधनों से बहुत अधिक प्रभावित होती है। स्वाद के प्रति पसन्द का विकास काफी हद तक विभिन्न स्वादों का अनुभव करने से होता है और यह सांस्कृतिक कारकों पर निर्भर करता है। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में भोजन बनाने की विधियों, कृषि उत्पादों तथा जलवायु आदि में भिन्नता पाई जाती है। स्वाद के संग्राहक जीभ में पाए जाते हैं। इन्हें स्वाद-कलिकाएँ कहते हैं। हमारी जीभ में लगभग 10,000 स्वाद कलिकाएँ होती हैं जिनमें अलग-अलग स्वाद कलिकाएँ अलग-अलग रासायनिक अणुओं के प्रति संवेदनशील होती हैं। इससे अलग-अलग प्रकार के मौलिक स्वादों की संवेदना होती है।*

3. ***त्वचीय संवेदना : कायिक व्यवस्था*** *– त्वचा को प्राप्त होने वाली यांत्रिक, तापीय, तथा रासायनिक ऊर्जाएँ त्वचीय संवेदना के भौतिक उद्दीपक होते हैं। इन उद्दीपकों से स्पर्श, गर्मी, ठंडक तथा पीड़ा की संवेदनाएँ होती हैं। मनुष्य की त्वचा में कम से कम छः प्रकार के संग्राहक पाए जाते हैं, जो अलग-अलग तरह की त्वचीय संवेदनाओं के लिए विशेषीकृत होते हैं। अन्य संवेदनाओं की भाँति ही त्वचीय संवेदनाओं में भी अनुकूलन होता है।*

4. ***गति संबंधी व्यवस्था*** *– यह व्यवस्था शरीर के विभिन्न अंगों की स्थितियों को एक दूसरे की तुलना में सदा व्यवस्थित रखती है। इसी व्यवस्था की संवेदना द्वारा हम जान पाते हैं कि हम खड़े हैं या चल रहे हैं। दृष्टि संवेदना भी इसमें सहायता करती है। गति संबंधी संवेदना के संग्राहक मुख्यतः अस्थियों के जोड़ों, पेशियों तथा पेशी बंधनों (tendons) में पाए जाते हैं।*

5. ***संतुलन व्यवस्था*** *– यह व्यवस्था गुरुत्व बल के प्रति अनुक्रिया करती है तथा हमें शरीर की स्थिति के बारे में सूचनाएँ देती रहती है। इस व्यवस्था से हमें शारीरिक संतुलन तथा गुरुत्व की दिशा की तुलना में शारीरिक स्थिति संबंधी सूचना मिलती है।*

बाक्स 6.2 मनोभौतिकी : प्राचीन तथा आधुनिक विधियाँ

भौतिक उद्दीपक तथा उसके कारण किसी मानव प्रेक्षक में उत्पन्न होने वाली संवेदनाओं के बीच संबंधों का अध्ययन ही मनोभौतिकी (Psychophysics) है। प्राचीन मनोभौतिकी का संबंध संवेदनाओं के मापन से है। इसमें मुख्यतः दो प्रकार की देहलियों, ***निरपेक्ष देहली*** *(Absolute Threshold-RL) तथा* ***विभेदन देहली*** *(Differential Threshold - DL), का अध्ययन किया जाता है।*

निरपेक्ष देहली : *निरपेक्ष देहली का तात्पर्य किसी उद्दीपक की उस न्यूनतम ऊर्जा से है, जिसका होना उस उद्दीपक के संज्ञापन (detection) के लिए अनिवार्य है। यदि सांख्यिकीय रूप से कहा जाए तो निरपेक्ष देहली किसी उद्दीपक की वह न्यूनतम मात्रा है, जिसका कम से कम पचास प्रतिशत बार संज्ञान हो सके। उदाहरण के लिए, हो सकता है कि कोई प्रतिभागी किसी दूरी पर रखी दीवार घड़ी की टिक्-टिक् न सुन सके। अब यदि घड़ी को धीरे-धीरे उसके पास लाएँ तो किसी एक निश्चित दूरी पर वह टिक्-टिक् सुनने लगेगा। वह दूरी जिस पर प्रयोज्य घड़ी की टिक्-टिक् सुनने लगता है, निरपेक्ष देहली या RL रीजलाइमेन निरपेक्ष देहली के लिए जर्मन शब्द) कही जाएगी। पाया गया है कि शान्त वातावरण में घड़ी को 20 फीट की दूरी पर रखने पर टिक्-टिक् की ध्वनि संज्ञापित की जा सकती है। यदि उद्दीपक की तीव्रता को स्थिर रखा जाए तो भी निरपेक्ष देहली का मूल्य विभिन्न दशाओं में, विभिन्न व्यक्तियों में तथा एक ही व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न समय में अलग-अलग होता है।*

विभेदन देहली : *इसका अर्थ किसी उद्दीपक में होने वाला वह न्यूनतम परिवर्तन है, जिसका संज्ञान हो सके। सांख्यिकीय रूप से, विभेदन देहली किसी उद्दीपक में किया जाने वाला वह न्यूनतम परिवर्तन है, जिसका संज्ञापन किसी प्रयोज्य को 50 प्रतिशत बार हो सके। विभेदन देहली को अक्सर* ***न्यूनतम ज्ञापनीय भिन्नता*** *(just noticeable difference, j.n.d.) भी कहा जाता है। विभेदन देहली के संप्रत्यय को समझने के लिए एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि एक अँधेरे कमरे में 100 मोमबत्तियाँ जला दी जाती हैं। अब आप एक-एक मोमबत्ती तब तक बढ़ाते जाइए जब तक प्रतिभागी यह न कहे कि अब पहले से अधिक प्रकाश हो गया है अर्थात् वह प्रकाश में परिवर्तन का अनुभव न कर ले। संभव है कि पहले से 100 मोमबत्तियों के प्रकाश में वृद्धि के अनुभव के लिए 5 मोमबत्तियाँ और जलानी पड़ें। यहाँ 5 इकाई प्रकाश ही विभेदन देहली (DL) हुई। निरपेक्ष देहली की भाँति ही विभेदन देहली का मूल्य भी विभिन्न दशाओं में, विभिन्न व्यक्तियों में तथा एक ही व्यक्ति में भिन्न-भिन्न समय में अलग-अलग होता है। विभेदन देहली किसी व्यक्ति की संवेदनशीलता को बताती है। विभेदन देहली का मूल्य जितना ही कम हो, संवेदनशीलता उतनी ही अधिक मानी जाती है।*

वेबर का नियम

उद्दीपक की तीव्रता तथा उस उद्दीपक की विभेदन देहली के बीच में संबंध को वेबर का नियम कहते हैं। अर्नेस्ट वेबर (1834) ने बताया कि विभेदन देहली तथा उद्दीपक की तीव्रता का अनुपात स्थिर रहता है। वेबर ने निम्नलिखित सूत्र का प्रतिपादन किया :

$$\text{वेबर अनुपात : } \Delta I/I = K \text{ (स्थिरांक)}$$

इसमें ΔI विभेदन देहली अर्थात् उद्दीपक में किया जाने वाला वह न्यूनतम परिवर्तन है जिसका संज्ञापन हो सके तथा I मूल उद्दीपक की मात्रा है तथा K एक स्थिरांक है। वेबर के नियम को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे।

मान लीजिए, आपके हाथ पर 100 ग्राम भार रखा है। यह पहले की अपेक्षा अधिक भारी लगे इसलिए इसमें न्यूनतम 2 ग्राम वृद्धि करने की आवश्यकता है। इससे वेबर स्थिरांक का मूल्य $\Delta I/I = 2/100 = 1/50$ हुआ। तथापि बाद में किए जाने वाले अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि वेबर का नियम केवल मध्यम तीव्रता वाले उद्दीपकों के लिए ही सही प्रमाणित होता है। वेबर स्थिरांक का मूल्य भिन्न-भिन्न संवेदनाओं के लिए अलग-अलग होता है (तालिका 6.3 देखिए)।

तालिका 6.3 : कुछ वेबर स्थिरांक

संवेद्यता	वेबर स्थिरांक (K)
तीव्रता	1/60
भार वहन	1/50
स्वर उच्चता	1/10
स्वाद	1/3

गुंस्टाव फेक्नर (1860) ने एक नए समीकरण का प्रतिपादन किया जिसे ***फेक्नर का नियम*** *कहते हैं। उन्होंने इस नियम के अंतर्गत यह कहा कि संवेदना का अनुभव उद्दीपक की तीव्रता के लघुगुणकीय (Logrithmic) प्रकार्य के रूप में होता है। इसका अर्थ यह है कि संवेदना (प्रकाश को) की मात्रा को दो गुना करने के लिए प्रकाश की मात्रा को नौ गुना बढ़ाना पड़ेगा। बाद में स्टीवेंस (1960) के प्रायोगिक अध्ययनों से फेक्नर के नियम में भी संशोधन किया गया और* ***स्टीवेंस का घात नियम*** *(Power law) प्रतिपादित हुआ।*

मनोभौतिकीय विधियाँ

मनोभौतिकीय विधियों का विकास संवेदनाओं का मापन करने की समस्याओं के संदर्भ में किया गया। ये विधियाँ हैं – **औसत त्रुटि विधि** (Method of Average Error), **सीमा विधि** (Method of Limits) तथा **स्थिर उद्दीपकों की विधि** (Method of Constant Stimuli)।

1. **औसत त्रुटि विधि (समायोजन विधि)** : इस विधि में प्रतिभागी स्वयं किसी उद्दीपक को घटा-बढ़ाकर उसमें तब तक परिवर्तन करता है जब तक कि वह किसी मानक उद्दीपक से एक निश्चित संबंध (बराबर) वाला न हो जाए। उदाहरण के लिए, प्रयोज्य किसी रेखा की लंबाई को तब तक घटाता अथवा बढ़ाता है जब तक कि वह दी गई किसी मानक रेखा के बराबर न हो जाए।
2. **सीमा विधि** : इस विधि का उपयोग निरपेक्ष देहली तथा विभेदन देहली का मूल्य ज्ञात करने के लिए किया जाता है। उद्दीपक की तीव्रता को प्रत्येक प्रयास में एक निश्चित मात्रा में बारी-बारी से आरोही तथा अवरोही क्रम में क्रमशः बढ़ाया अथवा घटाया जाता है। निरपेक्ष देहली ज्ञात करने के लिए, आरोही क्रम में उद्दीपक को प्रत्येक बार एक स्थिर और निश्चित क्रम में बढ़ाकर तथा अवरोही क्रम में प्रत्येक बार उसी प्रकार घटा कर प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिभागी को यह बताना होता है कि उसने उद्दीपक का अनुभव किया अथवा नहीं।
3. **स्थिर उद्दीपकों की विधि** : इस विधि में उद्दीपकों का प्रस्तुतीकरण सीमा विधि की भाँति आरोही तथा अवरोही शृंखला में नहीं किया जाता बल्कि उद्दीपकों को मानक उद्दीपक के साथ यादृच्छिक (Random) क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। इस विधि द्वारा भी हम निरपेक्ष तथा भिन्नता देहली का निर्धारण कर सकते हैं।

आधुनिक मनोभौतिकी

संकेत संज्ञापन सिद्धांत : इस सिद्धांत का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना होता है कि कोई प्रतिभागी, जो कुछ देखता है उसको, परिशुद्धता तथा सत्यता की किस सीमा तक बता सकता है। प्राचीन मनोभौतिकी में वर्णित देहली के स्वरूप के साथ दो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं–

1. यह हमेशा तय नहीं रहता कि हम एक कम तीव्रता के उद्दीपक को प्रत्यक्षित कर ही लेंगे।
2. यह भी निश्चित नहीं होता कि यदि प्रतिभागी यह बता रहा है कि उसने उद्दीपक को प्रत्यक्षित किया है तो वास्तव में उसने उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण किया भी है या नहीं।

उपर्युक्त दूसरी समस्या के समाधान हेतु, संकेत संज्ञापन सिद्धांत (Signal Detection Theory) के प्रयोग में चार विकल्पों पर विचार किया जाता है।

1. प्रतिभागी ने उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण किया है और वह सही बता भी रहा है कि उसने प्रत्यक्षीकरण किया है (सही/हाँ)
2. प्रतिभागी बता रहा है कि उसने उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण किया है, जबकि कोई उद्दीपक था ही नहीं (गलत/हाँ)
3. प्रतिभागी कहता है कि उसने उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण नहीं किया, जबकि उद्दीपक प्रस्तुत किया गया था (गलत/नहीं)
4. प्रतिभागी बताता है कि उसने किसी उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण नहीं किया और वास्तव में कोई उद्दीपक प्रस्तुत भी नहीं किया गया था (सही/नहीं)

उपर्युक्त चारों दशाओं को निम्नलिखित रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है –

	संकेत प्रतिक्रिया	
	हाँ	नहीं
उपस्थित	सही	गलत
अनुपस्थित	गलत	सही

चित्र 6.9 : संकेत संज्ञापन सिद्धांत के अनुसार प्रतिक्रियाएँ।

चित्र 6.9 में उद्दीपक संकेत की दो दशाओं (उपस्थित-अनुपस्थित) तथा दो प्रकार की अनुक्रियाओं को मिलाने से बने चार संभावित परिणामों को प्रदर्शित किया गया है। यदि आप कोलाहल के होते हुए भी वास्तविक उद्दीपक संकेत को पहचान लेते हैं, तो आपको 'सही, हाँ' कहने का अंक मिलेगा। उद्दीपक संकेत के उपस्थित रहने पर यदि आप उसे नहीं पहचान पाते हैं तो यह 'गलत' होगा। उद्दीपक संकेत के अनुपस्थित रहने पर भी 'हाँ' की अनुक्रिया देना 'गलत हाँ' होगा और इस दशा में 'नहीं' कहने की अनुक्रिया सही मानी जाएगी।

संकेत संज्ञापन सिद्धांत प्रतिभागी द्वारा देहली के आस-पास के उद्दीपकों को संज्ञापित करने की क्रिया को निर्णय लेने की प्रक्रिया मानता है। प्रतिभागी को यह निर्णय लेना पड़ता है कि उसने उद्दीपक को संज्ञापित किया अथवा नहीं। उसका यह निर्णय उसकी अभिप्रेरणा, संवेदनशीलता, तथा उद्दीपक की प्रकृति पर निर्भर करता है।

सही "हाँ" तथा गलत "हाँ" की संभाव्यताओं के आधार पर वक्र ग्राफ बनाए जा सकते हैं। किसी विशेष प्रतिभागी के लिए उसके लिए ग्रहणकर्ता-कार्य विशेषता (Receiver Operating characteristic) वक्र बनाए जा सकते हैं।

आपने अब तक पढ़ा

बाह्य जगत की सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए संवेदनाएँ खिड़कियों की तरह हैं। हम अपनी आठ प्रकार की संवेदनाओं– दृष्टि, श्रवण, गंध, स्वाद, स्पर्श, गर्म, ठंडा और पीड़ा द्वारा बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्र करते हैं। इनके अतिरिक्त दो अन्य गहन संवेदनाएँ भी हैं – संतुलन तथा गति संबंधित। इनसे हमें अपने शरीर का संतुलन बनाए रखने तथा शरीर के विभिन्न अंगों में होने वाली गतियों की मात्रा तथा दिशा जानने में सहायता मिलती है। इस खंड में आपने दो सबसे महत्त्वपूर्ण तथा सबसे अधिक काम में आनेवाली संवेदनाओं – दृष्टि तथा श्रवण की संरचना तथा कार्य के बारे में विस्तार से पढ़ा।

सांवेदिक अंग या संग्राहक बाह्य जगत से सूचनाएँ प्राप्त करते हैं। प्रत्येक प्रकार के संग्राहक का एक विशिष्ट उपयुक्त उद्दीपक होता है। संग्राहकों द्वारा भौतिक ऊर्जा प्राप्त संदेशों का स्नायविक आवेगों के रूप में परिवर्तन या कोडिंग की जाती है। ये स्नायविक आवेग मस्तिष्क के विशेष क्षेत्रों में पहुँचते हैं जहाँ कोड में प्राप्त संदेशों को डीकोड किया जाता है तथा उनका प्रक्रमण करते हुए प्रत्यक्षीकरण की क्रिया संपन्न होती है।

आँखों द्वारा प्रकाश की किरणें (उपयुक्त उद्दीपक) ग्रहण की जाती हैं। ये किरणें तारा तथा लेंस से होते हुए रेटिना पर उद्दीपक का बिंब बनाती हैं। दृष्टि की तीक्ष्णता फोविया पर सबसे अधिक होती है। द्विप्रक्रम सिद्धांत के अनुसार हमारे रेटिना में दो प्रकार के संग्राहक – दंड तथा शंकु पाए जाते हैं। दंड कम प्रकाश की दशा (रात में देखना) में सक्रिय होते हैं तथा इनसे सफेद भूरे तथा काले रंग की संवेदना होती है। इनसे बड़े तथा गतिशील उद्दीपकों के संज्ञापन में भी सहायता मिलती है। शंकु अधिक प्रकाश या दिन के समय सक्रिय होते हैं। इनसे वर्णों की संवेदना भी होती है। दंडों द्वारा अंधकार अनुकूलन भी होता है। संग्राहकों द्वारा कोडित संदेश द्विध्रुवीय तथा गुच्छीय कोशिकाओं से होते हुए अंततः मस्तिष्क के ऑक्सीपीटल खंड में पहुँच जाते हैं। दृश्य वर्णक्रम का विस्तार 400 नैनोमीटर से 700 नैनोमीटर तक होता है। रंगों की तीन मूलभूत विमाएँ होती हैं – वर्ण, सांद्रता तथा चमक।

श्रवण संवेदना का उपयुक्त उद्दीपक ध्वनि होता है। ध्वनि तरंगें साइन तरंगों के रूप में चलती हैं और इनकी तीन विशेषताएँ होती हैं – तीव्रता, तारत्व तथा स्वर विशेषता। ध्वनि तरंगें कर्ण नली से होते हुए कर्णपटह से टकराती हैं जिससे मध्य कर्ण की अस्थियाँ – मुग्दरक, इनकस तथा निहाई सक्रिय हो जाती हैं। इन तीनों अस्थियों के कंपन ध्वनि ऊर्जा को आंतरिक कान में स्थित काक्लीया तक पहुँचा देते हैं। स्नायविक आवेग काक्लीया से निकल कर श्रवण तंत्रिका द्वारा थैलेमस के मध्यवर्ती जेनिकुलेट नाभिक तक पहुँच जाते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *बाह्य जगत से सूचनाएँ ______ द्वारा ग्रहण की जाती हैं।*
2. *भौतिक उद्दीपक को एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित करने की क्रिया ______ कहलाती है।*
3. *______ तथा ______ दृष्टि संग्राहक हैं।*
4. *रंगों के तीन मौलिक आयाम ______, ______, तथा ______ हैं।*
5. *ध्वनि की तीन विशेषताएँ ______, ______, तथा ______ हैं।*
6. *श्रवण के लिए प्राथमिक संग्राहक ______ है।*

उत्तर – 1. संग्राहक, 2. ट्रांसडक्शन, 3. दंड तथा शंकु, 4. वर्ण, सांद्रता तथा चमक, 5. तीव्रता, तारत्व, स्वर विशेषता, 6. काक्लीया।

प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

अध्याय के इस भाग में हम यह वर्णन करेंगे कि किस प्रकार त्रिविमात्मक परिवेश से सांवेदिक अंगों द्वारा सूचनाएँ ग्रहण तथा प्रक्रमित की जाती हैं, ताकि परिवेश से अंतर्क्रिया करने का एक आधार मिल सके। सांवेदिक अंगों पर उद्दीपक का प्रभाव पड़ते ही प्रात्यक्षिक क्रियाएँ आरंभ हो जाती हैं तथापि हमने प्रात्यक्षिक व्यवस्था के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु सांवेदिक तथा प्रात्यक्षिक प्रक्रियाओं का अलग-अलग विवेचन किया है। यहाँ चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण पर विशेष बल दिया है यद्यपि बाह्य जगत का हमारा प्रत्यक्षीकरण चाक्षुष के अतिरिक्त अन्य प्रकार की संवेदनाओं से भी समृद्ध होता है और परिवेश से अंतर्क्रिया करने में इन संवेदनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण

पिछले अनुभाग में आपने पढ़ा कि बाह्य सूचनाएँ एकत्र करने के लिए श्रवण, त्वचा तथा नासिकीय तत्व मुख्य रूप से गहन संग्राहक हैं। गहन संवेदनाएँ आंतरिक परिवेश

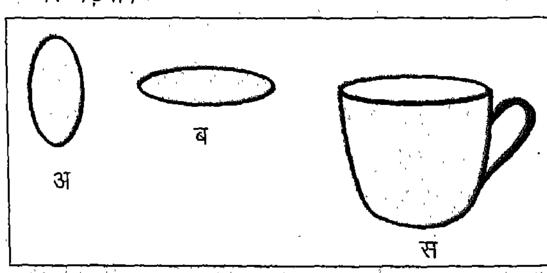
(शारीरिक संतुलन तथा पेशीय गति से संबंधित) से सूचनाएँ प्राप्त करती हैं। संवेदना का तात्पर्य संग्राहक अंगों द्वारा सूचना एकत्र करना है। दूसरी ओर प्रत्यक्षीकरण का अर्थ प्राप्त आंकड़ों अथवा सूचनाओं की व्याख्या से है, जिसके आधार पर हम एक यथार्थ परिवेश की रचना करते हैं। संग्राहक अंगों द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर हम वस्तुओं का तादात्मीकरण तथा पहचान करते हैं। अध्याय के इस भाग में हम इन दोनों का वर्णन करेंगे। इस कार्य में प्रक्रमण दो स्तरों पर संपन्न होता है। पहले स्तर पर किसी वस्तु का एक आंतरिक प्रतिनिधि (Internal Representation) (उदाहरणार्थ, गोल वस्तु) निर्मित होता है तथा दूसरे स्तर पर वस्तु का तादात्मीकरण होता है (उदाहरणार्थ, गोल वस्तु गेंद है)। अर्थात् इसके द्वारा निर्मित आंतरिक प्रतिनिधि को अर्थ प्रदान किया जाता है। प्रत्यक्षीकरण की पूरी प्रक्रिया इतनी गति से होती है कि हमें प्रक्रमण के विभिन्न स्तरों का पता नहीं चल पाता। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण से किए गए प्रायोगिक अध्ययनों से प्रक्रमण के स्तरों की पहचान की है (इस दृष्टिकोण के संबंध में आप अध्याय 9 में कुछ विस्तार से पढ़ेंगे)।

बाक्स 6.3

प्रात्यक्षिक स्थैर्य

*जब आप चलते-फिरते हैं तो विभिन्न वस्तुओं के रेटिना पर बनने वाले बिंब भी परिवर्तित होते रहते हैं परंतु आपके प्रत्यक्षीकरण में परिवर्तन नहीं होता। इसी को हम **प्रात्यक्षिक स्थैर्य** (Perceptual Constancy) कहते हैं। जब हम किसी वस्तु के चारों ओर घूमते हैं तो उस वस्तु द्वारा रेटिना पर बनने वाला बिंब हमारी तथा उस वस्तु की स्थिति के अनुरूप बदलता रहता है फिर भी परिवर्तित होते रहने वाले बिंब के अनुसार उस वस्तु का हमारा प्रत्यक्षीकरण नहीं बदलता। यदि हमारे प्रत्यक्षीकरण में स्थैर्य न होता तो हम सबको एक गंभीर अस्त-व्यस्त परिस्थिति और मतिभ्रम का सामना करना पड़ता, क्योंकि किसी वस्तु को हम जितनी बार देखते उतनी ही बार वह भिन्न वस्तु दिखाई पड़ती। प्रात्यक्षिक स्थैर्य आकार, आकृति, चमक, वर्ण एवं स्थिति आदि अनेक प्रात्यक्षिक क्षेत्रों में पाया जाता है। आइए, अब हम इन विभिन्न प्रात्यक्षिक स्थैर्यों पर बारी-बारी से संक्षेप में विचार करें।*

1. ***आकार स्थैर्य :*** *जब हम किसी वस्तु से दूर जाते हैं तो जैसे-जैसे दूरी बढ़ती है, वस्तु का रेटिना पर बनने वाला बिंब छोटा होता जाता है। फिर भी उस वस्तु का प्रत्यक्षित आकार एक जैसा या स्थिर बना रहता है। दूसरे शब्दों में वस्तु के रेटिना पर बनने वाले बिंब में परिवर्तन के बावजूद प्रत्यक्षित आकार में स्थैर्य होता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हम वस्तु से प्रत्यक्षित दूरी के आधार पर रेटिना पर बने बिंब की व्याख्या करते हैं। यदि उस वस्तु के आकार का ज्ञान होता है (उदाहरण के लिए पेंसिल एक परिचित वस्तु) या उस वस्तु के साथ हमारा पुराना अनुभव है तो स्मृति में संचित उस वस्तु का आकार प्रात्यक्षिक स्थैर्य लाने में सहायता कर सके या फिर वस्तु के आकार से हम परिचित हों। यदि वस्तु के वास्तविक आकार का हमें ज्ञान न हो (अपरिचित आकार) या दूरी के सही आकलन के लिए संकेत उपलब्ध न हों (जैसे अँधेरे कमरे में) तो आकार स्थैर्य समाप्त हो जाता है। दूसरी के प्रत्यक्षीकरण में वस्तु के आकार ज्ञान के बारे में आप दूरी प्रत्यक्षीकरण के अनुभाग में और भी पढ़ेंगे।*
2. ***आकृति स्थैर्य :*** *यदि हम किसी वस्तु को विभिन्न कोणों या स्थितियों से देखें तो रेटिना पर बनने वाले बिंब में परिवर्तन होता रहता है फिर भी वस्तु की प्रत्यक्षित आकृति स्थिर रहती है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक गोल डिस्क को 60 अंश पर झुका कर देखें (चित्र 6.10 देखिए) तो रेटिना पर बनने वाला बिंब गोल नहीं, दीर्घ वृत्ताकार होगा। फिर भी आप डिस्क का प्रत्यक्षीकरण वस्तुपरक अर्थात् गोल आकृति वाला ही करेंगे, क्योंकि वस्तु के झुकाव के कोण के ज्ञान का प्रभाव आपके प्रत्यक्षीकरण पर पड़ेगा।*



चित्र 6.10 *: (अ) झुकाई गई गोल डिस्क, (ब) एक कप का किनारा, (स) ब में दिए गए कप के किनारे के आधार पर बनाया गया कप का चित्र।*

आकार स्थैर्य की विवेचना के समय हमने देखा कि वस्तुओं के परिचित आकार के कारण भी स्थैर्य उत्पन्न होता है। इसी प्रकार परिचित वस्तुएँ आकृति स्थैर्य भी उत्पन्न करती हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 6.10 (ब) को आप एक व्यक्ति को दिखाइए और वस्तु की आकृति के संबंध में उसकी अनुक्रिया प्राप्त कीजिए। निश्चित ही उसकी अनुक्रिया दीर्घवृत्त (Ellipse) की होगी। अब आप चित्र 6.10 (स) की भाँति कप का चित्र खींचिए परंतु दीर्घवृत्त

को परिवर्तित न कीजिए। अब आप प्रयोज्य से कप के किनारे की आकृति के बारे में पूछिए। अब उसका उत्तर 'गोल' होगा। ऐसा इसलिए है कि हम कप की आकृति से परिचित हैं और जानते हैं कि कप का किनारा सदा गोल होता है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो उसके झुकाव आदि का ध्यान रखते हैं और तदनुसार प्रत्यक्षीकरण करते समय उतना संशोधन कर लेते हैं और इसी का परिणाम आकृति स्थैर्य होता है। किसी वस्तु के साथ हमारा परिचय तथा उसकी आकृति का ज्ञान आकृति स्थैर्य लाने में हमारी सहायता करता है। जिस समय रेटिना पर बनने वाले बिंब में परिवर्तन होता रहता है, हम यह भी जानते रहते हैं कि हम वस्तु के सापेक्ष परिवेश में गति कर रहे हैं या अपना स्थान बदल रहे हैं।

3. **चमक तथा वर्ण स्थैर्य :** यदि आप किसी ऐसे उत्सव में भाग ले रहे हों जहां पीले रंग का प्रकाश हो तो प्रारंभ में आपको दीवारें पीले रंग की दिखाई देंगी, परंतु कुछ देर के बाद आपको पता चल जाएगा कि दीवारों का रंग सफेद है और सब कुछ सामान्य हो जाएगा। अर्थात्, दीवार के रंग का प्रत्यक्षीकरण करते समय प्रकाश के रंग का भी ध्यान रखेंगे और वर्ण स्थैर्य दिखाई देगा। इसी प्रकार, एक सफेद कागज कमरे के अंदर तथा बाहर धूप में एकसमान सफेद दिखाई पड़ता है जबकि दोनों दशाओं में कागज से आँखों तक परावर्तित होकर जाने वाले प्रकाश की मात्रा में बहुत अधिक भिन्नता होती है। यह चमक स्थैर्य का एक उदाहरण है और इसका कारण यह है कि चमक का प्रत्यक्षीकरण करते समय रेटिना पर पड़ने वाले प्रकाश की व्याख्या करने में हम बाहर के प्रकाश की भिन्नता को ध्यान में रखते हैं।

4. **स्थिति स्थैर्य :** हम अपने चारों ओर की वस्तुओं के स्थानों के प्रति अभ्यस्त हो जाते हैं। जब हम अपने सिर को घुमाते हैं तो घुमाव के अनुसार ही रेटिना पर बनने वाले बिंब में भी परिवर्तन होता है परंतु वस्तु की स्थिति के प्रत्यक्षीकरण में कोई परिवर्तन नहीं होता। उदाहरण के लिए, जब हम दीवार पर टँगे चित्र को उसके नीचे लेट कर देखते हैं तो रेटिना पर बनने वाला उसका बिंब बदल जाता है और बिंब लगभग 90 अंश झुक जाता है फिर भी उस चित्र का हमारा प्रत्यक्षीकरण परिवर्तित नहीं होता क्योंकि प्रत्यक्षीकरण करते समय हम अपनी स्थिति को भी ध्यान रखते हैं। हम जानते हैं कि हम चित्र को नीचे लेट कर देख रहे हैं।

बाक्स 6.4

शिखर-तल तथा तल-शिखर प्रक्रियाएँ

मनोवैज्ञानिकों के लिए यह सदा से ही एक गूढ़ प्रश्न रहा है कि मनुष्य विभिन्न उद्दीपकों को अर्थयुक्त प्रत्यक्षित वस्तु के रूप में किस प्रकार संगठित करता है। प्रत्यक्षीकरण विभिन्न प्रक्रियाओं का एक उत्पाद या अंतिम परिणति है। यह दो प्रकार के कारकों का प्रकार्य होता है– उद्दीपक-कारक या तल-शिखर प्रक्रियाएँ (*Bottom–Up Processess*) तथा व्यक्तिगत कारक या शिखर-तल प्रक्रियाएँ (*Up – Bottom Processess*)। ये दोनों प्रकार की प्रक्रियाएँ सामान्यतः पारस्परिक अंतःक्रिया द्वारा मनुष्य को अपने परिवेश का अर्थयुक्त प्रत्यक्षीकरण के योग्य बनाती हैं।

तल-शिखर प्रक्रियाएँ: इसका अर्थ है संग्राहकों द्वारा परिवेश के संबंध में आंकड़े या सूचना प्राप्त करके उनमें सार-तत्व की प्रासंगिक सूचनाएँ निकालने और उनका विश्लेषण करने के लिए उन्हें उच्च केंद्रों तक भेजना। इस प्रक्रम को **'उद्दीपक-चालित'** या **प्रदत्त-चालित' (*Data driven*)** भी कहा जाता है क्योंकि प्रात्यक्षिक प्रक्रम संग्राहकों से आगत सूचनाओं से ही परिचालित होते हैं।

शिखर–तल प्रक्रियाएँ : इस प्रक्रिया का अर्थ है प्रत्यक्षकर्ता के पूर्वानुभवों, ज्ञान, प्रत्याशाओं, स्मृति, अभिप्रेरणाओं, सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विश्वासों एवं अभिवृत्तियों आदि को ध्यान में रखते हुए प्रत्यक्षीकरण करने हेतु प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करना। इसका निहितार्थ यह है कि कोई प्रत्यक्षकर्ता आगत सूचनाओं के साथ अंतःक्रिया करने में इन कारकों (प्रत्यक्षकर्ता के पूर्वानुभवों इत्यादि) का लाभ उठाएगा। प्रत्यक्षीकरण के इस पक्ष को **'संप्रत्यय-चालित' (Conceptually driven)** भी कहा जाता है। अतः तल-शिखर प्रक्रमण से बाह्य परिवेश की **मानसिक संरचना** निर्मित होती है तथा शिखर–तल प्रक्रमों से **प्रत्यभिज्ञा** तथा **तादात्मीकरण** अदि की क्रियाओं में सहायता प्राप्त होती है।

बाक्स 6.5

अभिप्रेरणा तथा प्रत्यक्षीकरण

यह एक स्थापित तथ्य है कि अनेक व्यक्तिगत परिवर्त्य; जैसे– आवश्यकता, संवेग, मूल्य, व्यक्तित्व आदि प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि एक भूखा तथा एक प्यासा व्यक्ति किसी रेस्तरां में जाए तो उपलब्ध पदार्थों की सूची में से भूखा व्यक्ति खाने की वस्तुओं को, प्यासा व्यक्ति पानी की वस्तुओं को शीघ्रता से प्रत्यक्षित कर लेगा। इस प्रकार के प्रभाव की जानकारी तो बहुत पहले से रही है परंतु चालीस के दशक के अंतिम भाग में **'नवीन दृष्टि'** वाले मनोवैज्ञानिकों ने प्रात्यक्षिक संगठन में **केंद्रीय कारकों** या **प्राणिगत परिवर्त्यों** के प्रभाव का प्रायोगिक प्रदर्शन किया। उस काल में ऐसे अनेक

अध्ययन प्रकाशित किए गए, जिनमें प्रयोगकर्ताओं ने भोजन से वंचन, दंड तथा पुरस्कार, सांवेगिक रूप से उद्‌वेलित करने वाली सामग्री, मूल्यों आदि का प्रात्यक्षिक संगठन पर प्रभाव प्रदर्शित किया।

शोध अध्ययनों की एक दिशा प्रात्यक्षिक संगठन पर व्यक्ति की आवश्यकता के प्रभावों के अध्ययन से संबंधित थी। एक प्रयोग में ब्रूनर तथा गुडमैन ने प्रदर्शित किया कि प्रत्यक्षीकरण को आर्थिक वंचन (गरीबी) प्रभावित करता है। इस प्रयोग में बच्चों से कहा गया कि वे प्रकाश के एक वृत्त के आकार को विभिन्न प्रकार के सिक्के – पेनी, निकेल, डाइम, तथा क्वार्टर (ये सभी अमेरिकी सिक्के हैं) के आकार के बराबर बनाएँ। गरीब परिवार के बच्चों ने सिक्कों के वास्तविक आकार से बड़े आकार के वृत्त बनाए। दूसरी ओर, धनी परिवार के बच्चों ने सिक्कों के वास्तविक आकार से छोटे-आकार के वृत्त बनाए। इस परिणाम की व्याख्या इस प्रकार की गई कि गरीब परिवार के बच्चों को रुपयों की अधिक आवश्यकता थी तथा उनको पाने की अभिप्रेरणा भी उनमें धनी बच्चों की अपेक्षा अधिक थी। अतः उनकी आवश्यकता ने उनके प्रात्यक्षिक संगठन को प्रभावित किया।

बाक्स 6.6 **प्रत्यक्षीकरण पर सांस्कृतिक प्रभाव**

प्रत्यक्षीकरण का सीखना तथा उसका विकास सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश की पृष्ठभूमि में होता है। अतः यह प्रत्याशा की जा सकती है कि व्यक्ति की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि उसके प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करेगी। व्यक्ति के पूर्व अनुभवों के अनुरूप ही उसके प्रात्यक्षिक संगठन के स्वरूप में भी परिवर्तन होगा। अनेक प्रायोगिक अध्ययन इस परिकल्पना का समर्थन करते हैं कि संस्कृति प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है।

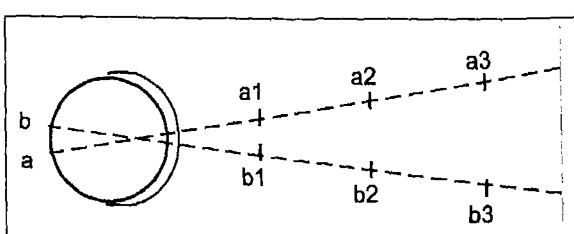
सेगल, कैंपबेल तथा हर्स्कोविट्स (1966) ने अनेक अध्ययनों को प्रस्तुत किया, जिनमें उन्होंने प्रतिभागियों के रूप में अफ्रीका के दूर-दराज के गाँवों और पाश्चात्य देशों के नगरवासियों को लिया। उन्होंने प्रतिभागियों के इन दोनों समूहों की दो प्रकार के दृष्टि भ्रमों (उदाहरण के लिए, ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम तथा म्यूलर-लायर भ्रम) में की जाने वाली अनुक्रियाओं की तुलना की। उन्होंने पाया कि इन समूहों में भ्रम की मात्रा उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से प्रभावित होती है। अफ्रीका के घने जंगलों में रहने वाले प्रयोज्यों को ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम अधिक मात्रा में हुआ और पश्चिम के नगरीय प्रयोज्यों को म्यूलर-लायर भ्रम अधिक हुआ। इस भिन्नता की व्याख्या स्वाभाविक परिवेश तथा निर्मित परिवेश के भिन्न-भिन्न अनुभवों के आधार पर की गई।

भारत में किए गए एक अध्ययन में ब्रूटा तथा गांगुली (1975) ने पाया कि भारतीय बच्चे (हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही) अस्पष्ट चित्रों के उन पक्षों को अधिक देखते हैं, जिनका साहचर्य उनके प्रात्यक्षिक सीखने की अवधि में किसी दंड (आर्थिक) से रहा होता है। दूसरी ओर, अमेरिकी बच्चे अस्पष्ट चित्रों से उन पक्षों को अधिक देखते हैं जिनका साहचर्य उनके प्रात्यक्षिक सीखने के काल में किसी पुरस्कार (आर्थिक) से रहा होता है। इन दोनों समूहों पर पुरस्कार तथा दंड के भिन्न-भिन्न प्रभावों की व्याख्या उन बच्चों के पालन-पोषण की विधि में पाई जाने वाली सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर की गई।

दिक् प्रत्यक्षीकरण

दिक् प्रत्यक्षीकरण (Perception of Space) का तात्पर्य आकार तथा दूरी प्रत्यक्षीकरण से है। इससे संबंधित समस्या इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि त्रिविमात्मक परिवेश का रेटिना पर बनने वाला बिंब द्विविमात्मक होता है। प्रश्न यह है कि द्विविमात्मक बिंब से हम त्रिविमात्मक प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार करते हैं। दूसरे शब्दों में, हमें गहराई या दूरी का प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार होता है? चित्र 6.11 में दिक् प्रत्यक्षीकरण की समस्या प्रस्तुत की गई है।

चित्र 6.11 में यह देखा जा सकता है कि दृष्टि रेखा पर स्थित बिंदु– a_1, a_2, a_3 – – – आदि के बिंब रेटिना के बिंदु 'a' पर बन रहे हैं। इसी प्रकार बिंदु $b_1, b_2 b_3$ – – – आदि के बिंब रेटिना के बिंदु 'b' पर बन रहे हैं (किसी बाह्य वस्तु का रेटिना पर बनने वाला बिंब उलटा होता है)। अतः रेटिना से प्राप्त सूचनाओं से विभिन्न बिंदुओं की केवल दिशा



चित्र 6.11 : दिक् प्रत्यक्षीकरण की समस्या।

का पता चल सकता है। उनसे आँखों से उनकी अलग-अलग दूरी का बोध नहीं हो सकता फिर भी हम अपने दैनिक जीवन के अनुभवों से यह जानते हैं कि हम दूरी अथवा गहराई का पर्याप्त सही प्रत्यक्षीकरण करते हैं। यहाँ समस्या यह है कि रेटिना की द्विविमात्मक सूचना से हम दिक् अथवा दूरी का सही प्रत्यक्षीकरण किस तरह कर लेते हैं। हम देखेंगे कि प्राप्त होने वाले विभिन्न संकेतों के कारण ही दिक् प्रत्यक्षीकरण संभव हो पाता है। इन संकेतों का वर्णन करने से पहले उचित यह होगा कि विषय की विवेचना में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्दों की जानकारी प्राप्त कर ली जाए।

दूरी : इसका अर्थ किसी प्रेक्षक तथा वस्तु के बीच स्थानगत निरपेक्ष विस्तार (Absolute spatial extent) अथवा (D) विस्तार की मात्रा से है। उदाहरण के लिए, यदि आप किसी वृक्ष को देख रहे हैं तो आपके तथा पेड़ के बीच की लंबाई की किसी इकाई में मापा गया विस्तार ही दूरी (D) कहलाएगा। भौतिक दूरी के साथ-साथ एक प्रात्यक्षित दूरी (D') भी होती है। प्रात्यक्षित दूरी का अर्थ है व्यक्ति द्वारा अनुभूत दूरी। इसे कभी-कभी आभासी दूरी (Apparent Distance) भी कहते हैं।

गहराई : किसी प्रेक्षक द्वारा किन्हीं दो वस्तुओं के बीच का सापेक्षिक स्थानगत विस्तार ही गहराई कहलाता है। उदाहरण के लिए, जब आप किन्हीं दो वृक्षों के बीच के स्थानगत विस्तार को देखते हैं तो इस विस्तार को गहराई कहा जाएगा। भौतिक गहराई का अर्थ है, दोनों वस्तुओं के बीच की वास्तविक दूरी तथा प्रात्यक्षित गहराई का अर्थ है प्रेक्षक द्वारा अनुभूत गहराई।

आकार : प्रत्येक वस्तु का एक भौतिक आकार (S) होता है। आकार का किसी मापनी से मापन किया जा सकता है। प्रेक्षक उस वस्तु के जितने आकार का प्रत्यक्षीकरण करता है, उसे प्रात्यक्षित आकार या आभासी आकार (S') कहा जाता है।

हम गहराई तथा दूरी का प्रत्यक्षीकरण प्राप्त होने वाले अनेक संकेतों की सहायता से करते हैं। इन संकेतों को हम तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं : (i) **अचाक्षुष** (Non-visual) **संकेत**, (ii) **द्विनेत्रीय दृष्टि संकेत** (Binocular cues), (iii) **एकनेत्रीय दृष्टि संकेत** (Monocular cues)

अब हम इन तीनों प्रकार के संकेतों के बारे में बारी-बारी से विचार करेंगे।

अचाक्षुष संकेत : ये संकेत दो प्रकार के होते हैं — (अ) समंजन तथा (ब) अभिसरण।

(अ) ***समंजन :*** कैमरे में जिस क्रिया को फोकस करना कहते हैं आंखों में वही क्रिया समंजन *(Accommodation)* कहलाती है। सिलियरी पेशियों की सहायता से किसी बाह्य वस्तु के बिंब को रेटिना पर फोकस किया जाता है। सिलियरी पेशियाँ बाह्य वस्तु की आंखों से दूरी के अनुसार लेंस की मोटाई को परिवर्तित कर देती हैं। इसी क्रिया को समंजन कहा जाता है। यदि वस्तु की दूरी अपेक्षाकृत अधिक है (दो मीटर से अधिक) तो सिलियरी पेशियाँ शिथिल रहती हैं। वस्तु जैसे-जैसे आँख के निकट आती है, सिलियरी पेशियों में संकुचन की क्रिया होती है, जिससे लेंस अधिक मोटा या उत्तल होता जाता है। सिलियरी पेशियों में संकुचन की मात्रा का संकेत पेशीय संवेदना के रूप में मस्तिष्क को प्राप्त हो जाता है जो वस्तु की दूरी का एक संभावित संकेत होता है। यदि वस्तु दूर है तो सिलियरी पेशियाँ शिथिल होती हैं और यदि वस्तु पास है तो इनमें तनाव होता है। संकुचन के कारण इन पेशियों में उत्पन्न तनाव की मात्रा की सूचना मस्तिष्क को समंजन संकेत के रूप में प्राप्त होती है। तथापि, शोध अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि दूरी के प्रत्यक्षीकरण के लिए समंजन से प्राप्त होने वाला संकेत एक दुर्बल संकेत होता है।

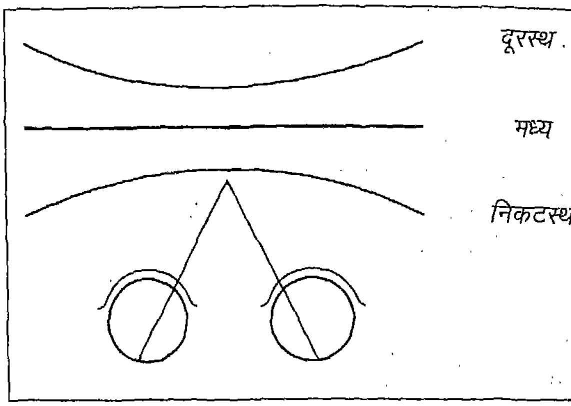
(ब) ***अभिसरण :*** जब आप पास की किसी वस्तु को देखते हैं या इस लाइन के किसी शब्द को पढ़ते हैं तो दोनों आँखों के रेटिना के फोविया पर उसका बिंब बनाने तथा विलय के द्वारा स्पष्ट देखने के लिए आप दोनों आँखों को अंदर की तरफ घुमा कर अभिसरित करते हैं। यह कार्य नेत्रगोलकों से लगी छः पेशियों द्वारा किया जाता है। वस्तु को देखने के लिए किस मात्रा में अभिसरण करना पड़ा इसकी सूचना मस्तिष्क को चली जाती है और यह सूचना दूरी के एक संकेत का कार्य करती है। आँखों से किसी वस्तु की दूरी जैसे-जैसे बदलती जाती है अभिसरण कोण भी वैसे ही बदलता रहता है। यदि वस्तु पास है तो अभिसरण कोण अधिक होता है और वस्तु जैसे-जैसे दूर जाती है अभिसरण कोण घटता जाता है।

द्विनेत्रीय चाक्षुष संकेत

ये संकेत पूर्व वर्णित संकेतों से भिन्न प्रकार के होते हैं। इसकी उत्पत्ति रेटिना पर निर्मित होने वाले बिंब से ही होती है। इनमें दो प्रकार के संकेत होते हैं : (i) द्विबिंब (ii) द्विनेत्रीय वैषम्य।

होरोप्टर (Horopter) – द्विनेत्रीय चाक्षुष संकेतों का वर्णन करने से पूर्व हम होरोप्टर तथा दो द्विनेत्रीय दृष्टि के संदर्भ में संगत-बिंदुओं को जान लेना प्रासंगिक है। द्विनेत्रीय दृष्टि का अर्थ है एक वस्तु को दो आँखों से देखना, जिसमें वस्तु का बिंब दोनों आँखों में अलग-अलग परंतु संगत-बिंदुओं पर बनता है और मस्तिष्क में इन दोनों बिंबों का विलय हो जाता है। दूसरे शब्दों में, मस्तिष्क के प्रक्षेपण क्षेत्रों में दोनों आँखों के दृष्टि क्षेत्र या बिंब एक दूसरे पर अध्यारोपित हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप दोनों आँखों से अलग-अलग देखने के बावजूद, द्विनेत्री दृष्टि संभव होती है और हमें एक निश्चित स्थान पर स्थित एक ही वस्तु दिखाई देती है। यदि आप अपनी एक आँख को अँगुली से कोने में दबाकर देखें तो आपको दोनों आँखों में बनने वाले बिंब अलग-अलग दिखाई देंगे। जब आप अँगुली से आँख को दबाते हैं तो आप यांत्रिक रूप से संगत बिंदुओं को अपने स्थान से हटा देते हैं। परिणामतः दोनों आँखों के बिंबों का विलय नहीं हो पाता है। जब हम पढ़ते हैं या किसी वस्तु को देखते हैं, तो हम अपनी दोनों आँखों को इस प्रकार अभिसरित करते हैं कि वस्तु के बिंब दोनों आखों की रेटिना के फोविया-क्षेत्र पर बनें। ऐसा होने पर कॉर्टेक्स के प्रक्षेपण क्षेत्र में दोनों आँखों से प्राप्त बिंबों का द्विनेत्रीय विलय हो जाता है और तब इस क्षेत्र में दृष्टि तीक्ष्णता सर्वाधिक होती है।

यदि दोनों आँखों को कुछ दूरी पर स्थित बिंदु P पर केंद्रित किया जाए, तो दोनों आँखों में इस बिंदु द्वारा रेटिना के संगत स्थानों पर बनने वाले बिंबों का एक दूसरे में विलय हो जाएगा और हमें एक ही बिंदु P दिखाई पड़ेगी। बिंदु P से गुजरने वाली क्षैतिज रेखा पर स्थित अन्य सभी बिंदुओं के बिंब भी संगत स्थानों पर बनेंगे और उनका विलय हो जाएगा क्योंकि सभी बिंदु एक होरोप्टर पर स्थित हैं। क्षेत्र में P के अतिरिक्त अन्य सभी बिंदुओं के, जो P की अपेक्षा अधिक दूर या पास हैं, के बिंब असंगत बिंदुओं पर बनेंगे अतः उनका विलय नहीं होगा और उनके दो बिंब बनेंगे। होरोप्टर उन समस्त बिंदुओं की अवस्थिति है, जो किसी एक विशेष अभिसंरण की दशा में फोकस पर होते हैं तथा जिनके बिंब दोनों आँखों के रेटिना के संगत बिंदुओं पर बनते हैं और उनका विलय होने के कारण वे एक दिखाई देते हैं (चित्र 6.12 देखिए)।

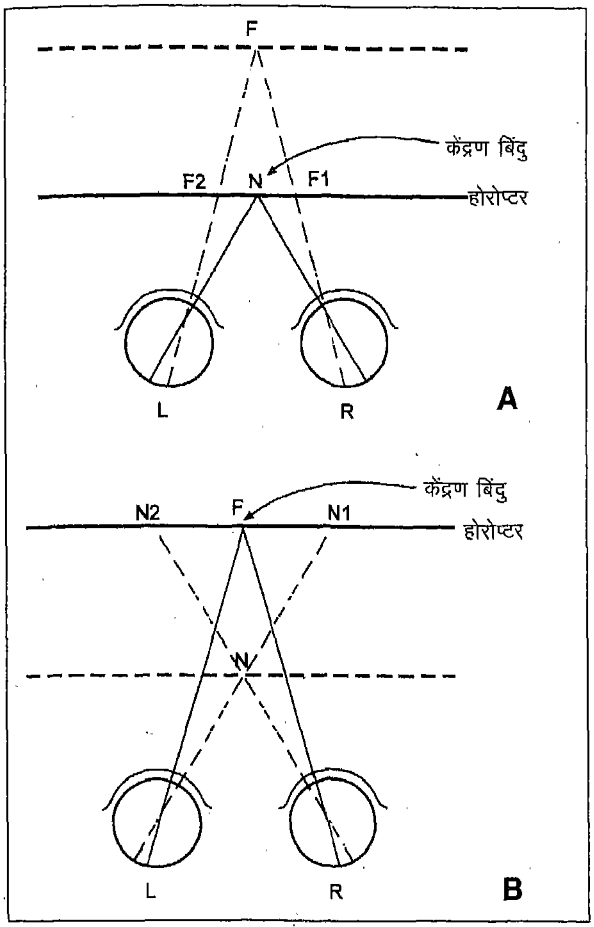


चित्र 6.12 : इंद्रियानुभविक होरोप्टर।

*(i) **द्विबिंब** :* मान लीजिए कि आप अपने सामने स्थित दो बिंदुओं N तथा F को देखते हैं जिनमें से बिंदु N आपके पास है और बिंदु F थोड़ा दूर है। आप अपनी दृष्टि को पास वाले बिंदु N पर केंद्रित करते हैं। चूँकि आपने अपनी आँखों को N बिंदु पर **समंजित** तथा **अभिसरित** कर लिया है अतः दोनों आँखों में बिंदु N के बिंबों का आपस में विलय (Fusion) हो जाएगा क्योंकि ये बिंब दोनों आँखों के संगत स्थानों पर बनेंगे। परंतु बिंदु F के दोनों बिंब (F_1 तथा F_2) असंगत स्थानों पर बनेंगे और यह द्विबिंब की दशा होगी। ये दोनों बिंब अनंतरित (Uncrossed) होंगे। इसका अर्थ यह है कि बिंब F_1 दाहिनी आँख द्वारा बिंदु N से दाहिनी ओर दिखाई देगा तथा बिंब F_2 बाईं आँख द्वारा बिंदु N के बाईं ओर दिखाई देगा। यदि आप अपनी दृष्टि F बिंदु पर केंद्रित करेंगे तो आपके पास के बिंदु N के दो बिंब बनेंगे परंतु ये दोनों बिंब अंतरित होंगे (चित्र 6.13-B देखिए)। इसका अर्थ यह है कि दाहिनी आँख से बिंब N_1 बिंदु F के बाईं ओर तथा बाईं आँख से बिंब N_2 बिंदु F के दाहिनी ओर दिखाई देगा।

अतः जब हमें अनंतरित द्विबिंब प्राप्त होते हैं तो कोई बिंदु उस बिंदु से दूर प्रतीत होता है, जिस पर दृष्टि केंद्रित की गई है। दूसरी ओर, जब हमें अंतरित द्विबिंब प्राप्त होते हैं तो कोई बिंदु उस बिंदु से निकट प्रतीत होता है, जिस पर दृष्टि केंद्रित की गई है।

*(ii) **द्विनेत्रीय वैषम्य** :* जिस बिंदु पर दृष्टि केंद्रित की जा रही है (होरोप्टर) उससे दूर वाले तथा पास वाले सभी बिंदुओं के रेटिना पर बनने वाले बिंब असंगत बिंदुओं या



चित्र 6.13 : दृविबिंब : A–अनंतरित, B–अंतरित।

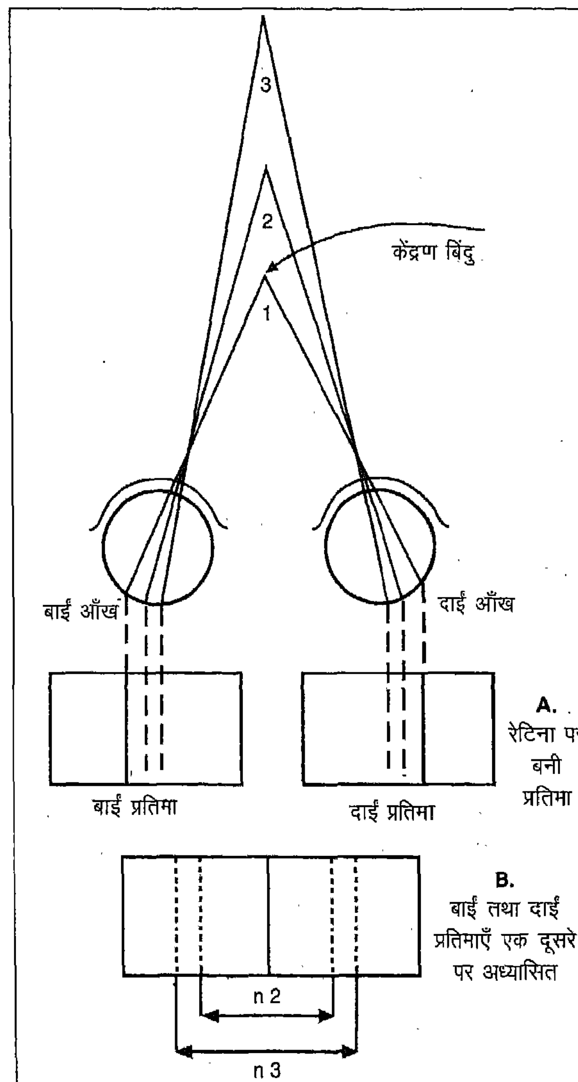
विषम स्थानों पर बनते हैं। कोई बिंदु होरोप्टर से जितना ही अधिक दूर होता है उसके बिंबों में दृविनेत्रीय वैषम्य की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। यह वैषम्य भी किसी वस्तु की दूरी बताने का एक संभावित संकेत है। अर्थात् वैषम्य की मात्रा की सूचना से ज्ञात होता है कि वस्तु होरोप्टर से कितनी दूर है (चित्र 6.14 देखिए)।

त्रिविमदर्शी दृष्टि

चार्ल्स ह्वीटस्टोन (1833) ने यह प्रदर्शित किया था कि मनुष्य की दृष्टि त्रिविमदर्शी होती है। उन्होंने त्रिविमदर्शक (Stereoscope) को भी आविष्कृत किया। मनुष्य की दोनों आँखों के बीच की दूरी लगभग 65 सेंटीमीटर होती है, इसलिए दोनों आँखें किसी वस्तु का अलग-अलग दृश्य ग्रहण करती हैं। दाहिनी आँख किसी वस्तु के दाहिने भाग का अधिकांश भाग देखती है और बाईं आँख की अपेक्षा भिन्न दृश्य ग्रहण करती है। इसी प्रकार, बाईं आँख उस

क्रियाकलाप 6.1

दृविबिंब *– दो पेंसिलें लें। एक-एक हाथ में एक-एक पेंसिल। हाथों को फैलाकर अपनी नाक की सीध में तथा दोनों आँखों के बीच में उनके सिरों को इस प्रकार करें कि एक पेंसिल पास में हो तथा दूसरी दूर। अब आप अपनी दृष्टि पास वाली पेंसिल पर केंद्रित करें और दूर वाली पेंसिल के सापेक्ष आपको जो दिखाई दे उसे लिखें। इसके बाद आप दूर वाली पेंसिल पर अपनी दृष्टि केंद्रित करें और दूर वाली पेंसिल के सापेक्ष आपको जो दिखाई दे उसे लिखें। आपको दोनों ही दिशाओं में उस पेंसिल के दोनों बिंब अलग-अलग दिखाई देंगे जिस पर आप दृष्टि केंद्रित नहीं कर रहे हैं। एक दशा में बिंब अंतरित तथा दूसरी दशा में अनंतरित होंगे।*



चित्र 6.14 : दृविनेत्रीय वैषम्य।

वस्तु का दाहिनी आँख की अपेक्षा एक भिन्न दृश्य ग्रहण करती है। इन दोनों भिन्न दृश्यों का मस्तिष्क में विलय होने पर द्विनेत्रीय दृष्टि में एक स्पष्ट गहराई का प्रभाव उत्पन्न होता है। त्रिविमदर्शक में दोनों आँखों को अलग-अलग एक त्रिविमदृश्य प्रस्तुत किया जाता है। बाईं आँख को बायाँ त्रिविमदृश्य (किसी वस्तु की ऐसी तस्वीर जो कैमरे को थोड़ा बाईं ओर रखकर खींची गई हो) तथा दाहिनी आँख को दाहिना त्रिविमदृश्य (उसी वस्तु की ऐसी तस्वीर जो कैमरे को थोड़ा दाहिनी ओर रख कर खींची गई हो)। ऐसा इसलिए क्योंकि स्वाभाविक दशा में भी बाईं आँख किसी वस्तु के बाएँ भाग को अधिक मात्रा में देखती है और दाहिनी आँख उसी वस्तु के दाहिने भाग को थोड़ा अधिक देखती है। त्रिविमदर्शक की सहायता से दोनों त्रिविमदृश्यों का विलय कराने पर उस वस्तु के एक स्पष्ट त्रिविमात्मक चित्र का निर्माण होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारी त्रिविमदर्शी दृष्टि हमें गहराई या दूरी की स्पष्ट सूचना प्रदान करती है। आप हॉवर्ड-डॉलमैन उपकरण की सहायता से अभ्यास 6.2 में वर्णित विधि से द्विनेत्रीय दृष्टि की परिशुद्धता का प्रायोगिक अध्ययन कर सकते हैं।

एकनेत्रीय दृष्टि संकेत

एकनेत्रीय दृष्टि संकेत या चित्रपरक संकेत (Pictorial cues) एकनेत्रीय तथा द्विनेत्रीय दोनों ही दशाओं में कार्य करते हैं। इनको चित्रपरक संकेत इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये किसी फोटोग्राफ या चित्र में भी दूरी के संकेत होते हैं। इन संकेतों से दूरी समझने में उन लोगों को विशेष सहायता मिलती है, जिनकी एक आँख खराब है। दोनों आँखों वाले भी इनका उपयोग करते हैं। कलाकार अपने चित्रों में इन संकेतों का बहुत उपयोग करते हैं। इन्हीं के कारण द्विविमात्मक तल (कागज या कैनवास) पर बनाए गए चित्रों में त्रिविमात्मक दृश्य दिखाई पड़ते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण एकनेत्रीय संकेत निम्नलिखित हैं।

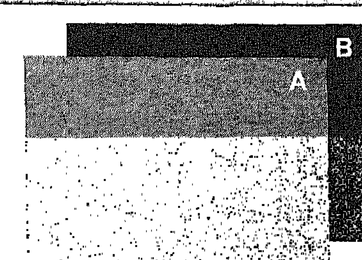
1. ***आच्छादन*** : जब कोई वस्तु A किसी दूसरी वस्तु B को आंशिक रूप से आच्छादित कर ले या ढक ले तो आच्छादित वस्तु आच्छादन (Interposition) करने वाली वस्तु से दूर स्थित लगती है। इस संकेत का चित्रकारों द्वारा दूरी अथवा गहराई का बोध कराने के लिए बहुतायत से उपयोग किया जाता है। इस संकेत का उपयोग करने की योग्यता का विकास बच्चों में बहुत कम आयु में ही हो जाता है क्योंकि देखा गया है कि बच्चे भी अपनी चित्रकारी में इसका उपयोग करते हैं (चित्र 6.15 देखिए)।

क्रियाकलाप 6.2

द्विनेत्रीय दृष्टि की परिशुद्धता

प्रयोगशाला में यह प्रयोग हॉवार्ड-डॉलमैन उपकरण की सहायता से किया जा सकता है। इस उपकरण में लकड़ी का एक बाक्स होता है, जिसकी एक दीवार में अन्दर देखने के लिए एक खिड़की होती है और अंदर उसके सामने की दीवार की पृष्ठभूमि सफेद होती है। बीच में सफेद पृष्ठभूमि के सामने दो काली ऊर्ध्वाधर छड़ें लटकी होती हैं, जिनके बीच की क्षैतिज दूरी 25 सेंटीमीटर होती है। खिड़की में से इन छड़ों को देखा जा सकता है। इन दो छड़ों को 6 मीटर दूर बैठे प्रतिभागी द्वारा छड़ों में बँधे हुए धागे की सहायता से आगे पीछे खिसकाया जा सकता है। उपकरण इस प्रकार का बना होता है कि प्रतिभागी को छड़ों के सिरे नहीं दिखाई देते। इनमें से एक छड़ को मानक छड़ तथा दूसरी को तुलना छड़ मान लिया जाता है तथा प्रयोगकर्ता प्रतिभागी से इनकी दूरी अलग-अलग करके प्रस्तुत करता है। प्रतिभागी मनोभौतिकी की औसत त्रुटि विधि या समायोजन विधि के द्वारा धागे की सहायता से तुलना छड़ को मानक छड़ (स्थिर) की दूरी पर ले आता है। प्रयोग दो दशाओं में किया जाता है–द्विनेत्रीय दृष्टि तथा एकनेत्रीय दृष्टि।

द्विनेत्रीय दशा में प्रयोग करने पर भिन्नता देहली की मात्रा एकनेत्रीय दशा की अपेक्षा कम प्राप्त होती है। दूरी के लिए भिन्नता देहली की गणना के लिए प्रतिभागी की अनुक्रियाओं के प्रामाणिक विचलन में .6745 का गुणा किया जाता है। हॉवर्ड ने एक प्रयोग में द्विनेत्रीय दृष्टि की दशा में भिन्नता देहली का मान 14.4 मिलीमीटर पाया था जबकि एकनेत्रीय दशा में यही मान 285 मिलीमीटर था। द्विनेत्रीय दशा के पक्ष में यह अनुपात 20:1 का था। इससे यह ज्ञात होता है कि गहराई के प्रत्यक्षीकरण में द्विनेत्रीय दृष्टि त्रिविमदर्शी तथा दूरी के अन्य संकेत उपलब्ध होने के कारण एकनेत्रीय दृष्टि की अपेक्षा अधिक परिशुद्ध होती है। भिन्नता देहली की गणना करने की बजाय आप दोनों दशाओं (द्विनेत्रीय तथा एकनेत्रीय) में प्रतिभागी द्वारा की जाने वाली औसत त्रुटियों की गणना भी की जा सकती है।

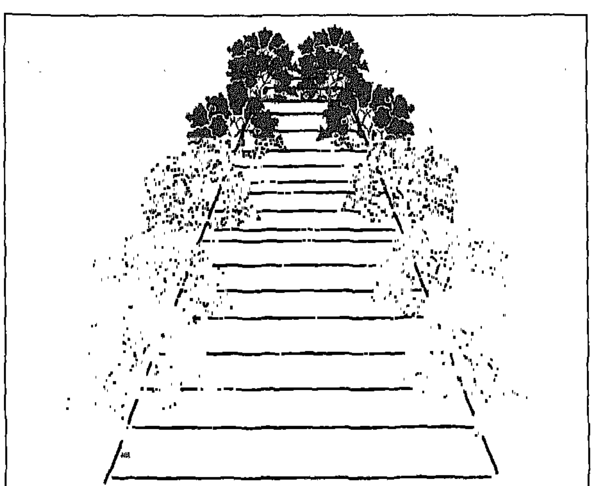


चित्र 6.15 : आच्छादन।

2. ***वायवीय परिदृश्य या स्पष्टता*** : निकट के भवनों को देखने पर वे स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, उनकी परिरेखाएँ स्पष्ट होती हैं जबकि दूर के भवनों को देखें तो उनकी परिरेखाएँ धुँधली होती हैं, उनका रंग भी भूरा या अस्पष्ट-सा दिखाई देता है। दूर स्थित पहाड़ों का रंग नीला दिखाई पड़ता है। ऐसी वस्तुएँ, वृक्ष या भवन आदि जो धुँधले दिखाई देते हैं, हमें स्पष्ट दिखाई देने वाली वस्तुओं की तुलना में दूर स्थित लगते हैं।

3. ***रेखीय परिदृश्य*** : जब दो समानान्तर रेखाएँ आगे की ओर बढ़ती हैं, जैसे रेल की पटरियाँ तो वे रेटिना पर बनने वाले बिंब में दूर जाकर किसी बिंदु पर मिलती हुई प्रतीत होती हैं। इनका **निकटस्थ आकार** (रेटिना के बिंब में) भी घटता जाता है। इसका एक अन्य उदाहरण लें। दृष्टि क्षेत्र में किन्हीं दो वस्तुओं के बीच की दूरी जितनी ही अधिक होती है, वे एक दूसरे के पास उतनी ही स्थित लगती हैं। इसके विपरीत, कोई दो वस्तुएँ हमारे जितनी ही पास होती हैं वे एक दूसरे से दूर दिखाई देती हैं। बच्चों के बनाए गए चित्रों से यह स्पष्ट होता है कि उनमें इस संकेत का विकास विलंब से होता है (चित्र 6.16 देखिए)।

4. ***प्रकाश एवं छाया*** : हमको यह ज्ञात रहता है कि प्रकाश का स्रोत और दिशा क्या है। दिन के समय सामान्यतः सूर्य का प्रकाश ऊपर से मिलता है। ऐसे में एक वस्तु द्वारा दूसरी वस्तु पर पड़ने वाली छाया यह सूचित कर सकती है कि कौन-सी वस्तु हमसे दूर है और कौन-सी पास। खोखली अथवा उभरी हुई वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण में प्रकाश तथा छाया महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।



चित्र 6.16 : रैखिक परिदृश्य।

5. ***परिचित आकार*** : यदि आप अपने मित्र की लंबाई जानते हैं, तो आप रेटिना पर बनने वाले उसके बिंब के आकार के आधार पर यह अनुमान लगा सकते हैं कि वह आपसे कितनी दूर खड़ा है। ताश के पत्तों का आकार निश्चित होता है और इस आकार की स्मृति हमें रहती है। यदि आप एक अँधेरे कमरे में किसी दूरी पर ताश के एक पत्ते को दिखाएँ तो प्रयोज्य बड़ी शुद्धता से उसकी दूरी का आकलन कर लेगा। ऐसा इसलिए संभव है कि हम रेटिना पर बनने वाले बिंब की व्याख्या उस वस्तु के परिचित आकार को ध्यान (स्मृति से) में रख कर करते हैं और यह निर्णय लेते हैं कि वस्तु कितनी दूरी पर स्थित है। दूरी के प्रत्यक्षीकरण में परिचित आकार की भूमिका को समझने के लिए क्रियाकलाप 6.3 में दिया कार्य करें।

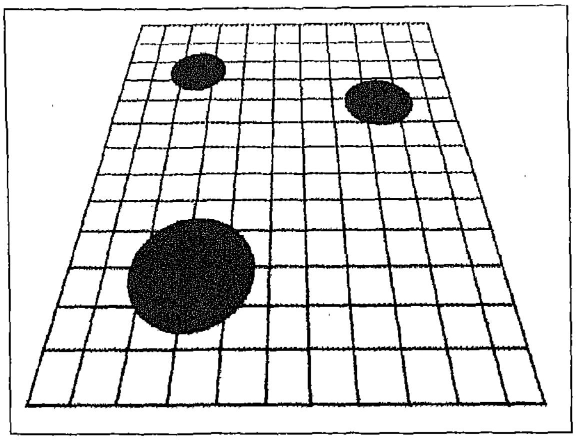
क्रियाकलाप 6.3

दूरी के एक संकेत के रूप में परिचित आकार

ताश के दो पत्ते (इक्के) लीजिए। एक अंधेरे कमरे में जाकर एक व्यक्ति के सामने एक पत्ता 3 मीटर तथा दूसरा पत्ता 6 मीटर की दूरी से बारी-बारी से दिखाइए। पत्ते खड़े करके ऊर्ध्वाधर दशा में दिखाएँ। यह ध्यान रखें कि कमरे में इतनी कम रोशनी हो कि अन्य वस्तुएँ न दिखाई पड़ें और ताश के पत्ते भी कठिनाई से धुँधले दिखाई पड़ें। अच्छा होगा कि यदि प्रयोज्य को मेज की ऊपरी सतह भी न दिखाई पड़े। प्रयोज्य से पूछें कि पत्ते उससे कितने फीट या मीटर दूर हैं। प्रयोज्य का उत्तर नोट करें। इसके बाद उसी तरह ताश के पत्तों की जगह उतने ही बड़े आकार के उतनी ही दूरियों पर दो सफ़ेद कागज दिखाकर प्रयोज्य से दूरी का आकलन कराएँ।

आप पाएँगे कि सफेद कागज दिखाए जाने की दशा में प्रयोज्य दूरी का आकलन उतनी शुद्धता से नहीं कर पाता। इससे स्पष्ट होता है कि वस्तुओं के परिचित आकार दूरी के सही प्रत्यक्षीकरण करने में हमारी सहायता करते हैं।

6. ***धरातल घनत्व की प्रवणता*** : एक जुते हुए खेत को देखिए। पास में देखने पर मिट्टी के ढेले स्पष्ट, अलग-अलग तथा विषम दिखाई पड़ते हैं परंतु जैसे-जैसे हम दूर की ओर देखते हैं, संरचना का घनत्व बढ़ता जाता है और संरचना में बारीकी आती जाती है। दूरी बढ़ने के साथ-साथ संरचना का निरंतर विषमता से बारीकी की ओर बढ़ते जाना दूरी के एक संकेत का कार्य करता है। ऐसी वस्तुएँ जिनकी धरातल संरचना में बारीकी दिखाई पड़ती है, विषम धरातल संरचना वाली वस्तुओं की अपेक्षा हमें दूर प्रतीत होती हैं (चित्र 6.17 देखिए)।



चित्र 6.17 : धरातल संरचना-घनत्व प्रवणता।

आकृति प्रत्यक्षीकरण

हम किसी वस्तु की आकृति का प्रत्यक्षीकरण कैसे करते हैं ? क्या आकृति एवं रूप को प्रत्यक्षित करने की हमारी योग्यता जन्मजात है अथवा अर्जित? हम किसी आकृति को पृष्ठभूमि से पृथक् कैसे करते हैं ? क्या ऐसे कुछ नियम हैं जो हमारे प्रत्यक्षीकरण को संगठित करते हैं? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में हम इस अनुभाग में विचार करेंगे। आकृति (Shape) तथा रूप (Form) शब्दों का प्रायः एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किया जाता रहा है। आधुनिक काल में आकृति शब्द का ही रूप शब्द की अपेक्षा अधिक उपयोग किया जाता है। अध्यायों का शीर्षक भी प्रायः आकृति प्रत्यक्षीकरण ही दिया जाता है। हम भी यहाँ इन दोनों शब्दों का एक दूसरे के स्थान पर उपयोग करेंगे।

आकृति अथवा रूप दृष्टि क्षेत्र के उस अंश को कहते हैं, जो एक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने वाली परिरेखा (Contour) द्वारा शेष क्षेत्र से अलग होता है। **वर्नर** (1935) ने प्रायोगिक रूप से यह प्रदर्शित किया था कि प्रत्यक्षीकरण कैसे होता है और आकृति के प्रत्यक्षीकरण में इसका क्या योगदान है। किसी आकृति के प्रत्यक्षीकरण के लिए आवश्यक है कि दो भिन्न दीप्ति (Luminance) या चमक वाले क्षेत्रों के बीच स्पष्ट परिरेखा हो। **मैक** (1865) ने कहा कि दीप्ति की प्रवणता में एकाएक परिवर्तन होने से परिरेखा का निर्माण होता है। यदि गणितीय रूप से कहा जाए तो यह दीप्ति के परिवर्तन में होने वाला परिवर्तन है।

आकृति एवं पृष्ठभूमि

कल्पना कीजिए कि यदि हमारे प्रत्यक्षीकरण में आकृति-पृष्ठभूमि पृथक्करण न होता तो यह संसार हमारे लिए कितना भ्रमपूर्ण तथा अस्त-व्यस्त होता। शायद प्रात्यक्षिक संगठन संभव ही नहीं होता। हमारे दृष्टि क्षेत्र का कुछ अंश आकृति के रूप में पृथक् हो जाता है और शेष अंश पृष्ठभूमि के रूप में रहता है। इसी पृष्ठभूमि के सापेक्ष हम आकृति का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। किसी आकृति का प्रत्यक्षीकरण करने के लिए आकृति-पृष्ठभूमि का पृथक्करण अनिवार्य (एवं जन्मजात) है। सर्वप्रथम **रूबिन** (1915) ने आकृति तथा पृष्ठभूमि में भिन्नता को स्पष्ट किया, जिसे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :

1. आकृति का अपना एक रूप (Shape) होता है जबकि पृष्ठभूमि का कोई निश्चित रूप नहीं होता।
2. पृष्ठभूमि आकृति के पीछे फैली होती है।
3. आकृति में किसी वस्तु के कुछ गुण होते हैं, जबकि पृष्ठभूमि रूपहीन प्रतीत होती है।
4. सामान्यतः आकृति सामने की ओर उभरी हुई तथा पृष्ठभूमि उसके पीछे स्थित प्रतीत होती है।
5. आकृति अधिक प्रभावी, अर्थपूर्ण तथा स्मृति में अच्छी तरह रहने वाली होती है।

आकृति-पृष्ठभूमि संगठन के निर्धारक

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों, मुख्य रूप से **कोहलर, कोफ्का,** तथा **वर्दाइमर** ने 1920 से 1930 के बीच में यह प्रतिपादित किया कि मस्तिष्क में प्रत्यक्षीकरण को संगठित करने की जन्मजात क्षमता होती है। इन लोगों के विचार से प्रात्यक्षिक संगठन के कुछ नियम होते हैं जिनके आधार पर व्यक्तियों में वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है। प्रात्यक्षिक संगठन के लिए मस्तिष्क के विद्युतीय क्षेत्र उत्तरदायी होते हैं। इन मनोवैज्ञानिकों की रुचि यह जानने में भी थी कि आकृति तथा पृष्ठभूमि में कौन-सी भिन्नताएँ होती हैं तथा किन कारणों से कोई आकृति अपनी पृष्ठभूमि से अलग होकर प्रत्यक्षित होती है।

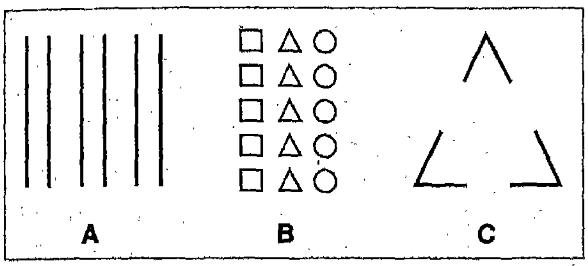
प्रात्यक्षिक समूहीकरण

1. ***सुंदर रूप (सौष्ठव का नियम) :*** इस नियम के अंतर्गत यह कहा गया कि उपस्थित दशाओं में जहाँ तक संभव हो सकता है मानसिक संगठन 'सुंदर व सौष्ठवपूर्ण' होता है। सदा ही ऐसा प्रत्यक्षीकरण होता है, जिसमें न्यूनतम संज्ञानात्मक प्रयास की सहायता से साधारणतम संगठन होता हो। सौष्ठव (Pragnanz) का अर्थ यह है कि हम उद्दीपक के सबसे साधारण संगठन का प्रत्यक्षीकरण करते हैं।

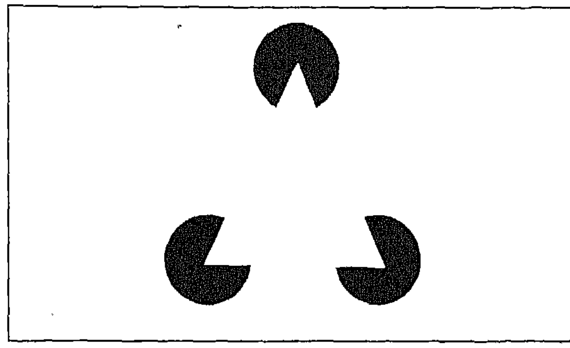
2. ***निकटता :*** यदि उद्दीपकों में स्थानगत अथवा कालगत निकटता (Proximity) हो तो उनका प्रत्यक्षीकरण साथ-साथ एक समूह में होता है। किसी उद्दीपक संरूप में जो तत्व पास-पास होते हैं वे एक साथ संगठित हो जाते हैं। चित्र 6.18 (a) में आप दो-दो ऊर्ध्वाधर पंक्तियों के तीन समूहों का प्रेक्षण कर सकते हैं। इसमें आपको छः अलग-अलग पंक्तियाँ देखने में कठिनाई होगी।

3. ***समानता :*** यदि अन्य सभी दशाएँ समान हों तो उद्दीपक संरूप में जो तत्व संरचना में समान होंगे या जिनमें कोई सर्वनिष्ठ लक्षण होगा उनका एक साथ प्रात्यक्षिक समूहीकरण हो जाएगा। चित्र 6.18 (b) में स्तंभों में पाँच बिंदुओं, पाँच वर्गों, तथा पाँच त्रिभुजों का समूहीकरण हो जाएगा।

4. ***संवरण :*** अधूरी आकृति का पूर्ण देखना संवरण (Closure) है। चित्र 6.18 (c) में एक आकृति की रेखाएँ अपूर्ण हैं। उनमें अंतराल है। किनारों के अपूर्ण होने के बावजूद इसे त्रिभुज के रूप में प्रत्यक्षित किया जाता है। संवरण के गोचर से व्यक्तिनिष्ठ परिरेखाएँ (Subjective contour) पैदा होती हैं। किसी आकृति के भौतिक रूप से परिरेखा न होने के बावजूद परिरेखाओं का प्रत्यक्षीकरण होता है (चित्र 6.19 देखिए)।



चित्र 6.18 : निकटता का नियम (a), समानता का नियम (b), संवरण का नियम (c) संवरण का नियम।



चित्र 6.19 : व्यक्तिनिष्ठ परिरेखा।

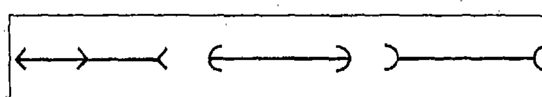
बाक्स 6.7

दृष्टि भ्रम

सांवेदिक अंगों से प्राप्त सूचनाओं की त्रुटिपूर्ण व्याख्याओं से त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण को भ्रम (Illusion) कहते हैं। भ्रमों का अनुभव लगभग सभी सामान्य मनुष्यों, पशुओं तथा पक्षियों दवारा किया जाता है। हमारे किसी भी संवेदना-क्षेत्र में भ्रम का अनुभव हो सकता है। परंतु यहां हम मात्र दृष्टि संवेदना में होने वाले भ्रमों तक ही सीमित रहेंगे।

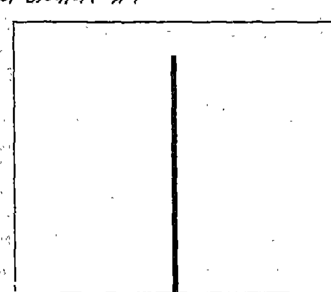
चंद्र भ्रम : *चंद्र भ्रम का अनुभव प्रायः सभी लोग करते हैं। सिर के ऊपर आकाश में स्थित चंद्रमा की अपेक्षा क्षैतिज स्थिति में चंद्रमा हमें अधिक चमकदार तथा बड़ा दिखाई देता है। हम जानते हैं कि दोनों ही दशाओं में चंद्रमा द्वारा रेटिना पर बनने वाले बिंब का आकार एकसमान ही होता है (क्योंकि चंद्रमा की पृथ्वी से दूरी समान रहती है) फिर भी चंद्रमा के प्रत्यक्षित आकार में भिन्नता होती है। इस भ्रम की एक व्याख्या* ***आकार-दूरी संबंधों*** *(Size-distance relationship) के आधार पर की जाती है। हेल्महोल्ट्ज़ ने बहुत पहले ही बताया था कि किसी वस्तु के आकार के संबंध में हमारा निर्णय उस वस्तु की दूरी के निर्णय से संबंधित होता है। हेल्महोल्ट्ज़ के अनुसार, यदि*

1. म्यूलर-लायर भ्रम



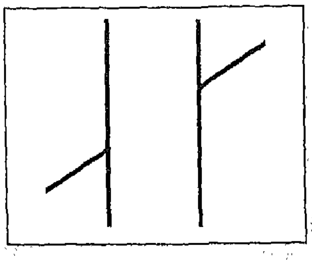
चित्र 6.20 : *म्यूलर-लायर भ्रम तथा इसके अन्य रूप।*

2. क्षैतिज-ऊर्ध्वाधर भ्रम



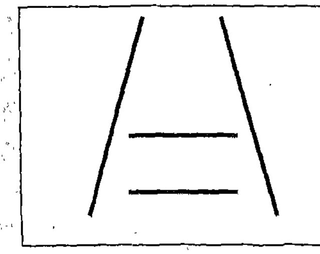
चित्र 6.21 : *क्षैतिज-ऊर्ध्वाधर भ्रम।*

3. पोगेनडॉर्फ भ्रम



चित्र 6.22 : पोगेनडॉर्फ भ्रम।

4. पोंजो भ्रम



चित्र 6.23 : पोंजो भ्रम।

*किन्हीं कारणों से हम किसी वस्तु की दूरी का निर्णय उसकी वास्तविक दूरी से अधिक करते हैं तो ऐसी दशा में हम उसके आकार का निर्णय भी उसके वास्तविक आकार से अधिक करते हैं। इसके विपरीत यदि हम किसी वस्तु की दूरी का निर्णय उसकी वास्तविक दूरी से कम करते हैं तो ऐसी दशा में हम उसके आकार का निर्णय भी उसके वास्तविक आकार से कम करते हैं। इसका अर्थ यह है कि दृष्टि की किसी एक दिशा में प्रत्यक्षित आकार तथा प्रत्यक्षित दूरी का अनुपात स्थिर रहता है (इसे **आकार-दूरी अपरिवर्तनीयता परिकल्पना** (Size-distance invariance hypothesis) कहा जाता है)। चंद्रभ्रम की व्याख्या कराने वाले अनेक संकेत जैसे, आच्छादन, रेखीय परिदृश्य आदि भी प्राप्त होते हैं जो यह बोध कराते हैं कि चंद्रमा बहुत ही दूर है। इसीलिए उसका आकार भी बड़ा दिखाई पड़ता है। परंतु जब चंद्रमा ऊर्ध्वाधर दिशा में सिर के ऊपर रहता है तो बीच में किसी वस्तु के न रहने के कारण चंद्रमा की दूरी कम प्रत्यक्षित होती है। इसलिए उसका आकार भी छोटा प्रतीत होता है। इसी प्रकार विभिन्न भ्रमों की व्याख्या के अनेक सिद्धांत हैं, जिनके बारे में विस्तार से जानने के बजाय हम अनेक ज्यामितीय भ्रमों को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं (चित्र 6.20 – 6.23 देखिए)।*

गति का प्रत्यक्षीकरण

किसी वस्तु का स्थान परिवर्तित होना ही गति है। जब कोई वस्तु गतिशील होती है तो वह रेटिना के भिन्न-भिन्न भागों को क्रमिक रूप से उद्दीप्त करती है जिससे हमें उस वस्तु की गति का प्रत्यक्षीकरण (Perception of Motion) होता है। गति (वास्तविक गति) का प्रत्यक्षीकरण त्वचा से भी होता है तथापि, गति का प्रत्यक्षीकरण सदा रेटिना पर उद्दीपन का स्थान बदलने के ही कारण नहीं होता। कभी-कभी गति का प्रत्यक्षीकरण उस समय भी होता है जब किसी स्थिर उद्दीपक को शीघ्रतापूर्वक एक के बाद एक अनुक्रमिक रूप से प्रस्तुत किया जाए जैसा कि सिनेमा में होता है। यदि स्थिर उद्दीपक में गति का प्रत्यक्षीकरण हो तो इसे **आभासी गति** (Apparant Movement) कहते हैं।

आभासी गति, उस गति के प्रत्यक्षीकरण को कहते हैं जब उद्दीपक की वास्तव में गति न हो रही हो। अर्थात्, रेटिना के भिन्न-भिन्न संग्राहकों का अनुक्रमिक रीति से उद्दीपन न हो रहा हो फिर भी गति का प्रत्यक्षीकरण हो रहा हो। **फाई-गति, स्ट्रोबोस्कोपिक गति, प्रेरित गति** (Induced Motion), तथा **स्वचालित गति** (Autokinetic Motion) आदि आभासी गतियों के उदाहरण हैं। आभासी गतियों को दृष्टि भ्रम भी कहा जा सकता है क्योंकि इनमें हम उद्दीपक के स्थिर रहने पर भी उसमें गति का प्रत्यक्षीकरण करते हैं।

व्यक्ति तथा सामाजिक प्रत्यक्षीकरण

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण : हमारी अधिकांश सामाजिक अंतःक्रिया दूसरे व्यक्तियों के साथ होती है। प्रभावी अंतःक्रिया के लिए अपने प्रति दूसरों की भावनाओं, इरादों, और अभिप्रेरणाओं आदि का मूल्यांकन करने की आवश्यकता होती है। हमारे परिवेश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष दूसरे व्यक्ति ही होते हैं। इसलिए, व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण (Person perception) का विषय मनोवैज्ञानिकों के लिए विशेषकर प्रत्यक्षीकरण में रुचि रखने वाले सामाजिक मनोवैज्ञानिकों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन का केंद्र वे प्रक्रियाएँ होती हैं, जिनके द्वारा कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में अपनी राय, भावनाएँ, तथा छवि का निर्माण करता है। यद्यपि ये प्रक्रियाएँ व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र में आती हैं फिर भी दूसरे व्यक्तियों के संबंध में राय तथा छवि का निर्माण

किसी प्रत्यक्ष सांवेदिक सूचना के बिना भी होता है। इतना ही नहीं, राय, मूल्यांकन, अथवा भावनाओं के बारे में व्यक्तिनिष्ठ निर्णय लिए जाते हैं और दूसरे व्यक्तियों का हमारा प्रत्यक्षीकरण (ज्ञान) प्रत्यक्ष सांवेदिक सूचना के परे जाकर होता है।

यदि हम किसी व्यक्ति की मात्र एक झलक पाने का भी अवसर पाएँ तो हम उसके तथा उसके व्यक्तित्व के बारे में एक राय या छवि का निर्माण कर लेते हैं। ऐसी छवियाँ उस व्यक्ति के बाह्य रूप, शाब्दिक व्यवहार (भाषा एवं बोलने के ढंग), एवं अन्य प्रेक्षणीय व्यवहारों के आधार पर बनती हैं। यद्यपि प्राप्त होने वाली सूचनाएँ बहुत कम तथा सीमित होती हैं फिर भी हम व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में एक निश्चित छवि बना लेते हैं। दूसरी ओर, यह भी संभव है कि हमें व्यक्ति के साथ अंतर्क्रिया करने का पर्याप्त अवसर न मिले तथा उसके बारे में अधिक वस्तुनिष्ठ छवि या राय बनाने का अवसर न मिले।

अनेक अवसरों पर हम मात्र यह जानकर कि कोई व्यक्ति किस वर्ग का है उसमें कुछ विशेषताओं की उपस्थिति मान लेते हैं। इसे **रूढ़ियुक्ति** (Stereotype) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, बहुत कम समय के लिए किसी अध्यापक से मिल पाने के बावजूद हम उसमें बुद्धिमान, ईमानदार, सादा जीवन वाला, गरीब आदि विशेषताओं का प्रत्यक्षीकरण कर लेते हैं। व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण में किसी व्यक्ति के संबंध में प्रायः व्यक्तिनिष्ठ निर्णय या अनुमान लगाए जाते हैं जो प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त सांवेदिक सूचनाओं के परे होते हैं।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण : अभी हमने देखा कि दूसरे व्यक्तियों का मूल्यांकन तथा प्रत्यक्षीकरण किस प्रकार से होता है तथा किस प्रकार दूसरे व्यक्तियों के बारे में लिए गए हमारे निर्णय तथा अनुमान प्राप्त सांवेदिक सूचनाओं से परे होते हैं। सामाजिक प्रत्यक्षीकरण (Social perception) के अंतर्गत हमारी रुचि यह अध्ययन करने में होती है कि हमारे प्रत्यक्षीकरण के संगठन तथा संज्ञान को हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत गुण किस प्रकार प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, क्या हमारी अभिप्रेरणाएँ हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती हैं ?

प्रत्यक्षीकरण के कुछ प्रायोगिक अध्ययनों में पाया गया है कि भूखे प्रयोज्य को भोजन की आवश्यकता उसकी खाद्य पदार्थों से संबंधित अनुक्रियाओं की मात्रा में वृद्धि कर देती है। यह वृद्धि अनेक रूपों में प्रकट हो सकती है। खाद्य उद्दीपकों के प्रति उसके साहचर्यों में खाद्य पदार्थों की आवृत्ति बढ़ सकती है, खाद्य के नाम के शब्द के प्रति उसकी प्रत्यभिज्ञा देहली घट सकती है, या किसी धुँधले असंरचित चित्र में उसे खाद्य पदार्थों की अधिक संख्या दिखाई पड़ सकती है।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के अध्ययनों की परंपरा में अनेक प्रकार के प्रायोगिक अध्ययन यह प्रदर्शित करने के लिए किए गए हैं कि व्यवस्थित रूप से दंड तथा पुरस्कार का उपयोग करके व्यक्ति की प्रात्यक्षिक अनुक्रियाओं को परिवर्तित किया जा सकता है।

आपने अब तक पढ़ा

कोई उद्दीपक ज्यों ही हमारे किसी सांवेदिक अंग के संपर्क में आता है, प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रियाएँ आरंभ हो जाती हैं। संवेदना का कार्य परिवेश से सूचनाएँ एकत्र करने तक सीमित है जबकि प्रत्यक्षीकरण का अर्थ है प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करना तथा एक यथार्थ जगत की रचना करना। प्रत्यक्षीकरण में तादात्मीकरण तथा प्रत्यभिज्ञा दोनों ही सम्मिलित हैं।

संग्राहकों को प्राप्त होने वाला उद्दीपन परिवर्तित होता रहता है (उदाहरण के लिए, रेटिना पर बनने वाला बिंब), परंतु हमारा प्रत्यक्षीकरण अपरिवर्तित रहता है। इसे प्रात्यक्षिक स्थैर्य कहा जाता है।

दिक् प्रत्यक्षीकरण की समस्या इस तथ्य ये उत्पन्न होती है कि त्रिविमात्मक परिवेश का रेटिना पर बनने वाला बिंब द्विविमात्मक होता है। फिर भी हम ठीक-ठीक त्रिविमात्मक प्रत्यक्षीकरण कर लेते हैं। ऐसा इसलिए संभव होता है कि रेटिना पर निर्मित बिंब की व्याख्या करते समय हम प्राप्त होने वाले विभिन्न संकेतों की सहायता लेते हैं। ये संकेत हैं – अचाक्षुष संकेत, द्विनेत्रीय दृष्टि संकेत तथा एकनेत्रीय दृष्टि संकेत। दिक् प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन आकार एवं दूरी के अध्ययन हैं। दिक् प्रत्यक्षीकरण के प्रयोगों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्य 'दूरी' होता है।

आकृति अथवा रूप दृष्टि क्षेत्र के उस अंश को कहते हैं जो एक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने वाली परिरेखा द्वारा शेष क्षेत्र से अलग होता है। परिरेखा ही आकृति को पृष्ठभूमि से अलग करती है। परिरेखा भौतिक अथवा व्यक्तिनिष्ठ हो सकती है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि मस्तिष्क में प्रात्यक्षिक संगठन करने की क्षमता जन्मजात रूप से विद्यमान होती है। इन मनोवैज्ञानिकों ने प्रात्यक्षिक संगठन के कुछ नियमों; जैसे – सुंदर रूप, निकटता, समानता तथा संवरण का प्रतिपादन किया है।

रेटिना अथवा अन्य सांवेदिक अंगों से प्राप्त सूचनाओं की त्रुटिपूर्ण व्याख्या से त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण को भ्रम कहते हैं।

जब कोई वस्तु भौतिक रूप से गतिशील होती है, तो यह रेटिना के भिन्न-भिन्न भागों को क्रमिक रूप से उद्दीप्त करती है जिससे हमें उस वस्तु की गति का प्रत्यक्षीकरण होता है। वास्तविक गति का प्रत्यक्षीकरण श्रवण, त्वचीय या अन्य सांवेदिक क्षेत्रों से भी हो सकता है। आभासी गति में उद्दीपक में गति का प्रत्यक्षीकरण तो होता है परन्तु उद्दीपक वास्तव में गतिशील नहीं होता। फाई-गति, प्रेरित गति, तथा स्वचालित गतियाँ आभासी गति हैं।

व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अध्ययन का केंद्र वे प्रक्रियाएँ होती हैं जिनके द्वारा कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के संबंध में अपनी राय, भावनाएँ तथा छवि का निर्माण करता है। यह प्रक्रिया सांवेदिक सूचनाओं के आधार पर तथा उनके परे जाकर भी होती है।

सामाजिक प्रत्यक्षीकरण के अंतर्गत प्रात्यक्षिक संगठन पर सामाजिक तथा व्यक्तिगत कारकों के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, क्या व्यक्तिगत अभिप्रेरणाएँ हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती हैं।

आपने कितना सीखा

1. प्रत्यक्षीकरण में ——— तथा ——— प्रक्रम घटित होते हैं।

2. हम तीसरी विमा या आयाम का प्रत्यक्षीकरण उपलब्ध ——— के आधार पर करते हैं।

3. गहराई तथा दूरी के अदृष्टिगत संकेत हैं ——— तथा ———।

4. ——— तथा ——— द्विनेत्रीय संकेत हैं।

5. रेखीय परिदृश्य तथा परिचित आकार ——— संकेत हैं।

6. आकृति तथा पृष्ठभूमि के संगठन के निर्धारक हैं ———, ———, ———, तथा ———।

***उत्तर** – 1. तादात्मीकरण, प्रत्यभिज्ञा, 2. संकेत, 3. समंजन, अभिसरण, 4. द्विबिंब, नेत्रीय वैषम्य, 5. एक नेत्रीय, 6. सुंदर रूप, निकटता, समानता, संवरण।*

बाक्स 6.8 **अतींद्रिय तथा अवदेहली प्रत्यक्षीकरण**

***अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण** : अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण (Extra-sensory perception) के गोचर के अस्तित्व को प्रदर्शित करने वाले कुछ वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध रहे हैं। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण वह प्रत्यक्षीकरण है जो बिना किसी भौतिक उद्दीपन के होता है। इसके अंतर्गत **दूरबोध, अतींद्रिय दर्शन** तथा **दूरसंचालन** जैसे गोचर सम्मिलित हैं।*

***दूरबोध (Telepathy)** : इसका अर्थ है अलग-अलग दूर स्थानों पर स्थित व्यक्तियों के बीच विचारों का संचार होना।*

***अतींद्रिय दर्शन (Calirvoyance)** : सांवेदिक सूचनाओं के बिना ही वस्तुओं या घटनाओं को प्रत्यक्षित करना या जान लेना।*

***दूर संचालन (Telekinesis)** : वस्तुओं को बिना छुए उनको नियंत्रित करना।*

अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण (ESP) एक परामनोवैज्ञानिक गोचर हैं। अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण के एक साधारण प्रयोग में सामान्यतः 25 कार्ड होते हैं और प्रत्येक कार्ड पर 5 संकेतों में कोई एक संकेत बना रहता है। प्रयोज्य से एक छिपे हुए कार्ड पर बने संकेत को बताने के लिए कहा जाता है। प्रयोज्य द्वारा दी गई अनुक्रियाओं में अनुमान से सही होने के प्रभाव को दूर करने के लिए विशेष सांख्यिकीय जांच की जाती है। अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण के गोचर के संबंध में वैज्ञानिक प्रायः संदेह करते हैं।

***अवदेहली प्रत्यक्षीकरण** : अवदेहली प्रत्यक्षीकरण (Subliminal perception) का अर्थ है ऐसे उद्दीपक का प्रत्यक्षीकरण जो उसके चेतन संज्ञान के लिए आवश्यक देहली से कम मूल्य का हो। अवदेहली प्रत्यक्षीकरण के कुछ प्रायोगिक साक्ष्य उपलब्ध हैं। जेम्स विकारी (1957) नाम के एक बाजार के अधिकारी ने छः सप्ताह तक एक अध्ययन किया जिसमें उसने किसी सिनेमा के दृश्यों पर एक शाब्दिक संदेश मात्र 1/3000 सेकंड के लिए अध्यारोपित किया। यह अवधि संदेश की प्रात्यक्षिक पहचान के लिए आवश्यक देहली से बहुत कम है। यह सिनेमा न्यू जर्सी के एक सिनेमा हॉल में प्रदर्शित किया गया। अध्यारोपित शाब्दिक संदेश 'पॉपकार्न खाइए' तथा 'कोक पीजिए' था। ये संदेश अवदेहली मूल्य के कारण दर्शकों द्वारा पढ़कर पहचानने योग्य नहीं थे। छः सप्ताह तक संदेश चलाने के बाद पाया गया कि पॉपकार्न की बिक्री 57 प्रतिशत तथा कोक की बिक्री 18 प्रतिशत बढ़ गई। इस अध्ययन तथा इसी प्रकार के कुछ अन्य अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि देहली से कम मूल्य वाली सूचनाएँ भी प्रत्यक्षित होती हैं और प्रेक्षकों को प्रभावित करती हैं। अभी तक हम यह स्वीकार करते थे कि प्रत्यक्षीकरण सामान्यतः एक चेतन*

प्रक्रम है और व्यक्ति जानता है कि वह क्या प्रत्यक्षीकरण कर रहा है। अवदेहली उद्दीपकों के साथ किए जाने वाले प्रयोग यह प्रदर्शित करते हैं कि मनुष्य मद्धिम उद्दीपकों का भी संभवतः अचेतन स्तर पर संज्ञापन कर लेते हैं।

अवधानात्मक प्रक्रियाएँ

जब आप किसी व्यस्त सड़क से होकर गुजरते हैं तो आपके सांवेदिक अंगों को उद्दीपकों की बहुत विशाल संख्या उद्दीप्त करती है परंतु आप समस्त उपलब्ध सूचनाओं के एक छोटे से अंश को ग्रहण करके उसका उपयोग करते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि कोई ऐसी व्यवस्था होती है जो आपको इस योग्य बनाती है कि आप मात्र अपनी रुचि के प्रासंगिक उद्दीपकों का चयन करके उनका प्रक्रमण करते हैं, शेष उद्दीपक बाहर कर दिए जाते हैं। *उद्दीपकों के प्रति चयनात्मक रूप से अनुक्रिया करने की यह प्रक्रिया अवधान कहलाती है।* अवधान का अर्थ उन समस्त प्रक्रियाओं से है जिनके द्वारा चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण (Selective Attention) होता है।

हमारे सांवेदिक अंग बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्र करने के लिए खिड़कियों का कार्य करते हैं और वे इतने सक्षम होते हैं कि किसी भी मात्रा में उपलब्ध सूचनाओं को ग्रहण कर लेते हैं परंतु हमारी नियंत्रण व्यवस्था चयनात्मक रूप से ही उन्हें ग्रहण करती है। छत पर लगा हुआ डिश एंटेना तो सभी उपलब्ध चैनलों की सूचनाएँ ग्रहण करता है, परंतु टेलीविजन का ट्यूनर मात्र उसी चैनल की सूचनाओं या संकेतों को दिखलाता है, जिसके लिए कोई दर्शक उसे निर्धारित करता है। शेष चैनल की सूचनाएँ बाहर कर दी जाती हैं। इसी प्रकार, बाह्य जगत से मिलने वाली असंख्य सूचनाओं में से अवधानात्मक प्रक्रियाएँ ग्रहण की जाने वाली सूचनाओं की संख्या चयनात्मक रूप से सीमित कर देती हैं। अवधानात्मक प्रक्रियाएँ प्रक्रमण हेतु चयनात्मक रूप से सूचनाओं को बाहर करने वाले ट्यूनर का कार्य करती हैं। यह कार्य केंद्रीय स्तर (मस्तिष्क) से निर्देशित होता है।

हमारे प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य संज्ञानात्मक कार्यों को संगठित करने में अवधानात्मक प्रक्रियाएँ कई कार्य करती हैं। अगले अनुच्छेदों में हम इन कार्यों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे।

1. सजगता का कार्य : किसी चूहे के बिल के पास घात लगा कर बैठी बिल्ली को ध्यान से देखिए। आप देखेंगे कि बिल्ली के कान बिल की ओर मुड़े हैं, ताकि बिल में होने वाली हल्की से हल्की ध्वनि को सुन सके, उसकी आँखें भी बिल की ओर ही केंद्रित रहती हैं। उसके अगले पैरों की पेशियाँ उच्च तत्परता की दशा में रहती हैं, ताकि जैसे ही चूहा बाहर आए उस पर झपट्टा मारा जा सके। उसमें शिकार को पकड़ने के लिए शारीरिक तथा मानसिक रूप से पूर्ण तत्परता रहती है। ये दशाएँ इंगित करती हैं कि अवधान सजगता उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया है। बिल्ली अपने समस्त उपलब्ध अवधानात्मक संसाधनों का अपने कार्य में अनुक्रिया करने हेतु तत्परता अथवा तैयारी में उपयोग करती है।

आइए, हम एक दूसरा उदाहरण लें, जब आपके अध्यापक आपसे ध्यान देने के लिए कहते हैं तो इसका अर्थ यह है कि आप ऐच्छिक रूप से ऐसी दशा उत्पन्न कर सकते हैं जो आपको कक्षा में ग्रहणशील तथा सजग बना देती है। इस अर्थ में अवधान अनुक्रिया करने की तत्परता के साथ एक केंद्रित चेतना की दशा है। जब अन्य हस्तक्षेपी कारक प्राणी को प्रासंगिक उद्दीपकों की ओर ध्यान केंद्रित करने से रोकते हैं तो इससे व्यवधान उत्पन्न होता है।

सजगता प्रकार्य का एक दूसरा उदाहरण विज्ञापन से लिया जा सकता है। विज्ञापनकर्ता ध्यान आकर्षित करने में सक्षम कुछ ऐसे नियमों का उपयोग करके आपके ध्यान को आकर्षित करने का प्रयास करता है। इनमें से कुछ नियम निम्नलिखित हैं–

- **तीव्रता :** मद्धिम रंगों की अपेक्षा चमकीले रंग ध्यान को अधिक आकर्षित करते हैं।
- **आकार :** एक बड़े आकार की वस्तु में छोटे आकार की वस्तु की अपेक्षा ध्यान आकर्षित करने की अधिक क्षमता होती है।
- **अवधि :** दीर्घकाल तक बने रहने वाले उद्दीपक अल्पकालिक उद्दीपक की अपेक्षा ध्यान आकर्षित करने में अधिक सक्षम होते हैं।
- **प्रभाव :** सांवेगिक प्रभाव रखने वाले उद्दीपक उदासीन उद्दीपकों की अपेक्षा हमें अधिक आकर्षित करते हैं।
- **नवीनता :** उद्दीपकों का नयापन हमें अधिक आकर्षित करता है।
- **विरोध :** परस्पर विरोध रखने वाले उद्दीपक समानता रखने वाले उद्दीपकों की अपेक्षा अधिक ध्यान आकर्षित करते हैं।
- **गति :** गतिशील उद्दीपक स्थिर उद्दीपकों की अपेक्षा ध्यान आकर्षित करने की अधिक संभावना रखते हैं।

2. चयनात्मक कार्य : जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, अवधान का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य चयनात्मकता (Selectivity) है। चयनात्मक अवधान द्वारा हम अपनी रुचि के उद्दीपकों को ध्यान के केन्द्र में लाते हैं तथा शेष उद्दीपकों की उपेक्षा कर देते हैं। चयनात्मक अवधान एक छनने की भांति कार्य करता है जो कुछ सूचनाओं को आने देता है और कुछ (अनावश्यक) सूचनाओं को बाहर कर देता है। चयनात्मक अवधान का एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण चयनात्मक श्रवण से संबंधित पार्टी का है।

आप एक पार्टी में अपनी मित्रमंडली से बातें कर रहे हैं। पार्टी में सभी लोग एक दूसरे से बातें कर रहे हैं और बहुत शोर हो रहा है। इस शोर में आप केवल उस मित्र की बातें सुन रहे हैं, जिससे आप बात कर रहे हैं। बातचीत के दौरान आपको लगता है कि हॉल के किसी कोने से किसी ने आपका नाम लिया है। आपका ध्यान तुरंत अपने मित्र की ओर से हट कर उस ओर चला जाता है जिधर से किसी ने आपका नाम लिया था। आपका मित्र अभी भी आपसे बात कर रहा है परंतु आपका ध्यान उस दिशा की ओर रहता है जिधर कोई आपकी चर्चा कर रहा है। यद्यपि आप अपने मित्र से यह दिखावा करते हैं कि आप उसी की बात सुन रहे हैं परंतु आप किसी बात को नहीं सुन पाते। चेरी (1953) ने अपने प्रयोग में यह प्रदर्शित किया कि द्विकर्णीय श्रवण (Dichotic listening) के समय हम एक संदेश को चयनात्मक रूप से सुनते हुए दूसरे संदेश को उपेक्षित रख सकते हैं (बाक्स 6.9 देखिए)।

3. सीमित क्षमता के चैनल : अवधान के बारे में एक दृष्टिकोण यह है कि अवधान एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसकी क्षमता सीमित होती है। चूँकि प्राप्त होने वाली सूचनाओं का प्रक्रमण करने की हमारी क्षमता सीमित होती है अतः ऐसे यदि दो कार्य करने हों जिनमें साथ-साथ अवधान की आवश्यकता हो, तो हम उन्हें साथ-साथ नहीं कर सकते। ऐसी दशा में **अनुक्रमिक प्रक्रमण** (Serial processing) होता है अर्थात् एक समय में एक कार्य का प्रक्रमण होता है। उदाहरण के लिए, यदि आपसे कहा जाए कि आप संगीत भी सुनें और अपनी पाठ्यपुस्तक भी पढ़ें तो आप दोनों कार्य एक साथ नहीं कर सकते क्योंकि पढ़ने में विषय को समझने के लिए अवधान के संसाधन की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार संगीत सुनने में भी अवधान चाहिए। इसीलिए दोनों कार्यों का साथ-साथ **समानांतर प्रक्रमण** (Parallel processing) नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है कि कोई ऐसा कार्य करना संभव नहीं है, जिसमें अवधान के संसाधनों की आवश्यकता हो तथा सूचनाओं का प्रक्रमण समानांतर रूप से होना हो। फिर भी यदि दोनों कार्यों में से एक कार्य बहुत अधिक सीखा जा चुका हो तथा स्वचालित ढंग से हो सकने वाला हो तो दोनों कार्यों पर साथ-साथ अवधान दिया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जब हम कार चलाना अच्छी तरह सीख जाते हैं तो हम कार चलाने के साथ-साथ कार में अपने बगल में बैठे व्यक्ति से बात भी कर सकते हैं। जब हम किसी कार्य को बहुत अच्छी तरह सीख लेते हैं और उसका पूरा अभ्यास हो जाता है तो उसे संपादित करने में ध्यान देने की या उसमें मानसिक प्रयास करने की आवश्यकता बिल्कुल नहीं पड़ती या बहुत कम पड़ती है। इस दशा को सूचना प्रक्रमण की **स्वचालकता** (Automaticity) कहा जाता है। अतः दो या दो से अधिक ऐसे कार्य जिनमें संज्ञानात्मक सूचना प्रक्रमण की आवश्यकता हो, साथ-साथ संपादित नहीं किए जा सकते। ऐसे कार्यों का संपादन अनुक्रमिक रीति से अर्थात् बारी-बारी से होता है। कार्य के जटिल होने की दशा में अवधान की सीमित क्षमता के कारण सूचना प्रक्रमण व्यवस्था में एक **केंद्रीय गत्यवरोध** (Central bottleneck) उत्पन्न हो जाता है।

बाक्स 6.9 चयनात्मक अवधान

चेरी (1953) ने द्विकर्णीय (Dichotic) श्रवण द्वारा चयनात्मक अवधान का प्रायोगिक अध्ययन किया। प्रयोग में प्रतिभागियों को दो संदेश प्रस्तुत किए जाते थे। ईयरफोन की सहायता से एक कान में एक संदेश तथा साथ-साथ दूसरे कान में दूसरा संदेश दिया जाता था। प्रतिभागियों को निर्देश दिया जाता था कि वे किसी एक कान में प्रस्तुत संदेश सुनने के बाद उसके पीछे-पीछे उसे बोलकर दुहराते भी रहें। प्रतिभागियों के दोनों कानों में दो भिन्न-भिन्न संदेश दिए जाते थे और उससे किसी एक कान के संदेश को ही सुनने को कहा जाता था।

संदेश प्रस्तुत हो जाने के बाद प्रतिभागियों से संदेशों के संबंध में प्रश्न पूछे जाते थे ताकि यह ज्ञात किया जा सके कि उसे संदेशों में से कितने का स्मरण है। जहां तक संदेश की विषयवस्तु का संबंध है, प्रतिभागी उस कान के संदेश में से कुछ भी नहीं बता पाते थे, जिससे सुनने का निर्देश उसे नहीं दिया जाता था। प्रतिभागी यह तक नहीं बता पाता था कि वह संदेश किसी विदेशी भाषा में था या उसे उलट कर बोला जा रहा था। उपेक्षित संदेश का प्रक्रमण न्यूनतम हो रहा था। इतना वह बता सके थे कि उस कान में पहले की किसी पुरुष की आवाज में संदेश आ रहा था और बाद में किसी महिला की आवाज में आने लगा था।

बाक्स 6.10 **प्रत्यक्षीकरण तथा चेतना की दशाएँ**

चेतना का तात्पर्य किसी भी क्षण हमारे मानस में उपस्थित विचारों, प्रतिमाओं, प्रत्यक्षीकरणों तथा संवेगों से सक्रिय रूप से अवगत होना है। चेतना का अध्ययन इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि वह हमें स्वयं अपने को तथा अपने पर्यावरण को मॉनीटर करने का अवसर देती है, एक निरंतरता का बोध कराती है, तथा अतीत, वर्तमान और भविष्य को परस्पर संबंधित करने का एक उपाय प्रदान करती है। चेतना परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। लोग प्रतिदिन चेतना में चक्रीय परिवर्तन का अनुभव करते हैं (जैसे – निद्रा और दिवा स्वप्न)। साथ ही चेतना का अच्छी तरह अध्ययन उन परिस्थितियों पर ध्यान देकर करना संभव है जिनमें चेतना परिवर्तित होती है, जैसे – औषधि, हिप्नोसिस तथा ध्यान। मनोवैज्ञानिकों ने लोगों की मस्तिष्क तरंगों का अध्ययन कर निद्रा के कई चरणों का पता किया है। अध्ययनों से यह पता चला है कि एक व्यक्ति कुछ देर तक प्रगाढ़ निद्रा के चरण में रहने (जिसे डेल्टा निद्रा कहते हैं) के बाद वह जगे हुए मस्तिष्क तरंगों का संरूप दिखाता है। गहरी नींद में सोते उस व्यक्ति की बंद पलकों तले उसकी आँखें तीव्र वेग से गतिशील रहती हैं। इस चरण को आर.इ.एम. निद्रा या तीव्र अक्षिगति वाली निद्रा (Rapid eye movement sleep) कहते हैं। यह स्वप्न देखने से घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है। इस तरह की निद्रा के कुछ विशिष्ट दैहिक कार्य हैं; जैसे – मस्तिष्क को पीड़ादायी या जीवन के असामान्य अनुभवों के साथ अनुकूलन या छिपी हुई ऊर्जा को बाहर निकलने से सहायता पहुँचाना।

कई ऐसी मानसिक प्रभाव पैदा करने वाली औषधियाँ (Psychoactive drugs) हैं जो भावों तथा विचारों में बदलाव लाकर चेतना की विशिष्ट दशाओं को जन्म दे सकती हैं। इनमें कैफीन, निकोटिन तथा कोकीन जैसे उत्तेजक पदार्थ सम्मिलित हैं। ये सभी सामान्यतः स्नायविक क्रिया को बढ़ाते हैं। एलकोहल, अफीम, तथा भाँग आदि शामक स्नायविक क्रिया को मंद करते हैं तथा इनका उपयोग दर्द कम करने तथा चिंता के उपचार में किया जाता है। एल.एस.डी. तथा मारिजुआना विभ्र जनक हैं। इनसे सांवेदिक और प्रात्यक्षिक विरूपण घटित होता है।

ध्यान एक प्राचीन तकनीक है जिसके द्वारा (बिना किसी औषधि के) चेतना की विशिष्ट दशाएँ पैदा की जाती हैं। ये परिवर्तन कैसे होते हैं इस पर शोध चल रहा है। हिप्नोसिस को भी चेतना की एक विशेष दशा माना जाता है। इसके चिकित्सकीय महत्त्व के बावजूद इसके वास्तविक स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान नहीं है। जब एक व्यक्ति को हिप्नोवाइज किया जाता है जो उसकी चेतना का विभाजन या विमोचन हो जाता है। मस्तिष्क के बारे में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि व्यवहार और चेतना के बीच विमोचन वास्तविक आघात का कारण भी हो सकता है। इनसे यह पता चलता है कि हमारा व्यवहार ऐसे कारकों से भी प्रभावित होता है जिसके बारे में हम अवगत नहीं रहते हैं।

4. सतर्कता का कार्य : किसी उबाऊ तथा नीरस कार्य (जैसे, रडार के पर्दे पर देखते रहना) पर लंबे समय तक अवधान को बनाए रखने को **सतर्कता या दीर्घीकृत अवधान** (Vigilance or sustained attention) कहा जाता है। पाया गया है कि ऐसे नीरस कार्यों में निष्पादन का स्तर समय बढ़ने के साथ-साथ घटता जाता है। मैक्वर्थ (1940) ने रडार परीक्षण, श्रवण परीक्षण, तथा घड़ी परीक्षण द्वारा अध्ययन करने पर पाया कि संधृत अवधान (Sustained attention) कार्य में निष्पादन का स्तर धीरे-धीरे घटता है।

प्रयोगशाला में आप सतर्कता का अध्ययन अक्षर-निरसन परीक्षण द्वारा कर सकते हैं। आप क्रियाकलाप 6.4 करके सतर्कता को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

क्रियाकलाप 6.4

सतर्कता अथवा संधृत अवधान का एक अध्ययन

एक कागज पर अक्षरों अथवा अंकों की यादृच्छिक ढंग में टंकित बीस लाइनों की एक सूची तैयार कराइए। प्रत्येक अक्षर अथवा अंक के बीच में एक टंकण स्थान रिक्त होना चाहिए (उदाहरण के लिए, च म त स ग न....... / 3 6 7 2 0 9 1 4........)। इस सूची को प्रतिभागी को दे दिया जाता है तथा उसे यह निर्देश दिया जाता है कि उसे जब भी वह कुछ निश्चित अक्षर अथवा अंक दिखाई पड़े वह उन्हें सूची में उसे काट दे। उसे यह कार्य जितनी अधिक गति में वह कर सके, करने के लिए कहा जाता है। उदाहरण के लिए, उससे कहा जा सकता है कि सूची में जब भी उसे प न अ स दिखाई दे अथवा 2 7 9 0 दिखाई दे उसे काट दे। प्रतिभागी 'प्रारंभ' का संकेत मिलते ही कार्य प्रारंभ कर देता

है। कार्य प्रारंभ होते ही विराम घड़ी चला दीजिए और एक मिनट बीतने पर उसे कहिए 'रुको' और विराम घड़ी रोक दीजिए। इस समय उसने जो अंतिम अक्षर/अंक काटा हो वहां एक निशान लगा लीजिए ताकि यह ज्ञात हो सके कि एक मिनट में उसने कितने अक्षर/अंक काटे। इसके बाद पुनः जितना शीघ्र हो सके 'प्रारंभ' कहकर उससे एक मिनट तक वही कार्य उसी भांति कराइए। इसी प्रकार उससे एक-एक मिनट के कुल तीन प्रयास कराइए।

इसके बाद आप प्रतिभागी की तीनों प्रयासों में की गई अनुक्रियाओं में अलग-अलग दो बातों की जांच कीजिए। 1. काटना छोड़ने की त्रुटियां अर्थात् उसने कितने अंक जिन्हें काटना चाहिए था, नहीं काटे। 2. त्रुटिपूर्ण काटने की संख्या अर्थात् उसके ऐसे कितने अक्षरों/अंकों को काट दिया जिन्हें नहीं काटना चाहिए था। प्रत्येक प्रयास के दोनों त्रुटि अंकों को जोड़कर 100 में से घटाकर सतर्कता अंक ज्ञात कर लीजिए। तीनों प्रयासों के सतर्कता अंकों की तुलना कीजिए। आप पाएँगे कि सतर्कता अंक दर प्रयास घट रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि समय व्यतीत होने के साथ निष्पादन का स्तर घटता है। तीन प्रयासों के स्थान पर पाँच प्रयासों तक भी यह कार्य कराया जाना अधिक स्पष्ट परिणाम दे सकता है।

आपने अब तक पढ़ा

प्रत्यक्षीकरण में अवधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अवधान का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है ऐसे उद्दीपकों से संबंधित सूचनाओं को बाहर कर देना जो उस क्षण अनुपयुक्त तथा अप्रासंगिक हों अर्थात् समस्त सूचनाओं में से चयन करते हुए कुछ को ग्रहण करना। अवधान के प्रमुख कार्य हैं : सजगता कार्य; चयनात्मकता सीमित क्षमता के चैनल, तथा सतर्कता।

सजगता का अर्थ उन प्रक्रियाओं से है जो किसी प्राणी को किसी विशेष दशा में अनुक्रिया करने हेतु दैहिक तथा मानसिक रूप से तत्पर बनाती हैं। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ समस्त उपलब्ध अवधानात्मक संसाधनों का किसी विशेष कार्य की ओर अनुक्रिया करने के लिए तत्पर होने के लिए उपलब्ध कराना।

चयनात्मक अवधान का तात्पर्य उन प्रक्रियाओं से है, जिनके द्वारा रुचिकर एवं प्रासंगिक उद्दीपकों की ओर ध्यान केंद्रित होता है तथा शेष उद्दीपकों की उपेक्षा कर दी जाती है अर्थात् वे छान करके बाहर कर दिए जाते हैं।

ऐसे दो या दो से अधिक कार्य जिनमें अवधानात्मक संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, साथ-साथ नहीं किए जा सकते। सीमित क्षमता वाले चैनल होने के कारण सूचनाओं का प्रक्रमण बारी-बारी से एक के बाद एक करके होता है।

किसी एक कार्य पर कुछ लंबे समय तक अवधान केंद्रित किए रहना संधृत अवधान या सतर्कता कहलाता है।

आपने कितना सीखा

1. *रुचि के उद्दीपकों की ओर चुनते हुए अवधान केंद्रित करना तथा शेष अवांछनीय उद्दीपकों को छान करके बाहर कर देना ——— कहलाता है।*
2. *सजगता प्रकार्य प्राणी को विशिष्ट उद्दीपकों को ग्रहण करने के लिए ——, —— तथा ——— रूप से तैयार करता है।*
3. *वे नियम जो हमारे अवधान को आकर्षित कर लेते हैं, वे हैं – तीव्रता, आकार, अवधि, ——, ——, ——, तथा ——।*
4. *हम एक समय में एक कार्य कर सकते हैं। इसे ——— कहते हैं*
5. *किसी एक कार्य पर लंबे समय तक अवधान केंद्रित किए रहने को —— कहते हैं।*

उत्तर – 1. चयनात्मकता, 2. दैहिक मानसिक, 3. प्रभाव, नवीनता, विरोध, गति, 4. अनुक्रमिक प्रक्रमण, सीमित क्षमता, चैनल 5. सतर्कता।

प्रमुख तकनीकी शब्द

संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, उद्दीपक, कोडिंग, डीकोडिंग, प्रकाश-संग्राहक, समंजन, तीक्ष्णता, द्विप्रक्रम सिद्धांत, अवर्ण रंग, अंधबिंदु, अंधकार अनुकूलन, प्रकाश अनुकूलन, दृश्य वर्णक्रम, चमक, सांद्रता, पश्चात्-बिंब, दृष्टि भ्रम, सतर्कता, वर्णांधता, तरंगदैर्ध्य, पहचान, प्रात्यक्षिक स्थैर्य, आकार स्थैर्य, आकृति स्थैर्य, चमक तथा वर्ण स्थैर्य, द्विनेत्रीय संकेत, एकनेत्रीय संकेत, द्विनेत्रीय वैषम्य, द्विबिंब, स्टीरियोस्कोपिक दृष्टि, आच्छादन, वायवीय परिदृश्य, प्रवणता, निकटता का नियम, समानता, संवरण।

सारांश

- आठ बाह्य संग्राहक तथा दो आंतरिक संग्राहक बाह्य जगत की सूचनाओं के लिए हमारी खिड़कियाँ हैं।
- संग्राहक भौतिक उद्दीपनों को ग्रहण करते हैं और उनके रूप को बदल कर अर्थात् कोड में बदल कर स्नायविक आवेगों के रूप में व्याख्या हेतु मस्तिष्क के विशेषीकृत क्षेत्रों में भेज देते हैं।
- दृष्टि तथा श्रवण सबसे अधिक उपयोग में आने वाली तथा सबसे महत्त्वपूर्ण संवेदनाएँ हैं।
- प्रकाश की किरणें कॉर्निया से होते हुए आँखों में प्रवेश करती हैं तथा तारे तथा लेंस से होकर गुजरती हैं। बाह्य वस्तु का एक उलटा बिंब रेटिना पर फोकस होकर बनता है। रेटिना में फोविया का क्षेत्र महत्तम दृष्टि तीक्ष्णता का होता है।
- दंड तथा शंकु दृष्टि संग्राहक होते हैं। दंड कम प्रकाश की दशा में (रात्रिकालीन दृष्टि) क्रियाशील होते हैं तथा इनसे वर्णहीन संवेदना होती है। शंकु पर्याप्त प्रकाश की दशा में (दिन का प्रकाश) क्रियाशील होते हैं तथा इनसे वर्णों की संवेदना होती है।
- अंधकार अनुकूलन दंड संग्राहकों का प्रकार्य होता है।
- स्नायविक आवेगों के रूप में कोडित संदेश द्विध्रुवीय कोशिकाओं तथा गुच्छीय कोशिकाओं से होते हुए मस्तिष्क के ऑक्सीपीटल खंड में पहुँचता है।
- संपूर्ण वर्णक्रम में से 400 से 700 नैनोमीटर तरंगदैर्ध्य की किरणें ही दिखाई पड़ती हैं। रंग की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं– वर्ण, सांद्रता तथा चमक।
- श्रवण संवेदना के लिए ध्वनि उपयुक्त उद्दीपक होता है। तीव्रता, तारत्व तथा विशिष्टता ध्वनि की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं।
- ध्वनि की तरंगें कर्णनली से होते हुए अंदर प्रवेश करती हैं तथा कर्णपटह से टकराती हैं। इससे मध्यकर्ण की तीन छोटी अस्थियाँ सक्रिय होती हैं। इन अस्थियों में होने वाले कंपन प्रगुणित होकर आंतरिक कान में स्थित काक्लीया में चले जाते हैं।
- काक्लीया में उत्पन्न होने वाले स्नायविक आवेग वहाँ से श्रवण तंत्रिका द्वारा निकलकर थैलेमस के मध्य जेनिकुलेट नाभिक से होते हुए श्रवण कॉर्टेक्स में चले जाते हैं।
- सांवेदिक अंगों से प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करना प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण में तादात्मीकरण तथा प्रत्यभिज्ञा की क्रियाएँ संनिहित हैं।
- त्रिविमात्मक का बिंब द्विविमात्मक रेटिना पर निर्मित होता है। हम तीसरी विमा का प्रत्यक्षीकरण कैसे करते हैं ? मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे संकेतों की पहचान कर ली है जिनके आधार पर हम द्विविमात्मक बिंब से त्रिविमात्मक जगत की रचना कर लेते हैं।
- विभिन्न प्रकार के संकेतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है– अचाक्षुष संकेत, द्विनेत्रीय दृष्टि संकेत तथा एकनेत्रीय दृष्टि संकेत।
- आकृति अथवा रूप का अर्थ दृश्य परिरेखा द्वारा भिन्न दिखाई पड़ने वाले दृष्टि क्षेत्र से है।
- गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे नियमों की पहचान की है जो हमारे प्रात्यक्षिक संगठन को निर्धारित करते हैं। ये हैं – सुंदर स्वरूप या सौष्ठव, निकटता, समानता तथा संवरण ।
- हम दो प्रकार की गतियों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं : वास्तविक गति तथा आभासी गति। फाई गोचर, स्ट्रोबोस्कोपिक गति, प्रेरित गति तथा स्वचालित गति आदि आभासी गतियों के कुछ उदाहरण हैं।
- व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण के अंतर्गत उन प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जिनके द्वारा हम दूसरे व्यक्तियों के मतों, अनुभूतियों तथा छवियों का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रिया सांवेदिक सूचनाओं के परे जाकर होती है।
- सामाजिक प्रत्यक्षीकरण का अर्थ सामाजिक तथा व्यक्तिगत कारकों द्वारा प्रत्यक्षीकरण के संगठन से है।
- अवधान, प्रत्यक्षीकरण के पहले होने वाली प्रक्रिया है। अनावश्यक तथा अवांछित सूचनाओं को छान करके बाहर कर देने तथा आवश्यक तथा उपयुक्त सूचनाओं का चयन करने में अवधान की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
- सजगता का कार्य, चयनात्मकता का कार्य, सीमित क्षमता चैनल का कार्य तथा सतर्कता का कार्य के रूप में अवधानात्मक कार्यों का अध्ययन किया गया है।

समीक्षात्मक प्रश्न

1. संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण में आप किस प्रकार भेद करेंगे ?
2. प्रकाश तथा अंधकार अनुकूलन से आप क्या समझते हैं ?
3. वर्ण संवेदना से आप क्या समझते हैं ? वर्ण संवेदना के निर्धारक कौन-कौन से हैं ?
4. ध्वनि की क्या विशेषताएँ हैं? ध्वनि की तीव्रता का मापन कैसे किया जाता है ?
5. दिक् प्रत्यक्षीकरण की समस्या क्या है ?
6. गहराई तथा दूरी प्रत्यक्षीकरण के अचाक्षुष संकेत कौन-से हैं ?
7. आकार तथा दूरी के प्रत्यक्षीकरण में द्विनेत्रीय दृष्टि संकेतों की क्या भूमिका है ?
8. आकार तथा दूरी के प्रत्यक्षीकरण में विभिन्न एकनेत्रीय संकेत कौन-कौन से हैं?
9. आकृति किसे कहते हैं ? आकृति का निर्धारण किससे होता हैं ?
10. आकृति-पृष्ठभूमि पृथक्करण के निर्धारक कौन-से हैं ?
11. वास्तविक तथा आभासी गति में आप किस प्रकार भेद करेंगे ?
12. प्रत्यक्षीकरण में अवधान की क्या भूमिका है ?

7 सीखना

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- सीखने का स्वरूप
- सीखने के प्रमुख प्रकार
- सीखने की प्रक्रिया
- सीखने के निर्धारक
- सीखने की प्रक्रिया के कुछ अनुप्रयोग

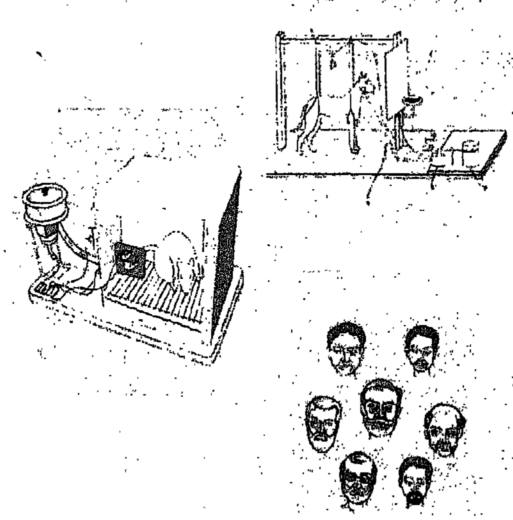
इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- सीखने के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- सीखने के विभिन्न प्रकार और सीखने की विभिन्न विधियों की व्याख्या कर सकेंगे,
- सीखने के समय घटित होने वाली तथा उसे प्रभावित करने वाली मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे,
- सीखने के निर्धारकों की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- सीखने के सिद्धांतों के अनुप्रयोग से परिचित हो सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

एक नवजात शिशु में बहुत सीमित मात्रा में अनुक्रियाएँ करने की क्षमता होती है। उसकी सारी अनुक्रियाएँ परिवेश में उपयुक्त उद्दीपक के उपस्थित होने पर स्वतः प्रतिवर्ती (Reflexively) रूप में घटित होती हैं। परंतु जैसे-जैसे शिशु का विकास होता जाता है – परिपक्वता आती है, उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करने की क्षमता बढ़ती जाती है। वह कुछ व्यक्तियों को; जैसे – अपनी माँ, पिता या दादा को पहचानना सीख लेता है। थोड़ा और विकास होने पर वह चम्मच से भोजन करना सीख लेता है, अक्षरों को पहचानना, उन्हें जोड़कर शब्द बनाना और उन्हें लिखना भी सीख लेता है। वह दूसरे व्यक्तियों को कई तरह के कार्य करते हुए देखता है और उनकी नकल करके अनेक क्रियाओं को करना सीखता है। वह बहुत-सी वस्तुओं के नाम भी सीखता है; जैसे – किताब, कुत्ता, लड़का, लड़की इत्यादि और दूसरे व्यक्तियों से बातचीत करते समय इन नामों या संकेतों का उपयोग करने लगता है। आयु बढ़ने के साथ-साथ वह विभिन्न प्रकार की घटनाओं तथा वस्तुओं को देखता-सुनता रहता है तथा प्रत्येक के अलग-अलग विशिष्ट लक्षणों को सीखता है। इन लक्षणों के आधार पर वह घटनाओं तथा वस्तुओं का वर्गीकरण करना भी सीख लेता है। वस्तुओं को 'फर्नीचर' या 'फल' आदि की श्रेणियों में रखना सीख जाता है। इसके अतिरिक्त, वह अनेक पेशीय कौशलों; जैसे – टाइप करना, कार चलाना, प्रभावशाली ढंग से दूसरों से वार्तालाप करना तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु दूसरों से सामाजिक अंतःक्रिया करना भी सीखता है। मनुष्य में कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं; जैसे – परिश्रमी होना, अपने पेशे में सक्षम बनना तथा सामाजिक क्षमता विकसित करना, सीखने तथा परिवेश के साथ अपने को अनुकूलित करने के कारण ही आती हैं। इस अध्याय में सीखने की प्रक्रिया के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम सीखने को परिभाषित किया गया है तथा उसे एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया गया है। इसके बाद सीखने की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो यह दर्शाता है कि कोई व्यक्ति कैसे सीखता है। दूसरे खंड में सीखने की विधियों का वर्णन किया गया है, जो साधारण से लेकर जटिल स्तर तक के सीखने की व्याख्या करती हैं। तीसरे खंड में सीखते समय व्यक्ति के व्यवहार में दिखाई पड़ने वाले कुछ विशिष्ट गोचरों की व्याख्या की गई है। चौथे एवं अंतिम खंड में सीखने की मात्रा तथा गति को निर्धारित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन किया गया है।



सीखना क्या है ?

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्य के व्यवहारों में सीखने की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। यह व्यक्ति के अनुभव के फलस्वरूप होने वाले व्यापक परिवर्तन की शृंखला को द्योतित करता है। सीखने को हम *अनुभवों के कारण व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में* परिभाषित कर सकते हैं। ध्यातव्य यह है कि व्यवहार में परिवर्तन अनेक कारणों से हो सकता है परंतु सभी प्रकार के परिवर्तन सीखने के कारण नहीं माने जाते। उदाहरण के लिए, नशे अथवा थकान की दशा में दिखाई पड़ने वाले व्यवहार में परिवर्तन सीखने के कारण नहीं होता, क्योंकि यह अस्थायी प्रकार का परिवर्तन है। *मात्र उन्हीं परिवर्तनों को हम सीखने के परिणामस्वरूप मानते हैं जो किसी विशेष स्थिति में अभ्यास या बार-बार अनुभव करने के कारण उत्पन्न हुए हों तथा अपेक्षाकृत स्थायी हों।*

सीखने की विशेषताएँ

सीखने की प्रक्रिया की कुछ अपनी खास विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि सीखने में सदैव किसी न किसी तरह का अनुभव सम्मिलित रहता है। मनुष्य कुछ घटनाओं को एक के बाद एक क्रम से होते हुए देखता है। वह जान जाता है कि अमुक घटना के तुरंत बाद अमुक घटना होगी। छात्रावास के छात्र संध्या समय घंटा बजने से समझ जाते हैं कि अब भोजनालय में खाना तैयार हो गया है। इसी प्रकार, जब हम कोई कार्य करते हैं और उससे संतुष्टि मिलती है तो हम कार्य-संतुष्टि के क्रम को सीख लेते हैं और उस कार्य को करके संतुष्टि पाने की आदत बन जाती है। कभी-कभी केवल एक बार किया गया अनुभव भी सीखने के लिए पर्याप्त होता है। उदाहरण के लिए, जब दियासलाई जलाते समय अगर तीली रगड़ते ही किसी बच्चे की अँगुली जल जाती है तो ऐसे एक ही बार के अनुभव से भविष्य में सावधानीपूर्वक वह कार्य करना सीख लेता है।

सीखने के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। इनको व्यवहार में होने वाले उन परिवर्तनों से अलग करना चाहिए जो न तो स्थायी होते हैं और न ही सीखे गए होते हैं। थकान, औषधि, आदत आदि के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन इसी तरह के हैं। इसी प्रकार, किसी एक कार्य को करते-करते जब कोई व्यक्ति थक जाता है तो अपने व्यवहार में परिवर्तन करके दूसरा कार्य प्रारंभ कर देता है। मान लीजिए, आप मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तक पढ़ रहे हैं या मोटरकार चलाना सीख रहे हैं, तो एक समय आता है जब आप पूरी तरह थक कर चूर हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में आप पढ़ना या कार चलाना छोड़ देते हैं। व्यवहार में यह अस्थायी परिवर्तन सीखने के कारण नहीं बल्कि थकान के कारण उत्पन्न हुआ है।

आइए, व्यवहार में होने वाले परिवर्तन का एक दूसरा उदाहरण लिया जाए। मान लीजिए, आपके घर के पड़ोस में होने वाले किसी उत्सव में तीव्र ध्वनि में बाजा बजना प्रारंभ होता है, जो देर रात तक चलता रहता है। शोर-गुल से आपके कार्य में व्यवधान पड़ता है। यदि शोर-गुल देर तक होता रहे तो आप उन्मुखीकरण के प्रतिवर्त (Orienting reflex) करते हैं। ये प्रतिक्रियाएँ धीरे-धीरे कमजोर पड़ जाती हैं और एक समय आता है जब इन्हें पहचानना संभव नहीं रह जाता। इसे आदत बन जाना (Habiutation) कहते हैं। व्यवहार में होने वाला इस तरह का परिवर्तन सीखना नहीं है। अनेक प्रकार के मादक-द्रव्यों के सेवन के परिणामस्वरूप व्यक्ति की दैहिक क्रिया प्रभावित हो जाती है, जिनसे व्यवहार में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है। यह भी अस्थायी होता है और औषधि का प्रभाव समाप्त होने पर परिवर्तन भी समाप्त हो जाता है। यह भी सीखना नहीं है।

सीखने की प्रक्रिया में घटित होने वाली घटनाओं का क्रम तालिका 7.1 में प्रस्तुत किया गया है। इसमें सीखने के एक प्रयास के प्रमुख अवयवों का वर्णन किया गया है। आरंभ में सीखना आरंभ करने के पहले पूर्व-परीक्षण किया जाता है जब किसी व्यक्ति को विषयवस्तु के संबंध में कोई ज्ञान नहीं होता है। इसके बाद याद की जाने वाली सूचना प्रस्तुत की जाती है और उस सूचना का व्यक्ति द्वारा अनुभव किया जाता है। तत्पश्चात् प्रस्तुत की गई सामग्री की विषयवस्तु को व्यक्ति ग्रहण कर प्रक्रमित (Process) करता है। इसके फलस्वरूप ज्ञान की नई अवस्था पैदा होती है, जो सीखने को व्यक्त करती है। वह ज्ञान स्मृति छाप के रूप में संचित किया जाता है। यहाँ पर स्मृति छाप का तात्पर्य किसी विशिष्ट सूचना का मस्तिष्क में किसी तरह की आंतरिक छवि से है, जो तालिका 7.1 में समय बिंदु 2 पर संचित होती है। समय बिंदु 2 तथा 3 पर प्राप्त ज्ञान की नई अवस्था प्रायः प्रत्यक्षीकरण का अंश मानी जाती है। प्रात्यक्षित सूचना की धारणा (Retention) विभिन्न धारणा अंतरालों पर कालबिंदु 3 तथा उससे आगे के समयों पर जाँची जा सकती है। जैसा कि आप अनुमान लगा सकते हैं,

तालिका 7.1 : सीखने की क्रिया में होने वाली घटनाओं का अनुक्रम

समय	सीखने की अनुमानित दशा तथा घटनाएँ	तकनीकी शब्द
0.	सीखी जाने वाली विषय-वस्तु के ज्ञान का अभाव	सीखने के पूर्व
1.	वे पृष्ठ जिन पर लिखी सामग्री को सीखना है	सीखने की उद्दीपक सामग्री
2.	सामग्री को देखना, पढ़ना, अनुभव करना, कूट-संकेतन करना तथा प्रक्रमण करना	ज्ञान का अर्जन
3.	ज्ञान की नई दशा	सीखना
↓	समय का व्यतीत होना	अर्जित ज्ञान का स्मरण
n	ज्ञान का परिवर्तित स्वरूप	
n + 1	सीखने वाले व्यक्ति द्वारा सीखी गई सामग्री के प्रत्याह्वान की अपेक्षा	स्मृति कोश से विषय-वस्तु का पुनःस्मरण
n + 2	सीखने वाला व्यक्ति प्रत्याह्वान करता है	अर्जित ज्ञान का उपयोग

धारणा का अंतराल बहुत थोड़ी अवधि जैसे कुछ सेकंड से लेकर कई वर्षों तक का हो सकता है। हम n + 1 के समीप सीखने वाले व्यक्ति द्वारा सीखी गई सामग्री की धारणा की जाँच करते हैं।

जैसा कि आप तालिका 7.1 से देख सकते हैं, व्यक्ति प्रकट रूप से क्या करता है या उसका निष्पादन (Performance) सीखना नहीं है। सीखने की प्रक्रिया का मात्र अनुमान लगाया जा सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रेक्षण संभव नहीं है। इसका अनुमान (Inference) व्यक्ति के निष्पादन से किया जाता है परंतु निष्पादन को सीखने से भिन्न समझना चाहिए। निष्पादन का प्रत्यक्ष प्रेक्षण किया जा सकता है परंतु सीखने का नहीं। अनुमान का तात्पर्य हम एक उदाहरण से समझाने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए, आपको कक्षा में एक कविता याद करने को कहा जाता है। आप उस कविता को बीस-पच्चीस बार पढ़ते हैं। उसके बाद आप कहते हैं कि मैंने कविता सीख ली। आप से कहा जाता है कि यदि आपको कविता याद हो गई हो तो उसे सुनाइए। आप उसका सस्वर पाठ करके सुना देते हैं। आपके द्वारा कविता का सुनाना ही निष्पादन है और इसी के द्वारा अध्यापक यह अनुमान कर लेता है कि आपने कविता सीख ली है। यदि आप कविता का पाठ न कर पाते तो कहा जाता कि अभी आपने नहीं सीखा है। इसीलिए कहा जाता है कि सीखने की प्रक्रिया का अनुमान व्यक्ति के निष्पादन से किया जाता है।

अभी तक आपने पढ़ा

अनुभव के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाला अपेक्षाकृत कोई स्थायी परिवर्तन ही सीखना है। सीखने का अनुमान प्राणी के निष्पादन द्वारा किया जाता है। आदत, थकान, औषधि के उपयोग या मादक द्रव्य आदि के कारण भी व्यवहार में परिवर्तन उत्पन्न होते हैं परंतु इन परिवर्तनों को सीखने की कोटि में नहीं रखा जाता। सीखी गई विषयवस्तुओं का स्मृति में संचय हो जाता है जिससे वे दीर्घकाल तक उपलब्ध रहती हैं।

आपने कितना सीखा

1. *सीखना ________ के कारण व्यवहार में होने वाला अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन है।*
2. *थकान, औषधि या किसी मादक द्रव्य के कारण व्यवहार में परिवर्तन ________ नहीं है।*
3. *सीखना एक ________ प्रक्रिया है।*

उत्तर – 1. अनुभव 2. सीखना 3. अनुमानित।

सीखना कैसे होता है ?

सीखना कई तरह से होता है। इनमें से कुछ विधियों का उपयोग साधारण प्रकार की अनुक्रियाओं के अर्जन में होता है जबकि कुछ का उपयोग जटिल अनुक्रियाओं को सीखने में किया जाता है। आप इस खंड में सभी तरह की विधियों के बारे में पढ़ेंगे। सीखने की सरलतम विधि को **अनुबंधन** कहा जाता है। इसके दो प्रमुख प्रकार पाए गए हैं। एक को **प्राचीन अनुबंधन** तथा दूसरे को **नैमित्तिक/क्रियाप्रसूत अनुबंधन** कहा जाता है। इसके अतिरिक्त **वाचिक सीखना, संप्रत्ययों को सीखना, कौशलों को सीखना** तथा **प्रेक्षण के आधार पर सीखना** भी होता है।

प्राचीन अनुबंधन

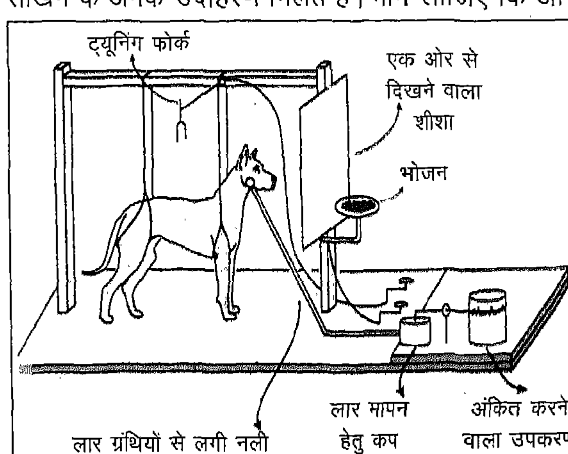
प्राचीन अनुबंधन का आविष्कार **ईवान पी. पावलव** (1849-1936) नामक रूसी वैज्ञानिक ने किया था। पावलव का मुख्य उद्देश्य पाचन क्रिया की शारीरिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना था। उन्होंने अपने अध्ययन के दौरान देखा कि जिस कुत्ते पर वह प्रयोग कर रहे थे वह अपने भोजन की खाली प्लेट को देखते ही लार स्राव करने लगता था। जैसा कि आप जानते होंगे भोजन के प्रति लार स्राव की क्रिया होना एक स्वाभाविक प्रतिवर्ती क्रिया है। खाली प्लेट को देखने से लार स्राव का होने लगना, पावलव महोदय के लिए उत्सुकता का विषय बन गया और उन्होंने इस क्रिया का विस्तार से अध्ययन किया। उन्होंने कुत्तों पर प्रयोग किए। प्रयोग के पहले चरण में एक कुत्ते को एक बड़े बाक्स के अंदर शिकंजे में कस दिया जाता था और उसे कुछ समय के लिए इसी प्रकार रहने दिया जाता था। दिन में कई बार और कई दिनों तक इस क्रिया को बार-बार करके कुत्ते को शिकंजे में रहने का अभ्यस्त बना दिया गया। इसी दौरान शल्यक्रिया द्वारा कुत्ते के गाल में छेद करके एक नली इस प्रकार फिट कर दी गई कि मुँह में निकलने वाली लार उस नली से होते हुए शीशे के एक गिलास में एकत्र हो जाए और लार स्राव की मात्रा का मापन किया जा सके। इस प्रायोगिक दशा को चित्र 7.1 में प्रदर्शित किया गया है।



ईवान पी. पावलव

प्रयोग के दूसरे चरण में कुत्ते को कुछ समय तक भोजन से वंचित करके उसे भूखा रखने के पश्चात् शिकंजे में कस दिया गया। उसके मुँह में होने वाले लार स्राव का मापन करने हेतु नली लगा दी गई, जिसका एक सिरा एक शीशे के जार में रखा गया। इसके बाद कुत्ते को एक घंटी की ध्वनि प्रस्तुत करके उसे खाने के लिए मांसचूर्ण (भोजन) दे दिया गया। कुत्ते को भोजन करने दिया गया। कई दिनों तक इस पूरी प्रक्रिया को दुहराया गया। इसके पश्चात् एक दिन परीक्षण प्रयास किया गया, जिसमें पूरी प्रक्रिया तो वही थी परंतु घंटी बजाने के बाद कुत्ते को भोजन नहीं दिया गया। आरंभ में कुत्ता अनानुबंधित-उद्दीपक (UCS) के प्रति लार स्राव कर रहा था। अनुबंधन प्रयासों के परिणामस्वरूप कुत्ता अनुबंधित-उद्दीपक (CS) (घंटी) जो मूलतः एक तटस्थ उद्दीपक होता है, लार स्राव उत्पन्न कराने की क्षमता अर्जित कर लेता है। प्रारंभिक प्रयासों में कुत्ता मात्र भोजन (अनानुबंधित-उद्दीपक, UCS) के प्राप्त होने पर ही लार स्राव करता था परंतु अनुबंधन के अनेक प्रयासों के परिणामस्वरूप अब वह मात्र घंटी की ध्वनि (अनुबंधित उद्दीपक, CS) के प्रति भी लार स्राव करने लगा। अनुबंधन की इस विधि को तालिका 7.2 तथा 7.3 में प्रदर्शित किया गया है। यह स्पष्ट है कि प्राचीन अनुबंधन में दो उद्दीपकों (घंटी की ध्वनि तथा भोजन) के बीच साहचर्य निर्मित हो जाता है तथा एक उद्दीपक (घंटी) दूसरे उद्दीपक (भोजन) के आने की सूचना देने वाला बन जाता है।

मनुष्य के दैनिक जीवन में प्राचीन अनुबंधन द्वारा सीखने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मान लीजिए कि आप



चित्र 7.1 : पावलव के शिकंजे में अनुबंधन के लिए स्थित कुत्ता।

तालिका 7.2 : पावलवी अनुबंधन में प्रयुक्त विधि तथा तकनीकी पद

चरण	क्रियाएँ	तकनीकी पद
पूर्व-प्रायोगिक	1. कई बार कुत्ते को शिकंजे में कसना 2. कुत्ते को घंटी की आवाज प्रस्तुत करना 3. नली के एक सिरे को कुत्ते के जबड़े में तथा दूसरे सिरे को जार में रखना।	आदत बन जाना
प्रायोगिक प्रयास	प्रयास 1 : पहले घंटी की ध्वनि, उसके तुरंत बाद भोजन देना तथा लार स्राव प्रयास 2 : प्रथम प्रयास की भाँति प्रयास 3 : प्रथम प्रयास की भाँति	तटस्थ उद्दीपक अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) अनानुबंधित अनुक्रिया (UCR) अनुबंधन या अर्जन के प्रयास
परीक्षण प्रयास	मात्र घंटी की ध्वनि प्रस्तुत करना तथा लार स्राव की मात्रा का मापन करना।	अनुबंधित उद्दीपक (CS) अनुबंधित अनुक्रिया (CR)

खाना खाकर अभी-अभी तृप्त हुए हैं तब तक आपको बगल की मेज पर एक मिठाई परोसी गई। यह आपके मुँह में अपने स्वाद का संकेत देती है और लार स्राव आरंभ हो जाता है। आप उसे खाने जैसा अनुभव करते हैं। मिठाई का दिखना अनुबंधित उद्दीपक का कार्य करता है और आपके मुँह में पानी भर जाता है। लार स्राव एक अनुबंधित अनुक्रिया है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। शैशवावस्था में बच्चे तीव्र ध्वनि से स्वाभाविक रूप से डरते हैं। मान लीजिए, आप बच्चे के सामने एक टेडी बियर – रोयेंदार खिलौना देते हैं और साथ ही तेज आवाज होती है। बच्चा डरने की अनुक्रिया करता है। अब सफेद टेडी बियर तेज आवाज का संकेत बन जाता है तथा भय की अनुक्रिया पैदा करता है। अनुबंधन के कारण भय की जो अनुक्रियाएँ पहले मात्र तीव्र ध्वनि के प्रति हुआ करती थीं अब खिलौने के प्रति भी होने लगेंगी।

तालिका 7.3 : अनुबंधन के स्तर और क्रियाओं के बीच संबंध

अनुबंधन के स्तर	क्रियाएँ
अनुबंधन के पूर्व	घंटी की ध्वनि– चौंकना (कोई विशेष अनुक्रिया नहीं)
अनुबंधन के समय	घंटी की ध्वनि (CS) + भोजन (UCS) – लार स्राव (UCR)
अनुबंधन के पश्चात्	घंटी की ध्वनि – लार स्राव (CS) (CR)

यह अनुबंधन खिलौना (CS) और ध्वनि (UC) को साथ-साथ प्रस्तुत किए जाने के कारण होगा।

अनुबंधित उद्दीपक (CS), अनानुबंधित उद्दीपक (UCS), अनुबंधित अनुक्रिया (CR) तथा अनानुबंधित अनुक्रिया (UCR) के पारस्परिक संबंधों को तालिका 7.3 में प्रस्तुत किया गया है।

क्रियाकलाप 7.1

प्राचीन अनुबंधन द्वारा सीखी गई अनुक्रिया

अनुबंधन को समझने के लिए आप निम्नलिखित कार्य कर सकते हैं। एक बड़ा पका हुआ नींबू लीजिए। इसे अपनी कक्षा में अन्य विद्यार्थियों या साथियों को दिखाइए। तत्पश्चात् इसे दो भागों में काटें। कटे हुए एक टुकड़े को निचोड़ कर उसके रस को एक कप में निकालें। इस क्रिया के तुरंत बाद विद्यार्थियों से पूछें कि उन्हें मुँह के अंदर कैसा अनुभव हो रहा है? सभी देख रहे लोग सामान्यतः कहेंगे कि उनके मुँह में लार आ रहा है।

प्राचीन अनुबंधन के निर्धारक

प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित अनुक्रिया कितने प्रयासों में सीख ली जाएगी? इसको निर्धारित करने वाले अनेक कारक हैं। अनुबंधित अनुक्रिया के सीखे जाने को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं।

1. उद्दीपकों के बीच का समय अंतराल : जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित तथा अनानुबंधित उद्दीपक साथ-साथ ही प्रस्तुत किए जाते हैं। इन दोनों उद्दीपकों को प्रस्तुत करने के बीच के समय

संबंधों के आधार पर प्राचीन अनुबंधन के चार प्रकार बताए जा सकते हैं जिनमें से पहली तीन विधियाँ **अग्रोन्मुखी** हैं तथा चौथी विधि **पृष्ठोन्मुखी** अनुबंधन की हैं। इन विधियों की प्रायोगिक व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं –

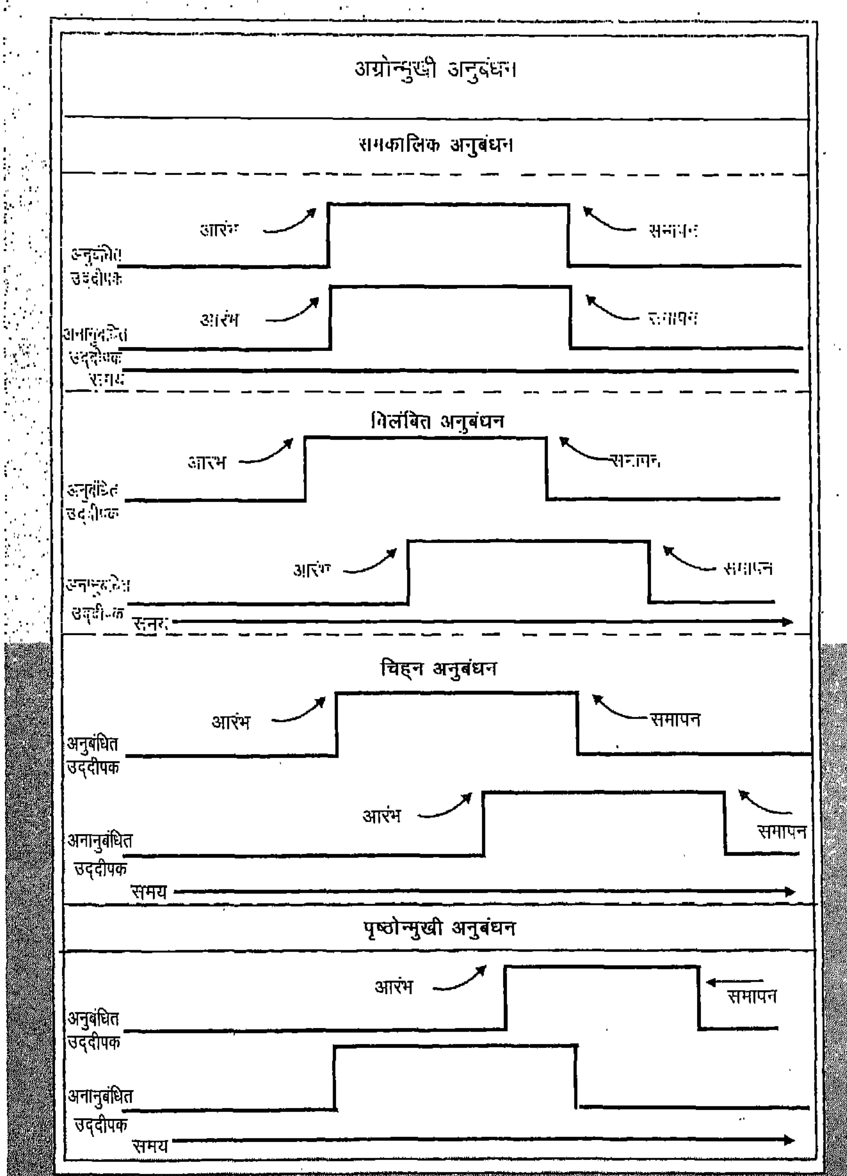
(अ) जब अनुबंधित तथा अनानुबंधित उद्दीपक साथ-साथ प्रस्तुत किए जाएँ तो इसे **समकालिक अनुबंधन** कहा जाता है।

(ब) **विलंबित अनुबंधन** *की प्रक्रिया में अनुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत किए जाने के कुछ समय बाद अनानुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है।*

(स) **चिह्न अनुबंधन** की विधि में अनुबंधित उद्दीपक के समाप्त हो जाने के कुछ विलंब के बाद अनानुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है।

(द) **पृष्ठोन्मुखी अनुबंधन** की प्रक्रिया में अनानुबंधित उद्दीपक पहले प्रस्तुत किया जाता है और अनुबंधित उद्दीपक उसके बाद। प्राचीन अनुबंधन के इन चार स्वरूपों को चित्र 7.3 में प्रदर्शित किया गया है।

प्रायोगिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि विलंबित अनुबंधन की विधि से अनुबंधन की स्थापना सर्वाधिक



चित्र 7.2 : पावलवी अनुबंधन में CS - UCS युग्मीकरण के कालिक संबंध।

प्रभावशाली होता है। समकालिक तथा चिह्न अनुबंधन की विधियों से भी अनुबंधन स्थापित होता है परंतु इस विधि में विलंबित अनुबंधन की तुलना में अधिक प्रयास लगते हैं। ध्यातव्य यह है कि पश्चगामी विधि से अनुबंधन स्थापित होने की सम्भावना बहुत कम होती है।

2. **अनानुबंधित उद्दीपक के प्रकार :** प्राचीन अनुबंधन में प्रयुक्त अनानुबंधित उद्दीपक मूलतः दो प्रकार के हो सकते हैं – **एषणात्मक** (Appetitive) तथा **विकर्षणात्मक** (Aversive)। एषणात्मक उद्दीपक वे उद्दीपक हैं जो प्राणी में उद्दीपक को प्राप्त करने तथा उनका उपयोग करने की क्रिया स्वचालित रूप से उत्पन करते हैं। भोजन अथवा पानी आदि उद्दीपक एषणात्मक उद्दीपक के उदाहरण हैं। इन पदार्थों के उपभोग से प्राणी को प्रसन्नता तथा तृप्ति का अनुभव होता है। दूसरी ओर, विकर्षणात्मक उद्दीपक जैसे शोर, कड़वा स्वाद, विद्युत् आघात, पीड़ादायी सूई आदि उद्दीपक हैं जो प्राणी के लिए क्षतिकारक होते हैं। इनसे पीड़ा का अनुभव होता है और प्राणी इनसे स्वयं को बचाने का प्रयास करता है। ऐसे उद्दीपकों के होने पर प्राणी पलायन या दूर भागने अथवा परिहार या हटाने की अनुक्रियाएँ करता है। प्रायोगिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि एषणात्मक उद्दीपकों का उपयोग करने पर अनुबंधन की स्थापना में अपेक्षाकृत अधिक प्रयास करने पड़ते हैं जबकि विकर्षणात्मक उद्दीपकों का उपयोग करने पर दो-चार प्रयासों में ही अनुबंधन स्थापित हो जाता है। यह वस्तुतः विकर्षणात्मक उद्दीपक की तीव्रता पर निर्भर करता है।

3. **अनुबंधित उद्दीपक की तीव्रता :** अनुबंधन के समय अनानुबंधित उद्दीपक चाहे एषणात्मक हो या विकर्षणात्मक, प्राचीन अनुबंधन की स्थापना की दर अनुबंधित उद्दीपक की तीव्रता पर भी निर्भर करती है। अनुबंधित उद्दीपक जितना ही अधिक तीव्र होगा, अनुबंधित अनुक्रिया के अर्जन की गति उतनी ही अधिक होगी अर्थात् अनुबंधन उतने ही कम प्रयासों में स्थापित होगा।

अब तक आपने पढ़ा

प्राचीन अनुबंधन सीखने का एक प्रारंभिक रूप है। अनुबंधन के प्रथम चरण में किसी प्राणी को एक तटस्थ उद्दीपक के प्रति अनुबंधित किया जाता है ताकि वह उन्मुखता अनुक्रियाओं को न कर सके। इसके फलस्वरूप प्राणी अनुबंधित उद्दीपक की ओर ध्यान तो देता है परंतु उसके प्रति किसी प्रकार की अनुक्रिया नहीं करता। दूसरे चरण में, तटस्थ उद्दीपक के साथ-साथ एक अनानुबंधित उद्दीपक को भी युग्मित रीति से प्रस्तुत किया जाता है जो प्राणी में अनानुबंधित अनुक्रिया उत्पन्न करता है। दोनों उद्दीपकों का युग्मित प्रस्तुतीकरण कई प्रयासों तक किया जाता है। इसके बाद प्राणी जो अनुक्रियाएँ अनुबंधन के पूर्व अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था वह अनुबंधित उद्दीपक के प्रति भी करने लगता है। अनुबंधन के बाद तटस्थ उद्दीपक को अनुबंधित उद्दीपक तथा उसके प्रति होने वाली अनुक्रिया को अनुबंधित अनुक्रिया कहा जाता है। *अनुबंधित उद्दीपक तथा अनुबंधित अनुक्रिया के बीच साहचर्य का स्थापित हो जाना ही अनुबंधन है।* प्राचीन अनुबंधन में निर्मित होने वाला यह साहचर्य उद्दीपक-उद्दीपक प्रकार का साहचर्य है। प्राचीन अनुबंधन कराने की अनेक विधियों में विलंबित अनुबंधन की विधि सर्वाधिक प्रभावशाली विधि है। अनुबंधन की स्थापना एषणात्मक तथा विकर्षणात्मक दोनों प्रकार के उद्दीपकों से हो सकती है। प्राचीन अनुबंधन की स्थापना तीव्र अनुबंधित उद्दीपक के साथ अधिक आसानी से होती है।

आपने कितना सीखा

1. प्राचीन अनुबंधन का सर्वप्रथम अध्ययन ________ द्वारा किया गया।

2. प्राचीन अनुबंधन में भोजन को ________ कहा जाता है।

3. अनानुबंधित उद्दीपक के साथ साहचर्य स्थापित होने के बाद घंटी को ________ कहा जाता है।

4. घंटी की ध्वनि अनुबंधित उद्दीपक तथा लार स्राव ________ हो जाती है।

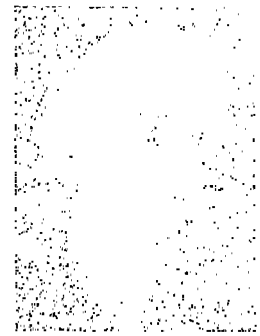
5. उद्दीपकों के बीच समय-संबंध के कारण ________ तथा ________ घटित होता है।

उत्तर – 1. इवान पी. पावलव, 2. अनानुबंधित उद्दीपक, 3. अनुबंधित उद्दीपक, 4. अनुबंधित अनुक्रिया, 5. अग्रोन्मुखी अनुबंधन तथा पृष्ठोन्मुखी अनुबंधन।

क्रिया प्रसूत / नैमित्तिक अनुबंधन

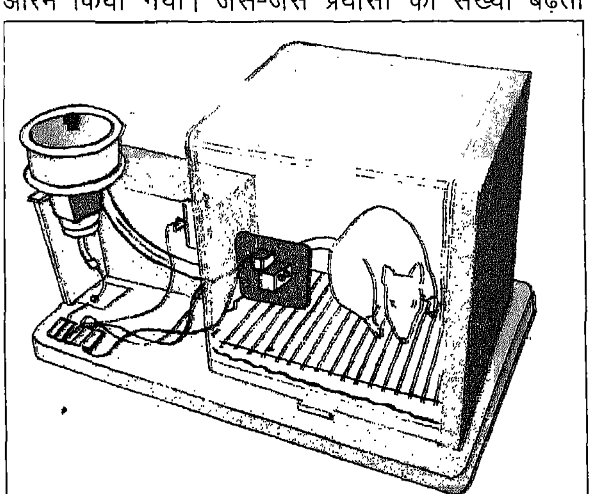
इस तरह के अनुबंधन का सर्वप्रथम बी. एफ. स्किनर द्वारा अध्ययन किया गया। उन्होंने ऐच्छिक अनुक्रियाओं के अनुबंधन का अध्ययन किया, जिनका उपयोग प्राणी द्वारा अपने परिवेश में सक्रिय होने पर किया जाता है। स्किनर ने इसे क्रिया प्रसूत (Operant) कहा। *क्रिया प्रसूत अनुक्रियाएँ वे व्यवहार या*

अनुक्रियाएँ हैं, जो प्राणी द्वारा की जाती हैं और उनके नियंत्रण में रहती हैं। क्रिया प्रसूत कहने का तात्पर्य यह है कि चूहा या कोई भी प्राणी पर्यावरण पर सक्रिय हो कर कार्य करता है।



बी.एस. स्किनर

सर्वप्रथम स्किनर ने क्रिया प्रसूत अनुबंधन से संबंधित अपने प्रयोग चूहों और कबूतरों पर किए थे। प्रयोग हेतु एक भूखे चूहे को विशेष रूप से बनाए गए एक बाक्स (स्किनर बाक्स) में रख दिया जाता था। चूहा इस बाक्स में चारों ओर घूम-फिर सकता था परंतु इसके बाहर नहीं जा सकता था। बाक्स की एक दीवार में एक लीवर लगा था, जिसका संबंध बाक्स की छत पर लगे एक भोजन-पात्र से होता था। लीवर के नीचे एक प्लेट भी रहती थी। यदि लीवर को दबाया जाता था तो भोजन-पात्र से एक निश्चित मात्रा में भोजन निकलकर प्लेट में गिर जाता था और भूखा चूहा उसे खा लेता था (चित्र 7.3 देखिए)। जब एक भूखा चूहा पहली बार बाक्स में रखा गया तो उसे लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना तो मालूम नहीं था इसलिए वह भूख से परेशान होकर बाक्स में इधर से उधर टहलने लगा और दीवारों को पंजों से खरोंचने लगा। इस तरह खोज-बीन करते हुए संयोग से एक बार उससे लीवर दब गया। लीवर के दबते ही प्लेट में खाना गिर गया और चूहे ने उसे खा लिया। इतनी क्रिया को अनुबंधन में एक प्रयास कहा जाता है। पहले प्रयास में भोजन मिल जाने के बाद दूसरा प्रयास आरंभ किया गया। जैसे-जैसे प्रयासों की संख्या बढ़ती



चित्र 7.3 : स्किनर बाक्स।

गई, चूहे को बाक्स में रखने और उसके द्वारा लीवर दबाने के बीच का समय अंतराल घटता गया। अनेक प्रयासों तक इसी प्रक्रिया के बाद स्किनर बाक्स में रखते ही चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करने लगा। यहाँ यह स्वतः स्पष्ट है कि लीवर दबाने की अनुक्रिया क्रिया प्रसूत अनुक्रिया है जिसका परिणाम भोजन प्राप्ति है।

इस प्रयोग में हम देखते हैं कि *लीवर दबाने की अनुक्रिया भोजन प्राप्त करने का निमित्त या कारण है। इसीलिए इस अनुबंधन को नैमित्तिक अनुबंधन भी कहा जाता है।* हम अपने दैनिक जीवन में अनेक ऐसी अनुक्रियाएँ करते हैं जिन्हें हमने नैमित्तिक अनुबंधन द्वारा ही सीखा है। घरों में बच्चे अपनी माँ के न रहने पर उस स्थान को खोजने का कार्य करते हैं जिसमें मिठाई छिपाकर रखी गई है। बच्चे जिससे कुछ पाना चाहते हैं उससे अत्यंत विनम्रता से बात करते हैं। विभिन्न प्रकार के यंत्रों जैसे रेडियो, टी वी. आदि चलाना हम नैमित्तिक अनुबंधन के नियम के आधार पर ही सीखते हैं। वस्तुतः अपने वांछित उद्देश्य को पाने के लिए मनुष्य नैमित्तिक अनुबंधन द्वारा बहुत से कार्य संपादित करने वाले संक्षिप्त तरीके (Short cuts) सीख लेते हैं।

क्रिया प्रसूत अनुबंधन के निर्धारक

क्रिया प्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन सीखने का वह रूप है, जिसमें कोई व्यवहार उसके परिणामों के आधार पर सीखा जाता है, अथवा उसमें परिमार्जन किया जाता है। किसी व्यवहार से उत्पन्न परिणाम को *प्रबलक* (Reinforcer) कहा जाता है। प्रबलक की अनेक विशेषताएँ होती हैं जो अनुबंधित अनुक्रिया की दिशा व शक्ति को निर्धारित करती हैं। *प्रबलक ऐसा कोई भी उद्दीपक या घटना है, जो किसी वांछित अनुक्रिया के घटित होने की संभावना या प्रायिकता (Probability) को बढ़ाता है।* प्रबलक की मुख्य विशेषताओं में इसका *प्रकार* (धनात्मक अथवा ऋणात्मक), *संख्या* (मात्रा), *गुणवत्ता* (उच्च अथवा निम्न), और *अनुसूची* (अनवरत अथवा आंशिक) आदि हैं। प्रबलक की ये सभी विशेषताएँ क्रिया प्रसूत अनुबंधन को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे कारक हैं जो अनुबंधन को प्रभावित करते हैं। जैसे, अनुबंधित कराई जाने वाली अनुक्रिया का स्वरूप कैसा है तथा अनुक्रिया करने के कितनी देर बाद प्रबलक प्राप्त होता है? आइए, इनमें से कुछ प्रमुख कारकों पर विचार करें।

प्रबलन के प्रकार : प्रबलन धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है। धनात्मक प्रबलन वे उद्दीपक होते हैं, जिन्हें

प्राणी नैमित्तिक अनुक्रिया करके प्राप्त करना चाहता है क्योंकि उनका प्राप्त होना प्राणी के लिए सुखद होता है। धनात्मक प्रबलन जिस नैमित्तिक अनुक्रिया से प्राप्त होता है उसे दृढ़ करता है और बनाए रखता है। धनात्मक प्रबलन आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। भोजन, पानी, तमगा, प्रशंसा, धन, प्रतिष्ठा, सूचनाएँ आदि धनात्मक प्रबलन के उदाहरण हैं। दूसरी ओर, ऋणात्मक प्रबलन अप्रिय अथवा पीड़ादायक उद्दीपक होते हैं। *प्रणियों की ऐसी अनुक्रियाएँ जो उन्हें पीड़ादायक उद्दीपकों से छुटकारा दिलाएँ ऋणात्मक प्रबलन प्रदान करती हैं, क्योंकि पीड़ा से बचना भी सुखद तथा प्रबलनकारी होता है। ऋणात्मक प्रबलन प्राणी को ऐसी अनुक्रियाएँ करना सिखाता है, जो उन्हें पीड़ादायक उद्दीपकों से पलायन अथवा परिहार करा दें।* इस प्रकार, ऋणात्मक प्रबलन पलायन अनुक्रिया अथवा परिहार अनुक्रिया करना सिखाते हैं। उदाहरण के लिए, ठंड से बचने के लिए हम ऊनी कपड़े, लकड़ी जलाना तथा बिजली के हीटर का उपयोग करते हैं। बरसात से बचने के लिए हम छाता लगा लेते हैं। छाता लगाने की अनुक्रिया हमें भीगने के कष्ट से मुक्ति दिलाती है। खतरनाक उद्दीपकों के आते ही हम भाग जाते हैं। भागने की यह क्रिया हम उससे प्राप्त होने वाले ऋणात्मक प्रबलन के कारण ही सीखते हैं। ऋणात्मक प्रबलन दंड नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि दंड का उपयोग अनुक्रिया को कम करता है या दबाता है जबकि ऋणात्मक प्रबलन परिहार या पलायन की अनुक्रिया की संभाव्यता को बढ़ाता है। उदाहरणार्थ, सर्कस में जंगली पशु रॉड या हंटर से मिलने वाले विद्युताघात (शॉक) से बचने के लिए तरह-तरह के व्यवहार करना सीख जाते हैं।

प्रबलनों की संख्या तथा अन्य विशेषताएँ : प्रबलन की संख्या से हमारा आशय उन प्रयासों की संख्या से है, जिसमें प्राणी को पुनर्बलन या पुरस्कार प्राप्त हुआ हो। पुनर्बलन की माँग से यह आशय है कि पुनर्बलित उद्दीपक (भोजन या पानी, पीड़ा उत्पन्न करने वाले स्रोतों की कितनी मात्रा को हर प्रयास में प्राणी प्राप्त करता है। प्रबलन की गुणवत्ता से तात्पर्य पुनर्बलक के प्रकार से है। मटर का दाना या ब्रेड का टुकड़ा, रसदार खाद्य पदार्थ या केक की तुलना में निम्न गुणवत्ता वाला पुनर्बलक है। नैमित्तिक अनुबंधन की मात्रा में पुर्नबलकों की संख्या, मात्रा और गुणवत्ता के बढ़ने के साथ एक सीमा तक बढ़ती जाती है।

प्रबलन अनुसूची : प्रबलन अनुसूची (Reinforcement Schedule) अनुबंधन के प्रयासों में प्रबलन उपलब्ध कराने की व्यवस्था को कहते हैं। हर प्रबलन अनुसूची अनुबंधन को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती है। इसके कारण अनुबंधित अनुक्रिया भिन्न-भिन्न प्रकार की विशेषताओं वाली हो जाती है। नैमित्तिक अनुबंधन द्वारा किसी अनुक्रिया को सीख रहे किसी प्राणी को उस अनुक्रिया को करने पर प्रबलन दिया जाता है। ऐसी दशा में प्रत्येक बार अनुक्रिया करने के बाद प्रबलन दिया जा सकता है अथवा ऐसा भी किया जा सकता है कि कुछ प्रयासों पर अनुक्रिया को प्रबलित किया जाए और कुछ प्रयासों पर अनुक्रिया को प्रबलित न किया जाए। हर प्रयास पर प्रबलन देने की प्रक्रिया को **सतत प्रबलन अनुसूची** (Continuous Reinforcement Schedule) कहा जाता है। परंतु यदि कुछ प्रयासों पर ही प्रबलन दिया जाए तो इसे **आंशिक प्रबलन अनुसूची** (Partial Reinforcement Schedule) कहा जाता है। यदि नैमित्तिक अनुबंधन आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा कराया जाए तो सीखी गई अनुक्रिया बहुत दिनों तक बनी रहती है और इसका विलोप कठिन हो जाता है।

प्रबलन में विलंब : नैमित्तिक अनुक्रिया करने के बाद प्रबलन प्राप्त होने में लगने वाला विलंब भी अनुबंधन का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। यदि प्रबलन प्रदान करने में विलंब कर दिया जाए तो अनुबंधन की गति धीमी हो जाती है। यदि किसी बच्चे से किसी वांछित कार्य करने के पश्चात् यह पूछा जाए कि वह पुरस्कार के रूप में छोटा पुरस्कार आज लेगा अथवा बड़ा पुरस्कार तीन दिन बाद लेगा तो प्रायः सभी बच्चे आज ही पुरस्कार प्राप्त कर लेना पसंद करेंगे भले ही वह छोटा हो। किसी भी प्रबलन की प्रबलनकारी क्षमता विलंब के साथ-साथ कम होती जाती है।

दंड प्रशिक्षण

सामान्यतः लोग यह मान लेते हैं कि दंड का प्रभाव पुरस्कार के प्रभाव के विपरीत प्रकार का होता है। परंतु प्रायोगिक अध्ययनों से अब यह स्पष्ट हो गया है कि प्राणी पर दंड के प्रभाव बहुत जटिल होते हैं। दंड के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रायोगिक परिणाम निम्नवत् हैं।

1. दंड के कारण दंडित किया गया व्यवहार लंबी अवधि तक प्राणी नहीं करता, यदि दंड तीव्र हो और अनुक्रिया के तत्काल बाद दे दिया जाएं। फिर भी कोई भी दंड किसी व्यवहार को स्थायी रूप से दबा नहीं पाता है। हलके अथवा मध्यम तीव्रता के दंड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दंड *की तीव्रता जितनी ही तीव्र होती है उसका दमन प्रभाव उतने ही अधिक काल तक बना रहता है परंतु यह प्रभाव स्थायी कभी नहीं होता।*

2. कभी-कभी दंड चाहे जितना ही तीव्र क्यों न हो इसका अनुक्रिया के दमन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। *कुछ दशाओं में दंडित किए गए व्यक्ति में दंड देने वाले व्यक्ति के प्रति घृणा व विकर्षण का भाव आ जाता है।*

आपने अब तक पढ़ा

मूल रूप में स्किनर द्वारा अध्ययन किए गए क्रिया प्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रिया द्वारा सीखने के उस प्राथमिक स्वरूप का अध्ययन किया जाता है, जिसमें किसी अनुक्रिया को करने के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले प्रबलन से सुखद अथवा पीड़ादायक अनुभव मिलते हैं। यह एक उद्दीपक-अनुक्रिया (S-R) साहचर्य के सीखने का ही रूप है। स्किनर बाक्स में लीवर दबाने से भोजन मिलता है और इसका बार-बार अनुभव होने के परिणामस्वरूप भोजन प्राप्त करने के लिए लीवर तथा उसको दबाने की अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित हो जाता है। कोई भी ऐसी अनुक्रिया जिसका परिणाम सुखद हो, प्राणी उस सुखद परिणाम को प्राप्त करने लिए उस अनुक्रिया को बार-बार

आपने कितना सीखा

1. क्रिया प्रसूत नैमित्तिक अनुबंधन का ———— ———— ने सर्वप्रथम अध्ययन किया।

2. इस प्रक्रिया को इसलिए नैमित्तिक अनुबंधन कहा जाता है, क्योंकि अनुक्रिया भोजन प्राप्ति का ———— ———— होती है।

3. पुनर्बलन ———— या ———— हो सकता है।

4. धनात्मक प्रबलक ———— ———— के घटित होने की संभाव्यता को बढ़ाता है।

5. ऋणात्मक प्रबलक ———— तथा ———— अनुक्रियाओं की संभाव्यता को बढ़ाता है।

6. प्रबलन ———— या ———— हो सकता है।

उत्तर — 1. स्किनर, 2. निमित्त, 3. धनात्मक तथा ऋणात्मक, 4. वांछित अनुक्रिया, 5. पलायन, परिहार, 6. सतत आंशिक।

बाक्स 7.1 **प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबंधन की तुलना**

पावलवी तथा क्रिया प्रसूत अनुबंधन में कुछ समानताएँ तथा कुछ भिन्नताएँ होती हैं। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं:

समानताएँ

1. यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्राचीन अनुबंधन में CS, UCS के उपस्थित होने का पूर्वसंकेत बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि CS तथा UCS के बीच कालगत (Temporal) तथा स्थानगत (Spatial) निरंतरता (Contiguity) बनी रहती है। इसी तरह क्रिया प्रसूत अनुबंधन में उद्दीपन दशा प्रस्तुत होती है और प्राणी लीवर दबाने की अनुक्रिया करना सीखता है। यहाँ समानता यह है कि स्किनर बाक्स के उद्दीपक तथा लीवर दिखना प्राचीन अनुबंधन के CS के समतुल्य है। लीवर को दबाने की अनुक्रिया CR मानी जा सकती है जिसके बाद प्राणी को भोजन प्राप्त होता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्राचीन अनुबंधन के भी कुछ तत्व निहित होते हैं।

2. अनुबंधन के दोनों प्रकार साधारण प्रकार के सीखने के उदाहरण हैं। दोनों ही प्रकार के अनुबंधनों में एकसमान प्रक्रियाएँ (जैसे विलोप, सामान्यीकरण, विभेदन तथा स्वतः पुनर्प्राप्ति) घटित होती हैं। इनका विवेचन आगे किया जाएगा।

भिन्नताएँ

1. प्राचीन अनुबंधन में जिस अनुक्रिया को अनुबंधन कराने के लिए चुना जाता है वह प्रायः किसी उचित उद्दीपक के प्रति होने वाली स्वचालित प्रतिवर्ती अनुक्रिया होती है। इस अनुबंधन में UCS के रूप में किसी ऐसे उद्दीपक (भोजन) का चयन किया जाता है जो प्राणी में स्वाभाविक रूप से किसी स्वचालित प्रतिवर्ती अनुक्रिया UCR (लार स्राव) को उत्पन्न कर सके। इसीलिए प्राचीन अनुबंधन को प्रतिक्रियात्मक अनुबंधन (Respondent conditioning) कहा जाता है क्योंकि अनुक्रिया प्राणी के ऐच्छिक नियंत्रण में नहीं होती है। नैमित्तिक अनुबंधन में अनुबंधन कराने के लिए जिस अनुक्रिया का चयन किया जाता है वह प्राणी के ऐच्छिक नियंत्रण में होती है, अर्थात् यदि प्राणी चाहे तो अनुक्रिया करे और न चाहे तो न करे। इसलिए इस अनुबंधन को क्रिया प्रसूत (Operant) कहा जाता है। स्पष्ट है कि दोनों प्रकार के अनुबंधनों में दो भिन्न प्रकार की अनुक्रियाओं का अनुबंधन कराया जाता है।

2. प्राचीन अनुबंधन में CS तथा UCS ज्ञात एवं सुपरिभाषित होते हैं परंतु क्रिया प्रसूत अनुबंधन में CS सुपरिभाषित नहीं होते। यह केवल अनुमान से बताया जा सकता है कि कौन सा उद्दीपक CS है और कौन-सा UCS है। इतना ही नहीं जिस उद्दीपक को क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रबलन कहा जाता है उसे प्राचीन अनुबंधन में अनानुबंधित उद्दीपक UCS कहा जाता है।

3. प्राचीन अनुबंधन में UCS (भोजन) का प्रस्तुत किया जाना प्रयोगकर्ता के नियंत्रण में होता है, जबकि क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रबलन का मिलना या न मिलना अनुक्रिया

सीखने वाले प्राणी की अनुक्रिया पर निर्भर करता है। इसलिए प्राचीन अनुबंधन के दौरान प्राणी निष्क्रिय रहता है, प्रयोगकर्ता उसे भोजन स्वयं दे देता है, जबकि क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्राणी को सक्रिय होकर अनुक्रिया करके भोजन प्राप्त करना पड़ता है।

4. अनुबंधन के इन दोनों रूपों में प्रायोगिक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त तकनीकी पद भी भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, क्रिया प्रसूत अनुबंधन में जो प्रबलन (भोजन) है वही प्राचीन अनुबंधन में अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) है। प्राचीन अनुबंधन में UCS के दो कार्य होते हैं। प्रारंभिक प्रयासों में यह अनुक्रिया उत्पन्न करता है, तथा अनुबंधित की जाने वाली अनुक्रिया को प्रबलित भी करता है जो बाद में CS द्वारा उत्पन्न की जाती है।

दुहराता है। नैमित्तिक अनुबंधन एषणात्मक भी हो सकता है और विकर्षणात्मक भी। प्राणी किसी उद्दीपक के प्रति उन अनुक्रियाओं को करना सीखता है जिनसे या तो सुखद परिणाम प्राप्त होता हो अथवा दुखद या पीड़ादायक उद्दीपकों से मुक्ति मिलती हो। अनुक्रिया से उत्पन्न होने वाले परिणाम ही प्रबलन कहलाते हैं। अनुबंधन में कठिनाई अथवा सरलता को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इन कारकों में प्रयासों की संख्या, प्रबलन की मात्रा तथा गुणवत्ता, सतत या आंशिक प्रबलन अनुसूची तथा प्रबलन मिलने में लगने वाला विलंब आदि प्रमुख हैं।

प्रेक्षणात्मक सीखना : मॉडलिंग तथा सामाजिक सीखना

सीखने के इस रूप को पहले अनुकरण द्वारा सीखना कहा जाता था। **बंदूरा** (Bandura) और उनके सहयोगियों ने प्रेक्षण द्वारा सीखने की प्रक्रिया का गहन एवं विस्तृत प्रायोगिक अध्ययन किया। प्रेक्षण द्वारा सीखने को मॉडलिंग (Modeling) भी कहते हैं। चूँकि प्रेक्षण द्वारा व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को सीखता है, इसलिए इसे **सामाजिक सीखना** भी कहा जाता है। हमारे सामने ऐसी अनेक सामाजिक स्थितियाँ आती हैं, जिनमें यह ज्ञात नहीं रहता कि हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए। ऐसी स्थितियों में हम दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण करते हैं और उनकी तरह व्यवहार करने लगते हैं। इसीलिए प्रेक्षण द्वारा सीखने को **मॉडलिंग** भी कहा जाता है।

अपने दैनिक जीवन में हम ऐसे अनेक उदाहरणों से परिचित हैं, जिनमें लोग प्रेक्षण द्वारा सीखते हैं। हम जानते हैं कि फैशन डिजाइन करने वाले विशेषतः सुंदर, लंबी तथा गरिमायुक्त लड़कियों को तथा लंबे तथा आकर्षक कद-काठी वाले नवयुवकों को अपने बनाए परिधानों को लोकप्रिय बनाने के लिए प्रस्तुत करते हैं। मॉडलों को भी हम टी.वी. के फैशन शो तथा पत्रिकाओं और समाचारपत्रों में विज्ञापनों में देखते हैं। लोग मॉडलों का अनुकरण करते हैं। अपने से श्रेष्ठ और पसंदीदा लोगों को देखना और नई सामाजिक परिस्थिति में उन व्यवहारों का अनुकरण करना एक सामान्य अनुभव है।

प्रेक्षण द्वारा सीखने की क्रिया को समझने के लिए बंदूरा के प्रयोग का वर्णन करना उचित होगा। बंदूरा ने एक प्रसिद्ध प्रायोगिक अध्ययन में बच्चों को पाँच मिनट की अवधि की एक फिल्म दिखाई। फिल्म में एक बड़े कमरे में बहुत से खिलौने रखे थे और उनमें एक खिलौना एक बड़ा-सा गुड्डा (बोबो डाल) था। कमरे में एक बड़ा लड़का घुसता है और चारों ओर देखता है। लड़का सभी खिलौनों के प्रति क्रोध प्रदर्शित करता है और बड़े खिलौने के प्रति तो विशेष रूप से आक्रामक हो उठता है। वह गुड्डे को मारता है, उसे फर्श पर फेंक देता है, पैर से ठोकर मारकर गिरा देता है और फिर उसी पर बैठ जाता है। इसके बाद का घटनाक्रम तीन अलग रूपों में तीनों फिल्मों में तैयार किया गया। एक फिल्म में बच्चों ने देखा कि आक्रामक व्यवहार करने वाले लड़के को पुरस्कृत किया गया और एक प्रौढ़ व्यक्ति ने उसके आक्रामक व्यवहार की प्रशंसा की। दूसरी फिल्म में बच्चों ने देखा कि उस लड़के को उसके आक्रामक व्यवहार के लिए दंडित किया गया। तीसरी फिल्म में बच्चों ने देखा कि लड़के को न तो पुरस्कृत ही किया गया है और न ही दंडित।

इस प्रकार बच्चों के तीन समूहों को तीन अलग-अलग फिल्में दिखाई गईं। फिल्में देख लेने के बाद सभी बच्चों को एक अलग कक्ष में बिठाकर उन्हें विभिन्न प्रकार के खिलौनों से खेलने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया और बंदूरा तथा उनके सहयोगी प्रयोगकर्ता छिपकर यह देखते रहे कि बच्चे खिलौनों के साथ कैसा व्यवहार कर रहे हैं। उन लोगों ने पाया कि जिन बच्चों ने फिल्म के खिलौने के प्रति किए जाने वाले आक्रामक व्यवहार को पुरस्कृत होते हुए देखा था, वे स्वयं खिलौनों के प्रति सबसे अधिक आक्रामक थे। सबसे कम आक्रामकता उन बच्चों ने दिखाई जिहोंने फिल्म में आक्रामक व्यवहार को दंडित होते हुए देखा था। इस प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि सभी बच्चों ने फिल्म में दिखाए गए घटनाक्रम से आक्रामकता सीखी और मॉडल का अनुकरण भी किया। *प्रेक्षण द्वारा सीखने की प्रक्रिया में प्रेक्षक मॉडल के व्यवहार का प्रेक्षण करके ज्ञान प्राप्त करता है परंतु वह किस प्रकार से आचरण करेगा यह इस पर*

निर्भर करता है कि उसने मॉडल को पुरस्कृत होते हुए देखा है या दंडित होते हुए।

आपने देखा होगा कि छोटे शिशु भी घर पर सामाजिक उत्सवों तथा समारोहों में प्रौढ़ व्यक्तियों के अनेक प्रकार के व्यवहारों का ध्यान से प्रेक्षण करते हैं; इसके बाद अपने खेल में उनको दुहराते हैं। छोटी लड़कियाँ गुड्डा-गुड़िया का ब्याह रचाती हैं, खाना बनाना खेलती हैं, छोटे-छोटे लड़के चोर-सिपाही खेलते हैं, आदि। वे अपने खेलों में ऐसा सब करते हैं जिसे वे प्रौढ़ों को करते हुए देखते हैं, टेलीविजन में जैसा देखते हैं तथा पुस्तकों में जैसा पढ़ते हैं। प्रौढ़ों की अनुकृति से ही बच्चे भाषा भी सीखते हैं। बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार प्रौढ़ों का प्रेक्षण तथा उनकी नकल करके सीखते हैं। कपड़ा पहनना, परिधान, बालों की शैली और समाज में कैसे रहा जाए यह सब दूसरों को देखकर सीखा जाता है। विभिन्न अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि बच्चों में व्यक्तित्व का विकास भी प्रेक्षण द्वारा सीखने से ही होता है। आक्रामकता, परोपकार, आदर, नम्रता, परिश्रम, आलस्य आदि गुण भी प्रेक्षण की विधि द्वारा अर्जित किए जाते हैं।

आपने अब तक पढ़ा

प्रेक्षण द्वारा सीखने में अनुकरण अथवा नकल करके सीखना भी शामिल है। इसे सामाजिक सीखना या मॉडलिंग भी कहते हैं। व्यक्ति दूसरे श्रेष्ठ तथा उच्च पद वाले व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण करते हैं और उसी प्रकार की परिस्थिति आने पर वैसा ही व्यवहार स्वयं करते हैं। बच्चे प्रायः प्रेक्षित व्यवहारों की अनुकृति अपने खेलों में करते हैं। प्रेक्षण द्वारा सीखने के लिए मॉडल व्यक्तियों का चयन होता है। अधिकांश सामाजिक व्यवहार प्रेक्षण द्वारा सीखे जाते हैं। व्यक्तित्व की विशेषताओं एवं आदतों का विकास भी प्रेक्षण द्वारा सीखने से ही होता है।

आपने कितना सीखा

1. अधिकांश सामाजिक सीखना ____________ द्वारा होता है।

2. बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार प्रौढ़ों के व्यवहार के ____________ द्वारा सीखते हैं।

उत्तर – 1. मॉडलिंग, 2. प्रेक्षण, अनुकरण।

क्रियाकलाप 7.2

प्रेक्षण द्वारा सीखना

निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा आप स्वयं प्रेक्षण द्वारा सीखने का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

स्कूल के चार-पांच बच्चों को एकत्र करके उन्हें कागज की नाव बनाने का प्रदर्शन कीजिए। इस क्रिया को दो या तीन बार दुहराइए ताकि बच्चे ठीक से आपके कार्य का प्रेक्षण कर सकें। कागज को कैसे बार-बार मोड़ा जाए और उससे नाव कैसे बनाई जाए – इसे बार-बार दुहराने के बाद बच्चों को एक-एक कागज दे दीजिए और नाव बनाने के लिए कहिए। प्रेक्षण करने के कारण बच्चे कागज की नाव बना लेंगे।

बाक्स 7.2 अर्जित असहायता, अर्जित अकर्मण्यता तथा आत्मपीड़न

अर्जित असहायता : *यह एक रोचक गोचर है जो दो तरह के अनुबंधनों का परिणाम है। अर्जित असहायावस्था अवसादग्रस्त व्यक्तियों में पाई जाती है।* ***सेलिगमैन*** *तथा* ***मायर*** *ने कुत्तों पर किए गए अध्ययन में इसको प्रदर्शित किया। उन्होंने सबसे पहले कुत्तों के सामने ध्वनि (CS) तथा विद्युत् आघात (UCS) को प्राचीन अनुबंधन की विधि से प्रस्तुत किया। पशु को आघात से बचने या पलायन का कोई अवसर नहीं दिया गया। इन दोनों उद्दीपकों का युग्म कई बार दुहराया गया। इसके बाद कुत्ते आघात से पलायन कर सकते थे यदि वे अपना सिर दीवार पर दबाएँ। पावलवी परिस्थिति में न बच सकने वाले विद्युत् आघात का अनुभव कर लेने के बाद ये कुत्ते नैमित्तिक अनुबंधन की विधि के अंतर्गत आघात से बचने या पलायन करने में असफल रहे। ये कुत्ते आघात सहते रहे और पलायन का कोई प्रयास नहीं किया। कुत्तों के इस व्यवहार को अर्जित असहायता कहा गया।*

असहायता की प्रवृत्ति मनुष्यों द्वारा भी अर्जित की जाती है। यह पाया गया है कि किसी कार्य के निष्पादन में बार-बार मिलने वाली असफलता के कारण व्यक्तियों में असहायता की प्रवृत्ति आ जाती है। संबंधित प्रयोग के प्रथम चरण में प्रयोज्यों को प्रत्येक बार यही सूचित किया जाता है कि वे अपने निष्पादन में असफल रहे हैं। दूसरे चरण में इन्हें एक कार्य दिया जाता है और यह देखा जाता है कि वे इस कार्य में कैसा निष्पादन करते हैं और कितनी देर कार्य करने के बाद उसे करना छोड़ देते हैं। पाया यह गया है कि जिन प्रयोज्यों को पहले बार-बार असफल होने का अनुभव कराया गया था, दूसरे चरण के कार्य में न केवल उनका निष्पादन ही अपेक्षाकृत खराब रहा बल्कि शीघ्र ही उन्होंने कार्य करना भी बंद कर दिया। इस प्रकार का व्यवहार अर्जित असहायता का द्योतक है। अनेक अध्ययनों से यह भी प्रमाणित हुआ है कि दीर्घकालिक

अवसाद की दशा भी अर्जित असहायता के कारण ही उत्पन्न होती है।

अर्जित अकर्मण्यता *– यह एक ऐसी स्थिति है, जिसमें प्राणी यह सीख लेता है या आदत बना लेता है कि जब कुछ करना आवश्यक हो तो कुछ न किया जाए। यह इसलिए होता है कि प्राणी व्यवहार करने और धनात्मक प्रबलन के बीच किसी संबंध के अभाव का प्रत्यक्षीकरण करने लगता है या सीख लेता है। दूसरे शब्दों में, अनुक्रिया करना तथा धनात्मक प्रबलन एक दूसरे से स्वतंत्र हो जाते हैं। पशुओं पर किए गए कुछ प्रयोगों में यह पाया गया कि वे पशु जो किसी अनुक्रिया (जैसे– कुंजी दबाना) को धीमी गति से सीखे थे, यदि उन्हें अनुक्रिया से स्वतंत्र पुरस्कार पाने का अनुभव था। दूसरी ओर यदि उन्हें पुरस्कार पाने के लिए निष्पादन करने का पुराना अनुभव था जिसमें उन्हें पुरस्कार मिलता हो तो नई परिस्थिति में नई अनुक्रिया दवारा व्यवहार को बदलने में उन्हें सरलता थी। इस प्रकार का व्यवहार मनुष्यों में समान व्यवहार को समझने के लिए एक मॉडल प्रदान करता है।*

आत्मपीड़न *– इस प्रकार का व्यवहार पशुओं पर किए गए उन अध्ययनों में पाया गया है जिनमें परिहार का सीखना दण्ड के साथ जोड़ दिया गया। इसे समझने के लिए एक प्रयोग का संक्षेप में वर्णन प्रासंगिक होगा। एक कुत्ते को एक विभेदक संकेत के प्रति अनुक्रिया के रूप में कूदना सिखाया गया और यदि एक निश्चित समय अंतराल के भीतर कूदने की क्रिया होती है तो दंड (जैसे विद्युत् आघात) से बचा जा सकता है। इस परिस्थिति में कुत्ता परिहार की अनुक्रिया सीख लेता है। जब उसका व्यवहार पूरी तरह व्यवस्थित हो जाता है तो पशु को दंड दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, पशु को परिहार की अनुक्रिया के लिए दंडित किया जाता है। उदाहरणार्थ, उपकरण के फर्श में विद्युत् प्रवाह संचालित किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में पशु को कूदने के लिए दंड अर्थात् विद्युत् आघात मिलता है। इसके बाद यदि विलोप के प्रयास दिए जाएँ अर्थात् यदि पशु न कूदे और उपकरण के आरंभिक भाग में खड़ा रहे तो विद्युत् प्रवाह नहीं होगा। ऐसी दशा में यह आशा की जाती है कि कुत्ता आसानी से कूदने के व्यवहार को रोक लेगा परंतु प्रायोगिक परिणाम इसके विरुद्ध पाए गए हैं। पाया गया है कि इन परिस्थितियों में दिया जाने वाला दंड, अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति को बड़ी तेजी से बढ़ा देता है। यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल होती है कि दंड न देने की स्थिति में जो व्यवहार होगा उससे भी अधिक प्रबलता होती है। ऐसा लगता है कि विलोप के दौरान विद्युत आघात भ्रम को बनाए रखता है और जब आघात मिलता है तो पशु दौड़ना चालू रखता है, क्योंकि उस अनुक्रिया के लिए अभिप्रेरणात्मक व्यवहार प्रबल रूप से बढ़ा रहता है। दंड देने से आत्मपीड़क व्यवहार पैदा होता है। यह प्रवृत्ति परिस्थितियों में घटनाओं के बीच पारस्परिक संबंध को न पहचानने से और पुष्ट होती है।*

वाचिक सीखना

सीखने का एक विशेष रूप वाचिक या शाब्दिक सीखना है और इसका स्वरूप सरल अनुबंधन से भिन्न है। यह सीखना मनुष्यों तक ही सीमित है। आप जानते हैं कि मनुष्य विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं तथा इन सबके लक्षणों के बारे में मुख्यतः शब्दों के माध्यम से ही ज्ञान अर्जित करते हैं। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य बन जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में इस तरह के सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन के लिए कई विधियों का विकास किया है। प्रत्येक विधि किसी न किसी तरह की शाब्दिक सामग्री के सीखने से जुड़े विशिष्ट प्रश्नों की खोज के लिए उपयुक्त होती है। वाचिक सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक कई तरह की सामग्रियों का उपभोग करते हैं; जैसे – निरर्थक पद (Nonsense syllables), सार्थक शब्द, अपरिचित शब्द, (तालिका 7.4 को नमूने की सामग्री के लिए देखिए), वाक्य तथा अनुच्छेद।

तालिका 7.4 : वाचिक सीखने में प्रयुक्त सामग्री का उदाहरण

निरर्थक पद	अपरिचित शब्द	परिचित शब्द
क इ म	प्रसून	कमल
च ओ प	तितिक्षा	महेश
ग अ ख	अंकुश	नयन
प उ य	तुक्तक	दिवस
ट ए घ	अनन्य	गणेश
ख ऐ ज्ञ	विषण्ण	उदयोग
न अ ड	कुलिश	प्रसाद
य उ घ	दधीचि	समीर
ज्ञ ओ ग	अम्बुज	अर्जुन
घ इ क	संकुल	सुवर्ण
ल ए प	विरक्ति	मलय
र ओ य	पार्थिव	कपाल
ड ए क	अर्गला	रमण
त अ ग	दाड़िम	विक्रम
न उ य	हुतात्मा	निगम

वाचिक सामग्री को सीखने की विधियाँ

1. युग्मित सहचर विधि : जिस प्रकार अनुबंधन में प्रयोज्य उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य के द्वारा किसी उद्दीपक के प्रति एक अनुक्रिया करना सीखता है उसी प्रकार युग्मित सहचर विधि में भी प्रयोज्य शाब्दिक उद्दीपक के प्रति किसी शाब्दिक अनुक्रिया करना सीखता है। हम लोग इस विधि का उपयोग किसी विदेशी भाषा के तुल्य मातृभाषा के शब्दों को सीखने में करते हैं। जैसे कोई बच्चा सीखता है कि Chair शब्द के आते ही वह 'कुर्सी' अनुक्रिया करे। इस प्रकार अभ्यास द्वारा वह "Chair" तथा "कुर्सी" के बीच साहचर्य का निर्माण करता है। प्रयोगशाला में इस विधि से सिखाने के लिए शब्दों के युग्मों की एक सूची बना ली जाती है। प्रत्येक युग्म का पहला शब्द उद्दीपक तथा दूसरा शब्द अनुक्रिया कहा जाता है। युग्मों के उद्दीपक तथा अनुक्रिया शब्द एक ही भाषा के या अलग-अलग भाषाओं के हो सकते हैं। इस प्रकार की एक सूची का उदाहरण तालिका 7.5 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 7.5 : युग्मित सहचर सीखने में प्रयुक्त उद्दीपक-प्रतिक्रिया युग्म

उद्दीपक-अनुक्रिया	उद्दीपक-अनुक्रिया
कमल-यदक	चहक-मसप
किरन-कयच	बदन-हमय
चमन-लकट	जलज-तपर
हलक-सरत	मगन-खचत
घटक-फसप	डगर-मनछ
ठहर-लतप	सरक-शपह

उपर्युक्त सूची के बारह युग्मों के पहले शब्द उद्दीपक पद हैं जिसमें तीन अक्षर रखे गए हैं व्यंजन-स्वर-व्यंजन की संरचना वाले तथा दूसरे शब्द अनुक्रिया पद हैं जो निरर्थक हैं। प्रतिभागी को सर्वप्रथम पूरी सूची एक बार दिखा दी जाती है। सूची दिखाने के पहले उसको बता दिया जाता है कि सूची को एक बार दिखाने के बाद उसे प्रत्येक बार मात्र एक उद्दीपक पद ही दिखाया जाएगा और उसे अपनी स्मृति से उस उद्दीपक पद के साथ युग्मित अनुक्रिया पद बताना होगा। सूची को एक बार प्रस्तुत कर देने के बाद प्रतिभागी को एक-एक करके सभी उद्दीपक पद दिखाए जाते हैं और वह उन उद्दीपक पदों के साथ युग्मित अनुक्रिया पदों को बताता जाता है। स्वाभाविक है कि केवल एक बार सूची को देखने भर से उसे सभी उद्दीपक पदों के साथ युग्मित अनुक्रिया पद याद नही होंगे। यदि प्रतिभागी अनुक्रिया पद बताने में गलती करता है, तो उसे सही अनुक्रिया पद दिखा दिया जाता है ताकि अगले प्रयास में वह गलती न करे। पहला प्रयास समाप्त हो जाने के बाद दूसरा प्रयास किया जाता है और इसमें भी वही प्रक्रिया दुहराई जाती है। प्रयासों का यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि प्रतिभागी सूची के प्रत्येक उद्दीपक पद से जुड़े अनुक्रिया पदों को बिना त्रुटि किए सही-सही न बता दे। यह नोट कर लिया जाता है कि मानदंड (Criterion) तक सीखने पर प्रतिभागी को कुल कितने प्रयास करने पड़े।

2. क्रमिक सीखना : इस विधि का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि प्रतिभागी किसी शाब्दिक सूची को किस तरह सीखता है और सीखने में कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ शामिल हैं। सबसे पहले शब्दों की एक सूची तैयार कर ली जाती है। सूची निरर्थक अथवा सार्थक शब्दों की हो सकती है। सभी शब्द या तो अधिक परिचित या कम परिचित हो सकते हैं। प्रतिभागी को निर्देश दिया जाता है कि आपको कुछ शब्दों की एक सूची एक बार दिखाई अथवा सुनाई जाएगी। एक बार प्रस्तुत करने के बाद आपको उन्हीं शब्दों को उसी क्रम में बताना होगा। इसके लिए प्रतिभागी को पहला शब्द प्रस्तुत किया जाता है और उससे अगला शब्द बताना होता है। यदि वह सही बता देता है तो उसे तीसरा शब्द बताना होता है। यदि वह बीच में क्रम से बताने में त्रुटि करता है तो उसे सही शब्द दिखा दिया जाता है। इस तरह हर शब्द अपने से बाद वाले शब्द के लिए उद्दीपक का कार्य करता है। इस विधि को **क्रमिक पूर्वानुमान विधि** (Serial anticipation method) भी कहा जाता है। सीखने के प्रयास तब तक चलते रहते हैं जब तक कि प्रतिभागी सभी शब्दों का सही-सही क्रमिक पूर्वानुमान न कर ले।

3. मुक्त पुनः स्मरण : इस विधि में शब्दों की एक सूची के प्रत्येक शब्द को प्रतिभागी बारी-बारी से बोलकर पढ़ता है। प्रतिभागी को पूरी सूची एक साथ पढ़ने को नहीं दी जाती। अलग-अलग कार्ड पर एक-एक शब्द लिखा रहता है और प्रत्येक कार्ड प्रतिभागी के सामने एक निश्चित समय के लिए रख दिया जाता है ताकि वह उसे पढ़ ले। सूची के एक बार प्रस्तुत हो जाने के बाद प्रतिभागी शब्दों को जिस क्रम में चाहे सुना सकता है। इस विधि में पुनःस्मरण करते समय प्रतिभागी के लिए शब्दों के क्रम का कोई बंधन नहीं

रहता है। सूची में दस से ज्यादा शब्द रखे जाते हैं। सूची के शब्द परस्पर-संबंधित या असंबद्ध हो सकते हैं। प्रत्येक प्रयास पर शब्दों को प्रस्तुत करने के क्रम को बदल दिया जाता है। इस तरह के सीखने के प्रयास तब तक चलते रहते हैं जब तक कि प्रतिभागी बिना किसी गलती के पूरी सूची का पुनःस्मरण न कर ले। इस विधि का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि प्रतिभागी शब्दों को स्मृति में संचित करने के लिए शब्दों को किस तरह से संगठित करता है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि सूची के आरंभ और अंत में स्थित शब्दों को सीखना, सूची के बीच में स्थित शब्दों की तुलना में सरल होता है।

वाचिक सामग्री को सीखने के निर्धारक

वाचिक सामग्री के सीखने की प्रक्रिया के प्रायोगिक अध्ययन अत्यंत व्यापक स्तर पर तथा प्रचुर मात्रा में किए गए हैं। इन अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि वाचिक सामग्री के सीखने को अनेक कारक निर्धारित करते हैं। इन निर्धारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण वे हैं जो सामग्री की विशेषताओं से संबंधित हैं। सूची की लंबाई तथा सूची के शब्दों की सार्थकता प्रमुख है। शब्दों की अर्थकता (Meaningfulness) का मापन कई विधियों से किया जा सकता है। जैसे, किसी शब्द को सुनने के बाद एक निश्चित समय के अंदर कुल कितने साहचर्य जाग्रत होते हैं, शब्द किस मात्रा में परिचित हैं या उस शब्द का किस आवृत्ति में उपयोग होता है, सूची के सभी शब्द आपस में एक दूसरे से कितने संबद्ध हैं, सूची का कोई शब्द अपने से पूर्व के शब्द पर कितनी क्रमिक निर्भरता रखने वाला है, इन सबका उपयोग अर्थकता के मापन के लिए किया जाता है। इस संबंध में किए गए शोध अध्ययनों के आधार पर अधोलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

शब्दों की सूची जितनी लंबी होगी, कम साहचर्य वाले शब्द या शब्दों के बीच संबंध का अभाव होने पर सूची को सीखने में अधिक समय लगता है, और सीखना अधिक दृढ़ होता है। इस परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिकों ने *संपूर्ण काल का नियम* (Total time principle) प्राप्त किया है। इस नियम के अनुसार किसी निश्चित सूची को सीखने के लिए एक निश्चित समय अवधि आवश्यक होती है। इस अवधि को चाहे जितने प्रयासों में विभक्त कर लिया जाए। सीखने में जितना ही ज्यादा समय लगता है, सीखना उतना ही प्रभावी होता है।

यदि सूची को कोई प्रतिभागी क्रमिक विधि से न सीखकर मुक्त पुनःस्मरण विधि से सीखे तो वह सीखने में संगठनात्मकता (Organisation) दिखाता है। मुक्त पुनःस्मरण विधि से सीखते समय प्रतिभागी पदों का पुनःस्मरण उस क्रम में नहीं करता, जिस क्रम में वे प्रस्तुत किए गए होते हैं, बल्कि वह पदों को एक विशेष क्रम प्रदान करके पुनःस्मरण करता है। सर्वप्रथम **बोसफील्ड** ने इसे प्रायोगिक रीति से उद्घाटित किया। उन्होंने साठ शब्दों की एक सूची का निर्माण किया, जिसमें पंद्रह-पंद्रह शब्द चार अलग-अलग वर्गों से लिए गए थे। ये चार वर्ग थे – नाम, पशु, पेशा, तथा सब्जी। इन शब्दों को प्रतिभागी के सम्मुख एक-एक करके यादृच्छिक क्रम से प्रस्तुत किया गया। इसके बाद प्रतिभागी को सभी शब्दों का मुक्त पुनःस्मरण करने को कहा गया। परिणाम यह प्राप्त हुआ कि पुनःस्मरण करते समय प्रतिभागी एक वर्ग के अंतर्गत आने वाले शब्दों का पुनःस्मरण एक साथ करते हैं। उन्होंने इस प्रक्रिया को **वर्ग-गुच्छन** (Category clustering) कहा। यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रतिभागी को शब्दों का प्रस्तुतीकरण तो यादृच्छिक क्रम में किया गया था परंतु प्रतिभागी ने संगठित वर्गों के रूप में उनका पुनःस्मरण किया। इस प्रयोग में वर्ग गुच्छन की क्रिया सूची के शब्दों की विशेषता के कारण हुई। शाब्दिक सामग्री को सीखते समय प्रतिभागी अपने ढंग से सूची के पदों को संगठित करता है। इसे **आत्मनिष्ठ संगठन** (Subjective organization) कहते हैं। इस संगठन के अनुसार ही प्रतिभागी पुनःस्मरण करता है। वाचिक सीखना प्रायः जानबूझकर स्वेच्छया किया जाता है पर लोग शब्दों की कुछ विशेषताओं को अनजाने या अनायास सीख लेते हैं। इस तरह के सीखने में प्रतिभागी शब्दों की लय, शब्दारंभ के अक्षरों की समानता, स्वरों की समानता आदि देखते हैं। इस तरह वाचिक सीखना ऐच्छिक तथा आकस्मिक या अनायास दोनों तरह का होता है।

क्रियाकलाप 7.3

एक संगठनात्मक प्रक्रिया के रूप में वाचिक सीखना

नीचे दिए गए शब्दों को अलग-अलग कार्ड पर लिखिए और प्रतिभागी से एक एक कर ज़ोर से पढ़ने को कहिए। दो बार पढ़ने के बाद शब्दों को किसी भी क्रम में लिखने के लिए कहिए।

पुस्तक, राजनीति, कानून, कलम जीवन, इतिहास, चावल, दही,, जूता, समाजशास्त्री, मिठाई, बंडी, सरोवर, नृविज्ञान, आलू, टोपी, आइसक्रीम, मफलर, कहानी, गद्य।

शब्दों को प्रस्तुत करने के बाद प्रतिभागी से पढ़े गए शब्दों के प्रस्तुति के क्रम की परवाह किए बिना लिखने के लिए कहिए। पुनः स्मरण के प्रदत्त में देखिए कि याद किए गए शब्द किस तरह संगठित हैं।

आपने अब तक पढ़ा

वाचिक सामग्री के सीखने का अर्थ है – शब्दों को सीखना, विभिन्न शब्दों के बीच साहचर्य का निर्माण करना तथा शब्दों को संगठित करना। युग्मित सहचर विधि द्वारा सीखते समय व्यक्ति को वाचिक युग्मों के रूप में सामग्री प्रस्तुत की जाती है जिसमें पहला पद उद्दीपक तथा दूसरा पद अनुक्रिया होता है। प्रतिभागी को प्रत्येक वाचिक उद्दीपक के प्रति अलग-अलग वाचिक अनुक्रियाएँ करना सीखना होता है। क्रमिक सीखने की विधि में प्रतिभागी से अपेक्षा की जाती है कि वह सूची के शब्दों को उसी क्रम में याद करे, जिस क्रम में वे प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इस विधि में प्रत्येक शब्द अपने से बाद वाले शब्द के लिए उद्दीपक का कार्य करता है। मुक्त पुनःस्मरण विधि में किसी सूची को सीखते समय सूची प्रस्तुत करने के बाद प्रतिभागी को स्वतंत्रता रहती है कि वह उन्हें जिस क्रम में चाहे सुनाए।

वाचिक सामग्री को सीखते समय विभिन्न शब्दों के मध्य साहचर्य का निर्माण तो होता ही है, प्रयोज्य पूरी सामग्री को अपने ढंग से पुनर्संगठित भी करता है। सूची की लंबाई, अर्थकता, शब्दों के उपयोग की आवृत्ति, शब्दों के पारस्परिक अंतर्संबंध आदि अनेक कारक हैं जो कि सूची के सीखने को कठिन बना देते हैं। सीखने में जितना ही अधिक समय व्यय किया जाता है, सीखी गई सामग्री उतनी ही अधिक दृढ़ होती है। वाचिक सीखना ऐच्छिक और अनायास दोनों तरह का होता है।

आपने कितना सीखा

बताइए कि अधोलिखित कथन सही हैं अथवा गलत

1. *आकस्मिक सीखने में सीखने की क्रिया उस समय घटित होती है, जब सीखी जा रही सामग्री पर ध्यान नहीं दिया जाता है।* सही/गलत
2. *सीखने के लिए प्रबलन का होना अनिवार्य है।* सही/गलत
3. *निरर्थक पदों का उपयोग इसलिए किया जाता है, क्योंकि उनके साहचर्य मूल्य नियंत्रित होते हैं।* सही/गलत
4. *मुक्त पुनः स्मरण में प्रतिभागी को सामग्री का किसी भी क्रम में याद कर बताना होता है।* सही/गलत

उत्तर – 1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. सही।

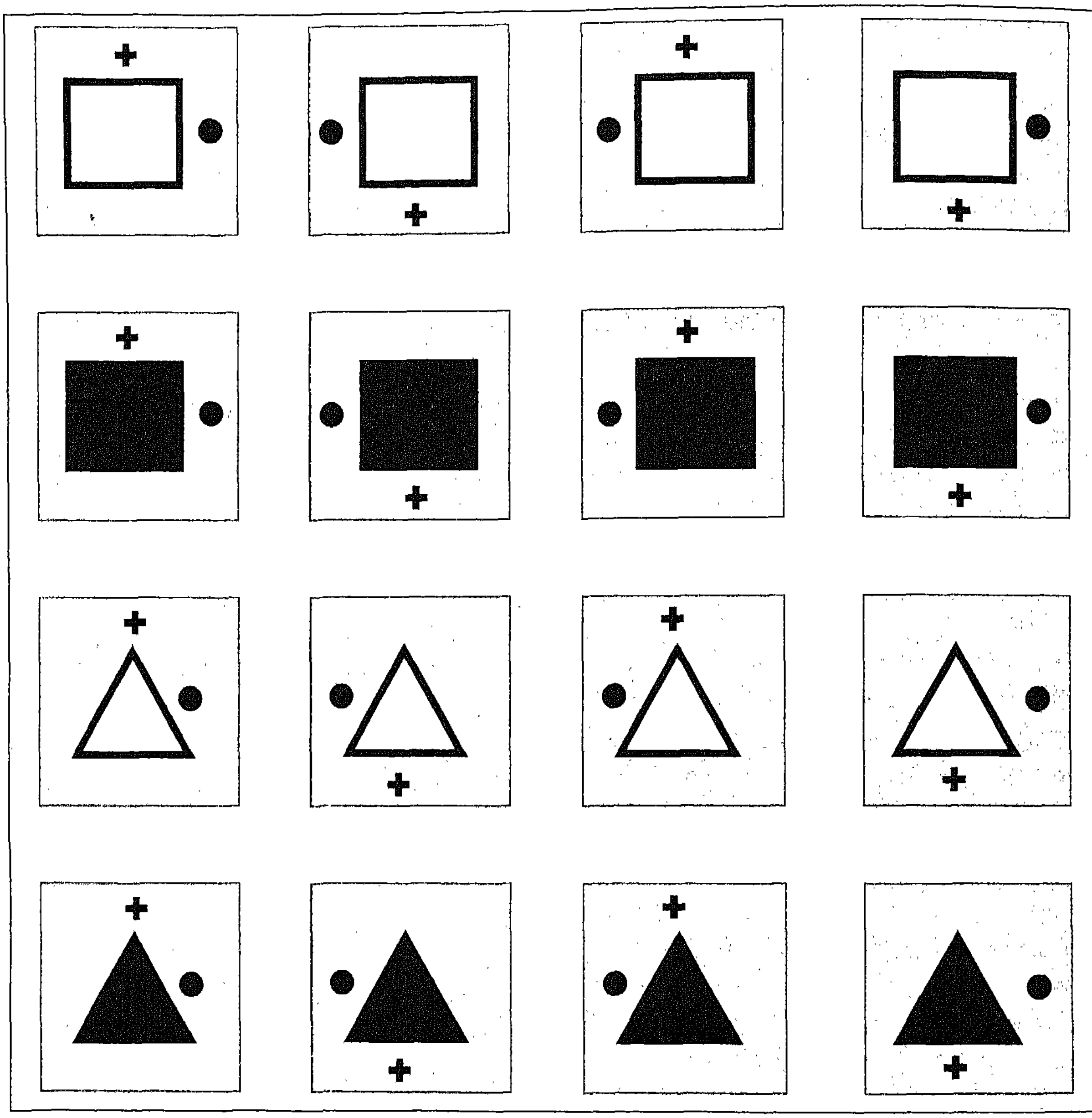
संप्रत्यय का सीखना

हमारे परिवेश में अनगिनत प्रकार की वस्तुएँ, घटनाएँ तथा प्राणी होते हैं। ये सभी कुछ गुणों में एक-दूसरे के समान तथा कुछ अन्य गुणों में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए उद्दीपकों का वर्गीकरण कर लेता है और प्रत्येक वर्ग में आने वाले उद्दीपकों के लिए अलग-अलग नाम भी रख लेता है। इसके अनंतर किसी वर्ग में आने वाले सभी उद्दीपकों को अलग-अलग इंगित करने और उनकी पारस्परिक भिन्नताओं को स्थूल रूप में बताने में अनदेखा कर दिया जाता है। उन्हें समान माना जाता है। उद्दीपकों के वर्गीकरण की इस प्रक्रिया में संप्रत्यय का सीखना (Concept Learning) संलग्न होता है।

संप्रत्यय क्या है?

संप्रत्यय एक श्रेणी है, जिसका उपयोग अनेक वस्तुओं और घटनाओं के लिए किया जाता है। संप्रत्यय प्रायः एक नाम होता है अक्सर एक शब्द का। 'गाय', 'फल', 'भवन' और 'भीड़' संप्रत्ययों या श्रेणियों के उदाहरण हैं। *एक संप्रत्यय का उपयोग अनेक उदाहरणों को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। याद रहे कि संप्रत्यय और श्रेणी दोनों शब्द एक-दूसरे के बदले में प्रयुक्त हो सकते हैं। एक संप्रत्यय किसी नियम से जुड़ी वे वस्तुएँ, व्यवहार या घटनाएँ होती हैं, जिनमें समान विशेषताएँ हों। विशेषता वस्तु या घटना या जीवित प्राणियों का ऐसा गुण हो सकता है जो उनमें पाया जाए तथा दूसरी भिन्न वस्तुओं में प्राप्त विशेषताओं के तुल्य स्वीकार किया जाए।* विशेषताएँ अगणित हो सकती हैं और उनकी विभेदनीयता प्रेक्षक की देखने की या प्रत्यक्षीकरण की क्षमता पर निर्भर करती है। रंग, आकार, संख्या, रूप, कोमलता, रूक्षता और कड़ापन जैसे गुणों या लक्षणों को विशेषता कहते हैं।

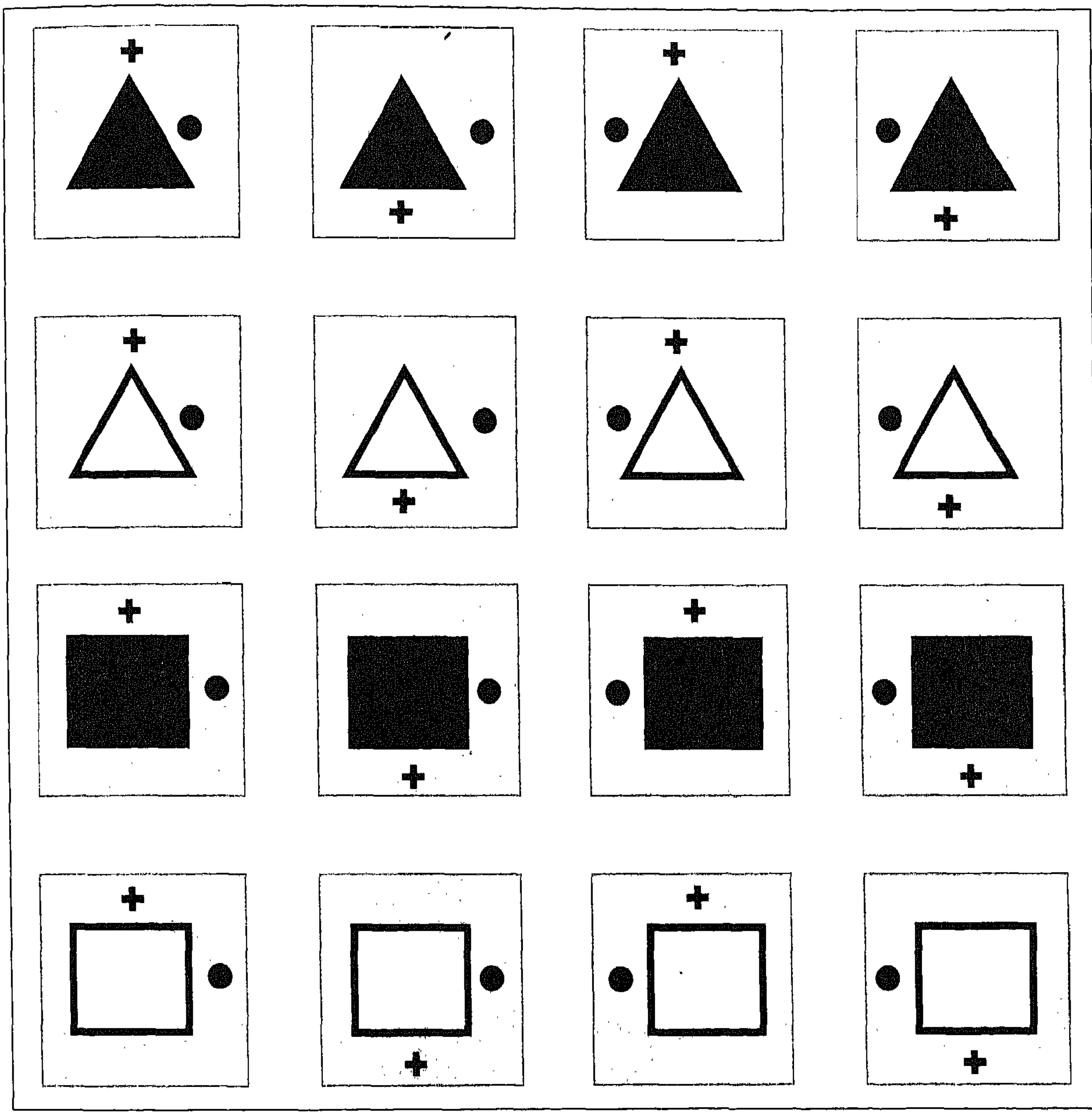
विशेषताओं को जोड़ने के लिए प्रयुक्त नियम अत्यंत सरल या जटिल हो सकते हैं। संप्रत्ययों को परिभाषित करने में प्रयुक्त नियमों को ध्यान में रख कर मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार के संप्रत्ययों का अध्ययन किया है : **कृत्रिम संप्रत्यय** तथा **स्वाभाविक संप्रत्यय** (Artificial and Natural Concepts)। कृत्रिम संप्रत्यय वे होते हैं जो सुपरिभाषित होते हैं और विशेषताओं को जोड़ने वाले नियम परिशुद्ध और कठोर होते हैं (कृत्रिम संप्रत्ययों के उदाहरणों के लिए चित्र 7.5 देखिए)। एक सुपरिभाषित संप्रत्यय में संप्रत्यय का प्रतिनिधित्व करने वाली विशेषताएँ अकेले आवश्यक और विशेषताओं के साथ मिलकर पर्याप्त होती हैं। संप्रत्यय का उदाहरण होने के लिए जरूरी है कि उस वस्तु में सभी विशेषताएँ मौजूद रहें। दूसरी ओर, स्वाभाविक संप्रत्यय या श्रेणियाँ अक्सर ठीक तरह से परिभाषित नहीं



चित्र 7.4 : सोलह चित्र जिनमें 2 आकृतियाँ : वर्ग और त्रिभुज, 2 रंग : काला तथा सफेद, ऊपर और नीचे तारे, आकृति के दाएँ या बाएँ वृत्त। कृत्रिम संप्रत्यय के उदाहरण तथा गैर उदाहरण को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त सामग्री।

रहती हैं। स्वाभाविक संप्रत्यय के उदाहरणों में कई विशेषताएँ पाई जाती हैं। इन संप्रत्ययों में जैविक वस्तुएँ, वास्तविक जीवन के उत्पाद तथा मनुष्यों द्वारा बनाए गए विभिन्न उपकरण, कपड़े आदि सम्मिलित हैं।

आइए, 'वर्ग' (Square) के संप्रत्यय का उदाहरण लिया जाए। यह एक सुपरिभाषित संप्रत्यय है। वर्ग समान लंबाई की चार भुजाओं से घिरा हुआ एक क्षेत्र होता है। सभी कोण भी समकोण होने चाहिए। इस प्रकार वर्ग को परिभाषित करने वाले कुल चार लक्षण होते हैं। किसी आकृति को वर्ग होने के लिए उसमें इन चारों लक्षणों का साथ-साथ पाया जाना अनिवार्य है। अनेक प्रकार के सुपरिभाषित संप्रत्ययों को परिभाषित करने वाले अनेक सांप्रत्ययिक नियमों की जानकारी के लिए चित्र 7.4 देखिए। इस चित्र में एक-दूसरे से भिन्न 16 कार्ड हैं। इन पर दो आकृतियाँ, वृत्त अथवा त्रिभुज में से कोई



चित्र 7.5 : ऊपर के चार चित्र संप्रत्यय के उदाहरण हैं शेष चित्र उदाहरण नहीं हैं। संप्रत्यय का उदाहरण त्रिभुज तथा काला होना चाहिए। अन्य विशेषताएँ अप्रासंगिक हैं।

एक आकृति, दो रंगों – सफेद तथा काला, में से कोई एक रंग, क्रॉस का निशान या तो ऊपर या नीचे, और एक छोटा गोला या तो दाहिनी ओर या बाईं ओर बना है। इन उद्दीपकों की सहायता से विभिन्न लक्षणों तथा नियमों के चुनाव से विभिन्न प्रकार के सुपरिभाषित संप्रत्यय बनाए जा सकते हैं और उनके अलग-अलग वर्ग नाम दिए जा सकते हैं। विशेषताओं का वह समूह, जो किसी नियम से जुड़ा रहता है, उसे **प्रायोगिक विशेषता** कहते हैं। नियम से बाहर स्थित विशेषताएँ **अप्रासंगिक** होती हैं। उदाहरणार्थ, चित्र 7.5 में दिए गए कार्डों में चार विशेषताएँ हैं। इनमें से किन्हीं दो विशेषताओं को लेकर संप्रत्यय बनाया जा सकता है। दो अतिरिक्त विशेषताएँ अप्रासंगिक हो जाएँगी (चित्र 7.5 देखिए)। इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए आप अध्याय 9 में पढ़ेंगे।

बाक्स 7.3

कृत्रिम संप्रत्यय बनाम स्वाभाविक श्रेणियाँ

कृत्रिम संप्रत्यय : *कृत्रिम संप्रत्ययों (Artificial concepts) का अध्ययन करने के लिए भिन्न-भिन्न विशेषताओं वाले उद्दीपकों (चित्रों) का एक समूह तैयार कर लिया जाता है।*

प्रयोगकर्ता यह तय करता है कि चुने गए नियम के अनुसार संप्रत्यय के उदाहरण क्या होंगे। प्रयोग की एक विधि में सभी उद्दीपकों को एक साथ एक प्रोजेक्टर के पर्दे पर या कंप्यूटर पर या टेबिल पर प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिभागी से कहा जाता है कि दिए गए संप्रत्यय (जैसे – डिक्स तथा वे जो डिक्स नहीं हैं, को बताइए। उत्तर ज्ञात करना होता है कि कौन-कौन से उद्दीपक डिक्स हैं। प्रतिभागी किसी एक उद्दीपक को चुनकर इंगित करता है और प्रयोगकर्ता उसे तुरंत यह बताता है कि उसका चुनाव सही है अथवा गलत। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक प्रतिभागी संप्रत्यय के लक्षणों तथा नियम को जान नहीं जाता। इस विधि को ***चयन विधि*** *(Selection method) कहा जाता है।*

संप्रत्यय सिखाने की एक अन्य विधि ***ग्रहण-विधि*** *(Reception method) भी है। इस प्रक्रिया तथा चयन प्रक्रिया में मूल अंतर यह है कि इसमें उद्दीपकों को प्रतिभागी के सम्मुख एक-एक करके बारी-बारी से प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक उद्दीपक के प्रस्तुत होने पर प्रतिभागी को यह अनुमान द्वारा बताना होता है कि उद्दीपक संप्रत्यय का उदाहरण है अथवा नहीं। प्रयोगकर्ता यह सूचित करता है कि प्रतिभागी का अनुमान सही है या गलत। इस विधि में प्रयोग प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक प्रतिभागी त्रुटियाँ करना बंद न कर दे तथा यह भी बता दे कि नियम क्या है।*

स्वाभाविक संप्रत्यय : *प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले उद्दीपकों के अनेक वर्ग जैसे कुत्ता, फूल या फल आदि स्वाभाविक संप्रत्यय (Natural Categories) हैं क्योंकि मनुष्य इन उद्दीपकों तथा इनके लक्षणों की रचना नहीं करता। ये सभी उद्दीपक पहले से ही बने होते हैं और मनुष्य उन संप्रत्ययों को सीखता है। फल संप्रत्यय का ही उदाहरण लीजिए। सभी प्रकार के फल रंग, रूप, आकार, स्वाद आदि में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। इतना ही नहीं, फल वर्ग के अंतर्गत आने वाले उपवर्ग – 'आम' में भी सभी आम एक दूसरे से विभिन्न गुणों में भिन्न होते हैं। कुछ फलों में कुछ निश्चित गुणों के एक साथ पाए जाने के कारण ही वे 'आम' कहलाते हैं। इसी प्रकार कुछ ऐसे गुण होते हैं, जो सभी फलों में पाए जाते हैं। इसी उन सबको 'फल' कहा जाता है। स्वाभाविक संप्रत्ययों को कुछ विशेषताओं के साथ-साथ उपस्थिति पर्याप्त होती है। संप्रत्ययों की तीन मुख्य विशेषताएँ होती हैं।*

1. स्वाभाविक संप्रत्ययों की सीमा रेखा अस्पष्ट होती है। *यह तय नहीं होता कि अमुक लक्षण का पाया जाना किसी संप्रत्यय का सदस्य होने के लिए अनिवार्य ही है। संप्रत्यय के भिन्न-भिन्न सदस्यों में लक्षणों की भिन्न-भिन्न मात्रा पाई जा सकती है। उदाहरण के लिए, पक्षी होने के लिए उड़ने का लक्षण महत्त्वपूर्ण तो है परंतु अनिवार्य नहीं। बतख नहीं उड़ता फिर भी पक्षी वर्ग का सदस्य माना जाता है। स्वाभाविक श्रेणी के कुछ उदाहरण एक दशा में एक श्रेणी में होते हैं और दूसरी दशा में दूसरी श्रेणी में। कटहल, तरकारी और फल दोनों श्रेणियों में है। तालिका 7.6 में दिए गए प्रश्नों को किसी से पूछकर तथा उत्तर देने में लगने वाले प्रतिक्रिया काल को माप कर संप्रत्यय को सीखने को प्रदर्शित किया जा सकता है।*

आप किसी प्रतिभागी से उपर्युक्त प्रश्नों को पूछें और उनके उत्तर को नोट करें तथा उत्तर देने में लगने वाले समय को विराम घड़ी की सहायता से नोट करें। आप पाएँगे कि प्रश्नों का उत्तर देने में अलग-अलग समय लग रहा है। किसी में कम और किसी में ज्यादा।

2. स्वाभाविक संप्रत्यय के सभी उदाहरण एक आद्यरूप के चतुर्दिक संगठित होते हैं। *आद्यरूप (Prototype)*

तालिका 7.6 : सत्यापन विधि द्वारा संप्रत्यय के सीखने का अध्ययन

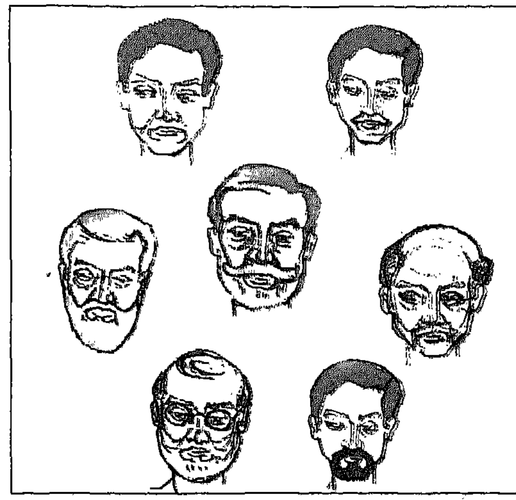
प्रश्न	उत्तर हाँ/नहीं	प्रतिक्रिया काल	प्रश्न	उत्तर हाँ/नहीं	प्रतिक्रिया काल
1. क्या गौरेया एक पक्षी है?			1. क्या गाय एक पशु है?		
2. क्या कौआ एक पक्षी है?			2. क्या ऊँट एक पशु है?		
3. क्या चील एक पक्षी है?			3. क्या गधा एक पशु है?		
4. क्या पेंगुइन एक पक्षी है?			4. क्या चूहा एक पशु है?		
5. क्या बतख एक पक्षी है?			5. क्या चमगादड़ एक पशु है?		
6. क्या सेब एक फल है?			6. क्या कुर्सी फर्नीचर है?		
7. क्या आम एक फल है?			7. क्या स्टूल फर्नीचर है?		
8. क्या अंगूर एक फल है?			8. क्या आलमारी फर्नीचर है?		
9. क्या अनन्नास एक फल है?			9. क्या शहनाई एक फर्नीचर है?		
10. क्या टमाटर एक फल है?			10. क्या पर्दा फर्नीचर है?		

किसी संप्रत्यय का आदर्श उदाहरण अथवा सर्वोत्तम उदाहरण की छवि होती है। जब व्यक्ति किसी उद्दीपक को देखता है तो निर्णय लेता है कि वह संप्रत्यय के आद्यरूप के सबसे अधिक निकट है या नहीं। इसी निर्णय के आधार पर वह उसे किसी वर्ग में वर्गीकृत करता है।

3. स्वाभाविक संप्रत्ययों के सभी सदस्यों में परिवारगत समानता दिखाई पड़ती है। *उदाहरण के लिए, यदि अपवादों को छोड़ दिया जाए तो सभी चिडियाँ अंडे देती हैं, उनके पंख तथा चोंच होती है और सभी उड़ती हैं और वृक्षों की शाखाओं पर या ऊँचे भवनों पर बैठती हैं। चित्र 7.6 में दिखाए गए सभी चेहरों को ध्यान से देखने पर आपको परिवारगत समानता का अर्थ समझ में आ जाएगा।*

4. स्वाभाविक संप्रत्ययों का संगठन अमूर्तता के विभिन्न स्तरों पर होता है। *अमूर्तता के मुख्यत: तीन स्तर होते है : 1. आधारभूत स्तर, 2. उच्च स्तर, तथा 3. अधीनस्थ स्तर। उदाहरण के लिए, "कुर्सी", तथा "मेज", "सेव" और "नारंगी" तथा "पैंट" और "कमीज" आधारभूत स्तर के संप्रत्यय हैं। "फर्नीचर" एक उच्च संप्रत्यय है जिसमें "कुर्सी", "मेज", "स्टूल" के अतिरिक्त अनेक अधीनस्थ संप्रत्यय जैसे "अलमारी", "सोफा" आदि भी आते हैं। कुर्सी आधारभूत संप्रत्यय के अंतर्गत अनेक अधारभूत संप्रत्यय भी है, जैसे, "आराम-कुर्सी", "कार्यालय-कुर्सी", "भो[illegible] कुर्सी", "[illegible] कुर्सी" [illegible]।*

आधारभूत श्रेणियाँ [illegible] सामान्य लक्षणों की [illegible] उद्दीपकों का प्रात्यक्षिक विश्लेषण करने में सरलता होती है, उससे संबंधित सूचनाओं का प्रक्रमण आसान हो जाता है और दूसरों तक इनका ठीक-ठीक संचार करने में भी सहायता मिलती है। प्रायोगिक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि बच्चे जब भिन्न-भिन्न वस्तुओं का नाम सीखना प्रारंभ करते हैं तो वे सर्वप्रथम आधारभूत संप्रत्ययों को उसी तरह सीखते हैं जैसे उद्दीपक-उद्दीपक अथवा उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य सीखे जाते हैं। बाद में आयु बढ़ने पर उच्च संज्ञानात्मक विकास होने पर व्यक्ति आधारभूत श्रेणी से ऊपर तथा आधारभूत श्रेणी से नीचे की श्रेणियों के नाम सीख लेते हैं। इससे उन्हें विभिन्न संप्रत्ययों के लक्षणों को शब्दार्थ स्मृति में संगठित करने में सहायता प्राप्त होती है। स्वाभाविक संप्रत्ययों की इन विशेषताओं की व्याख्या स्मृति के अध्याय में की गई है।



चित्र 7.6 : सात चेहरों में परिवारगत समानता।

आपने अब तक पढ़ा

व्यक्ति अपने परिवेश को संप्रत्ययों के माध्यम से ही संगठित करता है। संप्रत्यय दो प्रकार के होते हैं – सुपरिभाषित संप्रत्यय तथा कुपरिभाषित संप्रत्यय। सुपरिभाषित संप्रत्यय कृत्रिम प्रकार के होते हैं और इनका उपयोग प्रमुख रूप से विज्ञान तथा तकनीकी में होता है। यह कुछ निश्चित लक्षणों का समूह है जो कुछ नियमों से जुड़े होते हैं। कुछ नियम ऐसे हो सकते हैं जिनके आधार पर समुच्चयात्मक नियम बन सकता है। ऐसे संप्रत्ययों का सीखना नियम के स्वरूप, प्रासंगिक और अप्रासंगिक विशेषताओं की संख्या तथा संप्रत्यय के उदाहरणों की प्रात्यक्षिक विशेषताओं से प्रभावित होता है।

सीखने की जाँच

1. *संप्रत्यय तथा ________ शब्द एक-दूसरे के बदले प्रयुक्त हो सकते हैं।*
2. *एक संप्रत्यय विशेषताओं या गुणों के एक समुच्चय को कहते हैं, जो किसी ________ से जुड़े होते हैं।*
3. *संप्रत्ययों की विशेषताओं में ________, ________ तथा ________ शामिल हैं।*
4. *संप्रत्यय ________ या ________ हो सकते हैं।*

उत्तर – 1. वर्ग या श्रेणी, 2. नियम, 3. रंग, आकार, आकृति, 4. कृत्रिम, स्वाभाविक।

कौशल का सीखना

कौशल का स्वरूप

किसी जटिल कार्य को क्षमतापूर्वक निर्बाध रूप से संपादित करने की योग्यता ही कौशल है। साइकिल चलाना, कार चलाना, हवाई जहाज उड़ाना, आशुलिपि में लिखना, लिखना तथा पढ़ना आदि कौशलों के उदाहरण हैं। ये कौशल अभ्यास से सीखे जाते हैं। किसी कौशल का वर्णन प्रात्यक्षिक-पेशीय अनुक्रियाओं की अथवा उद्दीपक-अनुक्रिया की एक श्रृंखला के रूप में किया जा सकता है। पैरों, पंजों तथा अँगुलियों, हाथों, सिर तथा शरीर में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतियाँ उन अनुक्रियाओं के उदाहरण हैं जो

तालिका 7.7 : एक नए ड्राइवर द्वारा किसी गाड़ी को स्टार्ट करने की क्रिया में उद्दीपक-अनुक्रिया के क्रम

उद्दीपक घटक	अनुक्रिया घटक
उ 1. दरवाजे के ताले में चाभी डालना	अ 1. दरवाजे को खोलकर सीट पर बैठना
उ 2. दरवाजे को खोलकर शीशा ऊपर करना	अ 2. शीशे को नीचे करना और दरवाजा बंद करना
उ 3. इंजन के ताले का दिखाई पड़ना	अ 3. उसमें चाभी डालना
उ 4. गीयर के हैंडल का दिखाई पड़ना	अ 4. निश्चित करना कि गीयर न्यूट्रल है
उ 5. आगे सड़क का दिखाई पड़ना	अ 5. स्टार्ट करने के लिए चाभी को घुमाना
उ 6. इंजन की आवाज का सुनाई पड़ना	अ 6. चाभी छोड़ देना
उ 7. गतिवर्धक दिखाई पड़ना	अ 7. गतिवर्धक (एक्सिलेरेटर) को पैर से दबाना
उ 8. गीयर	अ 8. कार को पहले गीयर में ले आना

किसी कौशलपूर्ण कार्य में की जाती हैं। उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य के स्वरूप को एक नए ड्राइवर द्वारा किसी गाड़ी को स्टार्ट करने में की जाने वाली अनुक्रियाओं से अच्छी तरह समझा जा सकता है। कौशलपूर्ण निष्पादन का अर्थ उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की शृंखला के अनुक्रियाओं को क्रमबद्ध रूप से संगठित करना होता है। कुछ जटिल कौशलों में अनुक्रियाओं का संगठन अत्यंत जटिल हो जाता है। एक उद्दीपक अनुक्रिया की शृंखला को तालिका 7.7 में प्रदर्शित किया गया है।

कौशलों को सीखने के चरण

किसी कौशल को सीखने की क्रिया गुणात्मक रूप से भिन्न कई चरणों में संपादित होती है। किसी कौशल को सीखने का प्रयास अथवा अभ्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ता है निष्पादन में निर्बाधता बढ़ती जाती है और निष्पादन करने में प्रयास की आवश्यकता भी कम होती जाती है। क्रिया का संपादन अधिक स्वाभाविक या स्वचालित रूप से होने लगता है। यह देखा गया है कि प्रत्येक चरण में निष्पादन के स्तर में सुधार आता है। सीखने के एक चरण से जब व्यक्ति दूसरे चरण में प्रवेश करता है तो इस परिवर्तन काल में निष्पादन में सुधार रुक जाता है। इस रुके हुए स्तर को *निष्पादन पठार* (Performance plateau) कहा जाता है। अगला चरण प्रारंभ होने के पश्चात् निष्पादन का स्तर पुनः सुधरने लगता है।

कौशलों के सीखने में व्याप्त विभिन्न चरणों को सर्वाधिक प्रभावशाली ढंग से वर्णित करने का कार्य **फिट्स** नामक मनोवैज्ञानिक ने किया है। उनके अनुसार किसी कौशल को सीखने की क्रिया तीन चरणों में होती है – **संज्ञानात्मक, साहचर्यात्मक** तथा **स्वायत्त**। प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाएँ होती हैं। संज्ञानात्मक (Cognitive) चरण में व्यक्ति को दिए गए निर्देशों को समझना और याद करना पड़ता है। उसे यह भी समझना पड़ता है कि कार्य का संपादन किस प्रकार किया जाना है। इस चरण में व्यक्ति को परिवेश से मिलने वाले सभी संकेतों, दिए गए निर्देशों की मांग तथा अपनी क्रियाओं के परिणामों को सदा अपनी चेतना में रखना होता है।

सीखने का दूसरा चरण *साहचर्यात्मक* (Associative) होता है। इसमें विभिन्न प्रकार की सांवेदिक सूचनाओं अथवा उद्दीपकों को उपयुक्त अनुक्रियाओं से जोड़ना होता है। अभ्यास की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ती जाती है त्रुटियों की मात्रा घटती जाती है, निष्पादन की गुणवत्ता बढ़ती जाती है और किसी अनुक्रिया को करने में लगने वाला समय भी घटता जाता है। अभ्यास की मात्रा में और वृद्धि के साथ-साथ व्यक्ति त्रुटिहीन निष्पादन करने लगता है तथापि इस चरण में उसे प्राप्त होने वाले समस्त सांवेदिक सूचनाओं तथा क्रिया के निष्पादन पर सचेत रहते हुए सदा ध्यान रखना होता है। इसके बाद तीसरा चरण – *स्वायत्त* (Autonomous) प्रारंभ होता है। इस चरण में निष्पादन में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। साहचर्यात्मक चरण में जो प्रत्येक उद्दीपक तथा अनुक्रिया पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता थी वह कम हो जाती है। इसी के साथ बाह्य कारकों द्वारा निष्पादन पर पड़ने वाले व्यवधान का प्रभाव कम हो जाता है। धीरे-धीरे निष्पादन स्वचालित रूप लेता जाता है और व्यक्ति के लिए चेतन रूप से प्रत्येक उद्दीपक तथा अनुक्रिया पर चेतन रूप से ध्यान देने की आवश्यकता बहुत कम हो जाती है।

निष्पादन का एक चरण से दूसरे चरण में परिवर्तित होने की क्रिया से यह ज्ञात होता है कि किसी कौशल के सीखने में अभ्यास ही एकमात्र साधन होता है। सीखने के लिए निरंतर अभ्यास करते रहने की आवश्यकता होती है। अभ्यास के बढ़ने के साथ-साथ उत्तरोत्तर सुधार होता जाता है। अंततः स्वचालन के विकास के कारण त्रुटिहीन निष्पादन से कौशल पूर्णतः अर्जित हो जाता है। इसी से कहा जाता है कि *अभ्यास मनुष्य को पूर्ण बनाता है।*

आपने अब तक पढ़ा

किसी जटिल कार्य को क्षमतापूर्वक निर्बाध रूप से संपादित करने की योग्यता ही कौशल है। कौशलपूर्ण कार्यों के सीखने में उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की एक जटिल शृंखला होती है। किसी कौशल का सीखना एक दूसरे से गुणात्मक रूप से भिन्न तीन चरणों में संपन्न होता है। ये चरण हैं – संज्ञानात्मक, साहचर्यात्मक, तथा स्वायत्त। प्रथम चरण में व्यक्ति को दिए गए निर्देशों को समझना और याद करना पड़ता है। उसे यह भी समझना पड़ता है कि कार्य का संपादन किस प्रकार किया जाना है। साहचर्यात्मक चरण में विभिन्न प्रकार की सांवेदिक सूचनाओं अथवा उद्दीपकों को उपयुक्त अनुक्रियाओं से जोड़ना होता है। इस चरण में प्राप्त होने वाली समस्त सांवेदिक सूचनाओं तथा क्रिया के निष्पादन पर सचेत रहते हुए सदा ध्यान रखना होता है। यदि निरंतर अभ्यास होता रहे तो तीसरे चरण में कार्य के संपादन में स्वचालन विकसित होने लगता है। किसी कौशल के सीखने में निरंतर अभ्यास ही एकमात्र साधन होता है।

आपने कितना सीखा

1. *किसी जटिल कार्य को सहजता और निपुणता के साथ करने की योग्यता को ________ कहते हैं।*
2. *कुशल निष्पादन ________ की शृंखला को बड़े अनुक्रिया संरूप में संगठित करना है।*
3. *कौशल का अर्जन का पता तब चलता है जब निष्पादन ________, ________ तथा ________ होता है।*
4. *कौशल का सीखना ________, ________ तथा ________ नामक चरणों के अंतर्गत होता है।*

उत्तर – 1. कौशल, 2. उद्दीपक-अनुक्रिया, 3. निर्बाध, स्वाभाविक, स्वचालित, 4. संज्ञानात्मक, साहचर्यात्मक, स्वायत्त।

सीखने की प्रमुख प्रक्रियाएँ

जब सीखना घटित होता है, चाहे अनुबंधित उद्दीपक-अनुबंधित अनुक्रिया (CS-CR) के साहचर्य हो, या प्रबलन दिलाने वाला एक उद्दीपक-अनुक्रिया आपरैंट हो या प्रेक्षण द्वारा व्यवहार को सीखना, जिससे समय क्रम में प्रत्याशित लक्ष्य प्राप्त करता है, इन सबमें कुछ प्रक्रियाएँ घटित होती हैं। ये हैं – **प्रबलन**, **विलोप** या अर्जित अनुक्रिया का न होना, कुछ खास दशाओं में सीखने का अन्य उद्दीपकों के प्रति **सामान्यीकरण**, प्रबलन देने वाले तथा प्रबलन न देने वाले उद्दीपकों के बीच **विभेदन**, **स्वतः पुनः प्राप्ति** तथा नए कार्यों को करने में **सीखने का अंतरण**। इस खंड में इन गोचरों और प्रक्रियाओं की व्याख्या की गई है।

प्रबलन

प्रबलन (Reinforcement) प्रयोगकर्ता द्वारा प्रबलक देने की क्रिया का नाम है। प्रबलक वे उद्दीपक होते हैं जो अपने पहले घटित होने वाली अनुक्रिया की दर या संभावना को बढ़ा देते हैं। हमने पिछले अनुभागों में पढ़ा है कि प्रबलित अनुक्रियाओं की दर बढ़ जाती है तथा अप्रबलित अनुक्रियाओं की दर घट जाती है। एक धनात्मक प्रबलक के मिलने के पहले जो अनुक्रिया घटित होती है उसकी दर बढ़ जाती है। ऋणात्मक प्रबलक अपने हटने या समापन से पहले घटित होने वाली अनुक्रिया की दर बढ़ा देते हैं। प्रबलक **प्राथमिक** (Primary) या **द्वितीयक** (Secondary) हो सकते हैं। एक प्राथमिक प्रबलक जैविक रूप से महत्त्वपूर्ण होता है चूँकि यह प्राणी के जीवन का निर्धारक होता है (जैसे – एक भूखे प्राणी के लिए भोजन)। एक द्वितीयक प्रबलक प्राणी के सीखने के इतिहास पर निर्भर करता है। रुपया, प्रशंसा और श्रेणियाँ (जैसे – प्रथम, द्वितीय) इसी तरह के प्रबलक हैं। अनुक्रियाओं को क्रमशः पुरस्कृत कर वांछित रूप दिया जा सकता है।

इस तरह स्पष्ट है कि प्रबलन की सीखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। परंतु यह भी उल्लेखनीय है कि ऐसी कई सीखने की स्थितियाँ होती हैं जिनमें प्रबलक सीखने की प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा नहीं होता है। **टालमैन** द्वारा संज्ञानात्मक सीखने के बारे में किए गए अध्ययन इस पर प्रकाश डालते हैं। **प्रच्छन्न सीखना** (Latent learning) अर्थात् छिपा हुआ सीखना नामक गोचर का अध्ययन करते हुए उन्होंने यह पाया कि कुछ स्थितियों में सीखना बिना प्रबलन के हो जाता है। **प्रच्छन्न सीखना** का विचार स्पष्ट

करने के लिए उनके प्रयोग का संक्षेप में वर्णन उपयोगी होगा। टालमैन ने चूहों के दो समूह लिए और उन्हें एक भूलभुलैया में खोजबीन करने का अवसर दिया। चूहों के एक समूह ने भूलभुलैया के अंतिम भाग में भोजन प्राप्त किया। इस समूह ने भूलभुलैया में अपने रास्ते के अंतिम भाग में भोजन प्राप्त किया। इस समूह ने भूलभुलैया में अपना रास्ता शीघ्रता से सीख लिया। दूसरे समूह के चूहों को पुरस्कार नहीं दिया गया। इस समूह में ऊपरी तौर पर सीखने का कोई लक्षण नहीं पाया गया परंतु बाद में जब इन चूहों को भोजन दिया गया तो वे भूलभुलैया में सतत पुरस्कृत समूह के बराबरी में भूलभुलैया में दौड़ रहे थे। संभवतः प्राणी द्वारा सीखने के लिए खोजबीन का व्यवहार महत्त्वपूर्ण था।

विलोप

विलोप (Extinction) का तात्पर्य उस परिस्थिति से प्रबलन के हटा दिए जाने पर, जहाँ अनुक्रिया घटित हो रही थी, सीखी हुई अनुक्रिया के लुप्त हो जाने से है। अनुबंधित उद्दीपक-अनुबंधित अनुक्रिया (CS – CR) के घटित होने के बाद यदि अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) घटित न हो या लीवर दबाने के बाद स्किनर बाक्स में यदि भोजन न मिले या किसी मॉडल का प्रेक्षण कर सीखे गए व्यवहार यदि बच्चे को अपेक्षित परिणाम देने में निरंतर असफल रहें तो इन सब स्थितियों में सीखा हुआ व्यवहार क्रमशः दुर्बल हो जाता है और अंत में लुप्त हो जाता है।

सीखने की प्रक्रिया *विलोप का प्रतिरोध (Resistance to extinction)* भी प्रदर्शित करती है। अर्थात् सीखी हुई अनुक्रिया प्रबलित न होने पर भी कुछ समय तक होती रहती है परंतु बिना प्रबलन वाले प्रयासों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ अनुक्रिया का बल धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है और अंततोगत्वा अनुक्रिया होनी बंद हो जाती है।

कोई सीखी हुई अनुक्रिया कितने समय तक विलोप का प्रतिरोध प्रदर्शित करेगी यह कई कारकों पर निर्भर करता है। यह पाया गया है कि सीखते समय प्रबलित प्रयासों की संख्या बढ़ने के साथ विलोप का प्रतिरोध बढ़ता है। इस वृद्धि से ऊपर प्रबलनों की संख्या बढ़ने पर विलोप का प्रतिरोध घटता है। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जैसे-जैसे सीखने के क्रम में प्रबलन की मात्रा (भोज्य पदार्थ की संख्या) बढ़ती है, विलोप का प्रतिरोध घटता है। यदि अर्जन प्रयासों के क्रम में प्रबलन विलंब से मिले तो विलोप का प्रतिरोध बढ़ता है। इन प्रयासों में हर प्रयास में प्रबलन का मिलना सीखी हुई अनुक्रिया विलोप के प्रतिरोध को घटा देता है। इसके विपरीत, अर्जन के समय रुक-रुक कर या आंशिक प्रबलन देने पर सीखी गई अनुक्रिया विलोप का प्रतिरोध अधिक मात्रा में प्रदर्शित करता है।

सामान्यीकरण तथा विभेदन

सामान्यीकरण तथा विभेदन (Generalisation and Discrimination) की प्रक्रियाएँ हर तरह के सीखने में पाई जाती हैं परंतु इनका विस्तृत अध्ययन अनुबंधन के संदर्भ में किया गया है। मान लीजिए, एक प्राणी एक अनुबंधित अनुक्रिया (CR) के लिए (लार स्राव या कोई और प्रतिवर्ती अनुक्रिया को) अनुबंधित किया गया। अनुबंधित उद्दीपक (CS) प्रकाश या घंटी की ध्वनि हो सकता है। अनुबंधन स्थापित हो जाने के बाद जब CS के समान कोई दूसरा उद्दीपक प्रस्तुत किया जाए तो प्राणी इसके प्रति CR करता है। *समान उद्दीपकों के प्रति समान अनुक्रिया करने के गोचर को सामान्यीकरण कहते हैं।* एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिए एक बच्चा एक खास आकार और आकृति वाले उस जार की जगह को जान गया है, जिसमें मिठाइयाँ रखी जाती हैं। जब माँ पास में नहीं रहती है तो बच्चा जार को खोज लेता है और मिठाई प्राप्त कर लेता है। यह एक अर्जित आपरैंट है। अब मिठाइयाँ एक दूसरे जार में रख दी गई, जो एक भिन्न आकार तथा आकृति का है और भोजनालय में दूसरी जगह रखा हुआ है। माँ की अनुपस्थिति में बच्चा जार को ढूँढ़ लेता है और मिठाई प्राप्त कर लेता है। यह सामान्यीकरण का उदाहरण है। *जब एक सीखी हुई अनुक्रिया एक नए उद्दीपक की प्राप्ति होती है तो उसे सामान्यीकरण कहते हैं।*

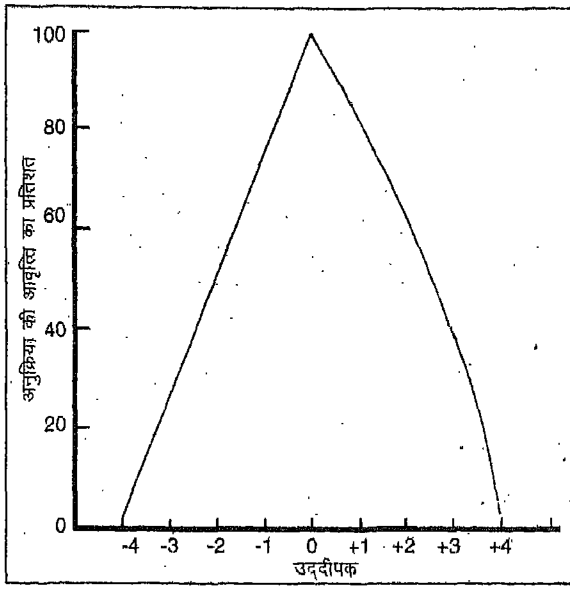
एक दूसरी प्रक्रिया जो सामान्यीकरण की पूरक है, विभेदन कहलाती है। *सामान्यीकरण जहाँ समानता के कारण होता है, विभेदन भिन्नता के प्रति अनुक्रिया होती है।* उदाहरणार्थ, मान लीजिए, एक बच्चा काले कपड़े पहने बड़ी मूंछों वाले व्यक्ति से डरने की अनुक्रिया से अनुबंधित है। जब वह एक नए व्यक्ति से मिलता है, जो काले कपड़ों में है और दाढ़ी रखे है तो बच्चा डरने के चिह्न दिखाता है। बच्चे का भय सामान्यीकृत है। वह एक दूसरे अपरिचित से मिलता है जो भूरे कपड़ों में है। और दाढ़ी मूँछ से रहित (Clean shaved) है तो बच्चा नहीं डरता है। यह विभेदन का उदाहरण है। *सामान्यीकरण होने का तात्पर्य है विभेदन*

की विफलता। विभेदन की अनुक्रिया प्राणी की विभेदक क्षमता या विभेदन के सीखने पर निर्भर करती है।

मनुष्य और पशु दोनों ही सूक्ष्म विभेदन करना सीख सकते हैं। इस तरह के सीखने से बच्चे एक अक्षर को दूसरे अक्षरों से अलग करने की क्षमता प्राप्त करते हैं। आइए, विभेदन सीखने के प्रयोग की दशा पर विचार करें। एक कबूतर स्किनर बाक्स में रखा जाता है, रोशनी की जाती है रोशनी का बल्ब बाक्स की एक दीवार पर इस तरह स्थित है कि कबूतर उसे आसानी से देख सके। अब प्रकाश कर दिया गया तथा सीखने की प्रक्रिया शुरू होती है। जब कबूतर एक दीवार पर स्थित डिस्क पर चोंच मारता है तो भोजन या पुरस्कार बाक्स में गिर पड़ता है। यह प्रशिक्षण उस बिंदु तक दिया जाता है जब तक कि कबूतर डिस्क पर नियमित रूप से और तेजी से अनुक्रिया न करने लगे। इसके बाद रोशनी बुझा दी जाती है। प्रकाशहीन दशा में डिस्क पर चोंच मारने से भोजन का टुकड़ा नहीं मिलता है। इस तरह सीखने के सत्रों में रोशनी जलती-बुझती रहती है। अब कबूतर प्रकाश तथा प्रकाशहीन अवस्थाओं के बीच विभेदन करना सीख लेता है। यह विभेदन स्पष्ट हो जाता है क्योंकि कबूतर डिस्क पर रोशनी की अनुपस्थिति में चोंच मारना बंद कर देता है परंतु रोशनी रहने पर तेजी से और स्थिरतापूर्वक चोंच मारता है। अब कबूतर प्रकाश और प्रकाश के अभाव की स्थितियों के बीच अंतर करने लगता है।

याद रखें कि प्राणी को उद्दीपक दशाओं के बीच विभेदन करना सीखने (जैसे – प्रकाशित और कम प्रकाशित स्थिति) के बाद भी सामान्यीकरण होता है। परीक्षण के विभिन्न सत्रों में रोशनी की चमक विभेदनशील चरणों में क्रमशः एक ओर चार अंतराल बिंदुओं पर बढ़ा कर तथा दूसरी ओर चार बिंदुओं पर घटा कर परिवर्तित उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है। प्राणी को एक चमक की दशा में रखा जाता है तथा सीखी हुई अनुक्रिया के घटित होने की आवृत्ति की गणना की जाती है। ऐसी स्थिति में पाया गया है कि विभिन्न मात्रा की चमक के प्रति होने वाली अनुक्रियाओं की आवृत्ति चित्र 7.7 में दिखाए गए क्रम में होती हैं।

चित्र 7.7 से स्पष्ट है कि जब नई रोशनी, प्रशिक्षण के दौरान उपयोग में लाई गई रोशनी के स्तर पर थी तब सबसे अधिक मात्रा में अनुक्रिया हुई। परंतु इस मात्रा से घटाने और बढ़ाने की स्थितियों में चोंच मारने की अनुक्रिया घटती जाती है। किसी भी तरह रोशनी की चमक

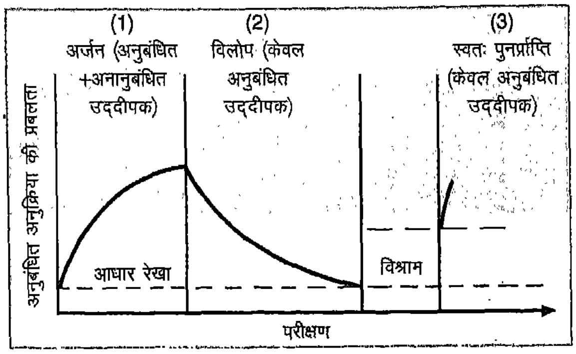


चित्र 7.7 : सामान्यीकरण उद्दीपक तथा उनकी प्रस्तुति पर होने वाले आपरैंट का प्रतिशत।

की मात्रा बदलने पर अनुक्रिया कम हो जाती है। चमक में बहुत ज्यादा परिवर्तन करने पर चोंच मारने की अनुक्रिया बहुत ज्यादा घट जाती है। यह शत-प्रतिशत विभेदन को द्योतित करता है। इस तरह के परिणामों से बना वक्र एक तरह की प्रवणता (Gradient) दिखाता है। इसका तात्पर्य यह है कि सामान्यीकरण उद्दीपक-समानता का क्रमिक प्रकार्य है।

स्वतः पुनर्प्राप्ति

स्वतः पुनर्प्राप्ति (Spontaneous Recovery) किसी सीखी हुई अनुक्रिया के विलोप होने के बाद होती है। मान लीजिए, एक प्राणी प्रबलन प्राप्त करने के लिए एक अनुक्रिया करना सीखता है। इसके बाद अनुक्रिया विलुप्त हो जाती है और कुछ समय बीत जाता है। यहाँ पर एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि अनुक्रिया पूरी तरह विलुप्त हो चुकी है और CS प्रस्तुत करने पर अनुक्रिया नहीं घटित होती है। यह पाया गया कि काफी समय बीत जाने के बाद सीखी हुई CR का पुनरुद्धार हो जाता है और वह CS के प्रति घटित होती है। स्वतः पुनर्प्राप्ति की मात्रा विलोप के बाद बीती हुई समयावधि पर निर्भर करती है। यह अवधि जितनी ही अधिक होती है पुनर्प्राप्ति उतनी ही अधिक होती है। पुनर्प्राप्ति अपने आप स्वाभाविक रूप से होती है। चित्र 7.8 स्वतः पुनर्प्राप्ति की घटना को प्रस्तुत करता है।



चित्र 7.8 : सीखने के विभिन्न चरण।

सीखने का अंतरण

सीखने के अंतरण (Transfer of Learning) को प्रायः प्रशिक्षण का अंतरण या अंतरण प्रभाव कहा जाता है। यह *पुराने या पहले के सीखने का नए सीखने पर प्रभाव* को व्यक्त करता है। यदि पहले का सीखना नए सीखने में सहायक होता है तो अंतरण को धनात्मक कहा जाता है। यदि नया सीखने पुराने या पहले के सीखने के कारण खराब हो जाता है या और कठिन हो जाता है तो इसे ऋणात्मक अंतरण कहते हैं। धनात्मक या ऋणात्मक प्रभाव का अभाव शून्य अंतरण को व्यक्त करता है। अंतरण-प्रभाव के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक एक विशेष प्रायोगिक अभिकल्प का उपयोग करते हैं। यह अभिकल्प तालिका 7.8 में प्रस्तुत है।

मान लीजिए, आप यह जानना चाहते हैं कि क्या अंग्रेजी का सीखना फ्रांसीसी भाषा के सीखने को प्रभावित करता है? इसका अध्ययन करने के लिए आप प्रतिभागियों का एक प्रतिदर्श चुनते हैं और उसे यादृच्छिक रूप से दो समूहों में बाँट देते हैं। एक समूह का उपयोग प्रायोगिक दशा के लिए और दूसरा समूह नियंत्रित दशा के लिए तय किया जाता है। प्रायोगिक समूह के व्यक्ति एक वर्ष तक अंग्रेजी भाषा सीखते हैं और उनका परीक्षण कर लिया जाता है कि एक वर्ष में उनको अंग्रेजी का कितना ज्ञान हुआ। दूसरे वर्ष में अब वे फ्रांसीसी भाषा सीखना प्रारंभ करते हैं और एक वर्ष बीतने पर उनके फ्रांसीसी के ज्ञान का परीक्षण कर लिया जाता है। नियंत्रित समूह के प्रतिभागी पहले वर्ष में अंग्रेजी सीखने की बजाय अपना दैनिक कार्य ही करते हैं और एक वर्ष के बाद वे भी फ्रांसीसी सीखना प्रारंभ कर देते हैं। एक वर्ष तक फ्रांसीसी सीखने के बाद इनके भी फ्रांसीसी के ज्ञान की उसी तरह परीक्षा ली जाती है। इसके बाद दोनों समूहों के फ्रांसीसी की परीक्षा में प्राप्त अंकों की तुलना की जाती है। यदि प्रायोगिक समूह के अंक नियंत्रित समूह के अंकों से अधिक हैं तो इसका अर्थ होगा कि अंग्रेजी सीखने का फ्रांसीसी सीखने पर धनात्मक अंतरण प्रभाव पड़ा। परंतु यदि प्रायोगिक समूह के अंक नियंत्रित समूह से कम आते हैं तो इसका अर्थ होगा कि अंग्रेजी सीखने का फ्रांसीसी सीखने पर ऋणात्मक अंतरण प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार यदि दोनों समूहों के अंकों में सार्थक अंतर न मिले तो यह कहा जायेगा कि अंग्रेजी सीखने का फ्रांसीसी सीखने पर अंतरण प्रभाव की मात्रा शून्य है।

तालिका 7.8 : सीखने के अंतरण प्रभावों के अध्ययन में प्रयुक्त अभिकल्प

प्रतिभागियों के समूह	प्रथम चरण	द्वितीय चरण
प्रायोगिक	कार्य अ को सीखना	कार्य ब को सीखना
नियंत्रित	सीखने का कार्य न करके विश्राम	कार्य ब को सीखना

सीखने का अंतरण विशिष्ट अथवा अविशिष्ट हो सकता है। अविशिष्ट अंतरण सदा ही धनात्मक प्रकार का होता है जबकि विशिष्ट अंतरण धनात्मक अथवा ऋणात्मक अथवा शून्य हो सकता है। आइए, अविशिष्ट तथा विशिष्ट अंतरण की प्रकृति को समझने का प्रयास करें।

अविशिष्ट अंतरण : अविशिष्ट अंतरण (Generic Transfer) को ठीक से परिभाषित करना तथा प्रायोगिक रूप से प्रदर्शित करना थोड़ा कठिन है। हम जानते हैं कि किसी एक कार्य का सीखा जाना उसके बाद सीखे जाने वाले कार्य को सीखना थोड़ा आसान बना देता है भले ही दोनों कार्य एक दूसरे से भिन्न हों। किसी एक संकृत्य को सीखने की क्रिया व्यक्ति में एक किस्म की तैयारी या तत्परता पैदा कर देती है। अविशिष्ट अंतरण के अंतर्गत **तत्परता** (Warm-up) एक विशेष कारक है जो अंतरण को प्रभावित करता है। *तत्परता का अर्थ एक विशेष प्रकार का शारीरिक तथा मानसिक विन्यास है जो किसी कार्य के अनुभव से उत्पन्न होता है और व्यक्ति को किसी कार्य विशेष पर निष्पादन करने हेतु तैयारी की दशा में ले आता है।* कोई खिलाड़ी मैदान में खेले जाने के पहले कुछ समय तक हल्का व्यायाम करके शरीर को खेलने के लिए तैयार करता है। इस तैयारी से उसका शरीर खेलने के लिए उपयुक्त हो जाता है। तत्परता (Warm-up) इसी तैयारी को कहा जाता है। लक्ष्य पर ट्रिगर दबाने के पहले तर्जनी अँगुली

को लचीला बनाना और किसी हरी वस्तु पर आंखें केंद्रित करना भी इसका उदाहरण है। आपने क्रिकेट के खिलाड़ियों की पिच पर जाकर विकेट के नजदीक जाकर अपना स्थान ग्रहण करते हुए देखा होगा। ये खिलाड़ी एक पैर से कूदते हुए चलते हैं फिर दूसरे पैर से कूदते हैं। वे अपने दोनों हाथों को घुमाते हैं।

इसी तरह इम्तिहान में अपने उत्तर लिखते समय आपने पाया होगा कि शुरू में लिखने की गति धीमी रहती है और बैठने का तरीका लिखने के लिए बहुत प्रभावी नहीं रहता है। दो तीन पृष्ठ लिखने के बाद आप पूरी तरह तैयार हो जाते हैं। आपकी लिखने की गति तेज हो जाती है शरीर मेज के साथ समायोजित हो जाता है, जो तब तक चलता रहता है जब तक कि अंतिम उत्तर आप नहीं लिख लेते हैं। तत्परता के सीखने तक एक सत्र में रहती है और उसी में व्यक्ति दो या अधिक कार्य सीख सकता है।

विशिष्ट अंतरण : किसी कार्य को सीखने में व्यक्ति उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की शृंखला को सीखता है। किसी भी कार्य में विभेदनीय उद्दीपकों की एक कड़ी होती है और व्यक्ति भिन्न-भिन्न उद्दीपकों के प्रति भिन्न-भिन्न विशिष्ट अनुक्रियाएँ करना सीखता है। यदि पहले सीखे जाने वाले कार्य 'अ' का अंतरण प्रभाव बाद में सीखे जाने वाले कार्य 'ब' पर पड़े तो इसे विशिष्ट अंतरण (Specific Transfer) कहते हैं। 'अ' कार्य का सीखना 'ब' कार्य के सीखने को सरल या अधिक कठिन या बिना किसी प्रभाव का सिद्ध हो सकता है। विशिष्ट अंतरण प्रभाव पहले और दूसरे कार्यों के बीच समानता अथवा भिन्नता की मात्रा पर निर्भर करता है। दोनों कार्यों के केवल उद्दीपकों या अनुक्रियाओं अथवा दोनों में ही विभिन्न मात्रा में समानता या भिन्नता पाई जा सकती है। उद्दीपक भिन्न हो सकते हैं पर अनुक्रियाएँ वहीं हो सकती हैं या उद्दीपक अनुक्रिया दोनों भिन्न हो सकते हैं। तालिका 7.9 में दोनों कार्यों के बीच प्राप्त समानता को प्रदर्शित किया गया है।

विभिन्न प्रायोगिक अध्ययनों से विशिष्ट अंतरण के संबंध में तालिका 7.9 की दशाओं के प्रसंग में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं–

1. पहली दशा में जब दोनों कार्यों में उद्दीपक तथा अनुक्रिया एक दूसरे से भिन्न हैं तो किसी विशिष्ट अंतरण प्रभाव की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। हालाँकि कार्य 'अ' को सीखने से उत्पन्न अविशिष्ट अंतरण के कारण थोड़ी मात्रा में धनात्मक अंतरण दिखाई पड़ सकता है।
2. दूसरी दशा में जहाँ दोनों कार्यों के उद्दीपक समान हैं और अनुक्रियाएँ भी समान ही हैं, अत्यधिक मात्रा में धनात्मक अंतरण प्राप्त होता है।
3. तीसरी दशा में जब दोनों कार्यों के उद्दीपक तो समान हैं परंतु अनुक्रियाएँ अलग-अलग हैं, थोड़ी मात्रा में धनात्मक अंतरण मिलता है।
4. चौथी दशा में दोनों कार्यों के उद्दीपक भिन्न-भिन्न हैं परंतु अनुक्रियाएँ एकसमान हैं। इस दशा में अनुक्रियाओं के साथ नए साहचर्य सीखने होंगे। इस दशा में धनात्मक अंतरण प्रभाव प्राप्त होता है।
5. पांचवीं दशा में उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ तो दोनों ही कार्यों में समान हैं परंतु युग्मों की रचना बदल जाने के कारण व्यक्ति को पुराने साहचर्यों के स्थान पर नए साहचर्य सीखने पड़ते हैं। कार्यों 'अ' में सीखे गए साहचर्य नए साहचर्यों को सीखने में व्यवधान डालते हैं। फलस्वरूप इस दशा में उच्च ऋणात्मक अंतरण प्राप्त होता है। इस तरह के व्यवधान का स्मृति के अध्याय में वर्णन किया गया है।

तालिका 7.9 : समानता असमानता के आधार पर आरंभिक तथा अंतरण कार्यों के सीखने का संबंध

क्रम सं.	आरंभिक कार्य	अंतरण कार्य	टिप्पणी
1.	SA – RA	SC - RD	उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ दोनों ही भिन्न हैं।
2.	SA – RA	SA – RA	उद्दीपक वही हैं और अनुक्रियाएँ समान हैं।
3.	SA – RA	SA – RD	उद्दीपक समान हैं परंतु अनुक्रियाएँ भिन्न हैं।
4.	SA – RA	SC – RA	उद्दीपक भिन्न हैं परंतु अनुक्रियाएँ समान हैं।
5.	SA – RA	SA – RA	उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ वही हैं पर साहचर्य बदल गया है।

नोट : S=उद्दीपक, R=अनुक्रिया, A तथा D=सीखने के कार्य।

आपने अब तक पढ़ा

दोनों तरह के अनुबंधन में अनुबंधित अनुक्रियाएँ विलोप प्रदर्शित करती हैं। काफी समय तक CS की प्रस्तुति CR को पैदा करती है तथा आपरैंट अनुक्रिया होती रहती है, यदि प्रबलन न मिल रहा हो तो भी। इसका अर्थ है कि CR विलोप का प्रतिरोध कर रहा है। विलोप का प्रतिरोध घटने लगता है यदि अर्जन के प्रयास सीखने की ऊपरी सीमा (Asymptotic level) के बाद चालू रहते हों और UCS या पुरस्कार की गुणवत्ता बढ़ा दी जाए। यदि प्रशिक्षण के दौरान UCS और प्रबलन के देने में विलंब हो तो विलोप का प्रतिरोध बढ़ जाता है।

CR उद्दीपक सामान्यीकरण तथा विभेदन प्रदर्शित करता है। यदि मूल CS के समान नया उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है तो प्राणी CR उत्पन्न करता है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि एक सीमा तक समानता बढ़ने के बाद CR नहीं होता है। विभेदन प्रशिक्षण सामान्यीकरण को घटा देता है।

CR के विलुप्त होने के बाद यदि कुछ समय बीत जाता है तो CR स्वतः होने लगता है।

एक कार्य का सीखना दूसरे कार्य के सीखने को प्रभावित करता है। इसे सीखने का अंतरण कहते हैं। अंतरण सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार का होता है। सामान्य अंतरण में एक कार्य का सीखना दूसरे कार्य के सीखने में सहायक होता है परंतु विशिष्ट अंतरण धनात्मक, शून्य या ऋणात्मक हो सकता है।

आपने कितना सीखा

1. *सामान्यीकरण में प्राणी पहले जिन उद्दीपकों के साथ अनुबंधित हो चुका है उससे मिलते-जुलते उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करता है।* *(सही / गलत)*
2. *प्रबलन को रोक लेने से विलोप पैदा होता है।* *(सही / गलत)*
3. *नए उद्दीपकों के प्रति एक जैसी अनुक्रिया करना धनात्मक अंतरण है।* *(सही / गलत)*
4. *ऋणात्मक प्रबलक अनुक्रिया के बल को कम करते हैं।* *(सही / गलत)*
5. *भारत में कार चलाना सीखने के बाद एक आदमी अमेरिका में कार चलाना सीखता है। भारत में स्टीयरिंग ह्वील दाईं ओर तथा अमेरिका में बाईं ओर होता है। इस स्थिति में ऋणात्मक अंतरण होगा।* *(सही / गलत)*
6. *अंतरण धनात्मक होता है यदि पहले का सीखना वर्तमान सीखने को आसान बनाता है।* *(सही / गलत)*
7. *तत्परता प्रभाव सीखने के एक सत्र तक चलता है।* *(सही / गलत)*

उत्तर – 1. सही, 2. सही, 3. सही, 4. गलत, 5. सही, 6. सही, 7. सही।

सीखने के कुछ सामान्य निर्धारक

इस अध्याय के पिछले खंडों में हमने सीखने के विशिष्ट निर्धारकों का भी यथास्थान वर्णन प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए, पावलवी अनुबंधन में अनुबंधित तथा अनानुबंधित उद्दीपकों का सतत युग्मीकरण, क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रबलित प्रयासों की संख्या, प्रबलन की मात्रा, प्रबलन प्राप्त होने में लगने वाला विलंब, प्रबलन अनुसूची आदि प्रेक्षण द्वारा सीखने में मॉडल की संस्थिति तथा आकर्षण की क्षमता, वाचिक सीखने में सीखने की विधि तथा संप्रत्यय के सीखने में घटनाओं और उद्दीपकों के प्रात्यक्षिक लक्षण तथा नियम आदि निर्धारकों का विवरण दिया गया है। इस खंड में अब हम सीखने के कुछ सामान्य निर्धारकों का वर्णन प्रस्तुत करेंगे। यह विवेचन व्यापक न होकर कुछ प्रमुख कारकों पर केंद्रित होगा जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

निरंतर बनाम आंशिक प्रबलन

सीखने के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता प्रबलन प्रदान करने की अनेक अनुसूचियों में से किसी एक अनुसूची को अपना सकता है। इस संबंध में दो प्रकार की प्रबलन अनुसूचियों का विशेष महत्त्व है – सतत तथा आंशिक। सतत अनुसूची के आधार पर प्रबलन देने में प्राणी जब भी नैमित्तिक अनुक्रिया करता है प्रयोगकर्ता उसे प्रबलन देता है अर्थात् उसकी प्रत्येक नैमित्तिक अनुक्रिया प्रबलित की जाती है। इस प्रबलन अनुसूची का उपयोग करने पर अनुक्रिया की दर बहुत अधिक होती है परंतु जब प्रबलन देना पूर्णतः बंद कर दिया जाता है तो अनुक्रिया की दर बहुत तेजी से घट भी जाती है अर्थात् अनुक्रिया का विलोप शीघ्र होता है। दूसरी ओर आंशिक प्रबलन अनुसूची में प्राणी की कुछ नैमित्तिक अनुक्रियाओं को प्रबलित किया जाता है और कुछ को नहीं इसीलिए इसे आंशिक प्रबलन अनुसूची कहा जाता है। आंशिक अनुसूची में भी नैमित्तिक अनुक्रियाओं को

कब-कब प्रबलित किया जाएगा और कब-कब नहीं, इसके निर्धारण की अनेक विधियाँ हैं। आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा प्रबलन देने पर भी अनुक्रिया की दर अत्यंत अधिक होती है विशेष रूप से उस समय जब **अनुपात अनुसूची** (Ratio schedule) का उपयोग किया जाता है। अनुपात अनुसूची में प्रबलित तथा अप्रबलित नैमित्तिक अनुक्रियाओं का अनुपात तय कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, यह तय किया जा सकता है कि प्राणी की दस नैमित्तिक अनुक्रियाओं में से दो को प्रबलित किया जाएगा और आठ को नहीं। इस सूची के लागू करने पर प्राणी प्रबलन प्राप्त करने के लिए अनेक बार नैमित्तिक अनुक्रियाएँ करता रहता है यद्यपि उसे प्रबलन नहीं मिलता है। उसे यह जान पाना कठिन होता है कि प्रबलन देना बंद कर दिया गया है या प्रबलन देने में विलंब किया जा रहा है। निरंतर प्रबलन अनुसूची में यदि एक बार भी प्रबलन न मिले तो यह पता चल जाता है कि अब प्रबलन देना बंद कर दिया गया है। प्रबलन अनुसूची का प्रभाव विलोप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह देखा गया है कि आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा सिखाई गई अनुक्रिया का विलोप अत्यंत कठिनाई से होता है, क्योंकि प्राणी को सीखने की दशा में ही बिना प्रबलन पाए अनुक्रिया करने का अभ्यास रहता है। इससे प्रबलन देना पूर्णतः बंद कर देने के बाद भी प्राणी अनुक्रियाएँ करना बंद नहीं करता। आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा सीखी गई अनुक्रियाओं के उच्च विलोप प्रतिरोध को **आंशिक प्रबलन प्रभाव** (Partial Reinforcement Effect) कहते हैं।

अभिप्रेरणा

जीवन-रक्षा की आवश्यकता सभी जीवित प्राणियों में होती है परंतु मनुष्यों में जीवन-रक्षा के साथ-साथ विकास (Growth) की भी आवश्यकता होती है। अभिप्रेरणा से हमारा तात्पर्य प्राणी की एक ऐसी मानसिक अवस्था से है जो प्राणी को उसकी आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उद्वेलित करती है। दूसरे शब्दों में, अभिप्रेरणा प्राणी को उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए तथा आवश्यक व्यवहारों के संपादन के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करती है। ऐसे अभिप्रेरित व्यवहार तब तक होते रहते हैं जब तक कि उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाए अर्थात् आवश्यकता की पूर्ति न हो जाए। सीखने के लिए प्राणी का अभिप्रेरित होना अनिवार्य है। जब घर में माँ नहीं होती तो बच्चे रसोई में घुसकर खाने-पीने की चीज़ें क्यों खोजते हैं ? चूँकि मिठाई खाने की उनकी वर्तमान में आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु वे उन बर्तनों को टटोलते हैं जिनमें मिठाई रखी जाती है। खोजने की इस क्रिया से बच्चे मिठाई के बर्तन को पाना सीख लेते हैं। जब किसी बाक्स में किसी भूखे चूहे को बंद कर दिया जाता है तो भोजन की आवश्यकता के कारण वह बाक्स में चारों ओर घूम-घूमकर भोजन की तलाश करता है। इसी कार्य को करने में संयोग से उससे बाक्स की दीवार में बना एक लीवर दब जाता है और बाक्स में भोजन का एक टुकड़ा गिर जाता है। भूखा चूहा उसे खा लेता है। बार-बार यही क्रिया दुहराते रहने से चूहा यह सीख जाता है कि लीवर दबाने से भोजन मिलता है। इसके बाद वह जैसे ही बाक्स में रखा जाता है वह तुरंत लीवर दबा कर खाना प्राप्त कर लेता है। यहाँ सीखने की क्रिया तभी संभव है, जब चूहे में भोजन प्राप्त करने की अभिप्रेरणा हो।

क्या आपने कभी यह सोचा है कि 11वीं कक्षा में मनोविज्ञान तथा अन्य विषयों का अध्ययन क्यों कर रहे हैं ? आप ऐसा वार्षिक परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने के लिए कर रहे हैं। आप में अभिप्रेरणा जितनी ही अधिक होगी, आप उतना ही विभिन्न विषयों को सीखने में परिश्रम करेंगे। यह स्पष्ट है कि अभिप्रेरणा के बिना सीखना संभव नहीं है। आप में सीखने की अभिप्रेरणा के उत्पन्न होने के दो स्रोत हैं। कभी तो आप कोई कार्य इसलिए सीखते हैं, क्योंकि उस कार्य का करना अपने आप में आपको आनंद प्रदान करता है या इससे किसी अन्य उद्देश्य की प्राप्ति होती है। आपने पूरे वर्ष ज्ञान तथा कौशलों के बारे में सीखा और यह ज्ञान आपको बाद में नौकरी दे सकता है। इन दो तरह की प्रेरणाओं को आंतरिक अभिप्रेरणा और बाह्य अभिप्रेरणा कहा जाता है।

सीखने की तत्परता

विभिन्न प्रजाति के प्राणी अपनी सांवेदिक क्षमताओं तथा अनुक्रिया करने की क्षमता में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अनुबंधन के समय जिस क्रिया द्वारा उद्दीपक-उद्दीपक (S – S) अथवा उद्दीपक-अनुक्रिया (S – R) साहचर्य निर्मित होते हैं वह भी भिन्न-भिन्न प्रजातियों (Species) में भिन्न-भिन्न होती है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक प्रजाति के प्राणियों में सीखने की क्षमता उनकी जैविक क्षमता के कारण परिसीमित हो जाती है। हम जैसे-जैसे प्रजातिगत विकासक्रम में नीचे की ओर जाते हैं, पाते हैं कि प्राणियों में सीखने की क्षमता

उनकी जैविक सीमाओं के कारण कम होती जाती है। कोई प्राणी सीखते समय किस प्रकार के उद्दीपक-उद्दीपक (S - S) या उद्दीपक-अनुक्रिया (S - R) साहचर्य निर्मित कर सकेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे प्रकृति द्वारा किस सीमा तक आनुवंशिक क्षमता प्राप्त हुई है अर्थात् वह सीखने के लिए कितना तत्पर है। सीखते समय कुछ विशेष प्रकार के साहचर्यों का निर्माण मनुष्यों तथा वनमानुषों के लिए तो आसान है परंतु बिल्लियों तथा चूहों के लिए वैसे साहचर्यों का सीखना अत्यंत कठिन होता है और कभी-कभी तो असंभव होता है। इसका अर्थ यह है कि कोई प्राणी मात्र उन्हीं साहचर्यों को सीख सकता है, जिसके लिए वह जैविक तथा आनुवंशिक रूप से सक्षम या तत्पर है।

सीखने की तत्परता को एक ऐसी सतत विमा या आयाम के रूप में समझा जा सकता है जिसके एक छोर पर वे साहचर्य या अनुक्रियाएँ रखी जा सकती हैं जिनको सीखना किसी प्रजाति के प्राणियों के लिए सरल है तथा दूसरे छोर पर वे साहचर्य या अनुक्रियाएँ रखी जा सकती हैं, जिनको सीखने के लिए किसी प्रजाति के प्राणियों में तत्परता बिलकुल भी नहीं है। अतः वे उन्हें नहीं सीख सकते। इस विमा के दोनों छोरों के बीच के विभिन्न स्थानों पर वे कार्य या साहचर्य रखे जा सकते हैं, जिनको सीखने के लिए प्राणी न तत्पर है न उसमें तत्परता का अभाव है। वे ऐसे कार्यों को सीख तो सकते हैं परंतु कठिनाई और सतत प्रयास के बाद।

सीखने की निर्योग्यता

आपने अवश्य सुना होगा, पढ़ा होगा या स्वयं देखा होगा कि शिक्षण संस्थाओं में हजारों बच्चे पढ़ने के लिए प्रवेश तो ले लेते हैं परंतु उनमें से कुछ बच्चों के लिए शिक्षण प्रक्रिया की मांग को पूरा कर पाना बहुत कठिन होता है और परिणामस्वरूप वे स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। पढ़ाई को बीच में छोड़ देने के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे – सांवेदिक अक्षमता, बौद्धिक दुर्बलता, सामाजिक एवं सांवेगिक व्यतिक्रम, परिवार की गरीबी तथा अन्य परिवेशगत कारक। इन कारकों के अतिरिक्त सीखने की निर्योग्यता (Learning Disability) भी एक ऐसा कारक है, जो पढ़ाई को जारी रखने में व्यवधान डालता है। इसके कारण विद्यालय में सीखना, ज्ञान तथा विभिन्न कौशलों का अर्जन करना बहुत कठिन हो जाता है। सीखने में निर्योग्य बच्चे परीक्षा उत्तीर्ण करके अगली कक्षा में नहीं जा पाते और पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं।

सीखने की निर्योग्यता एक सामान्य-सा शब्द है, जिसका अर्थ विभिन्न प्रकार की उन बाधाओं से है, जिनके कारण किसी व्यक्ति में सीखने, पढ़ने, लिखने, बोलने, तर्क करने तथा गणित के प्रश्न हल करने आदि में बड़ी कठिनाई होती है। इन बाधाओं के स्रोत बच्चे में जन्मजात रूप से अंतर्निहित होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में निहित किसी प्रकार्यात्मक असामान्यता के कारण सीखने की निर्योग्यता पाई जाती है। सीखने की निर्योग्यता के साथ-साथ किसी बच्चे में अन्य लक्षण; जैसे – शारीरिक विकलांगता, सांवेदिक अक्षमता, बौद्धिक दुर्बलता भी उपस्थित हो सकते हैं क्योंकि इन लक्षणों के कारण सीखने की निर्योग्यता उत्पन्न नहीं होती। सीखने की निर्योग्यता बच्चों में पाई जाने वाली एक पृथक् प्रकार की अक्षमता है, जो उन बच्चों में भी पाई जा सकती है, जो सामान्य अथवा श्रेष्ठ बुद्धि वाले, स्वस्थ्य एवं सामान्य सांवेदिक तथा गत्यात्मक क्षमता वाले हैं तथा जिनको सीखने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। यदि सीखने की निर्योग्यता का समुचित प्रबंध नहीं किया जाए तो यह जीवन पर्यंत बनी रहती है और व्यक्ति के आत्म-सम्मान, नौकरी, सामाजिक संबंधों तथा दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं को प्रभावित करती है।

सीखने की निर्योग्यता के लक्षण : सीखने की निर्योग्यता के अनेक लक्षण हैं। सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों में ये लक्षण भिन्न-भिन्न संयोजनों में पाए जाते हैं। साथ ही इन लक्षणों का पाया जाना बच्चों की बुद्धि, अभिप्रेरणा तथा सीखने के लिए किए गए परिश्रम से प्रभावित नहीं होता। सीखने की निर्योग्यता के प्रमुख लक्षण निम्नलिखित हैं :

1. अक्षरों, शब्दों तथा वाक्यों को लिखने में कठिनाई। इन बच्चों में लिखी हुई सामग्री को बोलकर पढ़ने में कठिनाई पाई जाती है। जिन बच्चों को कम सुनाई पड़ता है उन्हें बोलने तथा वाक्य निर्माण करने में गंभीर समस्या का सामना करना होता है। ऐसे बच्चे सीखने के लिए योजना बनाने या इसके लिए कोई तरकीब खोजने में अन्य बच्चों की अपेक्षा बहुत भिन्न होते हैं।
2. सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों में अवधान से जुड़ी असामान्यताएँ होती हैं। वे किसी एक विषय पर देर तक ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते तथा उनका ध्यान शीघ्र ही टूट जाता है। अवधान की इस कमी के कारण कभी-कभी उनमें अतिसक्रियता (Hyperactivity) उत्पन्न

हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप वे हमेशा गतिशील रहते हैं, कुछ न कुछ करते रहते हैं तथा विभिन्न सामानों को इधर से उधर हटाते रहते हैं। कुछ न कुछ करते रहने के लिए वे हमेशा उद्वेलित रहते हैं।

3. सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों में स्थान व समय की समझदारी की कमी रहती है। ये नई जगहों को शीघ्र नहीं पहचान पाते और अक्सर खो जाते हैं। कालबोध की कमी के कारण ये अपने काम के स्थान पर या तो समय से बहुत पहले या फिर बहुत विलंब से पहुँचते हैं। इसी तरह इनमें दिशाबोध की भी कमी होती है। ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि में भेद करते हुए कार्य करने में इनसे अक्सर गलतियाँ होती हैं।

4. सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों का गति-संयोजन तथा हस्त-कौशल अपेक्षाकृत निम्न कोटि का होता है। इनकी गतियों में दक्षता नहीं होती, शारीरिक संतुलन ठीक से न कर पाने के कारण ये अक्सर गिर जाते हैं। साइकिल चलाना, पेंसिल को नुकीला करना या ऐसे समस्त कार्य जिनमें हस्त-कौशल की आवश्यकता होती है, ये बच्चे अच्छी तरह नहीं सीख पाते।

5. यदि इन बच्चों को कोई काम करने को कहा जाए तो ये निर्देश को अच्छी तरह से समझ नहीं पाते। सामाजिक संबंधों का मूल्यांकन भी ये ठीक से नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए, कक्षा में ये नहीं जान पाते कि कौन सा लड़का इनका अधिक मित्र है और तटस्थ कौन है। ये शरीर के हाव-भाव की भाषा को समझने में भी अक्षम होते हैं।

6. सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों में प्रात्यक्षिक असामान्यताएँ भी होती हैं। दृष्टि, श्रवण, स्पर्श तथा गति से जुड़े संकेतों का प्रत्यक्षीकरण करने में इनसे अधिक त्रुटियाँ होती हैं। ये बच्चे लिखे हुए 'ट' तथा 'ठ', 'प' तथा 'फ' में विभेद नहीं कर पाते। दरवाजे की घंटी तथा फोन की घंटी में विभेद करना सीखने में इनको कठिनाई होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इनके सांवेदिक अंगों में विकृति होती है। ये इन अंगों की सहायता से अच्छा निष्पादन नहीं कर पाते।

7. सीखने की निर्योग्यता वाले अधिकांश बच्चों में डिस्लेक्सिया के लक्षण पाए जाते हैं अर्थात् मिलते-जुलते शब्दों के अर्थ में ये भेद नहीं सीख पाते। जैसे – इनके लिए, कमर तथा रकम में, सपूत और कपूत में अंतर करना बहुत कठिन होता है। शब्दों को वाक्यों के रूप में संगठित करने में अपेक्षाकृत अक्षम होते हैं। इनकी पूरी जीवन शैली ही असंगठित होती है।

ऐसा सोचना गलत है कि सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों का इलाज नहीं हो सकता। यदि उचित प्रकार का शिक्षण इन्हें दिया जाए तो बहुत लाभ होता है और कक्षा में ये अन्य बच्चों की तरह हो सकते हैं। शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी शिक्षण विधियों का विकास किया है जिनसे सीखने की निर्योग्यता वाले बच्चों में पाए जाने वाले अनेक लक्षणों को दूर किया जा सकता है।

आपने अब तक पढ़ा

सीखने की क्रिया के कुछ सामान्य निर्धारक हैं, जो सभी प्रकार के सीखने पर अपना प्रभाव डालते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख निर्धारक निम्नलिखित हैं–

1. आंशिक प्रबलन सतत प्रबलन की तुलना में अधिक प्रभावशाली है।
2. सभी प्रकार के कार्यों को सीखने के लिए अभिप्रेरणा का होना अनिवार्य है। अभिप्रेरणा प्राणी को अनुक्रियाएँ करने के लिए ऊर्जावान बनाती है, उसे उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर प्रेरित करती है तथा उसे तब तक सक्रिय बनाए रखती है जब तक कि उद्देश्य की प्राप्ति न हो जाए।
3. भिन्न-भिन्न प्रजातियों के प्राणी भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुक्रियाओं को सीखने के लिए होते हैं। किसी अनुक्रिया को सीखने की तत्परता एक ऐसी विमा है, जिसके एक सिरे पर वे व्यवहार होते हैं, जिन्हें सीखने की अत्यधिक तत्परता रहती है, जबकि दूसरे सिरे पर वे व्यवहार होते हैं, जो बिलकुल भी नहीं सीखे जा सकते। मध्य में वे व्यवहार होते हैं, जिन्हें विशेष प्रयास और लगन से सीखा जा सकता है।

सीखने की निर्योग्यता एक विशेष प्रकार की बाधा है जिससे बच्चों में सीखने की योग्यता अत्यंत सीमित हो जाती है। ऐसे बच्चों का बौद्धिक स्तर, सांवेदिक प्रक्रियाएँ तथा शारीरिक क्षमताएँ सामान्य होती हैं। इन्हें पढ़ने तथा लिखने में स्थान तथा समय का बोध होने में गतियों को संयोजित रूप से संपादित करने में कठिनाई होती है। ये अतिसक्रिय भी होते हैं। इनमें से कुछ बच्चों में डिस्लेक्सिया पाया जाता है। सीखने की निर्योग्यता का उपचार संभव है।

आपने कितना सीखा

1. दो प्रकार की प्रबलन अनुसूचियाँ हैं : ________ तथा ________
2. आंशिक प्रबलन द्वारा अर्जित अनुक्रियाओं में ________ का अधिक प्रतिरोध होता है।
3. अभिप्रेरणा ________ तथा दैहिक दशा है।
4. सीखने की निर्योग्यता उन विकृतियों का समूह है जो ________, ________ तथा ________ के सीखने के अर्जन की कठिनाई में व्यक्त होती है।

उत्तर – 1. आंशिक, सतत, 2. विलोप, 3. मानसिक, 4. पढ़ना, लिखना, बोलना।

सीखने के सिद्धांतों का जीवन में अनुप्रयोग

मनुष्य-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समृद्ध करने में सीखने के सिद्धांत अत्यंत मूल्यवान हैं। वे सभी व्यवहार जो जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों को शांतिपूर्ण और आनंददायक बनाते हैं, सीखे हुए होते हैं। ये सभी व्यवहार मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होकर सीखे जाने चाहिए। जीवन के विभिन्न पक्षों में सुधार लाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने पावलवी तथा नैमित्तिक अनुबंधन, सामाजिक, वाचिक, संप्रत्यय कौशल आदि के सीखने के सिद्धांतों के आधार पर अनेक तकनीकों तथा विधियों का विकास किया है जो जीवन के विभिन्न पक्षों में सुधार ला सकती हैं। उदाहरणस्वरूप, हम व्यवहार के चार क्षेत्रों में सीखने के सिद्धांतों के अनुप्रयोग की चर्चा करेंगे। ये चार क्षेत्र हैं– **संगठनात्मक व्यवहार, असामान्य व्यवहार, बच्चों का पालन, तथा विद्यालय में सीखना।**

किसी भी संगठन में व्यक्तियों का कार्य से अनुपस्थित रहना, बार-बार बीमारी की छुट्टी लेना, अनुशासनहीनता तथा आवश्यक कौशलों के अभाव आदि से गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं। कुछ संगठनों ने अपने कर्मचारियों की उपस्थिति बढ़ाने के लिए एक रोचक तकनीक का उपयोग किया है। प्रत्येक तीन महीने बीतने पर ऐसे कर्मचारियों की सूची बना ली जाती है जो एक दिन भी अनुपस्थित नहीं हुए। लाटरी विधि से ऐसे कर्मचारियों में से पाँच प्रतिशत कर्मचारियों को प्रतिदिन काम पर आने के लिए आकर्षक पुरस्कार दिया जाता है। पाया गया है कि ऐसी तकनीक से उन संगठनों में अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति घटी है। इसी प्रकार जो कर्मचारी पूरे वर्ष में एक दिन भी बीमारी की छुट्टी नहीं लेते उनको भी पुरस्कृत किया जाता है। इस प्रकार से आंशिक अनुसूची के आधार पर पुरस्कृत करके कर्मचारियों के व्यवहार में परिवर्तन लाए जाते हैं। अनुशासनहीन कर्मचारियों को ऐसे प्रबंधकों के अधीन कर दिया जाता है जो स्वयं एक अनुशासित मॉडल की तरह कार्य करते हैं। इस प्रकार कर्मचारियों को प्रेक्षण द्वारा सीखने का अवसर दिया जाता है। ऐसे प्रबंधक के साथ-साथ कार्य करने के कारण कर्मचारियों के व्यवहार में परिवर्तन आता है।

सीखने के सिद्धांतों के आधार पर अनेक ऐसे मनोचिकित्सकीय उपचारों का विकास किया गया है जो समायोजन में कठिनाई पैदा करने वाली तथा सामाजिक अक्षमता पैदा करने वाली आदतों व व्यवहारों को सुधारने में सहायक होते हैं। इन विधियों में विलोप के सिद्धांतों का उपयोग किया गया है। असामान्य, अतार्किक भय तथा परिहार अनुक्रिया से ग्रस्त बच्चों तथा प्रौढ़ों के इस भय को दूर करने के लिए अत्यन्त तीव्र तथा प्रचुर मात्रा के उद्दीपकों वाली चिकित्सा का विकास किया गया है। चिकित्सा की प्रक्रिया एक प्रशिक्षक की भांति होती है। चिंता तथा भय की स्नायुविकृति से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा क्रमिक **निसंवेदीकरण** (Systematic Desensitisation) द्वारा की जाती है। स्वास्थ्य के लिए हानिकारक आदतों को छुड़ाने के लिए **विरुचि चिकित्सा** (Aversion Therapy) का उपयोग किया जाता है। विरुचि चिकित्सा में चिकित्सक कुछ ऐसी व्यवस्था करता है कि व्यक्ति जब अपनी आदत के अनुसार व्यवहार करता है तो उसका परिणाम पीड़ादायक हो जाता है। इसी पीड़ा से बचने के लिए व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी आदत छोड़ देता है। व्यवहार को अच्छा स्वरूप प्रदान करने तथा क्षमताओं को विकास करने के लिए मॉडल का उपयोग तथा प्रबलन के व्यवस्थित अनुप्रयोग की व्यवस्था की जाती है। जो व्यक्ति शर्मीले स्वभाव के हैं और दूसरों से सामाजिक अंतर्क्रिया करने में जिनको कठिनाई होती है, उन्हें **दृढ़ता का प्रशिक्षण** (Assertiveness Training) दिया जाता है। यह प्रशिक्षण भी सीखने के सिद्धांत पर आधारित है। ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जिनको यदि थोड़ा-सा भी कोई उकसा दे तो उनमें श्वास गति बढ़ जाना, भूख का समाप्त हो जाना, पसीना आना, रक्तचाप बढ़ जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रोगियों को **जैविक-प्रतिपूर्ति**

(Biofeedback) चिकित्सा दी जाती है। यह चिकित्सा पावलवी तथा नैमित्तिक अनुबंधन के सिद्धांतों पर आधारित है।

विद्यालयों में शिक्षण प्रदान करने में भी सीखने के सिद्धांतों का बहुतायत से प्रयोग होता है। शैक्षिक कार्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् उन्हें विभिन्न प्रकार के सीखने– उद्दीपक-उद्दीपक, उद्दीपक-अनुक्रिया, शाब्दिक, प्रेक्षण, कौशल आदि में विभक्त कर दिया जाता है। विद्यार्थियों को बताया जाता है कि उन्हें क्या सीखना है और उन्हें अभ्यास करने का अवसर दिया जाता है। उनसे सूचनाओं के संकलन तथा अर्जन, अर्थ सीखने तथा सही अनुक्रिया को सीखने में सक्रिय सहभागिता कराई जाती है। अध्यापक एक मॉडल की भांति आचरण करता है ताकि विद्यार्थी उसका अनुकरण कर सके, उनमें उचित सामाजिक व्यवहारों तथा आदतों का विकास हो सके। विद्यार्थियों को नियमित रूप से गृहकार्य दिए जाते हैं ताकि उन्हें अभ्यास का अवसर मिले। कौशल के शिक्षण में संकृत्य को उद्दीपक-अनुक्रिया की अलग-अलग इकाइयों की एक श्रृंखला में क्रमबद्ध कर लिया जाता है और विद्यार्थियों को भिन्न-भिन्न इकाइयों को संपादित करने का अभ्यास कराया जाता है।

सीखने के सिद्धांतों का सबसे अच्छा उपयोग बच्चों के पालन-पोषण में हो सकता है परंतु इसकी सफलता इस बात पर निर्भर है कि माता-पिता सीखने के सिद्धांतों से कितना परिचित हैं। पावलवी अनुबंधन का उपयोग करके बच्चों को खतरे तथा सुरक्षा के विभिन्न संकेतों को सिखाया जाता है। नैमित्तिक अनुबंधन के सिद्धांतों का उपयोग करके बच्चों के व्यवहारों को आसानी से वांछित रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। पुरस्कार के उचित उपयोग से बच्चों में आलस्य छोड़ने और अध्यवसायी सीखने वाले बच्चे के रूप में ढाला जा सकता है। परिवार में माता-पिता स्वयं एक मॉडल होते हैं और बच्चे उनकी अनुकृति करते हैं। इस प्रकार, माता-पिता बच्चों को सामाजिक व्यवहारों में दक्ष, सांवेगिक रूप से परिपक्व तथा कर्तव्यपरायण बनाते हैं। सच पूछा जाए तो सीखने के सिद्धांतों का उपयोग करते हुए माता-पिता अपने बच्चों में उत्तम व्यक्तित्व के विकास की आधारशिला रख सकते हैं।

प्रमुख तकनीकी शब्द

वर्ग गुच्छन, अनुबंधन, अनुबंधित उद्दीपक, अनानुबंधित उद्दीपक, अनानुबंधित अनुक्रिया, अनुबंधित अनुक्रिया, डिस्लेक्सिया, विलोप, मुक्त पुनःस्मरण, सामान्यीकरण प्रवणता, विभेदन, उच्च क्रियाशीलता, सिंड्रोम, आकस्मिक सीखना, सीखना, सीखने की निर्योग्यता, अर्जित असहायता, क्रिया प्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन, पुरस्कार, प्रबलन, उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्य सीखना, क्रमिक सीखना, स्वतः पुनर्प्राप्ति, अंतरण, वाचिक सीखना।

सारांश

- *संसार के सभी प्राणियों की अपेक्षा सीखने के कारण अपने व्यवहारों में परिवर्तन करने की क्षमता मनुष्यों में सर्वाधिक मात्रा में विद्यमान है। सीखने का तात्पर्य अनुभव के आधार पर व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में उत्पन्न होने वाले परिवर्तन से है। सीखने की क्रिया निष्पादन से भिन्न है क्योंकि सीखने की क्रिया घटित हुई इसका मात्र अनुमान लगाया जा सकता है जबकि निष्पादन के समय अनुक्रिया, व्यवहार या क्रिया का प्रत्यक्ष प्रेक्षण किया जा सकता है।*
- *किसी उद्दीपक के प्रति की जाने वाली किसी विशेष अनुक्रिया के बार-बार किए जाने के परिणामस्वरूप व्यवहार में जो अस्थायी परिवर्तन होता है, उसे आदत कहते हैं।*
- *प्राचीन अनुबंधन, क्रियाप्रसूत अनुबंधन, प्रेक्षण द्वारा सीखना, शाब्दिक सामग्री का सीखना, संप्रत्यय का सीखना तथा कौशलों का सीखना आदि सीखने के प्रमुख प्रकार हैं।*

- कुत्तों की पाचन क्रिया का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम पावलव ने प्राचीन अनुबंधन द्वारा सीखने का अध्ययन किया था। इस अनुबंधन द्वारा सीखने में प्राणी दो उद्दीपकों (CS-UCS) के मध्य साहचर्य को सीखता है। इसमें एक तटस्थ उद्दीपक एक अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) के आने का पूर्वसंकेत बन जाता है। अनुबंधित उद्दीपक (CS) के प्रस्तुत होते ही वह अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) के आने की प्रत्याशा में अनुबंधित अनुक्रिया (CR) करने लगता है।
- अनुबंधित तथा अनानुबंधित (CS-UCS) उद्दीपकों का युग्मीकरण करते समय उनके मध्य की अवधि को परिवर्तित करने से प्राचीन अनुबंधन के कई भेद–समकालिक, विलंबित, चिह्न तथा पश्चगामी–उत्पन्न हो जाते हैं। अनानुबंधित उद्दीपक एषणात्मक अथवा विकर्षणात्मक हो सकता है। एषणात्मक होने पर प्राणी उसे प्राप्त करने की तथा विकर्षणात्मक होने पर उससे बचने अथवा परिहार करने की अनुक्रिया करता है। अनानुबंधित उद्दीपक की तीव्रता जितनी ही अधिक होती है उतने ही कम प्रयासों में अनुबंधन स्थापित हो जाता है।
- सर्वप्रथम स्किनर ने क्रिया प्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन का विस्तृत अध्ययन किया था। किसी प्राणी द्वारा किसी प्रबलन को प्राप्त करने हेतु ऐच्छिक रूप से की जाने वाली अनुक्रिया ही क्रिया प्रसूत या नैमित्तिक अनुक्रिया कही जाती है। इस अनुबंधन में नैमित्तिक अनुक्रिया करने के पश्चात् यदि प्रबलन प्राप्त होता है तो अनुक्रिया प्रबलित हो जाती है। धनात्मक प्रबलन वह उद्दीपक होता है, जिसे प्राणी में प्राप्त करने की अभिलाषा होती है तथा ऋणात्मक प्रबलन वह उद्दीपक होता है जिसका परिहार करने या पलायन करने की अभिलाषा प्राणी में होती है। कोई उद्दीपक प्रबलन उसी समय कहा जाता है जब वह अपने घटित होने से पूर्व घटित होने वाली अनुक्रिया पुनः घटित होने की संभावना में वृद्धि या ह्रास करे। नैमित्तिक अनुबंधन स्थापित होने की दर प्रबलन के प्रकार, प्रबलित प्रयासों की संख्या, प्रबलन प्राप्त होने में लगने वाले विलंब तथा प्रबलन अनुसूची से प्रभावित होती है।
- पावलवी अनुबंधन में अनुक्रिया को उत्पन्न करना प्रयोगकर्ता पर निर्भर करता है तथा अनुबंधित तथा अनानुबंधित उद्दीपक सुपरिभाषित होते हैं। अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) के कारण अनानुबंधित अनुक्रिया (UR)का उत्पन्न होना निश्चित होता है। इस अनुबंधन में एक उद्दीपक (CS) तथा दूसरे उद्दीपक (UCS) के बीच साहचर्य निर्मित होता है। यह एक उद्दीपक-उद्दीपक (S-S) प्रकार का अनुबंधन है। दूसरी ओर क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अनुक्रिया का होना प्राणी पर निर्भर करता है। अनानुबंधित उद्दीपक (UCS) की ठीक से पहचान नहीं हो पाती है। अनुबंधित उद्दीपक (CS) अनावश्यक व अज्ञात होता है। एक प्रबलनकारी उद्दीपक होता है, जो जिस अनुक्रिया के बाद घटित होता है, उसको प्रबलित करते हुए उसके पुनः घटित होने की संभावना में वृद्धि करता है। नैमित्तिक अनुक्रिया करने पर ही प्रबलन प्राप्त होता है अन्यथा नहीं। इस अनुबंधन में उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच साहचर्य निर्मित होता है। यह उद्दीपक-अनुक्रिया प्रकार का सीखना होता है।
- प्रेक्षण द्वारा सीखने के अंतर्गत अनुकरण, मॉडलिंग अथवा सामाजिक सीखने जैसी प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। इसमें कोई प्राणी किसी मॉडल के व्यवहारों का प्रेक्षण करके सीखता है। सीखना इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति ने मॉडल को कोई व्यवहार करने के बाद पुरस्कार अथवा दंड पाते हुए प्रेक्षित किया अथवा नहीं। अनेक प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का सीखना प्रेक्षण द्वारा सीखने से ही घटित होता है।
- वाचिक सामग्री के सीखने में विभिन्न शब्द एक-दूसरे से संरचनात्मक, ध्वन्यात्मक अथवा अर्थगत समानता के कारण साहचर्यित हो जाते हैं। सीखे गए शब्दों का पुनःस्मरण प्रायः गुच्छों में होता है। शाब्दिक सामग्री को प्रयोगशाला में सिखाने के लिए युग्मित सहचर विधि, क्रमिक अधिगम विधि तथा मुक्त पुनःस्मरण विधि का प्रयोग किया जाता है। सामग्री की अर्थकता, उपयोग की आवृत्ति, व्यक्तिनिष्ठ संगठनात्मक प्रक्रियाएँ आदि कारक सीखने को प्रभावित करते हैं।
- संप्रत्यय का अर्थ वर्ग अथवा श्रेणी से है। विभिन्न उद्दीपकों के लक्षण तथा लक्षणों को जोड़ने वाले नियम ही संप्रत्यय को परिभाषित करते हैं। संप्रत्यय कृत्रिम हो सकते हैं या स्वाभाविक। कृत्रिम संप्रत्यय सुपरिभाषित होते हैं जबकि स्वाभाविक संप्रत्यय कुपरिभाषित। सुपरिभाषित संप्रत्ययों के प्रायोगिक अध्ययन चयन अथवा ग्रहण की प्रायोगिक विधियों से किए गए हैं। स्वाभाविक संप्रत्ययों की परिभाषा अथवा सीमाएँ

धुंधली होती हैं। किसी स्वाभाविक संप्रत्यय के सदस्य उस संप्रत्यय के आद्यरूप के इर्द-गिर्द विभिन्न भिन्नताओं के साथ स्थित होते हैं। उनमें एक परिवारगत समानता भी दिखाई पड़ती है तथा वे अमूर्तता के विभिन्न स्तरों पर संगठित होते हैं।

- *कौशल का अर्थ किसी जटिल कार्य को क्षमता के साथ अबाध रूप से करने से है। कौशलों का अर्जन अभ्यास द्वारा होता है। किसी कौशलपूर्ण कार्य में बहुत से उद्दीपक-अनुक्रिया युग्मों को अनुक्रियाओं की एक बड़ी शृंखला के रूप में संगठित करके निष्पादन किया जाता है। इसके तीन चरण होते हैं: संज्ञानात्मक, साहचर्यात्मक तथा स्वायत्त।*
- *प्रबलन प्राप्त न होने की दशा में सीखी गई अनुक्रिया का विलुप्त हो जाना ही विलोप है। सीखने की अवधि में प्रबलित प्रयासों की संख्या, प्रबलन की मात्रा, प्रबलन मिलने में लगने वाला विलंब, अनुक्रिया करने में लगने वाले श्रम की मात्रा तथा प्रबलन अनुसूची आदि कारक विलोप को प्रभावित करते हैं। जब कोई सीखी गई अनुक्रिया किसी नए उद्दीपक के प्रति हो तो इसे सामान्यीकरण कहते हैं। विभेदन, सामान्यीकरण के विपरीत होता है। विभेदन का अर्थ है किसी अनुक्रिया को उसी उद्दीपक के प्रति करना जिस उद्दीपक के प्रति वह सीखी गई है। सीखी गई अनुक्रिया का विलोप हो जाने के पर्याप्त समय बीत जाने के बाद यदि पुनः अनुबंधित अनुक्रिया हो तो इस घटना को स्वतःपुनर्प्राप्ति कहते हैं।*
- *किसी कार्य के सीखने को जब पहले सीखे गए कार्य प्रभावित करते हैं तो इसे सीखने का अंतरण कहा जाता है। यह विशिष्ट अथवा अविशिष्ट दो प्रकार का होता है। अंतरण का प्रकार तथा मात्रा दोनों कार्यों के उद्दीपकों तथा अनुक्रियाओं की समानता की मात्रा पर निर्भर करता है।*
- *सीखने के सामान्य निर्धारकों में अभिप्रेरणा की मात्रा तथा प्राणी की प्रजातिविशिष्ट सीखने की तैयारी की स्थिति प्रमुख हैं।*
- *सीखने की निर्योग्यता (पढ़ने अथवा लिखने की) व्यक्तियों द्वारा सीखने में बाधक होती है। सीखने में अक्षम व्यक्तियों में उच्च क्रियाशीलता, कालबोध का अभाव तथा नेत्र-हस्त संयोजन की कमी होती है।*
- *सीखने के सिद्धांतों का उपयोग संगठन, असामान्य व्यवहारों के उपचार, बच्चे के पालन-पोषण, तथा विद्यालय में सीखने के लिए किया जाता है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. सीखने का क्या तात्पर्य है? इसकी प्रमुख विशिष्टताएँ क्या हैं?
2. प्राचीन अनुबंधन के विभिन्न रूप कौन-से हैं?
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन को कौन-से कारक प्रभावित करते हैं?
4. प्रेक्षण द्वारा सीखने की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं? इसे क्यों सामाजिक सीखना कहा जाता है?
5. शाब्दिक सामग्री को सीखने में किन प्रायोगिक विधियों का उपयोग किया जाता है?
6. कौशल से आप क्या समझते हैं? किसी कौशल को सीखने में कौन-कौन से चरण होते हैं?
7. सामान्यीकरण तथा विभेदन में आप किस तरह अंतर करेंगे?
8. सीखने में अंतरण का मापन किस प्रकार किया जाता है?
9. सीखने के लिए अभिप्रेरणा का होना क्यों अनिवार्य है?
10. सीखने के लिए तैयारी के विचार का क्या अर्थ है?
11. विलोप तथा स्वतः पुनर्प्राप्ति में आप कैसे अंतर करेंगे?

8 स्मृति की प्रक्रियाएँ

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- बहुल स्मृति की व्यवस्था
- सांवेदिक, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृति
- स्मृति का मापन : प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष स्मृति
- स्मृति में संगठनात्मक तथा रचनात्मक प्रक्रियाएँ
- विस्मरण के कारण तथा स्मृति लोप
- स्मृति को सुधारने की तकनीकें

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- बहुल स्मृति व्यवस्था की प्रकृति और विशेषताओं को समझ सकेंगे,
- सांवेदिक, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक स्मृतियों के बीच अंतर कर सकेंगे,
- स्मृति मापन के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीकों की व्याख्या कर सकेंगे,
- दीर्घकालिक स्मृति के वृत्तात्मक तथा शब्दार्थ विषयक प्रकारों के बीच अंतर कर सकेंगे,
- स्मृति में संगठनात्मक प्रक्रियाएँ तथा रचनात्मक परिवर्तनों का वर्णन कर सकेंगे,
- विस्मरण के कारण तथा स्मृति लोप के कारण बता सकेंगे, तथा
- स्मृति के सुधार के कुछ तरीकों को जान सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

यदि कोई आपसे यह पूछता है कि आपका जन्म कहाँ हुआ था? आपने अपनी प्रारंभिक शिक्षा किस विद्यालय से पाई? और कैसे एवं क्यों मनोविज्ञान को वैकल्पिक विषय के रूप में अपने अध्ययन के लिए चुना? तो आप याद कर सकेंगे और पूछने वाले को बता सकेंगे। आप ऐसा इसलिए कर सकेंगे कि आपके पास स्मृति की ऐसी व्यवस्था है, जिसमें आपके लगभग सभी अनुभव संजोए हुए हैं और आवश्यकता पड़ने पर उनमें से अधिकांश को जब चाहे तब आवश्यकता पड़ने पर याद कर पाने में सक्षम होते हैं। वस्तुतः स्मृति सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं; जैसे – प्रत्यक्षीकरण, भाषा की समझ, समस्या-समाधान, तर्क करने एवं निर्णय लेने आदि के लिए.महत्त्वपूर्ण है। यह स्मृति ही है, जिसके कारण आपको अपने जीवन में निरंतरता का अनुभव होता है और आप एक व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान प्राप्त करते हैं। मनुष्य के रूप में हम नाना प्रकार की चीजों को याद रखते हैं। हम ढेर सारी सूचनाओं को संचित करने में सक्षम हैं। समय बीतने के साथ इसका कुछ भाग भूल जाता है। किसी भी समय पर समग्र संचित सूचना का कुछ सीमित भाग ही याद हो पाता है, किंतु कई कारणों से इसका एक बहुत बड़ा भाग भूल जाता है। व्यक्ति, वस्तु, घटना, संप्रत्यय तथा प्रक्रियाओं की स्मृति में कमी जीवन में कई तरह की विसंगतियाँ पैदा कर देता है। परंतु विभिन्न तकनीकों के उपयोग द्वारा स्मृति में सुधार भी लाया जा सकता है। इस अध्याय में स्मृति के इन सभी पक्षों का वर्णन एवं विवेचन किया जाएगा।

स्मृति क्या है ?

स्मृति के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी भाषा के शब्द मेमोरी की उत्पत्ति लैटिन शब्द *मेमोरिया* (Memoria) से हुई है, जिसका तात्पर्य है लंबी याददाश्त अथवा ऐतिहासिक लेखा। मनोविज्ञान में स्मृति एक मानसिक प्रक्रिया है, जो सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं; जैसे – समस्या-समाधान, तार्किक चिंतन, कल्पना तथा निर्णय लेने आदि के लिए आधार प्रदान करती है। स्मृति के तीन अलग-अलग किंतु एक-दूसरे से जुड़े हुए अवयव हैं : (i) **सांवेदिक निवेश** अथवा **उद्दीपन सूचना का कूट संकेतन** या **कोड**, (ii) **कूट संकेतित सूचना का भंडारण** अथवा **संचय** एवं (iii) **आवश्यकतानुसार सूचना की पुनः प्राप्ति** (या पुनरुद्धार)। आइए, स्मृति के इन तीनों अवयवों को समझने का प्रयास करें।

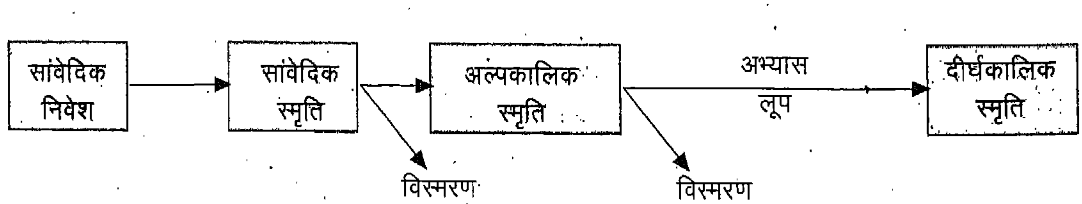
कूट संकेतन या कोड बनाना : यह स्मृति का प्रथम चरण है। इस चरण में पर्यावरण से प्राप्त सांवेदिक सूचना अथवा भौतिक उद्दीपक को स्नायु आवेग में बदल दिया जाता है, जिसका आगे प्रक्रमण किया जाता है या जिसे भविष्य के उपयोग के लिए भंडारित किया जाता है। कूट संकेतन (Encoding) का उपयोग सूचना निवेश के अभ्यास (दुहराना), समूह के रूप में उनको संगठित करने तथा पहले से भंडारित सूचनाओं से संबंधित करने के लिए भी किया जाता है। अतः *कूट संकेतन को बाह्य सूचनाओं को मस्तिष्क में ले जाने वाली या प्रतिनिधित्व करने वाली एक सक्रिय प्रक्रिया माना जा सकता है।*

संचय : यह स्मृति के दूसरे चरण को प्रदर्शित करता है। यदि कूट संकेतित या कोड की गई सूचना को लंबे समय तक बनाए रखना हो या उसका एक से अधिक बार उपयोग करना हो तब उसे स्मृति व्यवस्था में किसी तरह संचित करना आवश्यक हो जाता है। कुछ सूचनाएँ, जिनका उपयोग केवल एक बार किया जाता है। वे बहुत कम समय के लिए संचित रहती हैं उसके बाद उन्हें स्मृति से बाहर निकाल दिया जाता है। *कूट संकेतित सूचना को भविष्य में उपयोग के लिए स्मृति तंत्र में बनाए रखना ही संचय* (Storage) *है।*

पुनरुद्धार : यह स्मृति के तीसरे चरण को प्रदर्शित करता है। इसका अर्थ है आवश्यक सूचना को स्मृति भंडार से बाहर निकालना। *यह स्मृति में संचित सूचनाओं की पुनः प्राप्ति है।* इसमें प्रत्याह्वान (Recall) अथवा प्रत्यभिज्ञा (Recognition) शामिल हो सकते हैं। मान लीजिए कि जूनियर हाई स्कूल में आपके कुछ सहपाठी थे, जो आपके मित्र थे। जूनियर हाई स्कूल की पढ़ाई के बाद आपने उस विद्यालय को छोड़ दिया तथा किसी दूसरे शहर में दूसरे विद्यालय में प्रवेश ले लिया। अब आप कक्षा ग्यारह में हैं। एक दिन प्रातः काल आप उनमें से कुछ मित्रों से मिलते हैं। आप उनको पहचान लेते हैं तथा उनके नाम भी याद आ जाते हैं। यह प्रत्यभिज्ञा तथा पुनः स्मरण इसलिए संभव हो सका कि कभी आपने उनके नाम तथा शारीरिक विशेषताओं को जोड़ना सीखा था तथा उसे अपनी स्मृति में संचित कर सके थे। अब आप उस साहचर्य का पुनरुद्धार (Retrieval) कर सकते हैं।

स्मृति की तीन व्यवस्थाएं : सांवेदिक, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक

स्मृति के विभिन्न पक्षों को चित्र 8.1 को देखकर आसानी से समझा जा सकता है। किसी भी परिस्थिति में व्यक्ति सांवेदिक उद्दीपनों को ग्रहण करता है, जो **सांवेदिक स्मृति** (Sensory memory) में समाकलित हो जाते हैं तथा **अल्पकालिक स्मृति** (Short-term memory) में पहुंचते हैं। इस सूचना का पुन : **दीर्घकालिक स्मृति** (Long term memory) से ली गई सूचना की सहायता से प्रक्रमण एवं कूट या कोड संकेतन किया जाता है तथा वहां से सूचनाएं या तो विस्मृत हो जाती हैं या संचय के लिए दीर्घकालिक स्मृति में भेज दी जाती हैं। कौन-सी सूचना को स्मृति के भंडार से निकाला जाएगा, यह उद्दीपक निवेश तथा प्रक्रमण के स्वरूप पर निर्भर करता है। सूचना के प्रक्रमण में अभ्यास (दुहराना) (Rehearsal) विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अभ्यास में सूचनाओं का सक्रिय उपयोग किया जाता है। जब हम किसी सूचना को कई बार बोलकर या



चित्र 8.1 : स्मृति का एक संप्रत्ययात्मक मॉडल।

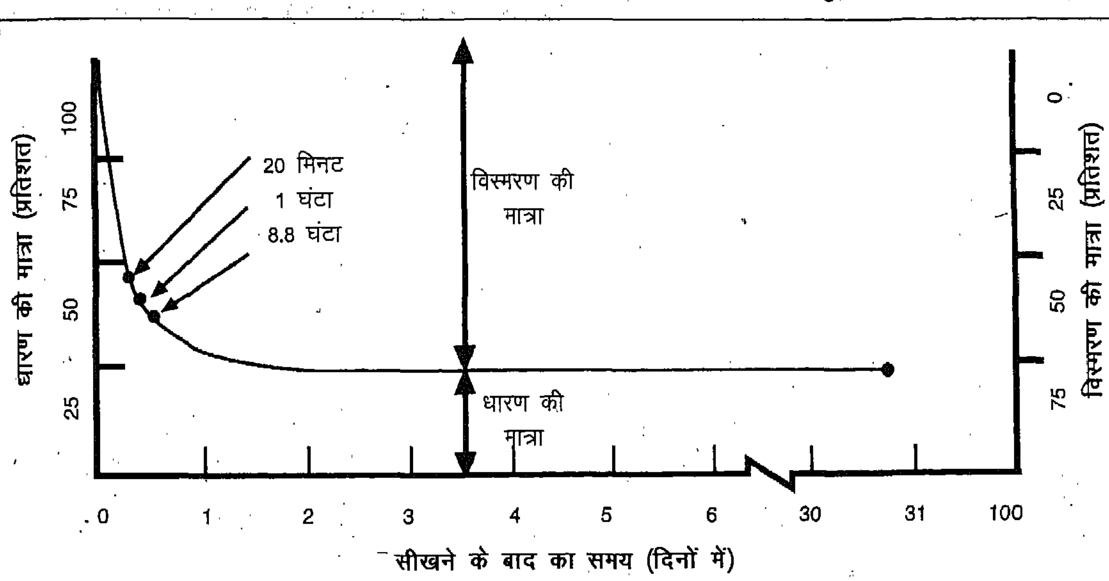
बाक्स 8.1 **ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्मृति पर शोध : दो प्रवर्तक**

*जर्मनी के मनोवैज्ञानिक **हर्मन एबिंगहास** (1885) स्मृति के क्षेत्र में आधुनिक प्रायोगिक अनुसंधान के जनक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने वाचिक सामग्री की इकाइयों के बीच साहचर्य निर्माण के रूप में स्मृति का प्रायोगिक अध्ययन किया था। सार्थक वाचिक सामग्रियों में स्वाभाविक रूप से मौजूद विभिन्न परिवर्त्यों के प्रभाव को दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने व्यंजन-स्वर-व्यंजन क्रम वाले निरर्थक (CVC Nonsense syllable) पदों (जैसे – सी.ई.एफ., एल.ए.जैड.) का निर्माण किया एवं रटन स्मृति (Rote Memory) को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण कारकों का पता लगाया। उनके मतानुसार, स्मृति की प्रक्रिया साहचर्यपरक होती है तथा साहचर्य वाचिक इकाइयों के पास-पास प्रस्तुत किए जाने के आधार पर बनते हैं। उन्होंने दूरस्थ साहचर्यों की भी चर्चा की किंतु ये बड़े कमजोर होते हैं। विभिन्न समय अंतरालों का उपयोग करते हुए एबिंगहास ने विस्मरण के वक्र को प्रस्तुत किया, जो आज भी प्रायोगिक अध्ययनों में खरा उतरता है। यह वक्र चित्र 8.2 में प्रस्तुत है। इससे यह पता चलता है कि हम कोई चीज याद करने के तुरंत बाद तीव्र गति से भूलते हैं।*

*स्मृति अनुसंधान की एक दूसरी धारा भी है, जिसका प्रवर्तन अंग्रेज मनोवैज्ञानिक **फ्रेडेरिक बार्टलेट** (1932) ने किया था। इन्होंने प्रयोगशाला में संपादित किए जाने वाले निरर्थक पदों अथवा सार्थक शब्दों की स्मृति के अध्ययन के बदले कहानियों, गद्यांशों एवं अपने आस-पास की दुनिया के बारे में जानकारी की स्मृतियों, पहले के अनुभवों के संगठन तथा स्मृति में उसे पुनः लाने के समय सामग्री की पुनर्रचना पर बल दिया। उन्होंने **क्रमिक पुनरुत्पादन विधि** (Serial Reproduction Method) का उपयोग किया, जिसमें अध्ययन का प्रतिभागी एक से अधिक अवसरों पर (या कई बार) कहानियों अथवा पूर्वानुभवों को याद कर उसका पुनरुत्पादन करते हैं।*

बार्टलेट के अनुसार स्मृति एक व्याख्यात्मक रचनात्मक प्रक्रिया है। हर व्यक्ति प्राप्त होने वाली सूचनाओं को कोड करता है। उनकी पुनः प्राप्ति सक्रिय स्मृति प्रणाली द्वारा प्रभावित होती है और पुनर्रचित होती है। बार्टलेट ने यह प्रस्तावित किया कि स्वाभाविक वाचिक सामग्री के अर्थगत पक्ष की पुनर्प्राप्ति पुनर्रचनात्मक (Reconstructive) होती है अर्थात् पुनर्प्राप्ति स्मरण किए जाने वाले किसी गद्य की प्रात्यक्षिक रचना की एक पुनर्रचना होती है। वह गद्य की उच्च स्तरीय व्याख्या प्रस्तुत करती है। गद्य के वे पक्ष जो विवेचनात्मक नहीं होते हैं, पुनर्प्राप्ति के अवसर पर संशोधित कर दिए जाते हैं।

एबिंगहास एवं बार्टलेट के आरंभिक अध्ययनों ने स्मृति प्रक्रमों के प्रायोगिक अध्ययनों को अत्यधिक प्रभावित किया है। स्मृति एवं विस्मरण के बारे में आज जो ज्ञान उपलब्ध है उसकी जड़ें इन दोनों मनोवैज्ञानिकों द्वारा सिद्धांत एवं अध्ययन विधि के क्षेत्र में योगदानों में विद्यमान हैं।



चित्र 8.2 : एबिंगहास का विस्मरण वक्र।

मन ही मन दुहराते हैं, तब हम अभ्यास कर रहे होते हैं। आने वाली सूचनाओं को यदि दुहराकर ताजा न किया जाए तो वे बहुत तेजी से लुप्त हो जाती हैं। ये दोनों प्रक्रियाएं व्यक्ति द्वारा की जाने वाली अनुक्रिया के स्वरूप या व्यवहार को निर्धारित करती हैं। संक्षेप में यह विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रवाह है, जो स्मृति में सम्मिलित होता है। स्मृति का यह दृष्टिकोण उसे एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में मानव स्मृति के विभिन्न पक्षों के अध्ययन के लिए एक संप्रत्ययात्मक रूपरेखा प्रदान करता है।

ऊपर दिए गए स्मृति के तीन अवयवों को स्पष्ट करने के लिए हम दैनिक जीवन की एक सामान्य घटना को उदाहरण के रूप में लेते हैं। मान लीजिए, आप एक सड़क पर टहल रहे हैं। टहलते समय असंख्य दृष्टि, श्रव्य तथा दूसरे प्रकार के उद्दीपक आपके सांवेदिक संग्राहकों को प्रभावित करते हैं। उनमें से अधिकांश को आप नजरअंदाज कर देते हैं, क्योंकि आप उन पर अपना ध्यान केंद्रित नहीं करते। कुछ उद्दीपकों पर आप ध्यान देते हैं और उनको अंकित (कोड) करते हैं। वे आपकी अल्पकालिक स्मृति या सक्रिय स्मृति में प्रकट होते हैं, किंतु आपके पास आने वाली अन्य सांवेदिक सूचनाओं द्वारा इनका स्थान ले लेने पर ये उद्दीपक सूचनाएं भूल जाती हैं। परंतु मान लीजिए, आप कुछ लोगों को आपस में झगड़ते हुए देखते हैं। आप दूसरे प्रत्यक्षदर्शियों से जानकारी लेते हैं और विस्तारपूर्वक कूट संकेतन (Elaborate encoding) करने लगते हैं। यह सूचना आपकी दीर्घकालिक स्मृति में प्रविष्ट हो जाएगी और लंबी अवधि तक याद रहती है, क्योंकि इसे विस्तारपूर्वक कोड किया गया है। काफी दिनों बाद भी आप घटना को स्मरण कर सकते हैं।

बहुल स्मृति प्रणालियाँ

यदि आप चित्र संख्या 8.1 को देखें तो आप पाएंगे कि यह चित्र तीन प्रकार की स्मृतियों को प्रदर्शित कर रहा है – **सांवेदिक स्मृति, अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति।** इनमें से हर एक स्मृति प्रणाली की अपनी अपनी खास विशेषताएँ होती हैं। सांवेदिक निवेश, उनके प्रात्यक्षिक विश्लेषण एवं भविष्य में फिर से उन्हें पाने के लिए सूचना के संचय के स्तर पर तीन तरह की स्मृतियाँ अलग-अलग ढंग से कार्य करती हैं। प्रत्येक सांवेदिक संग्राहक का अपना स्मृति अभिलेख अथवा अंकन होता है। यदि सूचना सांवेदिक स्मृति से अवधान के केंद्र में आती है तो वह अल्पकालिक स्मृति में चली जाती है। यह एक ऐसे नोटबुक की तरह है, जिसमें ध्यान दी गई सूचना भविष्य में किए जाने वाले प्रक्रमण के लिए सुरक्षित कर ली जाती है। कल्पना कीजिए, यदि आपकी माँ आपसे चिकित्सक को फोन करने के लिए कहती हैं। फोन का नंबर है – 6305758 और आप मन ही मन इस संख्या को दुहराते हैं और इस संख्या पर फोन करते हैं। चिकित्सक से आपकी बात हो जाती है। यदि आप इस संख्या को फिर दुबारा याद करना चाहें तो शायद नहीं कर पाएंगे, क्योंकि फोन का यह नंबर आपकी अल्पकालिक स्मृति में संचित था। कल्पना कीजिए कि आप नंबर मिलाते हैं और हर बार व्यस्तता ध्वनि (इंगेज्ड टोन) मिलती है। यदि टेलीफोन नंबर को आप कई बार दुहराते हैं तो वह दीर्घकालिक स्मृति में चला जाएगा। यदि अल्पकालिक स्मृति में सूचना का अच्छी तरह प्रक्रमण किया जाता है तब वह दीर्घकालिक स्मृति में चली जाती है, जहां इसका संचय अपेक्षाकृत स्थायी होता है। आइए, अब इन तीन स्मृति प्रणालियों के कार्य का विस्तार से अध्ययन करें।

सांवेदिक स्मृति

स्मृति की प्रक्रिया का प्रथम चरण है सांवेदिक स्मृति (Sensory Memory), जिसमें आने वाली सूचनाओं का कुछ सेकंड या उससे भी कम समय के लिए प्रत्यक्ष एवं ज्यों का त्यों अंकन होता है। वैसे तो यह माना जाता है कि जितने भी तरह के सांवेदिक संग्राहक होते हैं उतने ही प्रकार की सांवेदिक स्मृतियाँ भी होती हैं; जैसे – चाक्षुष, त्वचीय, घ्राण इत्यादि। फिर भी अधिकांश अध्ययन चाक्षुष एवं श्रवण स्मृतियों पर ही केंद्रित रहे हैं।

चाक्षुष सांवेदिक स्मृति : इस स्मृति को प्रायः चित्रात्मक या आइकॉनिक (Iconic) स्मृति के नाम से जाना जाता है। किसी चाक्षुष उद्दीपक से जब रेटिना प्रभावित होता है तो उस पर उद्दीपक की प्रतिमा निर्मित होती है। उद्दीपक के हटा लेने के बाद भी यह प्रतिमा कुछ मिली. सेकंडों तक बनी रहती है।

चाक्षुष स्मृति का भंडार बहुत कम समय के लिए बना रहता है। यह लगभग आधे सेकंड तक का होता है। यह समय आभासी गति तथा सिनेमा के पर्दे पर जो गति दिखती है उसके लिए महत्त्वपूर्ण है। आप आभासी गति के बारे में अध्याय 6 में और पढ़ेंगे। पढ़ते समय अक्षर भी इसी नियम के आधार पर शब्दों के रूप में संगठित हो जाते हैं।

श्रवण सांवेदिक स्मृति : इस स्मृति को प्रायः प्रतिध्वन्यात्मक या इकोइक (Echoic) स्मृति के नाम से भी जाना जाता है।

एक ध्वनि के उत्पन्न होने पर कानों में इसकी गूँज, ध्वनि के हट जाने के बाद भी कुछ सेकंड तक बनी रहती है। उदाहरणार्थ, स्टील की एक तश्तरी अपने बाएं हाथ में लीजिए और दाहिने हाथ से एक चम्मच को तश्तरी से टकराइए। ऐसी स्थिति में ध्वनि उद्दीपक के समाप्त हो जाने के बाद भी एक सेकंड तक उसकी गूंज कानों में बनी रहती है। तेज 'क्रैश' की आवाज कान में गूँजती रहती है। इससे प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति का स्वरूप ज्ञात होता है। आप दूसरों के द्वारा बोले गए शब्दों को एक के बाद एक सुनते हैं और प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति के कारण ही इन शब्दों को सार्थक वाक्यों के रूप में संगठित करने में समर्थ होते हैं। ध्वनियाँ अपरिष्कृत रूप में भंडारित होती हैं। श्रवण स्मृति में ध्वनि की छाप दो-तीन सेकंड तक बनी रहती है। इस स्मृति की भी भंडारण क्षमता पर्याप्त अधिक होती है। आपको एक साथ बहुत-सी ध्वनियाँ सुनाई देती हैं, किंतु किसी एक स्रोत से निकलने वाली ध्वनियों का ही सम्यक् रूप से प्रत्यक्षीकरण कर पाते हैं, उससे अधिक का नहीं। चाक्षुष प्रतिमाओं की ही भाँति ध्वनि की छाप भी बहुत थोड़े समय के लिए बनी रह पाती है।

अल्पकालिक स्मृति

अल्पकालिक स्मृति (Short-Term Memory) को सक्रिय स्मृति (Working Memory) के नाम से भी जाना जाता है। सांवेदिक स्मृति से प्राप्त सूचनाएँ थोड़े समय के लिए इसमें बनी रहती हैं। दीर्घकालिक स्मृति की प्रासंगिक सूचनाओं को ध्यान में रख कर इनका प्रात्यक्षिक स्तर पर प्रक्रमण होता है। इसके बाद विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक कार्य किए जाते हैं। यह एक सक्रिय स्मृति प्रणाली है, जो निरंतर संग्राहकों एवं दीर्घकालिक स्मृति से प्राप्त सामग्रियों अथवा सूचनाओं की देखभाल करती है, उनको परस्पर संबंधित करती है और उनका रूपांतरण करती है।

मान लीजिए कि आपके अध्यापक आपको अंकों का एक क्रम सुनाते हैं और सुनने के बाद आपसे उन सुने गए अंकों को प्रस्तुत करने के लिए कहते हैं। ये अंक निम्नलिखित हैं:

1, 9, 6, 4, 1, 9, 4, 2, 1, 9, 4, 7,

इन अंकों को जल्दी-जल्दी बोलकर आपको सुनाया गया। जब आप इन अंकों को याद करने का प्रयास करते हैं तो सभी का प्रत्याह्वान करने में असफल रहते हैं। जब इन्हीं अंकों को धीमी गति से पढ़ा जाता है तो ये अंक अल्पकालिक स्मृति में पहुंचते हैं। आप इन अंकों पर विशेष ध्यान देते हैं और तीन संख्याओं में 1964, 1942 एवं 1947 में रूपांतरित कर देते हैं। दीर्घकालिक स्मृति की सहायता से पिछली सदी के तीन महत्त्वपूर्ण वर्षों के रूप में उक्त अंकों का प्रक्रमण और उनकी व्याख्या कर ली जाती है– पं. जवाहरलाल नेहरु की मृत्यु का वर्ष, महात्मा गांधी के भारत छोड़ो आंदोलन का वर्ष एवं ब्रिटिश शासन से भारत को स्वतंत्रता मिलने का वर्ष। अल्पकालिक स्मृति इस ढंग से काम करती है।

अल्पकालिक स्मृति की धारणा करने की क्षमता सीमित होती है। इसका तात्पर्य यह है कि अल्पकालिक स्मृति में केवल सीमित संख्या में ही सूचना इकाइयाँ; जैसे – अंक, अक्षर, शब्द अथवा नाम एक समय में बने रह पाते हैं। यह पाया गया है कि सामान्यतया अल्पकालिक स्मृति में सूचनाओं की कुल सात इकाइयां अथवा गुच्छे (Chunks) से दो अधिक या दो कम (7 ± 2) की संख्या में बने रह सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अल्पकालिक स्मृति का विस्तार 5 इकाइयों से 9 इकाइयों तक विस्तृत हो सकता है। कुछ व्यक्ति 5 सूचना इकाइयों को और कुछ अन्य व्यक्ति 6, 7, 8 अथवा 9 सूचना इकाइयों को अपनी अल्पकालिक स्मृति में बनाए रख सकते हैं। ज्यादातर लोगों का अल्पकालिक स्मृति का विस्तार 7 इकाइयाँ पाया जाता है। सूचना इकाइयाँ अंक, अक्षर, शब्द आदि असतत स्वरूप वाली हो सकती हैं। कभी-कभी छोटी इकाइयाँ गुच्छे के रूप में बड़ी इकाइयों का रूप ले लेती हैं; जैसे – अंक संख्या रूप में, अक्षर शब्दों के रूप में, और शब्द विभिन्न वर्गों के रूप में। सभी परिस्थितियों में अल्पकालिक स्मृति का विस्तार 7 धन (+) 2 अथवा ऋण (–) 2 की सीमा में ही पाया जाता है। उदाहरणार्थ, लोग टेलीफोन नंबरों को सैकड़े में बदल कर याद कर सकते हैं। अंकों का एक क्रम यदि 725673 हो तो इसे सात सौ पच्चीस तथा छः सौ तिहत्तर के रूप में हम ग्रहण कर सकते हैं।

यह देखा गया है कि यदि व्यक्ति को दुहराने का मौका न मिले तो सक्रिय अल्पकालिक स्मृति में 18 सेकंड से

क्रियाकलाप 8.1

धारण करने में गुच्छन की भूमिका

निम्नलिखित अंकों को याद कीजिए।

1 9 2 5 4 9 8 1 1 2 1

अब आप निम्नांकित समूहों में उन्हें याद कीजिए।

1 9 25 49 81 121

अब आप निम्नलिखित रूप से कोड करिए और याद कीजिए।

1^1 3^2 5^2 7^2 9^2 11^2

अधिक अवधि तक सूचनाएँ स्थित नहीं रह सकती हैं। इस तरह के अभ्यास को **अनुरक्षक अभ्यास** (Maintenance Rehearsal) कहा जाता है। यदि किसी ने 3726687 का एक टेलीफोन का नंबर दिया है, तो सामान्यतया यह संख्या उसे तब तक नहीं भूलता जब तक कि वह व्यक्ति टेलीफोन पर यह नंबर मिला नहीं लेता है। नंबर मिलाने के बाद व्यक्ति यह संख्या भूल जाता है।

प्रायोगिक रूप से यह प्रदर्शित किया गया है कि अल्पकालिक स्मृति में सांवेदिक सूचना **ध्वन्यात्मक संकेतों** (Acoustic codes) या ध्वनि के रूप में बनी रहती है। यह प्रायः चाक्षुष कोड के रूप में तथा कभी-कभी **शब्दार्थ कोड** (Semantic code) के रूप में भंडारित रहती है। चाक्षुष कोड का तात्पर्य है कि ये कैसे दिखते हैं। इसी तरह शब्दार्थ संकेत का अर्थ है कि शब्द का क्या अर्थ है।

क्रियाकलाप 8.2

अल्पकालिक स्मृति को समझना

नीचे पंक्ति में दी गई सूची को एक संख्या प्रति सेकंड की गति से पढ़िए तथा प्रतिभागी से सभी संख्याओं को दुहराने के लिए कहिए।

सूची	***संख्या***
1 (6 संख्याएँ)	*2-6-3-8-3-4*
2 (7 संख्याएँ)	*7-4-8-2-4-1-2*
3 (8 संख्याएँ)	*4-3-7-2-9-0-3-6*
4 (10 संख्याएँ)	*9-2-4-1-7-8-2-6-5-3*
5 (12 संख्याएँ)	*8-2-5-4-7-4-7-3-9-1-6-2*

याद रखिए कि आपके द्वारा एक पंक्ति की सभी संख्याओं के पढ़ लेने के बाद ही प्रतिभागी प्रत्याह्वान करेगा। कितनी संख्याओं का प्रत्याह्वान किया गया यह लिख लीजिए। अपने निष्कर्ष की अपने सहपाठियों तथा शिक्षक के साथ विवेचना कीजिए।

आपने अब तक पढ़ा

आपने दो स्मृति व्यवस्थाओं के बारे में पढ़ा – सांवेदिक स्मृति तथा अल्पकालिक या सक्रिय स्मृति। सांवेदिक स्मृतियाँ उतनी प्रकार की होती हैं, जितने हमारे सांवेदिक संग्राहक हैं। हालांकि उनमें से दो अर्थात् चित्रात्मक एवं प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति का भली-भाँति अध्ययन किया गया है। ये दो निष्क्रिय व्यवस्थाएं हैं तथा सूचनाओं को क्रमशः छवियों एवं ध्वनियों के रूप में धारण रखती हैं। सामान्यतः चित्रात्मक स्मृति में छवियां 225 मिली सेकंड के लिए तथा प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति में 2 सेकंड के लिए भंडारित रहती हैं। ये व्यवस्थाएं सूचनाओं को आगे प्रक्रमण हेतु अल्पकालिक स्मृति में भेजने में सहायता करती हैं। अल्पकालिक स्मृति एक सक्रिय व्यवस्था है और यदि अभ्यास द्वारा सूचनाओं को लंबे समय तक बनाए न रखा जाए तो अपनी सीमित क्षमता के साथ यह सूचना को 20 सेकंड तक संचित रखता है। यह सूचनाओं की 7 इकाइयों (धन अथवा ऋण 2) को बनाए रख सकती है। दीर्घकालिक स्मृति में संचय हेतु सूचनाओं का प्रक्रमण इसी व्यवस्था में होता है।

आपने कितना सीखा

1. स्मृति के तीन अलग-अलग पर परस्पर संबंधित अवयव हैं : ———, ——— तथा ———।

2. चाक्षुष सांवेदिक स्मृति को ——— भी कहा जाता है।

3. श्रवण सांवेदिक स्मृति को ——— भी कहा जाता है।

4. अल्पकालिक स्मृति का विस्तार ——— है।

उत्तर – 1. कूट संकेतन, संचय, पुनरुद्धार, 2. आइकोनिक या चित्रात्मक, 3. इकोइक या प्रतिध्वन्यात्मक, 4. 7 ± 2

दीर्घकालिक स्मृति

दीर्घकालिक स्मृति हमारी स्मृति का वह भाग है जिसमें *सूचनाएँ बड़े लंबे समय तक धारण की जाती हैं।* इसमें एक बार संचित हो जाने के बाद सूचना व्यक्ति के जीवन भर बनी रह सकती है। ऐसा पाया गया है कि ऐसी कुछ सूचनाएँ जो हाई स्कूल में सीखी गई थीं, वे पचास साल बाद भी याद पड़ जाती हैं। साथ ही यह भी सही है कि समय बीतने के साथ-साथ दीर्घकालिक स्मृति में संचित बहुत सारी सूचनाएँ क्षीण हो जाती हैं और उसे याद करना, विशेष रूप से उसका प्रत्याह्वान संभव नहीं हो पाता है। जो भी प्रत्याह्वान होता है वह हमेशा पूरी तरह शुद्ध नहीं होता है। कुछ संचित सूचनाएँ परिवर्तित हो जाती हैं, संक्षिप्त हो जाती हैं, और प्रत्याह्वान के समय उसमें कुछ अतिरिक्त सूचना भी जुड़ जाती हैं।

जीवन में उपयोगिता की दृष्टि से विचार करने पर दीर्घकालिक स्मृति की धारण क्षमता अपरिमित प्रतीत होती है। आप अंग्रेजी, हिंदी या अन्य भाषा के शब्दों, वैज्ञानिक तथ्यों और तकनीकी पदों, ऐतिहासिक घटनाओं और अपनी सामाजिक अन्तःक्रियाओं के अनुभवों के बारे में सोचिए जो

दीर्घकालिक स्मृति में संचित हैं। आप जब चाहें अपनी इच्छा के अनुसार इन सबको याद कर सकते हैं। आप अगणित लोगों के नामों को स्मरण कर सकते हैं। वस्तुतः किसी व्यक्ति की अल्पकालिक स्मृति में धारण की जाने वाली सभी तरह की सूचनाओं की एक संपूर्ण सूची लगभग अपरिमित होगी। कुछ तंत्रिका मनोवैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि मस्तिष्क के कॉर्टेक्स में जितने संधिस्थल या सिनैप्स हैं उतने पद या आइटम हमारी दीर्घकालिक स्मृति में संचित होते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि एक व्यक्ति के दीर्घकालिक स्मृति भंडार में एक बिलियन से अधिक पद संचित हैं। इतने पर भी यह ध्यातव्य है कि दीर्घकालिक स्मृति में संचित सभी सूचनाओं को सदैव हम स्मरण नहीं कर पाते हैं।

संसार के बारे में हमारा अधिकांश तथ्यात्मक ज्ञान दीर्घकालिक स्मृति (Long-term Memory) में संचित रहता है। ऐसे तथ्य दीर्घकालिक स्मृति के एक भाग का निर्माण करते हैं जिसे **शब्दार्थ स्मृति** कहा जाता है। इसमें संचित पद अर्थपूर्ण होते हैं तथा विशिष्ट व्यक्तियों, घटनाओं, तथ्यों तथा विशेषताओं आदि से जुड़े होते हैं। उदाहरणार्थ, उन असंख्य लोगों के नाम, जिनसे आपके मित्रवत् संबंध थे या हैं, आपकी दीर्घकालिक स्मृति में अवश्य ही संचित होंगे। जब आप किसी मित्र का नाम याद करते हैं तब उसी समय आप उस मित्र की मानसिक छवि का प्रत्यक्षीकरण भी करते हैं। जिसमें आप उसके मुख, कद, रंग-रूप, आचरण तथा अन्य शारीरिक अथवा व्यवहारगत विशेषताओं को स्पष्ट रूप से याद करते हैं। दीर्घकालिक स्मृति से पुनरुद्धार का न हो पाना बहुत सारे कारणों से हो सकता है, जिनका इस अध्याय के विस्मरण के खंड में विवेचन किया गया है।

दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार

अपनी स्मृति के बारे में सोचिए तथा वहां संचित अनुभव कितने तरह के हैं इसका अनुमान लगाने की कोशिश कीजिए। कुछ ही क्षणों में आप यह महसूस करेंगे कि वहां असंख्य प्रकार के अनुभव संचित हैं। मनोवैज्ञानिकों ने दीर्घकालिक स्मृति की विषयवस्तु को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। एक वर्गीकरण जो काफी बोधगम्य है **टुलविंग** नामक मनोवैज्ञानिक द्वारा किया गया है। उनके अनुसार दीर्घकालिक स्मृति तीन प्रकार की होती है, **वृत्तात्मक, अर्थगत** (शब्दार्थ) तथा **प्रक्रियात्मक।** आइए, अब इनके स्वरूप एवं विशेषताओं का अध्ययन करें।

वृत्तात्मक स्मृति : इस प्रकार की स्मृति व्यक्ति के निजी अनुभवों से संबंधित होती है। निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास कीजिए। आपने विद्यालय जाना कब शुरू किया? आपने हाई स्कूल की परीक्षा किस विद्यालय से पास की? आपके शिक्षक कौन थे? आपके सहपाठी कौन थे? आप कौन से खेल खेलते थे? आपके विद्यालय, घर तथा पड़ोस में कौन सी महत्त्वपूर्ण घटना हुई थी? ये सभी प्रश्न आपके निजी या व्यक्तिगत अनुभवों से जुड़े हैं। यह याद रखना चाहिए कि वृत्तात्मक स्मृति (Episodic Memory) व्यक्ति के अपने सांवेदिक अनुभवों पर आधारित होती है। व्यक्ति के जीवन में घटित होने वाली घटनाएँ वृत्तात्मक स्मृति की इकाई होती हैं। यह स्मृति काल तथा स्थान के आधार पर संगठित होती है। इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार की स्मृति न केवल *क्या* हुआ (घटना), बल्कि *कब* (समय) तथा *कहाँ* (स्थान) हुआ, इनसे मिलकर बनी होती है।

वृत्तात्मक स्मृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता घटनाओं का सांवेगिक स्वरूप है। यह प्रायः अनुभव किया गया है कि सांवेगिक रूप से तटस्थ घटनाओं की अपेक्षा अत्यधिक सुखद एवं दुःखद अनुभव बहुत लंबे समय तक याद रहते हैं। किसी अच्छे कार्य के लिए स्कूल में मिलने वाले मेडल को क्या आप आसानी से भूल पाएंगे? अपने जीवन की किसी असफलता को आप आसानी से भूल जाएंगे? किंतु यह भी सत्य है कि वृत्तात्मक स्मृति में विस्मरण शीघ्रता से होता है। व्यक्ति प्रतिदिन असंख्य घटनाओं का अनुभव करता है, जिसमें से केवल कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ ही कुछ समय तक संचित रहती हैं, जबकि अधिकांशतः भूल जाती हैं। फिर भी, महत्त्वपूर्ण अनुभवों का भंडारण एवं पुनरुद्धार स्थायी होता है।

वृत्तात्मक स्मृति की एक अन्य विशेषता यह है कि पूर्व में अनुभव की गई घटनाओं की विषय-वस्तु का स्मरण करने में लंबा समय लगता है। यह देखा गया है कि पूर्व में अनुभव किए गए घटनाक्रम का पुनरुत्पादन पुनर्रचित होता है। इससे पता चलता है कि किसी अनुभव का बारंबार प्रत्याह्वान विकृत हो जाता है। विवरण अधिक संगत तथा संक्षिप्त हो जाते हैं। अतः वृत्तात्मक स्मृति उतनी विश्वसनीय नहीं होती जितनी लगती है या जितना इसे माना जाता है।

शब्दार्थ स्मृति : 'शब्दार्थ' शब्द का संबंध अर्थ से है जिसमें साहचर्य भी सम्मिलित हैं, किंतु प्रस्तुत प्रसंग में यह शब्द

'अर्थ' से कहीं अधिक व्यापक है। स्मृति के संदर्भ में इस शब्द का अर्थ है *व्यक्ति द्वारा अर्जित तथा संचित ज्ञान का संगठित समूह।* अतः शब्दार्थ स्मृति (Semantic Memory) में वे सभी प्रकार के ज्ञान सम्मिलित होते हैं, जो व्यक्ति में विभिन्न रूपों में बने रहते हैं, फिर भी यह व्यक्ति के मानसिक शब्दकोश से कुछ अधिक होता है क्योंकि स्मृति में संचित की जाने वाली सूचना का स्रोत अर्थग्रहण अथवा बोध होता है। इस स्मृति में संचय की इकाइयाँ संप्रत्यय, विचार तथा तथ्य होते हैं। इस स्मृति की एक अन्य विशेषता है कि यह समय एवं स्थान से संबंधित नहीं होती। आपने हिंदी और अंग्रेजी के विभिन्न शब्दों के अर्थ कब और कहाँ सीखे यह आपको याद नहीं होगा। आपको यह भी याद नहीं होगा कि आपने कब और कहाँ इस तथ्य को सीखा कि पृथ्वी अपने अक्ष तथा सूर्य के चारों ओर घूमती है। यह संप्रत्यय से संबंधित है तथा अमूर्त माना जा सकता है। इस प्रकार की स्मृति प्रायः सांवेगिक विषय-वस्तु से रहित होती है। इसमें विस्मरण भी बहुत कम होता है। शब्दार्थ स्मृति में संचित सूचनाओं का अपेक्षाकृत तेजी से प्रत्याह्वान हो जाता है। शब्दार्थ स्मृति के विस्तार का मापन व्यक्ति के सामान्य ज्ञान के शब्दों में किया जाता है। मान लीजिए, कोई आपसे पूछता है "क्या बाघ मांसाहारी होते हैं?" यदि आप यह जानते हैं तो उत्तर देने में आपको बहुत कम समय लगेगा क्योंकि यह सामान्य ज्ञान का विषय है तथा शब्दार्थ स्मृति में संचित है।

शब्दार्थ विषयक स्मृति के प्रायोगिक अध्ययन में कुछ विशिष्ट विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रयोगशाला में शब्दार्थ स्मृति के मापन हेतु सामान्यतः चार प्रकार के कार्यों का उपयोग किया जाता है।

1. **शब्द ज्ञान निर्णय :** इस कार्य में अक्षरों की एक शृंखला प्रस्तुत की जाती है तथा प्रतिभागी को यह निर्णय करना होता है कि क्या वह (वह अक्षर शृंखला) एक शब्द है। उत्तर की परिशुद्धता तथा अनुक्रिया काल लिख लिया जाता है। उदाहरणार्थ, कुछ अक्षर समूह स ह म त, न स भ, त र ल, प र म वी र को एक-एक करके प्रस्तुत किया गया तथा प्रतिभागी को 'हां' अथवा 'नहीं' में अनुक्रिया देनी थी।
2. **वर्गीकरण :** अंगूर के गुच्छे का चित्र अथवा अंगूर शब्द प्रस्तुत किया जाता है तथा प्रतिभागी को उसकी श्रेणी के बारे में निर्णय लेना होता है। उदाहरण के लिए, यह पूछा जा सकता है कि यह फल की श्रेणी का सदस्य है या नहीं।
3. **सांकेतिक या प्रतीकात्मक तुलना :** इस प्रकार के मापन में प्रतिभागी को अमूर्त विशेषताओं के बारे में निर्णय लेना होता है कि हत्या और जनसंहार में से कौन-सा अपराध बड़ा है अथवा आम और सेव में से किसमें पौष्टिक तत्व अधिक है। पुनः अनुक्रिया और अनुक्रिया करने में लगा समय लिख लिया जाता है।
4. **वाक्य सत्यापन :** इस प्रकार के कार्य में प्रतिभागी को एक वाक्य दिया जाता है, जैसे : *बंदर एक जानवर है, अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, कच्चे तथा पके फल खाता है, तथा गाना नहीं गा सकता।* प्रतिभागी को यह बताना होता है कि वाक्य सही है या गलत। शब्दार्थ विषयक स्मृति के अन्य मापकों की भाँति इस मापक में भी प्रतिक्रिया काल शब्दार्थ स्मृति की शक्ति का सूचक होता है।

प्रक्रियात्मक स्मृति : यह स्मृति चीजें कैसे घटित हुईं, ये स्मरण रखने के हमारे तरीके से संबंधित होती हैं। इसमें उद्दीपक अनुक्रिया साहचर्य तथा अनुक्रिया करने के कुशल संरूप सम्मिलित होते हैं। इसका उपयोग विभिन्न कौशलों के अर्जन तथा उन्हें धारण करने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में *यह क्रियाओं की स्मृति से जुड़ी है।* किसी कुशल कार्य के निष्पादन की प्रारंभिक अवस्था में व्यक्ति

क्रियाकलाप 8.2

दीर्घकालिक स्मृति को समझना

1. अपने प्रारंभिक विद्यालय के दिनों के बारे में सोचिए। उन दिनों घटित दो अलग-अलग घटनाओं को लिखिए, जो आपको स्पष्ट रूप से याद हैं। प्रत्येक घटना को लिखने के लिए अलग-अलग कागज लीजिए।

2. कक्षा ग्यारह के पहले महीने के बारे में सोचिए। इस महीने में घटित दो अलग-अलग घटनाओं को लिखिए, जो आपको स्पष्ट रूप से याद हैं। प्रत्येक घटना के लिए अलग-अलग कागज लें।

कुछ दिनों बाद आपने जो घटनाओं के दो समूह लिखे हैं उनकी तुलना कीजिए। लंबाई, अनुभूत संवेग तथा संगति के आधार पर उनकी तुलना कीजिए। उन अंतरों को लिखिए तथा अपने शिक्षक के साथ उसका विवेचन कीजिए।

कौशल की स्मृति के प्रत्याह्वान में सक्षम होता है। निपुणता बढ़ने के साथ कौशल स्वाभाविक हो जाता है। साइकिल चलाना, टंकण (टाइपिंग), लिखना आदि प्रक्रियात्मक स्मृति के साधारण उदाहरण हैं। प्रक्रियात्मक स्मृति (Procedural Memory) में जो कुछ उचित रीति से संचित होता है उसका पुनरुद्धार हो जाता है तथा थोड़े प्रयास से उसका व्यवहार में उपयोग संभव होता है।

इसका संगठन संप्रत्ययात्मक होता है। इसमें से बहुत कम सूचना का विस्मरण होता है। इसका मापन व्यक्ति के ज्ञान की परीक्षा द्वारा होता है तथा यह व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। प्रयोगशाला में इसका अध्ययन वर्गीकरण, सांकेतिक तुलना तथा वाक्य सत्यापन कार्य द्वारा किया जाता है। प्रक्रियात्मक स्मृति कार्यों की स्मृति से संबंधित है। यह कौशलों के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।

तालिका 8.1 : सांवेदिक, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक स्मृतियों की विशेषताओं की तुलना

विशेषताएँ	सांवेदिक स्मृति	अल्पकालिक या सक्रिय स्मृति	दीर्घकालिक स्मृति
अवधि	चित्रात्मक 250 मि. से. प्रतिध्वन्यात्मक	20 सेकंड	वर्ष – आजीवन
क्षमता	2 से. अधिक	7 ± 2	असीमित
पुनरुद्धार	समानांतर खोज	क्रमिक विस्तृत खोज	समानांतर वितरित खोज
कूट संकेतन	सांवेदिक (चाक्षुष) (श्रव्य)	ध्वनि या ध्वन्यात्मक चाक्षुष-शब्दार्थ	शब्दार्थविषयक तथा सांवेदिक
विस्मरण	चिह्न ह्रास	ह्रास, व्यतिकरण तथा विस्थापन	संकेतों की अनुपलब्धता व्यतिकरण, ह्रास

भंडारण-क्षमता, अवधि, विस्मरण के स्वरूप, कूट संकेतन तथा संचय के स्वरूप के आधार पर ऊपर चर्चित तीनों स्मृति व्यवस्थाओं की तुलना तालिका 8.1 में प्रस्तुत की गई है।

आपने अब तक पढ़ा

दीर्घकालिक स्मृति स्थायी संचय की व्यवस्था है। संचित सूचनाएँ पुनरुद्धार हेतु आजीवन उपलब्ध रहती हैं। इसकी संचय क्षमता असीमित होती है। शब्दार्थ रूप में कोड की गई सूचना भी इसमें संचित रहती है। पुनरुद्धार समानांतर खोज द्वारा किया जाता है तथा हमेशा पूरी तरह सही नहीं होता है। दीर्घकालिक स्मृति तीन तरह की होती है। शब्दार्थ विषयक, वृत्तात्मक तथा प्रक्रियात्मक। वृत्तात्मक स्मृति का स्रोत सांवेदिक अनुभव है। इसकी इकाई घटना या वृत्त है तथा यह काल एवं स्थान से संबंधित है। संवेग इसका एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। इसमें विस्मरण बहुत अधिक मात्रा में होता है। इससे सूचना के पुनरुद्धार में लंबा समय लगता है। शब्दार्थ विषयक स्मृति अर्थ ग्रहण पर आधारित होती है तथा इसकी इकाई संप्रत्यय, विचार तथा तथ्य होते हैं।

आपने कितना सीखा

1. दीर्घकालिक स्मृति में सूचना ________ समय तक संचित रहती है।

2. तथ्यात्मक ज्ञान ________ में संचित रहता है।

3. दीर्घकालिक स्मृति के तीन प्रकार ________, ________ तथा ________, होते हैं।

उत्तर – 1. वर्षों, 2. शब्दार्थ स्मृति, 3. वृत्तात्मक, शब्दार्थ विषयक, प्रक्रियात्मक।

प्रक्रमण के स्तर

सांवेदिक स्मृति में उद्दीपक का यथार्थ मानसिक प्रतिरूप भंडारित होता है तथा आगे कोई कूट संकेतन अथवा प्रक्रमण नहीं होता। जब सांवेदिक सूचनाओं को अल्पकालिक स्मृति में भेज दिया जाता है तब उनका आगे प्रक्रमण होता है। इस तरह के प्रक्रमण का अर्थ है सांवेदिक सूचनाओं का विभिन्न रूपों में रूपांतरण। सक्रिय स्मृति में यह प्रक्रमण

उथले अथवा गहरे स्तर का हो सकता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रक्रमण जितना गहरा होता है सूचनाओं का दीर्घकालिक स्मृति में संचय उतना ही सरल होता है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रक्रमण के चार स्तर बताए हैं : (अ) **चाक्षुष या संरचनात्मक**, (ब) **ध्वन्यात्मक स्तर**, (स) **शब्दार्थविषयक स्तर**, तथा (द) **आत्म-संदर्भ के साथ शब्दार्थविषयक स्तर**। आइए, प्रक्रमण के इन स्तरों के बारे में कुछ और जानें।

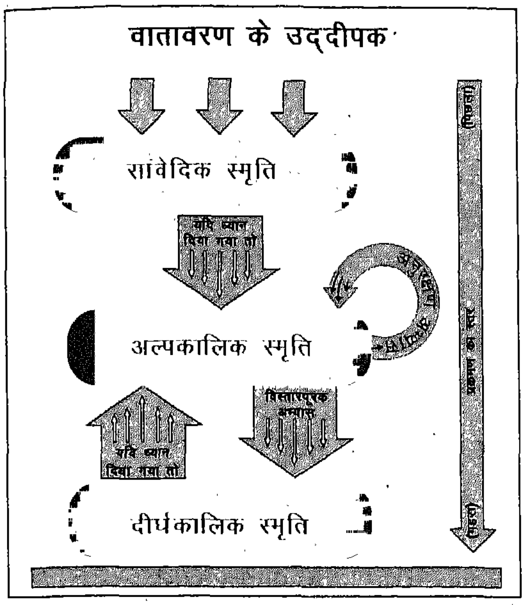
सांवेदिक (Sensory) **स्तर** पर प्रक्रमण का अर्थ है सूचना निवेश या सांवेदिक उद्दीपन के केवल संरचनात्मक पक्ष पर ध्यान देना। क्या लिखे हुए शब्द बड़े अक्षरों में हैं? या क्या उद्दीपक हरे रंग का है या लाल रंग का? या क्या यह आयताकार है या वृत्ताकार या अंडाकार? ये ऐसे प्रश्न हैं, जो इस प्रकार के प्रक्रमण के समय मस्तिष्क में आते हैं। इस स्तर पर निवेश की आकृति या रूप पर ध्यान दिया जाता है। इस स्तर पर प्रक्रमण किए गए सूचना निवेश अल्पकालिक स्मृति में बहुत थोड़ी देर के लिए संचित रहते हैं। इस स्तर पर स्मृति चिह्न बहुत जल्दी क्षीण पड़ जाते हैं।

प्रक्रमण का ध्वन्यात्मक स्तर (Phonological) सांवेदिक स्तर से कुछ गहरा होता है। इस स्तर पर व्यक्ति पूरे शब्द पर ध्यान केंद्रित करता है तथा उसके उच्चारण के आधार पर कोड करता है। यह प्रक्रमण का अपेक्षाकृत छिछला स्तर है। शब्द का उच्चारण किस प्रकार का है? क्या शब्दों में तुकबंदी है? शब्द के किस भाग पर बल दिया गया है या शब्द में कितने अक्षर हैं? ये ऐसे प्रश्न हैं जिनके उत्तर प्रक्रमण के इस स्तर पर दिए जाते हैं। इस प्रक्रमण द्वारा बहुत ही दुर्बल स्मृति चिह्न प्राप्त होते हैं।

प्रक्रमण का तीसरा स्तर है **शब्दार्थविषयक** (Semantic)। इस स्तर पर व्यक्ति पूछता है कि उद्दीपक का क्या अर्थ है? यह क्या सूचित करता है तथा इसका अर्थ क्या है? इसके उदाहरण क्या हैं? या यह किस प्रकार किसी अन्य विशिष्ट विषय से संबंधित है? जब उद्दीपक पद का प्रक्रमण होता है तब ये तथा अन्य संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं। इस प्रकार के जितने ही प्रश्नों को व्यक्ति पूछता है या उनके उत्तर देता है, प्रक्रमण का स्तर उतना ही गहरा होता जाता है। इस प्रकार से निर्मित स्मृति चिह्न अधिक स्थायी होते हैं। ये आसानी से नहीं भूलते।

प्रक्रमण का सबसे गहन स्तर तब होता है जब संवेदी सूचना तथा उसका अर्थ व्यक्ति के अपने *आत्म से या स्वयं से संबंधित* (Self Reference) होता है। मान लीजिए, आप एक रोग के बारे में पढ़ते हैं तथा उसके लक्षणों को जानने की कोशिश करते हैं। अब तक यह शब्दार्थविषयक स्मृति का उदाहरण है, पर आप यह जानने का प्रयास करते हैं कि क्या आप इसे अपने स्वयं की स्वास्थ्य की दशा से जोड़ सकते हैं? तब यह आत्म संदर्भ के साथ शब्दार्थविषयक प्रक्रमण बन जाता है। इस प्रकार के प्रक्रमण से गहन स्मृति चिह्न बन जाता है। इस प्रकार के चिह्नों को आसानी से नहीं मिटाया जा सकता।

यह याद रखना चाहिए कि सांवेदिक सूचना के प्रक्रमण में लगा प्रयास महत्त्वपूर्ण नहीं होता। यदि हम प्रक्रमण को दुहराना या अभ्यास कहें तो आप कितनी देर अभ्यास करते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है अभ्यास की गुणवत्ता। अभ्यास कई ढंग से किया जा सकता है। दो मुख्य प्रकार के अभ्यास, जिनका लोग उपयोग करते हैं – **अनुरक्षण अभ्यास** (Maintenance rehearsal) तथा **विस्तारपरक अभ्यास** (Elaborative rehearsal)। सूचनाओं को कार्यकारी स्मृति में बनाए रखने के लिए व्यक्ति उनको मन में दुहराता रहता है। मान लीजिए, आपकी बड़ी बहन आपसे फोन करने के लिए कहती है तथा वह आपको एक नंबर 7254329 देती है। टेलीफोन दूसरे कमरे में है। उस कमरे में जाते समय आप मन में उस टेलीफोन नंबर को दुहराते रहते हैं। अब यह आपकी स्मृति में बना रहता है। आप नंबर मिलाते हैं, आपको उत्तर मिलता है तथा आप जो आवश्यक है वह करते हैं। इसके बाद वह नंबर आपकी स्मृति से लुप्त हो जाता है। विस्तारपरक अभ्यास में आप स्मरण की जाने वाली सूचना को उसके द्वारा उत्पन्न विभिन्न साहचर्यों के रूप में विश्लेषित करने का प्रयास करते हैं। आप उसे गुच्छों में तोड़ सकते हैं तथा उसे पुनर्संगठित कर सकते हैं। अतः आपके पास 725, 432 तथा 9 हो सकते हैं या आप 72 को अपने अंकों के प्रतिशत से, 54 को अपने मित्र के मकान नंबर से जोड़ सकते हैं तथा 432 को उलटा गिन सकते हैं। आप इसे दूसरी चीजों से जोड़ने की भी सोच सकते हैं। यह आपके मानसिक कौशल पर निर्भर करता है कि आप इसे कैसे करते हैं। ऐसे अभ्यास सूचनाओं को लंबे समय तक दीर्घकालिक स्मृति में संचित रखते हैं।



चित्र 8.3 : तीन स्मृति व्यवस्थाओं के बीच संबंध।

स्मृति की आपकी जानकारी को संकलित करने के लिए उसके विभिन्न पक्षों को आरेख द्वारा चित्र 8.3 में प्रदर्शित किया गया है। यह चित्र दिखाता है कि सबसे ऊपर वातावरण के उद्दीपक हैं, जो हमारी संवेदनाओं को प्रभावित करते हैं तथा सांवेदिक स्मृति में पहुँच जाते हैं। मध्य में अल्पकालिक स्मृति है। सांवेदिक स्मृति अथवा दीर्घकालिक स्मृति से सूचनाएँ अल्पकालिक स्मृति में जा सकती हैं। सूचना के अल्पकालिक स्मृति में आने के लिए यह आवश्यक है कि हम उस पर ध्यान दें। यह चित्र एक अनुरक्षण तथा व्यापक अभ्यास द्वारा निभाई गई भूमिका तथा प्रक्रमण के स्तर को भी प्रदर्शित करता है।

आपने अब तक पढ़ा

अल्पकालिक स्मृति में पहुँचने वाली सांवेदिक सूचना का आगे प्रक्रमण होता है। यह प्रक्रमण उथला या गहरा हो सकता है। प्रक्रमण के संरचनात्मक तथा ध्वन्यात्मक स्तर उथले होते हैं तथा आगे चलकर प्रक्रमित सूचनाएं स्मृति से लुप्त हो जाती हैं। शब्दार्थ विषयक प्रक्रमण तथा आत्म-संदर्भित प्रक्रमण गहरे होते हैं तथा प्रक्रमित सूचनाएँ दीर्घकालिक स्मृति का हिस्सा बन जाती हैं। अनुरक्षण अभ्यास सूचनाओं को केवल अल्पकालिक स्मृति में बनाए रखने में उपयोगी होता है तथा सूचना आगे चलकर भूल जाती है। विस्तारपरक अभ्यास सूचनाओं को आने वाले लंबे समय तक के लिए भंडारित करता है।

आपने कितना सीखा

1. सांवेदिक सूचना के प्रक्रमण के चार स्तर हैं : ______, ______, ______, तथा ______।

2. अभ्यास के दो मुख्य प्रकार हैं ______ तथा ______।

उत्तर – 1. सांवेदिक, ध्वन्यात्मक, शब्दार्थविषयक, आत्म संदर्भ के साथ शब्दार्थविषयक, 2. अनुरक्षणात्मक, विस्तारपरक।

क्रियाकलाप 8.3

स्मृति में प्रक्रमण के स्तर

नीचे लिखे वाक्यों को अलग-अलग कार्ड पर लिखिए। अपने से निचली कक्षा के विद्यार्थी को अपने साथ यह खेल खेलने के लिए आमंत्रित कीजिए। उसे टेबिल के दूसरी तरफ अपने सामने बिठाइए। उसे बताइए कि "इस खेल में आपको कुछ कार्ड निश्चित अंतराल पर एक-एक करके दिखाए जाएंगे, आपको प्रत्येक कार्ड पर लिखे प्रश्नों को पढ़ना है तथा 'हां' अथवा 'नहीं' में उत्तर देना है।"

आप स्वयं प्रतिभागी द्वारा दिए गए उत्तरों को लिखेंगे।

1. क्या यह शब्द अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में लिखा है? BELT

2. क्या यह शब्द 'हाल' शब्द से तुकबंदी करता है? चाल

3. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है? " ______ विद्यालय में पढ़ते हैं" विद्यार्थी

4. क्या यह शब्द 'सोना' के साथ तुकबंदी करता है? सोहर

5. क्या यह शब्द अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में लिखा है? ***Bread***

6. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है? "मेरे चाचा का पुत्र मेरा ______ है।" चचेरा भाई

7. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है? मेरा ______ एक सब्जी है। घर

8. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है? ______ फर्नीचर है। आलू

9. क्या यह शब्द अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में लिखा है?
TABLE
10. क्या यह शब्द बंदूक शब्द से तुकबंदी करता है?
संदूक
11. क्या यह शब्द अंग्रेजी के बड़े अक्षरों में लिखा है?
Monks
12. क्या यह शब्द 'पुस्तक' शब्द से तुकबंदी करता है?
महान
13. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?
"बच्चे —————— खेलना पसंद करते हैं"
खेल
14. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?
"लोग प्रायः —————— से बाल्टी में मिलते हैं।"
मित्रों
15. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?
"मेरी कक्षा —————— से भरी हुई है।"
कुर्तों
16. क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?
"मेरी माँ मुझे पर्याप्त जेब —————— देती है।"
खर्च

कार्ड पढ़ने का कार्य समाप्त करने के बाद प्रतिभागी से उन शब्दों का प्रत्याह्वान करने के लिए कहिए जिनके बारे में प्रश्न पूछे गए थे। याद किए गए शब्दों को लिख लीजिए। प्रश्न में वांछित प्रक्रमण के आधार पर संरचनात्मक, ध्वन्यात्मक एवं शब्दार्थपरक प्रकारों में गिन लीजिए। अपने अध्यापक के साथ परिणामों की विवेचना कीजिए।

स्मृति का मापन

स्मृति के मापन (Measurement of Memory) के लिए दो प्रकार के मापों का प्रयोग किया जाता है। एक को **व्यक्त (या प्रत्यक्ष) स्मृति माप** एवं दूसरे को **अव्यक्त (या अप्रत्यक्ष) स्मृति माप** कहते हैं। स्मृति का व्यक्त माप (Explicit Measure) वह है जिसमें एक व्यक्ति को स्मृति में भंडारित सूचनाओं में से बताई गई कुछ सूचनाओं का स्मरण करने के लिए कहा जाता है। इस माप में व्यक्ति को किसी घटना, उसके घटित होने के स्थान या समय आदि के प्रत्याह्वान के लिए चेतन रूप से प्रयास करना पड़ता है। इस माप में स्मृति में जो कुछ भी संचित है, उसके कुछ भाग का पुनः स्मरण करना होता है। ऐसे माप प्रत्यक्ष होते हैं एवं व्यक्ति को यह बोध रहता है कि उससे क्या अपेक्षित है। स्मृति का अव्यक्त माप वह है जिसमें व्यक्ति को स्मृति से संबंधित कुछ कार्य करना होता है। व्यक्ति को इस तथ्य का बोध नहीं रहता है कि उसकी स्मृति का परीक्षण किया जा रहा है। स्मृति से सूचनाओं के पुनरुद्धार के लिए कोई नियोजित या सचेत प्रयास नहीं किया जाता है। यह स्मृति के उस पक्ष का मापन करता है, जिसके बारे में व्यक्ति अवगत नहीं रहता है अर्थात् जिसकी जानकारी उसे नहीं रहती है। आइए, इन दो प्रकार के मापों को कुछ विस्तार से समझें।

व्यक्त (या प्रत्यक्ष) माप

व्यक्त स्मृति की मात्रा की जानकारी प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के मापों का उपयोग किया जाता है। इनमें हैं : (अ) **पुनः स्मरण** या **पुनरुत्पादन परीक्षण** एवं (ब) **प्रत्यभिज्ञा परीक्षण**। पुनः स्मरण (Recall) परीक्षण के उपयोग के लिए अध्याय 7 के वाचिक अधिगम अनुभाग में वर्णित किसी भी एक विधि के द्वारा आप शब्दों की एक सूची को सीखते हैं। इसके बाद, सीखना समाप्त होने के तत्काल बाद या थोड़ी देर बाद आपको सीखे गए शब्दों की सूची को याद करने के लिए कहा जाता है। आप जितने शब्दों का सही-सही पुनः स्मरण करने में सक्षम होते हैं, उनकी संख्या व्यक्त स्मृति का माप प्रदान करती है। कभी-कभी आपको एक कहानी या गद्यांश पढ़ने के लिए कहा जा सकता है एवं उसके बाद आपको उसे पुनरुत्पादित करने के लिए कहा जाता है। पुनरुत्पादन (Reproduction) की परिशुद्धता एवं पुनरुत्पादन में हुए परिवर्तन व्यक्त स्मृति का एक माप प्रस्तुत करते हैं।

मान लीजिए कि आपको सीखने के अध्याय में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का पुनः स्मरण करने के लिए कहा गया या आपको अधिगम को परिभाषित करने एवं उसकी विशेषताओं को बताने के लिए कहा गया है। ये दोनों ही पुनः स्मरण (या प्रत्याह्वान) परीक्षण हैं। आपकी स्मृति प्रत्यक्ष रूप से मापी जाती है एवं आप इसके प्रति सचेत भी रहते हैं। प्रत्यभिज्ञा (Recognition) परीक्षण पुनः स्मरण परीक्षण से इस अर्थ में भिन्न है कि इसमें पहले से सीखे गए शब्दों या पदों को नए पदों के साथ मिश्रित करके प्रस्तुत किया जाता है। पदों को एक-एक करके प्रस्तुत किया जाता है। मान लीजिए कि आपने पहले से ही अध्याय 7 में प्रयुक्त तकनीकी पदों को याद कर लिया है। ये अध्याय 11 के तकनीकी पदों के साथ

मिश्रित कर दिए जाते हैं जिसे आपने अभी पढ़ा एवं याद नहीं किया है। दोनों शब्द समूह मिला दिए जाते हैं एवं आपको अध्याय 7 में पढ़े एवं न पढ़े शब्दों को बताना होता है। उपर्युक्त विधि का एक महत्त्वपूर्ण रूपांतर भी है। इसे **अनिवार्य चयन** (Forced choice) **तकनीक** भी कहते हैं। इस विधि में पुराने पदों से तीन गुना अधिक पदों को चयनित किया जाता है। प्रत्यभिज्ञा परीक्षण में तीन नए एवं एक पुराना पद प्रस्तुत किया जाता है। प्रतिभागी को पुराने पद को इंगित करने के लिए बाध्य किया जाता है। सही पहचाने गए पुराने शब्दों की कुल संख्या प्रत्यभिज्ञा प्राप्तांक प्रस्तुत करता है।

अव्यक्त (या अप्रत्यक्ष) मापक

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, स्मृति के अप्रत्यक्ष मापन में प्रतिभागी को स्मृति से जुड़े हुए कुछ कार्य करने होते हैं परंतु प्रतिभागी को यह ज्ञात नहीं रहता है कि उसकी स्मृति का परीक्षण किया जा रहा है। अव्यक्त स्मृति के दो माप हैं, जिनका व्यापक रूप से उपयोग होता है। एक को शब्द पूर्ति एवं दूसरे को पुनरावृत्ति तत्परता कहते हैं।

शब्द पूर्ति : इस संकृत्य में शब्दों के अंश दिए जाते हैं एवं प्रतिभागी को विखंडित शब्द को पूरा करना होता है। एक विखंडित शब्द अपूर्ण उच्चारित शब्द है (जैसे : रे – गाड़ी)। ऐसे शब्द छूटे हुए आवश्यक अक्षरों को जोड़ कर पूरा किए जाते हैं। ऐसे विखंडित शब्दों में किसी भी अक्षर समूह की आवश्यकता शब्द पूर्ति के लिए हो सकती है। उदाहरणार्थ, एक विखंडित शब्द : – यो – त लीजिए। यह दो प्रकार से पूरा किया जा सकता है, यथा आयोजित या नियोजित। इसका अर्थ यह है कि ये दोनों शब्द आपकी स्मृति में संचित हैं एवं आप इनको जानते हैं।

पुनरावृत्ति तत्परता : यह संकृत्य तत्परता (प्राइमिंग) की तकनीक का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति हाल ही में पढ़ी गई एक कहानी के कुछ शब्दों का अनुभव करता है। वह कहानी में प्रयुक्त सभी शब्दों के प्रत्याह्वान (Recall) में सक्षम नहीं हो सकता। फिर भी यदि विखंडित शब्दों को पूरा करने के लिए कहा जाए तो यह संभव है कि वह व्यक्ति इस कार्य को इस प्रकार से करे कि पूरित शब्द कहानी के अन्तर्गत अनुभूत शब्द ही हों। कहानी के पढ़ने के अनुभव ने प्रतिभागी को कुछ प्रकार के शब्दों के लिए तत्पर या तैयार कर दिया। शब्दांश या विखंडित शब्द पूर्व अनुभव से जुड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ, मान लें कि आपने दीपावली से जुड़े अनेक शब्दों का अनुभव किया है। अब आपको शब्द पूर्ति के लिए एक शब्दांश : – – श – जी दिया जाता है। आप इसे तुरंत 'आतिशबाजी' शब्द के रूप में पूरा करते हैं क्योंकि 'दीपावली' के उल्लेख द्वारा आपको इस दिशा में तत्पर बना दिया गया है।

आपने अब तक पढ़ा

स्मृति के दो प्रकार के माप हैं अर्थात् व्यक्त/प्रत्यक्ष एवं अव्यक्त/अप्रत्यक्ष। व्यक्त माप में एक व्यक्ति को पूर्व में जो कुछ भी अनुभव किया गया या सीखा गया है उसका पुनः स्मरण करना होता है। दूसरे माप में सीखे गए पक्षों को

आपने कितना सीखा

1. दो प्रकार के स्मृति माप हैं : ________ तथा ________ ।

2. ________ स्मृति को पुनः स्मरण तथा प्रत्यभिज्ञता द्वारा मापा जा सकता है।

उत्तर – 1. व्यक्त, अव्यक्त, 2. व्यक्त।

क्रियाकलाप 8.4

स्मृति का मापन

1. एक मिनट में आप जितने हिंदी के शब्द लिख सकते हैं लिखें। शब्द को निश्चित रूप से 'क' अक्षर से प्रारंभ एवं 'ल' अक्षर पर समाप्त होना चाहिए।

2. अपने मित्र को एक छोटी कहानी पढ़ कर सुनाएं एवं अगले दिन उसे उस कहानी को सुनाने एवं लिखने के लिए कहें। इसके बाद आप लिखी गई कहानी में हुए परिवर्तनों को लिखें।

3. क्या आप नीचे दिए गए शब्दांशों को पूरा कर सकते हैं? इन्हें पूरा कीजिए : –नु–व, सं–ठ–, –त्पा–न, –दा–र–, मा–चि–, अ–त्य–, सं–त्य–, त–नी–, प–चा–,

4. एक घर में पाए जाने वाले तीन प्रकार के कमरों का नाम लिखें।

पहचानने एवं उसे नए पदों से भिन्न करना होता है। ऐसे में व्यक्ति चेतन रूप से पुनःस्मरण, पुनरुत्पादन एवं प्रत्यभिज्ञा करता है। अप्रत्यक्ष/अव्यक्त मापों में एक व्यक्ति को कुछ कार्य करने के लिए कहा जाता है; जैसे – विखंडित शब्दों को पूरा करना या कुछ प्रश्नों का उत्तर देना। ऐसे मापों में व्यक्ति अपने स्मृति परीक्षण के बारे में अनभिज्ञ रहता है।

स्मृति में संगठन

स्मृति को प्रायः एक संचय व्यवस्था के रूप में देखा जाता है, जिसमें वृत्तात्मक एवं शब्दार्थ विषयक विषयवस्तु संचित रहती है। कोई भी संचय व्यवस्था यदि ठीक रूप से व्यवस्थित न हो तो उसमें से वांछित पदों का पुनरुद्धार (Retrieval) अत्यधिक कठिन हो जाता है। यह एक सामान्य अनुभव है कि संचित स्मृति से पुनः प्राप्ति स्पष्टतया आसान एवं शीघ्र होती है। यह इसलिए भी है, क्योंकि मानव स्मृति विभिन्न इकाइयों एवं घटकों के रूप में भली-भाँति व्यवस्थित या संगठित है। इन इकाइयों में संप्रत्यय तथा श्रेणियाँ, प्रतिमाएं, संज्ञानात्मक मानचित्र, सीमा तथा 'स्क्रिप्ट (कथा) शामिल हैं। इस अनुभाग में आप इन इंकाइयों के बारे में पढ़ेंगे, जिनके आधार पर आपकी वृत्तात्मक तथा शब्दार्थ विषय स्मृति संगठित है।

संप्रत्यय तथा श्रेणियाँ : आप इस तथ्य से पहले से ही परिचित हैं कि आपकी वृत्तात्मक स्मृति घटनाओं एवं वृत्तांतों को उसके घटित होने के स्थान एवं संदर्भ में संचित करती है एवं शब्दार्थविषयक स्मृति संप्रत्ययों, श्रेणियों, विचारों एवं तथ्यों की समझ को संचित करती है। ज्ञान भंडार रूपी शब्दार्थविषयक स्मृति संप्रत्ययों एवं श्रेणियों के आधार पर संगठित होती है। यह संगठन श्रेणीबद्ध (Heirarchical) होता है। उदाहरणार्थ, आप जीवित प्राणियों को मनुष्यों या पशुओं की श्रेणियों के रूप में सोच सकते हैं। पशुओं को पक्षियों एवं मछलियों में विभाजित किया जा सकता है। पक्षियों को अन्य संवर्गों में बांट सकते हैं। इसी तरह आप सब्जियों या घरेलू वस्तुओं एवं उसके विभिन्न प्रारूपों के बारे में सोच सकते हैं। संप्रत्यय प्रायः श्रेणीबद्ध ढंग से व्यवस्थित होते हैं।

प्रतिमाएँ : एक लंबे समय तक यह माना जाता रहा है कि स्मृति में ज्ञान एवं अनुभवों का संचय वाचिक कथनों या शब्दों के रूप में होता है। अब यह स्पष्ट हो चुका है कि सूचनाओं का कूट संकेतन केवल शब्दार्थ विषयक ही नहीं होता वरन् यह वाचिक-प्रतीकात्मक होने के साथ साथ चाक्षुष-स्थानगत भी होता है। कूट संकेतन के ये दोनों ही तरीके परस्पर संबंधित हैं। जब आप मित्रों, कक्षा, घर या बाजार जैसी मूर्त वस्तुओं को याद करते हैं तो आप यह भी याद करते हैं कि ये सब कैसे दिखते हैं। आपके मन में उनकी चाक्षुष प्रतिमा एवं वाचिक संकेत दोनों ही मौजूद रहते हैं। मूर्त वस्तुओं एवं संप्रत्ययों का पुनः स्मरण करना आसान होता है, क्योंकि ये सरलता से वाचिक-प्रतीकात्मक एवं चाक्षुष-जगत दोनों तरह के संकेतों के रूप में कोड हो जाते हैं। कोई भी अनुभव जिसका कूट संकेतन दोनों ही तरह से होता है, उसका पुनःस्मरण अच्छा होता है। कुछ शोधकर्ताओं का मानना है कि स्मृति में संचय के लिए लोग वाचिक संकेतों के अतिरिक्त चाक्षुष संकेतों का उपयोग भी करते हैं। इसे **द्वि-संकेत परिकल्पना** (Dual-Code Hypothesis) कहा जाता है जो **पैवियो** के द्वारा प्रतिपादित की गई थी। इस दृष्टिकोण के अनुसार सांवेदिक सूचनाओं एवं मूर्त वाक्यों की प्रतिमा के रूप में भंडारित होने की संभावना अधिक होती है, जबकि अमूर्त वाक्य केवल वाचिक रूप से कोड किए जाते हैं। वाचिक संकेत चाक्षुष संकेतों के लिए एक सूचक या संदर्भ आश्रय (Reference peg) का काम नहीं कर सकता है। वास्तविक प्रतिमाएँ स्मृति में संचित हो सकती हैं। छायाचित्रात्मक स्मृति के गोचर, जिसे तकनीकी रूप से **छायाचित्र प्रतिमा** (Eidetic Imagery) कहते हैं, से यह जानकारी मिलती है।

संज्ञानात्मक मानचित्र : आप जिस वातावरण में रहते हैं वह दिक् या स्थान के आयाम में स्थित है। आप अपने घर के चारों ओर के भवनों, विद्यालय तक जाने वाली गलियों एवं मार्गों से भली-भाँति परिचित हैं। जब आप कुछ नियत स्थानों के बारे में सोचते हैं तो आपकी चेतना में कुछ चाक्षुष प्रतिमाएं उपस्थित होती हैं। ये मानसिक चित्र के समान होती हैं। इन प्रतिमाओं के समूह को संज्ञानात्मक मानचित्र कहते हैं। *किसी व्यक्ति की स्मृति में उसका स्थानगत परिवेश किस प्रकार व्यवस्थित है इसका आंतरिक चित्रण ही संज्ञानात्मक मानचित्र है।* यह चाक्षुष-स्थानिक (Visual-spatial) प्रतिमाओं के एक क्रमबद्ध समूह के जैसा होता है। जब आपको किसी चीज का ब्यौरा देने के लिए कहा जाता है तो आपकी चेतना में एक प्रकार का चाक्षुष-स्थानिक मानचित्र आता है एवं आप तत्काल विद्यालय भवन, उसके खेल के मैदान, कक्षाएं तथा प्राचार्य का कार्यालय आदि की प्रतिमाओं से अवगत हो जाते हैं। मानचित्र रूप, दूरी तथा

दिशा का प्रतिनिधित्व करते हैं। आप जिस शहर, कस्बा या गांव में रहते हैं उसके संज्ञानात्मक मानचित्र में अनेक भवनों, गलियों एवं चौराहों के संबंध की चित्रात्मक प्रतिमाएं शामिल रहती हैं।

स्कीमा : स्मृति में ज्ञान के संगठन एवं संचय के लिए प्रयुक्त एक दूसरे प्रकार की इकाई है। इन्हें हम सूचनाओं की थैलियां कह सकते हैं। हम विभिन्न संप्रत्ययों एवं श्रेणियों के विभिन्न स्कीमा (Schema) का उपयोग करते हैं। उदाहरणार्थ, आपके पास सब्जियों या पालतू पशुओं या पारिवारिक संबंधों का एक स्कीमा है। प्रत्येक स्कीमा में कुछ स्थिर एवं कुछ परिवर्तनशील भाग होते हैं। सभी पाले गए पशुपालनकर्ता के सीमा क्षेत्र में रहते हैं एवं इन्हें चारा दिया जाता है, इनकी रक्षा की जाती है तथा इनका भरण-पोषण किया जाता है। ये विभिन्न प्रकार के कार्यों में सहायक के रूप में प्रयुक्त होते हैं। ये इनकी अपरिवर्तनशील एवं स्थिर विशेषताएं हैं। फिर भी, बैलों को जुताई में, गायों को दूध के स्रोत के रूप में एवं कुत्तों को सुरक्षा के लिए काम में लाया जाता है। ये परिवर्तनशील विशेषताएं हैं। वस्तुतः ज्ञान का प्रत्येक अंश, छोटा हो या बड़ा, स्मृति में स्कीमा के रूप में संचित होता है। हम अपनी चेतना में स्थित प्रासंगिक स्कीमा को ध्यान में रखकर वस्तुओं एवं घटनाओं को पहचानते हैं, उनका प्रत्यक्षीकरण करते हैं और समारोहों व आयोजनों की योजना बनाते हैं।

स्क्रिप्ट : यह एक विशेष प्रकार का स्कीमा है। स्क्रिप्ट (Script) दैनिक गतिविधियों का वर्णन है। ये सामाजिक अंतःक्रिया के लिए बने होते हैं एवं इसमें एक दूसरे से जुड़ी एक कड़ी में शामिल गतिविधियां होती हैं। मान लीजिए कि आपको अपने प्रिय मित्र के जन्मदिन के उत्सव में भाग लेना है। इस स्थिति में आप क्या करते हैं? पहले आप अपने मित्र के लिए एक उपहार लेने के लिए सोचते हैं एवं एक उपहार खरीद लेते हैं। आप इसे अच्छी तरह से पैक करा लेते हैं तथा उस पर अपना नाम-पता सहित एक शुभकामना कार्ड चिपका देते हैं। आप उत्सव में पहनने के लिए एक सेट वस्त्र तैयार कर लेते हैं। इसी तरह आगे और भी कुछ करते हैं। लगभग सभी मित्र कमोबेश इसी प्रक्रिया से गुजरते हैं। यह आपकी स्मृति में संचित दैनिक क्रियाकलाप की एक स्कीमा है। स्क्रिप्ट के अनुक्रमिक (Sequential) स्वरूप के कारण किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए किसी क्रियाकलाप के संक्षिप्त वृतांत के आधार पर लोग कुछ निष्कर्ष निकालते हैं।

क्रियाकलाप 8.5

स्मृति में संगठनात्मक प्रक्रियाओं को समझना

1. *उन ज्यामितीय आकृतियों के नाम लिखिए, जिन्हें आप जानते हैं।*
2. *एक आवासीय घर में पाई जाने वाली वस्तुओं के नाम लिखिए।*
3. *एक हाथी का वर्णन करिए। क्या विवरण देते समय आपको एक हाथी की प्रतिमा की याद आई?*
4. *भवनों एवं खेल के मैदान का वर्णन करिए। क्या आप विवरण देते समय अपने स्कूल का मानसिक चित्रण करते हैं।*
5. *एक विवाह में क्या होता है, इसका वर्णन करिए।*

आप अपने सहपाठियों के विवरण से अपने विवरण की तुलना कीजिए तथा यह देखिए कि उनमें कितनी समानता एवं भिन्नता है।

आपने अब तक पढ़ा

दीर्घकालिक स्मृति भलीभाँति संगठित होती है एवं इससे सूचनाओं की पुनः प्राप्ति शीघ्र तथा सरल होती है। व्यक्तियों के अनुभव संप्रत्ययों एवं श्रेणियों के रूप में संगठित रहते हैं। प्रतिमाएं, संज्ञानात्मक मानचित्र, स्कीमा एवं स्क्रिप्ट स्मरण करने में सहायक होते हैं। संप्रत्यय एवं श्रेणियां क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित होते हैं। प्रतिमाओं को कोड करने की दुहरी प्रणाली होती है। संज्ञानात्मक मानचित्र स्थानगत पर्यावरण के चाक्षुष-स्थानिक चित्र होते हैं। मनुष्यों की दैनिक गतिविधि की रूपरेखा स्मृति में स्क्रिप्ट के रूप में संगठित रहती है। स्कीमा का ज्ञान संपूर्ण गतिविधि को समझने एवं उसके बारे में निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है।

आपने कितना सीखा

1. *स्मृति —————— की व्यवस्था मानी जाती है।*
2. *हम वाचिक कोड के अतिरिक्त —————— कोड का उपयोग स्मृति की क्षमता बढ़ाने हेतु करते हैं।*
3. *जिस तरह एक व्यक्ति का स्थानगत वातावरण स्मृति में व्यवस्थित रहता है, उसे —————— कहते हैं।*
4. *ज्ञान को संगठित तथा संचित करने में प्रयुक्त एक दूसरी इकाई —————— है।*

उत्तर — 1. संचय, 2. चाक्षुष, 3. संज्ञानात्मक मानचित्र, 4. स्कीमा।

स्मृति में रचना एवं पुनर्रचना

जब संवेदी सूचनाओं का संसाधन या प्रक्रमण गहन स्तर पर होता है तो वे संचय के लिए दीर्घकालिक स्मृति में पहुंचती हैं। गहन स्तर के प्रक्रमण का अर्थ है शब्दार्थ विषयक प्रक्रमण एवं भंडारित सूचनाओं का निरूपण। निरूपण या व्याख्या एक रचनात्मक प्रक्रिया है। मान लीजिए कि आप अपने स्कूल से घर लौट रहे हैं एवं आपको अपने पीछे लगभग दस गज की दूरी पर दो व्यक्ति आते दिखते हैं। आपको आशंका होती है कि शायद वे आपका पीछा कर रहे हैं, क्योंकि जब आप अपनी चाल धीमी करते हैं तो वे भी अपनी चाल धीमी कर लेते हैं। आप घर पहुंचते हैं एवं अपने घर में जाने के लिए मुड़ते हैं। तब आप पीछे मुड़कर देखते हैं तथा पाते हैं कि वे दोनों भी रुक गए हैं और घर की ओर देख रहे हैं। आप ऐसे अनुभवों के स्कीमा के अनुरूप इन उपलब्ध सूचनाओं की व्याख्या करते हैं। आपने इस तरह की घटनाओं के बारे में अवश्य सुना होगा। आप एक अनुभव की जिस प्रकार व्याख्या करते हैं वह स्मृति में संचित हो जाता है। आप इस अनुभव को अपने माता-पिता को सुनाते हैं। इस पर वे कुछ टिप्पणी करते हैं। आप उनको सुनते हैं और आपकी पहली व्याख्या कुछ-कुछ परिवर्तित हो जाती है। स्मृति को इस अर्थ में एक **रचनात्मक प्रक्रिया** के रूप में समझा जाता है।

अब एक दूसरा उदाहरण लीजिए। मान लीजिए, आप एक बंगाली लेखक द्वारा लिखी कहानी पढ़ते हैं। यह कहानी किसी पत्रिका के चार पृष्ठों में छपी है। कहानी पढ़ने के बाद आप पत्रिका बंद करते हैं और एक तरफ रख देते हैं। इस कहानी को उसी रूप में लिखिए जिस रूप में आपने उसे पढ़ा। लिखी गई कहानी को अपने पास रख लीजिए। चौबीस घंटे बाद उसी कहानी को एक दूसरे पन्ने पर फिर लिखिए। पुनः आप उसी कहानी को एक सप्ताह बाद तथा फिर एक महीने के बाद लिखिए। अब आप स्मरण की गई एवं लिखित कहानी के चारों प्रारूपों की तुलना कीजिए। आप देखेंगे कि क्रमिक पुनरुत्पादन के क्रम में कहानी कुछ छोटी हो गई है एवं सिमट गई है। यह कुछ हद तक तोड़-मरोड़ दी गई है। यह उपलब्ध वस्तुओं व आदतों के अनुसार निश्चित ही अधिक संगत रूप से संगठित एवं व्यवस्थित हो गई है। ऐसे परिवर्तन यह बताते हैं कि प्रत्याह्वान या पुनरुत्पादन एक **पुनर्रचनात्मक प्रक्रिया** है। प्रारंभिक रचना के अनुरूप संचित सामग्रियों एवं घटनाओं का पुनः स्मरण घटनाओं की प्रतिलिपि (मानो आप शीशे में अपनी छवि देख रहे हों) प्रस्तुत नहीं करता है। इसमें पुनर्रचना पुनरुद्धार के समय होती है।

रचनात्मक एवं पुनर्रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में स्मृति की मूलभूत विशेषताओं को संक्षेप में इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. *स्मृति एक निष्क्रिय भंडार नहीं वरन् एक सक्रिय प्रक्रिया है।* स्मृति में जो कुछ भी संचित किया जाता है वह या तो अनुभूत घटनाओं की व्याख्या होता है अथवा स्कीमा के रूप में कोई शब्दार्थ विषयक कोड होता है। हम जिनको स्मृति में संचित रखते हैं वे शब्दार्थ विषयक संकेत एवं चाक्षुष-स्थानिक स्कीमा होते हैं।
2. *रचना की प्रक्रिया वस्तु अथवा घटना के अनुमान के कूट संकेतन के समय उपस्थित होती है।* आप इसका कूट संकेतन किस प्रकार करते हैं। यह संवेदी अनुभवों के विश्लेषण को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के साथ संदर्भ, मनःस्थिति तथा मानसिक विन्यास पर निर्भर करता है। कूट संकेतन के इस पक्ष को आप अध्याय 6 में पढ़ चुके हैं। दूसरी ओर, पुनर्रचना की प्रक्रिया उस समय होती है जब व्यक्ति किसी भंडारित घटना की व्याख्या एवं उससे जुड़ी चाक्षुष स्थानिक प्रतिमा को पुनः पाने का प्रयास करता है। यह भी संभव है कि वैसी घटनाओं को दूसरे संदर्भ में सुनने, देखने और पढ़ने के कारण उनकी प्राथमिक रचना में कुछ अतिरिक्त रचना भी हुई हो।
3. मानव स्मृति संप्रत्ययों, प्रतिमाओं, संज्ञानात्मक मानचित्रों, स्कीमा एवं स्क्रिप्ट को संचित करने वाली मात्र एक संगठित व्यवस्था ही नहीं है वरन् एक सक्रिय व्यवस्था भी है। पुनरुद्धार के समय हम अपनी मूल व्याख्या की रचना को रूपांतरित कर देते हैं। आप किस रूप और क्रम में इसे पुनरुत्पादित करते हैं, यह संदर्भ एवं पुनरुद्धार के उद्देश्य पर निर्भर करता है। मान लीजिए कि जब विद्यार्थियों के दो समूह अपने पद-प्रतिष्ठा के समर्थन में उत्तेजित रूप से बहस कर रहे थे उस समय आप उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त यह भी मान लीजिए कि एक समूह ने दूसरे समूह के दो-तीन सदस्यों की पिटाई भी की। आप इस घटना का अनुभव करते हैं, इसकी व्याख्या करते हैं एवं इसे स्मृति में संचित कर लेते हैं। अगले दिन आपके विद्यालय के प्राचार्य आपको बुलाते हैं एवं घटना का

ब्यौरा देने के लिए कहते हैं। आप अपनी मूल व्याख्या के अनुरूप घटना को पुनरुत्पादित नहीं करने जा रहे हैं। आपकी अपनी रुचि, आग्रह, आशय एवं संदर्भ, पुनरुत्पादन के स्वरूप एवं संदर्भ को प्रभावित करेंगे। स्मृति इस अर्थ में ही पुनर्रचनात्मक होती है।

4. जब संवेदी निवेश प्रत्यक्षपरक रूप से विश्लेषित एवं व्याख्यायित होता है तो वह दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करता है। जैसा कि अपेक्षित है जो संवेदी तत्व घटना या सामग्री के संपूर्ण अर्थ के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं होते, उन पर कम ध्यान दिया जाता है। उनकी स्मृति कमजोर होती है। कुछ सामग्री प्रासंगिक नहीं हो सकती है और कुछ व्यर्थ होती है। वह कमजोर स्मृति का कारण बनती है। जो कुछ भी दीर्घकालिक स्मृति में पहचाना जाता है उसे संपूर्ण स्मृति तंत्र के साथ एकीकृत करना होता है। वे तत्व जो सुसंगत एवं अर्थपूर्ण नहीं होते हैं, कमजोर पड़ जाते हैं एवं समाप्त हो जाते हैं।

क्रियाकलाप 8.6

स्मृति रचना एवं पुनर्रचना

कक्षा 10 के 5 या 6 विद्यार्थियों को इस कार्य में भाग लेने के लिए अनुरोध करें। उन्हें एक कमरे में बैठाएं। बच्चों की पत्रिका से पहले से चुनी गई एक कहानी धीमी गति से पढ़कर सुनाएं। जब वे कहानी सुन चुके हों तो उनसे कहानी को एक अलग पन्ने पर लिखने के लिए कहें। कहानी लिख लें तो उन्हें इकट्ठा कर लें एवं उन्हें रख लें।

एक सप्ताह बाद उन छात्रों से कहानी को (जैसा या जितना उन्हें याद हो) पुनः लिखने के लिए कहें एवं लिखी कहानियों को इकट्ठा कर लें। प्रत्येक प्रतिभागी द्वारा लिखित कहानी के दोनों रूपों की तुलना कीजिए। प्रत्येक प्रारूप में वाक्यों की संख्या, प्रत्याह्वान न किए गए अंश, मूल कहानी के नाम, तथा वस्तुओं एवं घटनाओं में परिवर्तन को ज्ञात करें।

अपने परिणाम की विवेचना अध्यापक के साथ करें।

बाक्स 8.2 **प्रत्यक्षदर्शी की स्मृति**

सभी प्रकार के आपराधिक मामलों में दोषी के विरुद्ध प्रत्यक्षदर्शी का साक्ष्य सबसे विश्वसनीय प्रकार का प्रमाण माना जाता है। एक प्रत्यक्षदर्शी वह होता है, जिसने अपराध की घटना को होते समय देखा है, क्योंकि वह उस समय उपस्थित था। चूँकि प्रत्यक्षदर्शी शपथ लेकर घटना का वर्णन करता है अतः यह मान लिया जाता है कि वह घटना का सत्य विवरण देता है, क्योंकि अनुभूत घटनाएँ स्मृति में संचित होती हैं। निःसंदेह, सामान्य परिस्थितियों में स्मृति से पुनः स्मरण सामान्यतया परिशुद्ध होता है। हालांकि, यह भी सच है कि स्मृति, रचनात्मक एवं पुनर्रचनात्मक होने के कारण, हमेशा त्रुटिहीन नहीं होती है।

*एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन में **लाफ्टस** ने प्रतिभागियों के एक समूह को एक छोटी फिल्म दिखाई। इस फिल्म में दो कारों की टक्कर को दिखाया गया था। बाद में दर्शकों से, जो देखा गया था, उसके बारे में पूछा गया एवं उनसे कारों को टकराते समय उनकी गति के अनुमान को प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। वस्तुतः प्रयोगकर्ता ने प्रश्नों को भिन्न-भिन्न शब्दों में व्यक्त किया। कुछ दर्शकों से कारों की "टक्कर" के बारे में पूछा गया, कुछ से कारों को आपस में "रगड़" एवं "धक्का" मारने के बाद में पूछा गया। दर्शकों से पूछे गए प्रश्न से प्रयुक्त क्रिया (टक्कर/ठोकर/रगड़) के अनुसार कारों की गति का आकलन परिवर्तित हुआ। अतः जब "चकनाचूर" शब्द का प्रयोग किया गया तो कारों की अनुमानित गति 41 मील प्रति घंटा बताई गई। परंतु "स्पर्श" शब्द के उपयोग पर कारों की गति लगभग 31 मील प्रति घंटा बताई गई। यह प्रयोगशाला अध्ययन प्रदर्शित करता है कि प्रत्यक्ष देखी गई घटनाओं को बताने में किस प्रकार के परिवर्तन या तोड़-मरोड़ की संभावना होती है। बाद में किए गए क्रमिक प्रयोगों में लाफ्टस ने यह पाया कि प्रत्यक्षदर्शी द्वारा प्रेक्षण के बाद प्राप्त गलत सूचना प्रत्यक्षदर्शी की स्मृति को परिवर्तित करने में सक्षम होती है। यदि गलत सूचनाएं एक सप्ताह बाद दी जाती हैं तो ऐसी गलतियों की संभावना बढ़ जाती है। स्मृति के परिवर्तनों का होना बहुत ही आम बात है एवं लोग अक्सर नहीं समझ पाते हैं कि यह एक विकृति है। लोग अचेतन रूप से गलत सूचनाओं को ग्रहण कर लेते हैं।*

कानूनी मामलों में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की सार्थकता से हम सभी परिचित हैं, जिसमें दोषी अथवा निर्दोष व्यक्तियों को साक्ष्यों की सबलता (जैसे–प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य) के आधार पर दोषमुक्त ठहराया जाता है। अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि किसी घटना के बारे में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य साक्षी से पूछे गए प्रश्नों के शब्द चयन से प्रभावित हो सकता है। ऐसे साक्ष्य प्रायः केवल यह नहीं बताते हैं कि लोगों ने वास्तव में क्या देखा वरन् यह भी बताते हैं कि उन लोगों ने बाद में कौन-सी सूचनाएं प्राप्त कीं। प्रत्यक्षदर्शी का बयान उसके अभिवृत्ति एवं प्रत्याशा से प्रभावित हो सकता है।

आपने अब तक पढ़ा

स्मृति रचनात्मक एवं पुनर्रचनात्मक दोनों ही है। जब एक घटना सक्रिय स्मृति में विश्लेषित होती है तो यह एक रचना होती है तथा दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है। जब एक जैसी या परस्पर संबंधित घटनाओं या सामग्रियों का अनुभव किया जाता है तो एक सक्रिय व्यवस्था के रूप में स्मृति इन रचनाओं को नियत समय में परिवर्तित कर देती है। यह भी एक तथ्य है कि केवल वे ही तत्व विश्लेषित होते हैं जो प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण होते हैं। अप्रासंगिक विषयवस्तु के लिए स्मृति कमजोर हो जाती है। कहानियों का पुनरुद्धार एक संरचित, सुसंगत एवं क्रमबद्ध तरीके से की गई पुनर्रचना होता है।

आपने कितना सीखा

1. *स्मृति के बहुल भंडारण मॉडल में अभ्यास एक केंद्रीय धारणा है।* सही/गलत
2. *स्मृति बाह्य-जगत की एक प्रतिलिपि है।* सही/गलत
3. *आइकॉन उद्दीपक का प्रत्यक्ष निरूपण है।* सही/गलत
4. *प्रत्यक्षीकरण में स्मृति सम्मिलित है।* सही/गलत
5. *स्मृति के सक्रिय पक्ष में नई स्मृतियों का वास्तविक निर्माण सम्मिलित हो सकता है।* सही/गलत
6. *जब सूचनाओं का पुनरुद्धार तार्किक समूह के रूप में होता है तो उस संगठन को गुच्छन कहते हैं।* सही/गलत
7. *सांवेदिक स्मृति मात्र 10 सेकंड तक बनी रहती है।* सही/गलत
8. *एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किसी चीज को कैसे करना है इसकी धारणा को शब्दार्थ विषयक स्मृति कहते हैं।* सही/गलत
9. *वृत्तात्मक स्मृति व्यक्तिगत रूप से अनुभूत घटनाओं का एक माप है।* सही/गलत
10. *प्रत्यक्ष स्मृति के सभी मापकों में प्रत्याह्वान सभी स्थितियों में मापन योग्य धारणा की अधिक मात्रा प्रकट करता है।* सही/गलत
11. *वस्तुनिष्ठ प्रश्न प्रत्यभिज्ञा का एक परीक्षण है।* सही/गलत
12. *संप्रत्ययात्मक अनुक्रम में व्यवस्थित सामग्रियों का प्रस्तुतीकरण आमतौर पर स्मृति को कम करता है।* सही/गलत

उत्तर – 1. सही, 2.गलत, 3. सही, 4. सही, 5. सही, 6. सही
7. गलत, 8. गलत, 9. सही, 10. गलत, 11. सही, 12. गलत।

विस्मरण

यदि कोई आपसे, आप जहाँ पढ़ रहे हैं, उस विद्यालय में आपके प्रथम दिन की घटित घटनाओं के प्रत्याह्वान के लिए कहे, तब इसकी सम्भावना काफी है कि आप ज्यादातर घटनाओं को याद कर बताने में सफल हो सकेंगे। हालांकि, यह भी एक तथ्य है कि अधिकांश घटनाएँ जो आपके दैनिक जीवन में घटित होती हैं, आपको याद नहीं रहतीं। क्या आपको वे सभी निबंध और उनके शीर्षक याद हैं जिन्हें आपने कक्षा सात में अपने अंग्रेजी विषय में पढ़ा था? कदाचित् नहीं। आप पहले घटी हुई बहुत-सी घटनाओं के पुनरुद्धार में असफल हो जाते हैं। इसका अर्थ है कि आप इन्हें भूल चुके हैं। जिस प्रकार स्मृति एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रम है, उसी तरह विस्मरण भी। विस्मरित हुए अधिकांश अनुभवों का आपके वर्तमान जीवन में कोई उपयोग नहीं होता है। किंतु यह भी सत्य है कि बहुत-से अनुभव आप याद करना चाहते हैं लेकिन कर नहीं पाते। उदाहरणार्थ, पहले याद कर चुकने के बाद भी बहुत-से छात्र बहुत-से प्रश्नों के उत्तरों का प्रत्याह्वान करने में असमर्थ होते हैं। अब प्रश्न यह है कि : "लोग कैसे और क्यों भूल जाते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर पहले की घटनाओं के प्रत्याह्वान में असमर्थ होते हैं?" आप पहले ही जानते हैं कि स्मृति के तीन प्रमुख घटक होते हैं : कूट संकेतन, स्मृति में संचय तथा पुनरुद्धार। विस्मरण किसी भी चरण में असफलता के कारण हो सकता है। विस्मरण कूट संकेतन की विफलता, या भंडारण या संचय में विफलता या पुनरुद्धार में विफलता के कारण हो सकता है। आइए, इन विफलताओं के स्वरूप का कुछ विस्तार से अध्ययन करें।

कूट संकेतन की विफलता : व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं के अनुभवों की स्मृति में प्रक्रमण या प्रत्यक्षपरक विश्लेषण न हो पाने के कारण प्रचुर मात्रा में विस्मरण होता है। आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि हमारे अनुभवों के दीर्घकालिक स्मृति का अंग बनने से पहले सांवेदिक सूचनाओं का गहन स्तर पर प्रक्रमण आवश्यक होता है। अल्पकालिक स्मृति की भंडारण क्षमता सीमित होती है। परिणामस्वरूप इसमें पहुंचने वाली सूचना उस दूसरी सूचना द्वारा बाहर कर दी जाती हैं, जो बाद के सांवेदिक उद्दीपकों पर ध्यान केंद्रित हो जाने से इसमें आती हैं। इसे *विस्थापन* (Displacement) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त गहन स्तर पर प्रक्रमण के अभाव में ह्रास भी हो सकता है। ऐसी स्थिति में अनुभव की गई सूचनाएं

बाक्स 8.3 **विशिष्ट स्मृति गोचर**

स्मृति का अध्ययन एक आकर्षक क्षेत्र है एवं शोधकर्ताओं ने अनेक नए गोचरों को प्रस्तुत किया है। निम्नलिखित गोचर मानव स्मृति के जटिल एवं गत्यात्मक स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं।

फ्लैश बल्ब स्मृतियाँ : *ये बहुत उद्वेलित या आश्चर्यचकित करने वाली घटनाओं की स्मृतियाँ होती हैं। ऐसी स्मृतियाँ बहुत विस्तृत होती हैं। ये एक विकसित कैमरे से लिए गए चित्रों के समान होती हैं। आप बटन दबा सकते हैं, एवं एक मिनट बाद आपके पास दृश्य का पुनर्सृजन होता है। आप जब चाहें चित्रों को देख सकते हैं। फ्लैश बल्ब स्मृतियाँ (Flash Bulb Memories) स्मृति में जमी हुई प्रतिमाओं जैसी होती हैं जो विशिष्ट स्थान, तिथि एवं समय से जुड़ी होती हैं। सम्भवतः लोग अपनी स्मृतियों के निर्माण के लिए अधिक प्रयास करते हैं एवं घटना के विस्तृत पक्ष को उजागर करना गहन स्तर के प्रक्रमण को उत्पन्न करता है साथ ही पुनरुद्धार के लिए अधिक संकेत देता है।*

आत्मकथात्मक स्मृति : *ये व्यक्तिगत स्मृतियाँ होती हैं। ये हमारे संपूर्ण जीवन में समान रूप से वितरित नहीं होती हैं। हमारे जीवन के कुछ चरण दूसरे चरणों की तुलना में अधिक स्मृतियाँ उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ, पूर्वबाल्यावस्था, विशेष रूप से प्रथम 4 या 5 वर्षों की कोई घटना याद नहीं हो पाती है। इसे बाल्यावस्था स्मृतिलोप (Amnesia) कहते हैं। प्रारंभिक वर्षों के ठीक बाद याद आने वाली स्मृतियों की संख्या में आकस्मिक वृद्धि होती है एवं पूर्व वयस्कावस्था, अर्थात् 20-29 वर्ष में यह सर्वाधिक होती हैं। शायद, संवेगात्मकता, नवीनता एवं महत्त्व इसमें योगदान देते हैं। इसके बाद नई स्मृतियाँ क्रमशः कम होती जाती हैं। वृद्धावस्था में जीवन के बहुत हाल के वर्षों को अच्छी तरह से याद रहने की संभावना होती है। इसके पहले 30 से 40 वर्ष की उम्र में ह्रास होता है।*

मिथ्या स्मृति संलक्षण : *यह उन अनुभवों जिनका व्यक्ति पूर्व में दमित होने का दावा करता है, के गलत या विकृत स्मृति पर आधारित विचारों, अनुभूतियों एवं क्रियाओं का प्रारूप है। यह संलक्षण उन पुनः प्राप्त स्मृतियों की वैधता पर प्रश्न चिह्न लगाता है, जिनमें व्यक्ति पहले के मनोघातजन्य अनुभवों की स्मृतियों का वर्णन करता है। विकृति के फलस्वरूप व्यक्ति गलत स्मृतियों का न केवल वर्णन करता है बल्कि उन पर पूर्ण रूप से विश्वास भी करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि मनोघातजन्य अनुभवों का अवदमन नहीं हो सकता। इसका केवल यह अर्थ है कि हमें अधिक सावधानी रखनी चाहिए और अवदमित स्मृतियों के दावों को सहजता से नहीं स्वीकार करना चाहिए। वे चिकित्सक जो स्मृति पुनः प्राप्ति की तकनीकों का प्रायः उपयोग करते हैं, लोगों को सम्मोहन से भ्रामक स्मृति को उत्पन्न करने में सहायता कर सकते हैं।*

अप्रत्यक्ष स्मृति : *हाल के अध्ययन यह बताते हैं कि बहुत-सी स्मृतियाँ व्यक्ति की चेतन जानकारी से बाहर रहती हैं। अप्रत्यक्ष स्मृति (Implicit Memory) ऐसी स्मृति है जिसकी जानकारी व्यक्ति को नहीं रहती है। यह वह स्मृति है जिसका अचेतन रूप से पुनरुद्धार होता है। अप्रत्यक्ष स्मृति का एक दिलचस्प उदाहरण टंकण का अनुभव है। यदि कोई व्यक्ति टंकण करना जानता है तो इसका अर्थ है कि कुंजी-फलक (की बोर्ड) पर विशिष्ट अक्षरों को भी जानता है। किंतु बहुत-से टाइप करने वाले लोग टंकण-यंत्र के रेखा-चित्र में कुंजी को सही-सही अंकित नहीं कर सकते हैं। अप्रत्यक्ष स्मृतियाँ चेतना की परिधि के बाहर रहती हैं। दूसरे शब्दों में, हमें इस तथ्य की चेतना नहीं होती है कि किसी दिए हुए अनुभव की स्मृति का अस्तित्व है फिर भी अप्रत्यक्ष स्मृतियाँ हमारे व्यवहार को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार की स्मृति मस्तिष्क क्षति से पीड़ित रोगियों में पाई गई है। इनको सामान्य शब्दों की एक सूची दी गई। कुछ मिनट के बाद रोगी को सूची के शब्दों के प्रत्याह्वान के लिए कहा गया। उसने शब्दों की स्मृति का प्रदर्शन बिल्कुल नहीं किया। किंतु यदि उसे उकसाया गया कि कृपया वे शब्द बोलें जो इन अक्षरों से शुरू होते हैं तथा दो अक्षर दिए गए। तब रोगी शब्दों के प्रत्याह्वान में सक्षम हो गया। अप्रत्यक्ष स्मृति सामान्य स्मृतियों वाले लोगों में भी पाई जाती है।*

सापेक्षिक रूप से स्थायी संचय हेतु दीर्घकालिक स्मृति में नहीं पहुँच पाती हैं। अतः कूट संकेतन की विफलता के कारण व्यक्ति में विस्मरण होता है।

संचय या भंडारण की विफलता : दीर्घकालिक स्मृति में संचय की विफलता (Storage Failure) के कारण भी बड़ी मात्रा में विस्मरण होता है। यह पाया गया है कि दीर्घकालिक स्मृति से विस्मरण बहुत-से घटकों के कारण हो सकता है। बहुत लंबे समय तक संचित सामग्री के उपयोग न होने (Disuse) के कारण, स्मृति चिह्नों के ह्रास हो जाने से ऐसा हो सकता है। अनुपयोग के कारण स्मृति चिह्न धुंधले पड़ जाते हैं और अन्ततः अप्राप्य हो जाते हैं। प्रायः स्मृति चिह्न दीर्घकालिक स्मृति में होते हैं, किंतु सूचनाओं के पुनरुद्धार

की उपयुक्त खोज में परिस्थितिजन्य कारकों के द्वारा बाधा के कारण हम सोचते हैं कि स्मृति चिह्न हमेशा के लिए नष्ट हो गए प्रतीत होते हैं, किंतु वे कभी भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होते। उपयोग में न होने पर समय के साथ स्मृति दुर्बल होती जाती है। यदि आप एक बार शब्दों की सूची या एक कविता याद कर लेते हैं और बहुत लंबे समय (मान लीजिए कई वर्ष) तक उसका उपयोग नहीं करते हैं तब आप उसका प्रत्याह्वान नहीं कर सकेंगे। स्मरण कराने का प्रयास करने से भी कुछ सहायता नहीं मिलती। किंतु यदि आप उसे पढ़ें और याद करने का प्रयास करें, तब आप बहुत सरलता से ऐसा करने में सफल हो सकेंगे।

पुनरुद्धार की विफलता : यह विस्मरण का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। ऐसी विफलताएँ अनेक कारणों से हो सकती हैं। इनमें पहला कारक है स्मरण का संदर्भ। यदि आपने स्मरण किसी एक संदर्भ में किया है किंतु किसी दूसरे भिन्न संदर्भ में प्रत्याह्वान का प्रयास कर रहे हैं, तब यह संभव है कि आप उसे भूल जाएँ या सही पुनरुद्धार करने में असफल हो जाएं। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि आप अपने मामा के घर जाते हैं और वहां एक सप्ताह तक रुकते हैं। आप बहुत सारे अनजान लोगों से मिलते हैं और उनसे भली भाँति परिचित हो जाते हैं। वे लोग और उनसे आपकी अन्तःक्रियाएँ आपकी दीर्घकालिक स्मृति में कूट संकेतित हो जाती हैं। अब मान लीजिए कि आप उनमें से एक को अपने मित्र के जन्मदिन के उत्सव पर देखते हैं। संदर्भ का परिवर्तित होना उसके साथ आपके अनुभवों के पुनरुद्धार को बाधित कर देता है। यदि वह आपको आपके मामा के घर का स्मरण कराता है, तब संभव है कि आप सारी चीजों का प्रत्याह्वान कर लें और स्मृति में उनके ढूँढ़ने में सक्षम हों।

पुनरुद्धार की विफलता का दूसरा कारण उन सामग्रियों का स्वरूप होता है, जो लक्षित स्मृति खण्ड के पहले और बाद की स्मृति में संचित होते हैं। इसे **व्यतिकरण** (Interference) के कारण पुनरुद्धार की विफलता कहा जाता है। यह पाया गया है कि स्मृति में मूल रूप से कूट संकेतित तथा संचित सामग्री एवं तुरंत बाद कूट संकेतित एवं संचित सामग्री में समानता होती है, तब बड़ी मात्रा में पुनरुद्धार की विफलता या विस्मरण उत्पन्न होता है। यह इसलिए संभव है कि बाद में संचित सामग्री सही पुनःस्मरण में हस्तक्षेप करती है। प्रायः पुरानी स्मृतियाँ नई स्मृतियों के पुनरुद्धार में हस्तक्षेप करती हैं। इसे **अग्रोन्मुख व्यतिकरण** (Proactive Interference) कहते हैं (अग्र का अर्थ है आगे)। दूसरी तरफ, जब पुरानी स्मृति के पुनरुद्धार में नई स्मृतियाँ हस्तक्षेप करती हैं, तब इसे **पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण** (Retroactive) कहते हैं (पृष्ठ का अर्थ है पीछे की ओर)। इन दोनों प्रकार के व्यतिकरणों का अध्ययन दो अलग-अलग तरीकों से किया जाता है। इन्हें तालिका 8.2 में दर्शाया गया है।

तालिका 8.2 : अग्रोन्मुख एवं पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण के अध्ययन में प्रयुक्त प्रायोगिक अभिकल्प

अग्रोन्मुख व्यतिकरण			
प्रायोगिक दशा :	सूची अ का सीखना	सूची ब का सीखना (अ से संबंधित)	सूची ब का प्रत्याह्वान
नियंत्रित दशा :	कुछ असंबंधित कार्य करना	सूचीं ब का सीखना	सूची ब का प्रत्याह्वान
पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण			
प्रायोगिक दशा :	सूची अ का सीखना	सूची ब का सीखना (अ से संबंधित)	सूची अ का प्रत्याह्वान
नियंत्रित दशा :	सूची अ का सीखना	कोई असंबंधित कार्य करना	सूची अ का प्रत्याह्वान

मान लीजिए कि आप पहले सीखी गई सामग्री की स्मृति से पुनरुद्धार को प्रभावित करने वाले अग्रोन्मुख व्यतिकरण को उत्पन्न करना चाहते हैं। दस स्वेच्छा से भाग लेने वाले प्रतिभागियों को चुनिए और उन्हें पाँच-पाँच के दो समूहों में बाँटिए। आप शब्दों की दो सूचियाँ बनाइए जिनमें प्रत्येक में पंद्रह शब्द हों। दूसरी सूची प्रथम सूची के शब्दों की पर्यायवाची होनी चाहिए। प्रतियोगियों को सूची अ का सीखना सभी शब्दों के एक त्रुटिरहित प्रत्याह्वान की कसौटी तक कराइए फिर इन समूहों के सभी प्रतिभागियों से सूची ब का सीखना उसी कसौटी तक करने को कहिए। एक घंटे या अधिक के अंतराल के बाद प्रतिभागियों से दूसरी सूची अर्थात् सूची ब के शब्दों के प्रत्याह्वान के लिए कहिए। सही-सही याद किए गए सूची अ के शब्दों को लिखिए। अब आपको नियंत्रित समूह के लिए जो करना है उसे करिए तथा साथ ही प्रायोगिक दशा के लिए भी। दोनों प्रकार के व्यतिकरण में आप पाएंगे कि नियंत्रित समूह की अपेक्षा प्रायोगिक समूह कम मात्रा में सही प्रत्याह्वान करता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब एक जैसी सूचियों को सीखा जाता है, तब वे मूल सूची के सही प्रत्याह्वान में बाधा या व्यतिकरण उत्पन्न करती है।

यह प्रायोगिक रूप से दर्शाया गया है कि अग्रोन्मुख तथा पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण घटित होते हैं तथा यह स्पष्ट किया गया है कि इन व्यतिकरणों के कारण विस्मरण होता है। पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण का प्रभाव अग्रोन्मुख व्यतिकरण की अपेक्षा अधिक होता है। विशिष्ट रूप से स्मरण तथा पुनरुद्धार के बीच अंतराल कम होने पर पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण के कारण विस्मरण अधिक होता है। हालांकि यह प्रभाव तब समाप्त हो जाता है जब बीच में आने वाला अंतराल लंबा हो, क्योंकि दोनों प्रकार के व्यतिकरणों का प्रभाव समान हो जाता है।

कोडिंग की विशिष्टता तथा संकेताश्रित विस्मरण : व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं के हमारे अनुभव विभिन्न संदर्भों में घटित होते हैं तथा उनका प्रक्रमण और व्याख्या उन्हीं विशिष्ट संदर्भों के सापेक्ष होती है। मान लीजिए कि आप किसी व्यक्ति से एक विवाह समारोह में मिलते हैं; आपका उनसे परिचय कराया जाता है और आप दोनों कुछ देर के लिए आपस में बातचीत करते हैं। उसके बाद एक लंबा अरसा बीत जाता है। इसके बाद आप अचानक एक दिन उस व्यक्ति से मिलते हैं। आप उसे न तो पहचान पाते हैं और न ही उसका नाम आपको याद है। ऐसा इसलिए हुआ कि संदर्भ भिन्न है और स्मृति में उसको खोजने के लिए आवश्यक संकेत आपके पास नहीं हैं। यह पाया गया है कि वृत्तात्मक स्मृति (Episodic Memory) में वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं का कूट संकेतन उन परिस्थितियों पर ध्यान केंद्रित करके करते हैं, जिनमें वे समय और स्थान के साथ घटित होती हैं। अतः सूचनाओं के कूट संकेतन का तरीका उस परिस्थिति के लिए विशिष्ट होता है। यदि समय तथा स्थान के संकेत उपलब्ध रहते हैं तब बहुत कम विस्मरण होता है। दूसरी ओर यदि ये संकेत उपलब्ध नहीं होते हैं तब इस प्रकार के अधिकांश अनुभव भूले हुए से लगने लगते हैं।

क्रियाकलाप 8.7

विस्मरण को समझना

नीचे शब्दों की दो सूचियाँ दी गई हैं। पहली सूची का सीखना इस तरह करिए कि आप सभी शब्दों का बिना किसी त्रुटि के प्रत्याह्वान कर सकें। अब दूसरी सूची लीजिए और उसे बिना एक भी त्रुटि के सभी शब्दों के सही प्रत्याह्वान की कसौटी तक याद कीजिए। अब सूची को छोड़ दीजिए और एक घंटे तक कुछ और पढ़िए। अब पहली सूची के शब्दों का प्रत्याह्वान कीजिए और उन्हें लिखिए। सही प्रत्याह्वान किए गए शब्दों की कुल संख्या तथा गलत प्रत्याह्वान किए गए शब्दों की संख्या को गिनिए।

सूची I : *बकरी, भेड़, चीता, सियार, बंदर, ऊँट, खच्चर, हिरन, गिलहरी, घोड़ा, तेंदुआ, भेड़िया, साँप, चिड़िया, तोता।*

सूची II : *सूअर, हाथी, गधा, कबूतर, कोबरा, बाघ, शेर, बछड़ा, भालू, लोमड़ी, कौआ, भैंस, चूहा।*

अपने एक मित्र का सहयोग लीजिए और ऊपर दी गई कसौटी तक सूची एक के शब्दों को याद करने का अनुरोध कीजिए। सीखने के बाद उससे एक गाना गाने का तथा अपने साथ एक प्याली चाय पीने का अनुरोध कीजिए। उसे लगभग एक घंटे या अधिक समय तक व्यस्त रखिए। अब उसे पहले याद किए गए शब्दों को लिखने का अनुरोध कीजिए।

अपने मित्र द्वारा किए गए प्रत्याह्वान के साथ अपने प्रत्याह्वान की तुलना कीजिए।

आपने अब तक पढ़ा

विस्मरण अर्थात् भूलना स्मृति की एक मौलिक विशेषता है। कूट संकेतन, भंडारण या पुनरुद्धार की असफलता के कारण हम भूलते हैं। अल्पकालिक स्मृति में कूट संकेतन की असफलता पाई जाती है। सांवेदिक सूचना गहन स्तर पर कूट संकेतन के अभाव के कारण क्षीण हो जाती है या उचित रीति से कूट संकेतन होने के पहले ही दूसरी सूचनाओं के द्वारा बाहर कर दी जाती है। संचय में असफलता संचित सूचनाओं के दीर्घकालिक अनुपयोग या स्मृति चिह्नों के लुप्त होने के कारण पैदा होती है। बड़े पैमाने पर विस्मरण के लिए पुनरुद्धार की असफलता उत्तरदायी होती है, जो प्रासंगिक संकेतों के अभाव, अग्रोन्मुख एवं पृष्ठोन्मुख व्यतिकरण, या कूट संकेतन के विशिष्ट संकेतों की अनुपलब्धता के कारण हो सकता है।

आपने कितना सीखा

1. *व्यतिकरण बताता है कि एक सामग्री के सीखने के साथ-साथ दूसरी सामग्री के पुनरुद्धार में कमी आ जाती है।* *सही/गलत*
2. *आप एक घंटे तक हिंदी पढ़ते हैं एवं उसके बाद आप एक घंटे तक अंग्रेजी पढ़ते हैं। ऐसी स्थिति में अग्रोन्मुख व्यतिकरण के कारण संभव है कि आप हिंदी का कुछ भाग भूल जाएँ।* *सही/गलत*
3. *सर्वाधिक विस्मरण तब उत्पन्न होता है जब बीच की सामग्री प्रत्याह्वान की जाने वाले सामग्री के समान हो।* *सही/गलत*
4. *वह सूचना जो आपको संचित सूचना को प्राप्त करने की सुविधा देती है। उसे भंडारण संकेत कहते हैं।* *सही/गलत*
5. *कूट संकेतन की प्रक्रियाएँ यह निर्धारित करती हैं कि क्या भंडारित होगा एवं क्या भंडारित है से पुनरुद्धार की प्रभावशीलता का निर्धारण होता है। यह कूट संकेतन विशिष्टता का नियम है।* *सही/गलत*

उत्तर – 1. सही, 2. गलत, 3. सही, 4. सही, 5. सही।

स्मृतिलोप

स्मृतिलोप का अर्थ है विस्मरण। यह स्मृति की आंशिक या पूर्ण क्षति है। इसमें स्मृति भंडारण की गंभीर क्षति या कूट संकेतन योग्यता की क्षति या पुनरुद्धार क्षमता की हानि शामिल हो सकती है। स्मृतिलोप की गंभीरता भिन्न-भिन्न रोगियों में भिन्न होती है। उपचार के बाद स्मृति की यह क्षति कुछ रोगियों में आंशिक रूप से तो कुछ रोगियों में पूर्ण रूप से सुधर जाती है। कुछ रोगी स्मृतिलोप से कभी भी उबर नहीं पाते हैं। स्मृतिलोप के कुछ मुख्य प्रकारों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

क्षणिक स्मृतिलोप : क्षणिक स्मृतिलोप के कारण पुनरुद्धार क्षमता में अस्थायी कमी उत्पन्न हो जाती है। ऐसा कई तरह के कारकों के कारण उत्पन्न होता है। कोई व्यक्ति यदि वाहनों के धुएँ में निकलने वाले कार्बन मोनोऑक्साइड के विषैले प्रभाव में हो या उसे यदा-कदा मिर्गी के दौरे आते हों, या उसने विद्युत् आघात चिकित्सा कराई हो या निम्न रक्त शर्करा का रोगी हो या उसके सिर के अंदर चोट लगी हो तो उसकी स्मरण शक्ति में अस्थायी कमी आ सकती है। इसे क्षणिक स्मृतिलोप (Transient Amnesia) कहते हैं।

आंगिक स्मृतिलोप : विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं के कारण मस्तिष्क में स्नायविक क्षति उत्पन्न करने वाली मस्तिष्क में लगी तरह-तरह की चोटों के कारण भी स्मृतिलोप होता है। इसी तरह कुछ लोगों के मस्तिष्क में गाँठ (ट्यूमर) होता है। ऐसे ट्यूमर यदि एक सीमा से अधिक बड़े हो जाते हैं तो उसके कारण स्मृति की क्षति हो जाती है। कुछ रोगियों में मस्तिष्कीय शल्यक्रिया के कारण भी स्मृति की हानि हो जाती है। विभिन्न प्रकार के स्मृतिलोप अपने लक्षणों एवं उत्पन्न होने के समय के आधार पर अलग-अलग होते हैं। बचपन में लगने वाली मस्तिष्कीय चोट अपना प्रभाव किशोरावस्था या प्रौढ़ावस्था में प्रदर्शित कर सकती है। मनोस्नायुवैज्ञानिक मस्तिष्कीय चोट के रोगियों में दो प्रकार के स्मृतिलोप – अग्रगामी एवं पृष्ठगामी – के बीच अंतर करते हैं।

पृष्ठगामी स्मृतिलोप : यह ऐसा स्मृतिलोप है जिसमें स्मृतिहानि उत्पन्न करने वाले आघात के पहले की घटनाओं की स्मृति पूरी तरह से लुप्त हो जाती है। हालांकि यह रोचक एवं उल्लेखनीय है कि पृष्ठगामी स्मृतिलोप के सभी रोगियों में किसी न किसी तरह का पृष्ठगामी स्मृतिलोप पाया जाता है। यह पाया गया है कि वह काल अवधि जिसकी घटनाओं का लोप हुआ है, भिन्न-भिन्न रोगियों में अलग-अलग होती है। जिस अवधि की स्मृतियों की हानि होती है वह कई दशकों की हो सकती है। कुछ ऐसे रोगी उस संसार का जिसमें वे रहते हैं, सही ज्ञान बनाए रखते हैं; वे भाषिक, प्रात्यक्षिक

बाक्स 8.4 **संवेग एवं स्मृति**

स्मृति, जो संज्ञान एवं संज्ञानात्मक क्रियाओं का मूलभूत अंग है, लोगों की सांवेगिक स्थिति के द्‌वारा प्रभावित होती है। संवेग ऐसी भावात्मक स्थिति है, जिससे लोग अपने दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों में प्रायः गुजरते हैं। आप स्वादिष्ट भोजन करते हैं, उससे आनंद प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। आपको उच्च अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है एवं आप उससे गर्व का अनुभव करते हैं। आपके सहपाठी द्‌वारा की गई अपमानजनक टिप्पणी आपको क्रुद्‌ध कर देती है एवं आप बदला लेने का निर्णय लेते हैं। इन सभी एवं अन्य सांवेगिक स्थितियों में हमारी मनोदशा में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन सुखद/प्रिय या दुःखद/अप्रिय हो सकता है तथा हमारी स्मृति की कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है।

मनोदशा या मूड

यह पाया गया है कि दुखद या तटस्थ सामग्रियों की तुलना में सुखद सामग्रियों की स्मृति बहुत अधिक समय तक बनी रहती है। यही कारण है कि उनका प्रत्याह्‌वान दुःखद सामग्रियों की तुलना में लंबे समय अंतराल के बाद भी अधिक मात्रा में होता है। यहां एक सामान्य प्रकार का पॉलियाना नियम कार्य करता है। इस नियम के अनुसार सुखद वाचिक या अवाचिक सामग्रियाँ दुःखद सामग्रियों की तुलना में अधिक परिशुद्‌ध एवं प्रभावशाली तरीके से प्रक्रमित की जाती हैं। संवेग का स्मृति पर प्रभाव के संबंध में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम (सामग्री के स्वरूप से निरपेक्ष) अनुभव के कूट संकेतन एवं पुनरुद्‌धार के समय की मनोदशाओं में संगति से जुड़ा है। वयस्कों में यह पाया गया है कि किसी विशेष अनुभव के कूट संकेतन के समय जो मनोदशा थी तो उसी मनोदशा में होने पर वे अधिक मात्रा में प्रत्याह्‌वान कर पाते थे।

***अभिघात या सदमा वाले अनुभव** (Traumatic Experiences)*

*कुछ व्यक्तियों को मानसिक आघात या सदमा पहुंचाने वाले अनुभवों से गुजरना पड़ता है। मनो-आघात या सदमा इस प्रकार का अत्यन्त पीड़ादायी एवं चिंता पैदा करने वाला अनुभव है जो मनोस्नायु विकृति को जन्म देता है। सदमा वाला अनुभव एक व्यक्ति को सांवेगिक रूप से आहत करता है। सिग्मंड फ्रायड का मानना था कि ऐसे अनुभव अचेतन में दबा दिए जाते हैं (Repressed) एवं स्मृति से पुनरुद्‌धार (पुनः प्राप्ति) के लिए अनुपलब्ध रहते हैं। अत्यधिक पीड़ादायी एवं क्षुब्ध कर देने वाले अनुभवों को विस्मरण के कूड़ेदान में फेंक देने की एक सार्वभौमिक प्रवृत्ति पाई जाती है। यह एक प्रकार का **अभिप्रेरित विस्मरण** (Motivated forgetting) है। अवदमन की प्रक्रिया के द्‌वारा पीड़ादायी, भयाक्रांत एवं व्याकुल कर देने वाली स्मृतियाँ चेतना के बाहर रखी जाती हैं।*

कुछ व्यक्तियों में सदमा से पैदा होने वाले अनुभव मनोजन्य या मानसिक स्मृतिलोप को जन्म दे सकते हैं। कुछ व्यक्ति एक या अनेक संकटों का अनुभव करते हैं एवं ऐसी घटनाओं के साथ समायोजन स्थापित करने में पूर्णतः अक्षम होते हैं। जीवन की ऐसी कठोर वास्तविकताओं से ये लोग अपने आंख, कान एवं मन को बंद कर लेते हैं एवं उनसे मानसिक पलायन कर लेते हैं। इसके फलस्वरूप अत्यन्त सामान्यीकृत स्मृतिलोप उत्पन्न होता है।

***आत्म-विस्मृति अवस्था** (Fugue State)*

इस मानसिक रोग की उत्पत्ति इस तरह के पलायन का एक परिणाम है। ऐसी अवस्था के शिकार व्यक्ति अपनी पहचान, नाम व पता आदि भूल जाते हैं। ये एक नई पहचान एवं भिन्न नाम बना लेते हैं। इनके दो व्यक्तित्व होते हैं एवं दोनों एक-दूसरे के बारे में अपरिचित रहते हैं।

प्रतिबल (Stress) या अत्यधिक चिंता के कारण विस्मरणशीलता या स्मृति की हानि कोई बहुत असाधरण घटना नहीं है। बहुत से महत्त्वाकांक्षी एवं कठोर श्रम करने वाले विद्‌यार्थी वार्षिक परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करने की कामना रखते हैं एवं इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए घंटों पढ़ते हैं। परंतु जब उन्हें प्रश्नपत्र मिलता है तो वे अत्यधिक तनावग्रस्त हो जाते हैं एवं जिन बातों की वे अच्छी तैयारी किए थे वह सब भूल जाते हैं।

एवं सामाजिक कौशलों को भी अक्षुण्ण बनाए रखते हैं एवं अपनी बौद्‌धिक क्षमता के स्तर को भी बनाए रखते हैं। वे अपने दैनिक जीवन को सफलतापूर्वक चलाते रहते हैं।

अग्रगामी स्मृतिलोप : इस प्रकार के स्मृतिलोप में उन अनुभवों की स्मृति की हानि या क्षति होती है, जिनकी अनुभूति स्मृतिलोप पैदा करने वाले आघात के बाद होती है। इस तरह का स्मृतिलोप दीर्घकालिक स्मृति को व्यापक क्षति पहुंचाता है परंतु अल्पकालिक स्मृति पहले के समान प्रभावशाली बनी रहती है। ऐसे कुछ रोगी चाक्षुष, श्रव्य, त्वक्, घ्राण एवं स्वाद संग्राहकों से प्राप्त सूचना का प्रक्रमण करने में तो सक्षम होते हैं, परंतु उन्हें दीर्घकालिक स्मृति में स्थानांतरित नहीं कर पाते। इस प्रकार का स्मृतिलोप रोग उत्पन्न होने के पहले अर्जित किए हुए सामान्य ज्ञान को प्रभावित नहीं करता है।

स्मृति का सुधारना

आप यह पहले ही पढ़ चुके हैं कि संवेदी संग्राहकों से सूचनाएं अल्पकालिक स्मृति तक पहुंचती हैं। यदि सूचनाओं का गहरे स्तर तक प्रक्रमण एवं उनका दीर्घकालिक स्मृति तक अंतरण नहीं होता तो उनमें से अधिकांश सूचनाएं नष्ट हो जाती हैं। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि दीर्घकालिक स्मृति में विशेष रूप से वृत्तात्मक स्मृति में संचित ढेर सारी सूचनाएं भंडारण क्षति या पुनरुद्धार असफलता के कारण भूल जाती हैं। अब यहाँ एक दूसरा प्रश्न उठाया गया है। क्या एक व्यक्ति की स्मृति को सुधारना सम्भव है जिससे कि वह आवश्यकता पड़ने पर आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण सूचनाओं का भलीभाँति कूट संकेतन, उपयुक्त भंडारण एवं आसानी से पुनरुद्धार कर सके? लंबे समय से मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रश्न पर ध्यान दिया है। इन्होंने **स्मृति-विज्ञान/स्मृति-प्रशिक्षण विज्ञान** (Mnemonics) का विकास किया, जिसका अर्थ है स्मृति प्रशिक्षण की कला या पद्धति। आज स्मृति प्रशिक्षण के लिए ढेर सारी तकनीकें तथा उपकरण उपलब्ध हैं। इनके उपयोग द्वारा एक व्यक्ति अपने कूट संकेतन, संचय एवं पुनरुद्धार की क्षमताओं का विकास कर सकता है। आइए, इनमें से कुछ तकनीकों को थोड़ा विस्तार में देखें।

स्मृति विज्ञान या स्मरणोपकारी विधि

स्मरणोपकारी विधि स्मृति को सुधारने वाली योजनाओं का एक समूह है, जिसमें चाक्षुष बिम्ब या प्रतिमा स्थान विधि एवं कूट संकेतित सामग्रियों का संगठन शामिल है। नीचे इन विभिन्न योजनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है :

1. **प्रतिमा का उपयोग** : मनोवैज्ञानिकों में इस बात को लेकर आम राय है कि जब कोई व्यक्ति वस्तुओं, घटनाओं एवं तथ्यों या नियमों को सीखता है तो वह केवल उनके द्वारा सूचित एवं प्रदर्शित अर्थ को ही नहीं सीखता वरन् वह उनका दृश्य-स्थानिक (Visuo-spatial) चित्रण करना भी सीखता है। इसे प्रतिमा या बिम्ब कहा जाता है। ऐसी प्रतिमाओं का उपयोग व्यक्ति की स्मृति को बढ़ाने के लिए किया जाता है। आप आसानी से अनुमान लगा सकते हैं कि अमूर्त संप्रत्ययों की तुलना में मूर्त संप्रत्ययों को सीखना सरल होगा। उदाहरणार्थ, वृक्ष क्या है? यह सीखना आसान है क्योंकि आप इसके अर्थ को सीखते हैं एवं इसको वृक्ष की प्रतिमा के साथ जोड़ लेते हैं। यह प्रदर्शित किया गया है कि स्मरण की जाने वाली सामग्री से संबद्ध प्रतिमा जितनी अनोखी होगी, उस सामग्री का स्मृति में संचय एवं उनका प्रत्याह्वान उतना ही आसान होगा।
2. **स्थान विधि** : इसका शाब्दिक अर्थ है स्थानों की विधि। मान लीजिए कि किसी अवसर पर आपको ढेर सारे शब्दों को एक क्रम में याद रखना है। इस स्थिति में यह विधि आपको याद रखने में मदद करती है। इस विधि का उपयोग करने के तीन नियम हैं :
   1. ऐसे स्थानों की एक श्रृंखला, जिससे आप पूरी तरह परिचित हों, का एक विशिष्ट क्रम में अपने मन में कल्पना करना।
   2. आपको जिन पदों को याद करना है उनमें से प्रत्येक के लिए एक दृष्टि प्रतिमा का निर्माण करना।
   3. एक-एक करके प्रत्येक पद को उसके अनुरूप स्मृति में भंडारित स्थानों से जोड़ना।
3. **संगठनात्मक तकनीकें** : आप पहले ही अल्पकालिक स्मृति के बारे में पढ़ चुके हैं। इसकी सूचना को संचित करने की क्षमता सीमित है। आप इसमें केवल 7 ± 2 पदों को रख सकते हैं। तथापि, इन पदों को बड़े पदों में गुच्छित करके आप भंडारण क्षमता को बढ़ाने में सफल हो सकते हैं। आपने यह भी पढ़ा कि धारणा संगठित होती है। आपने यह भी पढ़ा कि मुक्त पुनःस्मरण करने में श्रेणीपरक गुच्छन एवं पदानुक्रमिक संगठन पाया जाता है। स्मरण की गई सामग्री का एक पदानुक्रम में संगठन एक दूसरी विधि है जो स्मृति को बढ़ाती है। यह एक रूपरेखा की तरह है, जो विभिन्न संप्रत्ययों एवं श्रेणियों को एक संरचना प्रदान करती है। आप घरेलू वस्तुओं को विभिन्न स्तर की श्रेणियों में पदानुक्रमिक ढंग से संगठित कर सकते हैं। यह घर में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं की स्मृति को बढ़ाने में सहायक है।

एक व्यापक रूप से प्रयुक्त स्मृति सहायक विधि *प्रथम अक्षर तकनीक* के नाम से जानी जाती है। आप प्रत्येक संप्रत्यय के प्रथम अक्षर को ले सकते हैं एवं उन्हें जोड़कर त्रिपद (प्रत्येक के तीन अक्षर) या शब्द बना लें। इसका उपयोग तब किया जाता है जब संप्रत्ययों का क्रम महत्त्वपूर्ण हो। चिकित्सा विज्ञान में इस तकनीक का व्यापक उपयोग किया जाता है; जैसे – आई.सी.यू., ई.एन.टी., प्राईस (पी. आर.आई.सी.ई.) आदि। इन तीन पदों का क्रमशः अर्थ है– इंटेंसिव केयर यूनिट, ईयर-नोज-थ्रोट, एवं पोजीसन, रेस्ट, आईस, कंपोजीसन, एलीवेशन। इनमें दो को आप जानते

होंगे। तीसरे का उपयोग आघात एवं खेलकूद में लगी चोटों के उपचार में किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक विवरणात्मक तकनीक भी है। इसमें आप एक ऐसी कहानी बनाते हैं जिसमें पात्र विभिन्न स्थितियों एवं अनुभवों से गुजरता है।

पी.क्यू.आर.एस.टी. विधि

क्या आपने स्वयं से कभी यह पूछा है कि क्यों आप विद्यालय जाते हैं, कक्षाएं करते हैं एवं घर पर पढ़ते हैं? आप ऐसा इसलिए करते हैं कि आप ज्ञान एवं कौशल अर्जित करना चाहते हैं। यद्यपि आप कठोर श्रम करने वाले विद्यार्थी एवं ढेर सारा समय पुस्तकों को पढ़ने में बिताते हैं तब भी संभव है आप जितना याद करने की इच्छा करते हैं उतना याद नहीं कर पाते हों। शायद आप बेहतर याददास्त के लिए स्मृति सुधारने की सर्वाधिक प्रभावशाली तकनीक को नहीं जानते हैं। **थामस** एवं **राबिंसन** ने एक तकनीक विकसित की जिसे वे पी.क्यू.आर.एस.टी. विधि कहते हैं। विद्यार्थियों को अपनी पाठ्यपुस्तक का अध्ययन एवं अधिक याद रखने में मदद के लिए इस विधि का उपयोग किया जाता है। पी.क्यू.आर.एस.टी. पाठ्यपुस्तक अध्ययन के पांच चरणों को इंगित करता है। ये हैं – (i) पूर्व दर्शन (Preview), (ii) प्रश्न (Question), (iii) पठन (Read), (iv) स्वयं पढ़ना (Self Recitation), एवं (v) परीक्षण (Test)।

मान लीजिए, आपको अपने मनोविज्ञान की पुस्तक का अध्याय 9 पढ़ना है। अध्याय की विषय वस्तु को पढ़ें एवं शीघ्रता से उसके विभिन्न अनुभागों एवं उपभागों को देख लें। यह अभ्यास आपको विभिन्न विषय प्रसंगों को संगठित करने में मदद करेगा एवं आपको विषय वस्तु की एक स्पष्ट रूपरेखा मिल जाएगी। अब आप विभिन्न अनुभागों के बारे में प्रश्न उठाइए एवं यह अनुमान लगाने का प्रयास कीजिए कि प्रत्येक अनुभाग किस प्रकार की जानकारी देने वाला है। अब आप पुस्तक पढ़ना प्रारम्भ कीजिए। यह आपको प्रत्येक अनुभाग से उठाए गए प्रश्नों का उत्तर देगा। उस अनुभाग को पढ़ लेने के बाद आपने उसमें जो पढ़ा है उसके पुनर्लेखन का प्रयास कीजिए। यह सस्वर या आन्तरिक उच्चारण प्रत्याह्वान के माध्यम से पुनरुद्धार के अभ्यास को प्रोत्साहित करेगा। सभी अनुभागों को पूरा कर लेने के बाद आप उस अध्याय के बारे में अपनी समझ व जानकारी की जांच कीजिए। पी.क्यू.आर.एस.टी. का अभ्यास आपको पढ़ने, स्मृति संगठन एवं विषय का सविस्तार प्रतिपादन करने में निश्चित रूप से लाभदायक सिद्ध होगा। आपको पुस्तकों को पढ़ने में पी.क्यू.आर.एस.टी. का उपयोग करने की सलाह दी जा रही है। आप कितनी देर तक पढ़ते हैं यह उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि आपके द्वारा अपनाई गई अध्ययन विधि। आपको पुस्तकों से मिलने वाली जानकारी का एक निश्चेष्ट प्राप्तकर्ता नहीं होना चाहिए वरन् आपको सूचना प्रक्रमण के गहन स्तर एवं पुस्तकों में विवेचित बिंदुओं का विस्तृत उपयोग करने वाला एक सक्रिय अध्येता होना चाहिए।

कई विधियों एवं योजनाओं का उपयोग

इस अध्याय के अंत में आपको सावधान व सतर्क करना आवश्यक है। स्मृति को बढ़ाने वाली विधियों, पी. क्यू.आर. एस.टी.विधि, एवं अभ्यास के प्रयोग की उपयोगिता के बारे में कोई संदेह नहीं है। फिर भी ये विधियाँ सीमित मात्रा में ही उपयोगी हैं एवं सभी विद्यार्थियों की स्मृति समस्याओं का समाधान नहीं प्रस्तुत करतीं। वस्तुतः स्मृति को बढ़ाने के लिए कोई सरल विधि नहीं है। स्मृति में संपूर्ण सुधार के लिए अनेक तकनीकों एवं उपकरणों का उपयोग किया जाना चाहिए। अपनी स्मरण शक्ति के विकास में रुचि रखने वाले व्यक्ति को ऐसा करने के लिए निश्चित रूप से उच्च मात्रा में उत्साहित तथा तत्पर होना चाहिए। आपका दैहिक एवं मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए। आपको उतना सोना चाहिए जितना स्वस्थ रहने एवं मानसिक काम हेतु तत्पर रहने के लिए पर्याप्त है। इस उद्देश्य हेतु आपको अपनी क्रियाशीलता की एक आदर्श स्थिति बनाए रखने की जरूरत होती है। एक समय सारिणी को बनाना, अपने दिनचर्या के लिए समय को निर्धारित करना, व्याख्या, मनोरंजन एवं अध्ययन आवश्यक है। आपको अपनी स्मृति की जांच के लिए एवं नई सूचनाओं के संकलन के लिए एक डायरी भी बनानी चाहिए।

क्रियाकलाप 8.8

स्मरण में सहायक तकनीकें

स्मृति सहायक क्रियाकलापों की एक सूची नीचे दी गई है। इनमें से प्रत्येक को पढ़िए एवं उन तकनीकों को पहचानिए, जिनका उपयोग आप करते हैं। इन तकनीकों की तुलना अपने माता-पिता द्वारा उपयोग की जाने वाली तकनीकों के साथ करिए।

1. डायरी का उपयोग।
2. खरीदारी की सूची का प्रयोग।
3. हाथ पर (या शरीर के किसी दूसरे अंग पर) लिखना।
4. स्मरणपत्र का प्रयोग : उदाहरणार्थ, नोट लिखना एवं अपने लिए किए जाने वाले कार्यों की सूची बनाना।
5. प्रथम अक्षर स्मृति सहायक : उदाहरणार्थ, बाबर, हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ एवं औरंगजेब के प्रथम वर्ण मिलकर बनाते हैं – बाहुअजशाऔ।
6. स्थान विधि : याद किए जाने वाले पदों की कल्पना परिचित स्थानों की एक श्रृंखला में करना।
7. तुकांतों का प्रयोग : उदाहरणार्थ, सन् उन्नीस सौ चौरासी, दुःखी हुए सब भारतवासी : आपको तिथि को याद रखने में मदद करता है।
8. कहानी विधि : एक ऐसी कहानी बनाना, जो याद किए जाने वाले शब्दों को जोड़ती हो।
9. चेहरा-नाम साहचर्य का उपयोग : लोगों के नामों को किसी सार्थक चीज में बदल देना तथा उसका उनके चेहरे की किसी असाधारण विशेषता से मिलान करना।
10. मानसिक रूप से घटनाओं या क्रियाओं के अनुक्रम का पुनर्चित्रण करना।
11. अक्षरों की खोज : नाम के प्रथम अक्षर को वर्णमाला में अक्षर-दर-अक्षर ढूँढ़ना।
12. अलार्म घड़ी (या दूसरे अलार्म उपकरण जैसे घड़ियां, रेडियो, टाइमर, टेलीफोन) का उपयोग।
13. कलैण्डर, वॉल चार्ट, ईयर प्लानर एवं डिस्प्ले बोर्ड आदि का उपयोग।
14. वस्तुओं को विशिष्ट या असामान्य स्थानों पर छोड़ देना, जिससे कि वे आपको याद दिलाने वाले संकेत के रूप में कार्य कर सकें।

आपने अब तक पढ़ा

यह अनुभाग स्मृतिसुधार पर केंद्रित था। तीन विधियों या योजनाओं – स्मरणोपकारी विधि, ज्ञानार्जन के लिए क्रियाकलाप, एवं बहुशाखा योजनाओं का उपयोग–का विवेचन किया गया। स्मरणोपकारी विधि स्मृति को सुधारने वाली योजनाओं का ऐसा समूह है, जिसमें चाक्षुष प्रतिमाओं, स्थान विधि, सामग्रियों के भंडारण के लिए संगठनात्मक उपकरण, प्रथम अक्षर तकनीक एवं विवरणात्मक तकनीक का उपयोग शामिल है।

आपने कितना सीखा

1. स्मृतिलोप ________________ की आंशिक हानि है।
2. स्मृतिलोप ________, ________ तथा ________ हो सकता है।
3. स्मृति में सुधार की तकनीकों के एक सेट का नाम ________ है।

उत्तर – 1. स्मृति, 2. क्षणिक, अंगिक, अग्रगामी, पृष्ठगामी, 3. निमोनिक्स।

प्रमुख तकनीकी शब्द

अग्रगामी स्मृतिलोप, अनुपयोग सिद्धांत, चैनल क्षमता, द्वैत व्यक्तित्व, ध्वन्यात्मक कूट संकेतन, वृत्तात्मक स्मृति, शब्दार्थ विषयक स्मृति, सदमाजन्य अनुभव, संज्ञानात्मक मानचित्र, स्मरणोपकारी विधि, स्मृति चिह्न ह्रास, स्कीमा, स्क्रिप्ट।

सारांश

- *मनुष्य स्मृति व्यवस्था से युक्त है। यह व्यवस्था अनुभवों को संचित करती है एवं जब कभी भी आवश्यकता हो, उसके पुनःस्मरण की सुविधा प्रदान करती है। एक प्रक्रिया के रूप में स्मृति के तीन घटक होते हैं : कूट संकेतन या कोडिंग, भंडारण या संचय एवं पुनरुद्धार। ये सभी अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के लिए एक आधार तैयार करते हैं।*
- *स्मृति के तीन घटक होते हैं : सांवेदिक स्मृति, अल्पकालिक (या कार्यकारी) स्मृति (एस. टी. एम.) एवं दीर्घकालिक स्मृति (एल. टी. एम.)। सांवेदिक निवेश के ग्रहण और अंकन का कार्य सांवेदिक स्मृति करती है। चाक्षुष या चित्रात्मक एवं श्रव्य या प्रतिध्वन्यात्मक सांवेदिक स्मृति पर अधिक अध्ययन किए गए हैं। यह बहुत सीमित समय के लिए बनी रहती है।*
- *अल्पकालिक स्मृति में सांवेदिक स्मृति से प्राप्त सूचना संचित रहती है। यह सूचना की सात इकाइयों धन या ऋण दो (7 ± 2) अथवा गुच्छों को धारण कर सकती है। इसकी अवधि बीस सेकंड तक ही होती है।*
- *दीर्घकालिक स्मृति में प्रचुर मात्रा में सूचनाओं को बहुत लंबे समय तक संचित रखने की क्षमता होती है। इसकी क्षमता असीमित होती है। यह अर्थपूर्ण सामग्री को ही संचित रखती है। दीर्घकालिक स्मृति से पुनरुद्धार समानांतर वितरित खोज का परिणाम होता है।*
- *अल्पकालिक स्मृति में सूचना के संचय के समय प्रक्रमण उथले अथवा गहरे या गहन स्तर का हो सकता है। व्यक्ति चार स्तरों – संरचनात्मक, ध्वन्यात्मक, शब्दार्थ विषयक अथवा आत्म-संदर्भ – के साथ शब्दार्थ विषयक में से किसी एक स्तर पर सूचना का प्रक्रमण कर सकता है। इस संदर्भ में दुहराने या अभ्यास की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुरक्षण अभ्यास के अंतर्गत सूचनाओं को दुहराना शामिल होता है। विस्तारपरक अभ्यास में सूचनाओं का अन्य वस्तुओं से साहचर्य भी सम्मिलित होता है तथा यह स्मृति की वृद्धि में अधिक प्रभावशाली होता है। प्रक्रमण का स्तर स्मरण में मुख्य भूमिका निभाता है।*
- *स्मृति का मापन प्रत्यक्ष/व्यक्त तथा अप्रत्यक्ष/अव्यक्त मापकों की सहायता से किया जाता है। प्रत्यक्ष मापकों के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के पुनःस्मरण, पुनरुत्पादन तथा प्रत्यभिज्ञा परीक्षण सम्मिलित होते हैं। अप्रत्यक्ष मपकों में ऐसे कार्य शामिल होते हैं जिनका आधार तो स्मृति की प्रक्रिया में होता है किंतु प्रतिभागी इस तथ्य से अनभिज्ञ रहता है कि उसकी स्मृति की जाँच की जा रही है। ऐसे दो मापक हैं : शब्द पूर्ति संकृत्य तथा पुनरावृत्ति तत्परता।*
- *दीर्घकालिक स्मृति तीन प्रकार की होती है– वृत्तात्मक, शब्दार्थ विषयक तथा प्रक्रियात्मक। वृत्तात्मक स्मृति में व्यक्ति के निजी अनुभवों से संबंधित सूचनाएं संचित होती हैं। शब्दार्थ विषयक स्मृति शब्दों, अर्थों, संप्रत्ययात्मक ज्ञान आदि के संचय से जुड़ी होती है। शब्दार्थ विषयक स्मृति का अध्ययन शब्द ज्ञान निर्णय, श्रेणीकरण, प्रतीकात्मक तुलना तथा वाक्य सत्यापन जैसे संकृत्यों की सहायता से किया जाता है। प्रक्रियात्मक स्मृति का संबंध क्रियाओं एवं कौशलों की स्मृति से है।*
- *मानव स्मृति एक सुसंगठित प्रक्रिया है। वृत्तात्मक तथा शब्दार्थ विषयक स्मृति की विषय-वस्तु को संगठित करने के लिए हम संप्रत्ययों तथा श्रेणियों, विमा, संज्ञानात्मक मानचित्रों, स्कीमा तथा स्क्रिप्ट का उपयोग करते हैं।*
- *मानव स्मृति एक निष्क्रिय भंडार नहीं है। इसमें सक्रिय रचना तथा पुनर्रचना के साक्ष्य मिलते हैं।*
- *स्मृति के तीन चरणों अर्थात् कूट संकेतन, भंडारण एवं पुनरुद्धार, में से किसी भी चरण पर होने वाली विफलता के कारण सूचनाओं का विस्मरण हो सकता है। पूर्व या अनुवर्ती सीखने से होने वाला व्यतिकरण विस्मरण के लिए एक मुख्य उत्तरदायी कारक है।*
- *मनुष्य की स्मृति संदर्भ पर भी आश्रित रहती है। हम घटनाओं का अनुभव विशेष संदर्भ में करते हैं तथा उनका प्रक्रमण भी उन्हीं संदर्भों में करते हैं। यदि पुनरुद्धार के समय संदर्भ संकेत न हो तो विस्मरण हो सकता है। विस्मरण लोगों के संवेगों पर भी आश्रित है। सकारात्मक मनोदशा जहाँ स्मरण करने में मदद करती है वहीं ऋणात्मक मनोदशा धारणा को बाधित करती है। मस्तिष्कीय चोट स्मृति लोप को जन्म देती है।*
- *स्मृति को उन तकनीकों की मदद से सुधारा जा सकता है जो कूट संकेतन, भंडारण एवं पुनरुद्धार को प्रभावशाली बनाती हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. स्मृति क्या है?
2. शब्दार्थ विषयक स्मृति को वृत्तात्मक स्मृति से किस प्रकार विभेदित किया जाता है?
3. स्मृति के कौन-से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष माप हैं?
4. स्मृति में रचना एवं पुनर्रचना का क्या तात्पर्य है?
5. विस्मरण के निर्धारक कौन-से हैं?
6. स्मरणोपकारी विधियाँ क्या हैं?
7. व्यतिकरण एवं ह्रास के द्वारा स्मृति का क्षय किस प्रकार होता है?
8. स्मृति सुधार की प्रभावशाली तकनीकें कौन-सी हैं?
9. दीर्घकालिक स्मृति कैसे संगठित होती है?



9 संज्ञानात्मक प्रक्रम

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- संज्ञान तथा संज्ञानात्मक प्रक्रमों का परिचय
- मानस तथा मानसिक प्रक्रमों के अध्ययन के लिए सूचना प्रक्रमण उपागम
- मानसिक प्रक्रियाओं के मापन की विधियाँ
- चिंतन तथा चिंतन का स्वरूप
- तर्कणा, समस्या-समाधान तथा सृजनात्मक चिंतन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानस तथा मानसिक प्रक्रमों के मापन में सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण को समझ सकेंगे,
- संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अपनाई गई विधियों, विशेष रूप से कालमापक विधि (क्रोनोमेट्रिक) का वर्णन कर सकेंगे,
- चिंतन के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- निगमनात्मक तथा आगमनात्मक तर्कणा में भेद कर सकेंगे,
- समस्या-समाधान में निहित कुछ संज्ञानात्मक प्रक्रमों की समझ प्रदर्शित कर सकेंगे,
- निर्णय तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में भेद कर सकेंगे, तथा
- समस्याओं के समाधान में सृजनात्मक चिंतन की जानकारी प्रदर्शित कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

आपने कोई जासूसी कहानी या उपन्यास अवश्य पढ़ा होगा या जासूसी फिल्म देखी होगी, जिसमें पुलिस या जासूस किसी अपराध के रहस्य को सुलझाता है। अपराध की खोजबीन सूचनाओं का संग्रह तथा विश्लेषण करने में तथा अपराध को जन्म देने वाली विभिन्न घटनाओं की कड़ी का तार्किक ढंग से खाका बनाने में मानसिक योग्यताएँ संलग्न होती हैं। एक जासूस उन्हीं विधियों को जिन्हें एक वैज्ञानिक उपयोग में लाता है, अपनाते हुए आँकड़े संग्रह करता है, रहस्यों के समाधान के लिए उन आँकड़ों का क्रमबद्ध तथा वस्तुनिष्ठ ढंग से विश्लेषण करता है। जासूस जो कुछ भी करता है, वह संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की देन है जिसमें ज्ञान का अर्जन, संचय, पुनरुद्धार तथा उपयोग शामिल होते हैं।

*संज्ञान (Cognition) शब्द का तात्पर्य है जानने या ज्ञान पाने की प्रक्रिया या ज्ञान का अर्जन। ज्ञान के अर्जन में, हम विभिन्न प्रकार की **संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं** (Cognitive processes); जैसे – अवधान, चिंतन, स्मरण तथा तर्क का उपयोग करते हैं। ये सभी प्रक्रियाएं मस्तिष्क में सेरिब्रल कॉर्टेक्स नामक एक उच्च केंद्र द्वारा नियंत्रित होती हैं। केवल मनुष्य ही प्राप्त सूचनाओं के आगे जाकर मानसिक क्षमता का उपयोग कर सकता है। वह वर्तमान में तत्काल जो दिख रहा है उससे आगे जाने की क्षमता रखता है। हम सब लोगों में यह सोचने की क्षमता है कि अब क्या होगा? क्या हो सकता है? क्या होना चाहिए? साथ ही हम कल्पनाशील और सर्जनात्मक भी हो सकते हैं। ज्ञान के अर्जन के लिए हम विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं का उपयोग करते हैं। हमारी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की विषयवस्तु में संप्रत्यय, तथ्य, विचार, नियम तथा स्मृतियाँ शामिल होती हैं।*

*इस अध्याय में आप संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के ऐतिहासिक आधार के बारे में जान सकेंगे जो मनोविज्ञान के अध्ययन के प्रति एक समकालीन दृष्टिकोण है। व्यापक अर्थ में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान "हमारा मानस (Mind) कैसे कार्य करता है" इस प्रश्न का अध्ययन है। हमारा मानस ज्ञानेंद्रियों के माध्यम से सूचनाओं को ग्रहण करता है तथा इन सूचनाओं को चरणों या अनुक्रमों में प्रक्रमित करता है। ऐसा करते समय ग्रहण किए गए सांवेदिक निवेश (Sensory input) का रूपांतरण, विस्तार, न्यूनीकरण, पुनः प्राप्ति तथा उपयोग आदि की क्रियाएं होती हैं। मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का यह दृष्टिकोण **सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण** (Information Processing Approach) कहलाता है। जैसा कि आप देखेंगे, सूचना के प्रक्रमण के विभिन्न चरणों के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक लोग भिन्न-भिन्न विधियों (जैसे – अंतर्दर्शन, प्रतिक्रिया काल, मस्तिष्क का सूक्ष्मवीक्षण आदि का उपयोग करते हैं)। चिंतन सबसे प्रमुख संज्ञानात्मक प्रक्रिया है। इसी के द्वारा हम सांवेदिक व्यवस्था से प्राप्त या स्मृति में संचित सूचनाओं का प्रहस्तन करते हैं ताकि तात्कालिक परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार क्रिया की जा सके। चिंतन एक **उच्च मानसिक प्रक्रिया** है। इसका स्वरूप सर्जनात्मक होता है। सांवेदिक निवेश में निश्चित मानसिक क्रियाएं (जो रचनात्मक होती हैं) आरंभ होती हैं तथा ये उनका परिणाम (Outcome) निवेश (Input) से भिन्न होता है। इस अध्याय में हम चिंतन तथा उससे जुड़ी प्रक्रियाएँ; जैसे – समस्या समाधान, निर्णय लेना तथा सृजनात्मक चिंतन का अध्ययन करेंगे।*

सन् 1960 के आरंभिक दशक के आरंभ में व्यवहारवादी दृष्टिकोण के प्रति विरोध के रूप में मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक प्रक्रियाओं तथा मानसिक संरचनाओं के वैज्ञानिक अध्ययन में रुचि लेनी शुरू की। बाह्य जगत से सूचनाओं या उद्दीपनों के प्राप्त होने पर हमारा मानस इन सूचनाओं का प्रक्रमण करता है तथा अनुक्रिया उत्पन्न होती है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, जो मानसिक प्रक्रमों या मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के अध्ययन हेतु एक नया दृष्टिकोण है, के विकास में संगणक (कंप्यूटर) मॉडल के विकास से, विकासात्मक मनोवैज्ञानिक **जीन पियाजे** द्वारा बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन से तथा भाषाविद् **नोम चाम्स्की** के अध्ययन से, विशेष बल मिला। आप इस प्रसंग में जो विकास हुए हैं उनके बारे में अध्याय 1 में पढ़ चुके हैं।

सूचना प्रक्रमण मॉडल

मानस तथा मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण अपनाने के लिए संगणक की खोज ने मनोवैज्ञानिकों को प्रोत्साहित किया। संगणक वैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान से बहुत कुछ सीखा (जैसे – प्रोग्राम रचना के बारे में) तथा मनोविज्ञान ने भी संगणक मॉडलों से बहुत कुछ सीखा। मानसिक प्रक्रियाओं को एक कंप्यूटर की क्रिया प्रणाली से तुलना कर अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। ऐसा विचार प्रस्तुत किया गया है कि कंप्यूटर जिस तरह सूचनाओं को विभिन्न चरणों में प्रक्रमित करता है उसी प्रकार मनुष्य का मानस भी सूचनाओं का प्रक्रमण कई चरणों में करता है।

यह विचार कि मानसिक प्रक्रियाएँ वास्तविक काल की विमा के अंतर्गत घटित होती हैं तथा इनका समय की इकाई में मापन किया जाता है, **कालमापी** (Chronometric) **विश्लेषण** का प्रमुख आधार हैं। सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण के अनुसार सूचनाएं क्रमिक चरणों की शृंखला में संचालित होती हैं। प्रत्येक चरण एक विशिष्ट कार्य करता है, तत्पश्चात् सूचना प्रक्रमण के अगले चरण के लिए अग्रसर होती है। प्रायोगिक प्रहस्तन के द्वारा संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक सूचना प्रक्रमण के चरणों को समझने का प्रयास करता है तथा गोचर की व्याख्या करने के लिए मॉडल का निर्माण करता है।

आइए, हम **ई. ई. स्मिथ** द्वारा प्रस्तावित सूचना मॉडल पर विचार करें, जिसे उन्होंने चयनात्मक प्रतिक्रिया काल (Choice Reaction Time या CRT) पर किए गए अनुसंधानों को उत्कृष्ट ढंग से व्यवस्थित करके, सन् 1968 में प्रकाशित किया। इन्होंने विभिन्न अध्ययनों की समीक्षा की, तथा चयनात्मकता प्रतिक्रिया काल मॉडल (घटना के अनुक्रम की व्याख्या के लिए) प्रस्तुत किया। यह मॉडल चित्र 9.1 में दिया गया है।

संलग्न प्रक्रियाओं के क्रम में निम्नलिखित चार चरण हैं :

चरण 1 : अनगढ़ (Raw) उद्दीपक जो **पूर्वप्रक्रमित** (Preprocessed) होता है, बाद में सूचना के प्रक्रमण के लिए स्पष्ट चित्र का निर्माण करता है।

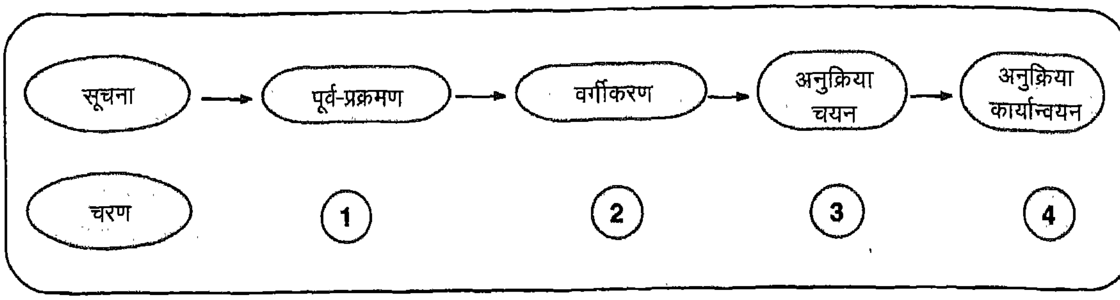
चरण 2 : जब तक इसका वर्गीकरण (Categorisation) नहीं होता, तब तक उद्दीपक प्रतिरूप की तुलना स्मृति में मौजूद चीजों के साथ की जाती है।

बाक्स 9.1 **संज्ञानात्मक विज्ञान**

संज्ञानात्मक विज्ञान (Cognitive Science) कई भिन्न-भिन्न विषयों से जुड़ा क्षेत्र है, जिसमें संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, संगणक (कंप्यूटर) विज्ञान, भाषाविज्ञान, दर्शन तथा तंत्रिका विज्ञान जैसे विषयों का योगदान है। इसमें अर्थशास्त्र तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्र से भी जानकारी मिलती है। संज्ञानात्मक विज्ञान कुछ प्राचीन जिज्ञासाओं; जैसे – ज्ञान क्या है? तथा मानस में इसका प्रतिनिधित्व किस प्रकार होता है? के समाधान ढूँढ़ने का प्रयास करता है।

इस क्षेत्र में, शोधकर्ता यह जानने का प्रयास करते हैं कि हमारे मानस में सूचनाएँ किस प्रकार प्रस्तुत तथा प्रक्रमित होती हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के संप्रत्ययात्मक मॉडलों को तैयार करते है। चित्र 9.1 में एक ऐसा ही मॉडल प्रस्तुत किया गया है। इस मॉडल को प्रदत्त संग्रह के आधार पर जाँच की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। प्राप्त परिणामों के आधार पर मॉडल को परिमार्जित या अस्वीकृत किया जा सकता है। ज्यादातर संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक सूचना प्रक्रमण मॉडल को अपनाते हैं।

संज्ञानात्मक विज्ञान एक ऐसा अत्यंत व्यापक क्षेत्र वाला विषय है जिसमें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए, नए उपकरणों की पूरी शृंखला प्राप्त होती है। इनमें कृत्रिम बुद्धि (Artificial intelligence) का अध्ययन किया जाता है जो कंप्यूटर विज्ञान की एक शाखा है, जिसमें कंप्यूटर को मानसिक प्रकार्यों जैसे – समस्या समाधान, प्रत्यक्षीकरण, इत्यादि को संपादित करने के लिए निर्देशित (Programme) किया जाता है।



चित्र 9.1 : चयनात्मक प्रतिक्रिया काल का एक सूचना प्रक्रमण मॉडल।

चरण 3 : **अनुक्रिया चयन** (Response selection) के लिए वर्गीकरण को आधार बनाया जाता है।

चरण 4 : तत्पश्चात् प्रयोज्य, **अनुक्रिया कार्यान्वयन** (Response execution) का कार्यक्रम बनाता है।

स्मिथ के चयनात्मक प्रतिक्रिया काल (Choice Reaction Time) जिसमें चार प्रमुख चरण सम्मिलित हैं, उनसे सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण के मूल तत्वों का पता चलता है।

मानसिक प्रक्रियाओं का मापन

संज्ञानात्मक दृष्टिकोण उन अप्रेक्षणीय या न देखी जा सकने वाली घटनाओं पर केंद्रित है, जिन्हें सांवेदिक निवेश (Input) तथा बाह्य अनुक्रियाओं (Output) के बीच हमारे मानस में घटित होने की कल्पना की जाती है। हम मानसिक घटनाओं के मापन का प्रयास करते हैं और सूचना प्रक्रमण के मॉडल (चित्र 9.1 देखिए) की रचना करते हैं। यह मॉडल बताता है कि मस्तिष्क किस तरह सूचनाओं को ग्रहण करता है तथा किस तरह उन सूचनाओं के प्रक्रमण के लिए प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, चिंतन तथा निर्णय आदि विभिन्न मानसिक प्रकार्यों का उपयोग करता है। इससे हमें इस तरह के प्रश्नों को समझने में सहायता मिलती है कि मनुष्य कैसे सोचता है? कैसे तर्क करता है? तथा कैसे समस्याओं का समाधान करता है?

यह संज्ञानात्मक दृष्टिकोण इस केंद्रीय विचार पर आधारित है कि मानसिक प्रक्रियाएं, वास्तविक समय में स्थित होती हैं तथा मानस में उत्पन्न होनें वाली प्रक्रियाओं का समय के आधार पर मापन किया जा सकता है। संज्ञानात्मक शोधकर्ता विभिन्न विधियों का उपयोग मानस के विस्तार क्षेत्र का मानचित्र तय करने के लिए करते हैं। आइए, इनमें से कुछ विधियों के बारे में संक्षेप में अध्ययन किया जाए।

अंतर्दर्शन : यह विधि इस बात की खोजबीन करने में सहायक होती है कि हमारी आंतरिक मानसिक प्रक्रियाएं कौन-सी हैं। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग प्राथमिक प्रदत्तों के स्पष्टीकरण में सहायक प्रदत्त के रूप में किया जाता है। आजकल शोधकर्ता आंतरिक प्रक्रियाओं को रेखांकित करने के लिए इस विधि को अन्वेषण प्रक्रिया की एक उपयोगी विधि के रूप में काम में ला रहे हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति किसी समस्या; जैसे – अंकगणित की समस्या

बाक्स 9.2 **अधिसंज्ञान**

स्वयं अपनी निजी मानसिक प्रक्रियाओं की जानकारी तथा समझ को अधिसंज्ञान (Meta Cognition) कहा जाता है। इसके अंतर्गत बाह्य जगत के बारे में ज्ञान (संज्ञान) के अध्ययन पर बल न देकर मानस में विद्यमान ज्ञान के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। यदि आपसे पूछा जाता है कि : आप परीक्षण के लिए कितने तैयार हैं? आप अपना मूल्यांकन कर सकते हैं कि आप पूरी तरह तैयार हैं या नहीं? आपको अपनी मानसिक प्रक्रियाओं को खुद समझना होगा। यह एक कौतूहलपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि हम स्वयं अपनी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग, अपनी ही संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को समझने के लिए करते हैं। उदाहरणस्वरूप, जीभ-की-नोक (Tip-of the-tongue) नामक घटना, जिसमें हमें यह निश्चित रूप से पता होता है कि हम उस वस्तु का नाम जानते हैं फिर भी उसका नाम याद नहीं कर पा रहे हैं। यह प्रक्रिया अधिसंज्ञान को दर्शाती है।

सीखना तथा उसे याद करना संज्ञानात्मक कौशल है। यह जानना कि कैसे सीखें तथा कैसे याद रखें, तथा सीखने की किन तरकीबों का उपयोग कब करें, ये सब अधिसंज्ञानात्मक कौशल हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्ति जानता है कि किसी चीज को बार-बार दुहराने या पुनरावृत्ति करने से सीखी गई सामग्री को याद करने में सहायता मिलती है।

को सुलझा रहा हो तो उसे कार्य में निहित चरणों का वर्णन करने के लिए कहा जा सकता है कि समस्या-समाधान में किन चरणों को और क्यों अपनाया जा रहा है? व्यक्ति द्वारा यह कथन कि वह क्या कर रहा है तथा क्यों? **उच्चारित-चिंतन-रिपोर्ट** (Think-aloud protocol) कहा जाता है। शोधकर्ता इन प्रदत्तों का उपयोग उन प्रतिभागियों द्वारा समाधान की प्रक्रिया में प्रयुक्त तकनीकों तथा ज्ञान को प्रस्तुत करने के बारे में अनुमान लगाने के लिए कर सकते हैं। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक प्रायः व्यवहार के स्तर पर प्राप्त प्रदत्त; जैसे - प्रतिक्रिया काल की पुष्टि के लिए अंतर्दर्शन विधि से प्राप्त प्रदत्त का उपयोग करते हैं।

उच्चारित-चिंतन-रिपोर्ट यह प्रदर्शित करती है कि कोई व्यक्ति किसी कार्य में वस्तुतः किस तरह आगे बढ़ता है। समस्या-समाधान में निहित संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में यह विशेष रूप से उपयोगी पाई गई है। इस तरह की रिपोर्ट कंप्यूटर प्रोग्राम के विकास करने में भी विशेष रूप से सहायक हो सकती है।

व्यवहारपरक प्रेक्षण : हम बाह्य व्यवहारों का प्रेक्षण (Behavioural Observation) करके आंतरिक स्थितियों तथा प्रक्रियाओं का अनुमान लगा सकते हैं। यदि हमें जिस संदर्भ में व्यवहार घटित हुआ है, उसकी जानकारी हो तो हम व्यवहार के सांवेगिक, अभिप्रेरणात्मक तथा संज्ञानात्मक निर्धारकों को समझ सकते हैं और उनके बारे में सिद्धांत बना सकते हैं। उदाहरण के लिए, किसी पुरस्कार समारोह में रो पड़ना अत्यधिक उल्लास का सूचक होता है तो किसी नजदीकी तथा प्रिय व्यक्ति की मृत्यु पर रोना दुःख का सूचक है। अतएव संदर्भ की जानकारी के आधार पर, बाह्य व्यवहारों से आंतरिक दशाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। यह विधि बच्चों के व्यवहार के अध्ययन के लिए बहुत उपयोगी है। उदाहरणार्थ, **प्रतीकों** (Symbols) की समझदारी बच्चों में किस तरह विकसित होती है इसका अध्ययन प्रयोगों में वस्तुओं के लिए प्रतीकों का उपयोग करके, प्रतिभागी बच्चों के व्यवहार के प्रेक्षण के आधार पर किया जा सकता है।

प्रतिक्रिया काल : उद्दीपक प्रस्तुत करने तथा प्रतिभागी द्वारा दी गई अनुक्रिया के घटित होने के बीच बीतने वाला समय, **प्रतिक्रिया काल** (Reaction Time, RT) कहलाता है। यहाँ पर समय को संज्ञान के रूप में लिया जाता है और प्रतिक्रिया काल (आश्रित परिवर्त्य) प्रायः सूचना प्रक्रमण **दृष्टिकोण** के प्रति आस्था को इंगित करता है। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने अन्य मापकों की अपेक्षा प्रतिक्रिया काल को एक आश्रित परिवर्त्य के रूप में अधिक उपयोग किया है।

डांडर्स नामक एक मनोवैज्ञानिक ने सन् 1868 में एक विधि की खोज की, जिससे उन्होंने *"मानसिक प्रक्रियाओं की गति"* का अध्ययन करने का प्रयास किया। उन्होंने तीन प्रकार के प्रतिक्रिया कालों में भेद किया है।

'A' प्रतिक्रिया : यह सरल प्रतिक्रिया काल है, जिसमें एक उद्दीपक तथा एक अनुक्रिया होती है। उदाहरणार्थ, जब आप अपनी अलार्म घड़ी की तेज ध्वनि को सुनकर अलार्म बटन बंद करते हैं तो ध्वनि के आरंभ तथा आप द्वारा अलार्म बटन दबाने के बीच की अवधि 'सरल प्रतिक्रिया काल' कही जाएगी। डांडर्स का मानना था कि 'A' प्रतिक्रिया काल या सरल प्रतिक्रिया काल, उन संज्ञानात्मक क्रियाओं के लिए, जो जटिल मानसिक कार्यों (जैसे – चयनात्मक प्रतिक्रिया काल, CRT) में निहित होती है, आधार प्रदान करता है।

'B' प्रतिक्रिया : चयनात्मक प्रतिक्रिया काल ऐसी स्थिति होती है, जिसमें कई उद्दीपक तथा कई अनुक्रियाएँ उपस्थित रहती हैं। उदाहरण के लिए, यदि बाईं ओर प्रकाश दिखाई पड़ा है तो बाई ओर की कुंजी दबाएँ और यदि दाहिनी ओर प्रकाश होता है तो दाहिनी ओर की कुंजी दबाएँ। इस तरह कई उद्दीपक प्रस्तुत किए जा सकते हैं तथा कई प्रतिक्रियाएँ ली जा सकती हैं।

'C' प्रतिक्रिया : यह भी एक प्रकार का चयनात्मक प्रतिक्रिया काल है, जिसमें उद्दीपक तो कई होते हैं परंतु अनुक्रिया केवल एक होती है। उदाहरण के लिए, यदि यह कहा जाए कि लाल प्रकाश दिखता है तभी कुंजी दबाइए अन्यथा किसी अन्य प्रकाश के उपस्थित होने पर कुंजी मत दबाइए। डांडर्स ने मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन में बहुत अधिक योगदान दिया। उन्होंने यह परिकल्पना की कि आंतरिक संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की गति को प्रतिक्रिया काल की सहायता से मापा जा सकता है। जटिल मानसिक प्रक्रियाएँ (अतिरिक्त चरणों के शामिल होने के कारण) सरल प्रतिक्रिया काल की तुलना में अधिक समय लेती हैं। प्रतिक्रिया काल सीखने की सीमा तथा कार्यों से व्यक्ति के परिचय की भी जानकारी देता है। क्रियाकलाप बढ़ने के साथ प्रतिक्रिया काल एक सीमा तक घटता जाता है।

त्रुटियों का विश्लेषण : प्रतिभागियों द्वारा दी गई अनुक्रियाओं में होने वाली त्रुटियों के अध्ययन द्वारा उनकी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के स्वरूप की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, किसी तथ्य का गलत स्मरण करना उसमें संलग्न चिंतन की प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है।

सतर्कता या संधृत अवधान (Vigilance or Sustained Attention) के अध्ययन में, छोड़ देने (Omission) या कुछ जोड़ देने (Commission) से संबंधित त्रुटियों द्वारा संज्ञानात्मक प्रक्रिया के स्वरूप का पता चलता है। किसी प्रायोगिक कार्य के विभिन्न भागों (जैसे—पहले मिनट का कार्य, दूसरे मिनट का या उसके आगे का कार्य) के अंतर्गत की गई त्रुटियों के विश्लेषण (Analysing Errors) द्वारा भी संबंधित मानसिक प्रक्रियाएं प्रकट होती हैं। सीखने की प्रगति के अध्ययन से त्रुटि की दर का पता चलता है। जैसे-जैसे सीखने में प्रगति होती है, त्रुटियों में क्रमशः कमी आती है।

मस्तिष्क का सूक्ष्मवीक्षण : हमारे मस्तिष्क में झाँकने के लिए उत्तम श्रेणी की प्रतिमा या चित्र लेने की परिष्कृत तकनीकों का विकास हुआ है। इलेक्ट्रोइनसिफैलोग्राम (EEG) एक ऐसी ही तकनीक है, जो मस्तिष्क तरंगों का रेखाचित्र उपलब्ध कराती है। इसके द्वारा मस्तिष्क की कोशिकाओं द्वारा उत्पन्न सहज विद्युत् क्रिया का पता चलता है। घटना संबंधित विभव (Event Related Potential, ERP) एक दूसरी तकनीक है, जो विशिष्ट मानसिक घटना से जुड़े विद्युत् विभव में परिवर्तन को व्यक्त करती है। मस्तिष्क की सूक्ष्म ढंग से छानबीन करने वाली तकनीकें संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की झलकियाँ प्रदान करती हैं। इनमें से कुछ तकनीकों का वर्णन अध्याय 3 में किया जा चुका है।

आपने अब तक पढ़ा

इस अनुभाग में आपने संज्ञान तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के बारे में पढ़ा। संज्ञान एक सामान्य शब्द है, जिसका तात्पर्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है। ज्ञान के अर्जित करने में हम कई तरह की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग करते हैं, जिसमें ध्यान, चिंतन, स्मरण तथा तर्क सभी शामिल हैं। इन्हें उच्च मानसिक प्रक्रियाएं कहा जाता है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है। यह सूचना प्रक्रमण मॉडल का उपयोग करता है। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान को विस्तृत अर्थ में परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है, यह हमारा 'मानस कैसे कार्य करता है' इसका अध्ययन है।

सन् 1960 में संज्ञानात्मक मनोविज्ञान एक प्रतिमान या दृष्टिकोण के रूप में व्यवहारवादी विचारधारा के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ। इसके पहले व्यवहारवादियों ने मस्तिष्क तथा मानसिक प्रक्रियाओं जैसे संप्रत्ययों का उपयोग का तीव्र ढंग से विरोध किया था। संगणक विज्ञान तथा सूचना सिद्धांत के विकास से, पियाजे द्वारा बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन से तथा भाषावैज्ञानिक चाम्स्की के अध्ययनों से इस नए दृष्टिकोण के विकास में विशेष सहायता मिली। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने परिष्कृत अध्ययन विधियों की सहायता से मानस तथा मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना शुरू किया। इस क्रम में उन्होंने विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं; जैसे – स्मृति, सीखना, प्रत्यक्षीकरण तथा चिंतन के लिए सूचना प्रक्रमण मॉडल विकसित किया।

संज्ञानात्मक दृष्टिकोण उन अप्रेक्षणीय संभावित घटनाओं पर केंद्रित है जो हमारे मानस में घटित हो रही-सी मानी जाती हैं। इन प्रक्रियाओं के विश्लेषण के लिए अंतर्दर्शन, व्यवहारपरक प्रेक्षण, प्रतिक्रिया काल, त्रुटियों का विश्लेषण तथा मस्तिष्क की छानबीन की विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रतिक्रिया काल के मापक (कालमापी विश्लेषण), आश्रित परिवर्त्य के रूप में अधिक प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-जैसे कार्य की जटिलता बढ़ती है चयनात्मक प्रतिक्रिया काल (CRT) में संलग्न प्रक्रमण के चरणों में भी वृद्धि होती जाती है। इसके फलस्वरूप प्रक्रमण काल (Processing Time) में भी वृद्धि होती है।

आपने कितना सीखा

1. *अवधान (ध्यान देना), चिंतन, स्मरण तथा ________ संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में सम्मिलित हैं।*
2. *मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन के दृष्टिकोण को ________ के नाम से जाना जाता है।*
3. *प्रतिक्रिया काल मापकों (RT) द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन ________ कहलाता है।*
4. *संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन में ________, ________, ________ और ________ विधियों का उपयोग किया जाता है।*

उत्तर – 1. तर्क, 2. सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण, 3. कालमापी विश्लेषण, 4. अंतर्दर्शन, व्यवहारपरक प्रेक्षण, प्रतिक्रिया काल, त्रुटि विश्लेषण तथा मस्तिष्क सूक्ष्मवीक्षण।

चिंतन

अध्याय के इस अनुभाग में हम चिंतन (Thinking) के बारे में अध्ययन करेंगे। चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञानेंद्रियों द्वारा बाह्य परिवेश से एकत्र या पूर्व अनुभव द्वारा मस्तिष्क में पहले से संचित सूचनाओं का प्रहस्तन किया जाता है। चिंतन के द्वारा उपलब्ध सूचनाओं में परिवर्तन लाकर, हम एक नई छवि (Representation) गढ़ते हैं और इसीलिए चिंतन एक रचनात्मक प्रक्रम हो जाता है। रूपान्तरण में विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाएँ; जैसे – अनुमान, अमूर्तीकरण, तर्क, प्रतिमा, मूल्यांकन, समस्या समाधान तथा सृजनात्मकता आदि का योगदान होता है। चिंतन हमारे मानस में घटित होता है तथा इसका अनुमान हम प्रेक्षणीय व्यवहारों के आधार पर लगाते हैं। चिंतन प्रायः समस्या के समाधान की दिशा में उन्मुख होता है।

चिंतन का स्वरूप

चिंतन एक मानसिक प्रक्रिया है जिसका आरंभ किसी समस्या से होता है। इसमें क्रमबद्ध रूप से कई आंतरिक (मानसिक) चरण सम्मिलित हैं; जैसे – मूल्यांकन, अमूर्तन, अनुमान, कल्पना, तथा स्मरण। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि चिंतन में परिवेश से प्राप्त सूचनाओं तथा दीर्घकालिक स्मृति में संचित प्रतीकों, दोनों का प्रहस्तन किया जाता है। चिंतन एक उच्च स्तरीय मानसिक प्रक्रिया के रूप में संगठित तथा लक्ष्योन्मुख होता है (जैसे – किसी समस्या का समाधान ढूंढ़ना)। आइए, एक सरल समस्या पर विचार किया जाए जिसमें चिंतन संलग्न है।

मान लीजिए, आप यह निर्णय लेना चाहते हैं कि आपके अपने घर से हवाई अड्डे तक जाने का सबसे अच्छा रास्ता कौन-सा है? आपको केवल सबसे नजदीक रास्ते के बारे में ही तय नहीं करना है, बल्कि अन्य बाधाओं; जैसे – ट्रैफिक, भीड़ के समय का यातायात, किसी निर्माण कार्य के कारण रास्ते में खड़ी की गई बाधा (रास्ता बंद होना), आदि के बारे में भी ध्यान रखना है। आपका निर्णय उन सभी समस्याओं पर विचार के आधार पर लिया जाएगा, जिनका सामना आप कर सकते हैं। इस तरह सरल समस्या में भी चिंतन जरूरी होता है। इस समस्या का समाधान हमें परिवेश से प्राप्त सूचनाओं के प्रक्रमण तथा इस तरह की समस्या समाधान के अपने पुराने अनुभवों के आधार पर किया जाता है। चिंतन, तरह-तरह की मानसिक संरचनाओं; जैसे – **संप्रत्यय, स्कीमा, चाक्षुष बिंब** या **प्रतिमा** आदि पर आधारित होता है। आइए, यह देखा जाए कि चिंतन में हम संप्रत्ययों का किस तरह उपयोग करते हैं।

संप्रत्यय

सामान्य मनुष्य में यह क्षमता पाई जाती है कि वह वस्तुओं, घटनाओं या जिसका भी प्रत्यक्षीकरण कर रहा है (जैसे–फल, जानवर, फर्नीचर इत्यादि) उनके आवश्यक गुणों या विशेषताओं को अमूर्त (Abstract) रूप में ले सकता है। उदाहरण के लिए, जब हम एक संतरा देखते हैं तो उसे 'फल' की श्रेणी में रख देते हैं, जब एक मेज देखते हैं तो उसे 'फर्नीचर' की श्रेणी में रखते हैं तथा जब बिल्ली देखते हैं तो 'पशु' की श्रेणी में रखते हैं। जब हम किसी नए उद्दीपक को पाते हैं तो उसे परिचित या याद की गई श्रेणी के सदस्य के रूप में अपनाते हैं और वही नाम दे देते हैं। उदाहरण के लिए, जब गली में किसी कुत्ते को देखते हैं; तो उसे पशु के वर्ग में रखते हुए, किसी भी पशु की भाँति उसके साथ व्यवहार (जैसे – उससे दूर भागना) करते हैं। इसी तरह, हमारा जब किसी नई सामाजिक परिस्थिति से सामना होता है तो इसे अपने पुराने अनुभव के आधार पर वर्गीकृत करने की कोशिश करते हैं और उसी के अनुसार उन परिस्थितियों में कार्य करते हैं। यह किसी भी सोचने की क्षमता वाले व्यक्ति की मूलभूत योग्यता मानी जाती है।

जिन श्रेणी या वर्गों का हम निर्माण करते हैं, उनको संप्रत्यय (Concept) कहा जाता है। संप्रत्यय चिंतन के ढांचे की मूलभूत इकाई होते हैं। वे हमें ज्ञान को व्यवस्थित रूप से संगठित करने का अवसर देते हैं। संप्रत्यय वस्तुओं, क्रियाओं तथा जीवित प्राणियों के प्रतीक होते हैं। संप्रत्यय *गुणों* (जैसे "हरा" या "बड़ा"), *अमूर्त विशेषताओं* (जैसे "ईमानदार" या "प्यार") तथा *संबंधों* (जैसे "अपेक्षाकृत बड़ा", तुलना में "अधिक सुंदर") को भी दर्शाते हैं। संप्रत्यय मानसिक संरचनाएं हैं। इसलिए इन्हें हम सीधे-सीधे प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकते फिर भी व्यवहार के आधार पर उनका अनुमान जरूर लगा सकते हैं।

क्रियाकलाप 9.1

संप्रत्यय निर्माण

8 × 12 सेंटीमीटर के आकार के 20 कार्ड लें। तीन आकृतियों (त्रिभुज, वृत्त तथा वर्ग) तथा तीन रंगों (लाल, हरा, तथा पीला) को चुनें। प्रत्येक कार्ड पर, नीचे दो भिन्न आकृतियाँ (त्रिभुज या वर्ग) खींचें। इन दो आकृतियों के

ऊपर, बीच में एक अन्य आकृति (त्रिभुज या वर्ग), जैसा चित्र 9.2 में दिखाया गया है, खींचें। नीचे की दोनों ही आकृतियाँ रूप तथा रंग में, भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। ऊपर की आकृति तथा नीचे की दोनों आकृतियों में से एक की आकृति तथा दूसरे के रंग को ले सकते हैं। यह सावधानी रखें कि आकृतियों का आकार (Size) स्थिर रहे। त्रिभुज तथा वृत्त, समान आकार के वर्ग में कटे होने चाहिए। इस ढंग से 20 कार्ड तैयार करें, जिनमें विभिन्न आकृतियों तथा रंगों का संयोजन हो।

सभी कार्डों को एक डिब्बे में रखकर अच्छी तरह मिला लें। इन कार्डों को टेबिल पर इस तरह रखें कि आकृतियाँ टेबिल के सामने हों। इसके बाद एक कार्ड उठाकर, प्रतिभागी (बच्चा) को दिखाते हुए, ऊपर की आकृति की तुलना नीचे दी गई आकृतियों के साथ करने को कहें। प्रतिभागी को आकृति या रंग के बारे में कुछ भी न बताएँ। प्रतिभागी को एक-एक कार्ड दिखाएँ तथा उसे शीघ्रता से उत्तर देने को कहें।

प्रतिभागी की अनुक्रियाओं को अंकित करें। यदि वह हरे त्रिभुज की हरे रंग की आकृति से मिलान करता है, तो वह रंग के आधार पर मिला रहा है, इसलिए रंग के (कालम में) टैली लगाएं। दूसरी ओर, यदि प्रतिभागी हरे रंग के त्रिभुज का लाल त्रिभुज के साथ मिलान कर रहा है, तब यह आकृति के आधार पर मेल कर रहा है। अतः इस प्रयास में आकृति के नीचे टैली लगाएं। इस ढंग से सभी 20 कार्डों को एक-एक करके दिखाएं तथा प्रतिभागी की अनुक्रियाओं को अंकित कर लें तथा आकृति (संप्रत्यय) पर दी गई टैलियों के निशान की गणना कर लें। अध्ययन के परिणाम से बच्चे में संप्रत्यय विकास के स्वरूप की जानकारी मिल सकेगी।

संप्रत्यय-निर्माण, चिंतन का वह मूलभूत कार्य है, जिसमें उन उद्दीपक गुणों की पहचान की जाती है, जो उद्दीपक या विचार के वर्ग या श्रेणी के होते हैं। उदाहरण के लिए, क्रियाकलाप 9.1 में प्रतिभागी को रंग या आकृति के आधार पर उद्दीपक को वर्गीकृत करना है। वस्तुओं, घटनाओं या विचारों को समान श्रेणियों में वर्गीकृत करने से सूचना प्रक्रमण में लगने वाले समय तथा प्रयास को कम किया जा सकता है। यह चिंतन करने में भी सहायक होता है। अध्याय 7 में हमने पढ़ा था कि हम वस्तुओं या घटनाओं का, उनके गुणों (जैसे – रंग, आकृति, आकार आदि) के आधार पर वर्गीकरण करना ही नहीं सीखते बल्कि गुणों या विशेषताओं से जुड़े संप्रत्ययात्मक नियमों को भी सीखते हैं। उदाहरण के लिए, हम केवल ट्रैफिक की रोशनी के रंग (लाल, हरा, पीला) को वर्गीकृत करना ही नहीं सीखते बल्कि उन संप्रत्ययात्मक नियमों को भी सीखते हैं, जिनसे ये विशेषताएँ (रंग) संबंधित हैं। अर्थात् यह भी सीखते हैं कि लाल रोशनी "रुकने का संकेत है," पीली रोशनी का मतलब है कि "रुकने या जाने के लिए तैयार हो जाइए" तथा हरी रोशनी "जाने" का संकेत है। यह सचमुच एक आश्चर्य है कि हम किस तरह इतने सारे संप्रत्ययात्मक नियमों को सीखते हैं; संचित करते हैं तथा जरूरत पड़ने पर उनको स्मृति से बाहर लाकर याद करते हैं तथा अन्य लोगों या परिवेश के साथ अंतःक्रिया में दिन-प्रतिदिन के जीवन में उपयोग में लाते हैं।

तर्कणा

तर्कणा (Reasoning) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनुमान, विशेष रूप से, तार्किक चिंतन या समस्या-समाधान की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। यह लक्ष्योन्मुखी होती है तथा निष्कर्ष (निर्णय) उपलब्ध तथ्यों के आधार पर निकाले जाते हैं। तर्कणा में पर्यावरण से प्राप्त सूचना तथा मस्तिष्क में संचित सूचना का कुछ नियमों के अनुसार उपयोग किया जाता है। हम तर्कणा को **निगमनात्मक** (Deductive) तथा **आगमनात्मक** (Inductive) दो प्रकारों में बांट सकते हैं।

निगमनात्मक तर्कणा : निगमनात्मक ढंग से तर्कणा में व्यक्ति आरंभिक आधार स्थापनाओं (Premises) को ध्यान में रखकर निष्कर्ष निकालता है। निगमनात्मक तर्कणा का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। इस उदाहरण में एक सिलॉजिज्म (Syllogism) है, जिसमें दो आधार स्थापनाएँ तथा एक निष्कर्ष शामिल है :

सभी अ ब हैं (आधार स्थापना)।
सभी ब स हैं (आधार स्थापना)।
इसलिए : सभी अ स हैं (वैध निष्कर्ष)।

उपर्युक्त एक वैध सिलॉजिज्म का उदाहरण है। अब एक अवैध सिलॉजिज्म का उदाहरण देखें :

सभी अ ब हैं (आधार स्थापना)।
कुछ ब स हैं (आधार स्थापना)।
इसलिए : कुछ अ, स हैं (अवैध निष्कर्ष)।

कभी-कभी हम अनुपयुक्त तार्किक रूपांतरण करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, यह कहना कि चूँकि "सभी बिल्लियाँ जानवर हैं", इसलिए "सभी जानवर बिल्ली हैं"

गलत निष्कर्ष होगा। यह सिलॉजिज्म "सभी अ, ब हैं" लेकिन "सभी ब, अ नहीं है" का अनुसरण करता है।

हम निगमनात्मक तर्कणा में सामान्य से विशिष्ट की दिशा में आगे बढ़ते हैं। हम कुछ सामान्य नियमों का उपयोग करते हैं ("सभी लोग मरणशील हैं") तथा यह पूछते हैं कि इसे किसी विशेष उदाहरण ("रमेश मरणशील है") पर कैसे लागू किया जा सकता है।

आगमनात्मक तर्कणा : किसी बात की संभावना के बारे में आगमनात्मक तर्कणा निगमनात्मक तर्कणा के विपरीत होती है। इसमें हम उपलब्ध तथ्यों के आधार निष्कर्ष निकालते हैं। हम विभिन्न उदाहरणों पर विचार कर यह देखते हैं कि कौन-सा सामान्य नियम सभी घटनाओं को अपने में समेट सकता है। आइए, आगमनात्मक चिंतन के एक उदाहरण पर विचार किया जाए।

मान लीजिए, आप अपने कार की चाभी खोज रहे हैं। आप जहाँ अक्सर अपने कार की चाभी रखते हैं वहाँ उसे ढूंढ़ते हैं। आपको चाभी वहाँ नहीं मिलती है। आप आगमनात्मक तर्कणा का उपयोग करते हुए सोचते हैं: "मैंने कार की चाभी निकाली तथा कार के दरवाजे को बंद किया। मैंने चाभी के गुच्छे से घर का दरवाजा खोला तथा कमरे में घुसा, उस समय टेलीफोन की घंटी बज रही थी और मैं टेलीफोन सुनने के लिए भागा। मैंने टेलीफोन पर बात की। इसलिए मैंने चाभी दरवाजे में ही लगी छोड़ दी।" आप दरवाजे के पास जाते हैं तथा वहाँ आपको चाभी मिल जाती है।

वैज्ञानिक सोच विचार करते समय हम ज्यादातर आगमनात्मक तर्कणा का उपयोग करते हैं। वैज्ञानिक और आम आदमी विभिन्न घटनाओं के आधार पर उनमें निहित सामान्य नियमों का निर्धारण करते हैं। उदाहरणस्वरूप, एक लड़की मनमौजी, गुस्सैल, अधीर तथा अत्यंत सक्रिय है – वह किशोरावस्था में है। यह सामान्य कथन कि 'वह किशोरावस्था में है' उसके व्यवहार के बारे में सामान्य विशेषता बतलाता है।

समस्या-समाधान

हमारे दैनिक जीवन के अधिकांश क्रियाकलापों में **समस्या समाधान** प्रमुख रूप से सम्मिलित होता है। इसमें सरल निर्णय; जैसे – दिनचर्या के बारे में निर्णय लेने, नाश्ते में क्या खाना है, से लेकर जटिल किस्म के निर्णय; जैसे – किस कैरियर को चुनना है, सभी शामिल होते हैं। समस्या-समाधान इस तरह का चिंतन है जो किसी खास समस्या के समाधान की ओर उन्मुख होता है। इस तरह के चिंतन के तीन अवयव होते हैं। चिंतन में व्यक्ति आरंभिक दशा (समस्या) से चलकर, **मानसिक क्रियाओं** (Mental operations) या चरणों का अनुसरण करते हुए, लक्ष्य की स्थिति (End state) तक पहुँचता है।

मान लीजिए, एक दिन आपको एक अप्रत्याशित बिल भुगतान के लिए मिलता है। बिल पाने के साथ ही, आरंभिक दशा-समस्या आरंभ हो जाती है। आपका लक्ष्य है परिवार के बजट को गड़बड़ किए बिना बिल का भुगतान करने के लिए धन इकट्ठा करना। समस्या-समाधान के कुछ तरीके या चरण अपेक्षाकृत अधिक सरल तथा ग्राह्य होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी मित्र से सहायता लेने के बजाए क्रेडिट कार्ड से पैसा निकालना ज्यादा ठीक है। सबसे अच्छी या सबसे ज्यादा स्वीकार्य मानसिक क्रियाओं या चरणों का उपयोग करके आप आरंभिक अवस्था से लक्ष्य की अवस्था तक पहुँच सकते हैं जहाँ आपको समस्या का हल मिल जाता है।

समस्या-समाधान में मानसिक विन्यास

मानसिक सेट या विन्यास व्यक्ति में विद्यमान वह प्रवृत्ति है जिसके अनुसार व्यक्ति नई समस्या के प्रति प्रतिक्रिया, समस्या-समाधान की अपनी पुरानी शैली से करता है। किसी विशेष नियम को अपनाने के फलस्वरूप पहले के प्रयासों में पाई गई सफलता, एक प्रकार की **मानसिक स्थिरता** (Mental fixedness) या जड़ता उत्पन्न करती है, जो समस्या-समाधान तथा सृजनात्मकता (Creativity) को प्रतिबंधित कर देती है। मानसिक सेट, समस्या के प्रत्यक्षीकरण तथा उसके समाधान की गति को बढ़ा भी सकता है, परंतु कुछ दशाओं में यह बाधा पैदा कर सकता है और हमारी मानसिक क्रियाओं की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। अपने वास्तविक जीवन की समस्याओं के समाधान में हम समान या संबंधित समस्याओं के समाधान में पहले की सीख या अनुभव पर अक्सर निर्भर करते हैं।

मानसिक सेट के प्रायोगिक अध्ययन के लिए क्रियाकलाप 9.2, जो **लुचिंस** की जल-पात्र समस्या कहलाता है, करके देखिए।

क्रियाकलाप 9.2

सेट का समस्या समाधान पर प्रभाव

अपने एक साथी के सामने निम्नांकित समस्याओं को समाधान के लिए दिए गए निर्देशों के साथ प्रस्तुत कीजिए।

नीचे तालिका में कुल 7 समस्याएँ दी गई हैं। यहाँ तीन खाली पात्र (A,B तथा C) हैं तथा एक अन्य बड़े टब में पर्याप्त जल है। दिए गए पात्रों की सहायता से आपको दी गई निश्चित मात्रा में जल एकत्र करना है। समस्या समाधान कैसे करेंगे, इसकी व्याख्या समस्या संख्या एक में दी गई है। आपके पास तीन खाली पात्र हैं, जिनकी क्षमता 21 ml (A), 127 ml (B), तथा 3 ml (C) की है। इन पात्रों की सहायता से आपको 100 ml पानी भरना है। आप पहले 'B' पात्र को पानी से भर लीजिए, फिर 'B' पात्र से 'A' पात्र में पानी गिरा दीजिए। पात्र 'B' में अब 106 ml पानी बचा। अब दो बार पात्र 'C' की सहायता से पानी 'B' पात्र से गिराइए। आपके पास 100 ml पानी बचा। अब आप आगे बढ़िए तथा दी हुई 6 समस्याओं का समाधान कीजिए।

तालिका 9.1 : जल पात्र समस्याएँ

समस्या संख्या	खाली पात्रों की क्षमता (ml)			वांछित पानी की मात्रा (ml)
	A	B	C	
1.	21	127	3	100
2.	14	163	25	99
3.	18	43	10	5
4.	9	42	6	21
5.	20	59	4	31
6.	14	36	8	6
7.	28	76	3	25

अब प्रतिभागी समान चरणों (B-A-2C) का उपयोग करके आगे की समस्याओं का (पाँचवीं तक) समाधान कर लेगा परंतु छठी समस्या अलग तरह की है, जिसका समाधान पहले अपनाई गई विधि की सहायता से किया जा सकता है। परंतु एक सीधी तथा सरल विधि यह है कि पानी भरे 'A' पात्र में से जल 'C' पात्र (A-C) में गिराकर, समस्या का समाधान किया जाए। मानसिक सेट या विन्यास के कारण, जो आरंभिक पाँच समस्याओं के समाधान के आधार पर विकसित हुआ है, प्रतिभागी में एक प्रकार की जड़ता या मानसिक अंधप्रभाव (विकल्पों की ओर से आँख मूँद लेना) विकसित हो जाने के कारण, वह पहले की विधि से ही समस्या का समाधान करता है। सातवीं समस्या दूसरे तरह की है। इस समस्या में पहली विधि (B-A-2C) से समाधान संभव ही नहीं है। 2 से 7वीं समस्याओं के समाधान में लगा समय समस्या समाधान को दर्शाता है, इसलिए सही समाधान तक पहुँचने में लगे समय को भी अंकित कीजिए।

बाक्स 9.3 कृत्रिम बुद्धि

कोई भी कृत्रिम व्यवस्था, प्रायः कंप्यूटर, जो मनुष्य की तरह चिंतन, निर्णय लेने या समस्या समाधान की क्षमता रखता है, कृत्रिम बुद्धि (Artificial Intelligence या AI) कहलाता है। क्या कंप्यूटर या संगणक बुद्धिमान हो सकता है? क्या संगणक चिंतन या समस्या समाधान कर सकता है? यदि ऐसा संभव है तो बहुत सारे कार्य; जैसे – संगीत की धुन बजाने से लेकर चिकित्सा के निदान तक, एक संगणक मानव की तुलना में बहुत अच्छे तरीके से कर सकता है। इसकी गति, स्मृति तथा सूचनाओं को प्रक्रमण करने की क्षमता अत्यंत तीव्र होती है।

चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जिसमें सूचना का प्रहस्तन संलग्न होता है। यदि सूचना का प्रहस्तन ही चिंतन है तो संगणक सोच सकते हैं। अगर संगणक वैज्ञानिक ऐसे कार्यक्रम बनाएँ, तो संगणक चिंतन कर सकता है तथा समस्या का समाधान भी कर सकता है। हम देख रहे हैं कि संगणक विशिष्ट कार्यक्रमों की सहायता से विशिष्ट समस्याओं का समाधान कर रहा है। संगणक वैज्ञानिकों को, उन कार्यक्रमों के निर्माण के लिए, जो मानव समस्या-समाधान की तरकीबों का अनुकरण कर सकें, संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों से बहुत कुछ सीखना होगा। इसी तरह कृत्रिम बुद्धि से, संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों को मस्तिष्क के बारे में कुछ अत्यंत पुराने प्रश्नों की गहन जाँच में सहायता मिलती है। अतः संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक संज्ञानों, जैसे – चिंतन, समस्या-समाधान, स्मृति, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि के बारे में परिकल्पनाओं की जाँच के लिए, कृत्रिम बुद्धि का उपयोग एक शोध उपकरण के रूप में कर रहे हैं।

निर्णय तथा निर्णय लेना

प्रायः हम अपने दैनिक जीवन में ऐसे व्यक्तिगत, आर्थिक तथा राजनैतिक निर्णय लेते हैं, जिनका प्रभाव हमारे ऊपर तथा दूसरे लोगों पर भी लम्बे समय तक पड़ सकता है। निर्णय लेते समय हमसे प्रायः त्रुटियाँ हो जाती हैं तथा किसी समय पर हमारे निर्णय अतार्किक भी साबित होते हैं। मनोवैज्ञानिक लोग निर्णय लेने की प्रक्रिया के बीच अंतर करते हैं। हम यहाँ चिंतन के इन दोनों प्रश्नों पर विचार करेंगे।

निर्णय

निर्णय (Judgement) वह प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर हम वस्तुओं, घटनाओं तथा व्यक्तियों के बारे में अपने विचार बनाते हैं, निष्कर्ष तक पहुँचते हैं तथा समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical evaluation) करते हैं। निर्णय की प्रक्रिया स्वचालित तथा तुरंत होती है तथा इसमें किसी तरह की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती। कुछ विकल्प आदतवश चुन लिए जाते हैं, जैसे नाश्ते में चाय लेने का निर्णय। निर्णय वाले दूसरे तरह के काम कम स्पष्ट या परिचित हो सकते हैं तथा मौके पर तत्काल आवश्यकता के अनुसार निर्णय लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए, जब आप एक फिल्म देखते हैं तो यह निर्णय करते हैं कि यह फिल्म अच्छी थी या बेकार। इस प्रकार के निर्णय में उस तरह की पहले देखी गई फिल्मों के बारे में आपके पूर्व अनुभव महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इस तरह का निर्णय सापेक्षिक होता है। एक अन्य उदाहरण पर गौर कीजिए। आपको, कक्षा में एक नए अध्यापक पढ़ाने आते हैं। कक्षा में ही उस अध्यापक के पढ़ाने के तौर तरीके का निर्णय, उन सभी अध्यापकों के संदर्भ में, जिनसे आपने पहले पढ़ा है, आप करते हैं। प्रायः हम सभी, निर्णय प्रक्रिया में पहले से संचित प्रमुख जानकारियों का उपयोग करते हैं। हमारे निर्णय, हमारी अभिवृत्तियों या विश्वासों से स्वतंत्र या अलग नहीं होते। वे अनुमान पर आधारित होते हैं। वस्तुतः हम साक्ष्यों, विश्वासों तथा अपनी अभिवृत्तियों के आधार पर ही किसी चीज के बारे में निष्कर्ष निकालते हैं।

निर्णय लेना

निर्णय तथा निर्णय लेना (Decision Making) एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रियाएँ हैं। निर्णय में बाह्य संसार; जैसे – वस्तुएँ, घटनाएँ, व्यक्ति आदि के बारे में सूचनाओं का मूल्यांकन सम्मिलित है जबकि निर्णय में विकल्पों में से चुनाव करना प्रमुख बात है। निर्णय लेना एक तरह की समस्या-समाधान की प्रक्रिया है, जिसमें कई विकल्पों में से किसी एक को चुनना होता है। उदाहरण के लिए, आपको ग्यारहवीं कक्षा में एक विषय के रूप में मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के बीच चुनाव करना है। आप दोनों विषयों की कक्षाओं में बैठते हैं, ताकि विषय के बारे में निर्णय ले सकें। आपको लगता है कि मनोविज्ञान का अध्यापक बुद्धिमान, मित्रवत्, ज्ञानवान, बेहतर वाचिक योग्यता वाला है तथा वे सभी गुण जो अध्यापक में होने चाहिए, उसमें विद्यमान हैं। अतः अध्यापक के गुणों के आधार पर आप मनोविज्ञान विषय को अध्ययन के लिए चुनते हैं।

क्रियाकलाप 9.3

जटिल परिस्थिति में निर्णय लेना

नीचे दी गई परिस्थितियों को ध्यानपूर्वक पढ़िए तथा निर्णय के लिए महत्त्व के अनुसार अपनी पंसद बताइए।

परिस्थिति

एक शाम जब राजेंद्र घर पहुँचता है तो उसे पता चलता है कि उसके पिता बीमार हैं तथा उन्हें शहर के अस्पताल में भर्ती कराया गया है। राजेंद्र तुरंत अस्पताल भागता है। अस्पताल पहुँचने पर उसे पता चलता है कि उसके पिता की अँतड़ी में रुकावट है तथा काफी बड़े ऑपरेशन की जरूरत है। राजेंद्र तुरंत शल्य चिकित्सक से मिलकर पता करता है कि क्या किया जाना है। चिकित्सक राजेंद्र को यह बताता है कि समस्या गंभीर है तथा जितना जल्दी संभव हो सके उपचार शुरू कर देना चाहिए। राजेंद्र अपने पिता का इकलौता बेटा है जो एक प्राइवेट संगठन में नौकरी करता है तथा एक वरिष्ठ अधिकारी के रूप में उसकी अनेक जिम्मेदारियाँ हैं।

आपका कार्य

राजेंद्र को निर्णय लेने के पहले कुछ बिंदुओं पर विचार करना है, जो उसे निर्णय तक पहुँचने में मदद देंगे। वे बिंदु जिन पर उसे ध्यान देना है, यहाँ नीचे दिए जा रहे हैं। महत्त्व के अनुसार, जिन बिंदुओं पर आप सोचते हैं कि राजेंद्र को विचार करना चाहिए, क्रमशः अपनी प्रतिक्रिया दें। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बिंदु पर एक (1) अंक देना है, उसके बाद वाले को दो (2), क्रमशः इसी प्रकार प्रतिक्रिया देनी है सबसे कम महत्त्व के बिंदु पर दस (10) लिखें।

विचार के लिए महत्त्वपूर्ण बिंदु	*महत्त्व का क्रम*
लगने वाला खर्च	________
दूसरे चिकित्सक से परामर्श	________
शल्य चिकित्सा के बाद स्वास्थ्य लाभ की अवधि	________
क्या रोगी बड़ी शल्य चिकित्सा बर्दाश्त कर पाएगा	________
क्या अधिक उपयुक्त समय तक के लिए शल्यक्रिया को टाला जा सकता है?	________
रोगी की देखभाल के लिए रिश्तेदारों को बुलाने की आवश्यकता	________
पैसों की व्यवस्था	________
यह निर्णय कि शल्यक्रिया कौन करेगा?	________
उस अस्पताल के बारे में निर्णय कि शल्यचिकित्सा कहाँ कराई जाए?	________
अच्छे या शुभ दिन के बारे में ज्योतिषी से परामर्श	________

जब आप क्रियाकलाप 9.3 में दिए गए कार्यों को एक या दो लोगों को करने को देंगे तो पाएंगे कि निर्णय लेने में लोग भिन्न-भिन्न पसंद प्रदर्शित करते हैं तथा अंतिम निर्णय एक व्यक्ति का दूसरे से भिन्न हो सकता है। सामान्यतः हम दक्षता तथा किफायत की वजह से प्रत्येक परिस्थिति तथा परिवर्त्य का विस्तृत तथा पूरी तरह से, मूल्यांकन नहीं करते। हम प्रायः समस्या के स्वरूप तथा इसके परिणाम के अनुरूप, कोई निर्णय लेने में सरल तरकीबों या मानसिक लाघव (Mental shortcuts) का उपयोग करते हैं।

सृजनात्मक चिंतन

सृजनात्मक चिंतन (Creative Thinking) का तात्पर्य समस्याओं का सृजनात्मक ढंग से समाधान करने से है। समस्या-समाधान के सामान्य तरीके से भिन्न, सृजनात्मक समाधान, वह समाधान होता है जिसे पहले किसी ने नहीं सोचा था, जो बिल्कुल नया हो। एक कलाकार, संगीतज्ञ, लेखक, वैज्ञानिक, खिलाड़ी कोई भी सृजनात्मक चिंतक हो सकता है। एक सृजनात्मक वैज्ञानिक अपनी खोज तथा अन्य वैज्ञानिकों की खोज के आधार पर प्रकृति तथा उसके सिद्धांतों के अध्ययन के लिए नए रास्तों का उपयोग करता है तथा नए समाधान तक पहुँचता है। सृजनात्मक चिंतन में "नया" शब्द पर विशेष बल दिया जाता है।

सृजनात्मक समाधान या उत्पाद, जो स्वतः स्फूर्त या वह परिश्रम तथा तैयारी जो हमारे अचेतन मन में जा चुकी है, उनकी परिणति होते हैं। अचानक समाधान, केवल तैयार या तत्पर मानस में ही मिलता है। नए विचार की अचानक उत्पत्ति **अंतर्दृष्टि** (Insight) कहलाती है। निम्नलिखित कहानी से आर्किमिडीज के सृजनात्मक समाधान का अच्छा उदाहरण मिलता है।

साइरस के राजा ने ईश्वर के प्रति कृतज्ञता दर्शाने के लिए मंदिर में सोने का मुकुट चढ़ाने का निर्णय लिया। उसने सोने को तोल कर सुनार को मुकुट तैयार करने के लिए दिया। मुकुट पर दस्तकारी बहुत सुंदर थी, राजा प्रसन्न हो गया। बाद में पता चला कि सुनार ने कुछ सोना निकालकर उतनी ही मात्रा में चाँदी मिला दी है। राजा को बहुत गुस्सा आया तथा वह मुकुट को तोड़े बिना लगाए गए आरोप की जाँच करना चाहता था। राजा ने आर्किमिडीज के सामने समस्या रखी और उसे समस्या को हल करने के लिए कहा। आर्किमिडीज को समस्या का समाधान कठिन लगा।

एक दिन जब वह स्नान के लिए पानी से भरे टब में कूदा, तो उसके ध्यान में आया कि शरीर के आयतन के बराबर पानी टब से बाहर आ गया। तुरंत नंगे शरीर ही वह पानी से बाहर आ गया तथा उल्लास तथा प्रसन्नता के साथ ग्रीक शब्द "यूरेका, यूरेका" 'मैंने पा लिया, मैंने पा लिया,' दुहराते हुए दौड़ पड़ा। उसने मुकुट तोड़े बिना, उस सच्चाई की खोज कर ली। वास्तव में सुनार ने राजा को ठगा था। समान भार के स्वर्ण की अपेक्षा मुकुट में लगे चाँदी की क्षमता अधिक होने से मुकुट ने समान भार के स्वर्ण की अपेक्षा अधिक जल बाहर निकाला। मुकुट में लगी चाँदी की क्षमता उसी के बराबर समान भार के स्वर्ण से अधिक थी। जब पानी में मुकुट रखा गया तथा उसी के भार के बराबर सोना रखा गया तो मुकुट रखने से सामान्य स्वर्ण की तुलना में अधिक पानी बाहर गिरा।

आर्किमिडीज ने अचानक समस्या का हल ढूँढ़ लिया था, क्योंकि वह पूर्णरूपेण समस्या में तल्लीन था तथा समस्या के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण कर चुका था। अध्ययनों से पता चलता है कि सृजनात्मक चिंतन के कई चरण होते हैं।

बाक्स 9.4 **सृजनात्मक चिंतन का प्रोत्साहन**

सृजनात्मक चिंतन तथा समस्या समाधान के अध्ययनों से कुछ सामान्य कौशलों या योग्यताओं का पता लगाया गया है। बच्चों में सृजनात्मक चिंतन में वृद्धि का प्रयास कुछ युक्तियों तथा उपकरणों का उपयोग करके किया जा सकता है। इनमें से प्रमुख हैं :

- ***संवेदनशीलता का प्रशिक्षण :*** *इसके अंतर्गत भिन्न और नए तरीके से सोचने का अवसर दिया जाता है जैसे आप अपने घर के आस-पास कैसी ध्वनियाँ सुनते हैं? आप बादलों में क्या-क्या आकार देखते हैं।*
- ***प्रेक्षण :*** *बच्चों को अपने आस-पास की चीजों को देखने प्रेक्षण करने तथा इन्हें लिखने के लिए प्रेरित करना।*
- ***शब्द प्रयोग :*** *समान अक्षर से आरंभ होने वाले विभिन्न शब्दों से वाक्यों का निर्माण।*
- ***बहुल प्रयोग :*** *विभिन्न वस्तुओं जैसे पेंसिल, कप, बल्ब, समाचार पत्र, इत्यादि के सामान्य तथा असामान्य उपयोगों की, जिन्हें हम सोच सकते हैं, सूची बनाना।*
- ***कहानी लेखन :*** *बच्चों को कुछ वाक्य देकर, उनसे कहानी पूरी करने को कहना या अलग ढंग से लिखने को कहना।*
- ***अन्वेषण :*** *भोजन हेतु नया व्यंजन, संगीत उपकरण, कलम, स्टैंड, किताब पर चिह्न लगाने की कलम या दैनिक उपयोग की कोई चीज बनाना।*
- ***वर्गीकरण :*** *विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का वर्गीकरण।*

सृजनात्मक चिंतन के चरण

ग्राहम वालेस ने चार दशक पहले साक्षात्कारों, प्रश्नावलियों तथा संस्मरणों की सहायता से, प्रख्यात सृजनात्मक चिंतकों की चिंतन प्रक्रिया में निहित चरणों का अध्ययन किया। उन्होंने पता लगाया कि यद्यपि चिंतन में वैयक्तिक भिन्नताएँ होती हैं तथापि इसका एक क्रमबद्ध स्वरूप भी होता है। उन्होंने पाँच चरणों : *तैयारी, उद्भवन, प्रदीप्तिकरण, मूल्यांकन,* तथा *समीक्षा,* का उल्लेख किया है।

1. **तैयारी** : चिंतन करने वाला व्यक्ति, समस्याओं का रेखांकन करता है तथा समस्या-समाधान के लिए आवश्यक सामग्रियों तथा प्रदत्तों को एकत्र करता है। कई दिनों, सप्ताहों तथा महीनों तक सतत प्रयास के बावजूद समस्या का हल नहीं मिलता है। चिंतक जानबूझकर या अनिच्छा से अपने को इस प्रक्रिया से अलग कर लेता है। यहाँ से दूसरे चरण की शुरुआत होती है। यहाँ मानसिक विन्यास तथा कार्यात्मक जड़ता (Functional fixify) से व्यक्ति को दूर रहने की जरूरत होती है।
2. **उद्भवन** : जैसे ही व्यक्ति समस्या से हट जाता है तथा उसके बारे में नहीं सोचता है, त्यों ही, मानसिक सेट, प्रकार्यात्मक स्थिरता या अन्य विचार, जो समाधान को बाधित करते हैं, कमजोर पड़ जाते हैं। शायद थकान या समस्या में अधिक तल्लीनता भी इस अवधि में कम हो जाती है। सृजनात्मक चिंतन में संलग्न अचेतन चिंतन प्रक्रिया भी इस चरण में कार्य करने लगती है।
3. **प्रदीप्तिकरण** : जब कहीं से कुछ नहीं होता, तो अंतर्दृष्टि के रूप में समस्या का संभावित समाधान दिखता है। प्रदीप्तन, 'आहा' के साथ समाधान के एक अचानक विचार के रूप में, चेतना में घटित होता है।
4. **मूल्यांकन** : जो समाधान प्राप्त होता है, उसकी उपयुक्तता की जाँच या परीक्षण किया जाता है। जो सूझ मिलती है वह अक्सर अंतर्दृष्टियाँ असंतोषदायी भी होती हैं, जिनमें परिमार्जन आवश्यक होता है।
5. **पुनःसमीक्षा** : यदि हम संतोषदायी समाधान तक नहीं पहुँच पाते तो पुनः समीक्षा (Revision) आवश्यक हो जाती है।

हमने सृजनात्मक चिंतन के जिन चरणों का विवेचन किया है, उनसे इनके चरणों की एक सामान्य तस्वीर मिलती है, जो अत्यंत सृजनशील या प्रतिभावान लोगों द्वारा, समस्या समाधान के लिए अपनायी जाती है। सृजनात्मक चिंतन के अध्ययन का एक दूसरा दृष्टिकोण इस तरह के चिंतन की समस्या-समाधान से भिन्नता पर ध्यान देता है।

सृजनात्मक चिंतन का स्वरूप

व्यक्तियों में विद्यमान सृजनात्मकता के मापन के लिए कई परीक्षणों को विकसित करने का प्रयास किया गया है। **गिलफोर्ड** 1967 ने इस प्रकार के एक परीक्षण का निर्माण किया है। इस कार्य के परिणामस्वरूप **अभिसारी** (Convergent) तथा **वैविध्यपूर्ण** (Divergent) चिंतन के संप्रत्यय प्रकाश में आए। इन दोनों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ पर प्रासंगिक होगी।

बाक्स 9.5 **सृजनात्मकता का मापन**

नीचे पंद्रह परिस्थितियाँ दी गई हैं, जिनके आगे तीन (अ,ब या स) वैकल्पिक अनुक्रियाएं दी गई हैं, जो आपके अनुभव, या सोचने तथा व्यवहार करने के ढंग से संबंधित हैं। निर्णय लेने के बाद तीन में से किसी एक विकल्प को चुन कर उस पर निशान लगाइए तथा आगे बढ़िए।

1. **आप अपने कमरे या घर की बैठक (ड्राइंग रूम) के फर्नीचर की व्यवस्था में प्रायः परिवर्तन करते रहते हैं।**
   (अ) मैं कमरे की फर्नीचर व्यवस्था के स्वरूप पर प्रायः ध्यान नहीं देता/देती हूँ।
   (ब) कभी-कभी मैं फर्नीचर की व्यवस्था को बदलता रहता/रहती हूँ।
   (स) जब कभी मैं कमरे को देखता हूँ तो मैं एक आदर्श कमरे की कल्पना करता हूँ। मैं अपने घर के फर्नीचर या अन्य चीजों को व्यवस्थित तथा पुनः व्यवस्थित करता रहता हूँ।
2. **आप अपने कपड़ों के रंग का मिलान उचित ढंग से अवसर के अनुसार, करते हैं।**
   (अ) मैं अपने कपड़ों के मिलान पर विशेष ध्यान नहीं देता। वस्तुतः मुझे रंग का सही ज्ञान नहीं है।
   (ब) कुछ सीमा तक मुझे लगता है कि जो कपड़े मैंने पहने हैं; उनका रंग अनुपयुक्त नहीं है।
   (स) मैं अति सावधानीपूर्वक अपने कपड़े, जूते तथा मोजे में मिलान करता हूँ। मैं सदैव अवसर के अनुरूप कपड़ों को चुनता हूँ।
3. **आपका शौक है :**
   (अ) उपन्यास या कहानी की पुस्तकें पढ़ना।
   (ब) मित्रों या रिश्तेदारों के यहाँ भ्रमण करना।
   (स) पुरानी तथा नगण्य घरेलू वस्तुओं को इकट्ठा करना तथा सजाने के उद्देश्य से उनका नए ढंग से रूप-रंग देना।
4. **आप जब अकेले रहते हैं, तो अधिक आनंद लेते हैं। आपको दूसरों के साथ समय बर्बाद करने से घृणा है।**
   (अ) मैं ठीक ऐसा ही हूँ।
   (ब) मैं रविवार तथा छुट्टियों के दिन एकदम अकेले रहना चाहता हूँ। अन्य दिनों में अन्य लोगों के साथ का आनंद उठाता हूँ।
   (स) मैं एक मिनट भी अकेले नहीं रह सकता। मैं सर्वाधिक खुशी तब महसूस करता हूँ, जब अन्य लोगों के साथ रहता हूँ।
5. **आप सदैव अपने निर्णयों को प्रभावी होते देखना चाहते हैं। आप तब तक विचार-विमर्श करते रहते हैं जब तक दूसरे को मनाने में सफल नहीं हो जाते।**
   (अ) मैं एक आदर्शवादी हूँ तथा अपने ढंग से कार्यों को करना चाहता हूँ।
   (ब) मैं दूसरों के दृष्टिकोण पर भी विचार करता हूँ। कभी भी अपने दृष्टिकोण को हावी नहीं होने देना चाहता।
   (स) मैं दूसरों के दृष्टिकोणों या विचारों के प्रति खुला मन रखता हूँ। इससे बेहतर समाधान मिलता है।
6. **आप विश्वासपूर्वक स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकते हैं।**
   (अ) मैं कठिन कार्यों को स्वतंत्र रूप से नहीं कर सकता। मैं सदैव दूसरों से सहायता या परामर्श लेता हूँ।
   (ब) सामान्यतः मैं स्वतंत्र रूप से नियत कार्यों को विश्वासपूर्वक संपादित कर सकता हूँ। फिर भी लोगों से बीच-बीच में सलाह लेता रहता हूँ।
   (स) मैं विश्वासपूर्वक नियत कार्यों को स्वतंत्र रूप से संपादित कर सकता हूँ।
7. **जब कभी आप कुछ खरीदने जाते हैं (जैसे – फर्नीचर, कपड़ा आदि) तो सावधानीपूर्वक उस वस्तु के सभी पक्षों; जैसे – आकृति, बाह्य रूप इत्यादि पर ध्यान देते हैं।**
   (अ) मैं केवल काम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पक्षों पर ध्यान देता हूँ। विस्तार की चिंता नहीं करता।
   (ब) सामान्यतः जो चीज मुझे खरीदनी है उस पर कुछ विस्तार से ध्यान देता हूँ परंतु पूरे विस्तार से नहीं।
   (स) मैं अत्यंत सावधानीपूर्वक खरीदनेवाली वस्तु के सभी पक्षों पर ध्यान देता हूँ। मेरे लिए, उस वस्तु की खूबसूरती सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है।
8. **आप सबसे अधिक आनंदित होते हैं जब :**
   (अ) अपने मित्रों के साथ फिल्म देखते हैं।
   (ब) जब आप कला दीर्घा में भ्रमण कर रहे हैं।
   (स) जब आप ड्राइंग या पेंटिंग करते हैं।
9. **मनुष्य भगवान के हाथ का खिलौना है।**
   (अ) मैं इस कथन में अत्यधिक विश्वास करता हूँ।
   (ब) यह कुछ सीमा तक सही है। व्यक्ति इन बाह्य शक्तियों को कठिन परिश्रम तथा सतत प्रयास से नियंत्रित कर सकता है।
   (स) मैं इसमें विश्वास नहीं करता। मनुष्य अपना भाग्य खुद बनाता है।
10. **'असंभव' शब्द मूर्खों के शब्दकोश में आता है।**
   (अ) मैं इससे असहमत हूँ, क्योंकि हर कोई, सब कुछ नहीं कर सकता।

(ब) यह कुछ सीमा तक सही है।

(स) मैं पूरी तरह इस दृष्टिकोण से सहमत हूँ। प्रत्येक व्यक्ति इस संसार में कठिन परिश्रम तथा सतत प्रयास से सब कुछ पा सकता है।

11. आप किसी प्रकार की आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकते।

(अ) यह मेरे संदर्भ में सही है।

(ब) मैं कुछ लोगों से कुछ विषयों पर आलोचना बर्दाश्त नहीं कर सकता।

(स) मेरा विश्वास है कि यदि इसे सही परिप्रेक्ष्य में लिया जाए तो आलोचना व्यक्ति को मजबूत बनाती है। रचनात्मक आलोचना हमेशा स्वस्थ होती है।

12. आप प्रायः विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए दूसरों से सहायता मांगते हैं। आपका अपने पर यह भरोसा नहीं है कि आप इन्हें स्वयं संचालित कर सकते हैं?

(अ) यह मेरे बारे में सही है। मेरा मानना है कि दो या दो से अधिक लोग मिलकर सही निर्णय ले सकते हैं।

(ब) कुछ कठिन समस्याओं के अतिरिक्त मैं प्रायः स्वतंत्र ढंग से काम करता हूँ।

(स) मैं सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान खुद कर सकता हूँ। मैं सभी संभव विकल्पों को सोचकर निर्णय लेता हूँ।

13. आप कार चलाते समय लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सबसे छोटे रास्ते का मानसिक चित्र बना लेते हैं।

(अ) मैं बिना किसी योजना के चल पड़ता हूँ।

(ब) कभी-कभी मैं ऐसा करता हूँ जब रास्ते स्पष्ट नहीं होते हैं।

(स) आरंभ करने से पूर्व मैं सदैव रास्ते की एक मानसिक प्रतिमा तैयार करता हूँ तथा लक्ष्य तक जाने में इसका अनुकरण करता हूँ।

14. आप अलौकिक शक्तियों में अत्यधिक विश्वास करते हैं।

(अ) मैं इस पर विश्वास नहीं करता कि कुछ बाह्य शक्तियाँ परिणाम को निर्धारित करती हैं।

(ब) जब मैं आश्वस्त नहीं रहता या संकट के समय में, बाह्य प्रभावों पर विश्वास नहीं करता।

(स) मैं ऐसे अवैज्ञानिक विश्वासों को नहीं मानता। आत्मविश्वास, सतत प्रयास तथा कठिन परिश्रम द्वारा कोई भी व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता पा सकता है।

15. यदि आप अपना एक भवन बनाने की योजना बनाते हैं तो आप ऐसे वास्तुकार को लेंगे :

(अ) जो कम खर्च में सबसे अच्छे भवन का निर्माण करे।

(ब) जो आपको सुंदर तथा मजबूत भवन दे।

(स) जो भवन का खाका तथा आंतरिक हिस्सों की योजना बनाता है।

गणना

सभी 15 पदों पर अनुक्रिया करने के पश्चात् उन विकल्पों पर जहाँ 'अ' चुना गया है 1, 'ब' के लिए 2, तथा 'स' के लिए 3 अंक प्रदान करें। इन सभी प्राप्तांकों का योग कर लें। वही आपका प्राप्तांक होगा।

व्याख्या

36-45 के बीच के प्राप्तांक, उच्च सृजनात्मकता प्रदर्शित करते हैं, 26-35 के मध्य के प्राप्तांक सृजनात्मकता के मध्यम स्तर तथा 26 से नीचे के प्राप्तांक सृजनात्मकता के निम्न स्तर को इंगित करते हैं।

ध्यान दें : ये प्रतिदर्श पद हैं तथा इनका प्रयोग, मूल्यांकन या निदान के लिए वर्जित है।

अभिसारी चिंतन : यह चिंतन की वह प्रक्रिया है, जिसमें भिन्न-भिन्न बिंदुओं से आरंभ कर समस्या के एक समाधान पर पहुँचा जाता है। इस चिंतन में लोग अपने ज्ञान, नियमों तथा तर्क का उपयोग करते हैं। चिंतनकर्ता समस्या से जुड़ी सूचनाओं को एकत्र करता है। तत्पश्चात् नियमों का उपयोग करते हुए समस्या समाधान की ओर अग्रसर होता है। अभिसारी चिंतन उस प्रकार का चिंतन नहीं है जिसे सृजनात्मक चिंतन करते समय लोग अधिक मात्रा में करते हैं।

वैविध्यपूर्ण चिंतन : इस प्रकार का चिंतन कई तरह के विचारों या संभव समाधानों के जन्म को व्यक्त करता है। वैविध्यपूर्ण चिंतन में चिंतन की विविधता प्रमुख होती है। सृजनात्मक व्यक्ति कई ढंग से सोचते हैं तथा एक समस्या के बारे में कई तरह के विचार रखते हैं। वैविध्यपूर्ण चिंतन में कुछ चिंतन आत्मविमोहात्मक (Artistic thinking) चिंतन या स्वतंत्र साहचर्य (Free Association) की दिशा में भी आगे बढ़ जाते हैं जो असामान्य होते हैं। मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों के मापन के आधार पर यह पाया गया है कि

बाक्स 9.6 **प्रतिमा तथा संज्ञान**

संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन तथा सीखने की प्रक्रिया में प्रतिमा की भूमिका की ओर ध्यान दिया है। प्रतिमाएँ वस्तुओं की अनुपस्थिति में वस्तुओं का आंतरिक, सांवेदिक चित्रण होती हैं। ये चित्रण पहले देखी हुई वस्तु या वस्तु की प्रतीकात्मक रचना को प्रस्तुत करते हैं। प्रतिमाएँ चाक्षुष, श्रव्य, घ्राण या त्वचीय हो सकती हैं। जब हम बाह्य उद्दीपन की अनुपस्थिति में अपने मानसिक चित्रण से किसी प्रतिमा का निर्माण करते हैं तो उसे प्रतिमावली (Imagery) कहा जाता है। प्रतिमावली उन वस्तुओं को दृष्टिगत करने की प्रक्रिया है, जो बाह्य जगत में तत्काल हमारे सामने विद्यमान नहीं रहती हैं।

प्रायोगिक साक्ष्यों से यह संकेत मिलता है कि प्रतिमा निर्माण द्वारा सीखना संभव है। उदाहरण के लिए, आप टाइपराइटर के कुंजी बोर्ड की प्रतिमा बना सकते हैं तथा प्रतिमावली द्वारा टाइपराइटिंग का क्रियाकलाप कर सकते हैं। प्रतिमावली साहचर्य बनाने के लिए एक अतिरिक्त स्रोत प्रदान करती है। वाचिक तथा गत्यात्मक सीखने (Motor Learning) में भी यह सहायक होती है।

प्रतिमावली के सुस्पष्ट प्रकार को फोटोग्राफी वाली स्मृति कहा जाता है, जिससे व्यक्ति सभी चाक्षुष अनुभवों को पुनः सृजित करने में सक्षम होते हैं। प्रतिमावली के स्तर पर लोगों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ लोग स्पष्ट प्रतिमा बनाने वाले होते हैं, परंतु कुछ लोगों में वह स्पष्टता नहीं होती। स्पष्ट प्रतिमावली द्वारा व्यक्ति पूर्व घटनाओं, वस्तुओं तथा व्यक्तियों के बारे में सूक्ष्म जानकारी पुनः एकत्र कर लेता है।

सृजनात्मक लोगों में प्रायः उच्च बौद्धिक क्षमता होती है। परंतु ऐसे व्यक्ति बुद्धि परीक्षणों पर अनिवार्य रूप से बुद्धि की सर्वोत्तम श्रेणी में नहीं आते। ये लोग प्रबुद्ध होते हैं (जैसे–कलाकार, संगीतज्ञ, गणितज्ञ आदि) तथा इनमें विशिष्ट योग्यताएँ पाई जाती हैं। सृजनात्मक लोगों की व्यक्तित्व संबंधी कुछ खास विशेषताएं; जैसे – अपने निर्णयों में स्वतंत्रता, दृढ़ता, प्रबल आवेग तथा जटिलता की पसंद देना आदि पाई जाती हैं।

आपने अब तक पढ़ा

चिंतन एक जटिल मानसिक क्रिया है, जो समस्या से शुरू होकर क्रमिक मानसिक चरणों में मूल्यांकन, अमूर्तीकरण, अनुमान, तर्कणा, कल्पना तथा स्मरण के क्रम में घटित होती है। चिंतन में विविध मानसिक संरचनाएँ; जैसे – संप्रत्यय, स्कीमा तथा चाक्षुष प्रतिमावली इत्यादि का उपयोग किया जाता है।

संप्रत्यय चिंतन की आधारभूत इकाई है। सामान्य मनुष्य में वस्तुओं, घटनाओं या जो कुछ प्रत्यक्षीकृत हो रहा है, उन वस्तुओं की आवश्यक विशेषताओं के अमूर्तन, वर्गीकरण तथा स्तरीकरण की क्षमता होती है।

तर्कणा एक चिंतन की प्रक्रिया है, जिसमें अनुमान शामिल है और यह लक्ष्योन्मुख होती है। तर्कणा निगमनात्मक तथा आगमनात्मक होती है। यह समस्या समाधान की ओर उन्मुख होती है। यह समस्या से प्रारंभ होकर मानसिक क्रियाओं के समुच्चय का अनुसरण करते हुए समाधान पर समाप्त होती है। मानसिक विन्यास से प्रायः समाधान में बाधा उत्पन्न होती है।

मूल्यांकन वह प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत हम विचार बनाते हैं, निर्णय पर पहुँचते हैं तथा वस्तुओं/घटनाओं या लोगों का अपलब्ध सूचना के आधार पर आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हैं।

मूल्यांकन तथा निर्णय लेना एक-दूसरे से संबंधित हैं। निर्णय में विकल्पों में से चुनाव करना सम्मिलित होता है। यह एक प्रकार की समस्या-समाधान की परिस्थिति है, जिसमें कई विकल्पों में से किसी एक को चुनना होता है। सृजनात्मक चिंतन, समस्याओं का समाधान, सृजनात्मकता, संसार में कुछ नया करना इत्यादि को इंगित करता है। सृजनात्मक चिंतन के चरण है : तैयारी, उद्भवन, प्रदीप्तन, मूल्यांकन तथा पुनः समीक्षा। सृजनात्मक लोग अभिसरण के विपरीत, वैविध्यपूर्ण ढंग से सोचते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जो ———————— के प्रहस्तन में संलग्न होती है।*
2. *संप्रत्यय, वस्तु, क्रियाएँ या जीवित प्राणियों तथा ———————— को चित्रित करता है तथा ———————— और ———————— का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।*
3. *हम निगमनात्मक तर्कणा में विशेष रूप से सामान्य से विशिष्ट की ओर आगे बढ़ते हैं तथा आगमनात्मक तर्कणा में ————————।*

4. मानसिक विन्यास समस्या समाधान को __________ करता है।

5. मूल्यांकन तथा __________ एक-दूसरे से संबंधित प्रक्रम है।

6. सृजनात्मक चिंतन के चरण हैं __________ प्रदीपन, __________ तथा __________ ।

उत्तर – 1. सूचना, 2. गुण, अमूर्तीकरण, संबंध, 3. इसके विपरीत, 4. बाधित करना, 5. निर्णय लेना, 6. तैयारी, मूल्यांकन, तथा पुनः समीक्षा।

प्रमुख तकनीकी शब्द

संज्ञान, संज्ञानात्मक प्रक्रम, संप्रत्यय, सूचना प्रक्रमण दृष्टिकोण, चेतना, विचार प्रतिनिधित्व, संज्ञानात्मक उपागम, उच्चारित चिंतन रिपोर्ट, स्कीमा, तर्कणा, निगमनात्मक तर्कणा, आगमनात्मक तर्कणा, सिलॉजिज्म, निर्णय, कृत्रिम बुद्धि, निर्णय लेना, अंतर्दृष्टि, मुक्त साहचर्य।

सारांश

- *संज्ञान एक सामान्य पद है, जो जानने की प्रक्रिया या ज्ञान अर्जन को इंगित करता है।*
- *संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में सम्मिलित है : अवधान, चिंतन, स्मरण तथा तर्कणा। ये उच्च मानसिक प्रक्रम माने जाते हैं।*
- *संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मानस तथा मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का एक समकालीन दृष्टिकोण है तथा सूचना प्रक्रमण मॉडल का अनुसरण करता है।*
- *संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों का प्रमुख उद्देश्य मानस तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना तथा मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के मॉडल विकसित करना है।*
- *मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन की प्रमुख विधियाँ हैं : अंतर्दर्शन, व्यवहारपरक अवलोकन, प्रतिक्रिया काल, त्रुटियों का विश्लेषण, तथा मस्तिष्क का सूक्ष्मवीक्षण।*
- *चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है, जो ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त या स्मृति में संचित सूचनाओं के प्रहस्तन में संलग्न है।*
- *चिंतन एक मानसिक क्रिया है जिसका आरंभ समस्या से होता है तथा क्रमिक मानसिक घटनाओं जिसमें मूल्यांकन, अमूर्तकरण, अनुमान, तर्कणा, कल्पना तथा स्मरण शामिल होते हैं।*
- *चिंतन वैविध्यपूर्ण मानसिक संरचनाओं; जैसे – संप्रत्यय, स्कीमा तथा चाक्षुष प्रतिमा पर निर्भर करता है।*
- *तार्किकता चिंतन की एक प्रक्रिया है जिसमें अनुमान निहित होता है। यह लक्ष्योन्मुख होती है। यह निगमात्मक तथा आगमनात्मक दो प्रकार की होती है।*
- *समस्या-समाधान वह चिंतन है जो विशिष्ट समस्या के समाधान की ओर निर्दिष्ट होता है।*
- *निर्णय वह प्रक्रिया है जिससे हम विचार निर्मित करते हैं, निष्कर्ष तक पहुँचते हैं तथा वस्तु, घटना तथा लोगों से, प्राप्त सूचनाओं के आधार पर आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हैं। निर्णय तथा निर्णय लेना अंतर्संबंधित प्रक्रियाएं हैं।*
- *निर्णय लेना एक प्रकार की समस्या-समाधान की स्थिति है, जिसके अंतर्गत कई विकल्पों में से एक को चुनना होता है।*
- *सृजनात्मक चिंतन समस्याओं का सृजनात्मक समाधान या कुछ नया करने को व्यक्त करता है। सृजनात्मक चिंतन में अभिसारी के बदले विविधतापूर्ण चिंतन अधिक महत्त्व का है।*
- *सृजनात्मक चिंतन के चरणों में तैयारी, उद्भवन, प्रदीप्तन, मूल्यांकन तथा पुनः समीक्षा आते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. संज्ञानात्मक दृष्टिकोण की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
2. मानसिक प्रक्रियाओं के कालमापी विश्लेषण का क्या तात्पर्य है?
3. मानसिक प्रक्रियाओं के मापन तथा अध्ययन की विभिन्न विधियाँ कौन-सी हैं?
4. सूचना प्रक्रमण मॉडल क्या है?
5. चिंतन के प्रमुख पक्ष क्या हैं?
6. संप्रत्यय क्या है? चिंतन प्रक्रिया में संप्रत्यय की क्या भूमिका है?
7. समस्या समाधान क्या है? समस्या समाधान में मानसिक सेट या विन्यास की क्या भूमिका है?
8. निगमनात्मक तथा आगमनात्मक तर्कणा के बीच आप कैसे अंतर करेंगे?
9. सर्जनात्मक चिंतन क्या है? सर्जनात्मक चिंतन के कौन-से चरण होते हैं?
10. सर्जनात्मक चिंतन के सदंर्भ में अभिसारी और वैविध्यतापूर्ण चिंतन के बीच क्या अंतर है?

10 भाषा एवं संचार

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- भाषा का स्वरूप एवं विशेषताएँ
- भाषा विस्तार एवं उत्पादन
- भाषा एवं विचार के बीच संबंध
- संचार की प्रक्रिया
- संचार के कौशल एवं संचार में अवरोध

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- भाषा के प्रमुख पक्षों को समझ सकेंगे,
- भाषा विस्तार एवं भाषा उत्पादन की प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेंगे,
- भाषा एवं चिंतन के बीच के संबंध को जान सकेंगे,
- मानव अंतःक्रिया में संचार के महत्त्व को समझ पाएंगे,
- संचार प्रक्रिया का वर्णन एवं इसके अवरोधों को जान पाएंगे, तथा
- संचार को अधिक शक्तिशाली बनाने के उपायों से परिचित हो सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

एक क्षण के लिए सोचिए: जो कुछ आप कहना चाहते हैं उसके लिए यदि आपके पास भाषा न होती तो क्या होता? भाषा के अभाव में आप अपने विचारों एवं भावनाओं का न तो संचार कर पाएंगे और न ही यह जान पाएंगे कि दूसरे लोग क्या सोच रहे हैं? और उनकी भावनाएं क्या हैं? एक बच्चे के रूप में जब आपने बोलना प्रारंभ किया था – "माँ... माँ... माँ..." तो माता-पिता अथवा देखरेख करने वाले को इससे बड़ी खुशी हुई होगी। धीरे-धीरे आपने माता तथा पिता (मम्मी एवं पापा) कहना शुरू किया तथा बाद में आपने दो से अधिक शब्दों को मिलाकर आवश्यकताओं अथवा उल्लास को दूसरों तक पहुँचाना अर्थात् संचार करना आरंभ किया था। भूख लगने पर आप रोते थे तथा बाद में इसी भावना को व्यक्त करने के लिए आपने शब्दों की सहायता ली थी। आपने स्थितियों के अनुकूल शब्दों का चुनाव करना सीखा तथा बाद में उन नियमों को सीखा, जिनकी सहायता से शब्दों को वाक्यों में ठीक तरह से यथास्थान रखा जाता है। शुरू में आपने अपने घर पर बोली जाने वाली भाषा में संचार किया (जिसे मातृभाषा/बोली) कहते हैं और विद्यालय में जाकर आपने पठन-पाठन की औपचारिक भाषा सीखी एवं संचार करना शुरू किया। बहुत-सी स्थितियों में यह भाषा घर की भाषा से भिन्न होती है। जैसे-जैसे आप शिक्षा में आगे बढ़ने लगे आप दूसरी भाषाएं भी सीखते गए। यदि आप पीछे मुड़कर देखें तो रोने एवं "माँ... माँ... माँ..." कहने से लेकर एक नहीं वरन् कई भाषाओं में निपुणता प्राप्त करने की यात्रा बड़ी ही आह्लादक लगेगी। बहुत से लोग सृजनशील लेखक, प्रसिद्ध कवि या उपन्यासकार हो जाते हैं। हम लोग भाषा के अतिरिक्त अन्य बहुत-सी पद्धतियों द्वारा भी संचार का कार्य करते हैं। आप विचारों को व्यक्त करने के लिए हावभाव एवं अन्य पराभाषिक (भाषा से परे) (Paralinguistic) प्रतीकों का उपयोग करते हैं। अपने विचारों का ढंग से संचार करना एक आधारभूत कौशल है, जिसका उपयोग हम कई औपचारिक एवं अनौपचारिक स्थितियों में करते हैं। इस अध्याय में हम भाषा को सीखने के प्रमुख पक्षों एवं संचार की प्रक्रियाओं के बारे में अध्ययन करेंगे।



भाषा : स्वरूप एवं विशेषताएं

भाषा के उपयोग की योग्यता मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग करती है। भाषा संचार का एक महत्त्वपूर्ण वाहक है, जिससे हम स्वयं अपने से तथा दूसरे लोगों के साथ बातचीत करते हैं। भाषा अर्थ का संचार करती है। भाषा से हम अपने रुझानों, अभिप्रेरणाओं, भावनाओं एवं विश्वासों आदि को दूसरों तक पहुँचाते हैं। इसका उपयोग पढ़ाने एवं सूचनाओं के भेजने में भी किया जाता है।

भाषा प्रतीकों की एक व्यवस्था है, जिसका उपयोग हम एक-दूसरे के साथ संचार के समय करते हैं। इस परिभाषा के अनुसार आप देखेंगे कि भाषा की दो विशेषताएँ हैं: **प्रतीकों की उपस्थिति** एवं **संचार**। *प्रतीक किसी व्यक्ति या वस्तु को प्रस्तुत करते हैं,* उदाहरण के लिए, एक "गुड़िया" बच्चे, शिशु या वयस्क का प्रतीक होगी। जिस जगह आप रहते हैं "घर" उसका प्रतीक होगा। जिस जगह आप पढ़ते-लिखते हैं उसका प्रतीक है "विद्यालय", जिन चीजों को आप खाते हैं उसका प्रतीक है "भोजन"। **घर, विद्यालय, कार्यालय, भोजन, पापा** तथा इसी प्रकार के और शब्द अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखते। जब ये शब्द किन्हीं वस्तुओं या घटनाओं से जुड़ जाते हैं तब अर्थवान् हो जाते हैं। हम उन वस्तुओं या घटनाओं को उन शब्दों के माध्यम से पहचानने लगते हैं एवं संचार के समय उनका उपयोग करने लगते हैं। दैनिक जीवन में प्रयुक्त **मूर्त** (Concrete) पदार्थों के अतिरिक्त अमूर्त विचारों जैसे "सौंदर्य" एवं "न्याय" को व्यक्त करने में भी भाषा हमारी सहायता करती है। किन्हीं-किन्हीं अवसरों पर हम शरीर के विभिन्न भागों, जिन्हें हाव-भाव या शारीरिक क्रिया कहा जाता है, द्वारा भी संचार करते हैं। इस तरह के संचार को अवाचिक या **अवाचिक संचार** (Non-Verbal Communication) कहते हैं। अधिकतर हम शाब्दिक एवं अवाचिक संचार के मिलेजुले रूप का उपयोग करते हैं। कुछ लोग जो मुँह से बोलकर अपने को नहीं व्यक्त कर पाते; जैसे – गूँगे-बहरे लोग, तो वे **चिह्नों की भाषा** (Sign language) में बातचीत करते हैं। चिह्नों की भाषा भी मानव भाषा का ही एक स्वरूप है। सभी भाषाओं की कुछ सामान्य उभयनिष्ठ विशेषताएँ होती हैं, जिन्हें **भाषिक सार्वभौम** कहते हैं। इन सभी भाषाओं का अपना व्याकरण होता है।

भाषिक सार्वभौम

सभी मानव भाषाओं की सामान्य विशेषताएँ भाषिक सार्वभौम (Language Universals) के नाम से जानी जाती हैं। भाषाविदों ने मानव भाषाओं का विश्लेषण करके कई भाषिक सार्वभौमों की तरफ संकेत किया है। जैसे, सभी भाषाओं में अभिव्यक्ति की मूल इकाई वाक्य ही होते हैं।

जैसा पहले बताया गया है कि भाषाओं की अपनी ध्वनियाँ अथवा प्रतीक होते हैं, जो वस्तुओं, घटनाओं, विश्वासों, इच्छाओं, भावनाओं एवं रुझानों से जुड़े होते हैं। ये प्रतीक अर्थ को दूसरों तक पहुँचाते हैं। हालाँकि इन प्रतीकों तथा इनके अर्थों के बीच का संबंध निरंकुश होता है अर्थात् प्रतीकों एवं उनके अर्थों के बीच अनिवार्य रूप से कोई जुड़ाव नहीं होता है।

भाषा एक **अत्यंत सृजनशील प्रक्रिया है।** उदाहरण के लिए, आप उस वाक्य को भी समझ जाते हैं, जिसको पहले कभी आपने न देखा न सुना था तथा आप ऐसे अनोखे वाक्य की भी रचना कर सकते हैं, जिसको आपने केवल देखा ही था सुना नहीं था। भाषा की इस सृजनात्मकता को **अनंत उत्पादनशीलता** (Infinite generativity) कहा जाता है। *यह व्यक्ति की उस योग्यता को व्यक्त करती है, जिससे वह सीमित नियमों एवं शब्दों की सहायता से असीमित अर्थवान् वाक्यों का सृजन करता है।*

भाषा तथा उसकी नियम व्यवस्था के पक्ष : सभी भाषाओं की अपनी नियम व्यवस्था होती है, जो भाषा के विभिन्न स्तरों; जैसे – **ध्वन्यात्मक, रूप वैज्ञानिक, वाक्यगत, अर्थगत** एवं **प्रयोजन ज्ञान** पर संचालित होती है। आइए, यह समझने का प्रयास किया जाए कि इन स्तरों का क्या तात्पर्य है।

स्वनिम : भाषा की एक मूल ध्वनि या ध्वन्यात्मक इकाई होती है। अंग्रेजी भाषा में 36 प्रकार की ध्वनि इकाइयाँ या स्वनिम (Phonemes) होते हैं। हिन्दी में मूलतः 46 वर्ण हैं। *ध्वनिशास्त्र भाषा की ध्वनि व्यवस्था का अध्ययन है*। स्वनिम ध्वनि भाषा की सबसे छोटी इकाई होती है। ध्वनि में परिवर्तन होने पर अर्थ बदल जाता है। "बल्ली" एवं "बिल्ली" प्रारंभिक ध्वनियों में भिन्न हैं किंतु "बल्ला" एवं "बिल्ली" प्रारंभिक एवं अंतिम दोनों ही ध्वनियों में एक दूसरे से भिन्न हैं। ध्वनियों अथवा ध्वन्यात्मकता के विभिन्न संयुक्तियों के निर्माण के ध्वन्यात्मक नियम प्रत्येक भाषा में पाए जाते हैं। स्वनिम का अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता है।

कुछ ध्वनियों एवं उनकी संयुक्तियों से अर्थ उत्पन्न होता है। भाषा की सबसे छोटी अर्थवान् इकाई को **रूपग्राम** (Morpheme) कहते हैं। एक या एक से अधिक रूपग्रामों से शब्द की उत्पत्ति होती है। उदाहरण के लिए, **गुलाब** एक रूपग्राम है, किंतु 'गुलाबों' में दो रूपग्राम या अर्थ की इकाइयाँ हैं; जैसे – **गुलाब** (किसी फूल विशेष की चर्चा) तथा **"ओं"** (बहुवचन या एक से अधिक)। प्रत्येक भाषा में ध्वनियों की रचना एवं उनकी संयुक्तियों को निर्देशित करने हेतु नियमों को **रूपग्रामिक नियम** (Morphological rules) कहते हैं। ये नियम प्रत्यय, उपसर्ग एवं अन्य तकनीकों की सहायता से शब्द के मूल अर्थ का परिमार्जन कर परिवर्तन करते हैं। जैसा कि बहुवचनों तथा कालबोधक संकेतों के उपयोग में दिखाई देता है।

रूपग्राम : *जो कुछ हम कहते हैं अथवा सुनते हैं उसका अर्थ प्रदान करने वाली सबसे छोटी इकाई को रूपग्राम कहते हैं।* प्रत्येक शब्द एक या एक से अधिक रूपग्रामों से बना होता है। कुछ शब्दों में एक रूपग्राम होता है (जैसे – साधना) जबकि कुछ शब्द कई रूपग्रामों से बने होते हैं (जैसे – आराधक = आराधना करने वाला जिसमें दो रूपग्राम हैं)।

वाक्य रचना : *यह उन नियमों को व्यक्त करती है, जिनसे स्वीकार किए जा सकने वाले वाक्यांशों एवं वाक्यों का स्वरूप तय होता है।* वाक्य रचना का अध्ययन करते समय हमारा ध्यान शब्द के अध्ययन से हट कर वाक्यांशों एवं वाक्यों की ओर चला जाता है। मनोवैज्ञानिकों एवं भाषाविदों ने उन नियमों का प्रतिपादन किया है, जिनकी सहायता से व्याकरणसम्मत अनगिनत वाक्यों का निर्माण किया जा सकता है। *नियमों का वह समूह जिससे भाषा के विभिन्न अवयवों को मिलाकर बोधगम्य वाक्यों का निर्माण किया जा सके, व्याकरण कहलाता है।*

अर्थविज्ञान : *अर्थविज्ञान* (Semantics) *का संबंध शब्दों एवं वाक्यों के अर्थ के अध्ययन से है।* अर्थविज्ञान के लिए पूछे गए प्रश्न सामान्यतया इस प्रकार होते हैं : इस वाक्य विशेष का क्या अर्थ है? इस अनुच्छेद में क्या कहा जा रहा है? अर्थवैज्ञानिक नियम केवल शब्दों के अर्थ या शब्दावली को ही नहीं निर्देशित करते हैं वरन् उनके बीच के संबंधों को भी नियमित करते हैं।

प्रयोजनज्ञान : *इसका तात्पर्य उन सिद्धांतों से है, जो भाषा में परिमार्जन करके उसे संदर्भ के अनुकूल बनाते हैं।* इनका संबंध सामाजिक संदर्भ में भाषा के उपयोग से होता है। वक्ता भाषा का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है; जैसे – सूचना देने के लिए, नियंत्रण स्थापित करने के लिए, प्रश्न पूछने के लिए, आगाह करने के लिए, धन्यवाद देने के लिए, साहस-प्रदर्शन के लिए, अनुरोध करने के लिए।

दक्षता बनाम निष्पादन : *भाषिक दक्षता मनुष्य की भाषा-उपयोग की क्षमता को व्यक्त करती है, इसलिए यह भाषिक निष्पादन से भिन्न होती है, जो बोलते समय भाषा के वास्तविक उपयोग को व्यक्त करती है।* दक्षता का तात्पर्य व्यक्ति के व्याकरण ज्ञान तथा सही वाक्यों के बोलने की क्षमता से है। यद्यपि बोलने वाली भाषा की कमियाँ होती हैं; जैसे – संकोच, शब्दों का भूल जाना, दुहराना तथा गलती से मुँह से कुछ निकल जाना। हमारी वक्तृता श्रोताओं के फीडबैक से भी प्रभावित होती है। दक्षता की समझ भाषाविदों का कार्य है तथा भाषिक निष्पादन की समझ मनोवैज्ञानिकों का कार्य है। इस प्रकार, **मनोभाषाविज्ञान** (Psycholinguistics) का संबंध भाषिक निष्पादन के अध्ययन से है।

आपने अब तक पढ़ा

अब तक आपने यह पढ़ा कि भाषा कुछ प्रतीकों से बनी होती है, जिनका उपयोग विचारों तथा भावनाओं आदि के संचार के लिए किया जाता है। यह एक सृजनात्मक प्रक्रिया भी है। भाषा में, रूपग्राम, वाक्य रचना, अर्थविज्ञान तथा प्रयोजन भी सम्मिलित होते हैं। भाषिक दक्षता भाषिक निष्पादन से भिन्न होती है। जहाँ पहले का संबंध भाषा के उपयोग की क्षमता से होता है वहीं दूसरे का संबंध भाषा के वास्तविक उपयोग से है।

भाषा अर्जन

जैसा हमने देखा, भाषा एक जटिल व्यवस्था है। मनुष्यों में भाषा के उपयोग तथा उसके उपयोग को सीखने का विशिष्ट कौशल होता है। पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करने वाले मनोवैज्ञानिकों ने प्रतीकों के उपयोग; जैसे – चिह्नों वाली भाषा, कंप्यूटर की-बोर्ड आदि की सहायता से

वनमानुषों एवं अन्य प्रजाति के जीवों; जैसे – डालफिन को भाषा सिखाने का प्रयास किया है, लेकिन सामान्यतः मानव भाषा बहुत ही जटिल, सृजनशील एवं स्वाभाविक होती है, जो अन्य पशुओं द्वारा सीखी जा सकने वाली संचार व्यवस्था से भिन्न होती है। आश्चर्य की बात यह है कि जहाँ एक ओर पशुओं को सीमित प्रतीकों को सीखने के लिए पढ़ाया जाता है एवं प्रशिक्षण दिया जाता है, वहीं मनुष्य के बच्चे भाषा को स्वाभाविक रूप से प्रयोग करते हैं। वास्तव में भाषा उपयोग की प्रवृत्ति इतनी दृढ़ एवं शक्तिशाली होती है कि इसे दबाया नहीं जा सकता, बच्चे बहुत सीमित परिस्थितियों में भी भाषा का उपयोग सीख जाते हैं। दुनिया भर में बच्चे जिस तरह भाषा सीखते हैं या जिन भाषाओं के संपर्क में रहते हैं, उनको सीख लेते हैं उसमें व्यापक स्तर पर नियमबद्धता है। जब हम एक-एक बच्चे के बारे में सोचते हैं, तो हमें पता चलता है कि बच्चे के भाषा विकास की दर में काफी भिन्नता होती है। परंतु जब पूरे विश्व में बच्चों द्वारा भाषा सीखने पर विचार करते हैं तो हमें एक निश्चित क्रम मिलता है, जिसके अनुसार बच्चे भाषा सीखने के उपयोग के अभाव से आरंभ कर एक ऐसे बिंदु तक पहुँचते हैं, जहाँ वे भाषा का निपुणतापूर्वक उपयोग करने लगते हैं।

पूर्वभाषिक अवस्था

नवजात शिशु एवं छोटे बच्चे कई तरह की ध्वनियाँ पैदा करते हैं, जो बाद में चलकर धीरे-धीरे अपने परिवर्धित रूप में शब्दों से मेल खाने लगती हैं। बच्चे जो पहली ध्वनि करते हैं, वह **रोने** (Crying) की होती है। शुरू के रोने के विभिन्न रूपों में अंतर नहीं हो पाता है तथा विभिन्न स्थितियों में वह एक जैसा ही होता है। धीरे-धीरे रोने का तरीका बदलने लगता है और इसका उतार-चढ़ाव एवं तीव्रता बदलने लगती है, जिससे उसकी भूख, प्यास, पीड़ा एवं नींद आदि का पता चलता है। क्रमशः ये विभेदनशील रोने वाली ध्वनियाँ अधिक अर्थवान् होने लगती हैं – गुटरगूँ (कूकन) ध्वनियाँ (जैसे आ –– आऊ आदि)। बच्चे किलकारी, गड़गड़ाहट तथा स्वर ध्वनियों (जैसे आ आ आ, ऊ, ऊ, ऊ) द्वारा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं।

लगभग छः माह की आयु होने पर बच्चे बलबलाने वाली अवस्था में पहुँच जाते हैं। बलबलाने में विभिन्न प्रकार के स्वरों एवं व्यंजनों से संबंधित ध्वनियाँ बार-बार की जाती हैं। (जैसे दा–, अअ,–,बा–)। नौ माह की उम्र में ये ध्वनियाँ तथा कुछ ध्वनि संयुक्तियों का विस्तार दिखाई देता है; जैसे – 'दादा दादा दादा' और इनको बच्चे खूब दुहराते हैं, जिसे **अनुगूँज-प्रतिध्वनि** (Echolalia) कहते हैं। जहाँ प्रारंभिक बलबलाहट आकस्मिक अथवा यादृच्छिक होती है वहीं बाद की अवस्था वाली बलबलाहट में नकल या अनुकरण अधिक होता है। **अनुकरणात्मक बलबलाहट** बड़ों की ध्वनियों से उत्प्रेरित होती है तथा दूसरों की उपस्थिति में इसकी आवृत्ति बढ़कर उस सीमा तक हो जाती है जहाँ भाषिक ध्वनियों को जोड़कर समझ में आ सकने वाली वाणी बोली जा सकती है।

पूर्वभाषिक अवस्था में बच्चे भाषिक रूप से उतने अबोध नहीं होते, जितना वे दिखते हैं। आधुनिक अध्ययनों से पता चलता है कि जन्म के समय बच्चे इस बात की योग्यता रखते हैं कि विभिन्न ध्वनियों को जान सकें, उनका प्रत्यक्षीकरण कर सकें एवं भेद कर सकें। उदाहरण के लिए, जन्म के कुछ ही घंटे बाद बच्चे आदमियों एवं मनुष्येतर ध्वनियों जैसे 'ब' तथा 'ग' में अंतर कर लेते हैं। इन अध्ययनों से पता चलता है कि बच्चे जैविक रूप से भाषा सीखने के लिए पूरी तरह सक्षम होते हैं।

प्रारंभिक भाषा विकास

एक शब्द की अवस्था : जब बच्चे छः माह के होते हैं तो वे कुछ शब्दों को समझने लगते हैं। वास्तविक रूप से शब्दों का उत्पादन 10 माह से 20 माह के भीतर दिखाई देता है। बच्चों द्वारा शुरू में जो उच्चारण किए जाते हैं वे अधिकांशतः प्रायः एक शब्द वाले होते हैं। **नेल्सन** ने बच्चों के इन प्रथम शब्दों का अध्ययन व्यवस्थित रूप से किया है। उनके अनुसार, प्रथम शब्द प्रायः **चीजों के नाम** होते हैं (कुत्ते के लिए भों – भों), **क्रियाबोधक शब्द** (बाइ-बाइ), तथा कुछ **भावनाएँ** (नहीं, और)। क्रमशः बच्चे एक शब्द वाले वाक्यों या वाक्यांशों के रूप में प्रयुक्त करते हैं। इसलिए इनको **एक शब्द वाले वाक्य** (Holophrase) कहते हैं। जब एक बच्चा कहता है कि 'दा' तो उसका अर्थ हो सकता है कि **'मुझे वह चीज दीजिए', 'मैं बाहर जाना चाहता हूँ', 'पापा कहाँ हैं?'** आदि। बच्चों की अभिव्यक्ति में शब्दों की संख्या लगातार बढ़ती जाती है और 14 माह की अवस्था तक उनके पास 10-20 शब्द हो जाते हैं।

दो शब्दों वाली अवस्था : जब बच्चे 18 से 20 माह के होते हैं, तो वे दो शब्द एक साथ बोलने लगते हैं। दो शब्द मिलकर एक विचार व्यक्त करते हैं, जिसका अर्थ उनके बोलने के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। एक ही दो शब्दों वाली अभिव्यक्ति के उच्चारण का भिन्न-भिन्न स्थितियों में अलग-अलग अर्थ हो सकता है। वयस्कों की तुलना में दो शब्द वाली अभिव्यक्ति या दो शब्दों वाले वाक्य सरल होते हैं। व्याकरण की दृष्टि से देखें तो ये बच्चे गैरजरूरी **उपसर्गों** (Prepositions) को छोड़ देते हैं। ये संज्ञा, विशेषण और क्रिया की तरह अर्थ को व्यक्त करने के लिए आवश्यक नहीं होते हैं। यद्यपि इन अभिव्यक्तियों में वयस्कों वाली भाषा में प्रयुक्त शब्द-क्रम तथा संगठन मौजूद रहता है। फिर भी इन वाक्यों में गैर जरूरी शब्द नहीं रहते, जैसा कि हम टेलीग्राम में लिखते हैं। भाषावैज्ञानिक इसे **तार वाली भाषा** (Telegraphic Speech) कहते हैं। दो शब्दों वाली अवस्था में बच्चों को भाषा की वाक्य रचना व्यवस्था का कुछ ज्ञान हो जाता है। ऐसा लगता है कि वे यह समझते हैं कि शब्द-क्रमों से वाक्य रचना के संकेत मिलते हैं और वाक्यों या बातचीत में अंतर किया जा सकता है जैसे– **'कार हिट'** (कार ने साइकिल को धक्का लगाया) एवं **'हिट कार'** (साइकिल ने कार को धक्का लगाया)। बच्चों का शब्द भंडार भी तीव्र गति से बढ़ने लगता है और 2 वर्ष की अवस्था में 50 शब्द, ढाई वर्ष में 300 शब्द तथा तीन वर्ष की अवस्था में 500 शब्दों का भंडार उनके पास हो जाता है।

वाक्य रचना का विकास : जब बच्चे अपने तीसरे जन्मदिन तक पहुँचते हैं, अर्थात् ढाई वर्ष से ऊपर उनकी आयु होती है, उस समय तक वे वयस्कों की भाषा में प्रयुक्त वाक्यों पर ध्यान देकर अपनी भाषा विकसित करने लगते हैं। उनकी बातचीत में प्रयुक्त वाक्यों की लंबाई बढ़ने लगती है एवं कभी-कभी यह समझने में देर लगती है कि वह वाक्य उनका है या वयस्कों का, दोनों ही एक जैसे लगते हैं। धीरे-धीरे कार्यबोधक शब्द; जैसे – उपपद और उपसर्ग तथा प्रत्यय उनकी भाषा में दिखाई देने लगते हैं। कारक संबंध (मम्मी का), कालबोधक (बात किया था), तथा बहुवचन (कुत्ते) आदि का उपयोग दिखने लगता है। बच्चे यहाँ तक आते-आते भाषा के नियमों पर ध्यान देने लगते हैं और नए शब्दों के उपयोग में इन नियमों की उपस्थिति दिखती है। यहाँ तक कि कभी नए शब्दों अथवा 'अशब्द' के बहुवचन वाले रूप उत्पन्न करने होते हैं, तो बच्चे उपयुक्त रचना प्रस्तुत करते हैं।

क्रियाकलाप 10.1

भाषा विकास को समझना

*तीन वर्ष के एक बच्चे (जो शब्दों के बहुवचन का सही उपयोग करने लगता है) को कुछ नए या अस्पष्ट फोटोग्राफ या चित्र दिखाकर कहें – 'यह **वग** है।' जब बच्चा नया शब्द '**वग**' सीख लेता है तो एक और कार्ड चित्र उसी प्रकार रखकर कहें कि "देखो यह एक और चित्र है और बताओ कि 'वहां पर दो —————— हैं।' अब बच्चे की प्रतिक्रिया के लिए रुकें एवं देखें कि वह क्या कहता है? एक अन्य प्रयोग में **बेलुगी** ने पाया था कि अंग्रेजी भाषा में बच्चे बहुवचन वाले नियमों का सामान्यीकरण करते हैं और '**वग**' के व्याकरण की दृष्टि से सही स्वरूप का उपयोग करते हैं।*

इस प्रसंग में रोचक बात तो यह है कि जब बच्चों की सीखी जाने वाली भाषा का स्वरूप अनियत होता है, तो बच्चे नियमों का और अधिक सामान्यीकरण करने लगते हैं। अंग्रेजी भाषा में प्रायः भूतकाल दर्शाने के लिए शब्द के अंत में ईडी (अंग्रेजी अक्षर) लगाया जाता है (टाक्ड्, वाक्ड्)। कुछ और भी अनियत रूप हैं यथा 'Ran', 'came', 'went'। यह देखा गया है कि चार वर्ष के बच्चे **अतिनियतकारी त्रुटियाँ** (Over regularisation error) करने लगते हैं, और भूतकालिक बोध के लिए runned, comed तथा goed जैसे शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं (अथवा ranned, camed एवं wented)। ऐसी त्रुटियाँ बच्चे उस समय भी करते हैं, जब उनसे वयस्कों की भाषा को दुहराने के लिए कहा जाता है। आश्चर्यजनक बात तो यह लगती है कि बच्चे ऐसी त्रुटियाँ तब करते हैं, जब वे सही ढंग से अनियत रूपों का उपयोग अपनी प्रारंभिक भाषा विकास की स्थिति में कर चुके होते हैं।

इस प्रकार के अतिसामान्यीकरण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि बच्चों में भाषा विकास मात्र वयस्कों की भाषा के अनुकरण अथवा माता-पिता के उदाहरणों या उनके निर्देश एवं सुधार से ही नहीं होता है। इससे यह भी पता चलता है कि वे नियत स्वरूपों, नियमों अथवा निर्देशों को अपनी भाषा में पहचानते हैं एवं नए शब्दों में इनका

उपयोग करने लगते हैं। वे केवल याद करने अथवा ऐसी संरचनाएँ सीखने पर आश्रित नहीं होते हैं। जब बच्चे वयस्कों के व्याकरण के नजदीक पहुँचने लगते हैं, तो उनके वाक्य/वाक्यांश बड़े-बड़े होने लगते हैं और वे अव्यय, विशेषण एवं समुच्चयबोधकों की व्याकरणसम्मत तकनीकों का उपयोग कर शब्दों के अर्थों में बदलाव लाते हैं। पाँच वर्ष की आयु में लगभग सभी बच्चे उन सभी तरह के वाक्यों का उपयोग करने लगते हैं, जो वयस्कों की भाषा में दिखाई देते हैं। हालाँकि शैलीगत पक्ष तथा भाषा के अन्य सूक्ष्म पक्ष के विकसित होने में समय लगता है।

अर्थ विकास : शब्द-भंडार एवं अर्थ का विकास

ऊपर यह उल्लेख किया गया था कि 14 माह की अवस्था तक पहुँचे बच्चों में 10-20 शब्दों का शब्द-भंडार होता है। प्रारंभ में शब्द-भंडार का विकास धीमी गति से होता है, लेकिन क्रमशः यह बढ़ता है एवं भाषा विकास की गति तेज होने लगती है। पाँच वर्ष के बच्चों में शब्द-भंडार लगभग 10 हजार से 15 हजार शब्दों का होता है। बच्चे इन शब्दों का अर्थ समझते हैं एवं इनका विस्तार करना जानते हैं। वास्तविक उपयोग या उत्पादन में कम ही शब्द रहते हैं। बच्चे व्याकरण के उपयोग एवं शब्द-भंडार की दृष्टि से समान विकास दर नहीं प्रदर्शित करते हैं। बच्चों में विकास के संबंध में वैयक्तिक भेद पाया जाता है और भाषा अर्जन में भिन्नता पाई जाती है। बच्चों की भाषा विकास के शोधकर्ताओं में **नेल्सन** तथा दूसरों ने भाषा अर्जन की विभिन्न शैलियों का अध्ययन किया है। इस प्रकार, कुछ बच्चे वस्तुओं के नामकरण पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो कुछ अन्य इस बात का प्रयास करते हैं कि वे अधिक से अधिक अभिव्यक्ति करें। प्रथम प्रकार के बच्चे **संदर्भगत** (Referential) शैली वाले होते हैं। उनके शब्द-भंडार में वृद्धि की गति तीव्र होती है जबकि दूसरे प्रकार के बच्चे, जो **अभिव्यक्ति प्रधान** (Expressive) शैली के होते हैं, का व्याकरण का विकास तीव्र गति से होता है तथा वैयक्तिक एवं सामाजिक शब्द भंडार बड़ा होता है।

शब्दों के अर्थ के विकास के संबंध में बच्चों में व्यापक स्तर पर समानताएँ दिखती हैं। बच्चे अधिकतर किसी चीज के पूरे वर्ग को द्योतित करने वाले शब्दों को घटना की किसी खास विशेषता को बताने वाले शब्दों की तुलना में अधिक पसंद करते हैं; जैसे – 'कुत्ता' शब्द का उपयोग बच्चे कुत्तों के सभी प्रकारों को द्योतित करने के लिए करते हैं, यहाँ तक कि सभी चार पैर वाले जानवरों के लिए करते हैं। 'कुत्ता' जैसे प्राथमिक स्तर वाले शब्दों को उच्च विन्यास स्तर के शब्द जैसे 'जानवर' अथवा उपविन्यास जैसे 'पामेरियन' आदि की अपेक्षा जल्दी सीखते हैं। इसका शब्दों की उन आवृत्तियों से कोई संबंध नहीं होता, जो वयस्कों की भाषा में दिखाई देती है और बच्चे उनसे संपर्क में आते हैं। जब किसी कुत्ते का नाम (कालू या बल्लू) किसी परिवार में लिया जाता है तो बच्चा इस नाम को 'कुत्ता' शब्द सीखने के पहले सीख जाता है। परंतु ऐसी दशाओं में यह नाम (कालू) हर तरह के कुत्तों के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात् प्राथमिक स्तर के वर्गीकरण के लिए यह नाम प्रयुक्त होता-सा प्रतीत होता है।

अंत में यह उल्लेखनीय है कि भाषा के उपयोग में व्याकरण एवं अर्थ अलग-अलग नहीं होते हैं। भाषा में नियम (व्याकरण) एवं अर्थ साथ-साथ चलते हैं। बच्चों के शब्दों के अर्थ की समझ व्याकरण के ज्ञान से निर्देशित होती है। इसी तरह, व्याकरणात्मक निर्णय भी शब्दों के अर्थ पर निर्भर करते हैं। यदि आप कोई नया शब्द बच्चे से (जैसे – खाना खाने वाला 'काँटा') किसी वाक्य में कहें जैसे 'मुझे काँटा दीजिए' तो बच्चा भले ही काँटा शब्द का अर्थ न जानता हो वह इसका अनुमान लगा लेता है कि यह किसी वस्तु का नाम है, क्योंकि यह संज्ञा की जगह पर प्रयुक्त हुआ है। ठीक इसी तरह शब्द के अर्थ से कुछ ऐसे व्याकरणपरक संकेत मिलते हैं जो वाक्य की एवं उसकी संरचना को समझने के लिए बच्चे की सहायता करते हैं।

प्रयोजनपरक विकास : जैसा कि पहले बताया जा चुका है, भाषा के उपयोग का अर्थ सामाजिक रूप से उपयुक्त संचार करना है। किसी भाषा का शब्द-भंडार एवं व्याकरण विभिन्न सामाजिक स्थितियों में सही ढंग से संचार करने के लक्ष्य की प्राप्ति को सुनिश्चित नहीं कर सकता। जब हम भाषा का उपयोग करते हैं, तो हमारे कई उद्देश्य होते हैं; जैसे – निवेदन करना, पूछना, धन्यवाद देना एवं माँग करना आदि। इन सामाजिक लक्ष्यों को ठीक ढंग से प्राप्त करने के लिए अनुरोध अथवा सहायता के कथन को व्याकरण की दृष्टि से ठीक और अर्थयुक्त होने के अलावा अनुकूल होना चाहिए। जब बच्चे बातचीत करते हैं, तो नम्रता और अनुरोध को व्यक्त करने के लिए उपयुक्त

शब्दों को चुनने में कठिनाई होती है। माँग, निर्देश और प्रेमपूर्वक अनुरोध करने का अंतर वे नहीं कर पाते। जब बच्चे वार्तालाप में शामिल होते हैं तो उन्हें बड़ों की तरह बोलने और सुनने में अपनी पारी के अनुसार व्यवहार करने में भी कठिनाई होती है।

अभी तक हमने देखा कि बच्चे प्रारंभिक वर्षों में किस तरह प्रभावपूर्ण ढंग से भाषा का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के रूप में विकसित होते हैं। परंतु हमें यह भी समझना है कि जिस तरह बच्चे भाषा को सीखते हैं वह कार्य किस प्रकार संपन्न होता है। आगे हम बच्चों के भाषा सीखने की विभिन्न विचारधाराओं का संक्षिप्त एवं सामान्य विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

भाषा विकास के सिद्धांत

भाषा सीखने के बारे में मुख्य रूप से दो परस्पर विरोधी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि भाषा को सीखने का कार्य मुख्यतः जैविकीय रूप से निर्धारित होता है। यह विचारधारा प्रकृति-वातावरण विषयक विवाद में प्रकृति के निकट की स्थिति को व्यक्त करती है। दूसरी विचारधारा पर्यावरणवादियों की है, जिनके अनुसार भाषा को अर्जित करने का आधार सीखना है।

पर्यावरणवादी विचारधारा : व्यवहार की व्याख्या सीखने के सिद्धांतों के आधार पर करने वाले सिद्धांतों में विशेषरूप से **बी.एफ. स्किनर** के सिद्धांत के अनुसार, भाषा सीखना नैमित्तिक अनुबंधन पर आधारित होता है। जैसा कि आप देख चुके हैं (अध्याय 6) 'आपरेंट' वे अनुक्रियाएँ हैं, जो प्रबलनों की सहायता से दृढ़ होती हैं। भाषायी व्यवहार वे आपरेंट होते हैं, जिन्हें हम प्रबलनों की सहायता से सीखते हैं। बच्चों की वाणी उनकी देखभाल करने वाले लोगों द्वारा गढ़ी जाती है, जो उपयुक्त भाषिक इकाइयों का चुन कर पुनर्बलित करते हैं। जब भाषिक आपरेंट सीख ली जाती हैं, तो उनका उपयोग समान स्थितियों में बढ़ जाता है। सामान्यीकरण एवं क्रमशः बार-बार उपयोग करने से ये भाषिक उपयोग तब तक चलते रहते हैं जब तक कि वयस्कों की भाषा की तरह स्वीकार नहीं कर लिए जाते। सीखने के अन्य सिद्धांत भाषा अर्जन के लिए अनुकरण को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

सीखने के सिद्धांत इस बात की जानकारी के लिए महत्त्वपूर्ण मॉडल प्रदान करते हैं कि भाषिक व्यवहार कैसे सीखे जा सकते हैं। इन मॉडलों का उपयोग उन बच्चों एवं वयस्कों के लिए किया जा सकता है, जो स्वाभाविक ढंग से स्वतः भाषा प्रयोग करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। परंतु भाषा अर्जन के लिए एक समग्र सिद्धांत के रूप में इस विचारधारा की कुछ सीमाएँ हैं। भाषा एक ऐसी शक्तिशाली व्यवस्था है कि किसी भाषा में मातृभाषा जैसी दक्षता प्राप्त करना मात्र अनुकरण एवं पुनर्बलन आधारित सीखने से सभंव नहीं है। अभिभावकों तथा बच्चों की देखभाल करने वालों के व्यवहार से पता चलता है कि बच्चों को वे बराबर सही भाषिक उपयोग के लिए पुनर्बलित नहीं करते, बल्कि कभी-कभी व्याकरण की दृष्टि से गलत प्रयोगों को भी पुरस्कृत कर देते हैं। इसके विपरीत व्याकरण की दृष्टि से सही उपयोग को पुरस्कृत नहीं करते हैं क्योंकि वे तथ्यात्मक रूप से सही नहीं होते हैं। **अतिशय नियमितता की त्रुटियों से,** जिसकी चर्चा हम पहले कर चुके हैं, यह पता चलता है कि बच्चे सही चीजों को नहीं दुहराते हैं, जबकि उसके लिए वे पुनर्बलित होते रहते हैं। भाषा का एक दूसरा पक्ष **अनंत सर्जनात्मकता** है जिसकी व्याख्या सीखने के सिद्धांत नहीं कर पाते हैं। अनुकरण एवं पुनर्बलन के आधार पर नई-नई वाक् अभिव्यक्तियों की भाषा उपयोग करने वालों की अनंत क्षमता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

सहजवादी या जन्मजात क्षमता की विचारधारा

सिद्धांतवादियों का यह विचार है कि हमारी भाषा सीखने एवं भाषा प्रयोग करने की क्षमता जन्मजात प्रक्रियाओं पर निर्भर करती है। ऐसे सिद्धांतवादियों में **नाओम चाम्स्की** प्रमुख है। इनके अनुसार बच्चे भाषा सीखने की एक व्यवस्था के साथ पैदा होते हैं (चाम्स्की ने संक्षेप में इसे **एल.ए.डी., लैंग्वज एक्विजिशन डिवाइस** कहा है) जो सार्वभौम व्याकरण अथवा समस्त मानवीय भाषाओं के व्याकरण को प्रस्तुत करती है। यह भाषा सीखने की व्यवस्था भाषिक सूचनाओं का प्रक्रमण करती है। इससे संबंधित विभिन्न परिकल्पनाओं का, भाषा के स्वरूप के विषय में चतुरता से परीक्षण करता है और बड़ी तीव्र गति से उस भाषा के व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके बाद इन्हीं नियमों की सहायता से वह उन वाक्यों का निर्माण करता है, जो स्वीकृत होते हैं और जिस तरह के उदाहरण वह अपने वयस्कों से प्राप्त करता रहता है, उससे आगे जाकर वह उक्त भाषा के अनगिनत वाक्यों की अभिव्यक्ति करता है।



नाओम चामस्की

इस विचारधारा की पुष्टि इस बात से भी होती है कि बच्चों के लिए भाषा सीखना जीवन की एक अवस्था विशेष में बड़ा ही सरल एवं तात्कालिक होता है। यह अवस्था शैशवकाल से वयःसंधि तक की होती है और इसे **क्रांतिक अवस्था** (Critical period) कहते हैं। कोई भी सामान्य बच्चा जो प्रौढ़ों के द्वारा प्रयुक्त भाषा अथवा भाषाओं के संपर्क में न्यूनतम ढंग से रहता है उसमें भी इस क्रांतिक अवस्था में मूल भाषा की दक्षता विकसित कर लेता है तथा उसकी वक्तृता भी ठीक रहती है। इसके लिए बच्चे को न तो कोई विशेष प्रयास करना पड़ता है और न ही किसी प्रशिक्षण की जरूरत पड़ती है। वयःसंधि की अवस्था के बाद किसी भाषा को सीखना तथा उस भाषा के मूल जानकार की तरह की क्षमता प्राप्त कर पाना कठिन होता है। क्रांतिक अवस्था के पक्ष में अनेक प्रमाणों के अतिरिक्त जन्मजात भाषा-क्षमता की विचारधारा को भी बहुत समर्थन प्राप्त है। विशेष रूप से बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं एवं प्रौढ़ लोग उसका प्रक्रमण कैसे करते हैं, इसके विषय में अधिक प्रमाण उपलब्ध हैं। इन परिणामों से इस बात को बल मिलता है कि भाषा विकास इसलिए होता है कि मानव जाति के लोग भाषा प्रयोग के लिए जैविकीय दृष्टि से संपन्न होते हैं, हालाँकि भाषा विकास को केवल जैविकीय आधार पर ही नहीं समझा जा सकता।

भाषा अर्जन के बारे में जन्मजात क्षमता मानने वाली विचारधारा भाषिक दक्षता को व्याकरण के नियमों पर आधारित मानती है लेकिन मूल भाषा बोलने वालों द्वारा नियमों के स्वरूप के विषय में ठीक से कह पाना कठिन है कि वे कैसे उसको उत्पन्न करते हैं और इसे विस्तार देते हैं। चाम्स्की ने उत्पादन क्षमता व्याकरण (Generative grammar) का एक मॉडल दिया, जो संभवतः भाषा बोलने वालों के मानस में पाया जाता है। परंतु ऐसे व्याकरण के बारे में कई शंकाएँ हैं। जन्मजात क्षमता मानने वालों ने भाषा के सीखने को एक तीव्र गति से होने वाली प्रक्रिया माना है। आधुनिक अध्ययनों के अनुसार बच्चों द्वारा भाषा सीखना एक क्रमिक प्रक्रिया है तथा कुछ सामान्य किस्म की व्याकरणपरक संरचनाओं की निपुणता में वृद्धि बचपन के अंत तक चलती रहती है।

अंत में ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा सीखने के संबंध में प्राकृतिक बनाम वातावरणगत विचारधारा का विवाद अभी ठीक तरह से हल नहीं हो सका है। दोनों ही विचारधाराओं की अपनी सीमाएँ हैं। भाषा सीखने के बारे में आधुनिक दृष्टिकोण में अंतःक्रियावादी दृष्टिकोण दिखता है। भाषा को सामाजिक अंतःक्रिया के उपाय तथा सामाजिक अंतःक्रिया के प्रसंग में व्यक्ति और लोगों के साथ मिलकर संयुक्त रूप से भाषा ज्ञान की रचना करता है। बच्चों के साथ भाषा का उपयोग करते समय प्रौढ़ लोग अपने भाषा उपयोग का तरीका बदल लेते हैं, ताकि बच्चे को एक सामाजिक उपाय के रूप में भाषा के अर्जन के लिए सहायता मिल सके। इस प्रक्रिया को **स्काफोल्डिंग** (Scaffolding) या ढांचा-निर्माण कहते हैं। इसमें प्रौढ़ लोग अपनी संचार शैली को इस तरह गढ़ते हैं कि उससे बच्चों की भाषिक तथा सामाजिक-सांस्कृतिक दक्षता के विकास को बढ़ावा मिल सके। बच्चों को सामाजिक अंतःक्रियाओं, खेलों तथा बातचीत में व्यस्त रखकर बच्चों की देखभाल करने वाले पालक बच्चों को बातचीत में अपनी बोलने की बारी, संस्कृति के अनुरूप भाषा के उपयोग तथा भाषा के अन्य संरचनात्मक पक्षों को सीखने का अवसर मिल सके। जिन तरीकों द्वारा अभिभावक तथा अन्य वयस्क लोग भाषा के उपयुक्त उपयोग के लिए बच्चों का सामाजीकरण करते हैं वह एक संस्कृति से दूसरे में भिन्न होता है, परंतु प्रत्येक संस्कृति में भाषा विकास के लिए सामाजिक अंतःक्रिया अपरिहार्य होती है।

आपने अब तक पढ़ा

इस अनुभाग में आप बच्चों के भाषा सीखने के सामान्य वर्णन से परिचित हुए हैं। बच्चे अस्पष्ट रोने से सामाजिक संचार के लिए उपयुक्त भाषा के उपयोग की स्थिति तक किस तरह पहुँचते हैं इसकी कुछ नियमितताएँ एवं सार्वभौम तरीके होते हैं। भाषा विकास को जन्मजात जैवकीय विरासत से सहायता मिलती है, जिससे भाषा का सीखना संभव हो पाता है। बड़ी उम्र के लोगों के साथ भाषा संपर्क में आना विशेषतः विकास की प्रारंभिक क्रांतिक अवस्था में भाषा विकास के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। भाषा सीखने की क्रिया को अनुकरण एवं प्रबलन से बढ़ावा मिलता है, परंतु इनसे भाषा अर्जन एवं उसके उपयोग के अनेक जटिल पक्षों की व्याख्या संभव नहीं है। बच्चों का भाषा विकास सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।

बाक्स 10.1 भाषा की सतही एवं गहन संरचनाएँ

*किसी वाक्य की दो तरह की संरचनाएँ होती हैं, जिन्हें सतही संरचना एवं गहन संरचना कहा जाता है। वाक्य की **सतही संरचना** के अंतर्गत शब्द तथा उनका संगठन आता है तथा **गहन संरचना** में वाक्य की अमूर्त तथा अंतर्निहित प्रस्तुतियाँ (अर्थ) होती हैं। गहन संरचनाएँ अमूर्त संप्रत्यों एवं नियमों के रूप में होती हैं, जो दीर्घकालिक स्मृति में संचित होते हैं। भाषा की सतही संरचनाएँ रूपांतरण की सहायता से गहन संरचनाओं से कतिपय नियमों द्वारा प्राप्त होती हैं। आइए, इन वाक्यों पर विचार किया जाए :*

- *राम ने गेंद फेंकी।*
- *गेंद राम द्वारा फेंकी गई।*

दोनों वाक्यों का समान अर्थ है जबकि इनको पढ़ने (सतही संरचना) से लगता है कि इनका अर्थ अलग-अलग होगा। इन दोनों वाक्यों की गहन संरचना एक ही है। आइए, एक और उदाहरण लें।

- *मेमना तैयार है खाने को।*

इस वाक्य के दो अर्थ हैं। मेमना को एक भोज्य पदार्थ के रूप में परोसा जा सकता है। इसका दूसरा अर्थ यह होगा कि एक जानवर के रूप में मेमना खुद खाने के लिए तैयार है। इस प्रकार, गहन संरचनाएँ एक ही वाक्य के साथ अलग-अलग हो सकती हैं। यह इस बात पर निर्भर करेगा कि वक्ता किस अर्थ का संचार करना चाहता है?

दो या दो से अधिक वाक्य, एक गहन संरचना एवं भिन्न सतही संरचना होने पर, पर्यायवाची या समानार्थी कहे जाते हैं। जिन वाक्यों की गहन संरचनाएँ अनेक परंतु सतही संरचना एक हो, उन्हें द्विअर्थक (श्लेष) वाक्य कहा जाता है।

बाक्स 10.2 चाम्स्की का रूपांतरणमूलक व्याकरण

*चाम्स्की ने रूपांतरणमूलक व्याकरण का संप्रत्यय दिया है, जिसकी सहायता से हम किसी वाक्य के अर्थ या गहन संरचना को वाक्य में उल्लिखित शब्दों के रूप में (सतही संरचना) व्यक्त करते हैं। इसकी सहायता से हम मूल वाक्य को ऋणात्मक वाक्यों, प्रश्नवाचक वाक्यों आदि में बदल सकते हैं। चाम्स्की के अनुसार यह रूपांतरणमूलक व्याकरण की प्रक्रिया जन्मजात होती है तथा भाषा सीखने के उपकरण का मुख्य हिस्सा होती है। चाम्स्की ने बाद में भाषा अर्जन उपकरण (LAD) के स्थान पर 'सार्वभौम व्याकरण' की चर्चा की है जो हमारे भाषा के जन्मजात ज्ञान का एक अंश है। उन्होंने **भाषिक सार्वभौमों** की बात की है, जो प्रायः सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। कुछ **सारगर्भित सार्वभौम** होते हैं और कुछ **औपचारिक सार्वभौम** होते हैं। सारगर्भित या महत्त्वपूर्ण सार्वभौम सभी भाषाओं में सामान्य सार्वभौमों से जुड़े होते हैं (जैसे–संज्ञा एवं क्रिया वर्ग)। औपचारिक सार्वभौम व्याकरणपरक नियमों अथवा वाक्य रचना के सामान्य स्वरूपों से जुड़े होते हैं।*

आपने कितना सीखा

1. भाषा की ________ एक व्यवस्था होती है, जिसका उपयोग संचार के लिए किया जाता है।
2. भाषा की मूल विशेषताएँ ________ एवं ________ हैं।
3. सभी मानव भाषाओं में पाए जाने वाले सामान्य घटकों को ________ कहते हैं।
4. भाषा की मूल ध्वनियों को ________ कहा जाता है।
5. ________ भाषा की सबसे छोटी और अर्थयुक्त इकाई होती है।
6. ________ उस नियम को कहते हैं, जिसकी सहायता से शब्दों को जोड़कर वाक्यों की रचना की जाती है।
7. शब्दों एवं वाक्यों के अर्थों के अध्ययन को ________ कहा जाता है।
8. ________ वे सिद्धांत होते हैं, जो यह निर्धारित करते हैं कि भाषा को किस तरह एक संदर्भ के अनुकूल बनाया जाए।
9. भाषिक निष्पादन के अध्ययन का संबंध ________ से है।

उत्तर – 1. प्रतीक, 2. प्रतीक, संचार, 3. भाषिक सार्वभौम, 4. स्वनिम, 5. रूपग्राम, 6. व्याकरण/नियम, 7. अर्थविज्ञान, 8. प्रयोजनज्ञान, 9. मनोभाषिकी।

वाणी प्रत्यक्षीकरण, विस्तार तथा भाषा का उत्पादन

वाणी या वाक् का प्रत्यक्षीकरण और बोध आपकी कल्पना से कहीं अधिक जटिल क्रिया है। भाषा, प्रति सेकंड 12 स्वनिम की दर से बोली जाती है। आप यह जानकर हैरान होंगे कि मनुष्य कृत्रिम रूप से प्रस्तुत प्रति सेकंड 50-60 ध्वनियों को समझ सकता है। आपने साधारण बोलचाल में स्वनिमों की एक-दूसरे में पैठ (Overlap) का अवश्य अनुभव किया होगा और यह भी कि वाणी का एक अंश दूसरे के उत्पादन को प्रभावित करता है। वाणी के संकेत अत्यंत जटिल होते हैं, परंतु उनका प्रत्यक्षीकरण सामान्यतः सही या ठीक-ठीक होता है। एक-एक स्वनिम शब्दों की समझ वाक् संकेतों की विशेषताओं एवं भाषिक संदर्भ, जहाँ भाषा का उपयोग किया जाता है, पर निर्भर करती है। यह उल्लेखनीय है कि भाषा-बोध एक सक्रिय न कि निष्क्रिय प्रक्रिया है। वक्ता जब शब्दों एवं वाक्यों की प्रस्तुति पूरी करता है (वाक् संकेत), उसके पहले ही श्रोता उसकी विषयवस्तु का अनुमान लगा लेता है। इस प्रकार, जब तक शब्द वाक् या श्रवण ऊर्जा में परिवर्तित होता है, उसके पहले ही उसकी पहचान से संबंधित परिकल्पनाओं का निर्माण हो चुका रहता है। सामान्य वाक् प्रत्यक्षीकरण में सक्रिय रूप से एवं परिकल्पना के निर्माण और परीक्षण से ज्ञात होता है कि श्रोता उन स्वनिमों का प्रत्यक्षीकरण कर लेता है, जो वास्तव में उसमें समाहित नहीं रहते हैं। उदाहरण के लिए, शोर भरी स्थिति में दरवाजे का बजना एवं मजदूर की ठुकठुक की आवाज वाक् संकेतों को अंशतः ढक सकती है। हो सकता है कि वक्ता भी स्पष्ट रूप से चीजों को न व्यक्त कर पाए। इसके बाद भी संभव है कि श्रोता वाक् संकेतों का ठीक से प्रत्यक्षीकरण कर ले। इसे **स्वनिम पुनः स्थापना प्रभाव** (Phoneme restoration effect) कहते हैं।

जिस तरह की वाक् प्रस्तुति हमारे दैनिक जीवन की परिस्थितियों में घटित होती है, उसमें बहुत-सा कोलाहल एवं संशय भरा रहता है। उस समय जब पृष्ठभूमि की ध्वनि या कोलाहल वाक् संकेतों से अधिक तीव्र होता है, तब वाक् बोध निम्न स्तर का होता है। कोलाहल और संकेत के बीच अनुपात का अर्थ ध्वनियों के दबाव-स्तर में अंतर से जुड़ा होता है, जिसका डेसीबल (db) की इकाई में मापन किया जाता है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि शब्द जितने ही अधिक पूर्वानुमेय होंगे, इस बात की संभावना उतनी ही प्रबल होगी कि विषम परिस्थितियों में भी उनकी पहचान की जा सकती है।

दिन-प्रतिदिन के जीवन में हमें ऐसी वाक् प्रस्तुतियों को समझना पड़ता है, जो गुणात्मक रूप से हीन होती हैं। बाहरी शोरगुल एवं दूषित उच्चारण आम बात है। संभवतः हमारा मस्तिष्क वाक् प्रत्यक्षीकरण के लिए विशेष रूप से सक्षम है। वाक् वास्तव में एक मानवीय विशेषता है, जो मनुष्य की सामाजिक अंतःक्रिया के लिए परम आवश्यक होती है। वाक् विश्लेषण की स्नायविक व्यवस्था बहुत ही सशक्त होती है।

बाक्स 10.3 — द्विभाषिकता तथा बहुभाषिकता

द्विभाषिकता का तात्पर्य एक से अधिक भाषा में संचार दक्षता प्राप्त करना है। दो से अधिक भाषाओं के सीखने को बहुभाषिकता कहते हैं। मातृभाषा को कई तरह से परिभाषित किया गया है, यह व्यक्ति की मूल भाषा होती है। व्यक्ति इसका उपयोग अपने जन्म से ही करता है। यह घर पर बोली जाने वाली भाषा होती है। यह माता द्वारा बोली जाने वाली भाषा है आदि। फिर भी, सामान्यतः मातृभाषा उसको कहा जाता है, जिससे व्यक्ति सांवेगिक स्तर पर अपना तादात्म्य स्थापित करता है, पहचान बनाता है। यह संभव है कि व्यक्ति एक साथ कई भाषाओं को मातृभाषा के रूप में प्रयोग करे। भारतीय सामाजिक संदर्भ में बहुभाषिकता की जड़ें बड़ी गहरी हैं, जिससे द्विभाषिकता/बहुभाषिकता व्यक्ति एवं समाज के स्तर पर महत्त्वपूर्ण विशेषता के रूप में उपस्थित होती है। अपनी दिन-प्रतिदिन की जीवन की गतिविधियों में बहुसंख्यक भारतीय संचार के लिए एक से अधिक भाषाओं का उपयोग करते हैं। इसलिए बहुभाषिकता यहाँ जीवन की एक शैली है। अध्ययनों से पता चलता है कि द्विभाषिकता/बहुभाषिकता से संज्ञानात्मक, भाषिक तथा बच्चों की शैक्षिक दक्षता में वृद्धि होती है।

बोलना (या वाक् उत्पादन)

चूँकि बोलना सदैव किसी न किसी सामाजिक संदर्भ में होता है इसलिए यह एक सामाजिक क्रिया है। इस प्रकार, सफल संचार करने के लिए वक्ता एवं श्रोता के बीच सहयोग होना आवश्यक है। बोलना एक जटिल क्रिया है जिसमें बहुत से कौशल शामिल होते हैं। वक्ता को यह पहले ही निश्चित करना होता है कि वह क्या कहना चाहता है। अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त शब्दों को चुनना होता है, इन शब्दों को व्याकरणसम्मत ढंग से संगठित करता है तथा वाक्यों का वास्तविक भाषण द्वारा संचार में उपयोग करता है। **छंद शास्त्रीय संकेतों** (Prosodic cues) (जैसे – दबाव, लय, एवं स्वरशैली) से श्रोता को वक्ता की बात समझने में मदद मिलती है। सहज बातचीत में ये संकेत बार-बार प्रयुक्त होते रहते हैं। सहज बातचीत के समय हम उन जगहों पर रुक जाते हैं या अधिक समय देते हैं जहाँ व्याकरणपरक जोड़ (संयोजन) होते हैं (जैसे किसी वाक्यांश का अंतिम भाग)। जब हम किसी वाक्यांश के अंत में अधिक देर तक रुकते हैं, तो इससे पता चलता है कि अगले वाक्य के लिए हम तैयारी कर रहे हैं।

बोलने में होने वाली गलतियाँ

आपने देखा होगा कि लोग बोलते समय कई तरह की गलतियाँ करते हैं। सही शब्द की खोज करने (शाब्दिक चयन) में कई तरह की त्रुटियाँ होती हैं। सबसे सामान्य तरह के शाब्दिक चयन की त्रुटियों में **अर्थ स्थानापन्नता** (सही शब्द की जगह समान अर्थ वाले किसी दूसरे शब्द का उपयोग) की होती है। उदाहरण के लिए, वक्ता 'मेरा टेनिस रैकेट कहाँ है?' के स्थान पर कहता है कि 'मेरा टैनिस बैट कहाँ है?' **मिलावट** (Blending) एक दूसरे तरह की अर्थ से जुड़ी त्रुटि है (जैसे – वक्ता 'आकाश चमक रहा है' कहता है न कि 'आकाश नीला है' अथवा 'सूर्य चमक रहा है')। शब्द चयन की एक अन्य त्रुटि को **शब्द-विनिमय** (हेर-फेर) त्रुटि कहते हैं – इसमें दो शब्द अपना स्थान ही बदल लेते हैं, जैसे 'मुझे अपने घर से बिल्ली बाहर करनी है' के स्थान पर 'मुझे अपनी बिल्ली को बाहर करना है'।

रूपग्राम विनिमय त्रुटि के अंतर्गत विभक्तियाँ तो रहती हैं परंतु वे गलत शब्द के साथ जुड़ जाती हैं। जैसे 'दि हिल्स आर स्नोई' 'घाटियाँ बर्फीली हैं' की जगह वक्ता कहता है 'दि स्नोज़ आर हिली' 'बर्फें घाटी वाली हैं'। यदि ध्यान से देखा जाए तो हिल्स को 'एस' एवं 'स्नोई' में 'वाई' (घाटियाँ का याँ एवं बर्फें का एँ) अपने स्थान पर रहते हैं, जबकि बर्फ एवं घाटी के स्थान में परिवर्तन हो गया है। एक दूसरे प्रकार की त्रुटि को **प्रत्याशा** या **पूर्वानुमान** त्रुटि कहते हैं, जिसमें एक शब्द वाक्यांश में अपने नियत स्थान के पहले ही बोल दिया जाता है, जैसे "अलमारी किताब में रख दो" जबकि होना चाहिए था "किताब अलमारी में रख दो"। **आद्यक्षर विपर्यय** (Sponerinsm) में दो या इससे अधिक शब्दों के शुरू के अक्षर बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए "राजा जी बाजार करने गए हैं" कहने के बदले "बाजा जी राजार करने गए हैं" कह दिया जाता है। एक और संप्रत्यय "**जिह्वा की नोंक पर**" (Tip of the tounge) कहलाता है, जिसमें

बाक्स 10.4 **भाषा एवं मस्तिष्क**

आप इस बात से परिचित हैं कि आपका मस्तिष्क दो एकरूपी अर्धगोलों में बँटा हुआ हैं, जिन्हें बायाँ एवं दाहिना गोलार्ध कहा जाता है। प्रारंभ से ही, सन् 1861 में ब्रोका 1874 में वेरनिक के अध्ययनों के समय से ही यह माना जाता था कि भाषा की क्रिया मस्तिष्क के बाएँ गोलार्ध में स्थित होती है। यहाँ दो बातें विशेष रूप से ध्यान देने की हैं। पहली बात, दो में से एक गोलार्ध महत्त्वपूर्ण गति संज्ञानात्मक प्रकार्यों को नियंत्रित करता है। इसे ***गोलार्ध वर्चस्व*** *(Hemispheric domiance) अथवा* ***मस्तिष्क पार्श्विकता*** *(Brain lateralisation) के नाम से जाना जाता है। लगभग 90 प्रतिशत लोग बाएँ गोलार्ध के वर्चस्व की बात करते हैं। दूसरी बात, मस्तिष्क में* ***विपरीत पार्श्विक नियंत्रण*** *(Contralateral control) की भी क्षमता होती है। इसके कारण शरीर के दाहिने भाग की सांवेदिक और गतिकीय तंत्रिकाओं का नियंत्रण बाएँ गोलार्ध से होता है। इसलिए, अनेक संस्कृतियों में दाहिने हाथ से कार्यों को करना (दाहिने हाथ वाला) अधिक मात्रा में प्रचलित पाया जाता है। प्रायः दाहिने हाथ से कार्य करने वाले लोगों के बाएँ गोलार्ध में भाषा का केंद्र स्थित होता है।*

बाएँ हाथ से कार्य करने वालों की स्थिति थोड़ी कठिन होती है। इस तरह के ज्यादातर लोगों में भाषा का केंद्र दोनों गोलार्धों में पाया जाता है। बाएँ हाथ से अधिकांश कार्य करने वालों के बाएँ गोलार्ध में भाषा का केंद्र पाया जाता है तथा कुछ के दाहिने गोलार्ध में।

वक्ता सही शब्द खोजने का प्रयास करता है, यद्यपि वह इस बात से आश्वस्त रहता है कि उसे सही शब्द ज्ञात है। संप्रत्यय के अनुरूप शब्द का स्मरण इस स्थिति में कठिन होता है। वक्ता शब्द का अर्थ तो सही समझता है परंतु उसके उच्चारण स्वरूप को नहीं जान पाता है।

आपने अब तक पढ़ा

अब तक आपने इस अनुभाग में वक्ता की वाणी की समझ और उत्पादन के बारे में पढ़ा। वाक् प्रत्यक्षीकरण एक जटिल प्रक्रिया है, जिसमें श्रोता की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और वह वक्ता की भावनाओं का अनुमान पहले ही कर लेता है। बोलना एक सामाजिक घटना है, जो वक्ता एवं श्रोता की पारस्परिक समझ द्वारा संचालित होती है। अनेक प्रकार की त्रुटियाँ; जैसे – अर्थ स्थानापन्नता, आद्यक्षर विपर्यय, प्रत्याशा त्रुटि, विनिमय त्रुटि तथा जिह्वा की नोंक पर आदि गोचर पाए जाते हैं।

भाषा एवं चिंतन

भाषा की विशेषताओं को आपने इस अध्याय में पढ़ा। इसी तरह आपने चिंतन के बारे में अध्याय 9 में पढ़ा था। संक्षेप में, चिंतन एक अतिविस्तृत विषय है, जिसके अंतर्गत अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र आते हैं; जैसे – तर्कणा, समस्या-समाधान तथा निर्णय लेना। अध्याय के इस भाग में भाषा एवं चिंतन के संबंधों की चर्चा की गई है। भाषा एवं चिंतन के संबंध के बारे में तीन विचारधाराएँ प्रमुख हैं: भाषा चिंतन को निर्धारित करती है, चिंतन भाषा को निर्धारित करता है और तीसरी विचारधारा के अनुसार भाषा एवं चिंतन का मूल भिन्न-भिन्न होता है तथा बच्चों के विकास के साथ-साथ ये दोनों एक साथ हो जाते हैं। आइए, इन तीनों विचारधाराओं पर कुछ विस्तार से चिंतन किया जाए।

चिंतन निर्धारक के रूप में भाषा

हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हम संबंध सूचकों के लिए अनेक शब्दों का उपयोग करते हैं। माँ के भाई के लिए हम कई शब्द जानते हैं, पिता के बड़े भाई, पिता के छोटे भाई, माँ की बहन के लिए, पिता की बहन के पति के लिए, तथा इसी प्रकार अन्य संबंध सूचकों के लिए अलग-अलग शब्दों का उपयोग करते हैं। अंग्रेजी बोलने वाला व्यक्ति इन सभी संबंधों के लिए मात्र एक शब्द **'अंकल'** (Uncle) का उपयोग करता है। होपी इंडियन सभी उड़ने वाली चीजों के लिए, चिड़ियों को छोड़कर, केवल एक संज्ञा का उपयोग करते हैं। अंग्रेजी भाषा में रंगों के लिए दर्जनों शब्द हैं, वहीं कुछ जनजातीय भाषाओं में इनके लिए दो अथवा चार शब्द मात्र होते हैं। भाषाएँ संप्रत्ययों के वर्गीकरण करने के स्वरूप के आधार पर एक-दूसरे से अलग होती हैं। क्या इन चीजों का महत्त्व इस बात के लिए भी है कि हम किस प्रकार सोचते हैं या चिंतन करते हैं? क्या अंग्रेजी भाषी बच्चे की तुलना में हिंदी भाषी बच्चा अनेक प्रकार के संबंध सूचक शब्दों के बारे में सोचना एवं भेद करना सरल पाता है? क्या हम दुनिया के बारे में जो कुछ सोचते हैं वह इस बात पर निर्भर करता है कि उसका वर्णन हम अपनी भाषा में किस तरह करते हैं?

बेंजामिन ली हुर्फ का विचार था कि हमारे चिंतन की विषयवस्तु को हमारी भाषा निर्धारित करती है। इस विचारधारा को **भाषिक सापेक्षवाद की परिकल्पना** (Linguistic Relativity Hypothesis) कहते हैं। इस परिकल्पना की मूल मान्यता यह है कि *मनुष्य जो कुछ सोचता है अथवा जो कुछ वह सोच सकता है वह उसकी भाषा द्वारा तथा भाषा में उपलब्ध वर्गीकरणों द्वारा निर्धारित होता है (भाषिक निर्धारणवाद)।* मनोवैज्ञानिक शोधों से यह ज्ञात हुआ है कि इस मूल भावना का समर्थन नहीं किया जा सकता। चिंतन की कुछ विशेषताएँ या स्तर एक सीमा तक सभी भाषाओं में देखे जाते हैं, जो भाषिक वर्गीकरणों एवं संरचनाओं की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं। फलतः कुछ विचार दूसरी भाषा की तुलना में एक भाषा में सरल हो सकते हैं।

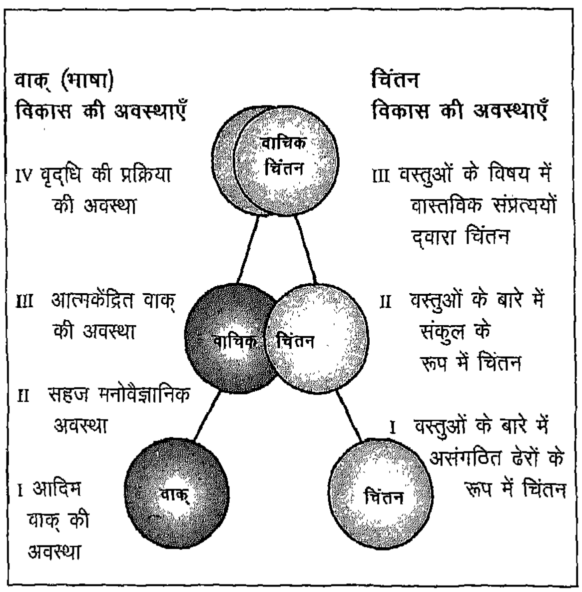
भाषा निर्धारक के रूप में चिंतन

स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **जीन पियाजे** (इनके सिद्धांत की चर्चा अध्याय 2 में की गई है) का मत था कि चिंतन मात्र भाषा का निर्धारण ही नहीं करता वरन् इससे पहले ही उपस्थित रहता है। पियाजे का तर्क था कि बच्चे चिंतन की सहायता से संसार की एक आंतरिक छवि का निर्माण करते हैं। उदाहरणार्थ, जब बच्चे किसी को कुछ करते देखते हैं, तो बाद में उसकी नकल करते हैं (अनुकरण की प्रक्रिया)। इस समय चिंतन जरूर उपस्थित होता है, परंतु उसमें भाषा नहीं प्रयुक्त होती है। भाषा चिंतन के वाहकों में से एक है। जब क्रियाओं को आत्मसात् कर लिया जाता है या वे अंतरीकृत हो जाती हैं, तो भाषा

बच्चों के प्रतीकात्मक चिंतन का विस्तार करती है, परंतु भाषा चिंतन के मौलिक विकास के लिए आवश्यक नहीं है। पियाजे का मत था कि यद्यपि भाषा बच्चों को सिखाई जा सकती है, तथापि शब्दों की समझ के लिए इसके पीछे छिपे संप्रत्ययों की जानकारी (चिंतन) आवश्यक है। इसलिए, भाषा की समझ हो सके, इसके लिए चिंतन आधारभूत और आवश्यक है।

भाषा एवं चिंतन की अलग-अलग उत्पत्ति

रूसी मानोवैज्ञानिक **लिव वाइगाट्स्की** का विचार है कि चिंतन एवं भाषा की उत्पत्ति अलग-अलग होती है तथा इनका विकास चरणों में समानांतर रूप से होता है, यद्यपि इनके प्रकार्य एक दूसरे को व्याप्त कर सकते हैं (चित्र 10.1 देखिए)



चित्र 10.1 : वाइगाट्स्की की दृष्टि में भाषा एवं चिंतन के बीच विकास के परिप्रेक्ष्य में बदलते संबंध।

चिंतन की प्रथम अवस्था में वस्तुओं को **वर्गों या ढेरों** में संगठित किया जाता है। यह वर्गीकरण उनमें दिखाई देने वाली समानताओं तथा भिन्नताओं पर आधारित होता है। इस वर्गीकरण का आधार कोई नियम अथवा तर्क नहीं होता है। दूसरी अवस्था में **रचना के रूप में चिंतन** है, जिसमें बच्चे वस्तुओं के अलग-अलग अवयवों के बीच अपरिवर्तनीय मूर्त तथा वास्तविक संबंधों का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। अंतिम अवस्था **संप्रत्ययात्मक चिंतन** की होती है, जिसमें बच्चे विभिन्न तत्वों के बीच अमूर्त जुड़ाव देख सकते हैं तथा उनका विश्लेषण कर सकते हैं।

वाइगाट्स्की के अनुसार भाषा विकास की अवस्थाएँ इस प्रकार हैं। प्रथम, अबौद्धिक अथवा चिंतनशून्य वाक् **सहज अवस्था** (Naive Stage) में विकसित होती है, जिसमें शब्दों के प्रतीकात्मक आशय सीखे जाते हैं। दूसरी अवस्था **आत्मकेंद्रित भाषा** (Egocentric speech) की होती है जहाँ बच्चे बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी बातों को कहते हैं, जिन्हें वे कर रहे होते हैं, भले ही कोई सुन न रहा हो। इसके बाद **आंतरिक भाषा** (Inner speech) की तीसरी अवस्था आती है, जिसमें बच्चे ध्वनिरहित वाणी का उपयोग करते हुए विचारों में स्वेच्छया परिवर्तन करने के योग्य हो जाते हैं।

वाइगाट्स्की के अनुसार, जब बच्चे एक अवस्था से दूसरी अवस्था की ओर जाते हैं, तो तीन चीजें होती हैं। एक अवस्था से दूसरी अवस्था के संधिकाल में मौलिक संरचनाएँ नष्ट हो जाती हैं तथा नई संरचनाओं का निर्माण होता है। उनका यह भी मानना था कि अंतिम अवस्था में भाषा एवं चिंतन का विकास एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में होता है। संप्रत्ययात्मक चिंतन का विकास तथा आंतरिक भाषा, दोनों ही एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। चिंतन बिना भाषा के भी प्रयुक्त होता है, विशेषकर जब चिंतन अवाचिक होता है; जैसे – चाक्षुष या गति से जुड़ा होता है। भाषा बिना चिंतन के भी प्रयुक्त होती है, उदाहरण के लिए, जब हम अपनी भावनाओं या कुशल क्षेम को व्यक्त करते हैं,– 'आप कैसे हैं?' 'बहुत अच्छा, मैं सकुशल हूँ'। जब दो प्रकार्य एक-दूसरे में व्याप्त रहते हैं, तो दोनों का साथ-साथ उपयोग किया जा सकता है, जिससे शाब्दिक चिंतन एवं तार्किक भाषा उत्पन्न हो सके।

आपने अब तक पढ़ा

हुर्फ की परिकल्पना जिसे भाषिक सापेक्षता की परिकल्पना भी कहा जाता है, की मान्यता है कि भाषा चिंतन को निर्धारित करती है। हुर्फ का मानना था कि जिन शब्दों को व्यक्ति या समुदाय किसी चीज के लिए उपयोग में लाते हैं, उनका चिंतन उतना ही बारीक भेद करने वाला होगा। दूसरी ओर, पियाजे का कहना था कि चिंतन भाषा का केवल निर्धारण ही नहीं करता वरन् इसके पहले घटित होता है। वाइगाट्स्की के अनुसार, भाषा एवं चिंतन

एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में विकसित होते हैं। यद्यपि उनके कार्य एक-दूसरे के क्षेत्र में व्याप्त हो सकते हैं।

आपने कितना सीखा

1. *स्किनर की मान्यता के अनुसार भाषा का विकास एक जन्मजात योग्यता है। (सही/गलत)*
2. *भाषिक सापेक्षता की परिकल्पना चिंतन की विषयवस्तु से संबंधित है। (सही/गलत)*
3. *चाम्स्की के अनुसार भाषा एक अर्जित योग्यता है। (सही/गलत)*
4. *पियाजे ने चिंतन को भाषा का निर्धारक माना है। (सही/गलत)*
5. *वाइगाट्स्की का मत है कि भाषा एवं चिंतन एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में विकसित होते हैं। (सही/गलत)*

उत्तर – 1. गलत, 2. सही, 3. गलत, 4. सही, 5. सही।

संचार : एक आवश्यक मानवीय प्रक्रिया

संचार वह प्रक्रिया है जिसकी सहायता से हम अर्थ को समझते हैं तथा उसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाते हैं। मनुष्य की अंतःक्रिया का यह एक आवश्यक भाग है। यह वह साधन है, जिसकी सहायता से आदमी एक-दूसरे के साथ अंतःक्रिया करता है तथा विभिन्न कामों को पूरा करता है। मनुष्य स्वयं-निर्मित प्रतीकों के द्वारा संचार करता है। प्रतीकों की सहायता से अर्थ संप्रेषण करना मनुष्य की वह विशेषता है, जो उसे पशुओं से अलग करती है। संचार के द्वारा ही हम अपनी अभिव्यक्ति को व्यक्त करते हैं तथा विचारों, भावनाओं तथा इच्छाओं को दूसरे लोगों से प्राप्त करते हैं और उन तक पहुँचाते भी हैं।

अंग्रेजी का शब्द Communication (संचार) लैटिन भाषा के 'Communis' से बना है जिसका अर्थ होता है – सामान्य संचार के माध्यम से हम दूसरों के साथ साझेदारी या समानता विकसित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हम सूचनाएँ, विचार अथवा अपनी अभिवृत्ति को एक-दूसरे से बाँटते हैं। उदाहरण के लिए, यहाँ इस बात का प्रयास किया जा रहा है कि संचार का तात्पर्य आप तक संप्रेषित हो जाए।

संचार की प्रक्रिया में समाचार/सूचना भेजने वाला व्यक्ति (किताब का लेखक) तथा जो इसे प्राप्त करता है (पाठक) दोनों ही एक विशिष्ट प्रकार की सूचना के अदान-प्रदान के लिए तत्पर रहते हैं। इसी तरह, जो समाचार पत्र आप रोज पढ़ते हैं या टी.वी. देखते हैं, तो आप पाते होंगे कि ये अपने पाठकों और दर्शकों को कुछ संदेश पहुँचाना चाहते हैं। ये जनसंचार के सबसे सशक्त माध्यम की रचना करते हैं। तकनीकी विकास की देन के रूप में आजकल इलेक्ट्रॉनिक मेल, वॉयस मेल एवं फैक्स आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। संचार के ये विभिन्न स्वरूप हैं हालाँकि सबकी प्रक्रिया मूलतः एक ही है। संचार के इन सभी स्वरूपों में यह प्रयास किया जाता है कि बातों का अर्थ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जाए, ताकि सूचनाओं एवं विचारों का संप्रेषण किया जा सके। यहाँ पर यह समझ लेना चाहिए कि संचार केवल अर्थ का संप्रेषण नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि एक समूह में कोई व्यक्ति एक भाषा बोलता है (जैसे अंग्रेजी) और दूसरा व्यक्ति इस भाषा को नहीं जानता है तो अंग्रेजी बोलने वाले व्यक्ति को ठीक तरह से नहीं समझ सकेगा। इसलिए संचार में अर्थ का संप्रेषण और उसका बोध या उसे समझना दोनों ही सम्मिलित हैं।

क्रियाकलाप 10.2

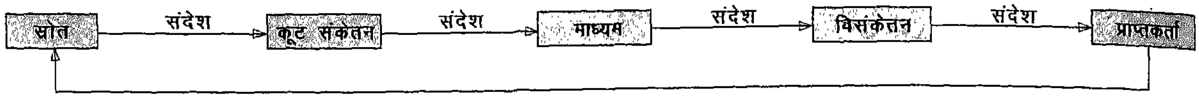
संचार को समझना

ऐसे सभी तरह के संचारों के तरीकों की सूची बनाइए, जिनका उपयोग आप दूसरों के साथ सूचना के आदान-प्रदान करने में करते हैं।

दूसरे लोग आप द्वारा भेजे गए संदेश को हमेशा समझ लेते हैं? यदि ऐसा नहीं हो पाता है, तो आपके अनुसार इसके संभव कारण क्या हैं? इसकी चर्चा आप अपने शिक्षक के साथ कीजिए।

संचार प्रक्रिया

संचार को एक प्रवाह अथवा प्रक्रिया माना जा सकता है। इस प्रक्रिया में जब अवरोध आते हैं, तो संचार में अक्सर गलतफहमियाँ पैदा हो जाती हैं। अब आप संचार की प्रक्रिया को एक मॉडल की सहायता से जानेंगे और यह भी देखेंगे कि किस तरह विभिन्न प्रकार के विकारों या व्यवधानों के कारण इस प्रक्रिया में बाधा पड़ती है। संचार प्रक्रिया को चित्र 10.2 में दिए गए मॉडल की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है।



चित्र 10.2 : संचार प्रक्रिया का एक मॉडल।

इस मॉडल के सात भाग हैं : 1. संचार का स्रोत, 2. इनकोडिंग या कूट संकेतन, 3. संदेश, 4. चैनल या माध्यम, 5. विसंकेतन या डिकोडिंग, 6. प्राप्तकर्ता, 7. फीडबैक।

जब हम वास्तव में संचार करते हैं तो इन प्रक्रियाओं पर हमारा ध्यान नहीं जाता है। संदेश की पहल एक **स्रोत** द्वारा आरंभ होती है। यह स्रोत एक व्यक्ति की चाह या इच्छा होती है, वह व्यक्ति ही संदेश की शुरुआत करता है पर जरूरी नहीं है कि वही संदेश को भेजने वाला भी हो। हम कह सकते हैं कि विचारों के कूट संकेतन से संदेशों का प्रादुर्भाव होता है। विचारों को शब्दों, हाव-भाव तथा मुखाकृति की अभिव्यक्तियों के रूप में रूपांतरित किया जाता है। ये सब संचार करने वाले व्यक्ति की अभिवृत्ति, कौशल, जानकारी एवं सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ से प्रभावित होते हैं। उदाहरण के लिए, पुस्तकों के लेखकों का लेखन कौशल विद्यार्थियों तक संदेश का संचार करने में सहायक होता है। चूँकि कुछ विषयों के बारे में हमारे अपने विचार होते हैं, इसलिए हमारा संचार हमारी अभिवृत्तियों से प्रभावित होता है। आप संचार ठीक से नहीं कर पाएँगे, यदि आपके पास विषय विशेष की जानकारी नहीं है तथा यदि आप उस विषय में बहुत कुछ जानते हैं। हो सकता है कि संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति आपको ठीक तरह से समझ न सके।

संदेश किसी स्रोत द्वारा प्रेषित एक वास्तविक भौतिक उत्पाद होता है। संदेश किसी में भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, जब हम बोलते हैं, तो हमारी बातचीत ही संदेश होती है। जब हम लिखते हैं, तो लिखित सामग्री ही संदेश होती है। जब हम अपनी बाँह से कोई हाव-भाव व्यक्त करते हैं, घुमाते हैं, हाथ से गति करते हैं, चेहरे से कुछ व्यक्त करते हैं, आँख से कुछ भाव प्रदर्शित करते हैं तो वास्तव में हम किसी तरह का संदेश ही भेजते हैं।

चैनल वह माध्यम होता है, जिससे होकर संदेश की यात्रा होती है। यह स्रोत निर्धारित करता है कि किस चैनल का उपयोग किया जाएगा। चैनल औपचारिक हो सकता है – विशेषकर जब हम विद्यालय, कार्यालय अथवा संगठनों में संचार करते हैं। व्यक्तिगत अथवा सामाजिक स्तर पर संचार करते समय चैनल अनौपचारिक भी हो सकता है।

संदेश किसी लक्ष्य या प्राप्तकर्ता की तरफ निर्देशित होता है, परंतु संदेश की प्राप्ति के पहले प्रतीकों को इस रूप में रूपांतरित करना होता है, ताकि इसे पाने वाला इसे समझ सके। इस प्रक्रिया को संदेश की **डिकोडिंग** या **विसंकेतन** कहते हैं। संदेश भेजने वाले (कूट संकेतन करने वाले) की तरह संदेश प्राप्त करने वाले भी अपने ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं। ये सभी संदेश प्राप्त करने वाले की योग्यता को प्रभावित करते हैं। यह प्रभाव ठीक वैसे ही होता है, जैसे वे संदेश प्रेषक की योग्यता को प्रभावित करते हैं।

संचार प्रक्रिया की अंतिम कड़ी **पृष्ठपूर्ति** या **फीडबैक** होती है। यह संदेश प्राप्त करने वाले की प्रतिक्रिया होती है और यह संचार के स्रोत की रुझान पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए, अध्यापक कक्षा में पढ़ाता है और इस बात का बराबर ध्यान रखता है कि कक्षा के विद्यार्थी जो कुछ उनसे कहा जा रहा है, उसे समझ रहें हैं अथवा कोई दूसरा काम कर रहे हैं। जब अध्यापक की बात पर विद्यार्थी सिर हिलाकर सहमति व्यक्त करते हैं कि वे उसकी बात समझ रहे हैं तब शिक्षक को फीडबैक मिलता है कि उसके विद्यार्थी उसकी बात समझ रहे हैं। इसी तरह आपने देखा होगा कि जब कोई कवि कविता पढ़ता है, तो वह चाहता है कि श्रोता तालियाँ बजाएँ। इससे कवि को अपनी कविता के बारे में फीडबैक मिलता है। फीडबैक से इस बात की जाँच होती है कि कोई व्यक्ति संदेश पहुँचाने में कितना सफल रहा है तथा श्रोता उसको ठीक से समझ रहे हैं, अर्थात् संदेश प्राप्त कर रहे हैं कि नहीं।

संचार प्रक्रिया की विशेषताएँ

संचार की प्रमुख विशेषता है कि वह गतिशील, जटिल, व्यवस्थित होता है। यह एक साथ कारण एवं प्रभाव दोनों होता है।

- **संचार गतिशील होता है।** संदेशों का स्वरूप और अर्थ बदलता रहता है तथा संदर्भ पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए; "अपने कार्य पर नहीं सोएँ" इस संदेश का अर्थ एक छोटे बच्चे, कालेज जाने वाले व्यक्ति के लिए अलग-अलग होगा।
- **संचार जटिल होता है।** व्यक्तियों के बीच संचार को कई कारक प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, व्यक्ति के व्यक्तित्व की असंख्य विमाएँ होती हैं, जैसे – पसंद, नापसंद, तथा व्यवहार के तरीके, जो संदेश प्राप्त करने वाले की व्यक्तित्व विशेषताओं से अंतःक्रिया करते रहते हैं।
- **संचार व्यवस्थित होता है।** ऐसा इसलिए है कि व्यक्तियों के बीच आदान-प्रदान को प्रभावित करने वाले परिवर्त्य एक-दूसरे पर आश्रित एवं अंतःक्रियात्मक होते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे के बोलने का प्रयास अनेक परिवर्त्यों पर आश्रित होता है। उसकी शारीरिक आयु, लिंग, अभिभावकों का दबाव, घर का वातावरण, बुद्धि तथा इसी तरह के अन्य कारक इसे प्रभावित करते हैं।
- **संचार का घटनाक्रम एक ही साथ कारण तथा प्रभाव दोनों होता है।** उदाहरण के लिए, 'मैं पढ़ना नहीं चाहता हूँ' प्रशिक्षक के डाँटने का प्रभाव हो सकता है और वह संदेश उसी समय अध्यापक की ओर से 'मैं यह कहने के लिए दुखी हूँ' की प्रतिक्रिया का कारण हो सकता है।

संचार के कार्य

दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच संचार एक उद्देश्य से स्थापित होता है। संचार भावनाओं के आदान-प्रदान, विचार-विनिमय एवं सूचनाओं की भागीदारी में सहायता करता है। संचार के कुछ प्रमुख कार्य नीचे वर्णित हैं।

- संचार प्रक्रिया के माध्यम से हम अपने बारे में अपनी भावनाओं की जाँच करते हैं तथा अपने विषय में दूसरों की भावनाओं का भी पता लगाते हैं। साथ ही इसके द्वारा अपने भौतिक वातावरण को संगठित करते हैं, इसके विषय में सूचना प्राप्त करते हैं और उसके साथ अनुकूलन स्थापित करते हैं।
- अपने प्रति दूसरों की प्रतिक्रियाओं की सहायता से दूसरों के साथ संचार द्वारा हम अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाते हैं। हम अपनी आत्मछवि पर मनन करते हैं, उसकी वैधता ज्ञात करते हैं तथा अपने संबंधों द्वारा व्यक्तिगत विकास की वृद्धि करते हैं।
- दूसरों के साथ सूचनाओं में भागीदारी करते हैं तथा एक दूसरे के लिए कल्याण का भाव सुनिश्चित करते हैं।
- संबंधों के निर्माण की नींव डालते हैं। इसके माध्यम से वैयक्तिक संतुष्टि तथा अन्य व्यक्तियों के साथ सौहार्द स्थापित करते हैं।
- सूचना की भागीदारी, विचारों पर ध्यान, आदान-प्रदान तथा विचार विनिमय करते हैं। इनके माध्यम से निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावी बनाते हैं।

संचार एक जटिल प्रक्रिया है तथा प्रभावी ढंग से संचार करना सामाजिक संबंधों की स्थापना में सहायता करता है तथा हमारी निजी उन्नति में सहायता करता है। उदाहरण के लिए, यदि आपका अध्यापक आपसे कुछ कहता है तो आप उसके शब्दों को ध्यान से सुनते हैं, उसके व्यवहार की व्याख्या करते हैं, उसके अवाचिक संदेशों को ध्यान से देखते हैं, तथा शब्दों, अभिव्यक्तियों एवं उसकी शारीरिक भाषा के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। जब आप उसको जवाब देते हैं, तो वह आपको ध्यान से देखता है, और जब आप उसे शाब्दिक उत्तर देते हैं, तो आप संदेशों, भावनाओं और अनुभवों की जटिल अंतःक्रिया का आदान-प्रदान करते हैं। यह सब कुछ आपके द्वारा पहले किए गए संचार, संस्कृति के मूल्यों तथा वातावरण के कारकों से प्रभावित होता है।

आपने अब तक पढ़ा

आपने पढ़ा कि संचार लोगों, संदेशों तथा वातावरण या संदर्भ को आपस में जोड़ता है। संचार की प्रक्रिया विचारों, भावनाओं या दृष्टिकोणों की भागीदारी, संप्रेषण तथा आदान-प्रदान करने की प्रक्रिया है। संचार की प्रक्रिया की मुख्य विशेषता है कि यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जो भूतकाल से लेकर वर्तमान में घटित होकर भविष्य की तरफ गतिमान होती है। यह प्रक्रिया अपरिवर्तनीय है। दूसरे शब्दों में, यदि आप कुछ कहते हैं अथवा करते हैं, तो आप उसको वापस नहीं ले सकते। आप इसमें मात्र कुछ जोड़ सकते हैं, जो इस प्रक्रिया को और अधिक सतत बनाएगा। आप इसे न मिटा सकते हैं और न ही उलटा कर सकते हैं। यह एक गतिशील प्रक्रिया है, जैसे जीवन स्वयं एक गतिशील प्रक्रिया है।

आपने कितना सीखा

1. *मनुष्य ———————— के माध्यम से संचार करता है।*
2. *जो व्यक्ति संदेश प्रारंभ करता है उसे ———————— कहते हैं।*
3. *जिस माध्यम से संदेश यात्रा करता है उसे ———————— कहते हैं।*
4. *———————— संचार प्रक्रिया में यह निश्चित करता है कि संदेश यथास्थान सही-सही पहुँच गया है।*
5. *———————— का अर्थ होता है प्रतीकों को इस रूप में प्रस्तुत करना कि संदेश समझा जा सके।*

उत्तर – 1. प्रतीक, 2. स्रोत, 3. चैनल, 4. पुनर्भरण, 5. संकेतन।

संचार के वाचिक और अवाचिक रूप

यद्यपि संचार का सबसे सशक्त माध्यम भाषा होती है तथापि अन्य प्रतीकों का भी उपयोग किया जाता है। संचार के दो प्रमुख स्वरूप हो सकते हैं – वाचिक तथा अवाचिक। संचार में वाक् एवं भाषा महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। अवाचिक संचार में अभाषिक संकेतों; जैसे – हाव-भाव, शरीर की स्थिति, मुखाकृतिक अभिव्यक्ति, आँख से संपर्क, सिर एवं शरीर की गति तथा भौतिक दूरी का उपयोग किया जाता है। "क्रियाएँ शब्द से अधिक महत्त्वपूर्ण" होती हैं, यह कहावत इस बात का संकेत करती है कि अवाचिक संचार कितना सार्थक है। इन संकेतों का अलग से या बोली जाने वाली भाषा के साथ उपयोग करके बोले गए शब्दों पर बल दिया जाता है अथवा बोली गई भाषा का बिल्कुल अलग अर्थ उत्पन्न करने का कार्य किया जाता है।

उच्चारण की उच्चता या बल संदेश का अर्थ बदल सकता है। उदाहरण के लिए, उस विद्यार्थी की कल्पना कीजिए, जिसने अध्यापक से एक प्रश्न पूछा तथा अध्यापक ने उत्तर दिया "आप, उससे क्या समझते हैं?" यहाँ विद्यार्थी की प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करेगी कि अध्यापक ने कितने जोर से उत्तर दिया है। यदि अध्यापक मधुर स्वर में उत्तर देता है तो उसका अर्थ तेज स्वर एवं रूखे ढंग से बात करने से भिन्न होगा। इसी तरह हाव-भाव से संचार की लय सुनिश्चित होती है तथा इससे रुचि एवं स्नेह का संप्रेषण होता है। हाव-भाव विचार को स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं। शरीर के हाव-भाव एवं मौखिक अभिव्यक्ति; जैसे – मुस्कान, चढ़ी भौं आदि से किसी दूसरे व्यक्ति अथवा स्थिति के बारे में वक्ता की अभिवृत्ति का पता चलता है। इसी तरह, आँखों का संपर्क तथा भौतिक दूरी दो व्यक्तियों की संचार प्रक्रिया में संलग्नता को बताती है। उदाहरण के लिए, आँख के इशारे से रुचि का पता चलता है तथा संचार का निमंत्रण मिलता है। बातचीत चलते रहने के क्रम में यदि आँखें कहीं दूसरी दिशा में घूम रही हैं, तो इससे वक्ता की अरुचि का पता चलेगा। अवाचिक संकेतों के भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं, जो उनके सामाजिक एवं वैयक्तिक अनुभवों पर निर्भर करते हैं। यह बात तब स्पष्ट हो जाएगी यदि आप उस अवसर को याद करें जब आपके मित्रों ने आपके हाव-भाव का गलत अर्थ लगाया था। अवाचिक व्यवहार नीचे दिए गए कई कार्य करते हैं।

- ये व्यवहार इस बात के द्योतक होते हैं कि आप लक्ष्य व्यक्तियों के पास जाना चाहते हैं; जैसे – हाथ हिलाकर स्वागत करना, पीठ पर थपकी लगाने जैसे व्यवहार इस बात का संकेत देते हैं कि आप लोगों के साथ संपर्क चाहते हैं।
- ये इस बात के प्रमाण हैं कि संचार की संभावना है। इन व्यवहारों से सामाजिक सौहार्द बनने की संभावना बढ़ती है। उदाहरण के लिए, लोगों की तरफ मुखातिब होना, लोगों के निकट जाना, लोगों से आँख मिलाना आदि व्यवहार यह बताते हैं कि अब बातचीत होने ही वाली है या संचार होगा।
- इनसे सांवेदिक उद्दीपन में वृद्धि होती है। आँख मिलाने या भौतिक दूरी में कमी, तथा स्पर्श में वृद्धि से दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक उद्वेलन बढ़ने का प्रमाण मिलता है।
- इससे अंतर्वैयक्तिक निकटता में वृद्धि होती है तथा मनोवैज्ञानिक धरातल पर दूरी कम हो जाती है।

क्रियाकलाप 10.3

वाचिक तथा अवाचिक संचार को समझना

1. *एक वक्ता/अध्यापक को बोलते हुए/कक्षा में पढ़ाते हुए देखिए। उसके द्वारा प्रदर्शित हाव-भाव को अंकित कीजिए। क्या ये हाव-भाव जो कुछ कहा गया है, उसमें अर्थ की वृद्धि करते हैं?*

2. दिन भर अपने द्वारा किए गए विभिन्न कार्यों के बारे में विचार कीजिए तथा अपने द्वारा प्रयुक्त विभिन्न प्रकार के संचार-रूपों को लिख कर अंकित कीजिए। क्या अवाचिक संकेतों का उपयोग संदेश को पहुँचाने में मदद करता है?

बाक्स 10.5 अनुनय एवं अनुनयात्मक संचार

अनुनय सामाजिक प्रभाव के उपयोग द्वारा किसी की अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने का सुनियोजित चेतन प्रयास है। प्रतिदिन लोगों को अनेक तरह के संदेश दिए जाते हैं : किसी राजनैतिक दल को मत देने के लिए, एक खास ब्राण्ड का साबुन, कपड़े, खाद्य पदार्थ इत्यादि को खरीदने के लिए। इनमें से कुछ अनुनयात्मक संदेश वस्तुओं, घटनाओं और संगठनों के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने में प्रभावी होते हैं। अनुनयात्मक संचार ***स्रोत, संदेश, चैनल*** *तथा* ***श्रोतावर्ग*** *द्वारा प्रभावित होता है। संदेश देने वाले व्यक्ति या स्रोत की कुछ विशेषताएँ अभिवृत्ति को बदलने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यदि वह उस क्षेत्र विशेष का विशेषज्ञ या अधिकारसंपन्न व्यक्ति हो, तो वह अधिक प्रभावी होता है। यदि संदेश देने वाले व्यक्ति की छवि और साख अच्छी हो तो अभिवृत्ति में बदलाव आसान होता है। संदेश की विशेषताएँ जैसे – रंग, डिजाइन, पृष्ठभूमि से अंतर, तथा श्रोतावर्ग की संलग्नता भी अनुनयात्मकता को प्रभावित करती हैं। यदि संदेश व्यक्ति के विश्वास से भिन्न न हो तो श्रोतावर्ग द्वारा उसकी स्वीकृति की संभावना अधिक होती है। अनुनयात्मक संदेशों के चैनल भी भिन्न प्रकार के होते हैं (जैसे-टी.वी., रेडियो, अखबार)। पाया गया है कि बड़े समूह के बदले व्यक्तियों से संपर्क अधिक लाभप्रद होता है। श्रोतावर्ग का स्वभाव भी अनुनय के प्रभाव को तय करता है। शोध से पता चलता है कि जब श्रोतावर्ग नया हो और अनुनय के प्रयास की जानकारी न हो तो उसे प्रभावित करना सरल होता है।*

संचार के संरूप

संचार किस तरह होता है, इसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि इस बात की भी जानकारी हो कि औपचारिक तथा अनौपचारिक संचार नेटवर्क से संचार का प्रवाह कैसे कार्य करता है।

संचार की दिशा : संचार ऊपर से नीचे या ऊर्ध्वाधर या अगल-बगल हो सकता है। **ऊर्ध्वाधर संचार** ऊपर से नीचे या नीचे से ऊपर की दिशा में हो सकता है। जब एक समूह या संगठन के एक स्तर से नीचे के स्तर की ओर संचार का प्रवाह होता है तो, वह **अधोमुखी** संचार कहा जाता है। उदाहरणार्थ, जब प्रबंधकों, संगठन के प्रमुख, समूह-नेता आदि द्वारा अपने अधीनस्थ को संदेश दिया जाता है तो वह अधोमुखी संचार होता है।

ऐसे संचार का उपयोग दायित्वों के बँटवारे, अपेक्षाओं के बारे में सूचना देने, कार्य की आवश्यकता के बारे में निर्देश देने तथा कार्य के विषय में फीडबैक देने जैसे कार्यों के लिए किया जाता है। जब प्राचार्य अध्यापकों से बातचीत करते हैं तो यह अधोमुखी संचार का उदाहरण है। इसमें आवश्यक नहीं है कि संचार वाचिक तथा आमने-सामने वाला हो, यह पत्रों, संदेशों अथवा ज्ञापन-पत्रों आदि के द्वारा भी हो सकता है। इसके विपरीत ऊर्ध्वमुखी संचार में संदेश समूह अथवा संगठन में ऊपर के स्तर की ओर होता है। इससे उच्च पदस्थ लोगों को फीडबैक दिया जाता है तथा प्रगति से अवगत कराया जाता है, कर्मचारियों के सुझाव एवं शिकायतें पर्यवेक्षकों को बताई जाती हैं। **समानांतर संचार** अपने समानांतर स्तर वालों या मित्रों/सहकर्मियों के बीच होता है। इस प्रकार के **क्षैतिज** (Horizontal) संचार से समूह के सदस्यों में पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ती है तथा समय की बचत होती है।

चैनल (माध्यम) जिसके द्वारा सूचनाएँ संचार प्रक्रिया में प्रवाहमान होती हैं, **औपचारिक** अथवा **अनौपचारिक** दोनों तरह के हो सकते हैं। औपचारिक नेटवर्क ऊर्ध्वाधर होते हैं, शृंखला का पालन करते हैं तथा प्रायः कार्य से संबंधित संचार से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए, किसी विद्यालय के प्राचार्य तथा प्रवेश परीक्षा देने हेतु एकत्र विद्यार्थियों के बीच एक विशेष किस्म का औपचारिक संचार होता है। इसके विपरीत अनौपचारिक संचार के अंतर्गत इस बात की स्वतंत्रता होती है कि संचार किसी

भी दिशा में हो सकता है। अधिकारी का उच्चपदस्थ होने का ध्यान नहीं रहता। समूह के सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं तथा इसमें होने वाला कार्य सरल हो जाता है।

क्रियाकलाप 10.4

प्रतिदिन के जीवन से संबंधित संचार

1. *विद्यालय के भीतर एवं बाहर की गतिविधियों का उदाहरण लेकर देखें कि संचार के कौन-से पक्ष उर्ध्वाधर हैं और कौन-से पक्ष क्षैतिज हैं।*
2. *उन स्थितियों की सूची बनाइए, जहाँ संचार के औपचारिक एवं अनौपचारिक चैनलों का प्रयोग होता है।*

आपने अब तक पढ़ा

अब तक आपने यह पढ़ा कि संचार व्यक्ति के अंदर अथवा उस परिस्थिति में जिसमें एक या एक से अधिक व्यक्ति होते हैं, घटित हो सकता है। संचार का प्रयोग जनता में, संगठनों (जैसे–विद्यालय, अस्पताल) में तथा जनसंचार के माध्यम (जैसे – रेडियो, टी.वी., अखबार तथा फिल्म आदि) से भी होता है। हम संचार के वाचिक तथा अवाचिक रूपों का उपयोग करते हैं। संचार का संरूप भी बदलता है। ये ऊर्ध्वाधर या क्षैतिज हो सकते हैं। इसी तरह संचार औपचारिक या अनौपचारिक हो सकता है। ये संरूप विभिन्न दशाओं में अलग-अलग कार्य करते हैं।

प्रभावशाली संचार के कौशल

किसी भी रूप में लोगों से अंतःक्रिया करने के लिए कई तरह की योग्यताएँ आवश्यक होती हैं। **ध्यान देना** एवं **प्रत्यक्षीकरण करना** संचार के दो मूलभूत पक्ष होते हैं। वातावरण में वस्तुओं अथवा व्यक्तियों के प्रति ध्यान देना सूचना प्राप्त करने में सहायता करता है, जिससे वे अपने वातावरण की मांगों के प्रति अनुकूलित हो सकते हैं। यद्यपि संचार प्रक्रिया में ध्यान न देना मात्र श्रोता की त्रुटि मानी जाती है (संदेश प्राप्त करने वाला) परंतु यह वक्ता (संदेश भेजने वाले) की भी त्रुटि हो सकती है। किसी भी दशा में ध्यान न देने से बातचीत का मंतव्य समझना कठिन हो जाता है। मंतव्य न समझने से अनुपयुक्त व्यवहार हो सकता है अथवा झेंप लग सकती है।

व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण अथवा उस सामाजिक संदर्भ को समझना जिसका कि वह व्यक्ति एक भाग है, उपयुक्त एवं प्रत्यक्षपरक व्यवहार करने में सुविधा होती है। व्यक्तियों के बीच आपस में संचार के लिए प्रत्यक्षीकरण की विशेषता भी जरूरी है। प्रत्यक्षीकरण की क्षमता का तात्पर्य उस सीमा से होता है जहाँ व्यक्ति उस भावना के प्रति संवेदनशील होता है जो वह किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार के बारे में रखता है तथा जहाँ वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि लोग उसके स्वयं के व्यवहार को किस रूप में समझते हैं? क्या अर्थ लगाते हैं? इस तरह प्रत्यक्षीकरण में ध्यान देने वाली बात भी शामिल है। कहने का आशय यह है कि सामाजिक परिदृश्य में संकेतों को देखना, इन संकेतों का गुणारोपण एवं संकेतों के साथ अर्थ संयोजन करना एवं उन संकेतों के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया करना आदि बातें आती हैं।

प्रभावशाली संचार के कुछ सामान्य नियम

प्रभावशाली संचार के नियम नीचे दिए जा रहे हैं जिनका आप आपने संचार में उपयोग करने का प्रयत्न कर सकते हैं।

- संदेश का एक उद्देश्य होना चाहिए एवं उसका स्पष्ट रूप से वर्णन करना चाहिए।
- संचार की उपयुक्त विधि का चुनाव करना चाहिए तथा ऐसा करते समय श्रोता एवं विषयवस्तु का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।
- जहाँ भी संभव हो एक से अधिक प्रकार के संचार का उपयोग करना चाहिए। इससे संचार बहुत ही प्रभावशाली होता है।
- यथासंभव संचार को सुरुचिपूर्ण बनाना चाहिए।
- यदि संचार के विषय में कोई सकारात्मक सलाह बाद में फीडबैक के रूप में मिले तो उसका ध्यान रखना चाहिए।
- किसी की बात सुनते समय मस्तिष्क खुला रखना चाहिए तथा संदेश की विषयवस्तु का वस्तुनिष्ठ तरीके से मूल्यांकन करना चाहिए।
- वक्ता के किसी भी प्रकार के अवाचिक संकेत हों तो उन्हें ध्यान में रखना चाहिए।
- प्रभावशाली संचार के लिए प्रभावशाली ढंग से बोलना तथा सुनना आवश्यक होता है।

प्रभावशाली ढंग से बोलना

कुछ ऐसी बातें, जिनका जनता में बोलते समय ध्यान रखना चाहिए, नीचे दी जा रही हैं :

- अपने संदेश के विषय में स्पष्ट रहिए तथा जानिए कि आपका उद्देश्य क्या है।
- अपने श्रोताओं को जानिए तथा अपनी प्रस्तुति को उनकी आवश्यकताओं के अनुरूप करिए।
- श्रोताओं द्वारा पूछे जा सकने वाले प्रश्नों का अनुमान लगाइए।
- नियत किए गए समय का ध्यान रखिए।
- संक्षिप्त नोट तैयार करिए– बोलते समय आप उसकी सहायता लीजिए।
- बोलते समय आप जिन साधनों या यंत्रों का उपयोग करेंगे, उनकी पहले ही जाँच कर लीजिए।
- आप अपना भाषण इस तरह दीजिए कि उसका प्रभाव पड़े।
- अनौपचारिक प्रस्तुति के अपने भाषण का अभ्यास कीजिए एवं भाषण करके भी देखिए।

प्रभावी ढंग से सुनना

कई प्रकार की आदतें होती हैं, जिनकी सहायता से सुनने के कौशल का विकास किया जा सकता है। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

- कोई क्या कह रहा है उसको समझने के लिए सतर्क रहिए। पहले ही यह मत सोच लीजिए कि जो कहा जाना है वह व्यर्थ है।
- इस बात का मूल्यांकन कर लीजिए कि वक्ता जो बात कह रहा है वह आपकी प्रत्याशा के अनुरूप है अथवा नहीं।
- आप सार संक्षेप बना लें, जिससे आप यह जान सकेंगे कि वक्ता ने जो कुछ कहा है वह आप समझ सके हैं या नहीं।
- बोलने के बीच में मत टोकिए या बाधक मत बनिए तथा ध्यानपूर्वक अवाचिक संकेतों को समझने का प्रयास कीजिए।
- कहे गए शब्दों को केवल सुनिए ही नहीं बल्कि प्रयास कीजिए कि जो कुछ कहा जा रहा है उसका अर्थ आप समझ रहे हैं।

संचार के अवरोधक

किसी समय आपने अनुभव किया होगा कि आपने जो बात कही थी, लोगों ने उसको समझा ही नहीं, या लोगों ने उसका अलग अर्थ समझा था। ऐसी स्थितियों से गलतफहमी फैलती है अथवा वांछित प्रतिक्रियाएँ नहीं मिलती हैं। संचार तब प्रभावशाली माना जाता है जब विचार, भावनाएँ अथवा अर्थ दूसरों तक सफलतापूर्वक पहुँच सकें। संदेश भेजने वाले एवं इसे प्राप्त करने वाले के बीच के संप्रेषण में कुछ अवरोध उत्पन्न हो सकते हैं। इस अवरोध का आशय उन बाधकों से है, जो अनेक स्रोतों से उत्पन्न हो सकते हैं एवं संप्रेषण को बेअसर कर सकते हैं। ये समस्याएँ वक्ता या संदेश देने वाले के साथ उत्पन्न हो सकती हैं कि वह किन्हीं कारणों से अथवा अनिच्छा से संदेश स्पष्ट रूप से नहीं प्रेषित कर पा रहा है। यह समस्या वातावरण के कारकों से जुड़ी हो सकती हैं, जैसे शोरगुल, जिससे प्रेषित किया जाने वाला संदेश प्रभावित हो जाता है। संदेश प्राप्त करने वाले के पूर्वाग्रह, ज्ञान, प्रात्यक्षिक कौशल तथा ध्यान विस्तार का परिणाम यह हो सकता है कि प्राप्त संदेश की व्याख्या संदेश देने वाले की व्याख्या से भिन्न हो जाए। संचार के मॉडल के विभिन्न तत्वों में यह क्षमता होती है कि वे संदेश को विकृत कर दें। प्रभावशाली संप्रेषण की कुछ प्रमुख बाधाएँ निम्नलिखित हैं:

कमजोर संप्रेषण कौशल : जब संदेश देनेवाला व्यक्ति शाब्दिक अथवा लिखित रूप से संदेश देने में अक्षम होता है, आवश्यक सूचना नहीं दे पाता है, तो असत्य या अपर्याप्त सूचना संप्रेषित हो जाती है।

विविध भाषिक संकेत : जब वक्ता एक ही विचार के लिए कई भाषा संकेतों का उपयोग करता है। ऐसा तब घटित होता है जब संप्रेषण करने वाले व्यक्ति को दो या दो से अधिक भाषाएँ आती हैं।

भाषा एवं प्रयुक्त शब्द : व्यक्ति एक ही भाषा का उपयोग करते हुए भी एक ही शब्द का कई अर्थों के लिए उपयोग कर सकता है। शब्द, अभिव्यक्तियाँ अथवा क्षेत्रीय बोली के शब्द या लय भिन्न-भिन्न लोगों के लिए अलग-अलग अर्थ रख सकते हैं। उदाहरण के लिए, 'तेज' शब्द का विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थ हो सकता है। इसका अर्थ अच्छी गति से हो सकता है अथवा ऐसे

व्यक्ति से हो सकता है जो बहुत चालाक एवं छलयुक्त हो। आयु, शिक्षा तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी व्यक्ति की भाषा तथा शब्दों के अर्थ को प्रभावित करते हैं।

ध्यान तथा व्यस्तता : यदि संदेश प्राप्त करने वाला व्यक्ति ध्यान न दे अथवा पहले से किसी कार्य में व्यस्त हो तो संदेश की विषय-वस्तु ठीक से नहीं समझ सकेगा। आप विद्यार्थी हैं और आपने अपनी कक्षा में देखा होगा, कि जब शिक्षक पढ़ा रहा हो और आप ध्यान न दें अथवा किसी दूसरे काम में व्यस्त हों तो पढ़ाई गई बात आप नहीं समझ पाए होंगे। श्रोता कितना ध्यानमग्न या तल्लीन हो कर जो कहा जा रहा है, उसको सुनता है तथा उसका अर्थ समझने की योग्यता इस बात को प्रभावित करेगी कि वह क्या सुनता है।

संचार के बारे में चिंता : संप्रेषण इस बात से भी प्रभावित होता है कि कोई व्यक्ति किसी समूह के समक्ष बोलने में चिंतित है अथवा नहीं।

सूचना का भार : यदि संदेश प्राप्त करने वाले व्यक्ति को बहुत सारी सूचनाएँ दी जाती हैं, तो बहुत-सी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ खो जाती हैं, यदि उन्हें दुहराया न जाए, उसे किसी रूप में उजागर न किया जाए अथवा विशेष रूप से बल न दिया जाए।

संप्रेषक का अविश्वास : जब संप्रेषण करने वाले व्यक्ति एवं इसको ग्रहण करने वाले व्यक्ति के बीच अविश्वास होता है अथवा आक्रोश की स्थिति होती है तो संदेश भी अविश्वसनीय हो जाता है।

सांवेगिक अवस्था : संप्रेषण करने वाले एवं इसको ग्रहण करने वाले व्यक्ति की सांवेगिक स्थिति संदेश भेजते समय संदेश के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। सांवेगिक स्थिति में वे ठीक से सुन नहीं सकेंगे अथवा वस्तुनिष्ठ ढंग से प्रतिक्रिया नहीं दे सकेंगे, रक्षात्मक हो जाएंगे अथवा कुछ भयातुर दिखाई देंगे। यदि अतिशय संवेग की स्थिति होगी, जैसे प्रफुल्लित रहने अथवा अवसाद की स्थिति, तो इससे प्रभावशाली संप्रेषण की प्रक्रिया बाधित होगी।

भौतिक परिवेश : संप्रेषण की गुणवत्ता कोलाहल, अति भीड़, बहुत गर्मी अथवा अत्यधिक ठंड जैसे कारकों से भी प्रभावित होती है।

क्रियाकलाप 10.5

संचार की बाधाओं को समझना

- *एक दिन अध्यापकों एवं विद्यार्थियों द्वारा गलत समझे गए संदेशों की सूची बनाइए। इनका संप्रेषण के बाधकों को ध्यान में रखते हुए वर्गीकरण कीजिए।*
- *कक्षा में छात्रों के छोटे-छोटे समूह बनाइए। तीन-चार दिन तक उन बातों की सूची बनाइए, जहाँ संप्रेषण करने वाले अथवा ग्रहण करने वाले व्यक्तियों को उनको संप्रेषित करने में कठिनाई या समस्या पैदा हुई है।*

क्रियाकलाप 10.6

दैनिक जीवन में संप्रेषण कौशल का अभ्यास

प्रभावशाली ढंग से संप्रेषण करने का अभ्यास करने के लिए एक छोटा समूह बनाइए एवं उनके समक्ष छोटी-सी प्रस्तुति कीजिए– अपनी बात कहिए, तथा अपने समूह के सदस्यों से फीडबैक प्राप्त कीजिए।

आपने अब तक पढ़ा

आपने अभी देखा कि दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच हो रहा संप्रेषण कई बाधकों से प्रभावित हो सकता है; जैसे – कमजोर संप्रेषण कौशल, ध्यान न दे पाना, विविध भाषिक संकेतों का उपयोग, सूचनाओं का बोझ, संप्रेषणकर्ता की अविश्वसनीयता अथवा बहुत बड़ी भीड़ अथवा बहुत अधिक गर्मी या ठंड। ध्यान देने एवं प्रत्यक्षीकरण की तत्परता, प्रभावशाली संप्रेषण की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं। प्रभावशाली ढंग से संप्रेषण करने के लिए आपको उस व्यक्ति को जानना चाहिए जिसके साथ संप्रेषण की क्रिया की जानी है, उपयुक्त संदेश की तैयारी रखिए, संदेश देने के लिए विभिन्न तरीके अपनाइए तथा फीडबैक लेते रहिए।

प्रमुख तकनीकी शब्द

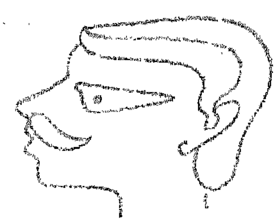
अस्पष्ट वाक्य, द्विभाषिकता, गहन संरचना, प्रतिध्वन्यात्मकता, पृष्ठपूर्ति, व्याकरण, अर्धगोलार्ध, एकशब्दी वाक्य, मातृभाषा, स्वनिम, तीव्र चक्षुगति, शब्दार्थता, सतही संरचना, प्रतीक, पर्याय, भाषा-नियम, टेलीग्राफ वाला संप्रेषण, जिह्वा के फिसलने का दोष, शब्द-विनिमय त्रुटि, शब्द संप्रभुता प्रभाव।

सारांश

- भाषा मनुष्य की खास विशेषता है। इसमें प्रतीक होते हैं तथा इसकी सहायता से व्यक्ति अपनी रुझान, अभिप्रेरणाओं, इच्छाओं आदि का मनुष्यों के साथ संप्रेषण करता है। भाषा को उच्च सृजनात्मक प्रक्रिया माना जाता है और बहुत हद तक यह परिपक्वता द्वारा निर्धारित होती है।
- भाषा में स्वनिम, रूपग्राम, व्याकरण (नियम) तथा अर्थ संदर्भ सम्मिलित होते हैं। स्वनिम प्राथमिक ध्वनियाँ होती हैं। रूपग्राम शब्द का सबसे छोटा तत्व होता है तथा हम जो कुछ कहते हैं अथवा सुनते हैं, उसको अर्थ प्रदान करता है। शब्दों को वाक्यांशों अथवा वाक्यों में जोड़ने के नियम को व्याकरण कहते हैं। बहुधा बच्चे टेलीग्राफवाली भाषा का उपयोग करते हैं, जहाँ वे कम ही शब्दों द्वारा कई बातों को शब्दों के रूप में दूसरों तक संप्रेषित करते हैं। अर्थ का संबंध शब्दों या वाक्यों के अर्थ से है। बोलते अथवा लिखते समय संदर्भ का ध्यान रखने को संदर्भबोध कहते हैं।
- भाषा सीखने के बारे में दो सिद्धांतों की चर्चा की गई है। स्किनर, भाषा की व्याख्या पुनर्बलन के आधार पर करते हैं। दूसरी तरफ, चाम्स्की का मत है कि भाषा अर्जन जन्मजात होता है। उन्होंने रूपान्तरण व्याकरण की चर्चा की है।
- भाषा की सतही एवं गहन संरचनाएँ होती हैं। सतही संरचना का संबंध वाक्यों में शब्दों की व्यवस्था से होता है। दूसरी तरफ, गहन संरचना का संबंध वाक्य के अर्थ से होता है। ऐसी मान्यता है कि भाषा विकास की एक क्रांतिक अवस्था होती है।
- भाषा ग्रहण करने का संबंध पढ़ने एवं सुनने के कौशल से होता है। भाषा उत्पादन का तात्पर्य लिखने एवं बोलने से होता है। सुनना एक अधिक जटिल प्रक्रम है, जिसमें श्रोता की सक्रिय भूमिका होती है तथा वह वक्ता की भावनाओं का पहले ही अनुमान लगा लेता है।
- पढ़ने में तीव्र चक्षुगति, आँख का नियत होना तथा प्रात्यक्षिक विस्तार आते हैं। शब्दों की पहचान अक्षरों की पहचान तथा संदर्भ पर निर्भर करती है।
- वाक् एक जटिल क्रिया है, जो छंदशास्त्रीय संकेतों द्वारा पहचानी जाती है। यह श्रोता को वक्ता की बात समझने में सहायता करते हैं। वाक् पहचान विभिन्न प्रकार की त्रुटियों द्वारा भी होती है। इनमें प्रधान त्रुटि 'जीभ के फिसलन' का गोचर होती है।
- लेखन में योजना, वाक्य रचना तथा पुनर्पाठ प्रक्रियाएँ आती हैं। बोलना एवं लिखना एक-दूसरे से संबंधित हैं। क्षतिग्रस्त मस्तिष्क के लोगों के अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि लिखने एवं वाक् प्रस्तुति में अनेक प्रक्रियाएँ समाहित होती हैं।
- संचार या संप्रेषण में सूचनाओं, विचारों तथा भावनाओं का आदान-प्रदान होता है। यह कार्य बोलने-लिखने अथवा चिह्नों के माध्यम से संपन्न होता है।
- संप्रेषण वाचिक, शाब्दिक अथवा अवाचिक हो सकता है। आप चेतन रूप से अनुभव करें अथवा न करें, लेकिन आप जब भी कोई हाव-भाव व्यक्त करते हैं अथवा किसी व्यक्ति को देखते हैं तो आप प्रतिक्षण संप्रेषण कर रहे होते हैं। लोग जो अपने शरीर से व्यवहार करते हैं – गति करते हैं (कभी-कभी नहीं भी करते हैं) तो आप उनके द्वारा भी अनेक प्रकार के संदेशों का संप्रेषण करते हैं।
- संप्रेषण प्रक्रिया के मुख्य कारकों में संदेश भेजने वाले, संदेश, चैनल, संदेश प्राप्त करने वाले तथा उस समय का परिवेश आदि प्रमुख हैं।
- संप्रेषण या संचार ऊर्ध्वाधर अथवा समानांतर हो सकता है, जो औपचारिक अथवा अनौपचारिक माध्यमों द्वारा हो सकता है।
- संप्रेषण वातावरण के अवरोधकों अथवा अवरोधों द्वारा प्रभावित होता है।

समीक्षात्मक प्रश्न

1. भाषा की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
2. भाषा के अर्थगत नियम क्या हैं?
3. भाषिक सार्वभौम क्या होते हैं?
4. भाषिक दक्षता, भाषिक निष्पादन से कैसे भिन्न होती है?
5. भाषा अर्जन पर्यावरणीय एवं जन्मजात रूप में प्रस्तुत करने वाले सिद्धांत से कैसे भिन्न है?
6. भाषा को चिंतन से किस-किस तरह संबंधित किया गया है?
7. संचार किसे कहते हैं?
8. संचार प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
9. संचार के अवरोधक कौन-से हैं?
10. संचार के विविध प्रकार क्या हैं? प्रत्येक प्रकार का उदाहरण दीजिए।
11. प्रभावशाली संचार के लिए कौन-सी बातें आवश्यक होती हैं?



11 अभिप्रेरणा तथा संवेग

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

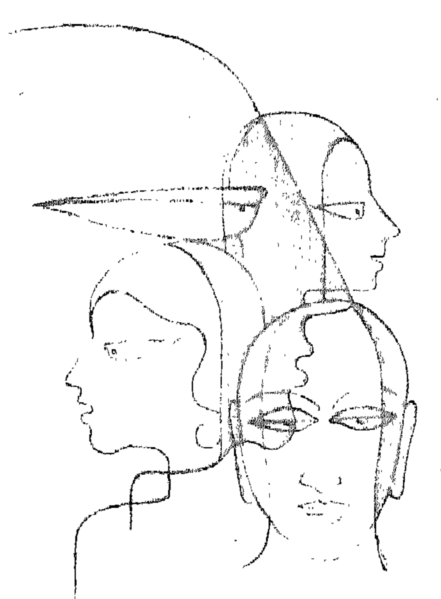
- अभिप्रेरणा के अध्ययन में प्रयुक्त आधारभूत संप्रत्यय
- अभिप्रेरणा के मनोविज्ञान में हो रहे समकालीन विकास
- कुंठा, द्वंद्व तथा चिंता का स्वरूप
- संवेगात्मक अनुभवों के विभिन्न पहलू
- संवेगात्मक दक्षता

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव अभिप्रेरणा के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरकों के स्वरूप तथा प्रकार्य को जान सकेंगे,
- कुंठा, द्वंद्व तथा चिंता के बीच अंतर कर सकेंगे,
- संवेगात्मक अनुभव तथा इसके अभिप्रेरणा के साथ उसका संबंध बता सकेंगे,
- सांवेगिक दक्षता पाने के लिए आवश्यक कौशलों को सीख सकेंगे, तथा
- संस्कृति तथा संवेग के बीच संबंध को समझ सकेंगे।

परिचय

आपका ध्यान इस बात पर अवश्य गया होगा कि सभी जीवित प्राणी, चाहे वे पशु हों या मनुष्य, सर्वदा सक्रिय रहते हैं। इस तथ्य का महत्त्व समझने के लिए आपको अपने चारों ओर नजर दौड़ानी होगी। आप यह पाएंगे कि सभी प्राणी किसी न किसी कार्य में व्यस्त हैं। आप यह भी देखेंगे कि वे केवल सक्रिय नहीं हैं वरन् उनकी क्रियाशीलता कुछ निश्चित लक्ष्यों की ओर उन्मुख रहती है। लोग अपने लक्ष्यों का चुनाव करते हैं तथा उनके पीछे गंभीरता से लगे रहते हैं। वे तरह-तरह के काम करने की योजना बनाते हैं तथा उन्हें लागू करते हैं। आप अपने मित्रों की गतिविधियों पर यदि दृष्टिपात करें तो पाएंगे कि केवल अलग-अलग लोग एक ही स्थिति में भिन्न-भिन्न व्यवहार ही नहीं करते, अपितु एक ही व्यक्ति भिन्न अवसरों पर भिन्न व्यवहार करता है। ऐसा लगता है कि मानव व्यवहार में विविधता एक नियम है। मनोवैज्ञानिक तथा सामान्य व्यक्ति भी इन व्यवहारों की विविधता के कारणों को जानने में समान ढंग से रुचि लेते हैं। वे यह जानने को उत्सुक होते हैं कि क्यों कुछ विद्यार्थी विद्यालय में अच्छा अंक प्राप्त करते हैं और कुछ अन्य उसी बुद्धि स्तर के होते हुए भी अनुत्तीर्ण हो जाते हैं? कुछ लोग दूसरों की तुलना में क्यों कठिन परिश्रम करते हैं? हम वही कार्य क्यों कर पाते हैं, जिन्हें हम सामान्यतया करना चाहते हैं? हमारे व्यवहार को कौन-से तत्व निर्धारित करते हैं? व्यवहार में दिखने वाली विविधता की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने 'अभिप्रेरणा' शब्द का उपयोग किया है। इस अध्याय के द्वारा आपको अभिप्रेरणा तथा संवेग के मूलभूत संप्रत्यों को समझने में सहायता मिलेगी तथा इस क्षेत्र में अधुनातन विकास से आपका परिचय हो सकेगा। आप कुंठा, द्वंद्व तथा चिंता के संप्रत्ययों से भी परिचित हो सकेंगे। अंत में मानव संवेगों तथा अभिप्रेरण से इसके संबंधों के बारे में भी आप जान सकेंगे।



अभिप्रेरणा क्या है?

अभिप्रेरणा एक व्यापक अर्थ वाला सामान्य शब्द है। यह जीवित प्राणियों के *क्रियाकलापों की व्याख्या करने वाले, आरंभिक दिशा को बनाए रखने वाले, तथा उनको संचालित करने वाले संप्रत्ययों* को द्योतित करता है। यह प्राणी को क्रियाशील बनाता है तथा उसकी दिशा सुनिश्चित करता है। यह व्यवहार में दिखने वाली विविधता की व्याख्या करने में सहायक है। क्योंकि प्राणी हमेशा सक्रिय रहता है। विशेष रूप से, व्यवहार का चयन ही प्रमुख प्रश्न है, लक्ष्य के चयन की वरीयता में परिवर्तन के कारण ही प्राणी एक क्रिया के स्थान पर अन्य क्रियाएँ चुनता है। सामान्य रूप से लोग उन लक्ष्यों तक पहुँचते हैं अथवा उन क्रियाओं में संलग्न होते हैं, जिनसे वांछित लक्ष्य की प्राप्ति की प्रत्याशा बढ़ जाती है तथा उन क्रियाओं को अस्वीकार करते हैं, जिनसे ऋणात्मक अथवा विचलनकारी परिणाम मिलते हैं। तथापि बहुत से लोग चुनौतियों को स्वीकार करते हैं, कठिन कार्य करते हैं तथा खतरनाक कार्यों में सुख पाते हैं। आप मानेंगे कि ऐसे व्यक्ति अभिप्रेरणा के विभिन्न प्रकारों तथा स्तरों वाले होते हैं।

अभिप्रेरणा का संप्रत्यय कई उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ, इसका उपयोग जैविक आधार को व्यवहार से संबंधित बताना है। इसके द्वारा व्यक्ति के बाह्य क्रियाकलापों से उसकी व्यक्तिगत आंतरिक स्थितियों का पता लगाना सरल होता है तथा जिन कार्यों को हम करना चाहते हैं, यह उनके उत्तरदायित्व सुनिश्चित करता है। भौतिक विशेषताओं की तरह अभिप्रेरणा प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इसका अनुमान प्रेक्षित होने वाले व्यवहारों से किया जाता है। व्यवहार की वे विशेषताएँ जिनके आधार पर अभिप्रेरणा का अनुमान किया जाता है निम्नलिखित हैं :

1. *किसी क्रिया को प्रारंभ करने की पहल।*
2. *एक कार्य या लक्ष्य के बदले अन्य क्रियाओं अथवा लक्ष्यों की पसंद।*
3. *एक निश्चित लक्ष्य के प्रति, क्रियाओं के संगठित स्वरूप का बने रहना।*
4. *लक्ष्य पाने के लिए की जाने वाली क्रियाओं की शक्ति या तीव्रता।*
5. *अनुक्रियाओं की विशेषताएँ; जैसे – अनुक्रियाकाल, अनुक्रिया की तीव्रता तथा किसी अनुक्रिया का विलोप के प्रति अवरोध।*
6. *स्थिर अभ्यास की दशा में सीखने की उच्च दर।*
7. *प्राणी के निष्पादन का उच्चतम स्तर।*
8. *उपभोग व्यवहार (जैसे – भोजन करना)।*

अभिप्रेरणा मापन की विधियाँ

अभिप्रेरणा का व्यवस्थित रूप से अध्ययन करने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हमारे पास अभिप्रेरणा का कोई मापक हो। तभी यह कहा जा सकेगा कि कौन कम अभिप्रेरित है और कौन अधिक अभिप्रेरित है। अभिप्रेरणा मापन की विधियाँ इस पर निर्भर करती हैं कि किस अभिप्रेरणा का मापन किया जा रहा है। विशेष रूप से जैविक आवश्यकताओं और मनो-सामाजिक आवश्यकताओं के मापन हेतु अलग विधियाँ हैं। अभिप्रेरण के जैविक पक्षों के अध्ययनों में शोधकर्ताओं ने *वंचन, उद्दीपन तथा प्रलोभनों* की विधियों का उपयोग किया है। वंचन के अंतर्गत उद्दीपन को व्यवस्थित रूप से घटा दिया जाता है। उदाहरणार्थ, किसी जानवर को भोजन अथवा पानी से कुछ अवधि के लिए वंचित कर दिया जाता है। अतिरिक्त उद्दीपन देना, अथवा पुरस्कार के उपयोग अथवा अन्य उपायों की सहायता से भी अभिप्रेरित किया जाता है।

मनो-सामाजिक आवश्यकताओं की अध्ययन विधियाँ तीन प्रकार की हैं : (1) व्यवहार के आधार पर अनुमान लगाना, (2) आत्मनिष्ठ प्रतिवेदन का उपयोग, तथा (3) प्रक्षेपी विधियों का उपयोग। इन विधियों को एक-दूसरे के पूरक के रूप में देखना चाहिए। मानव व्यवहार के आधार पर उसकी अभिप्रेरणा के संबंध में लगाया जाने वाला पूर्वानुमान व्यक्ति के क्रियाकलाप की कुछ विशेषताओं पर निर्भर करता है। इसके अंतर्गत कुछ खास वस्तुओं पर ध्यान देना, एक विशिष्ट रूप से चुने हुए व्यवहार को सतत रूप से करते रहना, लक्ष्य पाने के साथ संतुष्टि तथा किसी वस्तु से दूर बने रहने की प्रवृत्ति शामिल है। फिर भी, यह याद रखना चाहिए कि कोई भी अकेला व्यवहार किसी आवश्यकता का स्पष्ट संकेत देने वाला नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः व्यवहार के मानदंडों को यथासंभव दूसरी विधियों से पुष्ट करना चाहिए।

आत्मनिष्ठ रिपोर्ट या *व्यक्तिगत रिपोर्ट* आवश्यकताओं के बारे में प्रश्नों के प्रति अनुक्रियाओं को अभिप्रेरणा का आधार बनाती है। कई तरह की आत्मपरक रेटिंग की मापनियों की सहायता से आवश्यकता की मात्रा का पता लगाया जाता है। परंतु झूठ बोलने या छिपाने के कारण इन मापकों को ज्यों का त्यों नहीं लिया जा सकता।

प्रक्षेपी तकनीकों में प्रतिभागी से अस्पष्ट उद्‌दीपकों के प्रति अनुक्रिया देने के लिए कहा जाता है। इसके पीछे यह सोच है कि व्यक्ति इन उद्‌दीपकों (जैसे – बिना शीर्षक के चित्र, स्याही धब्बे इत्यादि) पर अपने निजी अर्थ आरोपित करेंगे।

मानवीय आवश्यकताएँ

अभिप्रेरणा का अध्ययन मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के आरंभ से ही केंद्रीय विषयवस्तु रहा है। अभिप्रेरणा की जटिल प्रक्रियाओं को समझने में मनोवैज्ञानिकों ने अनेक रूपकों का उपयोग किया है। ऐसे प्रयासों में मनुष्य को भिन्न-भिन्न ढंग से देखा गया है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनुष्य को यंत्र या मशीन के रूप में देखा है। अन्य लोगों ने मनुष्य को सब कुछ जानने वाला भगवान, न्यायाधीश तथा वैज्ञानिक के रूप में ग्रहण किया है। इन विचारों से कई सिद्‌धांतों का जन्म हुआ।

अभिप्रेरणा की आरंभिक व्याख्याएँ **मूल प्रवृत्ति** (Instinct) के विचार पर आधारित थीं। इसकी मान्यता है कि एक प्रजाति के सदस्यों में मूलवृत्तियाँ जन्मजात प्रवृत्तियों के रूप में विद्‌यमान होती हैं, जो उन्हें उनके व्यवहार को निश्चित दिशा में निर्देशित करती हैं। कई जीववैज्ञानिक जीवों के व्यवहार का उनके प्राकृतिक परिवेश में अध्ययन करते हैं। वे यह बताते हैं कि मधुमक्खियाँ भोजन के स्रोत की दिशा मधुमक्खियों को बता देती हैं, पक्षी घोंसला बनाते हैं, तथा मकड़ियाँ अपना जाल बुनती हैं। यह सब ठीक उसी तरह घटित होता है जैसे उनके माता-पिता के समय में होता था। ये सभी व्यवहार मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारों के उदाहरण हैं। ये व्यवहार विशिष्ट किस्म के उद्‌दीपकों के प्रति घटित होते हैं। पर्यावरण के संकेत, जो एक विशिष्ट तरह की प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं, उन्हें **'मोचक'** (Releaser) कहा जाता है। मूल प्रवृत्यात्मक व्यवहारों को **नियत क्रिया संरूप** (Fixed Action Pattern) माना जाता है। *ये जीवनदायी व्यवहार होते हैं तथा अनसीखे और प्रजातिविशिष्ट होते हैं।* इस संदर्भ में **लोरेंज एवं टिनबर्गेन** का कार्य अत्यन्त प्रसिद्‌ध है। मूल प्रवृत्ति का एक प्रसिद्‌ध उदाहरण है – **'इंप्रिंटिंग'** (Imprinting)। हंस के बच्चों द्‌वारा अपनी माता की छाप की तरह रहना अथवा चलने की योग्यता प्राप्त करते ही उसके पीछे-पीछे चलना इंप्रिंटिंग है।

मैक्डूगल (1908) ने मूल प्रवृत्ति शब्द का उपयोग जन्मजात विशेषता के अर्थ में किया है। इस विशेषता के तीन अवयव होते हैं : ऊर्जा देना, कार्य तथा लक्ष्योन्मुखता। मानवीय मूल प्रवृत्तियों की उनकी सूची में उत्सुकता, पुनरुत्पादन, अर्जन, माता-पिता की भूमिका में देखभाल करना, अनाकर्षण, आत्म-स्थापना, पलायन, युयुत्सा, आत्मावमानन आते हैं। मानव व्यवहार की व्याख्या के रूप में मूल प्रवृत्ति की अवधारणा अब अस्वीकृत की जा चुकी है। अब अधिकांश मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि मानव व्यवहार आनुवंशिक तथा परिवेश के कारकों की अन्तःक्रिया का परिणाम है।

अब मनोवैज्ञानिक व्यवहार की अभिप्रेरणात्मक विशेषताओं के वर्णन के लिए **आवश्यकता** के संप्रत्यय का उपयोग करते हैं। *आवश्यकता का तात्पर्य आवश्यक तत्वों में कमी होना या उनका अभाव है।* आवश्यकता की स्थिति से अंतर्नोद (Drive) पैदा होता है। अंतर्नोद तनाव की एक स्थिति अथवा आवश्यकताओं द्‌वारा उत्पन्न उद्‌वेलन होता है। यह अवस्था यादृच्छिक क्रियाओं को ऊर्जा प्रदान करती है। जब यादृच्छिक क्रियाओं में से कोई एक क्रिया लक्ष्य तक पहुँचा देती है, तो तनाव कम हो जाता है और प्राणी क्रियाशील नहीं रह पाता है। प्राणी संतुलन की अवस्था में वापिस आ जाता है। इस प्रकार निम्न प्रकार का क्रम बनता है :

आवश्यकता → अंतर्नोद → लक्ष्य निर्देशित व्यवहार → लक्ष्य की प्राप्ति अथवा उपलब्धि → अंतर्नोद में कमी

अंतर्नोद जैविकीय कारकों से उद्‌दीप्त होता है, परंतु जो व्यवहार इसकी मात्रा को कम करते हैं वे अर्जित हो सकते हैं। इसमें संतुलन को बनाए रखना मुख्य सरोकार है। तीव्र आंतरिक तथा बाह्य उद्‌दीपकों से भी अंतर्नोद उत्पन्न किया जा सकता है। प्राथमिक अंतर्नोद के अतिरिक्त, जो सीखने पर नहीं आश्रित होते हैं, कुछ *द्‌वितीयक अंतर्नोद* भी होते हैं। तटस्थ उद्‌दीपक किसी सशक्त अंतर्नोद के साथ रहकर अभिप्रेरणा की विशेषताओं को अर्जित कर लेते हैं। अनुबंधन द्‌वारा सीखे गए अंतर्नोदों को **अर्जित अंतर्नोद** (Acquired Drives) कहा जाता है।

भय अर्जित अंतर्नोद का एक उत्तम उदाहरण है। यह प्राणी की विकर्षक अवस्था होती है और उन उद्दीपकों द्वारा उद्वेलित होती है, जिनसे भविष्य में होने वाली किसी खतरनाक घटना का संकेत मिलता है। यह भी पाया गया है कि प्राणी को बाह्य उद्दीपकों द्वारा ऊर्जावान किया जा सकता है। वे हमें आकर्षित अथवा विकर्षित कर सकते हैं। जैविक आवश्यकताओं के अतिरिक्त मनुष्यों में मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक आवश्यकताएँ भी हैं। हम सामर्थ्य, सम्मान और प्यार को पाने के लिए भी प्रेरित होते हैं। हम दूसरे महत्त्वपूर्ण लोगों से अनुमोदन और स्वीकृति भी पाना चाहते हैं। वस्तुतः ये मनो-सामाजिक आवश्यकताएँ मनुष्यों को पशुओं से अलग करती हैं। विभिन्न क्षेत्रों में मनुष्य की उपलब्धियाँ मानव व्यवहार के संचालन में आवश्यकता के केंद्रीय महत्त्व को बताती हैं।

अभिप्रेरणा के अध्ययन के दो प्रमुख पहलू हैं। एक पहलू व्यवहार के लक्ष्योन्मुखी स्वरूप पर बल देता है। दूसरा पहलू आंतरिक कारकों; जैसे – भूख तथा पीड़ा के प्रति शारीरिक प्रतिक्रियाओं को महत्त्वपूर्ण मानता है। प्रथम पहलू को उद्देश्यमूलक तथा द्वितीय को संचालनमूलक भी कहा जाता है। रोचक बात यह है कि दोनों पहलुओं में आवश्यकता का तत्व शामिल है। एक का संबंध जीवन को खतरे में डालने वाले अभावों या अतिशय (जैसे – भूख तथा प्यास) से है। इसके विपरीत दूसरे पहलू में सामाजिक आवश्यकताएँ (उपलब्धि, संबद्धता, शक्ति आदि) आती हैं। अगर ये आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती हैं तो इनसे मृत्यु नहीं होती है। फिर भी ये आवश्यकताएँ शक्तिशाली हो सकती हैं और व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन में निर्णायक भूमिका अदा करती हैं। कारण यह है कि पशुओं की ही तरह जैविक आवश्यकताएँ रखने पर भी मनुष्य सामाजिक-सांस्कृतिक प्राणी भी है। इसके फलस्वरूप मुक्त होकर मनुष्य अधिक सृजनात्मक हो पाता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उच्च उपलब्धियाँ कर पाता है।

हमारा अधिकांश व्यवहार सुखद परिणामों को पाने की दिशा में उन्मुख रहता है। जब आप भूखा महसूस करते हैं तो आप भोज्य पदार्थ खाना चाहते हैं। भूखे होने पर भोजन करना और प्यासे होने पर पानी पीना आपको संतुष्टि प्रदान करता है। भूख, प्यास आदि जैविक या प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं, क्योंकि वे व्यक्ति के जीवित रहने से जुड़ी हैं। अध्याय के इस खंड में आप तीन मूलभूत आवश्यकताओं – भूख, प्यास तथा यौन (या कामेच्छा) के बारे में पढ़ेंगे। इन प्राथमिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ द्वितीयक या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी हैं, जो लोगों के क्रियाकलाप को प्रभावित करती हैं। इन आवश्यकताओं को **प्रेरक** (Motive) भी कहा जाता है। इनका विकास समाजीकरण के संदर्भ में होता है। माता-पिता, परिवार के मित्रों, संचार माध्यम तथा संस्कृति के अन्य अवयव हमारी आवश्यकताओं को गढ़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। आप इस खंड में तीन मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं या प्रेरकों – उपलब्धि, संबद्धन तथा सामर्थ्य के बारे में भी पढ़ेंगे।

जैविक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ

भूख

भारतीय चिंतन में भोजन को भगवान (अन्नम् ब्रह्म) कहा गया है तथा भूखे आदमी की सबसे बड़ी चिंता यही रहती है कि येन केन प्रकारेण भोजन मिले और भूख मिटाई जाए। इससे भूख, भोजन तथा भोजन कराने का महत्त्व प्रकट होता है। पौष्टिक भोजन शरीर तथा मस्तिष्क के विकास और वृद्धि के लिए आवश्यक है। साथ ही यह भी याद रखना चाहिए कि भूख एक प्रमुख अभिप्रेरक का भी कार्य करती है। जब किसी को भूख लगती है तो यह सभी अन्य बातों से महत्त्वपूर्ण हो जाती है। भूख लोगों को भोजन प्राप्त करने तथा उसे उपभोग के लिए अभिप्रेरित करती है।

अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि शरीर के अंदर तथा बाहर बहुत-सी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जो भूख को बढ़ाने तथा घटाने का काम करती हैं। भूख के उद्दीपकों में आमाशय आकुंचन, जो आमाशय के खाली होने की अवस्था को बताता है, रक्त में ग्लूकोज (शर्करा) के निम्न स्तर पर पहुँचने, प्रोटीन के स्तर तथा शरीर में स्टार्च की कम मात्रा के संचय सम्मिलित हैं। मस्तिष्क में स्नायु प्रवाह को भेजकर यकृत भोजन के अभाव की वस्तुस्थिति का संदेश देता है। भोजन का स्वाद, गंध अथवा दिखाई देने मात्र से भी खाने की इच्छा पैदा हो जाती है। इनमें से कोई एक अकेला आपको भूखे होने की अनुभूति नहीं कराता है। बाह्य कारकों के साथ मिलकर ही ये चीजें आपको बताती हैं कि आप भूखे हैं। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि किसी खाद्य विशेष से वंचित होने पर उसी खाद्य पदार्थ को खाने की ललक बढ़ जाती है। उदाहरण के लिए, जब डॉक्टर आपको मीठी चीज खाने से मना कर देता है तो कुछ ही दिनों बाद मिठाई खाने की

इच्छा प्रबल हो उठती है। इसे **विशिष्ट भूख** (Specific hunger) कहा जाता है। इस बात की जानकारी तब होती है जब हम देखते हैं कि प्राणी में जिस चीज का अभाव होता है उसी चीज से युक्त भोज्य पदार्थों को वह खोजता और खाता है। जिन चीजों की विशिष्ट भूख की जानकारी है उनमें सोडियम, कैल्शियम तथा कुछ विटामिन; जैसे – वसा, प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट प्रमुख हैं।

इस तरह, यह कहा जा सकता है कि भोजन ग्रहण करने की मात्रा का नियमन एक भोजन ग्राही तथा परितृप्ति की जटिल व्यवस्था द्वारा होता है जो हमारे हाइपोथैलेमस, यकृत तथा शरीर के अन्य भागों में स्थित है। इनमें ऐसे संकेत देने वाले संसूचक होते हैं, जो रक्त में अनेक प्रकार के पोषकों की मात्रा में होने वाले परिवर्तनों की सूचना देते हैं। **सेट बिंदु** (Set Point) सिद्धांत के अनुसार, हमारा शरीर वसा की एक आवश्यक क्रांतिक मात्रा बनाए रखता है, जिसे सेट बिंदु कहते हैं। ज्यों ही हम इस सेट बिंदु से कम या अधिक होते हैं, तो इसके प्रति शरीर की प्रक्रियाएँ क्रियाशील हो जाती हैं। आपका व्यक्तिगत सेट बिंदु आपका वह भार होता है जब आप विशेष रूप से अपना भार कम या अधिक करने का प्रयास नहीं कर रहे होते हैं। जब आपका शारीरिक भार इस सेट बिंदु से कम होता है तो आपको भूख लगती है। यह सेट बिंदु अंशतः आनुवंशिक कारकों पर निर्भर रहता है और अंशतः इस पर निर्भर करता है कि जीवन के प्रारंभिक वर्षों में आपका खान-पान कैसा रहा है। प्रायः सांस्कृतिक परिदृश्य यह निर्धारित करता है कि आप क्या, कब और कितनी मात्रा में भोजन करेंगे। वास्तव में विभिन्न खाद्य-सामग्रियाँ आपमें भोजन के प्रति ललक अथवा जुगुप्सा या **उबकाई** (Nausea) उत्पन्न करती हैं। इससे स्पष्ट है कि भूख मूलतः जैविक होती है तथा इसमें सांस्कृतिक संदर्भों, व्यक्तिगत अनुभवों तथा संज्ञानात्मक कारकों के कारण बदलाव आता रहता है।

प्यास

व्यक्ति बिना भोजन के तो कुछ हफ्ते रह भी सकता है, किंतु बिना पानी के वह कुछ ही घंटों में प्राण त्याग देगा। शरीर का जल वाष्प, पसीने, सांस और मूत्र के रूप में बाहर निकल कर जल्दी ही समाप्त हो जाएगा। शरीर में पर्याप्त पानी नहीं होने की स्थिति में शरीर की तंत्रिकाएँ निर्जीव हो जाएँगी।

कामेच्छा

मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों में लैंगिक क्रियाओं में शामिल होने की प्रेरणा है। यह अन्य जैविक अभिप्रेरकों से भिन्न होता है। उदाहरणार्थ, भूख तथा प्यास की तरह कामक्रियाएँ जीवित रहने के लिए आवश्यक नहीं हैं। काम के अंतर्नोद से तनाव या उद्वेलन उत्पन्न होता है। किसी तरह की साम्यावस्था की प्राप्ति कामेच्छा से जुड़ी क्रियाओं का लक्ष्य नहीं होता है। काम का अंतर्नोद आयु में वृद्धि के साथ विकसित होता है। यह जैविक और अर्जित कारकों की अंतःक्रिया का परिणाम होता है। मनुष्यों में यह अंतर्नोद यौवनारंभ के शुरू में घटित होता है। आपने इस पुस्तक के अध्याय 3 में देखा कि कामग्रंथियाँ अथवा जननग्रंथियाँ हारमोन पैदा करती हैं (*पुरुषों में एंड्रोजेन एवं स्त्रियों में इस्ट्रोजेन*) जो काम व्यवहार को सक्रिय करते हैं। मनुष्यों में काम व्यवहार केवल जैविक क्रिया न होकर एक सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारकों से नियंत्रित व्यवहार है।

काम व्यवहार से संबंधित अनेक मामलों में संस्कृतियाँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। किस आयु में काम व्यवहार होना चाहिए, इसके घटित होने की क्या आवृत्ति होनी चाहिए, आकर्षण की कसौटी, कामक्रिया से जुड़े कृत्य, काम व्यवहार की पसंद, समय तथा परिस्थिति, किस प्रकार के व्यक्तियों के साथ कामक्रिया उपयुक्त रहेगी आदि का निर्धारण संस्कृति द्वारा किया जाता है।

व्यक्ति अपनी संस्कृति विशेष में कामक्रिया के विषय में सोचने तथा प्रतिक्रिया व्यक्त करने के तरीके को सीखता है। इन सब बातों को मिलाकर इसे **कामपरक स्क्रिप्ट** (Sexual Script) कहा जाता है, जिससे कब, कहाँ, कैसे, किसके साथ तथा कोई व्यक्ति कामक्रिया में क्यों शामिल होगा, इसकी जानकारी मिलती है। इन अध्ययनों में प्रत्याशाएँ, प्रतिमान तथा व्यवहार के अनुक्रम शामिल होते हैं। भारतवर्ष में कामभावना को एक पुरुषार्थ माना गया है तथा कामभावना के अध्ययन में वात्स्यायन द्वारा रचित *कामसूत्र* प्रथम व्यवस्थित तथा प्राचीनतम ग्रंथ है।

कामभावना अभिप्रेरणा का एक स्रोत है तथा साहित्यिक कृतियों में महत्त्वपूर्ण विषय है। अश्लील पाठ्य सामग्री, वेश्यावृत्ति, जन्म नियंत्रण के उत्पाद तथा कामपरक विज्ञापन आधुनिक जीवन के प्रमुख मुद्दे बन गए हैं। कामेच्छा इतनी शक्तिशाली होती है कि कोई भी उद्दीपक जो कामोत्तेजना के साथ जुड़ जाता है, वह अर्जित अभिप्रेरक का स्थान ले लेता है जबकि अन्य उद्दीपक, जो कामभावना की अभिव्यक्ति से संबंधित होते हैं, अनुबंधित पुनर्बलक हो जाते हैं। इसका उपयोग प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है।

क्रियाकलाप 11.1

आप उन आवश्यकताओं के बारे में सोचिए जो आपको प्रभावित करती हैं?

कौन-सी आवश्यकताएँ प्रबल हैं?

किन आवश्यकताओं को पूरा करने में आपकी सर्वाधिक ऊर्जा लगती है?

किया। **मैक्लीलैंड** ने विभिन्न समाजों में उपलब्धि की आवश्यकता के तथा आर्थिक विकास के बीच संबंध जानने का प्रयास किया तथा इसे बढ़ाने की दशाओं को पहचाना। उपलब्धि अभिप्रेरणा की मात्रा में वैयक्तिक भिन्नता उच्च शैक्षिक निष्पादन क्रियाकलापों तथा व्यापार में सफलता के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ी है। उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले व्यक्ति मध्यम कठिनाई के कार्य चुनते हैं।

बाक्स 11.1 **दैहिक प्रक्रियाएँ : हाइपोथैलेमस तथा अभिप्रेरणा**

*हाइपोथैलेमस **मस्तिष्क स्तंभ** (Brain stem) के सबसे ऊपर स्थित उपवल्कुटीय तंत्र का एक अंग होता है (अध्याय 3 में देखिए)। यह स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की अधिकाधिक क्रियाओं का नियंत्रण करता है तथा जीवन के लिए आवश्यक गतिविधियों; जैसे – कामभावना तथा भोजन आदि का संयोजन करता है। यह हमारे शरीर की स्थिति, इसके **द्रव स्तर** (Fluid level) की निरंतर देखरेख करता है। यह ज्ञात हुआ है कि हाइपोथैलेमस के पार्श्व भाग की स्नायविक क्रिया से भोजन व्यवहार उद्दीप्त होता है तथा इसका पश्च-मध्य भाग भोजन व्यवहार को बाधित करता है। प्रायोगिक रूप से देखा गया है कि इलेक्ट्रोड की सहायता से उद्दीपन बंद कर देने या इस भाग को नष्ट कर देने पर प्राणी भोजन की आत्मबुभुक्षा (भूखे रहने) की स्थिति तक पहुँच जाता है। ठीक इसके विपरीत पार्श्व-मध्य भाग का कार्य होता है। पार्श्व हाइपोथैलेमस को क्षति पहुँचाने से जानवरों में परिवर्तन साफ दीखता है। हाइपोथैलेमस का **पूर्व चाक्षुष** (Preoptic) **क्षेत्र** शारीरिक तापमान का संचालन करता है तथा साम्यावस्था संबंधी व्यवस्था को क्रियाशील बनाता है। अनेक जानवरों के मस्तिष्क के विद्युतीय उद्दीपन उनके लिए पुरस्कारस्वरूप होते हैं, विशेषकर उन स्नायुकोशों में जिनमें डोपामाइन तंत्रिकीय संप्रेषक का कार्य करता है।*

प्रमुख मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक

उपलब्धि अभिप्रेरक

उपलब्धि अभिप्रेरक का तात्पर्य उत्कृष्टता के मानकों को पा लेने की इच्छा से है। उपलब्धि की आवश्यकता व्यवहार को ऊर्जा देती है, उसे दिशा प्रदान करती है तथा परिस्थितियों के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करती है। यह जैविकीय तत्व पर आधारित नहीं है, परंतु मानव व्यवहार पर इसका गहरा प्रभाव होता है। लोग इस आवश्यकता की मात्रा में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इसका मापन **थिमेटिक अपर्सेप्शन टेस्ट** (टी.ए.टी.) द्वारा किया जाता है। इस परीक्षण में अस्पष्ट अथवा बहुअर्थी चित्र को देखकर कहानी लिखने को कहा जाता है। इन चित्रों के आधार पर लिखी गई कहानियों की गणना उपलब्धि की प्रतिमाओं तथा कल्पना के लिए की जाती है। ये कहानियाँ व्यक्ति की अभिप्रेरणा का प्रक्षेपण करती हैं। **मैक्लीलैंड** (1961) तथा अन्य शोधकर्ताओं द्वारा किए गए आरंभिक अध्ययनों के आधार पर **एटकिंसन** ने सिद्धांत प्रतिपादित

ये लोग भविष्योन्मुखी होते हैं तथा अपने कार्यों में सतत संलग्न रहते हैं। ये लोग निरंतर सामाजिक स्थिति में ऊपर उठने का प्रयास करते हैं। मैक्लीलैंड ने पाया कि सामान्यतया प्रोटेस्टेंट देश, जहाँ स्वातंत्र्य तथा उपलब्धि को मूल्यवान माना जाता है, आर्थिक रूप से अधिक विकसित हैं। अभिभावक अपने बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने तथा अधिक स्वायत्तता देने के लिए प्रशिक्षण देते हैं। कुछ शोधकर्ताओं ने यह पाया कि महिलाएँ सफलता के भय का अनुभव करती हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि सफलता की ललक से उनका महत्त्व दूसरों की दृष्टि में घट जाता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक बचपन में अर्जित किया जाता है, जब बच्चों के सामाजिक विकास की नींव पड़ती है, वे अपने अभिभावकों से तथा अन्य भूमिका मॉडलों से सीखते हैं। सामाजिक प्रभावों से उनमें यह मूल्य विकसित होता है कि उन्हें अच्छी उपलब्धि प्राप्त करनी चाहिए तथा समाज में एक अच्छी जगह तथा सामाजिक पहचान बनानी चाहिए ताकि समाज में उन्हें विशिष्ट दर्जा मिल सके।

क्रियाकलाप 11.2

उपलब्धि के लक्ष्यों का वरण

निम्नलिखित दशाओं में अपने आपको उपस्थित होने की कल्पना कीजिए। आपकी योजना एक खास काम में शामिल होने की है (टेनिस, ताश का खेल तथा शतरंज)। इस क्रिया के लिए आपको अपना प्रतिपक्षी चुनना है (एक ऐसा व्यक्ति, जिसे हराना सरल अथवा कठिन होता है)। नौ आदमियों में से आपको चुनाव करना है। आपको इन्हें एक दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करके देखनी है, इसलिए आप इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि आप उनके साथ कैसा खेल खेलेंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 1 को खेल में 10% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 2 को खेल में 20% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 3 को खेल में 30% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 4 को खेल में 40% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 5 को खेल में 50% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 6 को खेल में 60% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 7 को खेल में 70% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 8 को खेल में 80% अवसरों पर हरा देंगे।

आप सोचते हैं कि आप अपने विपक्षी 9 को खेल में 90% अवसरों पर हरा देंगे।

जीतने तथा हारने की संभावना का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त स्तरों में से कौन-सा स्तर आप चुनेंगे?

संबंधन का अभिप्रेरक

समूह या लोगों का संकलन मानव जीवन का एक प्रमुख पक्ष है। संबद्धता अथवा दूसरों से जुड़ना हमारे जीवन का एक प्रमुख अंग है। मित्र बनाना तथा मित्रता बनाए रखना, लोगों के साथ रहना, सहयोग करना तथा प्रेम करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें सामाजिक संपर्क का अभिप्रेरक संलग्न रहता है। इसे एक प्रवृत्ति भी माना जाता है, जिसके कारण हम सौहार्दपूर्ण संबंधों से परितोष प्राप्त करते हैं तथा हममें भाई-चारे की भावना का संचार होता है। अंतर्वैयक्तिक संपर्कों के चार प्रकार हैं, जिससे हम परितोष प्राप्त करते हैं।

(अ) सकारात्मक उद्दीपन : संबद्धता की योग्यता, जिससे हमें रुचिकर, प्रभावोत्पादक तथा संज्ञानात्मक उद्दीपन मिलता है।

(ब) अवधान : दूसरों की प्रशंसा कर तथा उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर अपने आत्मसम्मान और महत्त्व को बढ़ाने की क्षमता।

(स) सामाजिक तुलना : अपने बारे में सूचनाओं को प्राप्त कर स्पष्टता को कम करने की क्षमता, तथा

(द) सांवेगिक समर्थन या सहानुभूति।

संबद्धता की आवश्यकता का मापन उसी विधि (टी.ए.टी) द्वारा किया जाता है, जिससे उपलब्धि आवश्यकता का मापन किया जाता है। उपयुक्त चित्रों के लिए प्रयोज्य काल्पनिक कहानियाँ लिखता है, जिनकी संबद्धता के विचारों के लिए गणना की जाती है। संबद्धता की आशा तथा तिरस्कृत होने का भय, इन दोनों को संबद्धता के दो महत्त्वपूर्ण कारक माना जाता है। ऐसा देखा गया है कि जिन लोगों में मध्यम स्तर की संबद्धता की आवश्यकता होती है, वे अच्छे प्रबंधक साबित होते हैं। संबद्धता के कारणों में जैविक लगाव, भय में कमी, सहायता, उत्तेजना, सूचना तथा आत्म-मूल्यांकन प्रमुख हैं।

सामर्थ्य अभिप्रेरक

वर्तमान जीवन में सामर्थ्य एक प्रमुख सरोकार बन चला है। कौन अपना प्रभुत्व स्थापित कर रहा है, यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है? परिवार, समुदाय, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर हर जगह सामर्थ्य की लड़ाई दिखाई देती है। *सामर्थ्य अभिप्रेरक परिस्थितियों पर नियंत्रण की इच्छा, पद तथा प्रतिष्ठा पाने तथा दूसरों को प्रभावित करने की इच्छा को व्यक्त करता है।* जो लोग सामर्थ्य अभिप्रेरक के माप पर उच्च लब्धांक पाते हैं, वे उच्च राजनैतिक लाभ तथा पद के लिए यत्न करते हैं तथा सरकार में उच्च स्थान पाने की कोशिश करते हैं।

इसके लिए वे सामाजिक दबाव बनाते हैं, हेर-फेर करते हैं, और दूसरे लोगों या बड़े समूह के क्रियाकलापों पर नियंत्रण बनाने में कार्यरत रहते हैं। अपने शिखर पर पहुँचकर सामर्थ्य अभिप्रेरक व्यक्ति को अधिनायकवादी व्यवहार करने को बाध्य करता है तथा ऐसी विशेषताओं वाला व्यक्ति दूसरों को अपनी इच्छानुसार नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

सामर्थ्य के लिए टी.ए.टी. पर कहानियों की गणना करते समय ऐसे कार्यों पर, जिस पर प्रतिभागी बहुत गहरी प्रतिक्रिया देता है, जो दूसरों के संवेगों को तीव्रता के साथ उभारते हैं, प्रसिद्धि या पद के बारे में स्पष्ट सरोकार पर बल दिया जाता है। सामर्थ्य की प्रतिमाएँ (Imagery)

दूसरों पर प्रभाव जमाने, तथा अपनी सामर्थ्य या सम्मान को स्थापित करने या अपनी प्रतिष्ठा की पुनर्स्थापना आदि बातों पर केंद्रित रहती हैं। यह तब तक एक छिपा हुआ अभिप्रेरक बना रहता है जब तक कि उद्वेलित नहीं रहता है। सामर्थ्य अभिप्रेरक हमें अपने परिवेश में मौजूद सामर्थ्य से जुड़े संकेतों के प्रति संवेदनशील बना देता है। यह प्रतिस्पर्धा तथा आक्रामकता से भी जुड़ा है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि जिन लोगों में सामर्थ्य की आवश्यकता प्रबल होती है, वे सामर्थ्य अभिप्रेरक वालों की तुलना में लड़ाई-झगड़े में ज्यादा हिस्सा लेते हैं, प्रतिस्पर्धात्मक खेलकूद में, मदिरापान में, तथा जुआ खेलने में भाग लेते हैं। ये बातें महिलाओं की तुलना में पुरुषों में अधिक पाई जाती हैं। सामर्थ्य से प्रेरित इन लोगों की विशेषताओं में यह भी है कि ये लोग दृढ़ निश्चयी होते हैं। क्या आप जानना चाहेंगे कि आप कितने दृढ़ निश्चयी हैं? इसके लिए आप क्रियाकलाप 11.3 कर के देखिए।

क्रियाकलाप 11.3

दृढ़ता परीक्षण

नीचे 20 कथन/दशाएँ दी गई हैं। प्रत्येक कथन को ध्यान से पढ़ें तथा उस कथन पर 'X' लिखें, जो आपके विचार और व्यवहार करने के तरीके का ठीक-ठीक वर्णन करता है। अधिकतम दस कथनों पर प्रतिक्रिया दें (इससे अधिक पर नहीं)। यदि किसी कथन पर आप प्रतिक्रिया नहीं दे पाते हैं, तो उससे परेशान मत होइए। आप केवल उन्हीं कथनों पर प्रतिक्रिया दें, जो आपको सही ढंग से प्रस्तुत करते हैं अथवा आपके चिंतन तथा व्यवहार से मेल खाते हैं।

1. *एक ट्रेन में यात्रा करते समय यदि डिब्बे में कोई व्यक्ति धूम्रपान कर रहा है तो आप दृढ़ता से चाहते हुए भी उससे 'ऐसा न करने के लिए' कह नहीं पाते हैं।*
2. *यदि पुस्तकालय में आपको किसी से परेशानी होती है – शांति भंग होती है तो आप तुरंत ऐसी अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए कार्यवाही करते हैं।*
3. *यदि किसी जलपानगृह में आपको उचित सेवा नहीं मिलती है तो आप उसका तुरंत विरोध करते हैं।*
4. *आप सड़क पर अथवा दूसरी जगह हो रही अनुशासनहीनता के मूकदर्शक ही बने रहते हैं।*
5. *यदि आपका अतिथि रात के भोजन पर विलंब से पहुँचता है, तो आप तत्काल अपनी नाराजगी प्रकट कर देते हैं।*
6. *आप अपने मित्र के घर में रात के भोजन के बाद दुबारा कॉफी के लिए कह पाने का साहस नहीं जुटा पाते हैं।*
7. *अवसर मिलने पर आप अपने मित्र की प्रशंसा करना नहीं भूलते हैं, विशेषकर विपरीत लिंग के मित्र की।*
8. *सामान्यतया आप अपने अधिकार का उपयोग नहीं करते हैं, आपको किसी भी कीमत पर शांति चाहिए।*
9. *पद और प्रतिष्ठा में अपने से वरिष्ठ लोगों के साथ आप अपनी हमेशा असहमति दर्ज कराते हैं।*
10. *आप द्वारा अपनाए गए जीवन मूल्यों के विरुद्ध किसी कार्य को करने में आप सहमत नहीं होते हैं।*
11. *आप किसी तरह का अन्याय सहन नहीं कर सकते हैं। आप तुरंत अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।*
12. *अपनी कक्षा में प्रश्न पूछते समय आप कठिनाई का अनुभव करते हैं। कक्षा से बाहर अपने शिक्षक से अकेले मिलकर आप अपनी कठिनाइयों का समाधान करते हैं।*
13. *यदि आपसे कोई अनुचित माँग करे तो आप दृढ़तापूर्वक मना कर देते हैं।*
14. *गलत तथा अन्यायी व्यक्ति की आलोचना करने में आप संकोच नहीं करते।*
15. *गरीब तथा कमजोर व्यक्ति के प्रति अन्याय तथा शोषण के विरोध में आप तत्काल आवाज उठाते हैं।*
16. *यदि आप किसी को पंसद भी करते हैं तो भी उसे बधाई देते समय मुश्किल का अनुभव करते हैं।*
17. *किसी अवांछित दशा के प्रति आपकी सबसे अच्छी प्रतिक्रिया यह है कि आप अपने से उससे अलग कर लें।*
18. *मित्रों के बीच आप अपनी बात दृढ़तापूर्वक और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करते हैं।*
19. *यदि आपके किसी मित्र या संबंधी ने आपसे ऋण लिया हो तो आपको उसे माँगने में कठिनाई अनुभव होती है।*
20. *बैठकों में आप अपने विचारों तथा सुझावों को दृढ़तापूर्वक व्यक्त करते हैं।*

© डॉ. के. डी. ब्रूटा

ध्यान दें *: ये नमूने के एकांश है और इनका निदान या चिकित्सकीय मूल्यांकन के लिए उपयोग वर्जित है।*

गणना

उन सभी एकांशों पर एक अंक दीजिए, जिन्हें आपने सही माना है तथा जो नीचे दिए गए हैं :

2, 3, 5, 7, 9, 10, 11, 13, 14, 15, 18, 20

अपने द्वारा प्राप्त सभी अंको का योग कर लें। यही आपका लब्धांक होगा।

व्याख्या

8 से 10 के बीच : दृढ़
5 से 7 के बीच : सामान्य रूप से दृढ़
5 से नीचे : निष्क्रिय

बाक्स 11.2 **आवश्यकताओं का पदानुक्रम : मास्लो का सिद्धांत**



अब्राहम मास्लो

अब्राहम मास्लो जो एक मानववादी मनोवैज्ञानिक थे, ने यह विचार प्रस्तुत किया कि मानव-अभिप्रेरक एक सीढ़ीनुमा पदानुक्रम में व्यवस्थित होते हैं। इस क्रम में अभाव (Deficiency) तथा वृद्धि (Growth) दोनों तरह की आवश्यकताएँ सम्मिलित हैं। प्रथम प्रकार की आवश्यकताओं में हम साम्यावस्था की पुनर्स्थापना करते हैं और द्वितीय प्रकार की आवश्यकताओं में उनसे परे या उनके आगे जाना चाहते हैं। बुद्धि पर बल देने वाले लोग अनिश्चितता, तनाव तथा पीड़ा का स्वागत करते हैं तथा क्रांतिकारी होते हैं। आवश्यकताएँ आदिम से मानवीय के क्रम में व्यवस्थित होती हैं। आवश्यकताओं की वरीयता का क्रम चित्र 11.2 में दिखाया गया है। इस क्रमव्यवस्था के निचले स्तर पर प्राथमिक ***दैहिक आवश्यकताएँ*** *तथा भूख-प्यास उपस्थित होती हैं। जब ये आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं तब भयोत्पादक स्थितियों से मुक्त होने की आवश्यकता पैदा होती है। इसे* ***सुरक्षा की आवश्यकता*** *(शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक) कहते हैं। अगले क्रम पर दूसरों के प्यार पाने तथा दूसरों को प्यार करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इस आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर हम आत्मसम्मान तथा दूसरे से सम्मान प्राप्त करने की*

पारगामिता (Transcendence)
सृष्टि से तादात्म्य के लिए आध्यात्मिक आवश्यकताएँ

आत्मानुभूति (Self Actualisaton)
संभावनाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा आत्मिक लक्ष्यों की पूर्ति की आवश्यकताएँ

सौंदर्यानुभूति (Aesthetic)
क्रम व्यवस्था तथा सौंदर्य की आवश्यकताएँ

संज्ञानात्मक (Cognitive)
ज्ञान, समझ तथा नवीनता की आवश्यकताएँ

सम्मान (Esteem)
आत्मविश्वास, दक्षता तथा योग्यता का ज्ञान, आत्मगौरव तथा दूसरों द्वारा प्रदत्त सम्मान

आसक्ति (Attachment)
दूसरों से जुड़ने, संबद्धता, प्यार करने तथा प्यार पाने की आवश्यकता

सुरक्षा (Safety)
सुरक्षा, आराम, भय से मुक्ति तथा प्रशांति की आवश्यकता

जैविक (Biological)
भोजन, पानी, ऑक्सीजन, आराम, कामाभिव्यक्ति तथा तनाव से मुक्ति

चित्र 11.1 : मास्लो की आवश्यकताओं की क्रमव्यवस्था।

*आवश्यकता का अनुभव करते हैं। इसके बाद संज्ञानात्मक आवश्यकताएँ आती हैं। इनमें ज्ञान, समझ, नवीनता तथा कुछ करने की आवश्यकताएँ होती हैं। इसके बाद **सौंदर्यपरक आवश्यकताएँ** सक्रिय होती हैं। ये व्यवस्था या सज्जा तथा सौंदर्य से जुड़ी होती हैं। इन सभी आवश्यकताओं के पूरे हो जाने के बाद हम संभावनाओं के संपूर्ण विकास की ओर अग्रसर होते हैं। **आत्मानुभूति** (Self actualisation) करते हैं। आत्मानुभूति करने वाला व्यक्ति आत्मबोध वाला, सामाजिक रूप से उत्तरदायित्व वहन करने वाला, सहज, सृजनशील, नवीनता तथा चुनौती को स्वीकार करने वाला तथा स्वतः स्फूर्त होता है। उसमें हास्य की समझ तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों की गहरी क्षमता होती है। इस क्रम की अगली आवश्यकता **पारगामिता** (Transcedence) की होती है। इसके अंतर्गत चेतना की उच्चतम अवस्था, जैसे वैश्विक दृष्टि (Cosmic vision), होती है। ऐसा व्यक्ति अपने को सृष्टि के एक अंग के रूप में अनुभव करता है।*

आवश्यकताओं के क्रम में जो निचले स्तर पर होती हैं, वे तब प्रभावी रहती हैं जब तक वे पूर्ण नहीं हो जाती हैं, क्योंकि वे प्रबल होती हैं। जब ये एक बार में ठीक से संतुष्ट हो जाती हैं तब उच्च आवश्यकताएँ हमारे अवधान तथा प्रयास का प्रमुख अंग बन जाती हैं। सभी अभिप्रेरक एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। जहाँ, आत्मानुभूति व्यक्ति की संभावना के पूर्ण विकास को प्रदर्शित करता है वहीं पारगामिता आध्यात्मिक आवश्यकताओं को बताती है। यहाँ अधि-आवश्यकताएँ (Meta Needs) आत्म अनुभूति के आवेगों से जुड़ी होती हैं। आत्मानुभूति वाले व्यक्तियों में वृद्धि की आवश्यकताएँ परा आवश्यकताओं के रूप में अभिव्यक्त होती हैं; जैसे – समग्रता, पूर्णता, न्याय, वैभव, सरलता, जीवंतता, सौंदर्य, अनोखापन, सत्य, स्वातंत्र्य , अधिकता आदि। ये सकारात्मक जीवन जीने हेतु बल प्रदान कर व्यक्तिगत विकास करती हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि बहुत कम लोग शिखर पर पहुँचते हैं, क्योंकि ज्यादातर लोग प्राथमिक स्तर की आवश्यकताओं से अत्यधिक मात्रा में जुड़े रह जाते हैं।

आपने अब तक पढ़ा

इस भाग में आपने जैविक तथा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरकों या आवश्यकताओं के बारे में पढ़ा। आपने यह भी पढ़ा कि भूख एक प्राथमिक आवश्यकता है तथा शरीर के अंदर तथा बाहर की घटनाएँ भूख को बढ़ा सकती हैं अथवा उसमें कमी कर सकती हैं। कुछ खाद्य पदार्थों के लिए मनुष्य में विशिष्ट भूख भी उत्पन्न होती है। भोजन की तुलना में पानी जीवित रहने के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। शरीर में वाष्पीकरण, श्वसन, पसीना तथा मूत्र के माध्यम से पानी की कमी उत्पन्न होती है। यद्यपि जीवित रहने के लिए काम भावना की आवश्यकता अनिवार्य नहीं होती है तथापि इससे अनेक व्यावहारिक एवं दैहिक प्रक्रियाओं का जन्म होता है। लैंगिक या कामेच्छा से जुड़े व्यवहारों में सांस्कृतिक भिन्नता पाई गई है। सामाजिक अंतःक्रिया द्वारा मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरकों का विकास होता है। उपलब्धि अभिप्रेरक कार्य को पूर्ण करने से जुड़ा होता है। दूसरों से जुड़े होने की आवश्यकता के परिणामस्वरूप संबद्धता अभिप्रेरक का जन्म होता है। सामर्थ्य अभिप्रेरक का संबंध सामर्थ्य अर्जन से अथवा दूसरों को नियंत्रित करने से होता है। इन अभिप्रेरकों के मापन के लिए टी.ए.टी. का उपयोग किया जाता है।

आपने कितना सीखा

1. *मनुष्यों में कामेच्छा से जुड़ा व्यवहार सेक्स हार्मोन्स पर निर्भर करता है।* सही/गलत
2. *टी.ए.टी. अभिप्रेरण अध्ययन करने में प्रयुक्त प्रमुख प्रक्षेपी परीक्षण है।* सही/गलत
3. *शरीर की कुछ खास आवश्यकताओं के कारण विशिष्ट भूख तथ भोज्य पदार्थों की नापसंद पैदा होती है।* सही/गलत
4. *'साम्यावस्था' शब्द का तात्पर्य शरीर की उस प्रवृत्ति से है जो आंतरिक दैहिक दशाओं में संतुलन बनाए रहती है।* सही/गलत
5. *भूख एक अर्जित अभिप्रेरणात्मक व्यवस्था है।* सही/गलत
6. *उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा वाले लोग अत्यंत कठिन कार्य करना पसंद करते हैं।* सही/गलत
7. *मनुष्यों में प्राप्त सामाजिक अभिप्रेरकों को आवश्यकता कहा जाता है।* सही/गलत
8. *अनेक शोधकर्ता ऐसा सोचते हैं कि उच्च उपलब्धि अभिप्रेरणा माता-पिता द्वारा बचपन से ही स्वतंत्रता की अपेक्षा का परिणाम होता है।* सही/गलत

9. *बैडमिंटन की एक लंबी पारी खेलने के बाद आप एक बार पानी पीने के लिए विश्राम लेते हैं। यह साम्यावस्था से जुड़ी प्रतिक्रिया है।* *सही/गलत*

उत्तर — 1. गलत, 2. सही, 3. सही, 4. सही, 5. गलत, 6. गलत, 7. सही, 8. सही, 9. सही।

कुछ नए अभिप्रेरणात्मक संप्रत्यय

नए सिद्धांत अभिप्रेरणा की व्याख्या संज्ञानात्मक संप्रत्ययों की सहायता करने का प्रयास करते हैं। उनके अनुसार वस्तुनिष्ठ या भौतिक सच्चाई उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती है, जितनी हमारे द्वारा स्वयं बनाई गई उसकी समझ या व्याख्या। यह विचार कि लोग उन लक्ष्यों को चुनते हैं, जो सबसे ज्यादा सुख देते हैं, केवल आंशिक रूप से ही सही हैं। इसी तरह साम्यावस्था या संतुलन की दशा में वापस लौटने से सुख मिलता है, यह विचार भी केवल जैविक आवश्यकताओं के बारे में ही लागू होता है।

अभिप्रेरणा के क्षेत्र में शोध करने वाले अनेक मनोवैज्ञानिकों ने अब मनुष्यों को 'वैज्ञानिक' के रूप में देखना आरंभ किया है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य तर्कपूर्ण, समझदार तथा अनासक्त है। मनुष्य वस्तुनिष्ठ होता है और उसमें **उत्कर्ष** (Perfection) की दिशा में आगे बढ़ने की इच्छा होती है। मनुष्य अपनी दुनिया को कार्य-कारण संबंधों के रूप में समझने के लिए अभिप्रेरित होता है। इन सैद्धांतिक विकासों से परिचित होने के लिए आइए, आंतरिक अभिप्रेरणा, गुणारोपण तथा सक्षमता की अवधारणाओं पर विचार किया जाए।

आंतरिक अभिप्रेरणा

अनेक व्यवहारों में दक्षतापूर्वक कार्य करने से मिलने वाली संतुष्टि में ही पुरस्कार मौजूद रहता है। लोग कुछ कामों में इसलिए शामिल होते हैं कि उनको करना आनंददायक होता है। उनके लिए कार्य करना स्वयं में सुख का स्रोत होता है। आंतरिक अभिप्रेरक वे चीजें होती हैं, जो स्वयं अपने लिए पुरस्कार का कार्य करती हैं। जब आप कोई काम आनंद के लिए करते हैं या अपनी दक्षता प्रदर्शन के लिए अथवा कौशल अर्जन के लिए, तो आपकी अभिप्रेरणा अधिकांशतः आंतरिक होती है। जब कोई ऐसा कार्य किया जाता है तो वह कार्य स्वयं में ही लक्ष्य भी बन जाता है। आंतरिक अभिप्रेरणा तब पैदा होती है जब किसी क्रिया में बाह्य पुरस्कार नहीं होता अथवा किसी काम के पीछे कोई गुप्त उद्देश्य नहीं होता है। इसके विपरीत, बाह्य अभिप्रेरणा में धन, अनुमोदन, पुरस्कार या कोई देनदारी रहती है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि जब कोई व्यक्ति आंतरिक रूप से अभिप्रेरित होता है, तो उसे पुरस्कार देने से उसके काम करने में बाधा पैदा होती है तथा उस व्यक्ति के कार्य का स्तर घट जाता है। ऐसा व्यक्ति यह समझने लगता है कि पुरस्कार उसको नियंत्रत कर रहा है। आंतरिक रूप से अभिप्रेरित व्यक्ति चुनौती भरे, आश्चर्यकारी तथा जटिल कार्यों को पसंद करता है। वास्तविक जीवन में आंतरिक तथा बाह्य पुरस्कार दोनों का ही उपयोग होता है और दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। फिर भी, बाह्य पुरस्कार का अत्यधिक उपयोग समस्या उत्पन्न करता है। इनका उपयोग सीमित मात्रा में होना चाहिए और तभी करना चाहिए जब बहुत जरूरी हो और इन्हें यथाशीघ्र समाप्त कर देना चाहिए। 'अनासक्ति' की भारतीय विचारधारा भी इस बात की ओर ध्यान दिलाती है कि व्यक्ति को कार्य पर ध्यान देना चाहिए न कि कार्य के परिणाम पर। कार्य के परिणाम पर ध्यान देने से कार्य के संपादन में व्यवधान पड़ सकता है।

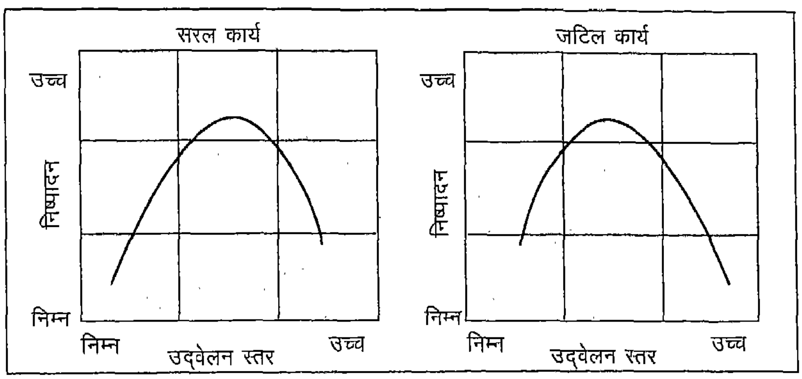
गुणारोपण

गुणारोपण सामान्य व्यक्तियों द्वारा घटनाओं के बारे में निष्कर्ष निकालना या अनुमान लगाना है। हम घटनाओं को देखकर ऐसे कारणों का पता लगाते हैं। इसमें हमारे स्वयं के व्यवहार तथा अनुभूतियाँ भी शामिल हैं। अपने परिवेश में कार्य-कारण की संरचनाओं के संज्ञानात्मक समझदारी के लिए गुणारोपण सहायक होता है। यह पाया गया है कि जिस व्यक्ति के व्यवहार का हम प्रेक्षण कर रहे हैं, लोग उसके व्यवहार तथा विशेषताओं पर ज्यादा ध्यान देते हैं अपेक्षाकृत उस परिस्थिति के, जिसमें व्यवहार घटित होता है। इसके कारण हम आंतरिक कारणों के आधार पर व्यवहार की व्याख्या करने के लिए एक प्रकार का आग्रह विकसित कर लेते हैं। आंतरिक गुणारोपण की इस प्रवृत्ति को **आधारभूत गुणारोपण त्रुटि** (Fundamental Attribution Error) कहा जाता है। यह प्रवृत्ति तब अधिक प्रबल हो जाती है जब व्यक्ति का व्यवहार अस्पष्ट और संदिग्ध रहता है। हम सभी लोग गुणारोपण की प्रक्रिया में लगे रहते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने सफलता और विफलता के गुणारोपण

बाक्स 11.3 **यर्क्स-डॉडसन नियम**

यह सामान्य अनुभव है कि अत्यधिक चिंता या पूरी तरह से बेपरवाह रहना दोनों ही व्यक्ति के निष्पादन में बाधा डालते हैं। इन दोनों छोरों के बीच उद्वेलन (Arousal) का अधिकतम स्तर होता है। उद्वेलन के इस स्तर पर व्यक्ति अपना श्रेष्ठतम निष्पादन करता है। ***यर्क्स तथा डॉडसन*** *(1908) ने यह विचार दिया कि उद्वेलन का अधिकतम स्तर कार्य की कठिनाई स्तर पर निर्भर करता है। इनके अनुसार उद्वेलन स्तर में वृद्धि का सरल और कठिन कार्यों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता है। इनके अनुसार* ***जैसे-जैसे उद्वेलन बढ़ता है, कठिन कार्यों पर निष्पादन घटता है और सरल कार्यों पर निष्पादन बढ़ता है।*** *इस तरह कठिन या जटिल कार्यों के लिए मध्यम स्तर का उद्वेलन निष्पादन के लिए अधिकतम होगा। उस स्तर के ऊपर उद्वेलन में बढ़ोतरी कठिन कार्यों पर निष्पादन को घटा देती है। दूसरी ओर सरल कार्य के लिए अधिकतम उद्वेलन स्तर अधिक होगा।*

चित्र 11.2 ऊपर वर्णित संबंध को प्रदर्शित करता है। आप यह देखेंगे कि व्यक्ति के निष्पादन का स्तर उद्वेलन या अभिप्रेरणा के स्तर तथा कार्य की कठिनाई के स्तर दोनों का सम्मिलित परिणाम है। सरल कार्यों के लिए उच्च स्तर की अभिप्रेरणा निष्पादन के स्तर में वृद्धि करती है, परंतु कठिन या जटिल कार्यों के लिए निम्न स्तर का उद्वेलन या प्रेरणा अधिकतम होगा। मध्यम कठिनाई के कार्यों के लिए मध्यम स्तर की अभिप्रेरणा सामान्यतः अच्छी होती है। फिर भी एक बात हर स्तर के कार्यों के लिए लागू होती है, और वह यह है कि उच्च और निम्न दोनों अभिप्रेरणा स्तरों पर निष्पादन निम्न स्तर का होता है।



चित्र 11.2 : यर्क्स-डॉडसन नियम।

का अध्ययन किया है। पाया यह गया है कि कारण तो बहुत सारे हो सकते हैं परंतु वे तीन मुख्य विमाओं पर स्थित होते हैं : **कारण का केंद्र** (आंतरिक या बाह्य), **स्थिरता** (स्थिर या अस्थिर) तथा **नियंत्रण की योग्यता** (नियंत्रण योग्य तथा अनियंत्रित)। योग्यता, कार्य की कठिनाई, भाग्य, तथा प्रयास आदि कारणों का लोग अपनी सफलता तथा विफलता की व्याख्या के लिए उपयोग करते हैं। ये कारण विभिन्न कारण-विमाओं पर निम्नलिखित ढंग से व्यवस्थित हैं।

योग्यता : आंतरिक, स्थिर तथा नियंत्रित न होने वाला कारण है।

कार्य की कठिनाई : बाह्य, स्थिर, नियंत्रित होने वाला कारण है।

भाग्य : बाह्य, अस्थिर, नियंत्रित न होने वाला कारण है।

प्रयास : आंतरिक, अस्थिर, नियंत्रित किया जा सकने वाला कारण है।

यह पाया गया है कि जब हम असफलता को निम्न योग्यता तथा कार्य की जटिलता के कारणों का उपयोग कर समझते हैं तो हम इस काम को तुरंत छोड़ देना चाहेंगे, सरल कार्य का चयन करेंगे तथा अपने लक्ष्यों का स्तर घटा कर नीचे कर लेंगे। इसके विपरीत यदि हम असफलता को खराब भाग्य अथवा कम प्रयास करने का परिणाम मानते हैं तो हमारे में अभिप्रेरणा का स्तर ऊँचा हो सकता है तथा हम सफलता के लिए फिर कोशिश कर सकते हैं। सफलता तथा असफलता के गुणारोपण के लिए नए ढंग से प्रशिक्षित कर निष्पादन को बढ़ाने का प्रयास किया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में गुणारोपण सिद्धांत का उपयोग कई क्षेत्रों; जैसे – सहायता व्यवहार तथा स्वास्थ्य, में किया गया है।

सक्षमता

सक्षमता का तात्पर्य अपने पर्यावरण को प्रभावित करने की योग्यता है। सक्षमता पाने की तीव्र इच्छा से **प्रभावकारिता** (Effectance) की भावना पैदा होती है। इसी से जुड़ा एक संप्रत्यय **स्व-प्रभाविकता** (Self-efficacy) का है। यह उस प्रत्याशा से जुड़ा है कि कोई व्यक्ति एक विशेष कार्य को सफलतापूर्वक कर सकेगा। यह पाया गया है कि उच्च स्व-प्रभाविकता की मात्रा निजी उपलब्धि के साथ बढ़ती जाती है। अपने जैसे दूसरे लोगों को सफल या विफल होते देखकर स्व-प्रभाविकता घटती-बढ़ती है। सांवेगिक उद्वेलन भी स्व-प्रभाविकता की भावनाओं को प्रभावित कर सकता है।

कुंठा

हमारे सामने कई ऐसे अवसर आते हैं, जब चीजें हमारी आशा के विपरीत घटित होने लगती हैं और हम अपने लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पाते हैं। वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित होना पीड़ादायी होता है, परंतु सभी लोग अपने जीवन में अलग-अलग मात्राओं में इसका अनुभव करते हैं। *कुंठा वह सांवेगिक स्थिति है, जो तब पैदा होती है जब चाहा गया प्रत्याशित लक्ष्य प्राप्त नहीं होता है।* यह एक विकर्षक दशा है, जिसे कोई भी पंसद नहीं करता। कुंठा व्यक्ति की उन धनात्मक प्रत्याशाओं से पैदा होती है, जो अधूरी रह जाती हैं, पूरी नहीं हो पाती हैं। कुंठा कई तरह की व्यवहारपरक तथा सांवेगिक अनुक्रियाओं को जन्म देती है। इनमें आक्रामक व्यवहार, स्थिरीकरण, पलायन, परिहार तथा रोना शामिल हैं। वास्तव में **कुंठा-आक्रामकता** (Frustration-aggression) **डोलार्ड तथा मिल्लर** द्वारा प्रतिपादित परिकल्पना एक बहुत ही प्रसिद्ध परिकल्पना है। इसके अनुसार कुंठा आक्रामकता को उत्पन्न करती है। आक्रामक व्यवहार अक्सर अपनी ओर बाधा डालने वाले तत्व की तरफ अथवा उनके स्थानापन्नों की ओर उन्मुख होता है। कुंठित होने पर सीधे-सीधे दूसरों पर आक्रमण की प्रवृत्ति पर दंड के भय के कारण अंकुश लगता है।

द्वंद्व

अपने जीवन में हम कई प्रतिस्पर्धी शक्तियों से प्रभावित होते हैं, जो हमें अलग-अलग दिशाओं में ढकेलती हैं। उदाहरण के लिए, आप अपने एक ऐसे मित्र से मिलना चाहते हैं जो बहुत दूर से आ रहा है और आप सिनेमा भी देखना चाहते हैं। कोई व्यक्ति पिकनिक मनाने जाना चाहता है और उसके अभिभावक उसी समय उसे कोई दूसरा काम करने का निर्देश दे देते हैं। मानव व्यवहार में एक ही साथ बहुत-सी इच्छाओं की उपस्थिति एक आम बात है। इस तरह की दृढ़ात्मक स्थितियों में चुनाव करना कठिन होता है। मनोवैज्ञानिकों ने चार प्रकार के प्रमुख द्वंद्वों का वर्णन किया है।

1. **उपागम-उपागम द्वंद्व** : इस प्रकार के द्वंद्वों में व्यक्ति एक से अधिक प्रेरक क्षेत्रों में संलग्न रहता है। देखने योग्य दो अच्छी फिल्मों के बीच का चुनाव, भोजन हेतु दो मनपंसद व्यंजनों में चुनाव, मिठाई खाने या पुस्तक खरीदने के बीच चुनाव इस तरह के द्वंद्व के उदाहरण हैं। ऐसी स्थितियों में दो धनात्मक विकल्प उपलब्ध रहते हैं और आसानी से समाधान मिल जाता है।

2. **उपागम-परिहार द्वंद्व** : ऐसी दशाओं में कार्य क्षेत्र में धनात्मक एवं ऋणात्मक दोनों ही तरह की स्थितियाँ मौजूद रहती हैं। उदाहरणार्थ, आप सिनेमा जाना चाहते हैं परंतु लोगों के अभद्र व्यवहार अथवा भीड़भाड़ की स्थिति से बचना भी चाहते हैं। जब एक ही कार्य से भय तथा आशा दोनों ही जुड़े हों, तो इसी तरह के द्वंद्व की स्थिति पैदा होती है। ऐसी स्थितियों में व्यक्ति दोलायमान रहता है और दोनों ओर जाने की इच्छा रखता है। ऐसे द्वंद्वों के अंतर्गत ऐसे लक्ष्य आते हैं, जिनमें मनपसंद तथा विकर्षक दोनों तरह की विशेषताएँ होती हैं।

3. **परिहार-परिहार द्वंद्व** : इसके अंतर्गत ऋणात्मक विशेषता वाली स्थितियाँ आती हैं। परस्पर विरोधी शक्तियाँ साम्यावस्था की स्थिति में क्रियाशील रहती हैं। इससे दो विकर्षक लक्ष्य उपस्थित होते हैं। ऐसी स्थितियाँ 'एक ओर पहाड़ दूसरी ओर खाई' वाली कहावत में देखी जा सकती हैं। जब व्यक्ति एक दिशा से पलायन करता है, तो दूसरी दिशा में अग्रसर होता है और स्थिति में रहना अत्यावश्यक होता है, तो व्यक्ति विकर्षक उद्दीपन के बिंदु तक स्थिर हो जाता है। यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो व्यक्ति उस स्थिति से पलायन कर जाता है।

क्रियाकलाप 11.4

द्वंद्व का अध्ययन

नीचे दिए गए प्रश्नों का उत्तर दीजिए तथा प्रत्येक निर्णय लेने में लगे समय को भी लिखिए।

	निर्णय में लगा समय
1. आप क्या होना चाहेंगे? (अ) अधिक बुद्धिमान (ब) अधिक आकर्षक	——
2. आप क्या रखना चाहेंगे? (अ) कम ऊर्जा (ब) कम सामाजिक गांभीर्य	——
3. आप क्या रखना चाहेंगे? (अ) कम आर्थिक सुरक्षा (ब) एक अपेक्षाकृत कम शील-गुण	——
4. आप क्या बनना चाहेंगे? (अ) अधिक आत्मविश्वासी (ब) अधिक बुद्धिमान	——
5. आप क्या होना चाहेंगे? (अ) कम आत्मविश्वासी (ब) एक अपेक्षाकृत अधिक शील-गुण	——
6. आप क्या रखना चाहेंगे? (अ) अधिक आर्थिक सुरक्षा (ब) एक अपेक्षाकृत धनात्मक शील-गुण	——
7. आप क्या रखना चाहेंगे? (अ) अधिक सामाजिक गांभीर्य/संतुलन (ब) अधिक ऊर्जा	——
8. आप क्या होना चाहेंगे? (अ) कम बुद्धिमान (ब) कम आकर्षक	——

उपागम-उपागम तथा परिहार-परिहार द्वंद्वों के बीच निर्णय करने में लगने वाले समय को निर्धारित करने के लिए प्रश्न संख्या 1, 4, 6, तथा 7 में लगे समयों को जोड़ दीजिए तथा उसकी तुलना 2, 3, 5 तथा 8 के निहित समयों से कीजिए।

निर्णय का कुल समय	——
उपागम-उपागम द्वंद्व	——
परिहार-परिहार द्वंद्व	——

4. **द्विगुणित उपागम परिहार** : इसमें दो धनात्मक तथा ऋणात्मक विशेषताओं से युक्त लक्ष्य रहते हैं। यह स्थिति हमारे जीवन में अक्सर दिखाई देती है। जब हम चीजों को खरीदने जाते हैं तो पाते हैं कि विभिन्न वस्तुओं की अलग-अलग विशेषताएँ तथा गुण हैं। परिणामस्वरूप उनका दाम भी अलग-अलग होता है और हमारे सामने द्वंद्व उपस्थित हो जाता है।

चिंता

चिंता की भावना में वे आंतरिक द्वंद्व आते हैं जो विविध संभावनाओं की परिस्थिति के साथ निपटने के प्रयास में पैदा होते हैं। यदि कोई व्यक्ति इससे गुजर कर विकास के एक ऊँचे स्तर पर पहुँचता है, पर यदि कोई चिंता के कारण अपने में बंद हो जाए तो यह अस्वास्थ्यकर है। चिंता आधुनिक जीवन की एक प्रमुख अवधारणा बन गई है। नैदानिक मनोविज्ञान में इस विषय पर विस्तारपूर्वक ध्यान दिया गया है। फ्रायड ने **वस्तुगत चिंता** (Objective anxiety) और **मनोस्नायुविकृति वाली चिंता** (Neurotic anxiety) के बीच अंतर किया है। पहले प्रकार की चिंता वस्तु विशेष की ओर उन्मुख रहती है, जबकि दूसरे प्रकार की चिंता में कोई स्पष्ट पहचान में आने वाला कारण नहीं रहता है। स्नायुविकृति वाली चिंता, व्यक्ति का जो खतरा है, उसके अनुपात में बहुत अधिक होती है। इसमें दमन, द्वंद्व तथा रक्षायुक्तियाँ शामिल हैं। यह आम तौर पर माना जाता है कि तीव्र चिंता एक अप्रिय सांवेगिक अनुभव है।

मनोवैज्ञानिक लोग अक्सर **शील-गुणात्मक चिंता** (Trait Anxiety) तथा **परिस्थितिगत चिंता** (State Anxiety) के बीच अंतर करते हैं। शील-गुणात्मक चिंता एक अपेक्षाकृत स्थायी व्यक्तित्व गुण के रूप में मानी जाती है, जिसके कारण व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में चिंतित होता है। इससे व्यक्तियों में विद्यमान **चिंताप्रवणता** (Anxiety proneness) की मात्रा में भिन्नता का पता चलता है। विभिन्न व्यक्ति बाह्य घटनाओं या आंतरिक संकेतों (जैसे – विचार, स्मृतियाँ) को अलग-अलग मात्रा में व्यक्तिगत रूप से खतरनाक या भयप्रद अनुभव करते हैं। इस तरह की स्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने से जुड़ी चिंता में वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है। परिस्थितिगत चिंता, वह चिंता है, जिसे एक खास परिस्थिति में तथा एक खास समय पर व्यक्ति अनुभव करता है। यह एक मनोदैहिक सांवेगिक दशा या स्थिति है। इसमें तनाव, भय, नर्वस होना, दुश्चिंता तथा पेशीय तनाव तथा स्वायत्त स्नायुमंडल का सक्रिय होना शामिल है। यह तीव्रता में भिन्न-भिन्न हो सकता है तथा व्यक्ति द्वारा बाह्य या आंतरिक प्रतिबल को अपने लिए खतरनाक मानने की मात्रा के अनुसार घटती बढ़ती भी है। शीलगुणात्मक चिंता की अधिकता वाले व्यक्ति कम चिंता वाले व्यक्तियों की तुलना में परिस्थितिगत चिंता में तीव्र वृद्धि को दर्शाते हैं।

क्रियाकलाप 11.5

चिंता परीक्षण

यह एक स्वयं पर संचालित किया जाने वाला चिंता परीक्षण है, जिससे आप अपनी चिंता का स्तर माप सकते हैं। नीचे 20 कथन/स्थितियाँ दी गई हैं। प्रत्येक के लिए चार वैकल्पिक प्रतिक्रियाएँ संभव हैं: ***लगभग हमेशा, अक्सर, कभी-कभी*** *तथा* ***कभी नहीं।*** *हर वक्तव्य को ध्यानपूर्वक पढ़िए और वह प्रतिक्रिया चुनिए जो आपको सबसे ठीक लगती है। यह सोच कर प्रतिक्रिया दें कि आप उस परिस्थिति में हैं और आपको प्रतिक्रिया देनी है। अपनी प्रतिक्रिया चुन कर वक्तव्य के बगल में बने स्थान पर अंकित कीजिए तथा अगले पद पर विचार कीजिए।*

- *मैं अक्सर शांत रहता हूँ। मैं आसानी से नहीं उखड़ता।*
- *मैं सोते वक्त परेशान और बेचैन रहता हूँ।*
- *कठिन और तनावभरी स्थितियों में भी मेरे पास काफी ऊर्जा रहती है।*
- *जाड़े के दिनों में भी मुझे आसानी से पसीना आ जाता है।*
- *यदि परिवार का कोई खास सदस्य आने में देर करता है तो मैं परेशान हो जाता हूँ, और ऊपर नीचे चक्कर लगाने लगता हूँ।*
- *किसी के साथ प्रतिस्पर्धा का ख्याल मुझे विचलित और नर्वस कर देता है।*
- *परीक्षा के दिनों में मेरी भूख मर जाती है और मेरा पेट खराब हो जाता है।*
- *मैं अपने भविष्य को लेकर सोचता रहता हूँ। मुझे बार-बार यह ख्याल आता रहता है कि कुछ बुरा होने वाला है।*
- *दूसरे मेरे बारे में क्या सोचते हैं। इस बात की मुझे कोई परवाह नहीं रहती।*
- *मुझे लगता है कि मैं कोई भी काम ठीक ढंग से नहीं कर सकता और यह विचार मुझे परेशान कर देता है।*
- *जब मैं चिंतित और तनावग्रस्त रहता हूँ तो मेरा ध्यान केंद्रित करने की क्षमता और स्मृति घट जाती है।*
- *मैं तनाव में रहता हूँ तथा मेरे पंखुरों तथा गर्दन में दर्द रहता है।*
- *चुनौती के क्षणों में मेरी मांसपेशियां तन जाती हैं और मैं नाखून कुतरने लगता हूँ।*
- *मैं अपने हालात से खुश हूँ।*
- *मैं अपने कैरियर के बारे में काफी चिंतित रहता हूँ।*
- *जब मैं अपने से भिन्न लिंग के व्यक्ति से बात करता हूँ तो मेरी हथेली में पसीना आने लगता है।*
- *दूसरों की मौजूदगी में अपने बारे में ज्यादा सचेत हो जाता हूँ।*
- *जब मैं सुबह उठता हूँ तो काफी थका-सा महसूस करता हूँ।*
- *छोटी-छोटी बातें भी मेरे लिए तनाव का बहाना बन जाती हैं।*
- *मैं जीवन में अच्छी तरह समायोजित महसूस करता हूँ।*

© डॉ. के.डी. ब्रूटा

ध्यान दें : *ये परीक्षण के नमूने हैं, और इनका उपयोग नैदानिक मूल्यांकन या रोग की पहचान के लिए वर्जित है।*

गणना

कभी नहीं को 1, कभी-कभी को 2, अक्सर को 3 तथा लगभग हमेशा को 4 अंक दें, परंतु परीक्षण के 1, 3, 9, 14 तथा 20वें पद को उलटे क्रम में अंक देना होगा। इन पदों पर लगभग कभी नहीं को 4, कभी-कभी को 3, अक्सर को 2 तथा लगभग हमेशा को 1 अंक दें। सभी 20 पदों पर प्राप्त अंको का योग कर लें, वही आपका चिंता परीक्षण पर प्राप्तांकों का योग होगा।

व्याख्या

60 - 80	:	*उच्च चिंता*
30 - 59	:	*मध्यम स्तर की चिंता*
30 से कम	:	*निम्न मात्रा में चिंता*

बाक्स 11.4 परीक्षा की चिंता तथा इसका समाधान

कई लोग परीक्षा के समय या कोई टेस्ट देते समय या जब उन्हें कोई निष्पादन करना हो तो बहुत चिंतित हो उठते हैं। इस चिंता में उच्च दैहिक उद्वेलन (जैसे– पसीना आना, बेचैनी, तनाव, नर्वस होना, दिल का तेजी से धड़कना) तथा परीक्षा देते समय उच्च मात्रा में ***दुश्चिंता*** (worry) *मिश्रित होती है। यह विद्यार्थी का ध्यान भंग करती है तथा उसे अस्त-व्यस्त कर देती है। उसका निष्पादन घट जाता है। परीक्षण विषयक चिंता के समाधान के उपाय के रूप में निम्नलिखित चरणों का उपयोग किया जा सकता है।*

तैयारी *(Preparation) : यह पाया गया है कि परीक्षा के बारे में चिंताग्रस्त छात्र बहुत कम पढ़ते हैं या फिर बड़ी देरी से पढ़ते हैं। इसका एक स्पष्ट उपाय है कि छात्र परीक्षा आने के काफी पहले से खूब अच्छी तरह तैयारी करते हैं।*

आराम करना *(Relaxation) : आराम करने की प्रक्रिया सीख कर परीक्षा-चिंता को घटाया जा सकता है। इसके*

लिए दूसरों से समर्थन (जैसे – मित्र, माता-पिता, अध्यापक) अधिक उपयोगी सिद्ध होता है।
दुहराना (Rehearsal): *कठिनाई पैदा करने वाली घटना के साथ किस तरह पेश आएँगे, यदि इसका अभ्यास पहले कर लिया जाए, तो इससे काफी सहायता मिल सकती है। परिस्थिति की कल्पना करना तथा फिर इसके समाधान की योजना बनाना बहुत उपयोगी होता है।*
विचारों की पुनर्रचना (Restructuring thoughts) : *अपने को हराने वाले भाव को व्यक्त करने वाले विचारों को बदलना बड़ा ही उपयोगी होता है। व्यक्ति को ऐसे विचारों को एक कागज पर लिख लेना चाहिए और इन चिंताओं से पार पाने के लिए ठंडे दिमाग से तर्कपूर्ण समाधान ढूंढ़ना लाभदायक होता है।*

इस बात के प्रमाण बढ़ रहे हैं कि कोई व्यक्ति अपने को चिंतित कब कहेगा, यह व्यक्ति तथा परिस्थिति की विशेषताओं और बताई जाने वाली चिंता अनुक्रिया के प्रकार पर निर्भर करता है। परिस्थिति की संदिग्धता, समर्थन की कमी, तथा माता-पिता का अस्थिर व्यवहार बच्चों में चिंता के विकास के साथ संबंधित पाया गया है।

आपने अब तक पढ़ा

इस खंड में आपने अभिप्रेरणा के नए संप्रत्ययों; जैसे – आंतरिक अभिप्रेरक, गुणारोपण, सक्षमता, कुंठा, द्वंद्व तथा चिंता के बारे में पढ़ा। सफलतापूर्वक काम पूरा करने में संलग्न आत्म संतोष देने वाली विशेषता को आंतरिक प्रेरणा कहा जाता है। गुणारोपण सफलता के कारणों; जैसे – प्रयास, योग्यता और भाग्य के बारे में व्यक्ति का विश्वास है। सक्षमता का तात्पर्य अपने परिवेश में सफलतापूर्वक परिवर्तन लाने की क्षमता है। परंतु कई बार आप कुछ बाधाओं के कारण कार्य को सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर पाते हैं। इससे कुंठा पैदा होती है। दैनिक जीवन में हम लोग द्वंद्व की स्थितियों का भी अनुभव करते हैं, जिसमें आपको विभिन्न लक्ष्यों के बीच चुनाव करना पड़ता है। द्वंद्व कई प्रकार का हो सकता है। इसमें उपागम-उपागम, उपागम-परिहार, परिहार-परिहार, तथा द्विगुणित उपागम-परिहार द्वंद्व सम्मिलित हैं। चिंता हमारे आंतरिक द्वंद्वों को व्यक्त करती है, जब हम विभिन्न संभावनाओं के साथ रहते हैं। परीक्षण विषयक चिंता को कम करने के लिए हमें कई चरणों वाली प्रक्रिया अपनानी होती है, जिसमें तैयारी, आराम, आवृत्ति तथा विचारों की पुनर्रचना शामिल हैं।

आपने कितना सीखा

बताइए कि नीचे दिए गए कथन सही हैं या गलत।

1. *स्व-प्रभाविकता एक कार्य को करने में व्यक्ति की प्रेरणा के प्रत्यक्षीकरण को कहते हैं। (सही / गलत)*
2. *लक्ष्य निर्देशित क्रिया में बाधा से कुंठा पैदा होती है। (सही / गलत)*
3. *परिहार-परिहार द्वंद्व की स्थिति में पलायन की अधिक संभावना होती है।*
4. *द्वंद्व से चिंता पैदा होती है। (सही / गलत)*
5. *मान लीजिए, आपको एक नई नौकरी मिली, वह नौकरी, जिसकी आपको बहुत दिनों से तलाश थी। दूसरी ओर, आपके मन में शंका है कि इसमें सफल होने की आवश्यक क्षमता आप में नहीं है और विफलता से भयभीत इस परिस्थिति में उपागम-परिहार द्वंद्व है। (सही / गलत)*
6. *सक्षमता व्यक्ति का पर्यावरण की शक्तियों के प्रति समर्पण है। (सही / गलत)*
7. *कुछ दशाओं में पुरस्कार देना व्यक्ति की किसी कार्य करने की आंतरिक प्रेरणा पर ऋणात्मक प्रभाव डाल सकता है। (सही / गलत)*
8. *उपागम-उपागम द्वंद्व में एक दिशा में थोड़ा आगे बढ़ना उसी दिशा में समाधान का मार्ग प्रशस्त करेगा। (सही / गलत)*
9. *उपागम-उपागम द्वंद्व से उच्च मात्रा में चिंता पैदा होती है। (सही / गलत)*

उत्तर – 1. गलत, 2. सही, 3. सही, 4. गलत, 5. सही, 6. गलत, 7. सही, 8. सही, 9. सही।

बाक्स 11.5 **अभिप्रेरणा में वृद्धि का प्रयास**

मनुष्य का जीवन चुनौतियों से भरा होता है और हम, सभी लोग कभी-कभी अपने को ऐसे हालात में पाते हैं, जब चीजें सही दिशा में आगे नहीं बढ़ रही होती हैं। ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी हार नहीं माननी चाहिए। इसके बदले हमको सारी बातों पर गौर करना चाहिए, समस्या को समझना चाहिए और चीजों को सही दिशा देने का प्रयास करना

चाहिए। अभिप्रेरित होना एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा बन गया है और बहुत-सी तकनीकें इस उद्देश्य के लिए प्रस्तुत की गई हैं और उनका उपयोग किया जाता है। यहाँ पर लक्ष्य निर्धारण नाम की एक ऐसी ही तकनीक का वर्णन किया जा रहा है। आप भी इसे आजमा सकते हैं।

1. ***अपने लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कीजिए:*** *हममें से कई लोगों के सामने यह समस्या रहती है कि हम अपने लक्ष्यों को परिशुद्ध ढंग से व्यक्त नहीं करते। इसके कारण लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ना और उस दिशा में गतिविधि पर नजर रखने में काफी अस्पष्टता बनी रहती है। इसलिए यह आवश्यक है कि लक्ष्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाए और व्यक्ति उस पर डटा रहे।*
2. ***चुनौती भरे लक्ष्यों को चुनना :*** *चुना हुआ लक्ष्य ऊँचे स्तर पर स्थित होना चाहिए। लक्ष्य ऐसा हो जो आपसे आपका श्रेष्ठ निष्पादन मांग रहा हो। ऐसा लक्ष्य आपको बाँध लेगा और आप सार्थक रूप से कार्य करने में संलग्न अनुभव करेंगे।*
3. ***प्राप्त किए जा सकने वाले लक्ष्य चुनिए:*** *एक लक्ष्य चुनते समय यह याद रखना चाहिए कि वे यथार्थपरक हों और प्राप्त किए जा सकें। अत्यंत कठिन लक्ष्यों के चुनने पर असफलता अवश्यंभावी हो जाती है। अतः लक्ष्य न तो अत्यंत नीचे और न ही अत्यंत ऊँचे होने चाहिए। यथार्थवादी लक्ष्य ही हमेशा चुनने चाहिए।*
4. ***लक्ष्य पाने के लिए अपने को पुरस्कृत कीजिए:*** *जब लक्ष्य मिल जाए तब अपने को अच्छी तरह पुरस्कृत करना नहीं भूलना चाहिए। अपने को पुरस्कृत किए बिना दूसरा लक्ष्य नहीं लेना चाहिए। ऐसा करने पर आप नए कार्यों को अधिक रुचि, शक्ति और निष्ठा से हाथों में ले सकेंगे।*
5. ***चुने हुए लक्ष्य के प्रति आस्थावान रहिए:*** *लक्ष्य तय कर लेने के बाद आपको उसे आत्मसात करना चाहिए और उसके प्रति लगाव अनुभव करना चाहिए। लक्ष्य तक पहुँचने के प्रति लगाव निरंतर काम करते रहने की प्रेरणा देता है।*
6. ***फीडबैक की व्यवस्था:*** *लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने की यात्रा के बीच कुछ संकेत और चिह्न होने चाहिए जो यह बताएँ कि व्यक्ति की कितनी प्रगति हुई। उचित फीडबैक मिलने से कार्य करने में सुविधा होती है। इससे दिशा प्राप्त होती है तथा पिछले प्रयासों में हुई गलतियों को सुधारने में सहायता मिलती है।*

संवेगों का स्वरूप

हर्ष, क्रोध, भय तथा आश्चर्य के अनुभव हमारे दैनिक जीवन के सामान्य अनुभव हैं। इन संवेगों के बिना हम अपने जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते। संवेगों के बिना जीवन नीरस तथा उबाऊ हो जाएगा। संवेग हमें विभिन्न दिशाओं में काम करने के लिए प्रेरित करते हैं। संवेगों का प्रभाव बहुत शक्तिशाली होता है। एक क्रोधी व्यक्ति अपने संबंधों को समाप्त कर सकता है और क्रोध के लक्ष्य व्यक्ति के जीवन के लिए खतरा बन सकता है। इसी तरह हर्ष तथा प्रसन्नता के अनुभव सकारात्मक व्यवहार; जैसे – सहायता करना एवं समूह को अपनाने में योगदान कर सकते हैं। संवेगों की हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है तथा इससे कई कार्य संपादित होते हैं। निजी अनुभव में आई हुई अथवा कल्पित घटना के प्रति व्यवहार करने के लिए संवेग हमें उद्वेलित करते हैं। इस प्रकार संवेग हमें निश्चित लक्ष्य की दिशा में हमारे क्रियाकलापों को निर्देशित करते हैं। हम किन चीजों पर ध्यान देते हैं और जीवन में किन विभिन्न पक्षों को याद करते हैं और व्याख्या करते हैं, इन सबको भी संवेग प्रभावित करते हैं। आपने अध्याय 8 में मानसिक अवस्था (मूड) तथा स्मृति के संबंधों के विषय में पढ़ा था। संवेग यह भी बताते हैं कि क्या प्रासंगिक है। वे हमारी सामाजिक अंतःक्रियाओं को संचालित करते हैं तथा अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने में सहायक होते हैं।

संवेग पद का शाब्दिक अर्थ गति है तथा संवेग हमें आंतरिक रूप से गतिशील बनाते हैं। गतिशीलता के इस अनुभव में दैहिक अनुक्रियाएँ और उद्वेलित भावनाएँ दोनों शामिल हैं। मनोवैज्ञानिकों ने *संवेग को परिवर्तनों का जटिल संरूप माना है। इन परिवर्तनों में दैहिक उद्वेलन, संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ, व्यवहारपरक अनुक्रियाएँ, मौखिक अभिव्यक्ति, हावभाव तथा आत्मपरक अनुभव आते हैं, जो किसी भी ऐसी परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रियास्वरूप होते हैं, जिन्हें व्यक्ति किसी अर्थ में महत्त्वपूर्ण मानता है।*

मानवीय संवेगों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, जिसमें अनेक प्रकार के अनुभव; जैसे – कुंठा, ईर्ष्या, घृणा, अवसाद, प्रसन्नता, बेखुदी आदि सभी सम्मिलित हैं। वास्तव में संवेगों को सक्रिय करने वाले उद्दीपकों तथा व्यक्तिगत अनुभवों का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। इन सभी संवेगों के तीन प्रमुख पक्ष होते हैं : **मौखिक अभिव्यक्ति, शारीरिक परिवर्तन** तथा **आत्मपरक भावनाएँ**। डार्विन का मानना

था कि संवेग जीवित रहने तथा अनुकूलन से संबंधित हैं। उनके अनुसार सांवेगिक प्रतिक्रियाएँ जन्मजात होती हैं। घटनाओं के प्रति प्रतिक्रिया करते समय पशुओं तथा मनुष्यों के बीच कई समानताओं का वर्णन डार्विन ने किया है। उद्-विकासात्मक दृष्टि में संवेगों को जन्मजात विशिष्ट मानसिक रुझान माना जाता है जो परिवेश में बार-बार घटित होने वाली घटनाओं से जूझने के लिए उपयोगी होते हैं। समकालीन विचारधारा संवेगों में जन्मजात तथा अर्जित दोनों ही तरह के कारकों की उपस्थिति स्वीकार करती है।

प्राचीन काल से ही संवेगों के विषय में चिंतन होता रहा है। आपने देखा होगा कि भारतीय शास्त्रीय नृत्यों; जैसे – भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचीपुडी, कथक तथा अन्य में आँख, पैर, अँगुलियों तथा हाथ की सहायता से विभिन्न प्रकार के संवेगों की अभिव्यक्ति की जाती है। शरीर की गति एवं अशाब्दिक संचार (जैसे – आँख की नजर) में नर्तक कठिन परिश्रमवाला प्रशिक्षण लेते हैं और प्रसन्नता, दुःख, प्यार, क्रोध तथा अन्य सांवेगिक स्थितियों की अभिव्यक्ति करते हैं। उनका प्रभावशाली प्रदर्शन तथा शक्तिशाली निष्पादन दर्शकों को इतना अभिभूत करता है कि वे भी उन्हीं के साथ एकाकार होकर उन संवेगों का अनुभव करते हैं। वे सहृदय हो जाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में मूलभूत संवेगों की पहचान का प्रयास किया गया है। यह पाया गया है कि कम से कम छः प्रकार के संवेग लगभग सभी संस्कृतियों में पाए जाते हैं। ये संवेग हैं : क्रोध, घृणा, भय, प्रसन्नता, दुःख तथा आश्चर्य। **इजार्ड** (1977) ने दस मूलभूत संवेगों का उल्लेख किया है: **उल्लास, आश्चर्य, क्रोध, घृणा, अवमानना, भय, शर्म, अपराधबोध, अभिरुचि,** तथा **उत्तेजना।** इन्हीं संवेगों के विभिन्न जोड़ों से अन्य संवेग (जैसे – उल्लास + रुचि या उत्तेजना = प्यार) भी पैदा होते हैं। इजार्ड ने बताया है कि नवजात शिशु मात्र सामान्य ऋणात्मक अवस्था तथा रुचि और कष्ट की अनुभूति कर पाते हैं। जन्म के कुछ महीनों के बाद उल्लास तथा क्रोध का विकास होता है। नौ माह की अवस्था के साथ शर्म तथा भय का विकास होता है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ संवेग ऐसे भी होते हैं, जो जैविक आधार पर एवं अनुभव की दृष्टि से भिन्न होते हैं। **प्लुचिक** (1984) ने विभिन्न संवेगों से संबंधित व्यवहार के अनुकूलन वाले पक्ष पर फिर से बल दिया है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भय का है, जो खतरों से दूर हटने से जुड़ा हुआ है। प्लुचिक के अनुसार आठ मूलभूत संवेग होते हैं, जो चार विलोम सहित जोड़ों से बने हैं; उल्लास तथा दुःख, भय तथा क्रोध, आश्चर्य तथा आशा, एवं स्वीकृति तथा घृणा अन्य सभी संवेग इन्हीं आठ मूल संवेगों के भेद, या बदले रूप हैं या इनके मिश्रण से उद्भूत होते हैं। इस प्रकार, प्यार का संवेग उल्लास तथा स्वीकृति का योग है। आशावादिता का अनुभव पुर्वानुमान एवं उल्लास के मिश्रण से उत्पन्न होता है। अवमानना क्रोध तथा घृणा का परिणाम है। यह याद रखना चाहिए कि संवेग को व्यक्त करने के लिए जिन शब्दावलियों का उपयोग होता है वे एक प्रकार से संवेगों के समय घटित होने वाली विभिन्न प्रक्रमों एवं संवेगों की अवस्था में घटित होने वाली विभिन्न प्रक्रियाओं के संक्षेप हैं – आशुलिपि (Shorthand) की तरह।

संवेगों की अभिव्यक्ति

लोग संवेगों की अभिव्यक्ति करते हैं तथा दूसरों को देखकर इस बात का लगभग ठीक-ठीक अनुमान भी लगा लेते हैं कि वे किन संवेगों को व्यक्त कर रहे हैं। हाव-भाव, मुखाभिव्यक्ति, क्रियाएँ, शब्द यहाँ तक कि चुप्पी से भी यह पता चलता है कि व्यक्ति किन संवेगों का अनुभव कर रहा है। डार्विन का विचार था अशाब्दिक संचार के विविध पक्ष आनुवंशिक होते हैं एवं जीवित रहने के लिए मूल्यवान होते हैं। जब हम दूसरों को बताते हैं कि हमें कैसा लग रहा है तो उस समय हमारे संवेग यह भी बताते हैं कि हम कैसा व्यवहार करने वाले हैं। विभिन्न संस्कृतियों में किए गए अध्ययनों के आधार पर बताया गया है कि फोटोग्राफ में क्रोध, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य, दुःख तथा प्रसन्नता आदि की एक जैसी पहचान होती है। दूसरे आधार पर बहुत से विद्वानों ने सार्वभौमिक सांवेगिक अभिव्यक्तियों की कल्पना की है तथापि मुखाकृति की अभिव्यक्ति से संवेगों की अचूक पहचान हमेशा संभव नहीं है। लोगों में यह योग्यता भी होती है कि वे अपने संवेगों को दबा दें अथवा उसमें बदलाव कर लें।

जिस समय हम बातचीत करते हैं उस समय हमारी वाणी की आवाज की तीव्रता, रुकावट, बल, आवृत्ति एवं चुप्पी से भी काफी मात्रा में संवेगों का अशाब्दिक संचार घटित होता है। हम इनको शब्दों से परे **या पराभाषा** (Paralanguage) के कारक मानते हैं, जिसमें बोले गए शब्दों के स्तर के ऊपर और आगे संचार के माध्यम होते

हैं। इसके अतिरिक्त हम अपने भावों को नजरों से देखना (घूरना), हाव-भाव, कायिक स्थिति तथा चलने की शैली आदि द्वारा भी संप्रेषित करते हैं। अशाब्दिक हाव-भाव एवं अन्य प्रकार की गतियों को **एम्बलम** (Emblem) या **प्रतीक** कहते हैं। इनका उपयोग एक विशिष्ट अर्थ बताने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, ऊपर नीचे अपने सिर को हिलाने का मतलब 'हाँ' कहना है। यह **शरीर भाषा** (Body language) का उदाहरण है।

यह सामान्य रूप से स्वीकृत है कि संवेग का अनुभव सहज रूप से व्यक्ति के वातावरण में सांवेगिक उद्दीपन से संचालित होता है। परंतु संवेगों की अभिव्यक्ति को नियंत्रित किया जा सकता है। कभी-कभी हमें अपने संवेगों को छिपाना आवश्यक हो जाता है। यह देखा गया है कि चेहरे को नियंत्रित करना शरीर की तुलना में अधिक सरल होता है।

संवेग का दैहिक आधार

संवेग दैहिक उद्वेलनों से प्रायः जुड़े होते हैं, विशेष रूप से परिधीय तंत्रिका तंत्र में होने वाले परिवर्तनों के साथ। इसके अंतर्गत कायिक स्नायु मंडल जो स्वैच्छिक होता है, तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र आता है, जो अनैच्छिक है। **विलियम जेम्स** का विचार था कि पर्यावरण की कोई भी घटना दैहिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है, जिसके बाद संवेग की अनुभूति होती है। अतः, जब कोई बच्चा भालू देखता है (घटना), तब वह भागना प्रारंभ कर देता है (दैहिक प्रतिक्रिया) और तब उसे डर महसूस होता है (संवेग)। **लैंग** नाम के एक और मनोवैज्ञानिक ने भी इसी तरह का विचार दिया था। इसीलिए इस सिद्धांत को **जेम्स-लैंग सिद्धांत** कहा जाता है। इसके विपरीत **कैनन** तथा **बार्ड** ने कहा कि किसी उद्दीपक विशेष की उपस्थिति से कॉर्टेक्स शारीरिक परिवर्तन तथा संवेग दोनों उत्पन्न करता है। आपातकालीन प्रतिक्रिया तथा संवेगों के अनुभव एक के बाद एक या क्रमशः उत्पन्न न होकर साथ-साथ घटित होते हैं।

मस्तिष्क के केंद्र में स्थित **लिंबिक व्यवस्था** की संवेगों में भूमिका कई अध्ययनों से स्पष्ट होती है। ऐसा पाया गया है कि मस्तिष्क के उच्च केंद्र संवेगों की अभिव्यक्तियों को दबा सकते हैं या रोक सकते हैं। यह पाया गया है कि मस्तिष्क का बायाँ गोलार्ध सकारात्मक संवेगों के लिए उत्तरदायी होता है एवं दाहिना गोलार्ध ऋणात्मक संवेगों के लिए। इसीलिए मस्तिष्क के बाएँ भाग में किसी आघात के कारण अवसाद, भय तथा निराशा की स्थिति उत्पन्न होती है। जबकि यदि क्षति दाहिने गोलार्ध में हो तो तटस्थता या सुख के आवेग की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मस्तिष्क में होने वाली रासायनिक प्रक्रिया सांवेगिक अनुभवों से जुड़ी है। उदाहरणार्थ, मस्तिष्क के लिए **न्यूरोट्रांसमीटर** के स्तर में कमी; जैसे – **नोरेपिनेफ्राइन** तथा **सेरोटोनिन** अवसाद से जुड़ी होती हैं। जैसा कि आपने अध्याय 3 में पढ़ा है, संवेगों के अनुभव के नियमन में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है।

संवेगों में स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की भूमिका को हम एक उदाहरण की सहायता से समझ सकते हैं। कल्पना कीजिए कि आप रात में एक सुनसान सड़क पर टहल रहे हैं। अचानक किसी अँधेरे कोने से निकल कर कोई व्यक्ति आपके सामने आ जाता है। ऐसी भयावह स्थिति में कतिपय परिवर्तन दिखाई देते हैं, जो सहानुकंपी तंत्रिका तंत्र प्रणाली की सक्रियता को बताते हैं। आमाशय तथा अंतड़ियों को जाने वाली रक्तवाहिकाओं में संकुचन होता है और भोजन पचने की क्रिया रुक जाती है। **पैनक्रीज** (Pancreas) से ग्लूकोजेन नामक हार्मोन निकलता है जो यकृत को उद्दीप्त करता है, जिससे वह संचित चीनी को रक्तनलिकाओं में प्रवाहित कर सके। एड्रीनल एपिनेफ्राइन नामक हार्मोन का स्राव करती है। साँस गहरी एवं तेज चलने लगती है। दिल की धड़कन बढ़ जाती है, जिससे रक्त संचार भी बढ़ जाता है। आँख की पुतलियाँ फैल जाती हैं तथा पसीने की ग्रंथियाँ सक्रिय हो जाती हैं (पसीना छूटने लगता है)। गर्दन तथा कंधे की पेशियों में तेजी से तनाव आ जाता है तथा त्वचा के नीचे स्थित पेशियाँ संकुचित होने लगती हैं। जब भय उत्पन्न करने वाली स्थिति समाप्त हो जाती है तो परानुकंपी तंत्रिका तंत्र से संबंधित दूसरी तरह के दैहिक परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं।

नए प्रमाण यह दर्शाते हैं कि तंत्रिका तंत्र से प्राप्त सूचनाओं से सांवेगिक अनुभव में वृद्धि हो, लेकिन यह आवश्यक नहीं है। संवेगों के लिए आवश्यक अंग मस्तिष्क तथा चेहरा होते हैं। जैव-रासायनिक क्रियाएँ भी परिस्थिति के अर्थ बदलने के साथ बदलती हैं। उदाहरणार्थ, आँख में आँसू खुशी के कारण भी आते हैं और धुँए के लगने से भी, लेकिन उनकी जैव-रासायनिक संरचना में अंतर होता है। संवेगों के उत्पन्न होने की स्थिति में लैक्रिमल ग्रंथियाँ, जो

अश्रु नलिकाओं को उद्दीप्त करती है, अधिक मात्रा में आँसू निकालती हैं, जिसमें प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है।

संवेग के दैहिक माप

संवेदनशील इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों की सहायता से संवेगों तथा मानव शरीर में होने वाले परिवर्तनों का मापन किया जा सकता है। इस तरह के एक उपकरण को **पॉलीग्राफ** कहते हैं। इसकी सहायता से प्रयोज्य के तंत्रिका तंत्र में होने वाले न्यूनतम परिवर्तनों को मापा जा सकता है। ये परिवर्तन विद्युतीय संकेतों के रूप में होते हैं, जिन्हें स्वचालित ढंग से कागज पर रिकार्ड किया जाता है। पालीग्राफ एक साथ कई दैहिक मापकों को उपलब्ध कराता है। विद्युत् त्वचीय क्रिया इस दृष्टि से विशेष रूप से उपयोगी होती है। जब स्वचालित तंत्रिका तंत्र उद्दीप्त होता है तो हथेलियों में स्वेद ग्रंथियों के कारण नमी पैदा होने लगती है। चूँकि पानी विद्युत् का सुचालक होता है, इसलिए विद्युत् की एक संक्षिप्त तरंग भी हथेलियों में प्रवाहित की जाती है, और चालक में होने वाला थोड़ा-सा भी परिवर्तन सरलतापूर्वक ज्ञात हो जाता है। यह विद्युत् तरंग इतनी दुर्बल होती है कि हमें इसका अनुभव ही नहीं हो पाता है।

पॉलीग्राफ तथा झूठ की पहचान : झूठ की पहचान करने वाले परीक्षण में परीक्षार्थी से प्रारंभ में बहुत से तटस्थ किस्म के प्रश्न पूछे जाते हैं, ताकि आधारभूमि (Base line) तैयार की जा सके। ये साधारण प्रश्न होते हैं। इसके बाद ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें अपराध से संबंधित जानकारी होती है, जिसे केवल अपराध करने वाला ही जानता है। दुर्भाग्य से पॉलीग्राफ झूठ जानने का विश्वसनीय परीक्षण नहीं है। यह परीक्षण इस मान्यता पर कार्य करता है कि पॉलीग्राफ द्वारा झूठ की पहचान की जा सकती है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि अन्य बहुत से कारक; जैसे – उल्लास, पीड़ा, चिंता आदि भी दैहिक उद्वेलन में बदलाव ला सकते हैं। इनमें वैयक्तिक भिन्नता भी पाई जाती है। इस परीक्षण में भी लोग झूठ बोल सकते हैं। इन बातों के बावजूद इसका उपयोग झूठ को पहचानने के लिए किया जाता है।

संवेग के संज्ञानात्मक आधार

जहाँ दैहिक उद्वेलन संवगों के अनुभव के लिए महत्त्वपूर्ण है, इससे यह नहीं पता चल पाता है कि विभिन्न संवगों के बीच क्या अंतर है। जब कोई आदमी प्यार, क्रोध, भय या घृणा का अनुभव करता है तो शायद एक ही तरह के उद्वेलन का अनुभव करता है। संवेगों में शामिल संज्ञानात्मक कारकों के आधार पर विभिन्न संवेगों में अंतर किया जा सकता है। **शैख्तर** तथा **सिंगर** (1962) ने बताया है कि हम किसी उद्वेलन विशेष को एक नाम देते हैं, उसी के आधार पर अंतर किया जा सकता है। उन्होंने अपने प्रयोगों में प्रतिभागियों को एड्रीनलीन की सूई उद्वेलन पैदा करने के लिए लगाई। इसके बाद कुछ प्रयोज्यों को बताया गया कि एड्रीनलीन का क्या प्रभाव होगा। शेष प्रयोज्यों से झूठ बोला गया था और उन्हें बताया गया था कि उन्हें एक खास विटामिन की सूई लगाई गई है। इस दशा में उद्वेलन की कोई चर्चा नहीं की गई। इन प्रतिभागियों को भिन्न-भिन्न दशाओं में रखा गया था, जिससे सामान्य जीवन दशा में क्रोध या प्रसन्नता का आवेग पैदा होता है। अंत में प्रतिभागियों से पूछा गया कि वे किस तरह के संवेगों का अनुभव कर रहे हैं। जो प्रतिभागी क्रोध की दशा में रखे गए थे, उन्होंने बताया कि उन्हें क्रोध आ रहा है तथा जो प्रयोज्य प्रसन्नता के आवेग उत्पन्न करने वाली दशा में रखे गए थे उन्होंने बताया कि उन्हें प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। यह परिणाम उन प्रतिभागियों में अधिक पुष्ट पाया गया, जिन्हें बताया गया था कि उन्हें विटामिन की सूई लगाई गई है। जिन प्रयोज्यों को उद्वेलन के विषय में सही तथ्यों से अवगत कराया गया था, उन्होंने अपने द्वारा तीव्र संवेगों के अनुभव होने की बात ही बताई।

ऐसा लगता है कि संवेग सर्वप्रथम सामान्य दैहिक उद्वेलन की अवस्था में पैदा होते हैं तथा इसके बाद द्वितीय चरण में वे संज्ञानात्मक स्तर पर सक्रिय होते हैं। उपर्युक्त सिद्धांत की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में क्रियाओं का विशिष्ट संवेगपरक संरूप पाया जाता है। **लेजारस** (1993) के अनुसार, संवेग ऐसी संगठित मनोदैहिक प्रतिक्रिया है जो अच्छी या बुरी सूचना को परिवेश के संदर्भ में देखने के फलस्वरूप अनुभव की जाती है। उनके अनुसार, हम निरंतर अपने परिवेश में सार्थकता की भी खोज करने में लगे रहते हैं। हम केवल इसके लिए संकेतों की खोज नहीं करते कि किस तरह व्यवहार करते हैं, बल्कि इसके लिए भी कि कैसा महसूस करें, यह भी संकेतों पर निर्भर करता है। जब भी कोई परिस्थिति हमारे लिए सार्थक होती है, संवेगों को जन्म देती है। यह हमारे कल्याण के लिए

हानिप्रद अथवा सहायक हो सकता है। किसी भी दशा के मूल्यांकन के कई आयाम होते हैं। इनमें प्रमुख आयाम हैं : नवीनता, निश्चय, नियंत्रण, तथा प्रसन्नता। इसलिए किसी भी दशा में हम निम्न अथवा उच्च नियंत्रण कर सकते हैं तथा संवेग प्रिय अथवा अप्रिय हो सकते हैं।

यहाँ इस बात का उल्लेख उपयुक्त होगा कि संवेगों में उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं, जो व्यापक संज्ञानात्मक विश्लेषण से स्वतंत्र होती हैं। **टॉमकिंस** (1968) ने तात्कालिक एवं जन्मजात भावात्मक प्रतिक्रियाओं की सार्थक भूमिका पर विशेष बल दिया है। उदाहरण के लिए, बच्चे की उच्च ध्वनि के प्रति भय की प्रतिक्रिया करने में सीखने तथा संज्ञानात्मक मूल्यांकन की आवश्यकता नहीं होती है। बच्चों में जन्म से ही इस बात की तत्परता रहती है कि वे कुछ उद्दीपकों के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रिया कर सकें। टॉमकिंस के अनुसार संवेग प्राथमिक अभिप्रेरक शक्ति होते हैं। वे तात्कालिक रूप से कुछ क्रियाओं को करने की समझ विकसित करते हैं और कुछ कार्यों को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं। याद रहे कि संवेग तब भी उपस्थित रह सकते हैं, जब हमें उनका चेतन रूप से बोध नहीं होता है।

आपने अब तक पढ़ा

आपने अपने जीवन में संवेगों के महत्त्व के बारे में पढ़ा। एक सांवेगिक अनुक्रिया में दैहिक उद्वेलन, संज्ञानात्मक क्रिया, व्यवहारपरक प्रतिक्रियाएँ, मौखिक अभिव्यक्ति आदि आते हैं। उल्लास, आश्चर्य, क्रोध, जुगुप्सा, अपमान, भय, शर्म, अपराधबोध, रुचि तथा उत्तेजना आदि को मूल संवेग कहा जाता है। लिंबिक, अनुकंपी तथा सहानुकंपी प्रणालियाँ संवगों के अंनुभव में सम्मिलित होते हैं। पॉलीग्राफ की सहायता से संवेग की दैहिक प्रतिक्रियाओं का मापन किया जाता है।

संवेग तथा अभिप्रेरणा के बीच संबंध

अभिप्रेरणा तथा संवेग दोनों ही संप्रत्यय इस बात पर केंद्रित है कि व्यवहार को क्या संचालित करता है या गतिमान बनाता है। वास्तव में, अंग्रेजी के Motivation तथा Emotion ये दोनों शब्द लैटिन के एक ही स्रोत से निकले हैं, जिसका अर्थ है – गति अथवा क्रिया। जैसा कि हमने देखा कि अभिप्रेरक एक व्यापक संप्रत्यय है, जिसके अंतर्गत क्रिया की वरीयता, तीव्रता तथा लगन अर्थात् सतत काम करने की प्रवृत्ति आदि से जुड़ी आंतरिक प्रक्रियाएँ शामिल हैं। यह एक गत्यात्मक संप्रत्यय है, जिसका उपयोग उन प्रक्रियाओं के वर्णन के लिए किया जाता है, जो व्यवहार को दिशा निर्देश देती हैं। इसके विपरीत, संवेग को उद्वेलन, आत्मपरक अनुभव तथा संज्ञानात्मक व्याख्या के जटिल संरूप के रूप में देखा जाता है। संवेग मुखाकृति तथा शारीरिक संकेतों के रूप में तथा अन्य सांवेगिक क्रियाओं में अभिव्यक्त होते हैं। अभिप्रेरणा के अध्ययनों में अभिप्रेरित व्यवहार की शक्ति तथा उसके स्वरूप को समझने का प्रयास किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक अभिप्रेरित व्यक्ति शारीरिक रूप से किसी लक्ष्य अथवा स्थिति की ओर अथवा उससे दूर दिशा में आगे बढ़ता है। संवेग महत्त्वपूर्ण परिस्थितियों में व्यक्ति को आंतरिक रूप से गतिमान करता है।

अभिप्रेरित होने के सांवेगिक परिणाम भी हो सकते हैं, एवं संवेगों के कारण व्यक्ति अभिप्रेरित भी हो सकता है। प्राथमिक आवश्यकताएँ; जैसे – भूख, प्यास, कामभावना अथवा मनोसामाजिक आवश्यकताएँ; जैसे – उपलब्धि, सामर्थ्य, अनुमोदन आदि के अंतर्गत उल्लास, अपराधबोध, गौरव आदि सांवेगिक प्रतिक्रियाएँ भी शमिल होती हैं। गुणारोपण सिद्धांत की मान्यता है कि गुणारोपण के सांवेगिक परिणाम होते हैं। यह भी माना जाता है कि संवेगों का विकास वातावरण की अवश्यकताओं के साथ अनुकूलन स्थापित करने के लिए हुआ। उच्च मात्रा में तथा दीर्घकालिक उद्वेलन का ऋणात्मक प्रभाव होता है। सामान्य स्थितियों में संवेगों की भूमिका लाभप्रद होती है। वे परिवेशगत उद्दीपकों के प्रति हमारे प्रतिक्रिया करने में लचीलेपन को बढ़ाते हैं। चूँकि कुछ उद्दीपकों के संदर्भों, हमारी अवश्यकताओं तथा प्रत्याशाओं का ध्यान रखते हैं, वे हमारे व्यवहारों को प्रभावी बनाते हैं। संवेगों के आत्मपरक अनुभवों का अभिप्रेरणात्मक अवयव भी होता है क्योंकि ये हमें लक्ष्यवस्तु तक या तो पहुँचाते हैं अथवा पलायन करवाते हैं। संवेगों में होने वाले शारीरिक परिवर्तन हमें अनुकूलन स्थापित करने वाली दशाओं के लिए प्रतिक्रिया करने हेतु तैयार करते हैं। इस तरह हमें पता चलता है कि अभिप्रेरणा तथा संवेग एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित हैं तथा वास्तविक व्यवहार की दशा में दोनों में भेद करना कठिन है। वास्तविक जीवन की स्थितियों में सशक्त ढंग से व्यवहार करने में दोनों ही सहायता करते हैं।

सांवेगिक दक्षता

संवेग उत्पन्न करने वाले सामाजिक क्रियाकलापों में आत्म प्रभाविकता तथा संवेग उत्पन्न करने वाले सामाजिक क्रियाकलाप व्यक्ति के दक्षतापूर्ण सांवेगिक प्रकार्यों के लिए केंद्रीय महत्त्व के होते हैं। व्यक्ति की दक्षतापूर्व सांवेगिक क्रियाशीलता में आत्म-दक्षता तथा संवेग पैदा करने वाली सामाजिक अंत:क्रियाएँ प्रमुख होती हैं। लोग सांवेगिक रूप से व्यवहार भी करते हैं परंतु साथ ही संवेगों के बारे में अपने ज्ञान को दूसरों के साथ संबंधों के प्रसंग में प्रयुक्त भी करते हैं। सांवेगिक दक्षता संवेगों से जुड़ी क्षमता और बदलते वातावरण के साथ समायोजित होने में आवश्यक योग्यताओं से जुड़ी है। यह व्यक्ति को अधिक अनुकूलित और आत्मविश्वास से भरपूर बनाती है। संवेग संबंधी क्षमताओं तथा योग्यताओं का अनुकूलन हेतु उपयोग हमें विशिष्ट सांस्कृतिक संदर्भों से जोड़ता है तथा एक ही संस्कृति के अंतर्गत भी विभिन्न व्यक्तियों में अंतर दिखता है। हाल ही में सांवेगिक बुद्धि का संप्रत्यय भी प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत कुंठा के समय भी कोशिश करते रहना, संतुष्टि को विलंबित करना, मूड का संचालन तथा आवेगों का नियंत्रण आदि विशेषताएँ आती हैं। जीवन की विभिन्न प्रकार की स्थितियों में समायोजन स्थापित करने में सांवेगिक बुद्धि सहायक होती है।

क्रियाकलाप 11.6

सांवेगिक बुद्धि परीक्षण

यह सांवेगिक बुद्धि के मापन का स्वयं अपनी जाँच करने वाला एक परीक्षण है। नीचे 20 कथन दिए गए हैं। प्रत्येक के आगे पाँच संभावित प्रतिक्रियाएं दी गई हैं। ***हमेशा, प्रायः, कभी-कमी, कदाचित*** *तथा* ***कभी नहीं।*** *ध्यानपूर्वक प्रत्येक कथन को पढ़ें तथा दी गई पाँच संभावित प्रतिक्रियाओं में से किसी एक को चुनें, जो एक स्थिति विशेष में आपके अनुसार उपयुक्त है।*

क्रम संख्या	*हमेशा*	*प्रायः*	*कभी-कभी*	*कदाचित*	*कभी नहीं*
1. मैं बिना किसी प्रतिदान की आशा के किसी भी जरूरतमंद आदमी की सहायता करता हूँ।	—	—	—	—	—
2. मैं बहुत संवेदनशील हूँ तथा दूसरों की भावनाओं का ध्यान रखता हूँ।	—	—	—	—	—
3. मैं अपने संवेगों के कारण दूसरों से संबध नहीं बिगाड़ता। मैं सदैव अपने संवेगों को नियंत्रण में रखता हूँ।	—	—	—	—	—
4. यदि मुझे कोई किसी तरह की हानि पहुँचाता है, तो मैं इस बात को कभी नहीं भूलता। मैं जैसा को तैसा जवाब देने की फिराक में रहता हूँ।	—	—	—	—	—
5. किसी भी तरह के व्यक्ति के साथ समायोजन स्थापित करने में मुझे कोई दिक्कत नहीं होती है।	—	—	—	—	—
6. पहले की गई किसी गलती के लिए मैं अपराध बोध का अनुभव करता हूँ।	—	—	—	—	—
7. मैं दूसरों के दुख को बांटने की कोशिश करता हूँ। जब कोई दुखद स्थिति में होता है तो मैं उसके प्रति सहानुभूति रखता हूँ तथा उसका ध्यान रखता हूँ।	—	—	—	—	—
8. मैं कुछ लेने के बदले कुछ देने में ही खुशी और मन की शांति का अनुभव करता हूँ।	—	—	—	—	—
9. मेरे सामने ज्यों ही कोई समस्या आती है। मैं उसका समाधान करता हूँ, इससे मैं परेशानियों से मुक्त हो जाता हूँ।	—	—	—	—	—
10. मैं अपनी समस्याओं को खुले दिमाग से देखता हूँ। मैं अपने निर्णयों तथा कार्यों पर अपने संवेगों तथा भावनाओं का प्रभाव नहीं पड़ने देता हूँ।	—	—	—	—	—

11. मेरी भावनाएँ पीड़ित व्यक्ति के साथ जुड़ी रहती हैं। मैं ऐसे व्यक्ति के साथ समय बिताने की कोशिश करता हूँ तथा उसकी पीड़ा तथा परेशानियों में भागीदारी निभाता हूँ।	—	—	—	—	—
12. कुछ परिस्थितियाँ तथा कुछ व्यक्ति मुझमें वितृष्णा पैदा कर देते हैं।	—	—	—	—	—
13. मैं बहुत जल्दी आहत हो जाता हूँ। ऐसे अवसरों पर मैं अपमानित महसूस करता हूँ तथा लगता है कि मेरा अवमूल्यन किया गया है।	—	—	—	—	—
14. मैं दूसरों के सामने खुलकर अपने को व्यक्त नहीं कर पाता हूँ। प्रायः मैं अपने व्यवहारों में दबा-दबा रहता हूँ।	—	—	—	—	—
15. सांवेगिक रूप से मैं क्षुब्ध नहीं होता हूँ। मैं अपने सगे संबंधियों के पीड़ित होने पर भी परेशान नहीं होता हूँ।	—	—	—	—	—
16. मैं यथार्थवादी इरादे रखता हूँ तथा उनके लिए अपनी सारी शक्ति लगा देता हूँ।	—	—	—	—	—
17. मैं अपने विचारों तथा कार्यों में अच्छी पैठ रखता हूँ तथा अपने व्यवहारों पर पूरा नियंत्रण रखता हूँ।	—	—	—	—	—
18. गुस्सा होने पर मैं प्रतिक्रिया नहीं करता। शांत होने पर मैं स्थिति का पूरी तरह से विश्लेषण करने के बाद प्रतिक्रिया देता हूँ।	—	—	—	—	—
19. मेरे लिए 2+2 हमेशा पाँच के बराबर होता है। सतत असफलता के बाद भी मैं आशावादी बना रहता हूँ।	—	—	—	—	—
20. जीवन के प्रति मैं सकारात्मक दृष्टि रखता हूँ। जब भी बन पड़ता है मैं दूसरों की मदद करता हूँ। मैं किसी के खिलाफ काम नहीं करता।	—	—	—	—	—

ध्यान दें: *ये नमूने के एकांश हैं तथा इनका उपयोग निदान चिकित्सकीय मूल्यांकन के लिए वर्जित है।*

गणना

'कभी नहीं' वाली प्रतिक्रियाओं को 0 अंक, 'कदाचित्' को 1, 'कभी-कभी' को 2, 'प्रायः' को 3 तथा 'सर्वदा' को 4 अंक दें। एकांश 4, 6, 12, 13, 14 तथा 15 के लिए ऐसा न करें। इन एकांशों के लिए अंक प्रदान करने का क्रम उलटा कर दें अर्थात् 'सर्वदा' वाली प्रतिक्रियाओं को 0, प्रायः को 1, कभी-कभी को 2, कदाचित् को 3 तथा कभी नहीं को 4 अंक प्रदान करें। सभी बीस एकांशों का योग ज्ञात कर लीजिए, यही आपका सांवेगिक बुद्धि लब्धांक होगा।

व्याख्या

60 से 80 के अंक	*: उच्च सांवेगिक बुद्धि*
40 से 59 के अंक	*: मध्यम सांवेगिक बुद्धि*
20 से 39 के अंक	*: औसत सांवेगिक बुद्धि*
20 से कम लब्धांक	*: बहुत खराब सांवेगिक बुद्धि*

संस्कृति तथा संवेग

ऐसा पाया गया है कि संवेगों की अवधारणा तथा उनकी समझ में सांस्कृतिक भिन्नता पाई जाती है। कुछ संस्कृतियों; जैसे – ताहिती तथा इफालुक में संवेग के लिए कोई शब्द ही नहीं पाया जाता है। उन संस्कृतियों में जहाँ संवेगों के लिए कोई शब्द है भी वहाँ, आवश्यक नहीं है कि उनके अर्थ वे ही हों जो अंग्रेजी शब्दों के हों। विभिन्न संस्कृतियों में लोग संवेगों को अलग-अलग ढंग से वर्गीकृत करते हैं अथवा नामकरण करते हैं। जापानी भाषा का अमाए, इफलुक का शब्द सांग तथा जर्मन भाषा का शब्द सचेनफ्रयूड का अनुवाद प्रायः "निर्भरता", "न्यायसंगत क्रोध", तथा "दूसरों के दुर्भाग्य से सुखद अनुभूति" के लिए किया जाता है। इनके लिए अंग्रेजी का कोई

ठीक-ठीक शब्द उपलब्ध नहीं है। ऐसा लगता है कि संवेग का संप्रत्यय संस्कृति से जुड़ा है तथा विभिन्न संस्कृतियाँ संवेग की दुनिया को भिन्न-भिन्न ढंग से विभाजित करती हैं। विभिन्न संस्कृतियों में संवेगों के अर्थ में अंतर पाया जाता है। अमेरिका में आंतरिक आत्मपरक भावनाएँ ही संवेगों का स्वरूप निर्धारित करती हैं। परंतु कई संस्कृतियों में मनुष्य तथा परिवेश के बीच के संबंधों के आधार पर संवेग को परिभाषित किया जाता है (उदाहरण के लिए, जापान, भारत, इफलुक, ताहिती)।

हावभाव का अर्थ भी संस्कृतियों के साथ बदलता रहता है। उदाहरण के लिए, चीन के लोग दुःख अथवा निराशा के समय ताली बजाते हैं। इसी तरह हँसना क्रोध व्यक्त करने का साधन होता है। उत्तरी अमेरिका में प्रचलित अंगूठा दिखाना (थम्स अप) कई संस्कृतियों में अपमानजनक होता है। फोटोग्राफों में संवेगों की पहचान अंतर्सांस्कृतिक अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि *संस्कृतियों के बीच समानताएं भी देखने को मिलती हैं।* कुछ अंतरों के बावजूद संवेगों के वर्गीकरण में अनेक सार्वभौमिकताएँ भी हैं। यह पाया गया है कि पूरी दुनिया के बच्चे असुविधा होने पर रोते हैं, गर्दन हिलाते हैं जब उन्हें कुछ मना करना होता है, और मुस्कारते हैं जब वे खुश होते हैं। कई मूलभूत संवेगों में समानता होने के बाद भी इनकी अभिव्यक्ति के तरीकों एवं कारणों में अंतर पाया जाता है।

हम संस्कृतियों में प्रचलित उन अभिव्यक्त करने वाले नियमों का पालन करते हैं, जो यह बताते हैं कि कुछ संवेगों को व्यक्त करने की सामाजिक रूप से उपयुक्त दशाएँ कौन-सी हैं (**एवरिल**, 1976)। संस्कृतियाँ ऐसे सामाजिक नियमों की स्थापना करती हैं कि कब कुछ संवेगों को व्यक्त करना चाहिए तथा किसी विशेष स्थिति में किस प्रकार के लोगों द्वारा किस प्रकार की सांवेगिक अभिव्यक्ति उपयुक्त होगी। संस्कृतियाँ इस बात का भी संकेत करती हैं कि कब व्यवहार-प्रवृत्ति को व्यक्त करना चाहिए, कब नहीं। विभिन्न संस्कृतियों में संवेगों के व्यक्त होने के अलग-अलग नियमों से समस्याएँ तथा गलतफहमियाँ भी विकसित होती हैं। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में एक ही प्रकार के संवेगों का अभिव्यक्ति का तरीका अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, जापानी लोग उस समय भी मुस्कराते हैं जब वे गुस्से में सुलगते रहते हैं।

भारतीय परंपरा में संवेगों के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया है। 'नाट्यशास्त्र' के रचयिता **भरत** ने ई. पू. तीसरी सदी में सौंदर्य के अनुभव से संबंधित सिद्धांत को प्रतिपादत किया। उन्होंने आठ प्रमुख सौंदर्यपरक रसों



चित्र 11.3 : भारतीय परंपरा में रसों तथा भावों की अभिव्यक्ति। © शोभना नारायण, अनुमति से मुद्रित।

का उल्लेख किया है जो आठ सामान्य संवेगों या भावों से संबंधित होते हैं। प्रमुख सौंदर्यपरक रसों के अंतर्गत श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स तथा अद्‌भुत आते हैं।

प्रमुख संवेग (स्थायी भाव) जो इन रसों से जुड़े होते हैं, के अंतर्गत : कामोत्तेजक भाव (रति), प्रमोद (हास), दुःख (शोक), गुस्सा (क्रोध), ऊर्जा/दक्षता (उत्साह), डर (भय), घृणा (जुगुप्सा), तथा आश्चर्य (विस्मय) आते हैं। यहाँ भारतीय परंपरा में रसों और भावों की अभिव्यक्ति को समझने के लिए सुश्री शोभना नारायण, जो एक कथक नृत्य की प्रख्यात कलाकार हैं, के चित्रों को प्रस्तुत किया गया है (चित्र 11.3 देखिए)।

आठ प्रमुख संवेगों के अतिरिक्त भरत ने कुछ सामान्य या कम महत्त्व के गौण संवेगों का भी वर्णन किया है। पलायन या निवृत्ति (निर्वेद), कमजोरी या अक्षमता (ग्लानि), संदेह या संशय (शंका), ईर्ष्या (असूया), गौरव या नशा (मद), परिश्रम (श्रम), अकर्मण्यता (आलस्यता), अवसाद (दैन्य), चिंता, लगाव (मोह), पुनर्संग्रह अथवा चीजों का मस्तिष्क में आना (स्मृति), संतोष (धृति), लज्जा (व्रीड़ा), आवेगात्मकता (चपलता), उल्लास (हर्ष), उद्वेलन (आवेग), बुद्धिहीनता (जड़ता), गर्व या उत्साह (गर्व), निराशा (विषाद), जानने की इच्छा (औत्सुक्य), ऊंघना (निद्रा), उग्र व्यवहार (उग्रता), मृत्यु का अनुभव (मरण), भय (त्रास), संकोच (वितर्क) आदि।

संवेगों के विश्लेषण की साहित्यिक सिद्धांतों, रूपंकर, कलाओं तथा आध्यात्म का एक प्रमुख भाग है। ऐसे अध्ययनों की समृद्ध भारतीय परंपरा है, जो साहित्यिक सर्जना, नृत्य के रूपों तथा भक्ति को समझने का प्रयास करती है।

आपने अब तक पढ़ा

आपने अभी तक पढ़ा कि संवेगों की अभिव्यक्ति में शारीरिक मुद्राएँ, मौखिक अभिव्यक्ति, क्रियाएँ, शब्द, यहाँ तक कि चुप्पी भी सम्मिलित हैं। संवेगों की अभिव्यक्ति में सांस्कृतिक भिन्नताएँ दृष्टिगत होती हैं। संवेगों के विषय में भारतीय विचारधारा की समृद्ध परंपरा है। इसे रस की अवधारणा के रूप में व्यक्त किया गया है। आठ मुख्य तथा अनेक गौण रसों का उल्लेख किया गया है।

आपने कितना सीखा

नीचे दिए गए कथनों के बारे में बताएं कि वे सही हैं या गलत –

1. *क्रोध, भय, दुख तथा हर्ष आदि को प्राथमिक संवेग कहा जाता है।* सही/गलत
2. *फोटोग्राफ के आधार पर जिन संवेगों को प्रौढ़ लोग सरलतापूर्वक पहचान लेते हैं, वे हर्ष एवं पीड़ा हैं।* (सही/गलत)
3. *शांत एवं आराम की दशा में परानुकंपी तंत्रिका तंत्र सक्रिय हो जाते हैं।* (सही/गलत)
4. *उद्वेलन एवं निष्पादन में सीधी रेखा वाला संबंध होता है।* (सही/गलत)
5. *दूसरे व्यक्तियों की सांवेगिक अभिव्यक्तियों को उनके उत्पन्न करने वाली दशाओं तथा अभिव्यक्तियों के आधार पर सहजतापूर्वक जाना जा सकता है।* (सही/गलत)

उत्तर – 1. गलत, 2. गलत, 3. सही, 4. गलत, 5. सही।

प्रमुख तकनीकी शब्द

उपलब्धि अभिप्रेरक, संबद्धन अभिप्रेरक, चिंता, उपागम-उपागम द्वंद्व, उपागम-परिहार द्वंद्व, गुणारोपण, परिहार-परिहार द्वंद्व, जैविक आवश्यकताएँ, संज्ञानात्मक आवश्यकताएँ, दक्षता, द्विगुणित उपागम-परिहार द्वंद्व, संवेग, गौरव आवश्यकताएँ, कुंठा, आवश्यकताओं का पदानुक्रम, साम्यावस्था, आंतरिक अभिप्रेरक, जेम्स-लैंग का सिद्धांत, झूठ पकड़ने की मशीन, अभिप्रेरणा आवश्यकताएँ, स्व-वास्तविकीकरण की आवश्यकता, मनस्तापी चिंता, पॉलीग्राफ, सामर्थ्य अभिप्रेरक, सुरक्षा की आवश्यकताएँ, आत्मप्रभाविकता, सेक्स हार्मोन।

सारांश

- *अभिप्रेरणा एक प्रक्रिया है, जो व्यवहार प्रारंभ करती है, उसका दिशानिर्देश करती है, तथा उसे बनाए रखती है। लक्ष्य की पसंद, क्रियाओं की शक्ति, तथा उनकी निरंतरता जैसी विशेषताओं के आधार पर इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अंतर्गत लक्ष्य निर्देशित व्यवहार तथा आंतरिक संतुलन में गड़बड़ी की स्थिति में हमारी शारीरिक क्रियाएं आदि भी सम्मिलित हैं। आवश्यकताओं तथा अभिप्रेरकों का मूल्यांकन व्यवहारपरक मापों, आत्मपरक मापकों तथा प्रक्षेपी तकनीकों की सहायता से किया जाता है।*
- *आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती हैं – जैविक तथा मनो-सामाजिक। जैविक आवश्यकताएँ; जैसे – भूख, प्यास आदि जीवित रहने के लिए आवश्यक होती हैं। भूखे होने पर भोजन की आवश्यकता, हर चीज के ऊपर हावी हो जाती है। भूख के संकेत आमाशय के अकुंचन, रक्त में ग्लूकोज को कम होने, प्रोटीन के स्तर तथा शरीर में मज्जा की निम्न मात्रा से मिलता है। कभी कभी लोगों में ऐसी भूख दिखती है जो उस खाद्य पदार्थ से संबंधित होती है, जिससे वह व्यक्ति कुछ समय के लिए वंचित रहा हो।*
- *जल की आवश्यकता भोजन से अधिक महत्त्वपूर्ण है। जल की कमी वाष्पीकरण, साँस लेने, पसीना तथा मूत्र त्याग से पैदा होती है।*
- *कामपरक आवश्यकताएँ, जो जीवन के लिए आवश्यक नहीं भी होती हैं, विविध व्यवहार उत्पन्न करती हैं। ये आवश्यकताएँ सेक्स हार्मोन तथा सामाजिक कारकों से संचालित होती हैं। सेक्स से जुड़े व्यवहारों में सांस्कृतिक भिन्नता भी पाई जाती है।*
- *उपलब्धि अभिप्रेरक किसी प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति में उत्कृष्टता की ओर उन्मुख प्रयास से संबंधित होता है। संबद्धता का अभिप्रेरक लोगों से जुड़ने पर बल देता है। सामर्थ्य अभिप्रेरक का तात्पर्य दूसरों पर नियंत्रण करने की इच्छा से है। इन अभिप्रेरकों के मापन के लिए टी.ए.टी. का उपयोग किया जाता है।*
- *मास्लो ने बताया है कि ये आवश्यकताएँ एक सीढ़ीनुमा क्रम में व्यवस्थित होती हैं। जैविकीय आवश्यकताएँ आधार प्रदान करती हैं, जब ये आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं तो सुरक्षा की आवश्यकताएँ लगाव, गौरव, संज्ञानात्मक, सौंदर्यपरक, आत्मानुभूति तथा उत्कर्ष आदि की आवश्यकताएँ उत्पन्न होती हैं। वरीयता क्रम के निचले स्तर की आवश्यकताएँ तब तक सक्रिय रहती हैं जब तक उनकी पूर्ति नहीं हो जाती है। सबसे ऊपरी स्तर अर्थात् पारगामिता तक बहुत कम लोग ही पहुँच पाते हैं।*
- *प्रायः जब हम सफलतापूर्वक कुछ कार्य कर लेते हैं तो संतुष्टि का अनुभव करते हैं। सफलतापूर्वक कार्य करने का पुरस्कार व्यक्ति को बाहर नहीं वरन् व्यक्ति के अंदर ही होता है। इसे आंतरिक अभिप्रेरक कहते हैं। आप वही कार्य करते हैं, जिनसे आपको प्रसन्नता मिलती है।*
- *किसी घटना के विषय में अनुमान अथवा निष्कर्ष निकालने को गुणारोपण कहते हैं। दूसरे व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या आंतरिक कारणों के आधार पर करने की एक व्यापक प्रवृत्ति पाई जाती है। सफलता तथा असफलता का गुणारोपण हमारे उपलब्धिपरक व्यवहार को प्रभावित करता है।*
- *सफलतापूर्वक वातावरण को प्रभावित करने की योग्यता को सक्षमता कहते हैं। आपकी यह प्रत्याशा है कि कार्य सफलतापूर्वक संपन्न हो जाएगा, यह आत्म-दक्षता कहलाती है। विभिन्न कार्यों को सफलतापूर्वक पूरा करने से हमारे में आत्म-दक्षता का विकास होता है।*
- *कुंठा उस स्थिति को कहते हैं, जो तब पैदा होती है जब हम किसी लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त नहीं कर पाते हैं। कुंठा से कई तरह के व्यवहार पैदा होते हैं, जिनमें आक्रामकता, स्थिरीकरण, पलायन, परिहार, तथा रोना सम्मिलित है।*
- *द्वंद्व विकल्प को न चुन पाने की अक्षमता है जो एक साथ कई लक्ष्यों, इच्छाओं और आवश्यकताओं की उपस्थिति होने के कारण पैदा होता है। यह चार प्रकार का होता है– उपागम-उपागम, उपागम-परिहार, परिहार-परिहार तथा बहुविकल्पीय उपागम-परिहार।*

- *चिंता का संबंध व्यक्ति के आंतरिक द्वंद्व से होता है जब वह विभिन्न संभावनाओं से जूझता है। चिंता शीलगुण का एक रूप हो सकती है (शीलगुण चिंता) अथवा किसी स्थिति विशेष से संबंधित हो सकती है (परिस्थितगत चिंता)। जब आप परीक्षा देने जाते समय चिंता का अनुभव करते हैं तो उसे परीक्षण चिंता कहा जाता है। उचित उपाय के द्वारा भी इस पर काबू पाया जा सकता है।*

- *संवेगों का तात्पर्य व्यक्ति की ऐसी स्थिति से है, जिसके अंतर्गत दैहिक उद्वेलन, संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ, व्यवहारपरक प्रतिक्रियाएँ, मुख की अभिव्यक्तियाँ, हावभाव तथा आत्मपरक भावनाएँ आती हैं। संवेगों के जन्मजात एवं अर्जित दोनों ही पक्ष हैं। उल्लास, आश्चर्य, क्रोध जुगुप्सा, अवमानना, भय, शर्म, अपराधबोध, अभिरुचि तथा उत्तेजना प्रमुख संवेग हैं। दो या दो से अधिक संवेगों के मेल से नए संवेगों की उत्पत्ति होती है।*

- *यद्यपि मस्तिष्क, स्वायत्त तंत्रिका तंत्र तथा जैव-रासायनिक प्रक्रियाएँ संवेगों को दैहिक आधार प्रदान करती हैं, परंतु यह नामकरण एवं व्याख्या है, जिनके आधार पर एक संवेग दूसरे संवेग से भिन्न दिखता है।*

- *सांवेगिक अभिव्यक्तियों के अंतर्गत शारीरिक क्रियाएं, मौखिक अभिव्यक्तियाँ, शब्द तथा चुप्पी आदि आते हैं। संवेगों की मौखिक अभिव्यक्ति में सांस्कृतिक समानताएँ पाई जाती हैं। क्रोध भय, जुगुप्सा आश्चर्य, दुखी भाव, प्रसन्नता आदि के संबंध में यह बात काफी हद तक सही है परंतु यह भी ध्यातव्य है कि कुछ स्थितियों में मौखिक अभिव्यक्तियाँ भ्रामक हो सकती हैं। अभिव्यक्ति प्रदर्शन के इन नियमों में संवेगों की अभिव्यक्ति तथा सांवेगिक शब्दावलियों में संस्कृतियों के आधार पर भेद होता है।*

- *भारतवर्ष में आचार्य भरत ने सौंदर्यपरक अनुभवों का एक सिद्धांत ई. पू. तीसरी सदी में विकसित किया। यह रसों से संबंधित है (सौंदर्यपरक रसास्वादन)। आठ प्रमुख तथा तैंतीस सामान्य रसों की पहचान की गई है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा के संकेत देने वाले मापक कौन-से हैं?
2. मुख्य जैवकीय आवश्यकताएँ कौन-सी हैं?
3. आप उपलब्धि, संबद्धता तथा सामर्थ्य के अभिप्रेरकों में अंतर कैसे करेंगे?
4. आंतरिक अभिप्रेरणा क्या है?
5. आत्मदक्षता से आप क्या समझते हैं?
6. विभिन्न प्रकार के द्वंद्व कौन-से हैं?
7. चिंता क्या है? शीलगुणपरक तथा अवस्थापरक चिंता में आप कैसे अंतर करेंगे?
8. संवेगों के प्रमुख पक्ष क्या हैं?
9. संवेग के दैहिक तथा संज्ञानात्मक आधार क्या हैं?
10. संवेगों के अनुभव तथा अभिव्यक्ति में किस तरह की सांस्कृतिक भिन्नता मिलती है?
11. कुंठा क्या है? इसके कारण कौन-से हैं?

12 विकास के विविध पक्ष

इस अध्याय में आप पढ़ेंगे

- संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख सिद्धांत
- सामाजिक-सांवेगिक विकास का संरूप
- नैतिक विकास के चरण
- मूल्यों का विकास
- समग्र विकास की अवधारणा

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- उन प्रक्रियाओं और चरणों का वर्णन कर सकेंगे, जिनके द्वारा मनुष्य में चिंतन तथा तर्क करने की क्षमता का विकास होता है,
- यह व्याख्या कर सकेंगे कि सामाजिक तथा सांवेगिक सक्षमताएँ किस तरह अर्जित की जाती हैं,
- यह समझ सकेंगे कि बच्चे किस तरह एक नैतिक मनुष्य का स्वरूप ग्रहण करते हैं, तथा
- समग्र विकास के अर्थ की व्याख्या कर सकेंगे।

परिचय

जन्म से लेकर अब तक अपने जीवन में हुई विकासात्मक उपलब्धियों को याद करिए। आपका जन्म हुआ (एक महत्त्वपूर्ण घटना), आप खुद कुछ भी नहीं कर सकते थे और अपनी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर थे। धीरे-धीरे आपने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना सीखा, परिचित चेहरों को पहचानना शुरू किया और उनके प्रति हँसने की प्रतिक्रिया शुरू की, चलना सीखा, दूसरों से बात करनी शुरू की, दोस्तों के साथ खेलना शुरू किया, विद्यालय गए, पुस्तकों के पाठों को सीखा और तरह-तरह के क्रियाकलापों में शामिल हुए। संक्षेप में आप जैसे-जैसे बड़े हुए अपने जीवन के संज्ञानात्मक, भावात्मक, सामाजिक तथा नैतिक पक्षों से जुड़ी तरह-तरह की सक्षमताओं (Competencies) को अर्जित किया। क्या आपने यह महसूस किया है कि सभी लोग एक ही ढंग से विकसित होते हैं पर एक-दूसरे से भिन्न होते हैं? इस संदर्भ में आप विकास के उन आधारभूत नियमों को स्मरण कीजिए, जिनका विवेचन पुस्तक के अध्याय 5 में किया गया है।

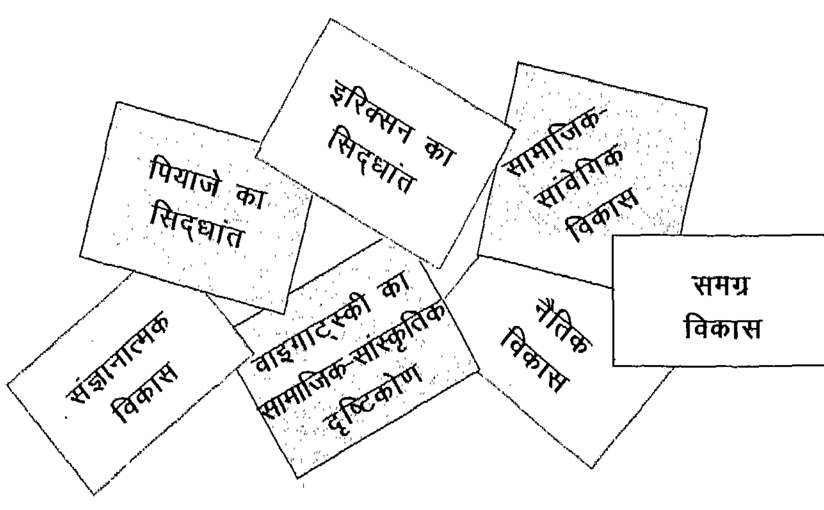
इस अध्याय में आप यह पढ़ेंगे कि बच्चे किस तरह चिंतन और समस्या-समाधान की योग्यता विकसित करते हैं, और किस तरह एक सांवेगिक, सामाजिक तथा नैतिक रूप से परिपक्व मनुष्य का रूप लेते हैं। विशेष रूप से आप संज्ञानात्मक विकास के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों को जानेंगे। आप उन कारकों के बारे में भी पढ़ेंगे, जो सामाजिक और सांवेगिक विकास को प्रभावित करते हैं। आप मनो-सामाजिक विकास के चरणों के बारे में भी पढ़ेंगे। नैतिक विकास के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण दृष्टिकोणों से भी आप अवगत होंगे। अंत में, मूल्यों के विकास के विभिन्न पक्षों से तथा समग्र विकास की अवधारणा से आपको परिचित कराया जाएगा।

क्रियाकलाप 12.1

विकास को समझना

सोचिए और यह लिखिए कि किस अर्थ में आपका विकास आपकी ही उम्र के दूसरे बच्चों की तुलना में भिन्न रहा है।

विकास की पाँच महत्त्वपूर्ण भिन्नताओं की सूची बनाइए।



संज्ञानात्मक विकास : हम किस तरह दुनिया को जानते हैं?

संज्ञानात्मक विकास का क्या अर्थ है? आपने अध्याय 9 में पढ़ा था कि संज्ञान का संबंध ज्ञान प्राप्त करने या जानने की प्रक्रिया से है। इसमें मानसिक प्रक्रियाओं; जैसे – चिंतन, समस्या-समाधान, तर्क करना तथा निर्णय लेना आदि सम्मिलित हैं। चूँकि विकास की प्रक्रिया समय के साथ होने वाले गुणात्मक परिवर्तनों को व्यक्त करती है (अध्याय 5 देखिए)। इसलिए संज्ञानात्मक विकास में हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि दुनिया को जानने के लिए बच्चों का ढंग या उनका चिंतन समय के साथ कैसे बदलता है। संज्ञानात्मक विकास के बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान **जीन पियाजे** के द्वारा परिवर्तित अध्ययनों का विशेष रूप से ऋणी है। आइए, उनके सिद्धांत पर विस्तार से विचार किया जाए।

बच्चों के चिंतन के बारे में क्या विशिष्टता है?: पियाजे का सिद्धांत

स्विट्जरलैंड के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **जीन पियाजे** ने यह मत दिया कि बच्चों का चिंतन प्रौढ़ों से गुणात्मक रूप से भिन्न होता है और इसमें समय बीतने के साथ परिवर्तन आता है। पियाजे इस बात में रुचि रखते थे कि जन्म से लेकर वयस्क होने के क्रम में बच्चों में चिंतन किस तरह विकसित होता है। पियाजे ने विकास के स्वरूप को समझने के लिए अपने ही तीन बच्चों के व्यवहार का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया। उन्होंने बच्चों को कुछ समस्याएँ दीं, उनकी अनुक्रियाओं का निरीक्षण किया, परिस्थिति को थोड़ा बदला और उनकी अनुक्रियाओं का पुनः निरीक्षण किया। विकास के खोजबीन के इस तरीके को पियाजे ने नैदानिक साक्षात्कार (Clinical Interview) का नाम दिया।

पियाजे का यह विश्वास था कि पौधों और पशुओं की ही तरह मनुष्य भी अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ, जिसमें वे रहते हैं, अपने को अनुकूलित करते हैं। पियाजे ने **अनुकूलन** (Adaptation) को दो मूल प्रक्रियाओं – **समावेश** (Assimilation) तथा **समायोजन** (Accommodation) के रूप में लिया। ***समावेशन*** *उस प्रक्रिया को कहते हैं, जिसके द्वारा नई वस्तुएँ और घटनाएँ ग्रहण की जाती हैं और वर्तमान संरचनाओं या स्कीमा के क्षेत्र में समाविष्ट की जाती हैं।* ***समायोजन*** *वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा नई वस्तु या घटना को सीधे-सीधे ग्रहण करने या समाविष्ट करने में होने वाले प्रतिरोध को दूर करने के लिए पहले से मौजूद संज्ञानात्मक स्कीमा या संरचना को परिमार्जित किया जाता है।* आइए, इन संप्रत्ययों को एक उदाहरण की सहायता से समझने का प्रयास किया जाए। मान लीजिए, एक छह महीने की आयु का बच्चा वस्तु को हाथ बढ़ा कर पकड़ने के लिए अभ्यस्त है। अगली बार वह एक बड़े आकार की वस्तु को पकड़ने का प्रयास करता है। यदि बच्चा सफलतापूर्वक नई वस्तु तक पहुँच जाता है और उसे ग्रहण कर लेता है तो पियाजे के अनुसार नई वस्तु सफलतापूर्वक **समाविष्ट** (Assimilate) कर ली गई है। चूंकि नई वस्तु पहले वाली वस्तु से बड़े आकार की है, इसलिए बच्चे को कुछ श्रम करना पड़ेगा। उसे हथेली को चौड़ा कर फैलाना होगा, नहीं तो उसकी कोशिश सफल नहीं होगी। इस तरह नई वस्तु पहले से मौजूद स्कीमा में बदलाव की अपेक्षा करेगी। हथेली को और चौड़ा कर फैलाना होगा। पियाजे मानसिक संरचना के इस तरह के आंतरिक परिवर्तन को **समायोजन** कहते हैं।

क्रियाकलाप 12.2

समावेशन तथा समायोजन को समझना

1. *तीन भिन्न आकार की वस्तुएं लें, जैसे – एक कलम, एक कंचा और एक बड़ी गेंद। इन्हें पकड़ने की कोशिश कीजिए? इन वस्तुओं को पकड़ने के प्रयास में संलग्न क्रियाओं में समायोजन तथा समावेशन को स्पष्ट कीजिए।*
2. *ऐसे तीन उदाहरणों का उल्लेख कीजिए जो यह दिखाए कि आप नई परिस्थिति में रह रहे हैं और उनमें नई सूचना का समावेश किए हैं।*

संज्ञानात्मक विकास के चरण

पियाजे ने यह प्रस्तावित किया कि संज्ञानात्मक विकास के क्रम में बच्चे चार भिन्न चरणों से होकर गुजरते हैं। ये चरण तालिका 12.1 में दिए गए हैं।

संज्ञानात्मक विकास के जिन चरणों का ऊपर उल्लेख किया गया है वे बच्चों की जैविक परिपक्वता तथा सांस्कृतिक अनुभव के स्वरूप पर निर्भर करते हैं। फलतः बच्चा एक चरण से दूसरे चरण में कब प्रवेश करता है। उसकी आयु भिन्न-भिन्न बच्चों में अलग-अलग होती है। चार चरणों में से प्रत्येक में खास तरह की चिंतन शैली उत्पन्न होती है। पियाजे के अनुसार ये चरण **अपरिवर्तनीय** हैं, क्योंकि

तालिका 12.1 : पियाजे द्वारा प्रस्तावित संज्ञानात्मक विकास के चरण

आयु (लगभग)	चरण	विशेषताएँ
जन्म से दो वर्ष	सांवेदिक-पेशीय (Sensori-motor)	बच्चा जन्म के समय प्रतिवर्त क्रिया (Reflexive action) करता है और प्रगति करता हुआ प्रतीकों के माध्यम से सोचना शुरू करता है। वह भौतिक घटनाओं के साथ सांवेदिक अनुभवों को संयोजित कर दुनिया की एक समझ गढ़ता है। वस्तु-स्थायित्व (Object permanence) की उपलब्धि होती है।
2 से 7 वर्ष	पूर्व-संक्रियात्मक (Pre-operational)	बच्चा शब्दों और प्रतिमाओं की मदद से अपनी दुनिया को प्रस्तुत करना शुरू करता है। उसका सोचना आत्मकेंद्रित होता है।
7 से 12 वर्ष	मूर्त-संक्रियात्मक (Concrete operational)	बच्चा मूर्त पदार्थों और घटनाओं के बारे में तार्किक ढंग से सोच सकता है और चीजों को विभिन्न वर्गों में बाँट सकता है। संधारण (Conservation) की उपलब्धि हो जाती है।
12 वर्ष +	औपचारिक संक्रियात्मक (Formal Operational)	बच्चा अमूर्त विचारों का उपयोग करता है, तार्किक तथा व्यवस्थित रूप से विचार करने की तथा मनन के द्वारा चिंतन की क्षमताएं विकसित कर लेता है।

अगले चरण में प्रवेश पहले चरण को सफलतापूर्वक पूरा करने पर निर्भर करता है। वे आयु स्तर जब इन चरणों का आरंभ होता है और जब वे पूरे होते हैं, अनुमानित (या लगभग) हैं क्योंकि एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्नता पाई जाती है। पियाजे का विचार था कि *सभी बच्चे इन चरणों से एक क्रम में गुजरते हैं हालाँकि एक बच्चा एक चरण को पार कर दूसरे चरण में पहुंचने के लिए दूसरे बच्चे से कम या अधिक समय ले सकता है।* उद्दीपक की मात्रा तथा गुणवत्ता, विशिष्ट कौशलों पर किसी संस्कृति में कितना बल दिया जाता है और बच्चे का विशिष्ट अनुभव उसके विकास की दर को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करता है। आइए, इन चरणों को थोड़े विस्तार से समझें।

1. सांवेदिक-पेशीय चरण : इस चरण का आरंभ जन्म के समय होता है और लगभग दो वर्ष की आयु तक यह विस्तृत है। इसे सांवेदिक-पेशीय चरण इसलिए कहा जाता है कि बच्चों के सोचने में देखना, सुनना, चलना, स्पर्श करना, चखना इत्यादि क्रियाएँ शामिल रहती हैं। यह चरण एक व्यक्ति को जैविक प्रणाली से मानसिक क्षमता से युक्त प्राणी में रूपांतरण को रेखांकित करता है। जन्म के बाद के कुछ सप्ताहों तक शिशु केवल प्रतिवर्त अनुक्रियाएँ (Reflexes); जैसे – चूसना, पकड़ना तथा पैर चलाना आदि ही कर पाता है। बाद में प्रतिवर्त समाप्त हो जाते हैं और बच्चा खुद ही यह तय करता है कि कौन-सी चीज कब पकड़नी चाहिए।

इस अवधि में बच्चे में **वस्तु स्थायित्व** (Object Permanence) का संप्रत्यय विकसित हो जाता है। इसका तात्पर्य *यह समझ में आना है कि वस्तुओं और घटनाओं का अस्तित्व तब भी बना रहता है, जब उन्हें प्रत्यक्ष रूप से हम देख, सुन या स्पर्श नहीं कर पाते।* जब तक इस तरह की समझदारी न आ जाए, जो भी वस्तु आँख से ओझल होती है, उसका अस्तित्व बच्चे के लिए समाप्त हो जाता है। एक तीन महीने की आयु के बच्चे को यदि कोई वस्तु दिखाई जाए तो उसे पकड़ने की कोशिश करेगा और जैसे-जैसे वस्तु घूमेगी या अपनी जगह बदलेगी वह आंखों से पीछा करेगा। परंतु यदि वह वस्तु आँख के क्षेत्र से परे कर दी जाए (या छुपा दी जाए ताकि दिखाई न पड़े) तो वह उसे खोजने की कोई कोशिश नहीं करेगा। छह महीने की आयु होने पर ही बच्चे परिचित पर आंशिक रूप से छिपी वस्तुओं तक पहुँचने की कोशिश करते हैं। आठ महीने की आयु होने पर बच्चे पूरी तरह से ढकी या छिपी वस्तुओं को, जिन्हें वह पहले देख चुके हैं, खोजने की कोशिश करते हैं।

सांवेदिक-पेशीय अवधि की दूसरी मुख्य उपलब्धि कार्यों की शृंखला को उलटने की क्षमता प्राप्त करना है। उदाहरणार्थ,

यदि आप बच्चे को एक खिलौना देते हैं, जिसके छः अलग-अलग किए जा सकने वाले टुकड़े हैं। आप इन टुकड़ों को अलग-अलग कर देते हैं। बच्चा उन्हें जोड़ने में और खिलौने को पुनः बनाने में सफल हो जाएगा। शुरू में वह गलतियाँ करेगा, पर जल्दी ही उन्हें ठीक कर जो टूटा खिलौना था, उसके विभिन्न टुकड़ों को उचित ढंग से संयोजित करना सीख लेता है।

2. **पूर्व-संक्रियात्मक चरण :** पियाजे के सिद्धांत में संक्रिया (Operation) का तात्पर्य उन क्रियाओं से है जो मानसिक (तार्किक) स्तर पर की जाती हैं। मानसिक क्रियाओं की कुछ मुख्य विशेषताएँ ये हैं कि वे *विपरीत दिशा में भी की जा सकती हैं। वे संगठित होती हैं और एक समग्र संरचना के रूप में घटित होती हैं।* इस चरण को पूर्व-संक्रियात्मक इसलिए कहा जाता है कि बच्चे मानसिक संक्रियाओं को संपादित करने की क्षमता को पूरी तरह नहीं प्राप्त किए रहते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक चरण में बच्चों का चिंतन क्या दिख रहा है, इस पर निर्भर करता है न कि तार्किक नियमों पर।

पूर्व-संक्रियात्मक चरण की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि **प्रतीकों और चिह्नों के सहारे सोचने की योग्यता का विकास है। प्रतीक किसी वस्तु या व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।** उदाहरण के लिए, एक गुड़िया एक बच्चे या बुजुर्ग का प्रतीक हो सकती है। तिरंगा झंडा भारत देश का प्रतीक है। प्रतीकों के साथ काम करने की क्षमता को **प्रतीकात्मक कार्य** (Semiotic function) कहते हैं। इसके विपरीत, चिह्न उन वस्तुओं से नहीं मिलते-जुलते जिनका वे प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, यातायात के संकेत एक चिह्न व्यवस्था का निर्माण करते हैं।

पूर्व-संक्रियात्मक चरण में **आत्मकेंद्रिकता** (Egocentrism) की विशेषता पाई जाती है। इस चरण में बच्चे दूसरों के दृष्टिकोण को अपने ध्यान में नहीं रख पाते। वे सोचते हैं कि दूसरा आदमी भी उसी तरह से सोचता है जैसा मैं सोच रहा हूँ। बच्चे यह विश्वास करते हैं कि वे जिस तरह सोच रहे हैं, वही सोचने का एकमात्र तरीका है।

पूर्व-संक्रियात्मक चरण वाले बच्चे में **उत्क्रमणशील चिंतन** (Reversible thought) या विपरीतक्रम में सोचने की क्षमता नहीं होती है : एक बतख क्या है? यह प्रश्न पूछने पर बच्चा उत्तर देता है कि 'यह एक पक्षी है'। आप फिर पूछिए, यदि सभी चिड़ियों को मार डाला जाए तो बतखों का क्या होगा? क्या कोई बतख बची रहेगी? बच्चे का उत्तर 'हाँ' में होगा। आप उससे पूछें ऐसा क्यों? तो बच्चे का उत्तर होगा कि "बतख तैरने गए होंगे या कहीं और चले गए होंगे"। एक और उदाहरण लीजिए, बच्चे से पूछिए– राम, श्याम का भाई है। श्याम राम से किस तरह संबंधित है? एक पूर्व-संक्रियात्मक बच्चा इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकेगा।

एक पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे को किसी परिस्थिति के एक से अधिक पक्षों या आयामों को देखने में कठिनाई होती है। उसमें **विकेंद्रण** (Decentering) की क्षमता नहीं होती है। उदाहरणार्थ, बच्चा एक टेबिल की केवल ऊँचाई या चौड़ाई पर ही, एक समय में ध्यान दे पाता है। यदि कार्य ऐसा है कि उसमें ऊँचाई और चौड़ाई दोनों पर ध्यान देना है तो वह उसे पूरा कर पाने में सफल नहीं हो सकेगा।

जीववाद में विश्वास (Animism) पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे की एक और अन्य विशेषता है। पियाजे के अनुसार, जीववाद का तात्पर्य यह है कि *बच्चे निर्जीव वस्तुओं को जीवन के गुणों से युक्त मानते हैं और (जीवित प्राणियों की ही तरह) विभिन्न क्रियाओं को करने में सक्षम मानते हैं।* बच्चे इन वस्तुओं को संवेग, प्रेरणा, इच्छा तथा विचार इत्यादि से युक्त मानते हैं।

एक पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे को आकार, भार या आयतन की विशेषताओं के अनुसार वस्तुओं को अधिक से कम के या कम से अधिक के क्रम में व्यवस्थित करने में कठिनाई होती है। इस योग्यता को **क्रमव्यवस्था** (Seriation) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि आप एक पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे को भिन्न-भिन्न लंबाइयों वाली पाँच डंडियाँ दें और इन डंडियों को क्रमशः बढ़ते या घटते क्रम में रखने को कहें तो बच्चे को ऐसा करने में कठिनाई होती है। इस आयु के बच्चे श्रेणियों (Categories) और उपश्रेणियों (Subcategories) के बीच संबंध को नहीं समझ पाते। इस तरह उनमें वर्गीकरण या वस्तुओं को श्रेणियों में वर्गीकृत करने की क्षमता की कमी रहती है।

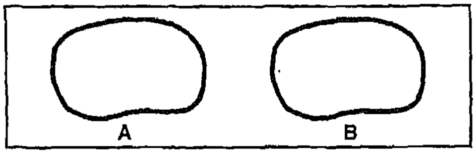
बच्चों के चिंतन के बारे में **संधारण** (Conservation) पियाजे द्वारा प्रचुर मात्रा में अध्ययन किया गया संप्रत्यय है। इसका तात्पर्य इस बात की समझ से है कि *किसी वस्तु की कुछ विशेषताएँ उन वस्तुओं के प्रकट रूप में या दिखने वाले परिवर्तन के बावजूद अपरिवर्तित रहती हैं।* उदाहरणार्थ,

क्रियाकलाप 12.3

संधारण को समझना

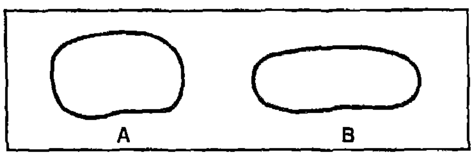
प्रयोग 1 : वस्तु का संधारण

1. गीली मिट्टी की दो गेंदें लीजिए और बच्चे से पूछिए :
   क्या ये दोनों गेंदें एक-सी हैं?



   बच्चा संभवतः 'हाँ' में उत्तर देगा।

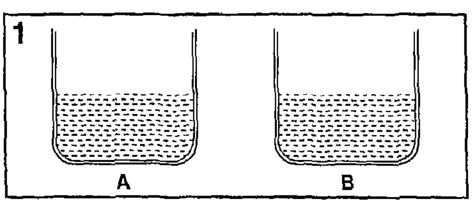
2. अब बच्चे के सामने ही गेंद को हाथ से दबा कर उसे सिलिंडर का रूप दे दीजिए और पूछिए :
   क्या सिलिंडर के आकार और गेंद में समान मात्रा में मिट्टी है?



   बच्चा शायद 'नहीं' कहेगा। वह कह सकता है कि इसमें मिट्टी कम या ज्यादा है।

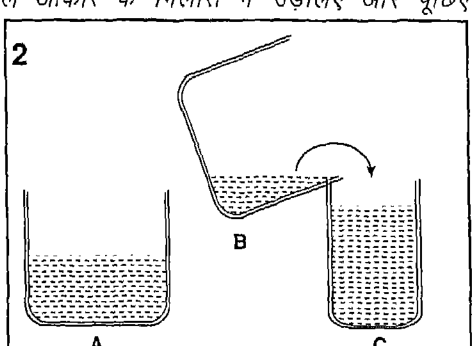
प्रयोग 2 : तरल पदार्थ का संधारण

1. आर-पार दिखने वाली समान आकार के दो गिलास लीजिए और उनमें समान मात्रा में पानी डालिए। बच्चे से पूछिए:
   क्या गिलास 'A' तथा 'B' में पानी समान मात्रा में है?



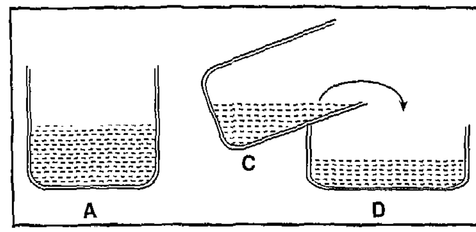
   बच्चा 'हाँ' में उत्तर देगा।

2. अब बच्चे के सामने B गिलास का पानी एक लंबे परंतु पतले आकार के गिलास में उड़ेलिए और पूछिए :



   क्या गिलास 'A' तथा 'C' में समान मात्रा में पानी है।
   बच्चा शायद यह कहेगा कि गिलास 'C' में, गिलास 'A' की तुलना में अधिक पानी है।

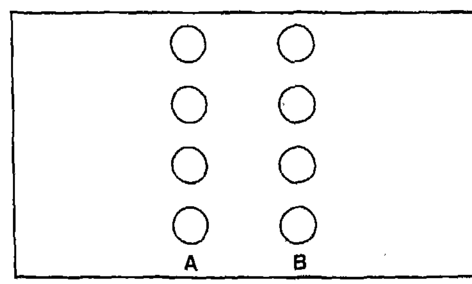
3. गिलास 'C' के पानी को एक चौड़े गिलास 'D' में उड़ेलिए तथा बच्चे से गिलास 'A' तथा 'D' में रखे पानी की मात्रा की तुलना करने को कहिए।



   बच्चा शायद यह कहेगा कि गिलास 'D' में पानी की मात्रा गिलास 'A' की तुलना में कम है।

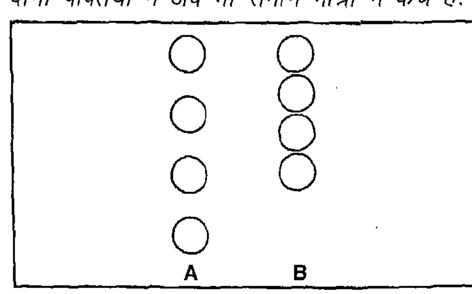
प्रयोग 3 : संख्या का संधारण

1. आठ कंचे लीजिए और उन्हें चित्र में दर्शाए अनुसार रखिए। बच्चे से पूछिए :
   क्या दो पंक्तियों में समान संख्या में कंचे हैं?



   बच्चा शायद यह कहेगा कि दोनों पंक्तियों में समान संख्या में कंचे हैं?

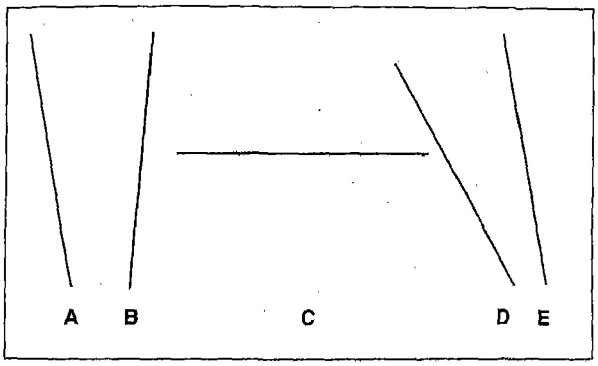
2. अब कंचों को नीचे चित्र में दिखाए गए तरीके से रखिए और बच्चे से पूछिए :
   क्या दोनों पंक्तियों में अब भी समान मात्रा में कंचे हैं?



   बच्चा संभवतः कहेगा कि 'A' पंक्ति में 'B' की तुलना में अधिक कंचे हैं।

एक व्यक्ति की लंबाई ज्यों कि त्यों रहती है, चाहे वह चारपाई पर लंबे लेट कर सो रहा हो या अपने पैर को मोड़े हुए हो परंतु पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था वाला बच्चा यही कहेगा कि पहले वाला व्यक्ति दूसरे की तुलना में अधिक लंबा है। संधारण की प्रक्रिया से संबंधित कई रोचक प्रयोग हैं (क्रियाकलाप 12.3 देखिए)। आप इन प्रयोगों को स्वयं करके देख सकते हैं कि बच्चे कैसे प्रतिक्रिया करते हैं।

पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे की अंतिम प्रमुख विशेषता यह है कि वह दशाओं को देखता है न कि परिवर्तनों को। पानी के संधारण के प्रयोग में आप पानी को लंबे गिलास से चौड़े गिलास में डालिए तो बच्चा दोनों गिलासों में पानी की



चित्र 12.1 : बच्चे द्वारा अवस्थाओं न कि परिवर्तन के प्रत्यक्षीकरण के गोचर का प्रदर्शन।

ऊँचाई पर ध्यान देता है और बदलाव या परिवर्तन की प्रक्रिया पर ध्यान नहीं देता है। ऐसा विकेंद्रीकरण के फलस्वरूप होता है। चित्र 12.1 इस बात को और स्पष्ट कर सकेगा।

एक डंडी किस तरह गिरती है, उसकी अवस्थाओं का चित्रण उलटे सीधे क्रम में चित्र 12.1 में किया गया है। एक पूर्व-संक्रियात्मक बच्चे से कहिए कि डंडी किस तरह गिरेगी, उस क्रम में विभिन्न अवस्थाओं को लगा दें। आप पाएँगे कि बच्चा ऐसा नहीं कर पा रहा है।

3. मूर्त संक्रियात्मक चरण : यह चरण प्रायः 7 से 12 वर्षों तक की आयु में विस्तृत रहता है। इस चरण में बच्चा केवल उन्हीं वस्तुओं या घटनाओं के बारे में सोच सकता है, जो उसके सामने भौतिक रूप से सचमुच में उपस्थित रहती हैं और जिन्हें वह अपने तात्कालिक संदर्भ (मूर्त वस्तुओं) में परिवर्तित कर सकता है। वह कल्पित या अमूर्त संप्रत्ययों के बारे में नहीं सोच पाता है, जिनमें एक साथ कई स्तरों का ध्यान रखना हो; जैसे – 'राम श्याम से लंबा है, श्याम मोहन से छोटा है। बताइए, कौन सबसे लंबा है? इस तरह के प्रश्न का उत्तर देने में इस चरण के बच्चों को कठिनाई होती है। परंतु यदि राम और श्याम भौतिक रूप से उपस्थित हों तो बच्चा उन्हें सरलता से ऊंचाई के क्रम में व्यवस्थित कर सकता है।

इस चरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि बच्चे उत्क्रमण या विपरीत दिशा की संक्रियाएँ करने लगते हैं। ये बच्चे संधारण की योग्यता भी अर्जित कर लेते हैं। ये क्रम स्थापित करना तथा वर्गीकरण की योग्यता अर्जित कर लेते हैं परंतु उनका सोचना मूर्त पदार्थों तक ही सीमित रहता है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक चरण : यह चरण 12 वर्ष की आयु और उसके आगे विस्तृत है। यह इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें तार्किक चिंतन तथा सोचने की क्षमता का आरंभ होता है। इस चरण में बच्चे अमूर्त चिंतन की क्षमता विकसित कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में ये बच्चे अमूर्त संप्रत्ययों; जैसे – लोकतंत्र, न्याय, स्वतंत्रता आदि का अर्थ समझने लगते हैं। इस अवधि की दूसरी संज्ञानात्मक उपलब्धियाँ हैं – **कल्पित संभावनाओं के बारे में सोचने की योग्यता**, तथा **तार्किक निगमन द्वारा व्यवस्थित रूप से समस्याओं का समाधान**। विकास के अन्य चरणों की अपेक्षा औपचारिक संक्रियात्मक चरण पर कम अध्ययन हुआ है, हालाँकि ऐसा संकेत मिलता है कि सभी किशोर या प्रौढ़ लोग भी ऐसे चरण के परिपक्व बौद्धिक कार्य करने में सफल नहीं हो पाते हैं।

वाइगाट्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण

1. लिव सिमानोविच वाइगाट्स्की का सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण *संज्ञानात्मक विकास* का एक रोचक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वाइगाट्स्की एक रूसी मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने बच्चों और समाज के बुजुर्ग जानकार सदस्यों के बीच मिल-जुलकर होने वाले संवाद की भूमिका पर बल दिया। उनके मत में सभी मानसिक या बौद्धिक क्रियाएँ पहले बाहरी समाज की दुनिया में घटित होती हैं। इन अंतःक्रियाओं द्वारा बच्चे अपने समुदाय की संस्कृति (सोचने और व्यवहार करने के तरीके) को सीखते हैं। वाइगाट्स्की अपने अंतरीकरण के सिद्धांत तथा संभव विकास के क्षेत्र की अवधारणा के लिए प्रसिद्ध हैं। इन संप्रत्ययों के बारे में विस्तार से जानने के लिए बाक्स 12.1 को पढ़िए।

बाक्स 12.1. वाइगाट्स्की का अंतरीकरण का सिद्धांत तथा ZPD का संप्रत्यय

अंतरीकरण का सिद्धांत *(Theory of Internalization): वाइगाट्स्की का यह मानना था कि विकास वातावरण में शुरू होता है, विशेषकर, सामाजिक वातावरण में, और अंदर की ओर अपने को निर्देशित करता है। बच्चा दूसरे लोगों को घर में, मित्र मंडली में, तथा स्कूल में तरह-तरह के कामों को करते हुए देखता है और बाद में उसी तरह व्यवहार करना सीख लेता है। बोला कैसे जाता है, यह अंतरीकरण की प्रक्रिया का एक अच्छा उदाहरण है। क्या आपने कभी सोचा है कि हिंदी भाषा-भाषी परिवार में पल रहे बच्चे क्यों हिंदी ही बोलना शुरू करते हैं? बच्चे देखते हैं कि माता-पिता किस तरह विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण करते हैं। बच्चे उन ध्वनियों को सीख लेते हैं और धीरे-धीरे अपने माता-पिता की भाषा बोलना शुरू कर देते हैं। इस तरह बच्चे अपने माता-पिता की भाषा को आत्मसात कर लेते हैं।*

बाहर (के वातावरण) से अन्दर की ओर (बच्चे के आन्तरिक स्व) की दिशा में होने वाले विकास को वाइगाट्स्की ने अंतरीकरण (Internalisation) कहा है। अपने चारों ओर के सामाजिक परिवेश में विद्यमान वस्तुओं को विशिष्ट रूप से प्रभावित करने वाला पाते हैं और विभिन्न कार्यों को आत्मसात् कर लेते हैं ताकि वे हमारे अपने स्व के भाग हो जाते हैं।

संभावित विकास का क्षेत्र *(Zone of Potential Development, ZPD) : संभावित विकास के क्षेत्र की अवधारणा वाइगाट्स्की का सबसे महत्त्वपूर्ण और विचारोत्तेजक योगदान है। इसे समझने के लिए आइए एक उदाहरण लें, मान लीजिए कि मनोविज्ञान के एक विद्यार्थी के रूप में आपने दस वर्ष की आयु के कक्षा 5 में पढ़ने वाले दो बच्चों की बुद्धि परीक्षा की। आपने उन्हें एक बुद्धि परीक्षण दिया। इन दोनों बच्चों को उस परीक्षण पर समान अंक मिले। अब यह मान लिया जा सकता है कि दोनों बच्चों की मानसिक आयु समान है (अर्थात् 10 वर्ष) क्योंकि दोनों को बुद्धि परीक्षण पर समान अंक मिले हैं। मान लीजिए, आपको गणित, विज्ञान या किसी और विषय में कोचिंग कक्षाएँ चलानी हैं। आप पाते हैं कि कोचिंग का एक बच्चे की बुद्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है और वह गणित की उन समस्याओं को हल कर लेता है जो कक्षा 8 के बच्चों के लिए हैं और उसकी मानसिक आयु 13 वर्ष के बराबर है। दूसरा बच्चा 'B' बड़ी मुश्किल से कक्षा 6 के बच्चों के लिए उपयुक्त समस्याओं को हल कर पाता है और इस बच्चे की मानसिक आयु 11 वर्ष है। क्या आप अभी भी यहीं कहेंगे कि दोनों बच्चों के मानसिक विकास का स्तर समान है? वाइगाट्स्की का विचार है कि ऐसा नहीं है क्योंकि A नाम वाला बच्चा B नाम वाले बच्चे की तुलना में कोचिंग से अधिक लाभ उठा सकता है। इस उदाहरण में A बच्चे का ZPD 13–10 वर्ष (3 वर्ष) है, जबकि B नामक बच्चे के लिए 11–10 वर्ष (1 वर्ष) है।*

ढांचा-निर्माण *(Scaffolding): ढांचा-निर्माण का तात्पर्य है छात्रों को सीखने और समस्या-समाधान करने के लिए दिए जाने वाले समर्थन (Support) से है। यह समर्थन संकेतों के रूप में, याद दिलाने वाले उपायों (स्मारकों), शाबाशी, समस्या को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटना, उदाहरण देना या ऐसा कुछ करना जिससे बच्चे अपने आप या स्वतंत्र रूप से सीखने का मौका, इन सबके रूप में हो सकता है। यह एक प्रकार की शिक्षण प्रक्रिया है, जिसमें बच्चे को दिए जाने वाले निर्देश की मात्रा तथा स्वरूप उसके विकास के स्तर के अनुरूप होता है। यह समर्थन तब वापस ले लिया जाता है जब बच्चा स्वतंत्र रूप से काम करने लगता है। प्रौढ़ लोगों द्वारा ढाँचा-निर्माण बच्चे को अस्थायी समर्थन प्रदान करता है जो उस समय हटा लिया जाता है, जब बच्चा बिना किसी समर्थन के ऊँचे स्तर पर कार्य करने में सक्षम हो जाता है। ढाँचा-निर्माण तब अधिक उपयोगी होता है जब बच्चे को नए कौशलों को सीखना होता है। शुरू में अधिक समर्थन देकर और धीरे-धीरे उसे वापस ले लिया जाता है, जब बच्चा उच्च सक्षमता के स्तर की ओर आगे बढ़ता है।*

आपने अब तक पढ़ा

इस अनुभाग में आपने संज्ञानात्मक विकास के बारे में पियाजे तथा वाइगाट्स्की के विचारों के बारे में पढ़ा। पियाजे के अनुसार बच्चों की चिंतन-प्रक्रिया प्रौढ़ों से गुणात्मक रूप से भिन्न होती है। बच्चे अपनी समझ को समावेशन तथा समायोजन की प्रक्रियाओं द्वारा सक्रिय रूप से गढ़ते हैं। संज्ञानात्मक विकास चार अपरिवर्तनीय चरणों के क्रम में होता है और प्रत्येक चरण में चिंतन का एक नया रूप पैदा होता है। सांवेदिक-पेशीय चरण में बच्चे वस्तु-स्थायित्व तथा कार्यों को विपरीत क्रम में करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक चरण में प्रतीकात्मक चिंतन, आत्मकेंद्रिकता तथा संधारण की क्षमता का अभाव पाया जाता है। मूर्त संक्रियात्मक चरण में बच्चे संधारण, विपरीत दिशा में चिंतन, वर्गीकरण तथा क्रम में व्यवस्थित करने की क्षमताएँ प्रदर्शित करते हैं, परंतु उनका सोचना उनके तात्कालिक वातावरण में विद्यमान वस्तुओं के साथ जुड़ा रहता है। प्रौढ़ों में पाया जाने वाला चिंतन तथा तर्क जिसमें अमूर्त संप्रत्ययों का उपयोग किया जाता है, वह औपचारिक संक्रियात्मक चरण में प्राप्त होता है। वाइगाट्स्की ने सामाजिक

वातावरण के विभिन्न पक्षों; जैसे – परिवार, समुदाय, मित्र तथा विद्यालय की बच्चों के विकास में भूमिका पर बल दिया। उन्होंने बच्चे के निष्पादन में व्यक्त क्षमताओं के मापन की जगह उनकी प्रच्छन्न क्षमताओं (ZPD) के मूल्यांकन पर बल दिया।

आपने कितना सीखा

1. *आपके स्कूल में अध्यापक ने कक्षा में जो पढ़ाया उसे जब आप अपने ढंग से समझने का प्रयास कर रहे हैं तब आप सूचना का ______ कर रहे हैं।*
2. *______ का संप्रत्यय सांवेदिक-पेशीय चरण की विशेषता है।*
3. *आत्मकेंद्रिकता, निर्जीव पदार्थों में जीवन देखने की प्रवृत्ति तथा ______ पूर्व-संक्रियात्मक चरण की विशेषता है।*
4. *प्रतीकात्मक प्रकार्य बच्चों की ______ के साथ काम करने की योग्यता को व्यक्त करता है।*
5. *कल्पित संप्रत्ययों के उपयोग की क्षमता विकास के ______ चरण में उत्पन्न होती है।*

उत्तर – (1) समावेशन, (2) वस्तु स्थायित्व, (3) जीववाद, (4) प्रतीक, (5) औपचारिक संक्रियात्मक।

सामाजिक-सांवेगिक विकास

आपने देखा कि मानव शिशु अपने बलबूते जीवित नहीं रह सकता और उसे व्यापक देखभाल और ध्यान की जरूरत होती है। शिशु का जिस तरह से लालन-पालन किया जाता है तथा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ शिशु की पारस्परिक क्रिया उसके सांवेगिक विकास को प्रभावित करती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह समाज में ही रहता है। वह अपने सदस्यों के क्रियाकलाप को नियंत्रित करने के लिए कुछ नियम बनाता है। शिशु का जीवन दूसरों के समर्थन और उनके साथ प्रभावी संबंधों पर निर्भर करता है। प्रश्न यह उठता है कि शिशु किस तरह दूसरों के साथ संबंध बनाना या अंतःक्रिया करना सीखता है? सामाजिक *विकास का अध्ययन समाज के दूसरे सदस्यों के साथ शिशु के संबंधों में बदलाव को बताता है।*

जैसा कि आप जानते हैं *संवेग भावना* को द्योतित करता है, जिसमें दैहिक उद्वेलन (जैसे – हृदय की तीव्र धड़कन) तथा प्रत्यक्ष व्यवहार (जैसे – मुस्कराना या दूसरों से जुड़ना) का मिश्रण होता है। रोना और मुस्कराना दो प्राथमिक तरीके हैं, जिनके द्वारा बच्चा अंतःक्रिया शुरू करता है। इस अनुभाग में शैशव काल में सामाजिक और सांवेगिक प्रक्रिया का विकास, विशेषकर स्वभाव (Temperament) तथा आसक्ति (Attachment) के विकास का विवेचन किया गया है।

आसक्ति का विकास

एक चौदह महीने की बालिका रेखा अपने परिवार के कुछ अन्य सदस्यों तथा अपनी माँ के साथ कमरे में खेल रही है। उसकी माँ को कई बार दूसरे कार्यों को करने के लिए कमरे से बाहर जाना पड़ता है। जैसे ही माँ कमरे से बाहर जाती है, रेखा रोने लगती है। माँ के अतिरिक्त परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा दिया गया स्नेह उसे संतुष्ट नहीं कर पाता। माँ के कमरे में पुनः लौट जाने पर ही उसका रोना बंद होता है। वह अपनी माँ के पास चली जाती है। वह सिर्फ अपनी माँ की गोद में ही प्रसन्न अनुभव करती है। क्या आपने कभी यह सोचा है कि ऐसा क्यों होता है? यह बच्चे का अपनी माँ के साथ आसक्ति के कारण है।

आसक्ति क्या है? शिशु और अभिभावक (सामान्यतः माता-पिता) के बीच आसक्ति का विकास सामाजिक-सांवेगिक विकास की पहली कड़ी है। *आसक्ति दो व्यक्तियों के बीच के संबंधों को बतलाती है, जो एक-दूसरे से जुड़े महसूस करते हैं तथा आपसी संबंधों को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं।* एक शिशु का जुड़ाव माता-पिता या परिवार के किसी अन्य बड़े सदस्य के साथ हो सकता है। परस्पर संबंधों के लिए सामान्यतः **बंधन** (Bond) शब्द का उपयोग किया जाता है। अतः *आसक्ति दो व्यक्तियों के बीच प्रगाढ़ संवेगात्मक बंधन है, विशेषतः शिशु और माँ (या ध्यान रखने वाले) के बीच में।*

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि बच्चे अपने ऊपर ध्यान रखने वालों के साथ संवेगात्मक बंधन क्यों बनाते हैं? पहले ऐसा विचार किया गया था कि बच्चे उनकी ओर आकर्षित होते हैं, जो उन्हें भोज्य पदार्थ खिलाते हैं अर्थात् मुख की संतुष्टि प्रदान करते हैं। फिर भी बंदरों पर किए गए **हैरी हार्लो** के महत्त्वपूर्ण अध्ययन से यह पता चला कि आसक्ति

में निर्णायक तत्व शिशु की आवश्यकताओं की पूर्ति की अपेक्षा **संपर्क सुख** (Contact Comfort) की अनुभूति है। हार्लो के अध्ययन में शिशु वानर जन्म के बाद अपनी माताओं के पास से हटा दिए गए तथा नकली माताओं के द्वारा देख-भाल की गई। ये माताएँ दो तरह की थीं। एक तारों (Wire) की बनी थी तथा दूसरी कपड़ों की बनी हुई। उनमें से आधे शिशु वानरों ने भोजन तार से बनी माताओं के द्वारा किया तथा शेष आधे शिशु वानरों की देखभाल कपड़े वाली माताओं के द्वारा की गई। दोनों ही तरह की माताओं के साथ शिशु बंदरों द्वारा व्यतीत किए गए समय की मात्रा को अंकित किया गया। यह पाया गया कि कपड़े वाली माताओं के साथ शिशु वानरों ने अधिक समय बिताया, क्योंकि उनके साथ संपर्क शिशु वानरों के लिए अधिक सुखद था। किसी व्यक्ति के साथ परिचय शिशुओं में आसक्ति के विकास को प्रोत्साहित कर सकता है।

मानव शिशु भी संपर्क सुख चाहते हैं। वे उन व्यक्तियों के साथ आसक्ति विकसित करते हैं, जो उनके संकेतों के प्रत्युत्तर नियमित रूप से देते हैं। **बौल्बी** के अनुसार मानव शिशु अपनी माँ के साथ आसक्ति का विकास करता है। इस आसक्ति की अनुपस्थिति में शिशु के सामाजिक, सांवेगिक तथा यहाँ तक कि बौद्धिक विकास में भी कमी आ सकती है। आँखों, मुस्कुराहट, रोने आदि के द्वारा बच्चे पीछा करते हैं और सामाजिकता को उकसाते हैं। स्नेह देने वाले प्रौढ़ व्यक्ति के साथ अंतःक्रिया वाला संबंध स्वस्थ विकास की ओर शिशु का पहला कदम होता है। बच्चे अपने माता-पिता या देखरेख करने वाले अभिभावक के साथ सुरक्षित या असुरक्षित रूप से जुड़ जाता है। सुरक्षित रूप से जुड़े बच्चे अपने अभिभावक के प्रति ज्यादा सहज अनुभव करते हैं तथा नई परिस्थितियों को ज्यादा से ज्यादा खोजने की इच्छा रखते हैं। असुरक्षित जुड़ाव वाले बच्चे अपने माता-पिता से अलग किए जाने पर भय और गुस्से से रोते तथा चिंतित दिखाई पड़ते हैं। सुरक्षित या असुरक्षित आसक्ति या जुड़ाव का प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास तथा समायोजन पर व्यापक प्रभाव देखा गया है। सुरक्षित व्यक्ति ज्यादा सकारात्मक स्व-संप्रत्यय वाले होते हैं तथा यह विश्वास करते हैं कि दूसरे लोग अच्छे व्यवहार तथा अच्छे इरादे वाले होते हैं। ऐसे व्यक्ति में नौकरी से संतुष्टि, सहकर्मियों, आमदनी तथा क्रियाकलाप से संतुष्टि रहती है। कार्य की अपेक्षा संबंधों पर अधिक बल देते हैं। असुरक्षित लोग ईर्ष्या, उच्च संवेगशीलता और स्वयं की उपेक्षा महसूस करते हैं। ऐसे लोग परस्पर संबंधों की अपेक्षा कार्य पर अधिक महत्त्व देते हैं अपने सहकर्मियों के साथ असंतुष्टि का अनुभव करते हैं।

बाक्स 12.2 **स्वभाव : एक सांवेगिक संरूप**

आपने यह देखा होगा कि कुछ शिशु धैर्य वाले, सक्रिय, और मिलनसार होते हैं, जबकि कुछ तुनकमिजाज, घबराए तथा चिड़चिड़े स्वभाव वाले। प्रत्येक शिशु अपने स्वभाव में अलग होता है जो वंशानुगत होता है और वातावरण के उद्दीपकों तथा परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया करने का एक अपेक्षाकृत स्थायी तरीका बन जाता है। लगभग 10 से 15 प्रतिशत शिशु "जन्मजात संकोची" और "जन्मजात साहसी" स्वभाव वाले होते हैं। संकोची शिशु डरे-सहमे हुए तथा सामाजिक क्रियाकलापों में कम भाग लेते हैं। लोग ऐसे शिशु से कम ही अंतःक्रिया करते हैं तथा उसके साथ कम लोग ही खेलते हैं, जिसके कारण वे और अधिक संकोची हो जाते हैं।

*सामान्यतः ऐसा विश्वास किया जाता है कि मुख्यतः तीन प्रकार के स्वभाव की शैलियाँ हैं, जो मनुष्य के व्यवहार में व्यक्त होती हैं। ये हैं : **भय, आक्रामकता** तथा **सामाजिकता**। भयभीत (डरे सहमे) बच्चों में जन्म से ही अनुभव की जाने वाली परिस्थितियों में अत्यधिक डर या भय का प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति होती है। ऐसे बच्चे वयस्क होने पर पलायनवादी प्रकृति के हो जाते हैं और बहुत सुख से नहीं रहते। आक्रामक बच्चे समस्याओं से जूझने की प्रवृत्ति दिखाते हैं, जल्दी ही परेशान हो उठते हैं और दूसरों पर दोषारोपण करते हैं। सामाजिक बच्चे चुनौतियों को मजबूती के साथ स्वीकार करते हैं तथा कठिनाइयों को शांति व धैर्यपूर्वक दूर करते हैं। वे बिना किसी विषाद या आक्रामकता के आश्चर्य तथा निराशा दोनों ही परिस्थितियों का सामना करते हैं।*

यद्यपि ऐसा विश्वास किया जाता है कि स्वभाव वंशानुगत होता है, वातावरण तथा प्रशिक्षण स्वभाव की अभिव्यक्ति को परिमार्जित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, माता-पिता अथवा बच्चे की देखरेख करने वाले यदि बच्चे के साथ मृदु बर्ताव के साथ खेलें और उसे अंतःक्रिया के लिए प्रोत्साहित करें तो इस प्रक्रिया में बच्चे अधिक सामाजिक हो सकते हैं। इसी तरह एक साहसी बच्चा, जिसके माता-पिता साहसी हैं, उसका अनुभव तथा प्रतिक्रिया उस साहसी बच्चे, जिनके माता-पिता भयभीत स्वभाव वाले हैं, से भिन्न होगी। परिवार के सदस्य तथा मित्रगण स्वभाव की शैली को आकार देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आसक्ति को मुख्य खतरा अलगाव से होता है और ऐसा हर कार्य जो अपने प्रियजन, जिनसे वह जुड़ा है, को खोता है तो अलगाव-विषाद का अनुभव करता है। आसक्ति हेतु किसी कार्य के होने की स्थिति में अलगाव, विषाद, मानसिक व्यतिक्रम, नकारात्मक संवेग तथा चिंता दिखाई पड़ती है। जब माता-पिता छोड़कर बाहर जाते हैं तो प्रायः शिशु रोता है। छात्र ऐसे विषाद का अनुभव तब करते हैं जब घर से दूर अपने अध्ययन हेतु हॉस्टल में रहते हैं। जीवन के प्रारंभिक काल में सुरक्षित या असुरक्षित आसक्ति प्रौढ़ावस्था में अलगाव-विषाद की प्रकृति एवं तीव्रता को निर्धारित करती है।

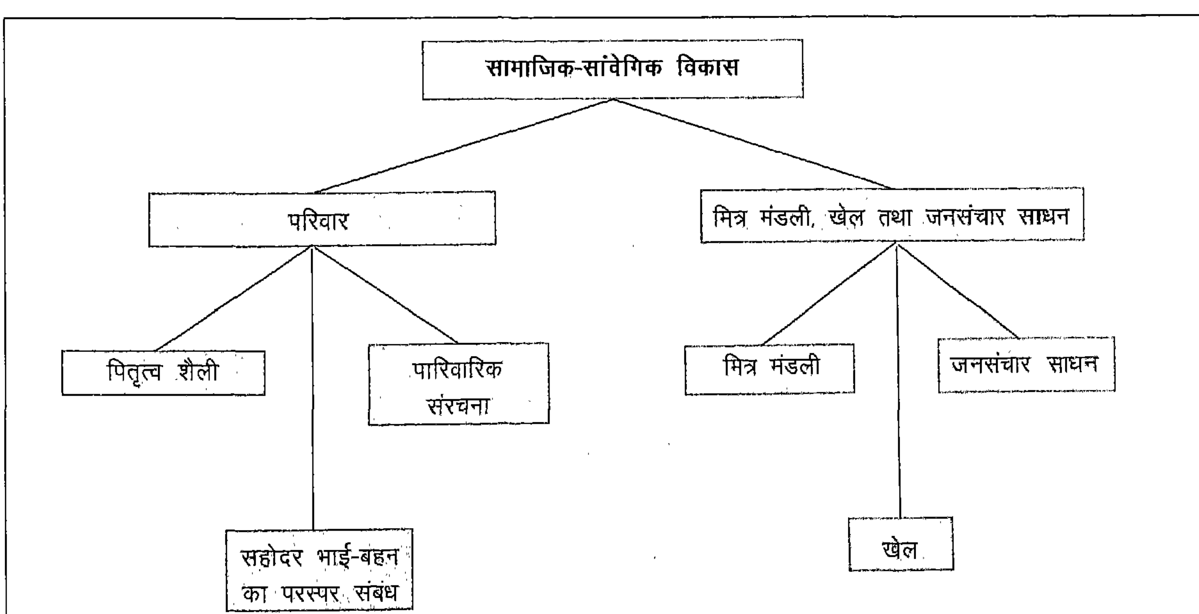
सामाजिक-सांवेगिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बच्चे के सांवेगिक विकास को कई कारण प्रभावित करते हैं; जैसे – परिवार, हम-उम्र मित्र, तथा जनसंचार माध्यम (चित्र 12.2 देखिए)। आइए कुछ कारकों पर विस्तार से विचार करें।

परिवार

जन्म के उपरांत शिशु का सबसे पहला परिचय माता-पिता या परिवार से होता है। इस संदर्भ में तीन कारक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं : शिशु के साथ माता-पिता का संबंध बनाने की शैली, सहोदर भाई-बहनों की संख्या, परिवार का प्रकार और परिवार के सदस्यों के साथ शिशु का संबंध संयुक्त परिवार में शिशु का विकास खास तौर पर दादा-दादी की उपस्थिति में होता है। एकाकी परिवार की तुलना में यह भिन्न प्रकार का होता है।

पालन शैली : सभी मानवीय संबंधों में बच्चे और माता-पिता के बीच का संबंध अनोखा होता है। ऐसे संबंधों में माता-पिता की विशेष भूमिका होती है, क्योंकि शिशु अपने जीवन के लिए माता-पिता पर पूर्ण रूप से निर्भर होता है। बच्चे का संपूर्ण परिवेश उसके माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य मिलकर जो वातावरण बनाते हैं, उससे निर्मित होता है। अपने बच्चे के साथ पालन शैली का तात्पर्य उस पद्धति से है जिससे माता-पिता तथा अन्य सदस्य उनकी देखभाल करते हैं, अंतःक्रिया करते हैं। यह सभी क्षेत्रों में बच्चे की बुद्धि एवं विकास को प्रभावित करता है। पालन-शैली (या बच्चों की देखभाल की प्रक्रिया) बहुत सीमा तक माता-पिता द्वारा किस तरह किस रूप में अपने बच्चों को ग्रहण करते हैं और उन्हें क्या बनाना चाहते हैं, इस पर निर्भर करती है। आप दो परिवारों के बीच, दो भिन्न-भिन्न समुदायों के बीच तथा दो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के बीच बच्चों के लालन-पालन की प्रक्रिया में अंतर पाएँगे। कारण यह है कि विभिन्न संदर्भों में बच्चों से क्या व्यवहार अपेक्षित है, यह अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी (यूरोपीय) समाज में बच्चों में स्वतंत्रता, स्वायत्तता और खुली अभिव्यक्ति के विकास पर



चित्र 12.2 : सांवेगिक विकास के सहसंबंधी।

बल दिया जाता है। दूसरी ओर भारतीय समाज में आज्ञापालन, दूसरों की देखभाल, तथा परिवार या समाज के लिए अपनी निजी इच्छाओं और रुचियों के त्याग पर बल दिया जाता है।

क्रियाकलाप 12.4

बच्चों के साथ माता-पिता की अंतःक्रिया

आप अपने पड़ोस के पाँच परिवारों को लें तथा एक सप्ताह तक जिस प्रकार वे अपने बच्चों से अंतःक्रिया करते हैं, उसको ध्यान से देखें। माता-पिता बच्चों के साथ किस तरह अंतःक्रिया करते हैं, इसे अंकित करें।

अंतःक्रिया के संरूपों का विश्लेषण करें तथा अपने सहपाठियों तथा शिक्षकों से उस पर विचार विमर्श करें।

माता-पिता अपने अनुशासन लागू करने के तरीके से एक-दूसरे से अलग हो सकते हैं, प्रोत्साहन एवं दंड के लिए उचित व्यवहार के चयन में अपनी शिक्षण शैली (जैसे– किसी विशेष कार्य को करने हेतु बच्चों को आदेश देना या उसके समर्थन में तर्क रखना), तथा बच्चों के प्रति स्नेह प्रदर्शन इत्यादि में भी भिन्नता पाई जाती है। अध्ययनों से निम्नांकित चार तरह की मुख्य पालन शैलियों का परिचय मिलता है।

1. सत्तावादी-निरंकुश (Authoritarian-Autocratic) : इस शैली में, माता-पिता अपने बच्चों पर मजबूत नियंत्रण रखते हैं तथा बच्चों को अपने विचारों को स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करने की अनुमति नहीं होती। बच्चों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी इच्छाओं को प्रकट न करें। यहां माता-पिता का अधिकार ही सर्वोच्च होता है। जब बच्चे अपने पालनकर्ता या अभिभावक के विचारों से विमुख होते हैं तब उन्हें कड़ी सजा (यहाँ तक कि शारीरिक दंड) दी जाती है। इस शैली द्वारा पालन-पोषण किए गए बच्चों में सामाजिक सक्षमता की कमी होती है। ऐसे बच्चों में समस्याओं से पीछे हटने की प्रवृत्ति, सामाजिक पहल लेने का अभाव, तथा सहजता की कमी होती है। वे सदैव अपने निर्णय लेने के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं कि कौन-सा व्यवहार उचित है? ऐसे बच्चों में सामान्यतः बौद्धिक निष्पादन के लिए प्रेरणा की कमी होती है।

2. उदार-अनुज्ञापक (Indulgent-Permissive) : इस शैली को अपनाने वाले माता-पिता सहनशील तथा धैर्य की प्रवृत्ति वाले होते हैं, बच्चों को दंड नहीं देते, आधिकारिक व्यवहार अथवा विचारों को नहीं थोपते, बच्चों पर परिपक्व व्यवहार के लिए दबाव नहीं डालते तथा बच्चों को निर्णय लेने की छूट देते हैं। पालन की इस शैली के कई नकारात्मक परिणाम होते हैं। ऐसे बच्चे आक्रामक, स्वतंत्र, निर्णय लेने में अक्षम तथा उत्तरदायित्वों से दूर भागने वाले होते हैं।

3. आधिकारिक-पारस्परिक (Authoritative-Reciprocal): इस शैली में पालन प्रक्रिया की दोनों शैलियों के अवयवों को अपनाया जाता है। वे व्यवहार के स्पष्ट मानक तय करते हैं और उन्हें लागू करने के लिए बच्चों पर आवश्यकतानुसार अंकुश लगाते हैं। साथ ही माता-पिता अपने बच्चों में स्वतंत्रता एवं स्वायत्तता को प्रोत्साहन देते हैं। उन बच्चों से किसी समस्यामूलक विषय पर खुलकर विचार-विमर्श करते हैं तथा सहमति की ओर बढ़ते हैं। इस शैली में माता-पिता तथा बच्चों, दोनों के अधिकारों को स्वीकार किया गया है। यह पालन शैली बच्चों के संज्ञानात्मक विकास और क्रियाशीलता दोनों को बढ़ावा देती है। साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने तथा आक्रामकता को नियंत्रित करने की क्षमता, आत्मविश्वास तथा अपने प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण, स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने की क्षमता को विकसित करने में मदद करती है।

4. तटस्थ-असंबद्ध (Indifferent-uninvolved) : कुछ माता-पिता अपने आप को माता-पिता की भूमिका में स्वीकार नहीं करते। वे अपने बच्चों के प्रति कठोर, असहयोगी तथा नकारात्मक या उपेक्षात्मक दृष्टिकोण रखते हैं तथा माता-पिता के बीच संवाद प्रायः कम ही होता है। माता-पिता द्वारा प्रयुक्त इस शैली में बच्चों का विकास सीमित होता है। माता-पिता के विद्वेषपूर्ण व्यवहार बच्चों को सामाजिक रूप से स्वच्छंद और आक्रामक बना देते हैं। अतः माता-पिता के द्वारा अपनायी गई पालन-पोषण की शैली बच्चों के सामान्य विकास तथा सांवेगिक विकास को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

सहोदर संबंध (Sibling Relationship) : बच्चों के सहोदर भाई या बहन, उसके विकास को प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सहोदर भाई या बहन बच्चे की समस्याओं को समझने में सक्षम होते हैं तथा माता-पिता की अपेक्षा वे शिशु के साथ संवाद करने में अधिक सहमत होते हैं। अग्रज सहोदर भाई या बहन उचित देख-भाल करने वाले की भूमिका में भी होते हैं। जन्म लेने वाला प्रथम शिशु, अपने माता-पिता के विशेष ध्यान का पात्र होता है तथा उस शिशु

(बालक या बालिका) से माता-पिता को ऊँची अपेक्षा रहती है। माता-पिता उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार और उच्च उपलब्धि के लिए उस पर ज्यादा दबाव डालते हैं। बड़े सहोदर भाई या बहन से यह अपेक्षा की जाती है कि अपने से छोटे सहोदर भाई या बहन के साथ संयमित व्यवहार तथा उत्तरदायित्वपूर्ण संवाद बनाएँ। सामान्यतः पाया गया है कि जन्म क्रम में पहले और बाद वाले बच्चों की विशेषताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अपने छोटे सहोदर भाई या बहन की अपेक्षा पहले जन्म लेने वाला सहोदर (अग्रज सहोदर) संयमी, सहयोगी, परिपक्व, चिंतित तथा सामाजिक मानकों का पालन करने वाला होता है।

मित्र मंडली, खेल तथा जनसंचार माध्यम

मित्र मंडली : मित्र मंडली (Peer Group) बच्चे के सांवेगिक विकास को महत्त्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। मित्र मंडली का तात्पर्य समान आयु वर्ग या परिपक्व स्तर के (हमउम्र) व्यक्तियों से है। मित्र मंडली परिवार से बाहर की दुनिया में तुलना एवं सूचना व्यवस्था के स्रोत के रूप में कार्य करती है। बच्चे भी समान आयु के लोगों से अपनी योग्यताओं (क्षमताओं) के बारे में सूचना प्राप्त करते हैं। वे एक मानक की तरह कार्य करते हैं, जिससे बच्चे अपने आपसी क्रियाकलाप की तुलना करते हैं। बड़े होने पर बच्चे मित्र मंडली के साथ अधिकाधिक समय बिताना पसंद करते हैं। सामाजिक एकाकीपन अनेक समस्यात्मक व्यवहारों को जन्म देता है। ऐसे बच्चे विद्यालय से भागने से लेकर विभिन्न अपराधों तक में शामिल होते हैं। मित्र मंडली का आपसी संबंध चार प्रकार का हो सकता है। (बाक्स 12.3 देखिए)।

खेल : बचपन में मित्र मंडली के बीच पारस्परिक अंतःक्रिया अपरिवर्तनीय रूप से खेल से जुड़ी होती है। खेल या क्रीड़ा एक आनंददायक कार्य है जिसमें जुड़ाव अपने लिए होता है। यह एक छोटे बच्चे के स्वास्थ्य के विकास के लिए आवश्यक है। खेल, मित्र मंडली के सदस्यों के बीच जुड़ाव, तनाव से मुक्ति, प्रौढ़ संज्ञानात्मक विकास तथा खोजबीन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। खेल इस संभावना को बढ़ाता है कि बच्चे एक-दूसरे के साथ परस्पर अंतःक्रिया करेंगे। खेल अतिरिक्त शारीरिक ऊर्जा तथा तनाव से बच्चे को मुक्त भी करता है।

जनसंचार माध्यम: विगत वर्षों में जनसंचार माध्यमों (Mass Media) का विस्तार, विशेषकर टेलीविजन का प्रचलन व्यापक स्तर पर हुआ है। टेलीविजन शैक्षणिक कार्यक्रमों के प्रोत्साहन, स्वास्थ्य मनोरंजन, तरह-तरह की सूचनाओं को उपलब्ध कराने तथा समाजोपयोगी व्यवहार के लिए आदर्श उपलब्ध कराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। साथ ही बच्चों के पढ़ने का समय घटा कर, उन्हें निष्क्रिय बनाकर, हिंसा का मॉडल देकर तथा संसार का एक अवास्तविक रूप उपलब्ध कराने में टेलीविजन का नकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहा है। अनेक देशों में टेलीविजन के कारण गणित एवं पढ़ने (Reading) के राष्ट्रीय उपलब्धि स्तर में गिरावट पाई गई है जो पहले दृष्टिगत नहीं थी।

बाक्स 12.3 **मित्र मंडली में संबंधों के प्रकार**

लोकप्रिय बच्चे *– ऐसे बच्चे मित्र मंडली द्वारा बहुत पसंद किए जाते हैं तथा प्रायः अच्छे दोस्त के रूप में पहचाने जाते हैं। उनमें उच्च दर का सकारात्मक व्यवहार तथा निम्न दर का नकारात्मक व्यवहार देखने को मिलता है।*

औसत बच्चे *– ये बच्चे अक्सर समान उम्र के लोगों द्वारा पसंद किए जाते हैं तथा साधारणतः अच्छे दोस्त के रूप में नामित किए जाते हैं। उनका ऋणात्मक तथा धनात्मक व्यवहार साधारण स्तर का होता है।*

अस्वीकृत बच्चे *– ये अपने समान उम्र के बच्चों द्वारा सक्रिय रूप से नापसंद किए जाते हैं तथा अच्छे मित्र के रूप में अक्सर नामित नहीं किए जाते हैं। इन लोगों का ऋणात्मक एवं सकारात्मक व्यवहार निम्न स्तर का होता है।*

विवादास्पद बच्चे *– साधारणतः ऐसे बच्चे समान उम्र के बच्चों के द्वारा नापसंद किए जाते हैं लेकिन अक्सर मित्र के रूप में नामित किए जाते हैं। इनका ऋणात्मक एवं सकारात्मक दोनों ही तरह का व्यवहार उच्च मात्रा में होता है।*

क्रियाकलाप 12.5

खेल और सामाजिक सांवेगिक विकास

अपनी कक्षा के दूसरे बच्चों के साथ एक छोटा समूह बनाइए। एक खेल को चुनिए। संज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा सामाजिक विकास के शीर्षकों के अंतर्गत इस खेल से होने वाले लाभों की सूची तैयार कीजिए। कक्षा के दूसरे बच्चे के एक आलेख इस बात पर प्रस्तुत करें कि खिलौने किस तरह बच्चों के विकास के लिए लाभप्रद हैं।

इरिक्सन का मनो-सामाजिक विकास का सिद्धांत

इरिक इरिक्सन ने सिद्ध किया है कि समाज के संदर्भ में, जिसमें व्यक्ति विकास करता है, सीखता है तथा कालांतर में अपना योगदान देता है। उसके अनुसार विकास जीवनपर्यंत चलता रहता है। इरिक्सन ने विकास को आठ चरणों में विभाजित किया है। प्रत्येक चरण में मानव एक विशेष संकट से जूझता है और जीवन में आगे बढ़ने के लिए उसका समाधान भी उसे अवश्य निकालना होता है। ये सभी विकास के चरण तालिका 12.2 में उल्लिखित हैं।



इरिक इरिक्सन

1. ***विश्वास बनाम अविश्वास :*** जन्म के बाद के एक वर्ष की अवधि के दौरान शिशु के सामने विश्वास या अविश्वास की भावना विकसित करने का संकट उपस्थित होता है। विश्वास की भावना का विकास शारीरिक सुख एवं भविष्य के प्रति न्यूनतम भय की भावना पर निर्भर करता है। जब माता-पिता अपने शिशु की जरूरतों के प्रति अत्यंत संवेदनशील होते हैं तब शिशु में विश्वास का भाव विकसित होता है। माता-पिता का सामीप्य तथा संवेदनशीलता विश्वास के भाव को जगाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। शिशु में जीवनपर्यंत अपेक्षाओं के लिए यह एक विश्वास जगाता है कि संसार अच्छा है और रहने के लिए सुखद स्थान है।

2. ***स्वायत्तता (स्वतंत्रता) बनाम शर्म एवं संदेह*:** अपने जीवनकाल के दूसरे वर्ष के दौरान शिशु यह अनुभव करने लगता है कि उसके पास उसकी अपनी इच्छा है। वह अपनी स्वतंत्रता अथवा स्वायत्तता की अनुभूति पर बल देने लगते हैं, विशेष रूप से भोजन, प्रसाधन एवं वस्त्र विन्यास पर। यदि शिशु पर अधिक अंकुश लगाया गया अथवा कड़ाई से दंड दिया गया, तो उसमें घृणा एवं संदेह का भाव पैदा होने लगता है। इस अवधि के दौरान माता-पिता को अपने शिशु के प्रति संरक्षक की दृष्टि रखनी चाहिए, परंतु यह प्रवृत्ति बहुत तीव्र नहीं होनी चाहिए।

3. ***उपक्रम बनाम ग्लानि*:** विकास का तीसरा चरण विद्यालय जाने के पूर्व की अवधि से जुड़ा है। इस समय बच्चे एक व्यापक सामाजिक संसार से परिचित होते हैं। वे कई संभव चुनौतियों का सामना करते हैं। इन बच्चों के समक्ष यह चुनौती खड़ी होती है कि इन समस्याओं का सामना कर सकने के लिए सक्रिय एवं उपयोगी व्यवहार का विकास करना होता है। उनसे उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा की जाती है तथा यह भी आशा की जाती है कि वे अपने शरीर, खिलौने एवं अन्य सामग्रियों का ध्यान रखें। उत्तरदायित्व की भावना का विकास पहल करने की प्रवृत्ति को बढ़ाता है। इस अवधि में माता-पिता को बिना किसी हस्तक्षेप के बच्चों के क्रियाकलाप का निरीक्षण करना चाहिए।

4. ***उद्यम बनाम हीनता :*** विकास का यह चरण प्राथमिक विद्यालय जाने वाले काल से संबंधित है। बच्चों से यह उम्मीद की जाती है कि वे नए ज्ञान को ग्रहण करें तथा अपने में नई बौद्धिक क्षमताओं को विकसित करें। ऐसा न कर पाने की अयोग्यता, उन बच्चों में अक्षमताओं का बोध और हीनता का भाव पैदा कर सकती है। इस अवधि में बच्चों को अध्यवसायी बनाने में शिक्षक की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक का यह दायित्व बनता है कि बच्चों में यह विश्वास पैदा करे कि उनमें किसी कार्य को पूरा करने की क्षमता विद्यमान है।

5. ***पहचान बनाम भूमिका की अस्पष्टता :*** इस अवस्था में किशोर या किशोरी अपने स्व की पहचान के विकास से जुड़ी समस्याओं का सामना करते हैं। वे कौन हैं? वे कुल मिलाकर क्या हैं? जैसे प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को एक विशेष भूमिका के अंतर्गत विशिष्ट रास्ते एवं विभिन्न भूमिकाओं को खोजने के लिए प्रेरित करें। स्वस्थ्य तरीके से विभिन्न रास्तों को खोजना व्यक्ति की समुचित

तालिका 12.2 : इरिक्सन द्वारा प्रतिपादित मनो-सामाजिक विकास के चरण

क्र. सं.	अवधि	समस्याएँ	समुचित समाधान	अपर्याप्त समाधान	सफल विकास को द्योतित करने वाली विशेषता
1.	0 से ½ वर्ष	विश्वास बनाम अविश्वास	सुरक्षा तथा निश्चय का मौलिक भाव; स्वयं के अतिरिक्त बाहरी बलों पर भरोसा	असुरक्षा, चिंता	आशा
2.	½ से 3 वर्ष	स्वायत्तता बनाम शर्म एवं संदेह	कर्ता के रूप में स्व का प्रत्यक्षीकरण; अपने स्वयं के शरीर को नियंत्रित करने की क्षमता तथा कार्यों को करना।	आत्म नियंत्रण से संबंधित अपर्याप्त अनुभूति, घटनाओं का नियंत्रण	इच्छाशक्ति
3.	3 से 6 वर्ष	उपक्रम बनाम ग्लानि	सृजन या पहल करने के लिए अपने ऊपर विश्वास	स्व के महत्त्व की कमी का भाव	उद्देश्य
4.	6 से यौवनारंभ	उद्यम बनाम हीनता	मौलिक सामाजिक तथा बौद्धिक कार्यों में प्रवीणता; मित्र मंडली द्वारा स्वीकृति	आत्म विश्वास की कमी, असफलता की अनुभूति	सक्षमता
5.	किशोरावस्था	पहचान बनाम भूमिका की अस्पष्टता	एक व्यक्ति के रूप में स्व का सहज भाव विशिष्ट एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यक्ति के रूप में	विखंडित 'स्व' का अनुभव, बदलता हुआ एवं अस्पष्ट भाव।	निष्ठा
6.	प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था	अंतरंगता बनाम अलगाव	आत्मीयता एवं दूसरों के प्रति प्रतिबद्धता की योग्यता	एकाकीपन, अकेलेपन, अलगाव, अंतरंगता की आवश्यकता को झुठलाना	प्रेम
7.	मध्य प्रौढ़ावस्था	उत्पादकता बनाम गतिरोध	अपने से पूरे परिवार, समाज, भविष्य की पीढ़ी पर ध्यान	अंतरंगता की आवश्यकता को झुठलाना अपने आप से मतलब, भविष्योन्मुख की कमी	सुश्रुषा
8.	उत्तर प्रौढ़ावस्था	समग्रता बनाम निराशा	संपूर्णता का भाव एवं जीवन से मूल संतुष्टि	व्यर्थता एवं निराशा की अनुभूति	बुद्धि

पहचान के विकास में सहायक हो सकता है। दूसरी तरफ, एक असफलता समाज में अपनी भूमिका एवं महत्त्व के बारे में भ्रम पैदा कर सकती है।

6. ***अंतरंगता बनाम अलगाव :*** आरंभिक प्रौढ़ावस्था वह समय है जब व्यक्ति अंतरंगता एवं अलगाव के बीच के अंतर्द्वंद्व का अनुभव करता है। व्यक्ति घर के बाहर दूसरों से अंतरंग संबंध बनाने का प्रयास करता है। स्वस्थ एवं अत्यंत आत्मीय संबंध की रचना आत्मीयता के विकास को प्रोत्साहित करती है; अन्यथा व्यक्ति एकाकीपन का अनुभव करता है।

7. ***उत्पादकता बनाम गतिरोध :*** मध्य प्रौढ़ावस्था के दौरान व्यक्ति का मुख्य संबंध उपयोगी जीवन को जीने एवं विकास के लिए आने वाली पीढ़ी को प्रोत्साहित करना होता है। "आने वाली पीढ़ी के लिए कुछ नहीं

किया है", यह भाव निष्क्रियता की अनुभूति के केंद्र में रहता है।

8. ***समग्रता बनाम निराशा :*** जीवन के उत्तरार्ध में यह एक ऐसा समय होता है जहाँ व्यक्ति अपने पीछे बीते समय की ओर देखता है एवं आत्मविश्लेषण करता है। आत्मविश्लेषण की इस प्रक्रिया के अंतराल में यदि व्यक्ति अनुभव करता है कि उसने अपना पिछला जीवन अच्छी तरह जिया है तो वह संपूर्णता एवं संतुष्टि का अनुभव करता है। यदि प्रौढ़ व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह जीवन के बहुत से प्रश्नों को सफलतापूर्वक हल नहीं कर सका है तो यह आत्मविश्लेषण सामान्यतः विषाद अथवा निराशा को जन्म देता है।

ध्यान देने की बात यह है कि हमेशा किसी अवस्था विशेष से जुड़े आवेगों का सकारात्मक हल नहीं निकल पाता है। वस्तुतः एक विशेष चरण में उठने वाली समस्या के दो छोर होते हैं तथा उसकी प्रकृति सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक भी होती है। फिर भी यदि व्यक्ति समस्या के स्वस्थ्य समाधान को अंत में प्राप्त करता है तो वहां सकारात्मक निश्चय की प्रधानता होती है।

आपने अब तक पढ़ा

आपने इस खंड में पढ़ा कि बच्चे पर्यावरणीय उद्दीपक एवं परिस्थिति के प्रति अलग-अलग ढंग से अनुक्रिया करते हैं। उनके स्वभाव में भिन्नता होती है। छोटे बच्चे भी प्रौढ़ पालनकर्ता, सामान्यतया माता-पिता से सुख के लिए जुड़े होते हैं। सुरक्षात्मक एवं असुरक्षात्मक जुड़ाव, प्रौढ़ावस्था के दौरान समायोजन को प्रभावित करते हैं। अनेक कारक; जैसे – पितृत्व शैली, सहोदर भाई-बहनों का परस्पर संबंध, पारिवारिक संरचना में परिवर्तन, मित्र मंडली, खेल तथा जनसंचार-माध्यम, सामाजिक एवं मनो-सामाजिक विकास को प्रभावित करते हैं। एरिक्सन ने सांवेगिक विकास को आठ चरणों में निरूपित किया है। सभी चरणों में शिशु विशिष्ट विकासात्मक कार्यों से जुड़ा होता है, जिसका समाधान बालक के स्वास्थ्य विकास के लिए आवश्यक होता है।

नैतिक विकास

नैतिकता की अवधारणा

दैनिक जीवन में हम सभी अनेक नैतिक प्रश्नों का सामना

आपने कितना सीखा

1. *आसक्ति विषाद की अनुभूति से जुड़ी होती है।* *(सही/गलत)*
2. *उदार अनुज्ञापक पितृत्व शैली में माता-पिता अपने प्रभुत्व के प्रदर्शन के बिना एक सहनशील और स्वीकार करने वाली अभिवृत्ति को स्वीकार करते हैं।* *(सही/गलत)*
3. *आधिकारिक पितृत्व शैली बच्चों के उचित विकास के लिए सर्वथा उपयुक्त मानी जाती है।* *(सही/गलत)*
4. *अपनी मित्र मंडली द्वारा नापसंद किए गए तथा अच्छे मित्र के रूप में नामित नहीं किए गए बच्चे अस्वीकृत बच्चे कहलाते हैं।* *(सही/गलत)*
5. *इरिक्सन के द्वारा प्रतिपादित मनो-सामाजिक चरण अंतरीकरण से संबंधित है।* *(सही/गलत)*

उत्तर – 1. गलत, 2. सही, 3. सही, 4. सही, 5. गलत।

करते हैं : मुझे क्या करना चाहिए? क्या ऐसा व्यवहार करना उचित होगा? अक्सर हम लोगों को किसी कार्य के सही अथवा गलत होने के बारे में निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। विकास के क्रम में हम लोग व्यवहार के कुछ नियमों को सीखते हैं, जिसके आधार पर गलत और सही के बीच अंतर किया जाता है। नैतिक विकास का संबंध सामाजिक नियमों एवं मानदंडों को अर्जित करने से है जो सही को गलत से अलग करते हैं। नैतिकता, मूल्यों, विश्वासों तथा गलत अथवा सही के बारे में निर्णय कर सकने की एक व्यवस्था है। इसमें संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं व्यावहारिक तीन घटक होते हैं। **पियाजे** और **कोहलबर्ग** नामक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के नैतिक प्राणी बनने की प्रक्रिया की विस्तार से व्याख्या की है। आइए, इनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को समझने का प्रयास करें।

पियाजे का नैतिक विकास का सिद्धांत

सन् 1932 में प्रकाशित पियाजे की पुस्तक *"दि मोरल जजमेंट ऑफ दि चाइल्ड"* नैतिकता के संज्ञानात्मक पक्ष पर बल देती है। उसके अनुसार, नैतिकता 'न्याय की भावना' एवं 'सामाजिक व्यवस्था के नियमों तथा आचारों के



जीन पियाजे

लिए आदर' से जुड़ी होती है। छः से बारह वर्ष की आयु के बीच के बच्चों के अध्ययन के द्वारा उसने दो तरह की नैतिक उन्मुखता (Moral orientation) की पहचान की, जिसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

1. परकेंद्रित उन्मुखता : यह तीन और छः वर्ष की आयु के बीच के बच्चों में पाई जाती है। इस अवधि में बच्चे वयस्कों के प्रति एकतरफा आदर प्रदर्शित करते हैं। बच्चे बड़ों को नियमों के स्रोत के रूप में देखते हैं। इस अवधि में बच्चे यह मानते हैं कि नियम माता-पिता या अधिकारसंपन्न व्यक्तियों द्वारा बनाए जाते हैं तथा अमूर्त होते हैं। इसका कारण यह है कि छोटे बच्चों की सोच आत्म-केंद्रित होती है तथा माता-पिता स्वयं द्वारा निर्धारित नियमों को अपनाने के लिए बच्चों पर दबाव भी डालते हैं। इस अवधि में बच्चों के लिए अपने से बड़े बुजुर्गों की आज्ञा का पालन करना अच्छा माना जाता है, तथा नियमों और आज्ञा की अवहेलना करना या न मानना अच्छा नहीं माना जाता।

2. स्वायत्त उन्मुखता : यह नैतिकता का अधिक परिपक्व रूप है। इसकी विशेषता तार्किकता, न्याय तथा परस्पर आदरभाव की उपस्थिति है। आपने पढ़ा है कि मूर्त संक्रियात्मक अवधि में बच्चों की अहंकेंद्रिकता लुप्त हो जाती है तथा वे दूसरों के नजरिए को स्वीकार करने लगते हैं। वे स्वतंत्र रूप से सोचने एवं तर्क करने की क्षमता भी विकसित कर लेते हैं। अब बच्चे यह समझने लगते हैं कि नियम लोगों के बीच आपसी सहयोग से बनते हैं तथा वे किसी सत्ता से नहीं प्राप्त होते।

पियाजे द्वारा प्रतिपादित नैतिकता के परकेंद्रित एवं स्वायत्त उन्मुखताओं का शोध परिणाम पूरी तरह समर्थन नहीं करते। बच्चे सत्ता के अधिकार को हमेशा ठीक नहीं मानते। वे उन लोगों की आलोचना भी करते हैं जो अपने निर्णयों का स्वयं खंडन करते हैं।

कोहलबर्ग का नैतिक विकास का सिद्धांत

लारेंस कोहलबर्ग का सिद्धांत पियाजे के द्वारा नैतिकता तथा संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर किए गए कार्यों से अत्यंत प्रभावित है। उसने माना कि नैतिक विकास तीन चरणों तथा आठ अवस्थाओं में प्रगति करता है। पहले दो चरण दो अवस्थाओं में विभाजित हैं जबकि अंतिम चरण तीन अवस्थाओं में विभाजित है (तालिका 12.3 देखिए)

> **क्रियाकलाप 12.6**
>
> ***नैतिक उन्मुखता का अध्ययन***
>
> *दैनिक जीवन से परकेंद्रित तथा स्वायत्त उन्मुखताओं से जुड़े उदाहरणों को लें तथा उन्हें अपने शब्दों में वर्णन करें। अपने शिक्षक के साथ उन उदाहरणों पर चर्चा करें।*

कोहलबर्ग के सिद्धांत के अनुसार : (अ) बाद वाली अवस्था पहली वाली अवस्था को अपने में समाविष्ट किए हुए हैं, (ब) एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था पर नहीं जाया जा सकता, (स) अवस्था संपूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करती है अर्थात् किसी एक अवस्था में व्यक्ति प्रत्येक विषय पर एक जैसा सोचता है, और (द) एक अवस्था तक पहुंचने के बाद व्यक्ति पुनः पहले वाली अवस्था में वापस नहीं जाता, इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो एक विशेष आयु में चौथी अवस्था पर तर्क प्रस्तुत करता है, तीसरी अवस्था में पुनः कभी तर्क नहीं करेगा।

कोहलबर्ग ने एक तकनीक का उपयोग किया है, जिसमें परिकल्पनात्मक नैतिक दुविधा (Moral Dileminas) से संबंधित प्रश्नों के उत्तर का विश्लेषण किया जाता है। इन प्रश्नों का कोई सही या गलत उत्तर नहीं होता है। यद्यपि ये दुविधाएँ (धर्म संकट) बच्चों के दैनिक जीवन के भाग नहीं होते तथापि उनमें से अधिकांश बच्चे समस्याओं को अच्छी तरह समझते हैं तथा उस पर चर्चा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, आइए निम्नलिखित परिकल्पित दुविधा पर विचार करें :

रमेश एक 14 वर्ष की आयु का लड़का है, जो पिकनिक पर जाने की तीव्र इच्छा रखता है। उसके पिता ने उससे वायदा किया कि यदि वह इसके लिए आवश्यक धनराशि की बचत करे तभी जा पाएगा। अतः रमेश ने एक दुकान पर कठिन परिश्रम कर पिकनिक में आने वाली लागत के 1000 रुपए की बचत की, परंतु पिकनिक पर निकलने के पहले उसके पिताजी का मन बदल गया। उसके कुछ मित्रों ने बैलों के मेले में जाना तय किया। इस काम में रमेश के पिताजी के पास रुपयों की कमी पड़ गई। अतः उन्होंने रमेश को उस

तालिका 12.3 : कोहलबर्ग के नैतिक विकास की अवस्थाएँ

अवस्थाएँ	नैतिक व्यवहार के कारण
1. **पूर्व परंपरागत नैतिकता** अवस्था 1 : आनंद / कष्ट उन्मुखता अवस्था 2 : लागत लाभ उन्मुखता	पुरस्कार को स्वीकार/प्राप्त करना, पारस्परिकता (जैसे को तैसा)
2. **परंपरागमत नैतिकता**	
अवस्था 3 : 'अच्छा बच्चा' वाली उन्मुखता	स्वीकृति को प्राप्त करना, अस्वीकृत से बचाव।
अवस्था 4 : सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की उन्मुखता	नियमों का पालन करना तथा दंड से परहेज।
3. **पश्चात् परंपरागत नैतिकता**	अपने समाज के कल्याण को प्रोत्साहित करना।
अवस्था 5 : सामाजिक नियंत्रण उन्मुखता	न्याय को प्राप्त करना, अपने को नकारने की प्रवृत्ति से बचना।
अवस्था 6 : नैतिक सैद्धांतिक उन्मुखता	सार्वभौमिक नियमों के प्रति सच्चा बना रहना, अपने को
अवस्था 7 : ब्रह्मांडीय उन्मुखता दुःख को नकारना अथवा पकड़े जाने से बचाव	ब्रह्मांडीय दिशा के एक अंश के रूप में अनुभव करना जो सामाजिक प्रतिमानों से आगे जाना।

राशि को दे देने को कहा, जिसको वह पिकनिक पर जाने के लिए बचाए रखा था। रमेश पिकनिक जाने का मौका नहीं छोड़ना चाहता था, अतः वह अपने पिताजी को राशि देने से अस्वीकार करने के बारे में सोच रहा है।

पहला प्रश्न जो उपर्युक्त दुविधा के बारे में पूछा जा सकता है यह है कि क्या रमेश को अपने पिताजी को धन देने से मना करना चाहिए? क्यों या क्यों नहीं? इसके अतिरिक्त और (मानक) प्रश्न पूछे जा सकते हैं; जैसे कि क्या पिताजी को यह अधिकार है कि वह अपने पुत्र रमेश से, राशि देने को कहें? (क्यों? क्यों नहीं?)। सामान्य रूप से एक वायदा क्यों करना चाहिए? सामान्यतः अपने बच्चों पर पिताजी का क्या अधिकार होना चाहिए? आपके विचार में एक बच्चे का अपने पिताजी के साथ परस्पर संबंध का मुख्य आधार क्या होना चाहिए?

कोहलबर्ग के अनुसार 7 वर्ष तथा उससे कम आयु के बच्चे नैतिक दुविधा का पहले स्तर-परंपरापूर्व स्तर-जो दो अवस्थाओं-पहली और दूसरी में वर्गीकृत है, को हल कर लेते हैं। वे पहली अवस्था में, बच्चे नैतिक व्यवहार के द्वारा पीड़ा/दंड से बचते हैं। दूसरी अवस्था में, बच्चों की नैतिकता इस तथ्य के द्वारा नियंत्रित होती है कि क्या ठीक तरह व्यवहार करने से पुरस्कार तथा प्रशंसा मिलेगी? 13 वर्ष की आयु में, बच्चे दूसरे स्तर में प्रगति करते हैं : जैसे – परंपरागत नैतिकता में, जहाँ स्वीकृति पाना नैतिक व्यवहार के लिए प्रेरक होता है (तीसरी अवस्था) तथा सजा से बचने के लिए नियमों को व्यवहार में लाते हैं (चौथी अवस्था)। तृतीय चरण अर्थात् परंपरागत स्थिति के पश्चात् की नैतिकता तक सभी वयस्कों के लिए पहुँच पाना संभव नहीं हो पाता है। सामान्यतः केवल दस प्रतिशत ही इस स्तर तक पहुँच पाते हैं, जिसमें व्यक्तिगत लाभ की अपेक्षा 'सामाजिक अच्छाई' का अधिक संबंध होता है। सातवीं अवस्था का ब्रह्मांडीय दृष्टिकोण वयस्कों में भी दुर्लभ है, जिसे कोहलबर्ग आदर्श उच्चतम स्तर के रूप में स्वीकार करते हैं।

आधुनिक शोध इस ओर संकेत करते हैं कि नैतिक निर्णय में सांस्कृतिक भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए, भारतीय (हिंदू) परंपरा में नैतिकता, मनुष्य के अस्तित्व के के बारे में प्रचलित अवधारणाओं में समाविष्ट है। इस संदर्भ में कर्म-सिद्धांत जो अच्छे (धर्म) तथा बुरे (अधर्म) कार्यों को एकत्र करता है, जो पूर्व जन्मों के भी हो सकते हैं, का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस तरह के नैतिक सोच के प्रकार जो पूर्णतः भिन्न हैं, उन्हें कोहलबर्ग के सिद्धांत में स्थान नहीं प्राप्त है। यह कर्तव्य की भारतीय नैतिक दृष्टि से संबंधित है और सबके जीवन के लिए आदर के विचार को प्रकट करता है जो अहिंसा के सिद्धांत के निकट ले जाता है। यह इस दृष्टिकोण पर बल देता है कि प्राकृतिक व्यवस्था एक नैतिक व्यवस्था है और व्यक्तियों की अपेक्षा संबंध अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। यह उत्तरदायित्व एवं सुश्रूषा के निकट ले जाता है। पश्चिमी समाजों में महिलाओं में भी यह प्रवृत्ति प्राप्त होती है जिसका कोहलबर्ग के सिद्धांत में अभाव है। बौद्ध तथा सूफी परंपराएँ भी नैतिकता के भिन्न-भिन्न विचारों को व्यक्त करती हैं।

बौद्ध दृष्टिकोण के अनुसार अन्य व्यक्तियों का पीड़ा का अनुभव सभी प्राणियों के प्रति करुणा के भाव के रूप में फलित होता है। सूफी परंपरा में न्याय की एक आंतरिक संवेदना की जरूरत पर बल दिया जाता है, यदि हमें दूसरों के साथ सौहार्द के साथ रहना है। इस विचारधारा में नैतिकता का आधारभूत नियम प्रेम है। यह मनुष्य के अपने कार्य से पैदा होता है और दूसरों की सेवा में अभिव्यक्त होता है।

आपने अब तक पढ़ा

आपने इस अनुभाग में सामाजिक व्यवहार के सिद्धांतों के बारे में पढ़ा, जिनकी सहायता से गलत और सही के बीच अंतर किया जाता है। आपने नैतिक विकास पर कोहलबर्ग तथा पियाजे के सिद्धांतों का भी अध्ययन किया। पियाजे ने दो प्रकार की नैतिकता-परकेंद्रित एवं स्वायत्त की चर्चा की। कोहलबर्ग का विचार है कि नैतिक विकास तीन चरणों तथा सात अवस्थाओं से गुजर कर घटित होता है। प्रत्येक चरण में बच्चे की नैतिकता विभिन्न नियमों के द्वारा संचालित होती है। नैतिक दृष्टि से सोचने में सांस्कृतिक भिन्नताएँ भी पाई जाती हैं।

आपने कितना सीखा

1. *मनुष्य के कार्यों के सही तथा गलत होने के बारे में अंतर्निहित विश्वासों को कहा जाता है ________ ।*
2. *दूसरों के दृष्टिकोण को देखना तथा स्वतंत्र रूप से सोचने की योग्यता का विकास ________ नैतिकता का उदाहरण है।*
3. *कोहलबर्ग के अनुसार, अपने समाज के कल्याण को बढ़ावा देने की इच्छा नैतिकता के ________ चरण की विशेषता है।*

उत्तर – 1. नैतिकता 2. स्वायत्तता 3. परंपरागत।

मूल्यों का विकास

मूल्यों का तात्पर्य एक समुदाय या एक व्यक्ति के लिए क्या वांछनीय है और क्या अवांछनीय है, इसके निर्णय से जुड़े विश्वासों से है। मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत लक्ष्य के साथ-साथ व्यक्तिगत पसंद को भी व्यक्त करते हैं। आप बड़ों तथा माता-पिता के प्रति सम्मान रखते हैं, जरूरतमंदों की सहायता करते हैं और ऐसा मानते हैं कि कुछ विशिष्ट दिशा में किए गए व्यवहार सही होते हैं तथा दूसरी तरह के व्यवहार गलत हैं। आप व्यवहारों को वांछित या अवांछित, चाहा या अनचाहा की श्रेणियों में इस आधार पर बांटते हैं कि आप किसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं और किसे व्यर्थ। चूंकि मूल्य व्यक्ति की पसंद, महत्त्वाकांक्षाएं तथा मानक होते हैं, दूसरे किसे ठीक मानते हैं तथा आप किसे ठीक नहीं मानते हैं इन दोनों के बीच में अंतर होता है। एक बच्चा इन मूल्यों को अनुबंधन, परिवार, मित्र मंडली तथा समाज के अन्य महत्त्वपूर्ण सदस्यों द्वारा समाजीकरण के माध्यम से सीखता है। आजकल दूरदर्शन (टेलीविजन) तथा जनसंचार के अन्य साधन भी मूल्यों के विकास को प्रभावित कर रहे हैं।

मूल्य अनेक वर्गों अथवा प्रकारों में बांटे जाते हैं; जैसे– भौतिक, मानसिक, सांवेगिक, आर्थिक, सौंदर्यपरक, नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक। उदाहरण के लिए, अन्य लोगों की अपेक्षा खिलाड़ी अपने शारीरिक सौष्ठव बनाने को अधिक महत्त्व देता है। विद्वान लोग अपने मानसिक विकास से अधिक जुड़े होते हैं तथा निरंतर नए ज्ञान की खोज में अपना अधिक समय लगाते हैं। कुछ लोग आसानी से सांवेगिक रूप से उद्वेलित हो जाते हैं, जबकि दूसरे लोग (जितेंद्रिय) अपने संवेगों को नियंत्रित कर लेते हैं। ऐसे भी लोग हैं जो प्राकृतिक संसाधनों तथा आवास स्थान के लिए आदर रखते हैं। पश्चिमी लोगों की तुलना में भारतीय लोगों में सामान्यतः समूह के नियमों के अनुसार आचरण तथा बड़ों के प्रति सम्मान देखा गया है। इस तरह लोगों द्वारा विशिष्ट मूल्यों को पसंद किया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि *मूल्य वांछनीय लक्ष्य या आचरण के बारे में विचार या विश्वास होते हैं जो विशेष रूप से जुड़े न रहकर सामान्य रहते हैं। वे घटना या आचरण को चुनने और आंकने को निर्देशित करते हैं तथा महत्त्व की दृष्टि से उन्हें क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है, अर्थात् कुछ मूल्यों को अन्य मूल्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है।*

लक्ष्य तथा नैमित्तिक मूल्य

मूल्य का संबंध इससे है कि जीवन में उपलब्धि के लिए अंततोगत्वा आप क्या चाहते हैं। जीवन के सामान्य लक्ष्य या लक्ष्य अवस्थाएं उदाहरण के लिए, आप जीवन में शांति, स्वतंत्रता, खुशी, धन की इच्छा रखते हैं, इसे **लक्ष्य मूल्य** (Terminal value) कहा गया है। मूल्यों के दूसरे प्रकार का

संबंध इस प्रश्न से है कि क्या आप **नैमित्तिक मूल्य** (Instrumental value) को प्राप्त करने में सफल होना चाहते हैं? ये मूल्य नैमित्तिक मूल्य के रूप में पाए जाते हैं। मान लीजिए, आप समृद्ध व्यक्ति बनना चाहते हैं। यह एक नैमित्तिक मूल्य है। किस प्रकार आपने ऐसे धन का संग्रह किया – ईमानदारी के रास्ते या अनुचित साधन के उपयोग द्वारा – यह नैमित्तिक मूल्य को बताता है।

क्रियाकलाप 12.7

महात्मा गांधी के मूल्य

महात्मा गांधी ने हमारे देश की स्वतंत्रता के लिए अहिंसा के पथ को अपनाया। महात्मा गांधी के लक्ष्य एवं नैमित्तिक मूल्यों को ज्ञात कीजिए।

दैनिक जीवन की परिस्थितियों से लक्ष्य एवं नैमित्तिक मूल्यों के अन्य उदाहरणों का उल्लेख कीजिए।

मूल्यों के विकास में माता-पिता और समाज की भूमिका

मूल्यों को अर्जित करना एक क्रमिक प्रक्रिया है, जो आयु बढ़ने के साथ स्थिर हो जाती है। छोटे बच्चों की पसंद में बार-बार बदलाव आता है (जैसे – प्रिय मित्र, रंग, खेल कूद, पशु, विद्यालय में पढ़े जाने वाले विषय)। इस तरह की पसंद बड़े बच्चों और प्रौढ़ों में स्थिर हो जाती है।

क्या सही है या क्या गलत, इसके बारे में मूल्य या विश्वास, अनुकरण और माता-पिता और दूसरे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की मॉडलिंग के द्वारा बच्चे बहुत छोटी आयु में ही अपनाने लगते हैं। लगभग सभी समाजों में माता-पिता या पालनकर्ता बच्चों में मूल्यों के विकास को सहज बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। माता-पिता मूल्यों के विकास को तीन प्रमुख तरीकों से प्रभावित करते हैं: (अ) व्यवहार के प्रत्यक्ष मॉडलिंग के लिए अवसर प्रदान करके, (ब) सामान्य पुरस्कारों, दंड और अनुशासन के द्वारा, तथा (स) पालन-पोषण के तरीकों के नैतिक व्यवहार पर सामान्य प्रभाव के द्वारा।

मूल्यों के विकास के क्रम में वस्तुतः व्यक्ति के एक अपने या निजी दृष्टिकोण का जन्म होता है जो उस सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के अनुरूप होता है, जिसमें उसकी भागीदारी होती है। बच्चे अपनी संस्कृति और पहचान के बारे में कई तरीकों से सीखते हैं। इसमें समूह के अनुभवों के बारे में कहानियों को पढ़ना और सुनना, और सुनाना, समूह के नायकों को आदर्श मानने, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का निरीक्षण और उनके साथ तादात्मीकरण, तथा समूह की जीवन शैली में भागीदारी सम्मिलित हैं। आज की दुनिया में संचार माध्यम भी मूल्यों के विकास में एक खास भूमिका अदा करते हैं। अपने सामाजिक जीवन में बच्चा भिन्न-भिन्न प्रथाओं, कृत्यों, तौर-तरीकों, निष्ठा तथा समूह का पूर्वाग्रह, जिसका वह अंग होता है, ये सभी बच्चों की मूल्य व्यवस्था के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस संदर्भ में परिवार की संस्कृति, परिवार के अंदर आपसी संबंधों का स्वरूप, सामाजिक वर्ग, परिवार के रीति-रिवाज, धार्मिक क्रियाकलाप तथा शिक्षा महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय परिवार पदानुक्रमिक ढंग से संगठित (Hierarchically organized) होता है, जिसमें हर व्यक्ति की जगह पहले से तय रहती है। अपनी जगह के आधार पर एक व्यक्ति अपने बुजुर्गों के प्रति आज्ञाकारी और अपने से छोटों की देखभाल करने वाला होना चाहिए। इस तरह हर बच्चे को यह कहा जाता है कि उसका कर्तव्य है कि अपने से छोटों की देखभाल करे और बदले में आज्ञाकारिता और निर्देशों को मानने की आशा करता है। परंपरागत परिवार में एक व्यक्ति की प्रभुता, अधिकांशतः आयु, लिंग और व्यक्ति की पीढ़ी पर निर्भर करता है। परंपरा के लिए आदर, बुजुर्गों का सम्मान महत्त्वपूर्ण रूप से वांछित मूल्य है जिनका परंपरागत भारतीय परिवार में अर्जन किया जाता है। संयुक्त परिवार में स्पष्ट रूप से प्रकट व्यवहारों पर सामान्यतः प्रतिबंध रहता है। परिवार के सदस्य परिवार में अपनी स्थिति,

क्रियाकलाप 12.8

परिवार में मूल्य

आप से घर तथा विद्यालय में मित्रों के साथ तथा समाज के बुजुर्ग सदस्य के साथ जिन मूल्यों की अपेक्षा की जाती है, उन्हें सोचकर उनकी एक सूची बनाइए। क्या आपको लगता है कि मूल्यों की आपकी पसंद आपके मित्रों से भिन्न है? यदि हाँ तो किस तरह?

औकात (सामर्थ्य) आयु और लिंग के अनुसार परिभाषित व्यवहारों के अनुरूप आचरण करना सीखते हैं।

वैयक्तिकता-सामूहिकता तथा मूल्यों की पसंद

आपने अवश्य देखा होगा कि लोग अपनी सामाजिक दुनिया और दूसरे व्यक्तियों के प्रति अलग-अलग दृष्टिकोण रखते हैं। कुछ व्यक्ति या समाज अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में व्यक्ति केंद्रित होते हैं और वे परिवार, समाज या अपने समूह के लक्ष्यों के बदले व्यक्ति पर अधिक बल देते हैं। उनके लिए व्यक्तियों के बीच में संबंध तभी तक महत्त्वपूर्ण रहता है जब तक वह व्यक्तिगत लक्ष्यों की पूर्ति करता है। दूसरी श्रेणी के लोग अपने को स्वतंत्र न समझ कर अपने को परिवार या समुदाय के साथ परस्पर निर्भर मानते हैं। आप जीवनपर्यंत भाई, बहन, पुत्र, पुत्री बने रहते हैं और अपने संसाधनों को उन सबके साथ बांटते हैं। सामूहिकता पर बल देने वाले लोग अपने निजी लक्ष्यों को समूह की अपेक्षाओं के सामने बलिदान कर देते हैं। उदाहरण के लिए अगर परिवार में कोई बीमार है और उस पर ध्यान देना आवश्यक है तब व्यक्ति सिनेमा जाने का विचार छोड़ देगा। इस श्रेणी के लोग दूसरों की आवश्यकताओं और संबंधों को महत्त्व देते हैं। पहली श्रेणी के लोगों को व्यक्तिवादी (Individualist) तथा दूसरी श्रेणी के लोगों को समुदायवादी (Collectivist) कहा जाता है। पाश्चात्य समाजों को व्यक्तिवादी समाज के रूप में जाना जाता है, जहाँ आत्मनिर्भरता, आत्मपर्याप्तता, निजता, व्यक्तिगत उपलब्धि और स्वतंत्रता पर अधिक जोर दिया जाता है। इसके विपरीत समुदायवादी समाजों में परस्पर आधृत संबंधों पर बल दिया जाता है (जैसे – श्रेष्ठ लोगों का महत्त्व मानना, सामाजिक दायित्वों का निर्वाह, सामाजिक मानकों के अनुरूप आचरण तथा अपनी प्रसन्नता और दुःख को समूह के लाभ के लिए कम मात्रा में व्यक्त करना)। ये लोग संदर्भ के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। ये व्यक्तिगत तथा सामाजिक लक्ष्यों के बीच स्पष्ट अंतर नहीं करते और यदि अंतर करते भी हैं तो व्यक्तिगत लक्ष्यों को सामाजिक लक्ष्यों के अधीनस्थ कर देते हैं और उनका प्रमुख सरोकार दोनों तरह के लक्ष्यों के बीच संतुलन बनाए रखना होता है।

क्रियाकलाप 12.9

समकालीन भारतीय समाज में जीवन मूल्य

अपने पास पड़ोस में किन विभिन्न धार्मिक समूहों जैसे इस्लाम, बौद्ध, ईसाई और सिख के सामान्य लोगों से मिलिए और उनकी अपनी परंपराओं में सम्मिलित मूल्यों के बारे में उनका साक्षात्कार कीजिए। उनसे प्राप्त मूल्यों में समानताओं और भिन्नताओं की जाँच कीजिए। अपने परिणामों का अपनी कक्षा में विवेचन कीजिए।

आपने अब तक पढ़ा

इस अनुभाग में आपने यह पढ़ा कि मूल्य का तात्पर्य उन मानकों से है, जिनका उपयोग वांछित या अवांछित के बारे में निर्णय लेने के लिए किया जाता है। ये निजी पसंद होते हैं, जो व्यक्तियों और समूहों में भिन्न-भिन्न होते हैं। मूल्य आत्यंतिक या नैमित्तिक स्वभाव के हो सकते हैं। मूल्यों का विकास परिवार या समाज द्वारा समाजीकरण और कुछ सीमा तक बाह्य कारकों, जिनमें संचार माध्यम शामिल हैं, द्वारा होता है। पश्चिमी देशों में लोग अधिक व्यक्ति-केंद्रित हैं और इसीलिए समूह लक्ष्यों की अपेक्षा व्यक्तिगत लक्ष्यों पर अधिक बल देते हैं। इसके विपरीत एशिया और अफ्रीका की संस्कृतियों में लोग अपने को परिवार और समाज के साथ परस्पर निर्भर मानते हैं और इसीलिए व्यक्तिगत लक्ष्यों से ऊपर परिवार या समाज के लक्ष्यों को अधिक महत्त्व देते हैं।

समग्र विकास

इस अध्याय में आपने संज्ञानात्मक, सामाजिक-सांवेगिक तथा नैतिक प्रक्रियाओं के बारे में और उनके विकास के क्रम के बारे में पढ़ा। अध्याय 3 में आपने जैविक प्रक्रियाओं के बारे में पढ़ा था। आपको यह याद रखना चाहिए कि ये सभी प्रक्रियाएँ एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं हैं बल्कि एक दूसरे में इस तरह गुँथी हुई हैं कि उनसे एक समग्र स्वरूप का निर्माण होता है (चित्र 12.4 देखिए)।

सामाजिक-सांवेगिक प्रक्रिया, जिसमें नैतिक विकास भी शामिल है संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को गढ़ती है, तथा

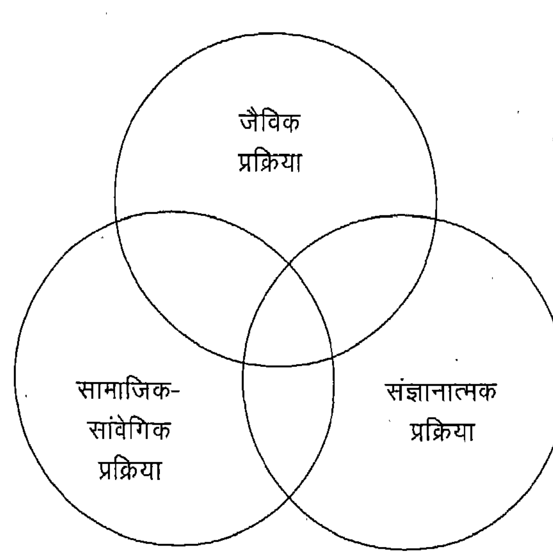
बाक्स 12.4 भारतीय समाज में मूल्य : एक दृष्टिकोण

भारत अपनी विभिन्न धार्मिक तथा दार्शनिक परंपराओं में अवधारणाओं एवं विचारों का एक समृद्ध कोश संजोए हुए है। ये मूल्यों से संबंधित संप्रत्ययों का एक व्यापक संसार प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः हिंदू, इस्लामी, ईसाई, जैन, बौद्ध तथा अन्य परंपराओं में विकसित विचारों तथा विश्लेषणों से प्राप्त जानकारी बहुत उपयोगी तथा शिक्षाप्रद हो सकती है। उदाहरणार्थ, इस्लाम का आधारभूत विचार है कि मनुष्य का हर काम, हर वस्तु, हर संबंध दिव्य प्रकृति का हिस्सा है। दिव्य प्रकृति को अनुभव करने की संभावना इस्लाम की दैनिक जीवनचर्या के हर क्षण में विद्यमान है। इसी तरह अन्य परंपराओं में भी मूल्यों के विचार विकसित हुए हैं। स्थानाभाव के कारण यहां पर केवल एक दृष्टिकोण का विवेचन प्रस्तुत है। भारतीय (हिंदू) दृष्टि में धर्म (नैतिक कर्तव्य), अर्थ (राजनैतिक आर्थिक मूल्य), काम (सुखवादी मूल्य) तथा मोक्ष (धार्मिक आध्यात्मिक मूल्य) को मानव जीवन के चार लक्ष्य (पुरुषार्थ) स्वीकार किया गया है। धर्म, अर्थ तथा काम सामान्य जीवन के अनुभवगम्य मूल्य हैं। मोक्ष मानव जीवन का पारगामी आदर्श (Transcendental Ideal) है पर यह व्यक्ति की चेतना को विस्तृत करता है और वैश्विक चेतना को भी शामिल करता है। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के चार विचार मूल्यों की अवधारणा को आधार प्रदान करते हैं।

***धर्म** नैतिक नियम है तथा अर्थ, काम को संचालित करता है। इसलिए धर्म उन दोनों से ऊपर है। **अर्थ,** जो संसाधनों से जुड़ा है, अन्य मूल्यों के लिए आवश्यक आधार का कार्य करता है। हर व्यक्ति को इसे प्राप्त करने के लिए प्रयास करना चाहिए। **काम** इच्छाओं की दुनिया से जुड़ा है और जीवन को गुणात्मक रूप से समृद्ध करता है। **मोक्ष** मनुष्यों की आध्यात्मिक संतुष्टि है, जिसमें ब्रह्म या पारगामी सत्य का अनुभव शामिल है।*

***धर्म** मनुष्य की दुनिया का आधार है। यह सभी सरोकारों को जोड़ता तथा संगठित करता है। उपासना, अध्ययन-मनन तथा परोपकार (जरूरतमंदों की सहायता) धर्म के आधार हैं। सत्य, अहिंसा, न्याय, प्रेम, सदाचार, बलिदान, नम्रता, ईमानदारी, परोपकार, वृद्धजनों के प्रति आदर, धर्म के ही विभिन्न रूप हैं। इससे प्रकट होता है कि इससे आत्मविश्वास बढ़ता है। **अर्थ** का विशेष महत्त्व है क्योंकि अक्सर पुरुषार्थ का मापन समृद्धि से किया जाता है। परंतु धर्म का अवलंबन करते हुए अर्जित संपत्ति ही श्रेष्ठ होती है। मनुष्यों के कार्यों के पीछे प्रेरक वृत्ति **काम** है, जिसके अभाव में कोई कार्य नहीं होता है। परंतु काम की सीमा धर्म द्वारा परिभाषित होती है, क्योंकि वह स्वयं कोई सीमा नहीं बनता। इस तरह व्यक्ति का चरित्र धर्म, अर्थ तथा काम के बीच संतुलन स्थापित करने के द्वारा परिभाषित होता है।*

संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ सामाजिक-सांवेगिक प्रक्रियाओं को प्रोत्साहित या बाधित करती हैं। समझने और प्रस्तुत करने की सुविधा के लिए इन प्रक्रियाओं का अलग-अलग विवेचन किया गया है। वास्तविक जीवन में ये सभी परस्पर संबंधित रूप में विद्यमान रहती हैं और सक्रिय होती हैं। यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि सभी प्रक्रियाएँ एक-दूसरे पर निर्भर करती हैं। जैविक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक संवेगात्मक प्रक्रियाएँ विकासात्मक परिवर्तनों को प्रभावित करती हैं। यह एक समग्र व्यक्ति-एक आदमी है, जो विकसित होता है। विभिन्न पक्ष या प्रक्रियाएँ जीवन विस्तार में व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया में परस्पर संबंधित होती हैं। अतः बच्चे का समग्र विकास हर क्षेत्र में अधिकतम विकास चाहता है न कि एक की कीमत पर दूसरे का विकास।



***चित्र 12.3 :** जैविक, संज्ञानात्मक तथा सामाजिक-सांवेगिक प्रक्रियाओं का नेटवर्क।*

क्रियाकलाप 12.10

अपने मूल्यों को जानें

नीचे 36 वक्तव्य/स्थितियाँ दो-दो वैकल्पिक अनुक्रियाओं के साथ दी हुई हैं। हर कथन को ध्यानपूर्वक पढ़िए और अपनी व्यक्तिगत पसंद वक्तव्य के आगे बने बाक्स में उचित स्थान पर लिख दें। दो वैकल्पिक अनुक्रियाओं की तुलना कीजिए और शून्य से चार (0-4) के बीच अंकों को हर विकल्पों के लिए दीजिए। उदाहरणार्थ, यदि 'A' विकल्प को 'B' की अपेक्षा अधिक पसंद कर सकते हैं और तदनुसार 3 का अंक 'A' को, और 1 अंक 'B' को दे सकते हैं। यदि आप दोनों को बराबर पसंद करते हैं तो दोनों को 2 का अंक दे सकते हैं। दूसरी ओर, यदि आप एक को बहुत ही अधिक पसंद करते हैं तथा दूसरे को बिल्कुल नापसंद करते हैं तो आप क्रमशः 4 तथा 0 का अंक दे सकते हैं। यदि आप दोनों विकल्पों को पंसद नहीं करते हैं तो दोनों को 0 का अंक दे सकते हैं। इस तरह हर बाक्स में कम से कम शून्य (0) तथा अधिक से अधिक चार (4) का अंक दे सकते हैं।

	कथन	पसंद	पसंद
1.	मैं अक्सर इनके जानने के बारे में रुचि रखता हूँ	A. उपयोगी तथा काम की चीज	D. सिद्धांत
2.	यदि मेरे पास पर्याप्त मात्रा में अतिरिक्त धन हो तो मैं खरीदूँगा	A. एयर कंडीशनर	F. एक प्रख्यात कलाकार की पेंटिंग
3.	महाभारत वर्णन है	E. सत्ता के खेल और तमाशे का	I. अपने समय का आध्यात्मिक जीवन
4.	रविवार को मैं अपना दिन शुरू करूँगा	C. उपासना स्थल जाकर	G. एक गरीब और निचले तबके के व्यक्ति की सहायता करके
5.	हमारे योजना निर्माताओं को अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिए	A. प्रमुख उद्योग पर	B. गरीबी उन्मूलन पर
6.	मैं अपना खाली समय बिताना चाहूँगा	A. अतिरिक्त धन अर्जित करने में	C. कुछ धार्मिक प्रवचन सुन कर
7.	मैं अपने नेतृत्व के गुणों को व्यक्त करने का अवसर पाता हूँ	B. जब मैं मित्रों के बीच रहता हूँ	E. जब मैं चुनाव लड़ता हूँ
8.	मैं अपने को मानता हूँ	D. एक बुद्धिजीवी	E. एक नेता
9.	मैं क्या सीखना चाहूँगा	F. कला और संस्कृति के बारे में	H. वह जो मेरे लिए प्रतिस्पर्धा परीक्षाओं में सहायक हो
10.	मैं प्राप्त करना चाहूँगा	A. वह जो दैनिक जीवन में उपयोगी हो	E. सामर्थ्य और प्रभाव
11.	मुझे ऐसे लोगों की मित्रता प्यारी लगती है	B. मेरे मित्र और संबंधी	I. आध्यात्मिक नेता
12.	मेरे विचार में देश को अधिक योगदान किया	A. जमशेद टाटा ने	I. स्वामी विवेकानंद ने

कथन	पसंद	पसंद
13. किस तरह का शोध अधिक प्रासंगिक तथा उपयोगी है?	B. वह जो लोगों की अभिवृत्तियों को समझने में सहायक है	F. वह जो कला और सौंदर्यशास्त्र को समझने में सहायक है
14. मेरी तमन्ना है	E. एक नेता बनने की	F. एक कलाकार बनने की
15. मैं वह नौकरी पसंद करूँगा जिसमें	A. ऊँची तनख्वाह तथा अन्य लाभ हों	G. जो मुझे जनता की सेवा का अवसर दे
16. मैं वह नौकरी पसंद करता हूँ जो	A. मुझे आराम की जिंदगी जीने के लिए पर्याप्त धन दे सके	H. आत्मोन्नयन के लिए अवसर प्रदान करता है
17. मानवता ने अधिक पाया है	C. धर्म से	D. विज्ञान से
18. मैं आज के प्रशासक से निम्नांकित के बारे में अधुनातन ज्ञान की अपेक्षा करूंगा	E. देश में राजनैतिक परिदृश्य	G. पिछड़े वर्ग के लोग जो वास्तव में सहायता चाहते हैं
19. संतुष्टि और सुख आते हैं	C. प्रार्थना से	E. सामर्थ्य और ओहदे से
20. अवकाश के क्षणों में मैं पढ़ता हूँ	B. सामाजिक समस्याओं के बारे में	C. धर्म के बारे में
21. मैं इस विषय पर भाषण सुनना पसंद करूंगा	B. सामाजिक परिवर्तन	G. परोपकार
22. मैं हमेशा इनके बारे में जानने को उत्सुक रहा हूँ	D. ब्रह्मांड के रहस्य	F. साधुसंतों के आध्यात्मिक अनुभव
23. मुझमें ज्ञान पाने की इच्छा है क्योंकि यह	D. आलोकित करता है और व्यक्ति को ऊपर उठाता है	H. व्यक्ति को लक्ष्य पाने में सहायता करता है
24. मैं दूसरों की मदद इसलिए करता हूँ कि	C. यह मुझे ईश्वर के निकट पहुंचाता है	H. इससे मुझे आंतरिक संतुष्टि मिलती है
25. गर्मी की छुट्टियों में मैं चाहूँगा कि मेरा बच्चा पढ़ाई करे	D. सृजनात्मकता की	F. कला के अर्थ को समझने की
26. मुगल साम्राज्य प्रसिद्ध है	E. बड़े साम्राज्य के लिए जो उन्होंने खड़ा किया	H. अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिए
27. मैं निम्नलिखित को आगे बढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत करूंगा	B. सामाजिक लक्ष्य	H. व्यक्तिगत लक्ष्य
28. मैं बहुत प्रभावित होता हूँ	G. उस व्यक्ति से जो दूसरों की सहायता करता है	H. वह व्यक्ति जो नाम, यश और ओहदा प्राप्त कर सका है
29. मैं शाहजहाँ का प्रशंसक हूँ	F. क्योंकि उसने ताजमहल बनवाया	G. क्योंकि वह आम जनता की देखभाल में रुचि लेता था।

कथन	पसंद	पसंद
30. अच्छी तरह जीने और गुणवत्ता वाला जीवन जीने के लिए एक आदमी को चाहिए	F. प्राकृतिक और सौंदर्यपूर्ण परिवेश	I. आध्यात्मिक परिवेश
31. जब मैं किसी पूजा स्थल पर जाता हूँ तो	C. मैं ईश्वर की उपस्थिति महसूस करता हूँ और पूरा वातावरण शांति और संतुष्टि से भरा होता है।	F. मैं खूबसूरत आकृति और इसके इर्द-गिर्द के सौंदर्यपरक वातावरण से प्रभावित होता हूँ
32. मैं निम्नलिखित लोगों की संगति में बहुत शांति पाता हूँ	C. एक संत	I. एक व्यक्ति जिसके विचार और भाव उच्च स्तर पर परिष्कृत हों
33. मैं पढ़ना चाहूँगा	D. प्रजातियों के उद्‌विकास पर	G. मदर टेरेसा की आत्मकथा
34. भगवान के निकट कौन है?	G. वह जो भगवान की रचनाओं को प्यार करता है ओर उनकी सेवा करता है	I. वह जो उन्नत है, और भावों तथा विचारों के परिष्कृत ढंग से प्रतिक्रिया करता है
35. मेरे जीवन का लक्ष्य है	H. सर्वोच्च पद प्राप्त करना	I. एक ऐसे मानसिक स्तर पर पहुंचना जहाँ क्रोध, ईर्ष्या तथा लोभ को कोई स्थान न हो
36. शोध के लिए धन मिलना चाहिए केवल	B. सामाजिक कल्याण वाले शोध को प्रोत्साहित करने के लिए	D. सिद्‌धांतों के विकास के लिए

ध्यान दें : ये केवल नमूने के पद हैं और इनका उपयोग मूल्यांकन या निदान के लिए वर्जित है।

गणना : ऊपर दिए 36 पदों के आगे बने दो बाक्स में अंक देने के बाद A, B, C से लेकर I तक के लिए जितने भी अंक मिले हैं, उन्हें जोड़ लीजिए। इसके बाद इन्हें सबसे अधिक उसके बाद अगला और क्रमशः सबसे कम अंक वाले को लिखें। A, B, C आदि अक्षर का निम्नलिखित मूल्यों को व्यक्त करते हैं :

A. आर्थिक/मौलिक सामाजिक
B. धार्मिक
C. सैद्‌धांतिक
D. राजनैतिक
E. सौंदर्यपरक
F. परोपकार
G. आत्मोन्नयन
H. आध्यात्मिक

इस तरह आप अपनी मूल्य व्यवस्था में मूल्यों का पदानुक्रम (Hierarchy) जान सकते हैं।

प्रमुख तकनीक शब्द

समावेशन, समायोजन, लगाव, निरंकुश पितृत्व, स्वायत्तता बनाम शर्म तथा संदेह, केंद्रिकता, मूर्त संक्रियात्मक चरण, संधारण, परंपरागत तर्कना का चरण, आत्मकेंद्रिकता, औपचारिक संक्रियात्मक चरण, उत्पादन क्षमता बनाम गतिरोध, परकेंद्रित नैतिकता, अस्मिता बनाम भूमिका का संशय, उदार पितृत्व, उद्यम बनाम हीनता, पहल बनाम ग्लानि, नैमित्तिक मूल्य, एकता बनाम निराशा, अंतरीकरण, अंतरंगता बनाम अलगाव, नैतिक विकास, लापरवाह पितृत्व वस्तु स्थायित्व, सांवेदिक पेशीय चरण, सामाजिक-सांवेगिक प्रक्रियाएँ, स्वभाव।

सारांश

- *बच्चों की चिंतन प्रक्रियाएँ बड़ों से गुणात्मक रूप में भिन्न होती हैं तथा समायोजन की प्रक्रिया द्वारा बच्चे अपने पास की दुनिया की नई समझ विकसित करते हैं।*
- *पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के क्रम में मनुष्य चार चरणों से गुजरता है। ये हैं : सांवेदिक पेशीय, पूर्व संक्रियात्मक, मूर्त संक्रियात्मक तथा औपचारिक संक्रियात्मक। सांवेदिक-पेशीय चरण में बच्चा अपने प्रतिवर्तों के उपयोग की सहायता से दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करता है तथा वस्तु स्थायित्व के संप्रत्यय का उपयोग शुरू करता है। पूर्व संक्रियात्मक चरण में बच्चे का सोचना आत्मकेंद्रित रहता है। बच्चे में विपरीत क्रम में सोचने की क्षमता नहीं रहती। वह किसी कार्य के एक से अधिक पक्षों पर एक साथ ध्यान नहीं दे पाता, निर्जीव वस्तुओं को जीवित प्राणी के रूप में देखता है और संधारण नहीं कर पाता है। मूर्त संक्रियात्मक चरण में बच्चों में ये सभी योग्यताएँ आ जाती हैं फिर भी मूर्त या तात्कालिक अनुभवों तक ही बच्चों के सोचने की क्षमता सीमित रहती है। जब वे औपचारिक संक्रियात्मक चरण में पहुंचते हैं तो उनमें प्रौढ़ों जैसी तार्किक चिंतन की क्षमता आ पाती है और वे अमूर्त संप्रत्ययों की सहायता से चिंतन कर पाते हैं।*
- *वाइगाट्स्की ने 'संभावित विकास के क्षेत्र' (ZPD) के विचार को प्रस्तुत किया। यह बच्चे के वास्तविक विकास तथा निर्देश देने के बाद वह किस स्तर तक विकसित हो सकता है, इन दोनों के बीच के अंतर को व्यक्त करता है। ढाँचा निर्माण (स्कैफोल्डिंग) एक प्रकार की शिक्षा है, जिसमें बच्चे को दिया जाने वाला निर्देश उसके विकास के स्तर के अनुसार घटा बढ़ा कर दिया जाता है।*
- *बच्चे का पहला सामाजिक-सांवेगिक संबंध माता-पिता या पालन पोषण करने वालों के साथ स्नेह बंधन के रूप में स्थापित होता है। सामाजिक-सांवेगिक विकास कई कारकों जैसे पितृत्व शैली, भाई-बहनों के साथ संबंध, बदलते पारिवारिक संदर्भ, मित्रों के साथ संबंध, खेलकूद तथा जनसंचार माध्यम द्वारा प्रभावित होता है।*
- *चार प्रकार की पितृत्व शैलियों की पहचान की गई है : प्रभुत्ववादी, आधिकारिक, उदार तथा उदासीन। इन सबसे आधिकारिक शैली सबसे अधिक प्रभावकारी होती है क्योंकि यह बच्चों को स्वतंत्र, सामाजिक रूप से संवेदनशील, आत्म विश्वास ओर आत्म गौरव से संपन्न बनाती है तथा उन्हें अपने आक्रोश पर नियंत्रण करने में सक्षम बनाती है।*
- *इरिक्सन ने यह प्रस्तावित किया कि सामाजिक-सांवेदिक विकास आठ चरणों से गुजर कर होता है। प्रत्येक चरण का एक विशेष विकासात्मक कार्य होता है, जिसे व्यक्ति को सफलतापूर्वक संपादित करना पड़ता है। इसी के द्वारा स्वस्थ सामाजिक-सांवेगिक जीवन जिया जा सकता है।*

- *अपने दैनिक जीवन में हम विभिन्न कार्यों के सही और गलत होने के बारे में निर्णय लेते हैं। इसके लिए हम कुछ मानक विकसित करते हैं। नैतिक विकास के अंतर्गत आपने यह पढ़ा कि बच्चे किस तरह व्यवहार के इन नियमों या मानकों को सीखते हैं। पियाजे ने बच्चों में दो तरह की नैतिकता पाई : परकेंद्रित (दूसरों के व्यवहार द्वारा निर्देशित) तथा आत्मकेंद्रित (बच्चे स्वतंत्र रूप से सोचने की तथा सही या गलत के निर्णय की क्षमता विकसित कर लेते हैं)।*

- *कोहलबर्ग ने यह प्रस्तावित किया कि नैतिक विकास तीन स्तरों से गुजरता है : परंपरापूर्व, परंपरागत तथा परंपरा पश्चात्। पहले स्तर पर बच्चे की नैतिकता पुरस्कार पाने तथा दंड से बचने के नियम द्वारा संचालित होती है। दूसरे स्तर पर 'स्वीकृति पाने तथा जुर्माने से बचे रहना' बच्चों का मकसद रहता है। तीसरे, परंपरापश्चात् स्तर पर पहुंचने पर ही सामाजिक कल्याण का सरोकार व्यक्ति के व्यवहार के लिए निर्देशक का काम करता है। नैतिकता की अवधारणा में सांस्कृतिक अंतर भी पाए जाते हैं।*

- *मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत ध्येय के साथ-साथ व्यक्तिगत प्राथमिकताओं महत्त्वाकांक्षाओं को भी ज्ञात करते हैं। ये दो प्रकार के हैं : लक्ष्य तथा नैमित्तिक। नैमित्तिक मूल्य व्यवहार के तरीके को बताते हैं जबकि लक्ष्य मूल्य जीवन के सामान्य उद्देश्यों से संबंध रखती है। मूल्य का विकास परिवार द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया से होता है। अन्य स्रोतों में सामाजिक कारक महत्त्वपूर्ण हैं। जनसंचार साधन भी इसमें प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं।*

- *विकास के विभिन्न पहलू एक दूसरे से अलग नहीं होते; क्योंकि एक पक्ष का परिवर्तन दूसरे पक्षों के विकास को प्रभावित करता है। अतः विकास के ये पहलू आपस में गहरे स्तर पर जुड़े हैं। एक बच्चे का समग्र विकास बच्चे के प्रत्येक क्षेत्र के विकास की अपेक्षा रखता है न कि किसी एक पक्ष का अत्यधिक विकास और अन्य की उपेक्षा।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. समावेशन तथा समायोजन में आप कैसे अंतर करेंगे? प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए।
2. सांवेदिक-पेशीय चरण की मुख्य उपलब्धियाँ कौन-सी हैं?
3. पूर्व-संक्रियात्मक चरण में बच्चों के चिंतन की कौन-सी प्रमुख विशेषताएँ हैं?
4. विपरीत दिशा वाले चिंतन का क्या तात्पर्य है?
5. संधारण क्या है?
6. मूर्त-संक्रियात्मक चरण को यह नाम क्यों दिया गया है?
7. औपचारिक संक्रियात्मक चरण की विशेषताएँ कौन-सी हैं?
8. अंतरीकरण का क्या अर्थ है?
9. परकेंद्रित नैतिकता से स्वायत्त नैतिकता किन अर्थों में भिन्न है?
10. कोहलबर्ग के नैतिक विकास के कौन से चरण हैं?
11. मूल्यों के विकास में परिवार की क्या भूमिका है?

मनोविज्ञान में प्रायोगिक कार्य

मनोविज्ञान में प्रायोगिक कार्य के संपादन एवं आलेख हेतु दिशा निर्देश

परियोजना कार्य हेतु कुछ विचार

परियोजना कार्य व्यक्तिगत रूप से या मिलकर समूह द्वारा किया जा सकता है। इस दृष्टि से ऐसे क्रियाकलापों की एक सूची यहाँ दी जा रही है जिन पर परियोजनाओं को किया जा सकता है।

1. पाँच विज्ञापनों को एकत्र करिए एवं उनमें निहित सामग्री एवं संदेश का वर्णन कीजिए। इन विज्ञापनों में प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
2. पाँच ताजे आविष्कारों का उल्लेख कीजिए एवं मनुष्यों के मानसिक क्रियाकलापों पर उनके प्रभाव का वर्णन कीजिए।
3. 30-40 वर्ष की आयु के चार प्रौढ़ों से मनुष्य के स्वभाव के बारे में चर्चा कीजिए एवं उनके विचारों की तुलना उन दृष्टिकोणों के साथ कीजिए जिन्हें आप इस पुस्तक में पढ़ चुके हैं।
4. एक व्यक्ति के रूप में आप अपना मनोवैज्ञानिक रेखाचित्र (स्केच) लिख कर प्रस्तुत कीजिए।
5. विभिन्न आयु के बच्चों के माता-पिता से साक्षात्कार करिए (उनसे भी जिनके बच्चे बड़े हो गए हैं)। बच्चों के जन्म से दो माह तक पालन-पोषण के अनुभवों पर उनसे जानकारी प्राप्त करिए।
6. साधारण बोलचाल के मुहावरों की एक सूची तैयार कीजिए। जैसे – 'समय पर खोटा सिक्का भी काम में आता है।' अलग-अलग उम्र के चार बच्चों से इनके अर्थ पूछिए एवं उनके द्वारा बतलाए गए अर्थ का विवरण लिखिए।
7. किराने की दुकान पर छोटे बच्चों के माता-पिता की बातचीत को ध्यान से सुनिए। क्या आप उनके बच्चों से बातचीत एवं बड़ों से बातचीत में अंतर का पता लगा सकते हैं।
8. एक वर्ष के बच्चे द्वारा बड़ों के साथ अपनी बात पहुँचाने का अवलोकन कीजिए। बच्चे के हावभाव एवं मुद्राओं का लिखित आलेख तैयार कीजिए तथा यह वर्णन करिए कि अन्य प्रौढ़ इन हावभावों का अर्थ निकालने में कैसे सक्षम होते हैं।
9. अपने मौहल्ले में दो वर्ष तक के बच्चों के वस्त्रों का अवलोकन कीजिए। इनमें से कितने बच्चों को ऐसे वस्त्र पहनाए गए थे, जिनसे उनके लड़का अथवा लड़की होने की पहचान हो सकती है एवं नहीं हो सकती है।
10. पिछले दशकों में प्रकाशित पुस्तकों एवं पत्रिकाओं से बच्चों के लिए स्कूलों में दिए जाने वाले दंड के बारे में जो विचार प्रकाशित हुए हैं उनको लिखिए।
11. एक लंबा-संकरा और एक छोटा-चौड़ा कांच का गिलास (जार) कहीं से लीजिए एवं 5, 6 तथा 7 साल के बच्चों को क्रमशः एक निश्चित मात्रा का रंगीन पानी, दूध अथवा रस पहले गिलास एक में एवं उसे ही फिर दूसरे गिलास में उड़ेलने को कहिए। उनसे पूछिए कि किस गिलास में पेय पदार्थ ज्यादा है एवं किसमें कम। उनके उत्तर को अपने प्रति उत्तर से चुनौती दीजिए। क्या चुनौती दिए जाने पर कोई बच्चा अपना उत्तर बदलता है?
12. प्रारंभिक बाल्यावस्था एवं मध्य बाल्यावस्था के बच्चों के साथ टेलीविजन कार्यक्रम देखिए। उनसे पूछिए कि दिखाए जा रहे कार्यक्रम में शामिल व्यक्ति या पात्र क्या सोच रहे हैं? क्या महसूस कर रहे हैं? यह भी पूछिए कि क्यों कहानी में उल्लिखित लोग घटनाओं से जुड़े कुछ विशेष कार्यों को करते हैं? उम्र के अनुसार कार्यक्रम की व्याख्या करने में दिखने वाली भिन्नता का पता लगाइए।
13. बच्चों के लिए लिखी गई कहानी की पुस्तकों को पढ़िए। आप कैसे कह सकते हैं कि ये पुस्तकें बच्चों के पढ़ने के लिए हैं अथवा बड़ों के द्वारा

पढ़ कर बच्चों को सुनाने के लिए हैं। किस हद तक चित्र कहानी कहने में सहायक होते हैं? क्या कहानी में प्रयुक्त बहुत से शब्द 'लयात्मक' हैं? क्या कहानी में 'दृश्य शब्दों' का भी प्रयोग हुआ है? यदि संभव हो तो बच्चों से कहानी का एक अंश पढ़वाकर देखिए। उन्हें उसका कौन-सा हिस्सा सरल एवं कौन-सा कठिन लगता है?

14. हाई स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों का हाल ही में हो चुके या होने वाले चुनाव के उम्मीदवार अथवा चुनावी मुद्दे के बारे में साक्षात्कार कीजिए। यदि ये छात्र मतदाता हैं तो क्या उन्होंने वोट दिया? क्या किसी भी तरह उन्होंने चुनाव में राजनैतिक रूप से भागीदारी की है? (जैसे – चुनाव प्रचार, मतदाताओं का पंजीकरण, पर्चा बाँटना इत्यादि)। किसी उम्मीदवार अथवा मुद्दे के प्रति क्यों वे आकर्षित या विकर्षित रहे? उनके विचार अपने मित्रों अथवा अभिभावकों से मिलते-जुलते हैं या भिन्न हैं? क्या छात्रों के विचारों में आयुगत भिन्नता भी दिखती है?
15. वृद्ध लोगों को सामान खरीदते हुए या दैनिक क्रियाकलाप करते हुए अवलोकन करिए। युवा लोगों का भी इन्हीं परिस्थितियों में अवलोकन करिए। क्या दोनों के दृष्टिकोण और काम करने के तरीके में कोई भिन्नता देखने को मिलती है। अपने द्वारा अवलोकित की गई समानताओं एवं भिन्नताओं का विवेचन कीजिए।

ऊपर उदाहरणस्वरूप कुछ कार्य परियोजनाएँ करने के लिए वर्णित हैं। आपने कुछ परियोजना कार्य हाथ में लिया होगा और अब अपने कार्य के परिणामों के दूसरों के साथ बांटना चाहेंगे। आपके कार्य को सरल करने हेतु तथा संप्रेषण को सटीक तथा स्पष्ट बनाने के लिए रिपोर्ट लेखन का एक संक्षिप्त प्रारूप नीचे दिया जा रहा है, जिसे सामान्यतः सभी वैज्ञानिक अन्वेषणों के उपयोग में लाया जाता रहा है।

रिपोर्ट लेखन

शीर्षक : अपने परियोजना कार्य/प्रायोगिक कार्य का एक शीर्षक चुनिए। शीर्षक संक्षिप्त होना चाहिए तथा स्पष्ट एवं सारगर्भित रूप से परियोजना या प्रयोग के उद्देश्यों को व्यक्त करने वाला होना चाहिए। यह रिपोर्ट के प्रथम पृष्ठ पर तथा अनुक्रमणिका के अंदर भी उल्लिखित होना चाहिए।

समस्या : यह हाथ में लिए गए अध्ययन के उद्देश्यों का स्पष्ट एवं संक्षिप्त कथन होता है। यह कथन अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाई गई प्रक्रिया को भी स्पष्ट करता है।

विधि : प्रदत्तों या आंकड़ों के संकलन में अपनाई गई विधि का भी वर्णन अत्यंत आवश्यक है। इसके अंतर्गत प्रतिभागी को दिए गए निर्देशों का शब्दशः वर्णन एवं उन परिस्थितियों का वर्णन भी शामिल होता है, जिनमें प्रयोग का अध्ययन संपादित किया गया था। परिवर्त्यों को अलग करना, नियंत्रित करना तथा प्रायोगिक परिवर्त्यों की पहचान करना आदि इसमें शामिल होते हैं। उदाहरणार्थ, थकान, सीखने, अभिप्रेरणा के प्रभावों को इस विवरण में रेखांकित करना जरूरी है।

प्रायोगिक सामग्री : इसके अंतर्गत अध्ययन में प्रयुक्त सामग्री (जैसे – उपकरण, शब्दसूची आदि) का स्पष्ट उल्लेख आवश्यक है।

परिणाम : इस शीर्षक में सभी प्राप्त प्रदत्तों का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। यह मूल प्रदत्त, रफ प्रदत्त अथवा अवलोकन नोट्स के रूप में हो सकता है। रेखाचित्र, चित्रग्राफ तथा विस्तृत प्रदत्त जिन्हें सांख्यिकीय रूप से मूल प्रदत्तों से बनाया गया है, इसमें सम्मिलित होते हैं। सामान्यतः प्रदत्त दो प्रकार के होते हैं – मात्रात्मक प्रदत्त एवं गुणात्मक प्रदत्त। किस तरह की बातें या घटनाएँ हुई हैं? ऐसे प्रश्नों पर केंद्रित होती हैं। अधिकतर मनोवैज्ञानिक प्रयोगों की रिपोर्ट में पहले मात्रात्मक प्रदत्तों का उल्लेख किया जाता है एवं उनकी सहायतार्थ गुणात्मक प्रदत्तों का उल्लेख किया जाता है। रफ प्रदत्त परिशिष्ट एवं संलग्न किए जाते हैं तथा ग्राफ, स्केच इत्यादि रिपोर्ट में उपयुक्त स्थान पर प्रस्तुत किए जाते हैं।

विवेचन : प्राप्त परिणामों के विवेचन में अध्ययनकर्ता प्रदत्तों की अपने द्वारा की गई व्याख्या को प्रस्तुत करता है। प्रदत्तों में जहां विरोधाभास हो या अस्पष्टता

हो उनका विश्लेषण और कारण भी देना आवश्यक है। अंत में अध्ययनकर्ता को अध्ययन से प्राप्त अपने निष्कर्ष लिखने होते हैं।

रिपोर्ट की रूपरेखा

प्रयोग का शीर्षक

समस्या/उद्देश्य

परिचय

मूल संप्रत्यय

परिकल्पना

अनाश्रित परिवर्त्य

आश्रित परिवर्त्य

नियंत्रण

विधि

प्रतिभागी

प्रायोगिक सामग्री

अध्ययन का अभिकल्प

प्रक्रिया

निर्देश

सावधानियाँ

प्रयोग का वास्तविक संपादन

परिणाम

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों को टेबिल, ग्राफ इत्यादि की सहायता से उपयुक्त रूप से क्रमशः प्रस्तुत करें।

विवेचन : इस भाग में मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रदत्तों का संपूर्ण वर्णन एवं विवेचन प्रस्तुत किया जाना चाहिए। अंत में परिणामों के निष्कर्षों का उल्लेख करना चाहिए। यह उल्लेख सटीक एवं व्यवस्थित होना चाहिए।

संदर्भ : इसमें प्रयोग या परियोजना के दौरान संदर्भित पुस्तकों एवं लेखों की सूची प्रस्तुत की जानी चाहिए।

परिशिष्ट : इसके अंतर्गत सभी मूल प्रदत्त, जो प्रयोग के दौरान संग्रह किए गए, उनको व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना चाहिए।

प्रयोगों हेतु कुछ सुझाव

इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में अनेक अभ्यासों का वर्णन किया गया है, जिनमें उन अध्यायों में विवेचित संप्रत्ययों की स्पष्टता को परखा जा सकता है। इन क्रियाकलापों को प्रयोग/परियोजना कार्य के रूप में लिया जा सकता है। इन क्रियाकलापों को अलग-अलग अभिकल्पों से जाँचा-परखा जा सकता है। ऐसा करना रोचक होगा तथा बच्चे अपने अनुभवों को आपस में बांट सकेंगे। इस भाग में कुछ अभ्यासों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनको विद्यार्थी उपयोग में ला सकते हैं।

सीखना

1. *क्रमिक बनाम मुक्त प्रत्याह्वान का प्रभाव :* 10 निरर्थक शब्दों की एक सूची बनाइए और प्रतिभागी को एक-एक सेकंड के अंतराल से एक के बाद एक-एक कर क्रमशः प्रस्तुत कीजिए। एक समूह के प्रतिभागियों से शब्दों का ठीक उसी क्रम में प्रत्याह्वान करने के लिए कहिए, जिस क्रम में शब्दों को प्रस्तुत किया गया था। दूसरे समूह के प्रतिभागियों से शब्दों को किसी भी क्रम में प्रत्याह्वान करने के लिए कहिए। यह कार्य पाँच प्रयासों में दुहराइए। प्रतिभागी द्वारा किए गए सही प्रत्याह्वानों की गणना कीजिए और उनकी संख्या को वक्र की सहायता से प्रस्तुत कीजिए।

2. *सीखने के अंतरण की घटना या गोचर का प्रदर्शन :* दर्पण चित्रांकन उपकरण की सहायता से सीखने के अंतरण की घटना का प्रदर्शन कीजिए। पहले प्रतिभागियों से दर्पण में देखते हुए बाएँ हाथ से चित्रांकन करने के लिए कहिए। इस तरह के दो प्रयास कीजिए। हर प्रयास में लगने वाले समय और त्रुटियों को अंकित कीजिए। इसके बाद प्रतिभागियों से दाएँ हाथ की सहायता से चित्रांकन के अभ्यास के लिए कहिए। इन प्रयासों के पूरा हो जाने के बाद प्रतिभागियों से बाएँ हाथ से फिर चित्रांकन करने के लिए कहिए।

प्रतिभागियों द्वारा बाएँ हाथ के आरंभिक और बाद के दोनों प्रयासों में निष्पादन अर्थात् त्रुटियों की तुलना कीजिए।

स्मृति

1. *संख्याओं की स्मृति (अग्रोन्मुख तथा पृष्ठोन्मुख) :* नीचे दी गई संख्याओं के समुदाय को एक-एक करके प्रस्तुत कीजिए और प्रतिभागी की संख्याओं

को उसी क्रम में दुहराने के लिए कहें। यह कार्य उन्हें संख्याओं को प्रस्तुत करने के बाद तुरंत करना होगा।

सेट संख्या	संख्या
1.	2, 4, 9
2.	1, 3, 4, 7
3.	2, 4, 5, 8, 9
4.	1, 3, 6, 4, 2, 9
5.	3, 8, 1, 5, 7, 2, 4
6.	8, 3, 9, 4, 1, 7, 2, 5

अग्रोन्मुखी शृंखला प्रस्तुत करने के बाद अपने प्रतिभागियों की पृष्ठोन्मुखी स्मृति की परीक्षा कीजिए। पहले सेट से आरंभ कीजिए और प्रतिभागी से अंकों को विपरीत क्रम में दुहराने के लिए कहिए। उदाहरण के लिए, जब आप एक सेट 3,5,8 को प्रस्तुत करेंगे तो प्रतिभागी को 8,3,5 के क्रम में दुहराना होगा। अग्रोन्मुखी स्मृति की दशा में उसका प्राप्तांक मूल क्रम में सही प्रत्याह्वान होगा। दूसरी दशा में जब वह उलटे क्रम में प्रत्याह्वान करे तो सही माना जाएगा। उदाहरण के लिए, यदि प्रतिभागी पाँचवें सेट को ठीक-ठीक दुहरा देता है और छठे सेट में असफल हो जाता है तो उसका प्राप्तांक 7 होगा (सही दुहराए गए अंकों की संख्या)। अग्रोन्मुखी संख्या विस्तार की पृष्ठोन्मुखी संख्या विस्तार के साथ तुलना कीजिए।

2. *संप्रत्यय के सीखने की घटना का प्रदर्शन :* 8×12 सेंटीमीटर के आकार के 20 सफेद कार्ड लीजिए। तीन आकृतियों (त्रिभुज, वृत्त और वर्ग) तथा तीन रंगों (लाल, हरा तथा पीला) को चुनिए। हर एक कार्ड पर नीचे की ओर दो आकृतियों, और ऊपर की ओर दो आकृतियों (जैसे–त्रिभुज या वर्ग) को बनाएँ, जैसा चित्र 9.2 में दिखाया गया है। नीचे की आकृतियाँ, आकृति और रंग दोनों में भिन्न होंगी और ऊपर वाली आकृति में एक आकृति का स्वरूप और दूसरी आकृति का रंग रहेगा। ध्यान दीजिए कि आकृतियों का आकार न बदले। इसके लिए त्रिभुजों और वृत्तों को एक ही आकार में वर्ग से काटकर निकालें। इस तरह 20 कार्डों को तैयार कीजिए। इनमें रंगों और आकृतियों का अलग-अलग मेल होगा।

सभी कार्डों को एक पैक में रखिए और खूब अच्छी तरह से फेंट लीजिए। कार्ड के पैक को टेबिल पर रखिए। आकृतियाँ टेबिल के सम्मुख रखी होनी चाहिए। इसके बाद एक समय में एक कार्ड उठाइए और प्रतिभागी (एक बच्चे) को दिखाइए। उससे ऊपर वाली आकृति को नीचे दी गई दो आकृतियों के साथ मेल करने के लिए कहिए। आकृति और रंग के बारे में अपने प्रतिभागी को कुछ भी न बताएँ। प्रतिभागी के सामने एक-एक करके कार्ड को प्रस्तुत कीजिए और प्रतिभागी जितनी शीघ्रता से प्रतिक्रिया दे सके उसे देनी चाहिए। प्रतिभागी द्वारा आकृति या रंग दोनों में से जो भी प्रतिक्रिया दी गई हो, उसे अंकित कीजिए (चित्र 9.2 देखिए)।

यदि प्रतिभागी हरे त्रिभुज को हरे वर्ग से मिला रहा है, तो प्रतिभागी रंग के आधार पर प्रतिक्रिया कर रहा है। आप एक टैली रंग के नीचे लगा दें। दूसरी ओर यदि वह हरे त्रिभुज को लाल त्रिभुज के साथ मिला रहा है तो यहाँ पर आकृति के आधार पर मेल किया जा रहा है। इस प्रयास में आकृति के नीचे एक टैली लगाइए। इस तरह 20 कार्डों को एक-एक करके प्रस्तुत कीजिए और प्रतिभागी की अनुक्रिया को अंकित कीजिए। रंग और आकृति के खानों में लगी टैली की कुल संख्या की गणना कीजिए। अध्ययन के परिणामों के आधार पर बच्चों के संप्रत्यय के विकास का स्वरूप बताइए।

अभिप्रेरणा

1. *उपलब्ध अभिप्रेरणा के स्तर का मापन :* उपलब्धि के एक परीक्षण को लीजिए जो आपको आसानी से प्राप्त हो सके। दो प्रतिभागियों का परीक्षण कीजिए। दोनों प्रतिभागियों की उपलब्धि आवश्यकता की तुलना कीजिए।
2. *चिंता के स्तर पर मापन :* चिंता का एक परीक्षण लीजिए और इसकी सहायता से दो प्रतिभागियों की चिंता का मापन कीजिए। दोनों प्रतिभागियों के चिंता स्तर की तुलना कीजिए।

चिंतन

1. *समस्या-समाधान पर सेट के प्रभाव का प्रदर्शन:* अपनी कक्षा के एक मित्र के सामने नीचे दी गई समस्याओं का समाधान करने के लिए दीजिए। आप इसके लिए निम्नलिखित निर्देश का उल्लेख कीजिए। सात समस्याएँ एक तालिका में दी गई हैं। तीन खाली जार (A, B, C) हैं और पानी का एक बड़ा पात्र। दिए गए जार की सहायता से आपको बताई गई निश्चित मात्रा में पानी निकाल कर प्रस्तुत करना है। समस्या का समाधान पहली समस्या में दिया गया है। आपके पास 21 ml (A), 127 ml (B) तथा 3 ml (C) के आकार के जार हैं जिनकी सहायता से आपको 100 ml पानी भरना है। अतः 'B' जार को पानी से भरिए और जार 'B' में से जार 'A' को भरने के लिए आवश्यक पानी डालिए, अब आपके पास जार 'A' में 106 ml पानी बचा। अब दो बार जार 'C' की सहायता से पानी 'B' जार से गिराइए। अब आपके पास 100 ml जल बचेगा। अब आप आगे की छः समस्याओं का समाधान कीजिए।

2. *सृजनात्मकता का मापन :* सृजनात्मकता का जो परीक्षण आपके पास मौजूद है, उसे लेकर दो प्रतिभागियों की सृजनात्मकता का मापन कीजिए। दोनों प्रतिभागियों की सृजनात्मकता की तुलना कीजिए।

प्रत्यक्षीकरण

1. *प्रत्यक्षीकरण के संकेत के रूप में परिचित आकार का अध्ययन :* ताश के कोई दो पत्ते लीजिए। एक अंधेरे कमरे में जाइए और उन पत्तों को एक-एक करके प्रतिभागी से तीन और छः मीटर की दूरी पर टेबिल पर रखिए। कार्ड को खड़ा रखना होगा। कमरा अंधेरा रहना चाहिए, ताकि ताश का पत्ता बहुत मद्धिम दिखे। यह अच्छा होगा कि टेबिल की सतह न दिखाई दे। प्रतिभागी से यह पूछिए कि ताश का पत्ता कितने फीट या मीटर की दूरी पर स्थित है। उसकी प्रतिक्रिया नोट कर लें। अब ताश के पत्ते की जगह एक सफेद कार्ड (ताश के पत्ते के आकार का) प्रस्तुत कीजिए, ठीक पहले की ही दूरी पर। प्रतिभागी से दूरी का निर्णय फिर प्राप्त कीजिए। आप पाएँगे कि प्रतिभागी, दूरी का निर्णय दूसरी प्रायोगिक दशा में ठीक-ठीक नहीं ले पाएँगे। परिचित वस्तुओं की जो छवि हमारी स्मृति में बनी रहती है वह दूरी के प्रत्यक्षीकरण को परिशुद्ध बनाती है।

2. *व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन (रुढ़ियुक्तियाँ) :* तीन प्रौढ़ व्यक्तियों के फोटो लीजिए – एक राजनीतिज्ञ से मिलता-जुलता (कुर्ता-धोती पहने हुए), दूसरा एक प्रशासनिक अधिकारी से मिलता-जुलता (सूट और टाई पहने हुए) और तीसरा एक अध्यापक से मिलता-जुलता (पैंट-शर्ट पहने हुए)। इन तीनों फोटो को एक-एक करके अपने प्रतिभागी को दिखाइए और पाँच शब्दों में अलग-अलग इनका वर्णन करने के लिए कहिए। इस तरह की प्रतिक्रियाएँ पाँच प्रयोज्यों से प्राप्त करिए। एक तुलनात्मक विवरण तैयार करिए कि आजकल के संदर्भ में अध्यापक, प्रशासक और राजनीतिज्ञ का किस तरह का प्रत्यक्षीकरण किया जाता है।

3. *प्रतिभागी के गहराई प्रत्यक्षीकरण की परिशुद्धता का अध्ययन (द्विप्रतिमाएँ):* दो पेंसिलें लीजिए। इन दोनों पेंसिलों को अलग-अलग हाथों में नाक की सीध में दोनों आखों के बीच सामने की ओर फैलाएँ। पहले नजदीक की पेंसिल पर आंख केंद्रित करें और बताएँ कि आगे वाली पेंसिल के संदर्भ में क्या देख रहे हैं। दूसरी बार आगे वाली दूरी पर स्थित पेंसिल पर आँख केंद्रित कर बताइए कि नजदीक की पेंसिल के संदर्भ में क्या देख रहे हैं। आप पाएँगे कि जिस पेंसिल पर आपने ध्यान नहीं केंद्रित किया है, उसकी दो प्रतिमाएँ हैं – एक में वह क्रॉस करती है तथा दूसरे में क्रॉस नहीं करती।



पारिभाषिक शब्दावली

निरपेक्ष प्रत्यावर्ती काल (Absolute refractory period) : किसी न्यूरोन के उद्दीप्त होने के बाद की संक्षिप्त अवधि, जबकि यह पुन : उद्दीप्त नहीं हो सकता।

समायोजन (Accommodation) : (1) पियाजे के सिद्धांत के अनुसार यह ऐसी प्रक्रिया है जो वर्तमान योजनाओं को रूपांतरित करती है जिससे नई जानकारियों को बेहतर ढंग से समझा जा सके। (2) सिलियरी पेशी की क्रिया जिससे आँख के लेंस का आकार परिवर्तित होता है। यह दिक्-प्रत्यक्षीकरण के लिए भी एक संकेत है

उपलब्धि की आवश्यकता (Achievement need/ motive) : व्यक्ति अथवा समाज द्वारा निर्धारित मानकों के आधार पर सफल होने और दूसरों से बेहतर या अच्छा प्रदर्शन करने की आवश्यकता।

अवर्णक रंग (Achromatic colour) : बिना सांद्रता और वर्ण के रंग अर्थात् काला, सफेद और धूसर।

ध्वन्यात्मक कूट संकेतन (Acoustic encoding) : ध्वनि के परिप्रेक्ष्य में उद्दीपन का कूट संकेतन, विशेषकर शब्दों की ध्वनि।

तीक्ष्णता (Acuity) : दृष्टि की तीक्ष्णता।

किशोरावस्था (Adolescence) : बाल्यावस्था से वयस्क होने के पहले की संक्रमण-अवधि, जो कि लगभग 10-12 वर्ष की उम्र से प्रारंभ होकर 18 से 22 वर्ष की उम्र तक विस्तृत है।

ऐड्रिनलिन (Adrenaline) : मानव शरीर का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण हारमोन जो किसी को लड़ने, भागने या भयभीत होने की प्रतिक्रिया के लिए तैयार करता है।

ऐड्रीनोकार्टिकोट्रोपिक हारमोन (Adrenocorticotropic hormone - ACTH) : अग्र पीयूष ग्रंथि (पिट्यूइटरी ग्रंथि) द्वारा स्रावित एक हार्मोन जो ऐड्रिनल को उद्दीप्त करता है कि वह अपना कार्टिकॉइड हारमोन स्रावित करे।

वायवीय परिदृश्य स्पष्टता (Aerial perspective) : गहराई के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक एक-नेत्री संकेत, जो विभिन्न वायुमंडलीय परिस्थितियों के अंतर्गत वस्तुओं की सापेक्षिक स्पष्टता को व्यक्त करता है। निकट की वस्तुएँ सामान्यतः सूक्ष्म विशेषताओं के साथ अधिक स्पष्ट होती हैं, जबकि दूर की वस्तुएँ कम स्पष्ट होती हैं।

अभिवाही स्नायुकोश (न्यूरोन) (Afferent neuron) : ये स्नायु कोशिकाएँ सूचना भेजने की प्रक्रिया में लगी रहती हैं।

पश्चात् प्रतिमा या बिंब (Afterimage) : वह बिंब जो किसी उद्दीपक के खत्म हो जाने या दूर हो जाने के बाद भी बना रहता है।

शब्द-क्रमभंग (Agrammatism) : एक विकार है जिसमें रोगी उपयुक्त शब्द पा सकता है, लेकिन उसे व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रूप में नहीं लिख सकता।

संपूर्ण या बिल्कुल नहीं का नियम (All-or-non-law) : यह नियम जिसके अनुसार एक तंत्रिका कोशिका किसी उद्दीपन के प्रति या तो अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रतिक्रिया करेगी अथवा बिल्कुल ही प्रतिक्रिया नहीं करेगी, भले ही उद्दीपन की मात्रा कितनी भी तीव्र क्यों न हो।

अनेकार्थक वाक्य (Ambiguous sentences) : भिन्न-भिन्न गहन संरचना और समान बाह्य संरचना वाले वाक्य।

ऐमनिऑन (Amnion) : एक थैली या आवरण जिसमें स्वच्छ तरल द्रव्य होता है और जिसमें विकासमान भ्रूण तैरता है। यह एक और महत्त्वपूर्ण जीवन-सहयोगी व्यवस्था है।

आयाम (Amplitude) : ध्वनि तरंगों में, आधार रेखा से प्रत्येक सिंसिसॉयडल तरंग की दूरी। ई.ई.जी. मापन में, ई.ई.जी. अभिलेख (रिकॉर्ड) में अधिकतम और न्यूनतम बोल्टेज से दूरी। प्रत्येक मामले में सामान्यतः तीव्रता के माप के रूप में इसका उपयोग होता है।

एमिग्डाला (Amygdala) : बादाम के आकार के दो तंत्रिका गुच्छ जो लिंबिक व्यवस्था के घटक हैं तथा संवेगों से जुड़े होते हैं।

जीववाद (Animism) : पूर्ण संक्रियात्मक चिंतन का एक पक्ष, या विश्वास कि निर्जीव वस्तुओं में जीवन जैसे गुण होते हैं और वे कार्य करने में सक्षम हैं।

अग्रोन्मुखी स्मृतिलोप (Anterograde Amnesia) : स्मृति में नई सूचनाओं के कूट संकेतन और संग्रह कर पाने की अक्षमता।

एंथ्रोपायड (Anthropoid) : मानव के रूपाकार में सामान्यतः विशालकाय लंगूरों के लिए प्रयुक्त।

चिंता (Anxiety) : पूर्वकथनीय शारीरिक परिवर्तनों के साथ आशंका अथवा भय की सामान्य अनुभूति।

उपागम-उपागम द्वंद्व (Approach-approach conflict) : दो समान प्रिय या इच्छित लक्ष्यों के बीच चयन का द्वंद्व।

उपागम-परिहार द्वंद्व (Approach-avoidace conflict) : किसी स्थिति के कारण उत्पन्न द्वंद्व जिसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्ष हैं। वह व्यक्ति, जो समान लक्ष्य द्वारा विकर्षित एवं आकर्षित है दुविधा की अनुभूति का प्रदर्शन करता है।

उद्वेलन (Arousal) : उद्वेलन शरीर की दैहिक अवस्था है।

कृत्रिम बुद्धि (Artifical intelligence - AI) : यह क्षेत्र मशीनों की निर्मिति (जैसे—कंप्यूटर) से संबद्ध है, जो कि जटिल काम कर सकती हैं, जिसके लिए पहले मानव प्रतिभा की आवश्यकता समझा जाता था।

समावेशन (Assimilation) : किसी व्यक्ति द्वारा अपने वर्तमान ज्ञान में नई सूचनाओं का समावेश करना।

साहचर्यात्मक सीखना (Associative learning) : ऐसा सीखना, जिसमें कुछ घटनाएँ साथ-साथ घटित होती हैं। ये घटनाएँ दो उद्दीपक हो सकती हैं (प्राचीन अनुबंधन में) या एक अनुक्रिया और उसका परिणाम (क्रिया प्रसूत अनुबंधन में)।

आसक्ति (Attachment) : शिशु और परिचर्या करने वाले के बीच एक गहन भावात्मक संबंध।

गुणारोपण (Attribution) : बाह्य कारकों के बोध (संकेत) के आधार पर किसी व्यक्ति की आंतरिक स्थिति के बारे में अनुमान।

प्रभुत्ववादी पालन पोषण (Authoritarian parenting) : माता-पिता द्वारा पालन-पोषण की एक प्रतिबंधात्मक, दंडात्मक शैली, जिसमें माता-पिता बच्चे को यह सिखाते हैं कि बच्चा उनके निर्देशों का पालन करे, आदर करे और प्रयत्न करे।

अधिकारपूर्ण पालन-पोषण (Authoritative parenting) : पालन-पोषण की एक शैली, जिसमें माता-पिता बच्चे को प्रोत्साहित करते हैं कि वह पराश्रित न बने, लेकिन उनके कार्यों पर नियंत्रण भी रखते हैं।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic Nervous System) : परिधीय तंत्रिका तंत्र का एक भाग, जो कुछ ग्रंथियों और चिकनी ग्रंथियों की मदद करता है, जिसमें अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिका तंत्र शामिल हैं, जो संवेगात्मक व्यवहार के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

विकर्षक (Aversive) : क्षोभकारी अथवा अप्रिय।

परिहार-परिहार द्वंद्व (Avoidance-avoidance conflict) : दो समान अवांछनीय अथवा भयोत्पादक लक्ष्यों के बीच द्वंद्व; प्रायः इसका समाधान नहीं हो पाता है।

एक्सॉन (Axon) : तंत्रिका कोशिका (न्यूरोन) का वह भाग जो कोशिका शरीर से दूसरी कोशिकाओं तक सूचनाएँ ले जाता है।

व्यवहारगत आनुवंशिकी (Behavior genetics) : व्यवहार पर आनुवंशिक और पारिस्थितिक प्रभावों की शक्ति और सीमा का अध्ययन।

व्यवहारवाद (Behaviourism) : एक विचारधारा जो वस्तुनिष्ठता, प्रेक्षणीय व्यवहारात्मक प्रतिक्रियाओं, पारिस्थितिक निर्धारकों और सीखने पर बल देती है।

व्यवहार (Behaviour) : कोई व्यक्ति अथवा पशु जो कुछ भी करता है, जिसका किसी तरह से निरीक्षण किया जा सकता हो।

द्विभाषिकता (Bilingualism) : एक भाषा से अधिक भाषाओं का सीखना।

द्विनेत्रीय संकेत (Binocular cues) : गहराई के संकेत, जैसे कि दृष्टिपटलीय विषमता और अभिसरण, जो दो आँखों के उपयोग पर निर्भर करते हैं।

द्विनेत्रीय वैषम्य (Binocular disparity) : वह विधि, जिसमें दाहिनी और बाईं आँखों के विलगाव के कारण समान वस्तु थोड़े से भिन्न दो कोणों से देखी जाती है।

जैविक मनोविज्ञान (Biopsychology) : मनोविज्ञान की एक शाखा, जो जैव कारकों के प्रभाव से संबधित है, जैसे—ग्रंथियाँ, रक्तचाप और तंत्रिका तंत्र, जो अनुकूलन और व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

द्विपादता (Bipedalism) : मानव प्रजाति का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विकास, जो उसके दोनों पाँव से सीधे चल सकने की योग्यता में दिखाई पड़ता है।

अंध बिंदु (Blind spot) : वह बिंदु, जहाँ दृष्टि स्नायु आँख से बाहर जाती है और एक 'अंध' बिंदु निर्मित करती है क्योंकि वहाँ कोई संग्राहक कोशिकाएँ नहीं होतीं।

मस्तिष्क स्तंभ (Brainstem) : मस्तिष्क का सबसे पुराना भाग और केंद्रीय आंतरिक हिस्सा; यह वहाँ से प्रारंभ होता है, जहाँ स्नायु रज्जु खोपड़ी में प्रवेश करते समय फूल जाती है, यह स्वचालित जीवनरक्षक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है।

दीप्ति या चमक (Brightness) : प्रकाश की तीव्रता अथवा तरंग-आयाम के साथ संबधित मनोवैज्ञानिक अनुभव।

वृत्त या केस अध्ययन (Case study) : प्रेक्षण की एक तकनीक, जिसमें एक व्यक्ति का इस आशय से अध्ययन किया जाता है कि उससे कुछ सार्वभौम सिद्धांत उद्घाटित होंगे।

सामूहिक गुच्छन (Category clustering) : वस्तुओं का एक समूह, जो परिमाणात्मक कारकों की अपेक्षा गुणात्मक कारकों से संघटित होता है।

कोश या कोशिका (Cell) : किसी जीवित प्राणी की सबसे आधारभूत इकाई।

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (Central nervous system (CNS) : तंत्रिका तंत्र का उप तंत्र, जो मस्तिष्क और मेरुरज्जु से बना होता है।

केंद्रीकरण : (Centration) : पियाजे द्वारा प्रयुक्त एक अवधारणा। दूसरी सभी विशेषताओं को छोड़कर एक विशेषता पर ध्यान को केंद्रित करना।

मस्तकाधोमुखी संरूप (Cephalocaudal pattern) : वह क्रम, जिसमें सबसे अधिक विकास शीर्ष पर होता है। आकार, वजन और रूप में शारीरिक विकास के साथ विभेदन ऊपर से नीचे की ओर होता है।

लघुमस्तिष्क (Cerebellum) : खोपड़ी के निचले स्तर या आधार पर स्थित मस्तिष्क की संरचना, जो शारीरिक गति, स्थिति और संतुलन को व्यवस्थित करती है।

प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (Cerebral cortex) : मस्तिष्क का वह हिस्सा जो मस्तिष्क के उच्चतर संज्ञानात्मक और संवेगात्मक कार्यों का नियमन करता है।

प्रमस्तिष्कीय वर्चस्व (Cerebral dominance) : मस्तिष्क के प्रत्येक गोलार्द्ध की विभिन्न प्रकार्यों के नियंत्रण पर प्रभुत्व रखने की प्रवृत्ति।

प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध (Cerebral hemispheres) : प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स के दो लगभग समरूप आधे भाग।

चैनल क्षमता (Channel capacity) : सूचना सिद्धांत में, सूचना या संदेश की अधिकतम क्षमता जिसे कोई चैनल संभाल सकता है।

गुणसूत्र (Chromosomes) : तंतुवत् संरचनाएँ जो 23 जोड़ों में होती हैं, प्रत्येक जोड़े का एक सदस्य प्रत्येक माता-पिता से आता है। गुणसूत्र (क्रोमोसोम) में उल्लेखनीय आनुवंशिक पदार्थ डीआक्सीराइबोन्युक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) होता है।

शारीरिक आयु (Chronological age) : उन वर्षों की संख्या जो किसी व्यक्ति के जन्म के बाद से लेकर गणना के समय तक गुजर गए; जिसका सामान्यतः उम्र से तात्पर्य होता है।

प्राचीन अनुबंधन (Classical conditioning) : सीखने का एक प्रकार जिसमें कोई जीव उद्दीपकों को संबद्ध करना सीखता है। कोई तटस्थ उद्दीपक जो किसी अनानुबंधित उद्दीपक का संकेत भेजता है, एक प्रतिक्रिया उत्पन्न करना शुरू करता है जो अनानुबंधित उद्दीपक की प्रत्याशा करती है।

संवरण (Closure) : संगठनात्मक प्रक्रिया जो कि अपूर्ण चित्रों का पूर्ण के रूप में बोध कराती है।

संज्ञान (Cognition) : जानने के साथ जुड़ी सभी मानसिक गतिविधियाँ; यथा–सोचना, जानना, और याद करना। वह मानसिक क्रिया जो सूचना को गतिशील करने, समझने और संप्रेषित करने के साथ जुड़ी है।

संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (Cognitive approach) : वह दृष्टिकोण जो कि मानवीय चिंतन और जानने की सभी प्रक्रियाओं को मनोविज्ञान के अध्ययन के केंद्र में रखने पर बल देता है।

संज्ञानात्मक मानचित्र (Cognitive map) : एक व्यक्ति के परिवेश की रूपरेखा का मानसिक प्रतिरूप। उदाहरणार्थ, एक भूलभुलैया की खोजबीन के बाद चूहे इस तरह व्यवहार करते हैं मानो उन्होंने उसका संज्ञानात्मक मानचित्र सीख लिया हो।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ (Cognitive processes) : व्यक्ति के चिंतन, बुद्धि और भाषा को संलग्न करने वाली मानसिक प्रक्रियाएँ।

कौहार्ट प्रभाव (Cohort effects) : वे प्रभाव जो व्यक्ति के जन्म के समय अथवा पीढ़ी के नाते होते हैं, उम्र के कारण नहीं।

वर्णांधता (Colour blindness) : रंगों का अनुभव कर पाने में कुछ मात्रा में अक्षमता।

वर्ण स्थैर्य (Colour constancy) : किसी सुपरिचित वस्तु को उसके उसी एक रंग में ही देख पाने की प्रवृत्ति, भले ही प्रकाश में परिवर्तन होने से उसका वास्तविक रंग बदल गया हो।

सक्षमता (Competence) : आर.एच. ह्वाइट की अवधारणा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा होती है कि वह उतने प्रभावी ढंग से काम करे जितना उस वातावरण में संभव हो।

संप्रत्यय (Concept) : विचारों, वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा अनुभवों की एक सामान्य श्रेणी जिसके सदस्यों में कुछ समान गुण विद्यमान होते हैं।

मूर्त संक्रियात्मक चरण (Concrete operational stage) : पियाजे की तीसरी अवस्था जिसमें बच्चे संक्रियाएँ कर सकते हैं लेकिन उनके तर्क विशेष या ठोस उदाहरणों तक सीमित रहते हैं।

अनुबंधित अनुक्रिया (Conditioned response) : एक अनुबंधित उद्दीपक द्वारा उत्पन्न अनुक्रिया।

अनुबंधित उद्दीपक (Conditioned stimulus) : एक तटस्थ उद्दीपक जो बार-बार के अनुबंधित साहचर्य से अनुबंधित अनुक्रिया उत्पन्न करने में सक्षम हो जाता है।

अनुबंधन (Conditioning) : एक व्यवस्थित प्रक्रिया जिसके माध्यम से उद्दीपक के प्रति नई अनुक्रियाएँ सीखी जाती हैं।

द्वंद्व (Conflict) : विचारों, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं अथवा उद्देश्यों के परस्पर विरोध के फलस्वरूप पैदा हुई विक्षोभ या तनाव की स्थिति।

मिश्रण (Confounding) : किसी प्रयोग में परिवर्त्यों के परिचालन का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जो आँकड़ों की व्याख्या को भ्रमित करता है। यदि स्वतंत्र परिवर्त्य एक अनियंत्रित संबद्ध परिवर्त्य के साथ मिल-जुल जाता है तो प्रयोगकर्ता आश्रित माप पर दो परिवर्त्यों के प्रभावों को अलग नहीं कर सकता।

चेतना (Consciousness) : अपने मानस की सामान्य स्थिति से अवगत रहना, विशेष मानसिक विषयवस्तु की जानकारी अथवा स्वयं अपने अस्तित्व के बारे में अवगत रहना।

संधारण (Conservation) : बाह्य परिवर्तनों के बावजूद स्थितियों अथवा वस्तुओं के कुछ गुणों में स्थायित्व या अपरिवर्तनीयता का विश्वास।

विषयवस्तु विश्लेषण (Content analysis) : विशेष विचारों, अवधारणाओं अथवा विषयवस्तु के विश्लेषण की एक विधि।

परंपरागत अवस्था (Conventional reasoning Stage) : कोहलबर्ग के नैतिक सिद्धांत का द्वितीय स्तर। इस स्तर पर व्यक्ति कुछ मानकों (अंतः) से बँधा होता है, लेकिन वे मानक दूसरों के (बाह्य) मानक होते हैं, जैसे कि पालक (माता-पिता) अथवा हमउम्र साथियों के नियम।

कॉर्पस कैलोसम (Corpus callosum) : स्नायु तंतुओं का एक बंडल जो दो गोलार्द्धों को जोड़ता है और उनके मध्य संदेश का आदान-प्रदान करता है।

कॉर्टेक्स (Cortex) : प्रमस्तिष्क का धूसर, पतला, माइलिनहीन आवरण।

प्रतिसंतुलित प्रायोगिक अभिकल्प (Counterbalanced design) : एक बहु-उपचार अभिकल्प या डिजाइन, जो प्रायोगिक उपचारों की प्रस्तुति के क्रम द्वारा उत्पन्न किए गए प्रभावों को आंशिक रूप से नियंत्रित करने के लिए दो अथवा अधिक अनाश्रित परिवर्त्यों को अनुक्रमिक परिवर्तन में प्रस्तुत करता है।

सृजनात्मकता (Creativity) : अभिनव और असाधारण तरीके से सोचने की योग्यता और समस्याओं को अलग ढंग से हल करना।

क्रांतिक अवधि (Critical period) : विकास में शुरू-शुरू की एक निश्चित समयावधि जिसके दौरान कुछ व्यवहार अनुकूलतम रूप में प्रकट होते हैं।

संस्कृति (Culture) : एक विशेष सामाजिक वर्ग के सदस्यों के रीति-रिवाजों, परंपराओं, प्रवृत्तियों और विश्वासों का समुच्चय।

कोशिका द्रव्य (Cytoplasm) : प्रत्येक जीवित कोशिका के भीतर का द्रव पदार्थ।

अंधकार अनुकूलन (Dark adaptation) : वह प्रक्रिया जिसमें अंधेरे कमरे में प्रवेश करने पर व्यक्ति की दृष्टि में संवेदनशीलता बढ़ जाती है क्योंकि शलाकाओं में रंगद्रव्य (पिगमेंट) का सांद्रण इस समय सबसे अधिक होता है।

प्रदत्त या आँकड़ा (Data) : (1) प्रायः संख्याओं के रूप में एकत्र सूचना जो किसी व्यक्ति के व्यवहार के कुछ आयाम या आयामों और उस प्रासंगिक वर्ग से संबंध का संकेत देती है जिसमें वह अवस्थित है। (2) व्यक्तियों से इकट्ठा की गई गुणात्मक तथा मात्रात्मक सूचना जो मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों से संबद्ध है, मनोवैज्ञानिक शब्दावली में आँकड़ा कहलाती है।

स्पष्टीकरण या खुलासा करना (Debriefing) : किसी प्रतिभागी को किसी प्रयोग के वास्तविक प्रयोजन के बारे में बताने की विधि। इसकी विशेष रूप से तब जरूरत होती है जब प्रतिभागी प्रयोग के दौरान बुरी तरह भ्रमित हो।

निर्णय लेना (Decision making) : विकल्पों के मध्य चुनाव; उपलब्ध विकल्पों को चुनना या अस्वीकार करना।

निगमनात्मक तर्कणा (Deductive reasoning) : किसी आधार स्थापना को स्वीकार कर एक निष्कर्ष तक पहुँचना और फिर औपचारिक तार्किक नियमों का अनुसरण।

गहन संरचना (Deep structure) : वाक्य के अमूर्त अंतर्निहित निरूपण अर्थात् आशय या मन्तव्य की ओर संकेत करता है।

वांछित विशेषताएँ (Demand characteristics) : किसी शोध परिस्थिति की वे विशेषताएँ जो प्रतिभागियों को प्रत्याशित व्यवहार का संकेत देती हैं।

आश्रित परिवर्त्य (Dependent variable) : वे कारक, जिसका किसी प्रयोग में मापन किया जाता है। यह स्वतंत्र परिवर्त्य के हस्तादि प्रयोग के कारण परिवर्तित होता है।

निर्धारणवाद (Determinism) : यह विश्वास कि प्रकृति में सभी घटनाएँ (जिसमें व्यवहार भी शामिल होता है) विशेष कारणों से उत्पन्न होती हैं; यदि प्रासंगिक कारण ज्ञात हों तो किसी घटना की भविष्यवाणी की जा सकती है।

विकास (Development) : परिवर्तन का संरूप जो गर्भधारण के साथ प्रारंभ होता है और पूरे जीवन-विस्तार के दौरान जारी रहता है।

विभेदन (Discrimination) : पावलवी अनुबंधन में किसी अनुबंधित उद्दीपक और दूसरे अनुबंधित उद्दीपक के मध्य, जो किसी अनानुबंधित उद्दीपक का संकेत नहीं देता, के बीच विभेद करने की क्षमता। क्रिया प्रसूत अनुबंधन में, उद्दीपक के प्रति अलग ढंग से प्रतिक्रिया करना जो यह संकेत भेजता है कि कोई व्यवहार पुन: प्रबलित होगा या नहीं।

अनुपयोग नियम (Disuse principle) : यह अवधारणा है कि जिन अनुक्रियाओं का अभ्यास नहीं किया जाएगा वे धीरे-धीरे कमज़ोर पड़ती जाएँगी और लुप्त हो जाएँगी।

वैविध्यपूर्ण चिंतन (Divergent thinking) : ऐसा चिंतन जो एक ही प्रश्न के बहुत से उत्तर प्रस्तुत करता है और जो सृजनात्मकता की विशेषता है।

डी.एन.ए. (डीआक्सीराइबोन्युक्लिक एसिड) D.N.A. (deoxyribonucleic acid) : कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ, जो नाभिक (केंद्रक) में स्थित होता है।

द्विगुणित उपागम-परिहार द्वंद्व (Double approach-avoidance conflict) : एक जटिल स्थिति जिसमें दो स्थितियाँ, प्रत्येक एक उपागम-परिहार द्वंद्व प्रस्तुत करती हैं। व्यक्ति को क्रमश: उपागम और परिहार दोनों लक्ष्यों को साधना होता है।

द्विबिंब (Double images) : दृष्टि दोष के कारण होने वाली दुहरी दृष्टिपटलीय छवियाँ तथा निकट की वस्तुओं पर दृष्टि को केंद्रित करने पर दूर स्थित छवियों का दोगुना दिखाई देना और दूर की वस्तुओं पर दृष्टि केंद्रित करने पर निकट की वस्तुओं का दोगुना दिखाई पड़ना।

द्विप्रक्रम सिद्धांत (Duplicity theory) : यह अवधारणा कि मनुष्य की आँख में दो अलग तरह के प्रकाश संग्राहक होते हैं, शंकु कोशिकाएँ जो रंगों की पहचान करती हैं और शलाका कोशिकाएँ जो प्रकाश तीव्रता अथवा तीक्ष्णता में परिवर्तन की पहचान करती हैं।

अंकुरण काल (Germinal period) : प्रसव-पूर्व विकास की वह अवधि जो गर्भधारण के पश्चात् पहले दो सप्ताह तक की होती है। इसके अंतर्गत युग्मज का बनना, कोशिका विभाजन का शुरू होना और युग्मज का गर्भाशय की दीवार से जुड़ना शामिल है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt psychology) : (1) एक संपूर्ण रूप या आकृति (2) मनोविज्ञान की एक शाखा जिसमें व्यवहार को इसके अपने भागों की अपेक्षा अधिक व्यापक और एकीकृत साकल्य (संपूर्ण वस्तु) माना जाता है।

गेस्टाल्ट (Gestalt) : एक संघटित साकल्य (संपूर्ण वस्तु)। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार हम सूचनाओं के टुकड़ों को अर्थपूर्ण संपूर्णता में संघटित करते हैं।

ग्लिअल कोशिकाएँ (Glial Cells) : तंत्रिका तंत्र की कोशिकाएँ जो (1) मस्तिष्क में अक्षतंतुओं के माइलीकरण के लिए उत्तरदायी हैं (2) स्नायु मार्गों अथवा अंतः संयोजनों के विकास को निर्धारित करती हैं, (3) तंत्रिका तंत्र के उपापचयन (मेटाबोलिज़्म) में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सामान्यीकरण की प्रवणता (Gradient of generalisation) : उद्दीपक सामान्यीकरण की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि परीक्षण उद्दीपक सीखने के दौरान विद्यमान मूल उद्दीपक के कितने समान है।

व्याकरण (Grammar) : नियमों का समुच्चय जो यह बताता है कि भाषा के तत्वों को किस प्रकार मिश्रित किया जाए, जिससे बोधगम्य वाक्य बन सके।

स्थूल पेशीय कौशल (Gross motor skills) : पेशीय कौशल जिसमें मांसपेशियों के व्यापक रूप से क्रियाकलाप की आवश्यकता होती है, जैसे– टहलना।

मस्तिष्क के गोलार्द्ध (Hemispheres) : प्रमस्तिष्क और अनुमस्तिष्क के दो समरूप अद्र्धभाग।

गोलार्द्ध का वर्चस्व (Hemispheric dominance) : एक गोलार्द्ध सामान्यतः बाएँ गोलार्द्ध, द्वारा प्रमुख पेशीय और संज्ञानात्मक कार्यों का नियंत्रण।

आनुवंशिकता (Heredity) : माता-पिता से संतान को गुणों का हस्तांतरण।

परकेंद्रित नैतिकता (Heteronomous morality) : पियाजे के सिद्धांत में नैतिक विकास की प्रथम अवस्था जिसमें न्याय और नियम संसार के अपरिवर्तनीय गुण माने जाते हैं जो लोगों के व्यक्तिगत नियंत्रण से परे होते हैं।

आवश्यकताओं का पदानुक्रम (Hierarchy of needs) : मानव की आवश्यकताओं का मास्लो का पिरामिड शारीरिक आवश्यकताओं को पहले तुष्ट करना होता है, इसके पश्चात् मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ क्रियाशील होती हैं।

अपूर्णवाक्यांश (Holophrases) : शब्द के अर्थ को उस संदर्भ से समझने की ओर संकेत करता है, जिसमें वह प्रयुक्त होता है।

समस्थिति (Homeostasis) : भोजन, जल, वायु, निद्रा और तापमान के परिप्रेक्ष्य में आंतरिक, दैहिक अवस्था में संतुलन को बनाए रखने की शारीरिक प्रवृत्ति।

होमो-सेपियन्स (Homo-sapiens) : आधुनिक मानव प्राणी का वैज्ञानिक नाम।

हारमोंस (Hormones) : ग्रंथियों द्वारा रक्त प्रवाह में स्रावित किए जाने वाले रासायनिक पदार्थ।

वर्ण (Hue) : रंग।

मानववादी मनोविज्ञान (Humanistic psychology) : मनोविज्ञान का वह दृष्टिकोण जो व्यक्ति, अथवा स्व और व्यक्तिगत विकास पर बल देता है।

अतिक्रियाशीलता संलक्षण (Hyperactivity syndrome) : असामान्य लक्षणों का समूह जिसकी विशेषता है– अलक्ष्योन्मुख पेशीय क्रिया, अल्प ध्यान विस्तार, संवेगात्मक व्यवहार और विचलनशीलता। कभी-कभी यह विकार प्राथमिक विद्यालय के बच्चों में देखा जाता है।

हाइपोथैलेमस (Hypothalamus) : थैलेमस के नीचे स्थित एक स्नायु संरचना। यह पानी पीने, शरीर के ताप और रख-रखाव के क्रियाकलापों को निर्देशित करता है, पीयूष ग्रंथि में अंतःस्राव को नियंत्रित करता है और संवेगों तथा अभिप्रेरणा से संबंध रखता है।

परिकल्पना (Hypothesis) : शोध प्रश्न का उत्तर; विभिन्न परिवर्त्यों के बीच संबंध का कथन।

तादात्मीकरण (Identification) : किसी व्यक्ति द्वारा अपने 'स्व' को दूसरे व्यक्ति के साथ संबद्ध करने और उनकी विशेषताओं या दृष्टिकोण को स्वीकार करने की प्रक्रिया।

पहचान (अस्मिता) बनाम भूमिका संदेह (Identity vs. role confusion) : इरिक्सन की पाँचवीं विकासात्मक अवस्था जिसमें किशोर इस तरह की समस्याओं (प्रश्नों) का सामना करते हैं कि वे कौन हैं, वे क्या हैं और जीवन में वे कहाँ जा रहे हैं।

व्यक्तिगत दृष्टिकोण (Idiographic Approach) : व्यक्तित्व के अध्ययन की प्रविधि जो सार्वभौम गुणों और संरूप (पैटर्न) की पहचान पर बल देती है।

अंकन (इंप्रिंटिग) (Imprinting) : एक सीमित क्रांतिक अवधि में तीव्र एवं जन्मजात प्रभावांकन।

आकस्मिक सीखना (Incidental learning) : ऐसा सीखना जो सुचिन्तित, अथवा ऐच्छिक न हो और जो संभवतः अन्य असंबद्ध क्रियाकलाप के फलस्वरूप प्राप्त किया गया हो।

अनाश्रित परिवर्त्य (Independent variable) : किसी प्रयोगकर्ता द्वारा यह देखने के लिए प्रहस्तित घटना या स्थिति कि इसका किसी अन्य घटना या स्थिति पर कोई पूर्वकथनीय प्रभाव होगा या नहीं।

आगमनात्मक तर्कणा (Inductive reasoning) : वह तार्किक प्रक्रिया जिसके द्वारा विशेष घटनाओं से सामान्य सिद्धांतों तक पहुँचा जाता है।

उदार पालन-पोषण (Indulgent parenting) : पालन-पोषण का वह प्रकार जिसमें माता-पिता अपने बच्चों में अत्यधिक रुचि लेते हैं लेकिन उनसे उनकी कुछ माँग भी होती है या उनके ऊपर कुछ नियंत्रण भी रखते हैं।

उद्यम बनाम हीनता (Industry vs. inferiority) : इरिक्सन के विकास की चौथी अवस्था जिसमें बच्चे अपनी ऊर्जा को ज्ञान और बौद्धिक कौशलों में निष्णात होने के लिए निर्देशित करने का काम करते हैं।

शैशवावस्था (Infancy) : 18 से 24 माह की आयु तक विस्तृत विकासात्मक अवधि।

सूचित सहमति (Informed consent) : व्यक्ति या रोगी की प्रयोगात्मक अथवा चिकित्सीय प्रक्रिया की प्रकृति और संभावित खतरों की समझ के आधार पर उसके साथ अनुबंध।

सूचना प्रक्रमण उपागम (Information processing approach) : एक दृष्टिकोण जिसका इन बातों से संबंध है : व्यक्ति अपने जीवन-संसार के बारे में सूचनाएँ किस तरह प्रक्रमित करता है, किस प्रकार ये सूचनाएँ एकत्र की जाती हैं और रूपांतरित होती हैं और किसी कार्य को करने, किसी समस्या का हल ढूँढ़ने और तर्कणा के लिए इन्हें पुनः कैसे प्राप्त किया जाता है।

उपक्रम बनाम ग्लानि (Initiative vs. guilt) : इरिक्सन की विकास की तीसरी अवस्था जिसमें विद्यालय जाना शुरू करने वाले बच्चे के सामने एक विस्तृत होती सामाजिक दुनिया होती है और उसके समक्ष यह चुनौती होती है कि क्रियाशील, प्रयोजनयुक्त व्यवहार विकसित करे ताकि इन चुनौतियों से निपटा जा सके।

अंतर्दृष्टि (Insight) : नई परिस्थितियों का प्रभावशाली ढंग से सामना कर सकने की योग्यता।

मूलप्रवृत्ति (Instinct) : एक जटिल व्यवहार है जो एक प्रजाति के सभी सदस्यों में पाया जाता है और अर्जित नहीं होता है।

नैमित्तिक मूल्य (Instrumental values) : व्यवहार की पद्धतियों अथवा आचरण की विधियों से संबंधित मूल्य।

समग्रता बनाम निराशा (Integrity vs. despair) : इरिक्सन की आठवीं विकासात्मक अवस्था जिसके दौरान व्यक्ति यह मूल्यांकन करने के लिए पीछे की ओर देखता है कि उसने अपने जीवन के साथ क्या किया।

बुद्धिलब्धि (Intelligence Quotient) (IQ) : मानकीकृत बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त लब्धांक।

बुद्धि (Intelligence) : अनुभव से लाभ उठाने और दी गई सूचना से परे जाने की व्यापक क्षमता।

व्यतिकरण (Interference) : सीखने के सिद्धांत में सीखने से पहले, सीखने के बाद और सीखने के दौरान सीखने वाले के क्रियाकलाप जिनसे विस्मरण पैदा होता है।

अंतरीकरण (Internalisation) : बाह्य नियंत्रित व्यवहार से अंतःनियंत्रित व्यवहार तक का विकासपरक परिवर्तन।

आच्छादन (Interposition) : गहराई-प्रत्यक्षीकरण का एक संकेत जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि एक वस्तु दूसरी को आच्छादित करती प्रतीत हो तो वह निकटतर होगी।

साक्षात्कार (Interview) : सूचना प्राप्त करने, निदान ढूँढ़ने, अंतर्वैयक्तिक व्यवहार और व्यक्तित्व-गुणों का मूल्यांकन करने अथवा व्यक्ति को परामर्श देने के लिए आमने-सामने का संवाद।

अंतरंगता बनाम अलगाव (Intimacy vs. Isolation) : इरिक्सन की छठीं विकासात्मक अवस्था जिसमें व्यक्ति दूसरों के साथ अंतरंग संबंध बनाने के विकासात्मक कार्य का सामना करता है।

आंतरिक अभिप्रेरणा (Intrinsic motivation) : स्वयं अपने लिए किसी व्यवहार का प्रवर्तन करने और प्रभावशाली होने की इच्छा।

अंतर्दर्शन (Introspection) : किसी व्यक्ति की अनुभूतियों के भीतर झाँकने की प्रक्रिया और इस बात की रिपोर्ट देने का प्रयास कि कोई क्या प्रेक्षण करता है और अनुभव करता है। विलेहम वुंट इस दृष्टिकोण के प्रवर्तक थे, जो कि उन्नीसवीं सदी के मध्य में जर्मनी में हुए थे।

आयोडॉप्सिन (Iodopsin) : दृष्टि पटल की शंकु कोशिकाओं में पाया जाने वाला एक प्रकाश-संवेदी रासायनिक रंग।

जेम्स लैंग सिद्धांत (James-Lange theory) : संवेग का सिद्धांत, जिसके अनुसार किसी उद्दीपक के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया संवेगात्मक प्रत्यक्षीकरण पैदा करती है; यह स्पष्ट अनुभव शरीर के परिवर्तन का परिणाम होता है।

मूल्यांकन (Judgement) : उपलब्ध सामग्री के आधार पर मत स्थिर करने, निर्णय पर पहुँचने और मूल्यांकन करने की प्रक्रिया; निर्णय की प्रक्रिया का उत्पाद।

बाल-अपराध (Juvenile delinquency) : विविध प्रकार के किशोर व्यवहार जिसमें सामाजिक रूप से अस्वीकार्य व्यवहार से लेकर प्रतिष्ठा से संबंधित दोष से लेकर आपराधिक दोष सम्मिलित हैं।

भाषा (Language) : दूसरों तक अपने विचार पहुँचाने के लिए प्रतीकों की एक व्यवस्था। मनुष्य में भाषा असंख्य उत्पादकतावाद और नियम-व्यवस्था द्वारा विशेषीकृत होती है।

पार्श्व सल्कस (Lateral Sulcus) : सिल्वी के विदर या दरार का दूसरा नाम।

निकटता का नियम (Law of proximity) : समूहीकरण नियम जो यह बताता है कि निकटतम उद्दीपक एक साथ समूहीकृत होते हैं।

समानता का नियम (Law of similarity) : समूहीकरण नियम जो यह बताता है कि समान उद्दीपक एक साथ समूहीकृत होते हैं।

सीखना (Learning) : अनुभव के कारण प्राणी के व्यवहार में होने वाला अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन।

सीखने की निर्योग्यता (Learning disabilities) : वे बच्चे जिनमें सीखने की योग्यता होती है (1) वे सामान्य प्रतिभा या उससे अधिक प्रतिभा वाले होते हैं (2) कई शैक्षिक क्षेत्रों में कठिनाई होती है लेकिन सामान्य रूप से दूसरों में किसी तरह की कमी नहीं प्रदर्शित करते और (3) किन्हीं दूसरी स्थितियों अथवा विकारों से ग्रस्त नहीं होते जो उनके सीखने की समस्याओं को व्यवस्थित कर सकें।

झूठ पकड़ने वाली मशीन (Lie detector) : एक उपकरण जिसका उपयोग इस विचार पर आधारित है कि झूठ बोलने के साथ प्राय: भय अथवा उत्तेजना के घटक भी साथ होते हैं; जब किसी व्यक्ति के उत्तर भाषिक उत्तेजना के साथ होते हैं तो यह उपकरण उसे इंगित कर देता है।

जीवन विस्तार मनोविज्ञान (Life-span development psychology) : व्यक्तित्व, मानसिक क्रिया-प्रणाली और व्यवहार में समूचे जीवन-चक्र के दौरान होने वाले विकास का अध्ययन।

प्रकाश अनुकूलन (Light adaptation) : प्रकाश (दीप्ति) में परिवर्तनों के साथ शलाकाओं और शंकुओं का समायोजन।

लिंबिक तंत्र (Limbic system) : मस्तिष्क तंत्र जो अभिप्रेरित व्यवहार, भावात्मक स्थितियों और स्मृति के कुछ प्रकारों को प्रक्रमित करता है।

रेखीय परिदृश्य (Linear perspective) : दूरी का अनुमान करने के लिए एक एकनेत्री संकेत; जिसे हम समानांतर रेखाओं के रूप में जानते हैं, उनकी अभिबिंदुता का हम अनुभव करते हैं जो कि बढ़ती हुई दूरी को बताता है।

भाषाई सापेक्षिकता का सिद्धांत (Linguistic Relativity Hypothesis) : इसे हुर्फ का सिद्धांत भी कहते हैं और इसके अनुसार भाषा विचार को निर्धारित करती है।

स्थिति स्थैर्य (Location constancy) : स्थिति में स्थायित्व का प्रत्यक्ष ज्ञान, यद्यपि दृष्टि पटलीय छवि वहाँ से हट गई हो।

परिपक्वता (Maturation) : परिवर्तनों की क्रमबद्ध शृंखला जो प्रत्येक व्यक्ति के आनुवंशिक 'ब्लू प्रिंट' (रूपरेखा) से निर्धारित होती है।

मेडुला (Medulla) : मस्तिष्क स्तंभ का आधार; यह दिल की धड़कन और साँस लेने, टहलने, सोने को नियंत्रित करता है। मस्तिष्क और शरीर को जोड़ने वाले स्नायु तंतु मध्यांश पर एक-दूसरे को पार करते हैं।

स्मृति (Memory) : पहले अनुभव की गई घटनाओं को भंडारित करने और बाद में उन्हें स्मरण करने की मानसिक क्षमता।

मानसिक विन्यास या सेट (Mental set) : किसी नई समस्या का समाधान उसी ढंग से करने की प्रवृत्ति जिस तरह से पिछली समस्या का सामना किया गया था।

उपापचय (Metabolism) : किसी जीवित प्राणी में होने वाली सभी रासायनिक और जैव रासायनिक प्रक्रियाओं का कुल योग। आगम और निगम दोनों ही रूपों में शरीर की सुव्यवर्स्थित शरीरक्रियात्मक कार्यप्रणाली को बनाए रखने के लिए एक अपरिहार्य ज़रूरत।

अधिसंज्ञान (Metacognition) : अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का ज्ञान और समझ।

मानस (Mind) : मानस एक अवधारणा है जो व्यक्ति के संवेदन, अवगम, स्मृतियों, विचारों, सपनों, अभिप्रेरणाओं और संवेगावात्मक अनुभवों के अनूठे समुच्चय से संबंधित है।

मिश्रित अभिकल्प (Mixed design) : एक प्रयोगात्मक अध्ययन प्रविधि जिसमें व्यक्तियों को जिन्हें दो या अधिक पृथक् और विशेष रूप से परस्परव्यापी समूहों में विभाजित किया जा सकता है, को विभिन्न प्रयोगात्मक स्थितियों, जैसे कि दो भिन्न तरह के उपचारों में रखा जाता है।

स्मृत्योपकारी विधियाँ (Mnemonics) : वे प्रविधियाँ या तकनीकें जो नई सूचनाओं के भंडारण में परिचित साहचर्यों का उपयोग करती हैं ताकि उन्हें सहजता से याद रखा जा सके।

मॉडलिंग (Modeling) : सामान्य रूप से व्यवहार की नकल करना सीखना। विशेष रूप से एक व्यवहार चिकित्सा तकनीक, जो इस तरह की नकल पर निर्भर है।

एकनेत्री संकेत (Monocular cues) : केवल एक आँख से उपलब्ध दृष्टि संकेत।

नैतिक विकास (Moral development) : ऐसे नियमों और परंपराओं के परिप्रेक्ष्य में विकास कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ परस्पर किस तरह का व्यवहार करना चाहिए।

मार्फीम-विनिमय अशुद्धियाँ (Morpheme-exchange errors) : किसी स्थान पर विभक्तियों या प्रत्ययों को लगाना, लेकिन ये गलत स्थान पर जुड़ जाते हैं।

रूपग्राम या मार्फीम (Morpheme) : ध्वनि की वह लघुतम इकाई जो कि हम जो कुछ कहते या सुनते हैं, उसे अर्थ प्रदान करती है।

मातृभाषा (Mother tongue) : वह भाषा जिसका उपयोग हम घर पर करते हैं।

अभिप्रेरणा (Motivation) : एक आवश्यकता अथवा इच्छा जो व्यवहार को शक्ति देती है और उसे निर्देशित करती है।

चालक स्नायुकोश (Motor neurons) : स्नायुकोशिकाएँ जो आवेगों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से मांसपेशियों और ग्रंथियों की ओर ले जाती हैं।

माइलिन (Myelin) : कुछ अक्षतंतुओं पर वसायुक्त सफेद आच्छादन।

प्राकृतिक चयन (Natural Selection) : जीव विकासात्मक प्रक्रिया जो किसी प्रजाति के उन व्यक्तियों का पक्ष लेती है जो जीवित रहने और पुनरुत्पादन के लिए सबसे अधिक अनुकूलित होते हैं।

आवश्यकता (Need) : शारीरिक (आंतरिक) अथवा पर्यावरण (बाह्य) संबंधी असंतुलन जो किसी प्रेरणा को जन्म देता है।

ऋणात्मक प्रबलन (Negative Reinforcement) : जब किसी उद्दीपक अथवा घटना का किसी विशेष अनुक्रिया के घटित होने पर समापन किया जाता है तो वह अनुक्रिया की संभावना की मात्रा को बढ़ा देता है।

तंत्रिका आवेग (Nerve Impulse) : यह स्नायु संवेदन का स्नायु में वैद्युत-रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन है।

तंत्रिका कोशिकाएँ (Nervous System) : तंत्रिका कोशिकाओं का व्यापक नेटवर्क जो मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क से शरीर के अन्य भागों को प्रेषित करता है।

तंत्रिका मनोविज्ञान (Neuro psychology) : मस्तिष्क के क्रियाकलाप और स्नायुतंत्र के प्रकार्य के रूप में यह व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

स्नायुकोश (Neuron) : स्नायु कोशिका जो दूसरी कोशिकाओं से सूचना ग्रहण करने, प्रक्रमित करने और उसे प्रेषित करने के लिए विशेषीकृत होती है।

स्नायविक विकृति (Neurotic disorder) : एक मनोवैज्ञानिक विकार जो सामान्यत: दुखद होता है लेकिन इसमें व्यक्ति तार्किक ढंग से सोच पाता है और सामाजिक रूप से व्यवहार कर पाता है। फ्रायड ने स्नायुविकारों को चिंता से मुक्त होने के उपायों के रूप में देखा है।

न्यूरोट्रांसमीटर (Neurotransmitters) : रासायनिक संदेशवाहक जो मस्तिष्क से और मस्तिष्क का संदेश प्रेषित करते हैं। जैव रासायनिक पदार्थ जो दूसरी स्नायु कोशिकाओं और अंतःस्रावी तंत्र को उद्दीप्त करते हैं।

सामान्यीकृत उपागम (Nomothetic approach) : व्यक्तित्व के अध्ययन करने की प्रविधि जो सार्वभौम विशेषताओं और पैटर्न की पहचान पर बल देती है।

मानक (Norm) : एक बड़े समूह के मापन के आधार पर प्राप्त मूल्य जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्राप्तांकों की व्याख्या के लिए किया जाता है। समाज मनोविज्ञान में स्वीकृत व्यवहारों का समूह द्वारा स्वीकृत प्रतिमान।

केंद्रक (Nucleus) : केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में एक गुच्छिका अथवा स्नायु कोशिकाओं का पिण्ड।

शून्य परिकल्पना (Null hypothesis) : एक भविष्य कथन कि किसी प्रयोग में स्थितियों के मध्य कोई अंतर नहीं होगा अथवा परिवर्त्यों के मध्य कोई संबंध नहीं होगा।

वस्तु-स्थायित्व (Object permanence) : यह समझ कि वस्तु और घटनाएँ तब भी अस्तित्ववान होती हैं जब वे प्रत्यक्ष रूप से दिखाई-सुनाई नहीं पड़तीं और न ही स्पर्श के अनुभव में आती हैं।

प्रेक्षण (Observation) : किसी वस्तु या घटना की साभिप्राय जाँच, ताकि उसके बारे में तथ्य प्राप्त किए जा सकें अथवा जो भी देखा गया उसके बारे में व्यक्ति का अपना निष्कर्ष।

क्रिया प्रसूत या नैमित्तिक अनुबंधन (Operant Conditioning/ Instrumental Conditioning) : ऐसा सीखना, जिसमें प्रबलन एक विशेष अनुक्रिया पर आश्रित होता है।

संक्रियावाद (Operationism) : यह दृष्टिकोण कि किसी अवधारणा का अर्थ और उसकी वैधता उन कार्य प्रणालियों पर निर्भर करती है जो इसे परिभाषित करने या इसे स्थापित करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं।

पैनक्रीज (Pancreas) : एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथि जो कि हार्मोन स्रावित करती है जो कि पाचन क्रिया और उपापचयन की क्रिया से संबद्ध है। इससे निकलने वाले स्रावों में इंसुलिन एक है।

प्रतिमान (Paradigm) : घटनाओं के एक सेट को देखने या अध्ययन करने का एक प्रारूप।

परानुकंपी भाग (Parasympathetic division) : स्वायत्त तंत्रिका का भाग जो शरीर की आंतरिक प्रक्रियाओं के दिन-प्रतिदिन के कार्य को मानीटर करता है, अनुकंपी उत्तेजना के बाद इसे प्रकार्य की ओर लौटाता है।

परानुकंपी तंत्रिका तंत्र (Parasympathetic nervous system) : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का खंड जो शरीर की ऊर्जा को सुरक्षित करते हुए इसे शांत करता है।

पार्श्विक पालि (Parietal lobes) : प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स का वह भाग जो सिर के सबसे ऊपर की ओर और पीछे होता है, इसमें संवेदी कॉर्टेक्स भी शामिल है।

हमउम्र (Peers) : एक ही उम्र अथवा परिपक्वता स्तर के बालक।

प्रत्यक्षीकरण (Perception) : वे प्रक्रियाएँ जो संवेदी सूचना को संगठित करती हैं और इसके परिवेशगत स्रोत के रूप में परिभाषित करती हैं।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य (Perceptual constancy) : संवेदी क्रिया के विभिन्न पैटर्न से संसार के बारे में समान निष्कर्ष निकाल पाने की योग्यता (यथा, कोई व्यक्ति विभिन्न कोणों से देखे जाने पर भी उसी व्यक्ति के रूप में पहचाना जाता है)।

फिनोटाइप (Phenotype) : प्रेक्षणीय नाक-नक्शा जिसके द्वारा व्यक्तियों को पहचाना जाता है।

फाई भ्रम (Phi illusion) : गति संबंधी एक भ्रम जो कि प्रकाश वाली बत्तियों के एक के बाद एक जलने और

बुझने से पैदा होता है, जिससे वे चलते हुए प्रतीत होती हैं।

स्वनिम (Phonemes) : किसी भाषा में ध्वनि की सबसे छोटी इकाई।

प्रकाश संग्राहक (Photoreceptor) : दृष्टि-अभिग्राहक, राड तथा कोन (शलाका और शंकु) कोशिकाएँ।

शारीरिक मनोविज्ञान (Physiological Psychology) : मानव और पशु-व्यवहार का एक वैज्ञानिक अध्ययन जो शारीरिक प्रक्रियाओं के संबंध पर आधारित होता है; यथा तंत्रिका तंत्र, हार्मोन, संवेदी अंग और व्यवहार-संबंधी गोचर।

पीयूष ग्रंथि (Pituitary gland) : वह ग्रंथि जो ऐसे हार्मोन स्रावित करती है जो दूसरी अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों को नियमित करते हैं, साथ ही एक हार्मोन को स्रावित करती है जो वृद्धि को प्रभावित करता है।

पॉलिआना नियम (Pollyanna principle) : एक प्रवृत्ति कि सभी कुछ ठीक है और जीवन अच्छा है, इस सच्चाई के बावजूद कि ऐसा वस्तुतः नहीं है।

पॉलीग्राफ (Polygraph) : एक मशीन, सामान्यतः जिसका उपयोग झूठ पकड़ने के लिए किया जाता है, जो संवेगों के साथ होने वाली कुछ शारीरिक प्रतिक्रियाओं का मापन करती है (जैसे– स्वेद, हृदय गति, रक्तचाप और श्वास में होने वाले परिवर्तन)।

सेतु (पॉन्स) (Pons) : मस्तिष्क का वह भाग जो स्वप्न देखने और नींद से जागने की क्रिया से संबद्ध होता है।

धनात्मक प्रबलन (Positive reinforcement) : कोई उद्दीपक अथवा घटना, जब इसके प्रारंभ को एक विशेष प्रतिक्रिया पर निर्भर बनाया जाता है, तो वह उस प्रतिक्रिया के घटित होने की संभावना में वृद्धि करती है।

पश्चात् परपंरागत तर्क (Post-conventional reasoning) : नैतिक विकास के कोहलबर्ग के सिद्धांत में उच्चतम स्तर जिसके दौरान नैतिकता पूरी तरह आभ्यंतरीकृत हो जाती है और वह दूसरों के मानकों पर आधारित नहीं होती।

सामर्थ्य / शक्ति प्रेरणा (Power Motive) : नियंत्रण करने और पद तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने और दूसरों को प्रभावित करने की इच्छा।

प्रयोजनवाद या प्रैगमेटिक्स (Pragmatics) : उन सिद्धांतों से संबंधित जो यह निर्धारित करते हैं कि किस प्रकार भाषा को रूपांतरित किया जाए कि वह संदर्भ के अनुकूल हो सके।

पूर्व-परपंरागत तर्क (Pre-conventional reasoning) : कोहलबर्ग के सिद्धांत में निम्नतम स्तर जिसमें नैतिक तर्कणा बाह्य पुरस्कारों एवं दंड द्वारा नियंत्रित होती है।

भविष्यकथन (Prediction) : पूर्ववर्ती परिवर्त्यों और अनुवर्ती घटनाओं के मध्य संबंध को वर्णन करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया। भविष्यकथन समय में आगे की ओर क्रियाशील होता है जो पूर्ववर्ती परिवर्त्यों के मापन से शुरू होता है और तत्पश्चात् अनुवर्ती घटनाओं के मापन का पूर्वानुमान किया जाता है।

पूर्व-संक्रियात्मक चरण (Pre-operational stage) : पियाजे का दूसरा चरण जिसमें बच्चे संसार को शब्दों, छवियों और रेखांकन से प्रस्तुत करते हैं।

तत्पर व्यवहार (Prepared behaviours) : वे अनुक्रियाएँ जो कुछ पशु प्रजातियों द्वारा सरलतापूर्वक सीख ली जाती हैं।

अग्रोन्मुखी व्यतिकरण (Proactive interference) : नई सूचना के प्रत्याह्वान पर पहले के सीखने का ऋणात्मक प्रभाव।

समस्या-समाधान (Problem solving) : चिंतन के उच्चतर स्तर पर घटित होने वाला व्यवहार। समस्या-समाधान को चार चरणों में विभाजित किया जाता है : उद्भवन, प्रबोधन, तैयारी और सत्यापन।

सामीप्य सिद्धांत (Proximity principle) : गेस्टाल्ट सिद्धांत, जिसके अनुसार वस्तु या उद्दीपक जो निकट हैं, उन्हें एक इकाई के रूप में देखा जाता है। इसे सामीप्य का सिद्धांत भी कहते हैं।

मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) : मनोचिकित्सा की एक विधि जिसमें मनोचिकित्सक अचेतन सामग्री को चेतन स्तर पर लाने का प्रयास करता है।

दंड (Punishment) : व्यवहार के दमन के लिए एक अप्रिय अथवा हानिकर उद्दीपक का उपयोग।

यादृच्छिकीकरण (Randomisation) : एक प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी परिवर्त्य को पक्षपातरहित ढंग से चुना जाता है, उसे किसी दशा में रखा जाता है।

यादृच्छिकीकरण में यादृच्छिक संख्याओं की तालिका का उपयोग किया जाता है ताकि कोई अनुमेय क्रम स्थापित न किया जा सके ।

प्रतिक्रिया काल (Reaction time) : एक उद्दीपक के प्रारंभ और प्राणी की प्रतिक्रिया के मध्य लगने वाला समय।

प्रतिक्रियाशीलता (Reactivity) : वह स्थिति है जिसमें प्रेक्षित किया जा रहा व्यवहार बदल जाता है, जब यह तथ्य उजागर हो जाता है कि वह प्रेक्षण का विषय है।

तर्कणा (Reasoning) : यथार्थपरक चिंतन प्रक्रिया जो तथ्यों का एक सेट से निष्कर्ष निकालती है।

प्रत्यभिज्ञा (Recognition) : जब हम उन लोगों, घटनाओं अथवा वस्तुओं के संपर्क में आते हैं या पहले सीखी गई सामग्री के संपर्क में आते हैं जिनसे पहले संपर्क हो चुका है तो उनसे अवगत होने की प्रतीती होती है।

ह्रासवाद (Reductionism) : यह सिद्धांत कि सभी घटनाओं को उन्हें उनके सरलतम घटकों में विश्लेषित कर सबसे अच्छे ढंग से समझा जा सकता हैं।

प्रतिवर्त चाप (Reflex arc) : एक अभिग्राहक स्नायुकोशिका और एक अपवाही स्नायु कोशिका जो एक उद्दीपक-अनुक्रिया क्रम की मध्यस्थता करने में सक्षम है।

प्रबलन (Reinforcement) : (1) पावलवी अनुबंधन में अनुबंधित उद्दीपकों और अनानुबंधित उद्दीपकों का युग्मीकरण (2) नैमित्तिक अनुबंधन (आपरैंट अनुबंधन) में किसी उद्दीपक अथवा घटना की प्रस्तुति अथवा उसका समापन, जिसे किसी निश्चित अनुक्रिया के होने पर संभाव्य बनाया जाता है, वह उस अनुक्रिया को भविष्य में घटित होने के अधिक अनुकूल बनाता है।

विश्वसनीयता (Reliability) : किसी मापन तकनीक की स्थिरता के परिमाण के बारे में एक कथन। विश्वसनीय तकनीक से समान स्थितियों के अंतर्गत बार-बार मापन से समान माप प्राप्त होते हैं।

प्रतिरूप चिंतन (Representation) : मानसिक प्रतीकों को निर्मित करने की क्षमता जो उन वस्तुओं या घटनाओं के प्रतीक होते हैं जो उपस्थित नहीं हैं।

रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग तंत्र (Reticular activating system) (RAS) : तंतुओं का एक संजाल जो मेरुरज्जु से शुरू होता है और मध्य मस्तिष्क से होता हुआ उच्चतर केंद्रों में जाता है। इसकी भूमिका ध्यान और उद्वेलन में होती है।

दृष्टिपटल (रेटिना) (Retina) : आँख के पीछे की ओर कोशिका की परत जिनमें संग्राहक स्थित होते हैं।

पुनरुद्धार संकेत (Retrieval cues) : उपलब्ध आंतरिक अथवा बाह्य उद्दीपक जो स्मृति भंडार से सूचनाएँ प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

पृष्ठोन्मुखी व्यतिकरण (Retroactive interference) : एक स्मृति प्रक्रिया जिसमें नई सीखी गई जानकारियाँ पूर्वभंडारित समान सामग्री की पुन:प्राप्ति से रोकती हैं।

पुरस्कार (Reward) : व्यवहार के परिणाम के रूप में दी गई आकर्षक वस्तु या घटना।

शलाका (Rod) : दृष्टिपटल की परिधि में प्रचुर मात्रा में पाए जाने वाले प्रकाश संग्राहक जो प्रकाश की उपस्थिति/दीप्ति का पता करते हैं और धुँधलके में सबसे अच्छी तरह काम करते हैं।

सैकेड्स (Saccades) : किसी पृष्ठ को पढ़ते समय तेजी से नेत्र संचालन करना।

सांद्रता (Saturation) : (1) रंग की अनुभव की गई शुद्धता अथवा चमकीलापन। (2) किसी रंग की शुद्धता, जब कोई रंग कम संतृप्त होता है तो यह उत्तरोत्तर सफ़ेद होता है।

स्कीमा (Schema) : एक सांज्ञानात्मक संरचना; संयोजनों का एक संजाल जो किसी व्यक्ति के बोध को संगठित और निर्देशित करता है।

स्क्रिप्ट (Script) : प्रक्रियात्मक ज्ञान की स्मृति-प्रस्तुति (यथा-एक रेस्तरां में भोजन करना)।

आत्म या स्व (Self) : (1) व्यक्ति का स्वयं या अपने शरीर योग्यताओं, वैयक्तिक गुणों और चीजों को करने की विधि के प्रति बोध या जागरूकता (2) नियामक प्रकार्य जिसके द्वारा कोई व्यक्ति प्रबंधन करता है, सामना करता है, सोचता है, याद करता है, अनुभव करता है और योजना बनाता है।

आत्मानुभूति (Self-actualisation) : मास्लो के अनुसार मूल शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं तथा आत्मगौरव की आवश्यकता की पूर्ति के बाद जो अंतिम आवश्यकता उत्पन्न होती है, अपनी संभावना को पूरा करने की अभिप्रेरणा।

स्व-प्रभाविकता (Self-efficacy) : विभिन्न स्थितियों का सामना करने और उन्हें नियंत्रित करने के लिए वांछित कार्य करने की व्यक्ति की योग्यता की संकल्पना।

आत्म-सम्मान (Self-esteem) : आत्म या स्व का व्यापक मूल्यांकनपरक आयाम।

स्व-दण्ड (Self-punishment) : वास्तविक या काल्पनिक दुष्कृत्यों के लिए स्वयं को हानि पहुँचाना, एक तरह के अपराधबोध का अनुभव; अवसाद में आमतौर पर मिलता है।

शब्दार्थ स्मृति (Semantic memory) : दीर्घकालिक स्मृति का घटक जो शब्दों और संप्रत्ययों के मूलभूत अर्थों का संग्रह करता है।

अर्थ का प्रतिस्थापन (Semantic substitution) : यह एक सामान्य प्रकार की शब्द चयन की त्रुटि है जिसमें सही शब्द समान अर्थ वाले शब्द से प्रतिस्थापित कर दिया जाता है।

अर्थविज्ञान (Semantics) : शब्दों और वाक्यों के अर्थ से संबंधित अध्ययन।

संवेदना (Sensation) : किसी उद्दीपक का मानसिक अनुभव।

सांवेदिक पेशीय अवस्था (Sensory-motor stage) : पियाजे का पहला चरण जिसमें नवजात शिशु सांवेदिक और पेशीय क्रियाओं के साथ संवेदी अनुभवों का संयोजन कर संसार की एक समझ विकसित करता है।

संवेदिक अनुकूलन (Sensory adaptation) : उद्दीपक के अपरिवर्तित रहने के पश्चात् संग्राहक कोशिकाओं में प्रतिक्रियाशीलता की क्षति।

सांवेदिक स्मृति (Sensory memory) : प्रारंभिक प्रक्रिया जो उद्दीपक के संक्षिप्त प्रभावों को संरक्षित रखती है।

सांवेदिक स्नायुकोश (Sensory neurons) : इन्हें अभिवाही स्नायुकोशिका भी कहते हैं। ये संवेदी अभिग्राहक कोशिकाओं से संदेशों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तक ले जाते हैं।

क्रमिक सीखना (Serial learning) : अनुक्रियाओं की एक शृंखला को उनकी प्रस्तुति के सुनिश्चित क्रम में सीखना।

सेक्स हार्मोन (Sex hormones) : जनन-प्रकार्यों और द्वितीयक यौन विशेषताओं के निर्धारण के लिए यौन ग्रंथियों द्वारा स्रावित पदार्थ, यथा-स्त्री में एस्ट्रोजन और पुरुष में टेस्टोस्टिरोन।

आकृति स्थैर्य (Shape constancy) : यह ज्ञान कि किसी वस्तु को भिन्न कोण से देखे जाने पर भी उसका रूप स्थिर रहता है।

समानता (Similarity) : गेस्टाल्ट नियम, जिसके अनुसार वस्तु या उद्दीपक जो आकार, रूप अथवा तीव्रता आदि में समान होते हैं, एक इकाई के रूप में देखे जाते हैं।

आकार स्थैर्य (Size constancy) : परिचित वस्तुओं को उसी आकार में देखने की प्रवृत्ति जबकि वस्तु की रेटिना पर पड़ने वाली प्रतिमा भिन्न-भिन्न होती है।

कंकालीक पेशियाँ (Skeletal muscles) : अस्थियों से जुड़ी हुई मांसपेशियाँ, जिनके कारण विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतियाँ संभव होती हैं, जैसे कि अंगों की गति।

सामाजिक आयु (Social age) : किसी व्यक्ति की उम्र से संबंधित सामाजिक भूमिकाएँ और आशाएँ।

समाज मनोविज्ञान (Social psychology) : उन व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक अध्ययन जिसमें व्यक्तियों के बीच आपसी क्रिया, एक-दूसरे पर निर्भरता और प्रभाव उनके व्यवहार और विचार को प्रभावित करते हैं।

समाजीकरण (Socialisation) : सीखने की सामाजिक क्रिया जिसके द्वारा एक बच्चा उन प्रवृत्तियों, विश्वासों और व्यवहारों को ग्रहण करता है जो संस्कृति में स्वीकार्य हैं; परिवार, विद्यालय और संगी साथी वर्ग समाजीकरण के मुख्य स्रोत हैं।

समाज जैविकी (Sociobiology) : सामाजिक व्यवहार के जैविक आधार का व्यवस्थित अध्ययन।

सामाजिक-संवेगात्मक प्रक्रियाएँ (Socio-emotional processes) : वे प्रक्रियाएँ जिनमें व्यक्ति के दूसरे लोगों के साथ संबंध में परिवर्तन, संवेगों में परिवर्तन और व्यक्तित्व में परिवर्तन निहित होता है।

समाजशास्त्र (Sociology) : समूहों में लोगों का अध्ययन, व्यक्ति की जगह समूह अध्ययन की इकाई है।

कोश शरीर (Soma) : किसी भी तरह का कोशिका शरीर अथवा सामान्य रूप से मनुष्यों अथवा पशुओं जैसा किसी भी तरह शरीर-रूप।

कायिक तंत्रिका तंत्र (Somatic nervous system) : परिधीय तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो ऐच्छिक पेशियों को नियंत्रित करता है।

प्रजाति (Species) : विभिन्न जीवित प्राणियों का जैविक वर्गीकरण।

शुक्राणु कोशिका (Sperm cell) : ये परिपक्व पुरुष कोशिकाएँ, शुक्राणु हैं जो टेस्टीज़ में उत्पन्न होती हैं और प्रजनन के लिए उत्तरदायी हैं।

स्वत पुनः प्राप्ति (Spontaneous recovery) : एक समाप्त हुई अनुबंधित अनुक्रिया का एक विश्राम अवधि के बाद पुन : प्रकटीकरण।

मानकीकरण (Standardisation) : प्रतिनिधि व्यक्तियों के एक बड़े वर्ग पर लागू करने के बाद किसी परीक्षण के लिए मानक तथा समान प्रणाली स्थापित करने की विधि।

उद्दीपक (Stimulus) : वातावरण में स्थित कोई सुपरिभाषित तत्व जो प्राणी को प्रभावित करता हो तथा जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष अनुक्रिया को जन्म देता हो।

संरचनावाद (Structuralism) : विल्हेम वुंट के साथ संबद्ध मनोविज्ञान का वह दृष्टिकोण जो चेतना की संरचना और उसके संचालन को अथवा मानव-मस्तिष्क को समझना चाहता है।

सतही संरचना (Surface structure) : इसके अंतर्गत शब्द और किसी वाक्य में उसका संघटन आता है।

सर्वेक्षण (Survey) : किसी दी हुई जनसंख्या में प्रवृत्तियों और विश्वासों को जानने के लिए लिखित प्रश्नावली और व्यक्तित्व साक्षात्कार का उपयोग करने वाली अनुसंधान प्रविधि।

सिलोजिज़्म (Syllogism) : निगमनात्मक तर्क का एक प्रकार जिसमें एक प्रमुख आधार वाक्य, एक गौण आधार वाक्य और एक तार्किक निष्कर्ष होता है।

प्रतीक (Symbol) : यह किसी और वस्तु या व्यक्ति को निरूपित करता है।

अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (Sympathetic nervous system) : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो शरीर को सचेत करता है, तथा तनावपूर्ण स्थितियों में इसकी ऊर्जा को गतिशील बनाता है।

संधिस्थल (Synapse) : प्रेषित करने वाली स्नायु कोशिका के अक्ष तंतु के अग्रभाग और प्राप्त करने वाली स्नायु कोशिका के डेंड्रायट अथवा कोशिका शरीर के मध्य का संधिस्थल। इस संधि स्थान के छोटे से अंतराल को संधिस्थलीय अंतराल अथवा दरार कहा जाता है।

संधिस्थलीय पुटिका (Synaptic vesicle) : संधिस्थल की घुंडियों में पाई जाने वाली संरचनाएँ जो संधिस्थलीय दरार में न्यूरो ट्रांसमीटर के मुक्त होने से पहले उन्हें संचित करती हैं।

पर्यायवाची (Synonyms) : दो या दो से अधिक वाक्य जो मात्र एक गहन संरचना के साथ, लेकिन भिन्न-भिन्न सतही संरचनाओं के साथ होते हैं।

वाक्य-रचना (Syntax) : स्वीकार्य वाक्यांश या वाक्य बनाने के लिए शब्दों को संयोजित करने के नियमों से संबंधित।

टेलिग्राफिक संचार (Telegraphic communication) : कुछ शब्दों में बहुत-सी सूचना प्रेषित करने से संबंधित।

स्वभाव (Temperament) : किसी व्यक्ति की व्यवहार शैली और प्रतिक्रिया दिखाने की विशिष्ट विधि।

कपालास्थि पालि (Temporal lobes) : प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स का वह भाग जो कानों के ऊपर पड़ा रहता है; इसके अंतर्गत श्रवण क्षेत्र भी शामिल हैं, इनमें से प्रत्येक श्रवण सूचनाएँ प्राथमिक रूप से सामने के कान से प्राप्त करता है।

लक्ष्य मूल्य (Terminal values) : जीवन के सामान्य उद्देश्यों से संबंधित मूल्य।

टेस्टोस्टिरोन (Testosterone) : एक पुरुष यौन हार्मोन जो द्वितीयक यौन गुणों के विकास के लिए उत्तरदायी होता है जिससे वे यौन मामले में परिपक्व होते हैं।

धरातल प्रवणता (Texture gradient) : दूरी का एक संकेत जो इस बात पर आधारित है कि वस्तुएँ जितनी अधिक दूर होती हैं वे अपने लक्षणों और विवरणों को खो बैठती हैं।

थैलेमस (Thalamus) : मस्तिष्क का संवेदी स्विचबोर्ड जो मस्तिष्क स्तंभ के ऊपर स्थित है; यह संदेशों को कॉर्टेक्स में संवेदी ग्रहण क्षेत्रों में भेजता है और जवाबों को अनुमस्तिष्क और मेडुला में प्रेषित करता है।

उच्चारित चिंतन विवरण (Think-aloud protocols) : व्यक्तियों के मानसिक कौशल को अभिलेखित करने और उन्हें उपयोग में लाने की उनकी जागरूकता को विश्लेषित करने के लिए उपयोग में लाई गई

शब्द-विनिमय त्रु... यह एक प्रकार की शब्द चयन त्रुटि है जिसमें दो शब्दों के स्थान बदल जाते हैं।

सक्रिय स्मृति (Working memory) : स्मृति प्रक्रियाएँ जो हाल में अनुभव की गई घटनाओं या अनुभवों को सुरक्षित रखती हैं। इसे कम अवधि वाली स्मृति भी कहा जाता है।

यर्क्स-डॉडसन नियम (Yerkes-Dodson law) : कार्य-कठिनाई और अनुकूल उद्वेलन स्तर के बीच सहसंबंध; ज्यों-ज्यों उद्वेलन बढ़ता है, कठिन कार्यों का निष्पादन घटता है, जबकि सरल कार्यों का निष्पादन बढ़ता है, यह एक उलटे 'U' अक्षर के आकार का संबंध प्रदर्शित करता है।

● ● ●

पठनीय पुस्तकें

पुस्तक में वर्णित विभिन्न विषयों के बारे में अधिक जानकारी के लिए आप निम्नलिखित पुस्तकों का अध्ययन करें।

- **बी, एच.** (1995), *दि डेवलपिंग चाइल्ड* (7वां संस्करण), लंदन : हार्पर कालिंस।
- **बटरवर्थ, जी.** तथा **हैरिस, एम.** (1994), *प्रिंसिपिल्स ऑफ डेवलपमेंटल साइकोलॉजी,* होव : लारेंस अर्लबॉम।
- **कोल, एम.** तथा **कोल, एस. आर.** (1993), *दि डेवलपमेंट ऑफ चिल्ड्रन* (तीसरा संस्करण), न्यूयार्क : फ्रीमैन।
- **डेविस, स्टीफन, एफ.** तथा **पैलाडिनो, जोसफ, एच.** (1997), *साइकोलॉजी,* न्यू जर्सी : प्रेंटिस हाल।
- **जेरो, जोश, आर.** (1997), *साइकोलॉजी : ऐन इंट्रोडक्शन,* न्यूयार्क : एडिसन वेस्ली लांगमैन।
- **ग्लाइटमैन, एच.** (1996), *बेसिक साइकोलॉजी,* न्यूयार्क : डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी।
- **मैलिम, टी.** तथा **बर्च, ए.** (1998), *इंट्रोडक्टरी साइकोलॉजी,* न्यूयार्क : मैकमिलन प्रेस लिमिटेड।
- **मेसर, डी.,** तथा **मिलर, एस.** (1999), *एक्सप्लोरिंग डेवलपमेंट साइकोलॉजी : फ्राम इन्फैंसी टु एडोलेसेंस* : लंदन : अर्नोल्ड।
- **मॉर्गन, सी.टी., किंग, आर.ए., वीज, जे.आर.** तथा **शॉपलर, जे.** (1986), *इंट्रोडक्शन टु साइकोलॉजी* (7वां संस्करण), न्यूयार्क : मैकग्रा हिल कंपनी।
- **सैंट्रोक, जे. डब्ल्यू.** (1999), *लाइफ-स्पैन डेवलपमेंट,* बोस्टन : मैकग्रा हिल कॉलेज।
- **जिम्बार्डो, पी.जी.** तथा **वेबर, ए.एल.** (1997), *साइकोलॉजी,* न्यूयार्क : लांगमैन।
- **जिम्बार्डो, फिलिप, जी.** (1985), *साइकोलॉजी एण्ड लाइफ,* लंदन : हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स।